# अध्यात्मरामायणम्

'रामप्रिय' हिन्दीव्याख्योपेतम्

सम्पादकः

आचार्य पंडित शिवदत्तमिश्र शास्त्री



प्रकाशक

श्रीठाकुरप्रसाद पुस्तक भण्डार

कचौड़ीगली· वाराणसी·

# अध्यात्मरामायणम्

मूल्य · १५०) रु०

'शिव' ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक-१०१

महर्षि-कृष्णद्वैपायन-प्रणीतम्

# अध्यात्मरामायणम्

## 'रामप्रिया' हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः सम्पादकश्च

व्याकरणाचार्य-साहित्यवारिधि-तन्त्ररत्नाकरः

**आचार्य पण्डित शिवदत्त मिश्र शास्त्री**

( उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा सम्मानित )



प्रकाशकः

**ठाकुर प्रसाद पुस्तक भण्डार**

कचौड़ीगली, वाराणसी-१

प्रथम-संस्करणम् ] सन् १९८४ ई० [ मूल्यम् ७५-००

प्रकाशकः

**ठाकुर प्रसाद पुस्तक भण्डार**

कचौड़ीगली, वाराणसी–१

फोन : ६६४२०

सम्पादक एवं अनुवादक

**आचार्य पण्डित शिवदत्तमिश्र शास्त्री**



प्रथम संस्करण : १९८४

मूल्य : ७५ रुपये

मुद्रक :

**राजप्रेस**

गायघाट ( पाटन दरवाजा )

वाराणसी

*'Shiva' Granthmala Granthank : 101*

THE

# ADHYATM RAMAYANAM

*By*

**Maharshi Krishnadvaipayan**

*Edited with*

**'Rampriya' Hindi-commentry**

*By*

**Acharya Pt. Shri Shivadutta Mishra Shastri**
Vyakarnacharya, Sahityavaridhi, Tantraratnakar

*Published by*

**Thakur Prasad Pustak Bhandar**

**Kachaurigali, Varanasi–221001 (India)**

First Edition 1984 Price 75–00

*Publisher :*

**Thakur Prasad Pustak Bhandar**
Kachaurigali, Varanasi.
Phone : 66420

*Editor :*
Acharya Pt. Shivadutta Mishra Shastri



First Edition : 1984

Rs. 75–00

*Printer :*
**Raj Press**
Gayghat, Patan Darwaza,
Varanasi–221001.

# प्राक्कथन

भारतीय वाङ्मय में प्रस्तुत अध्यात्मरामायण का सर्वोच्च स्थान एवं इसकी लोकप्रियता भी सर्वविदित है।

ब्रह्माण्डपुराण के उत्तरखण्डान्तर्गत महामुनि वेदव्यासजी ने शिव-पार्वती संवाद रूप इस 'अध्यात्मरामायण' नामक महनीय महान् ग्रन्थ की रचना की है।

इसमें विश्वकल्याणार्थ परम रसायन श्रीरामचरित-वर्णन के साथ कर्म, ज्ञान, भक्ति, उपासना आदि विविध धर्म, सदाचार, राजनीति एवं अध्यात्मतत्त्व सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण तथा अनुकरणीय उपदेशप्रद विषय दिये गये हैं। अध्यात्म प्रधान विषय होने से प्रस्तुत पुस्तक का 'अध्यात्मरामायण' यह नाम भी सार्थक प्रतीत होता है।

उपदेशात्मक अंशों के अतिरिक्त प्रस्तुत रामायण की कथावस्तु भी अनेक दृष्टियों से अद्वितीय एवं सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। मर्यादापुरुषोत्तम होते हुए भी भगवान् राम अपने में स्वयं मूर्तिमान् आत्मतत्त्व हैं। भगवान् श्रीराम की महिमा अपरम्पार एवं वर्णनातीत है।

अयोनिजा जगज्जननी भगवती सीता भी महती प्रकृतिस्वरूपा महामाया हैं। तथा लक्ष्मण जीवकोटि के स्वरूप में वर्णित हैं।

वर्तमान समय में जिस रामचरित मानस में असंख्य नर-नारी अवगाहन कर अपने को परम कृतकृत्य समझते हैं। उस रामचरित-मानस के मूल कथानक का आधार यही ग्रन्थ है।

गोस्वामी तुलसीदासजीकृत श्रीरामचरितमानस के समस्त मूल भाग इस अध्यात्मरामायण से जितने मिलते-जुलते हैं, उतने अन्य किसी ग्रन्थ से नहीं। सारांश यह है कि, तुलसीकृत रामायण पर अध्यात्मरामायण का महत्त्वपूर्ण प्रभाव देखने में आता है।

अध्यात्मरामायण बहुत पहले छपा था, जो कुछ काल पूर्व बाजार में बिलकुल अनुपलब्ध हो गया था। प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रति पाठक वर्ग की विशेष अभिरुचि को ध्यान में रख कर 'ठाकुर प्रसाद पुस्तक भण्डार, कचौड़ीगली, वाराणसी' के अध्यक्ष **श्री द्वारिका प्रसाद जी अग्रवाल** के विशेष आग्रह पर ही मैं इस पुस्तक के सम्पादन कार्य में प्रवृत्त हुआ।

इसमें मूल पाठ की शुद्धता प्राचीन प्रतियों के आधार पर की गयी है। मूलानुगामी सरल, सुबोध एवं भावगम्य परिमार्जित हिन्दी टीका लिखी गयी है। इसमें विषयानुक्रमणिका तथा श्लोकानुक्रमणिका भी दे दी गयी है, जिससे ग्रन्थ की उपादेयता और सुन्दरता विशेष बढ़ गयी है।

अब तक अध्यात्मरामायण का ऐसा सर्वांगपरिपूर्ण सर्वोत्तम संस्करण कहीं से प्रकाशित है, यह देखने में नहीं आया।

ठाकुर प्रसाद पुस्तक भण्डार के अध्यक्ष **श्री द्वारिका प्रसाद जी अग्रवाल** ने, जिस उत्साह एवं तत्परता से इस पुस्तक का प्रकाशन किया। उसके लिए वे विशेष धन्यवाद के पात्र हैं।

इसके सम्पादनकार्य में सम्माननीय बन्धुवर **पण्डित श्री हीरामणिजी मिश्र,** व्याकरणाचार्य से मुझे विशेष सहयोग मिला है, एतदर्थ उनका मैं आभारी हूँ। साथ ही अपने **चि० श्री ओमप्रकाश मिश्र** को हार्दिक शुभाशीर्वाद—जिनसे आद्यन्त प्रस्तुत प्रकाशन में विशेष सहायता मिली है।

जगद्गुरु शङ्कराचार्य **स्वामी श्री शङ्करानन्दजी सरस्वती महाराज** का भी मैं विशेष ऋणी हूँ, जिन्होंने अपने व्यस्तकार्य-क्षणों में भी प्रस्तुत पुस्तक में अपने शुभाशीर्वचन प्रदान कर पुस्तकको गौरवान्वित किया है। और सदैव उनकी अक्षुण्ण कृपा-दृष्टि मेरे ऊपर बनी रहती है। तथा **आचार्य पं०करुणापति जी त्रिपाठी एवं आचार्य पं० सीताराम जी चतुर्वेदी** का भी मैं विशेष आभार मानता हूँ कि जिन लोगों ने प्रस्तुत पुस्तक में अपनी सम्मति प्रदान कर पुस्तक की विशेषता व्यक्त की है।

इसका संशोधन-सम्पादन एवं अनुवाद का कार्य भी मैंने बड़ी सावधानी के साथ किया है, फिर भी, मानव-दोष से सम्भव त्रुटियों के लिए क्षमा-प्रार्थी हूँ। और कृपालु पाठकों से नम्र निवेदन है कि जहाँ-कहीं किसी प्रकार की भी त्रुटि रह गयी हो, तो उसे सूचित करें, जिसे मैं अग्रिम संस्करण में उसका सुधार करा सकूँ। साथ ही प्रस्तुत पुस्तक के सम्पादन में हमें जिन ग्रन्थों से सहायता मिली है, तदर्थ उन विद्वान् ग्रन्थ-सम्पादकों एवं प्रकाशकों का भी आभारी हूँ।

**दीपावली**
**२४ अक्टूबर, १९८४**

**—शिवदत्त मिश्र शास्त्री**
सी० के० ५/२६ ए०,
भिखारीदास लेन, वाराणसी-१

# शुभाशीर्वाद

## स्वामी श्री शङ्करानन्द सरस्वती जी महाराज

( काशीस्थ-ऊर्ध्वाम्नाय सुमेरु-पीठाधीश्वर, १००८ अनन्त-
श्रीविभूषित पूज्यपाद जगद्गुरु शङ्कराचार्य )

संस्कृत वाङ्मय के विभिन्न शाखाओं के सुप्रसिद्ध विद्वान् पण्डितप्रवर श्री **शिवदत्त मिश्र जी** द्वारा विरचित नूतनतम अध्यात्मरामायण पर हिन्दी 'रामप्रिया' टीका देखने का हमें सुअवसर मिला। **श्री मिश्र जी** ने मूल पाठ के तात्पर्य को ध्यान में रखते हुए सरल सुबोध शब्दों में श्लोकों की व्याख्या की है।

अध्यात्मरामायण में महर्षि वेदव्यास जी ने प्रवृत्ति और निवृत्ति लक्षण धर्म के स्वरूप का सरलता एवं सुन्दरता के साथ विवेचनात्मक ढंग से उपस्थापन किया है।

**'प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम्'**

भगवान् मनु के इस वाक्य का मानो अनुसरण किया गया है। वास्तव में निवृत्ति लक्षण धर्म के उद्देश्य से शून्य प्रवृत्ति लक्षण धर्म जीव के जन्म-मरण चक्र का प्रवर्त्तक ही बना रहता है। अतः निवृत्ति लक्षण धर्म की परमोपादेयता है।

केवल निवृत्ति लक्षण धर्म से भी व्यावहारिक जगत् की मर्यादाएँ अक्षुण्ण नहीं रह सकतीं। अतः वेदोक्त प्रवृत्ति लक्षण तथा निवृत्ति लक्षण उभय धर्मों के अवलम्बन में मानव जीवन का कल्याण सुव्यवस्थित एवं सुस्थित है। यही उद्देश्य अनादि अपौरुषेय वेदों, स्मृतियों, पुराणों, महाभारत और रामायण का रहा है।

अध्यात्मरामायण में भगवान् राम, लक्ष्मण तथा श्री हनुमान् जी आदि के वचन शारीरिक व्यापार आदि के द्वारा वेदव्यास जी ने मानवता को भयानक विपत्ति के समय में भी दृढता एवं धैर्य का सुदृढ़तम सेतु उपस्थापित किया है। जिसके आधार पर चलता हुआ प्राणी व्यावहारिक जगत् में सफलता एवं सुफलता का वरण करता हुआ अविद्या विजृम्भित भेद प्रपञ्च का निरसन करता हुआ सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म भगवान् राम की अभिन्नता को प्राप्त कर सकता है। यही रामायण शब्द में अध्यात्म विशेषण का तात्पर्य है।

प्रस्तुत पुस्तक की 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या उक्त भाव का प्रचार-प्रसार हो और सनातन धर्म में लोगों की निष्ठा सुस्थिर हो, इस उद्देश्य से शताधिक ग्रन्थों के लेखक-सम्पादक एवं व्याख्याकार **श्री मिश्र जी** ने 'रामप्रिया' हिन्दी टीका के द्वारा हिन्दी-जगत् का महान् उपकार किया है। इसके लिए हम उन्हें हार्दिक शुभाशीर्वाद देते हैं और भगवान् विश्वनाथ से कामना करते हैं कि अध्यात्म-रामायण के सिद्धान्तों पर चलने के लिए हम भारतीयों में शक्ति एवं स्फूर्ति प्रदान करें।

**ऊर्ध्वाम्नाय श्रीकाशी सुमेरु पीठ**
बी. १/१२८ ए-२
अस्सी, वाराणसी-२२१००५

शङ्करानन्द सरस्वती

# शुभाशंसा

## आचार्य पण्डित श्री करुणापति त्रिपाठी

( अध्यक्ष : उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी, लखनऊ, पूर्व कुलपति : सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी )

**आचार्य पण्डित श्री शिवदत्त मिश्र** जी द्वारा अनूदित अध्यात्म-रामायण को मैं आद्योपान्त पढ़ा। इस रामायण में रामभक्ति का जो स्वरूप वर्णित है वह निश्चय ही रामभक्ति-शाखा के संस्कृत काव्यों में महनीय है। इस ग्रन्थ के आरम्भ में अध्यात्मरामायण का माहात्म्य दिया हुआ है जिसके अन्त में पुष्पिका है —

'श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डेऽध्यात्मरामायणमाहात्म्यं सम्पूर्णम्।' तथा इसी प्रकार प्रथम अध्याय के अन्त में लिखा है—'इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वर-संवादे बालकाण्डे श्रीरामहृदयं नाम प्रथमः सर्गः।'

इस आधार पर कहा जा सकता है कि यह ग्रन्थ ब्रह्माण्डपुराण का अंश है। इसमें उमा-महेश्वर-संवाद के रूप में समस्त रामकथा वर्णित है।

यह ध्यान देने की बात है कि इसमें 'बालकाण्डम्', 'अयोध्याकाण्डम्' आदि काण्डों के नाम से वाल्मीकिरामायण की पद्धति पर कथा का संयोजन किया गया है। प्रत्येक काण्ड में अनेक सर्ग भी हैं। इसकी कथा-वर्णनशैली पौराणिक रूप से उमा-महेश्वर के संवादों के अन्तर्गत आदि से अन्त तक वर्णित है। स्थान-स्थान पर 'उमा उवाच', 'श्रीमहादेव उवाच' लिखा है। परन्तु इसके अतिरिक्त 'राम उवाच', 'कबन्ध उवाच' इत्यादि के द्वारा भी पौराणिक शैली का विनियोग किया गया है। कथा की मूल धारा वाल्मीकि के आधार पर है। परन्तु भक्ति-भावना से यह ग्रन्थ आद्यन्त ओत-प्रोत है।

कुछ लोगों का अनुमान है कि भक्ति-भावना योग वाशिष्ठ से गृहीत की गयी है। और राम-भक्ति भी इस ग्रन्थ में उसी पद्धति की अनुगामिनी है।

चाहे जो भी हो, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि भक्ति-भावना के लिए गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस ग्रन्थ का अध्ययन अवश्य किया होगा।

**डा० प्रभात शास्त्री** कवि-कुटीर, दारागंज, प्रयाग ने संस्कृत टीका वाले अपने अध्यात्मरामायण ग्रन्थ के सम्पादन में कतिपय पुष्ट प्रमाणों से इसे किसी दाक्षिणात्य कवि के द्वारा लिखित होने की सूचना दी है। यह सब अनुसन्धान कर्ताओं का विषय है।

इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में यहाँ इतना ही कहना चाहता हूँ कि **आचार्य श्री शिवदत्त मिश्र जी** ने बड़ी ही सुस्पष्ट एवं अर्थबोधक शैली में सरल हिन्दी के माध्यम से अनुवाद करते हुए इस ग्रन्थ के सम्पादन द्वारा ऐसे रामभक्तों के लिए—जो संस्कृत नहीं जानते हैं—बड़ा उपकार किया है। बड़े श्रम, लगन, भक्तिभाव और निष्ठा के साथ इस सानुवाद ग्रन्थ को प्रस्तुत किया है।

मेरी शुभाशंसा है कि पूजन, पूजा-विधान एवं पूजन-रहस्य-परक अनेक ग्रन्थों के लेखक-सम्पादक एवं अनुवादक **पण्डित श्री शिवदत्त मिश्र जी** का यह ग्रन्थ रामभक्तों में समादृत एवं सुप्रचारित होगा।

**शरत्पूर्णिमा, संवत् २०४१**
**वाराणसी**

कमलापति त्रिपाठी

# शुभ-सम्मति

## आचार्य पण्डित सीताराम चतुर्वेदी साहित्याचार्य

( एम. ए. [ संस्कृत, पालि, हिन्दी, प्रत्न भारतीय इतिहास और संस्कृति ]
बी. टी. ( अँगरेजी-शिक्षण में विशेषता ), एल्-एल्. बी., साहित्याचार्य )

महर्षि वाल्मीकिने अपने आदि महाकाव्य रामायण में जिस रामकथा का सविस्तर वर्णन किया है उस रामकथा को सभी पुराणों ने थोड़ी-बहुत मात्रा में यथास्थान वर्णित किया है। तदनुसार ब्रह्माण्डपुराण में सात काण्डों में जो राम की कथा दी गयी है उसे अध्यात्मरामायण संज्ञा दी गयी है और उस नाम की व्युत्पत्ति करते हुए कहा गया है--

'आत्मानमधिकृत्य कृतं रामस्य अयनं रामायणम् ।'

इस अध्यात्मरामायण के आदि में पुराणों की वर्णन-प्रणाली के अनुसार नारद ने जब ब्रह्माजी के पास जाकर पूछा कि कलिकाल के पापरत समाज का निस्तार कैसे होगा ? तब ब्रह्माजी ने उनसे कहा कि एक बार महादेवजी ने पार्वतीजी को जो अध्यात्मरामायण सुनाया था उसे सुनकर ही कलिकाल के लोग मुक्त हो जायेंगे।

इसके आदि काण्ड में आया है--

**बहुना किमिहोक्तेन शृणु नारद ! तत्त्वतः ।**
**श्रुति-स्मृति-पुराणेतिहासा-ऽऽगमशतानि च ।**
**अर्हन्ति नाल्पमध्यात्म-रामायणकलामपि ।।'**

देखो नारद ! बहुत क्या कहा जाय ? श्रुति-स्मृति-पुराण-इतिहास और सैकड़ों आगम मिलकर भी अध्यात्मरामायण की थोड़ी-सी कला के बराबर नहीं पहुँच पा सकते।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी अपने रामचरितमानस में राम-कथा के इस रहस्य का उल्लेख करते हुए यही कहा है--

**'रचि महेस निज मानस राखा।**
**पाइ सुसमय सिवासन भाखा ।।'**

रामचरितमानस के अन्त में भी उन्होंने स्पष्ट लिखा है —

'यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमं
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं प्राप्त्यै तु रामायणम्।
मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमः शान्तये
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम् ॥'

इस अध्यात्मरामायण का गोस्वामी तुलसीदास जी पर कितना प्रभाव पड़ा है इसी से इसका महत्त्व सिद्ध हो जाता है।

इस महनीय महाग्रन्थ का विद्वत्समाज में प्रारम्भ से ही बड़ा आदर होता तो रहा है किन्तु कोई अच्छी टीका न मिलने के कारण सामान्य पाठक की गति उसमें नहीं हो पा रही थी। यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि 'राम-प्रिया' नामक हिन्दी व्याख्या के साथ विद्वान् टीकाकार **आचार्य पण्डित शिवदत्त मिश्र जी** ने अत्यन्त सरल, सर्वबोध्य भाषा में इस ग्रन्थ का अनुवाद करके इस ग्रन्थको सर्व-सुलभ बना देने का अत्यन्त सराहनीय कार्य किया है।

मैं **श्री मिश्र जी** को इस महत्त्वपूर्ण आयोजन के लिए हृदय से साधुवाद और बधाई देता हूँ तथा विश्वास करता हूँ कि भारतीय जन-समाज इस ग्रन्थ का समुचित समादर करेगा।

उत्तर बेनिया बाग,
वाराणसी-२२१००१
श्रावण कृ० ११, सं० २०४१ वि.

**—सीताराम चतुर्वेदी**

## ग्रन्थकारसंस्तवः

देवरिया-जनपदके ख्याते ग्रामे मझौलिकाऽभिख्ये ।
उद्भटशूरा मल्ला यत्राऽऽसन् विश्वविख्याता ॥ १ ॥

विद्या–सदाचारगुण–प्रसिद्धा लोकद्वयी साधनकर्मसिद्धाः ।
यत्राऽभवँल्लोक–ललामभूता, विप्रा जगद्वन्दित-पादपद्माः ॥ २ ॥

पितामहोऽभूम्मम लोकवित्तः, श्रीकान्तनामा-ऽऽगममर्म-विज्ञः ।
तदात्मजौ द्वौ परमार्थनिष्ठौ, जातौ प्रतीक्ष्याऽर्चनरक्तचितौ ॥ ३ ॥

श्रीसन्तशरणनामा ज्यायानासीन्नितान्त-विख्यातः ।
शास्त्राऽनुशीलनपरः शुभकर्मपरायणः सततम् ॥ ४ ॥

श्रीसत्यनारायणनामधेय आसीत्कनीयाञ्शुभभागधेयः ।
द्वावप्यभूतां पितृभक्तिभाजौ, लोकोपकारे परमप्रवीणौ ॥ ५ ॥

श्रीसन्तशरणविदुषो द्वौ पुत्रौ भक्तिसम्पन्नौ ।
श्रीलजगन्नाथ इति ज्यायानासीद् गुणाऽग्रणीर्धीमान् ॥ ६ ॥

तदनुजनुर्गुरुभक्तः शिवदत्तोऽहं समाख्यया प्रथितः ।
पित्रोः परिचरणपरः शास्त्राऽम्बुधिमज्जने रसिकः ॥ ७ ॥

वागीश्वरी नाम ममाऽऽद्यपत्नी, सावित्रिकाया प्रसवित्रिकाऽऽसीत् ।
सा द्रौपदी नाम मदन्यपत्नी, पुष्पाप्रसूर्द्वे अपि मुक्तिभाजौ ॥ ८ ॥

पौरस्त्य-पाश्चात्त्य-विशिष्टविद्या कलाप्रवीणस्य विचक्षणस्य ।
सत्यव्रतस्याऽस्ति कलत्ररत्नं सावित्रिका नाम मदीयकन्या ॥ ९ ॥

कनीयसी मे दुहिताऽस्ति पुष्पा, श्रीमद्-रमेशाख्यबुधस्य पत्नी ।
उभे मदीये तनये, स्वधर्मं, सम्पाद्य सौभाग्य-समन्विते स्तः ॥ १० ॥

आचार्योऽहं शब्दशास्त्रे तथैव, साहित्याऽब्धिग्रन्थनिर्माणशीलः ।
तन्त्रे, स्तोत्रे, व्याकृतौ धर्मशास्त्रे, सन्ति ग्रन्था निर्मिता मामकीनाः ॥ ११ ॥

अद्याऽवधि ग्रन्थशताऽधिकं मे प्रकाशितं भूरिपरिश्रमेण ।
अशान्तयत्नेन कृतिं करोमि शास्त्रोक्तकृत्यं विदधामि नित्यम् ॥ १२ ॥

स्वचित्त-शिष्टा-ऽऽस्तिक-तोषणाय निरन्तरं शास्त्रचयं समीक्ष्य ।
मया प्रणीता विविधाः प्रबन्धाः संप्रार्थये तत्र सतां सुदृष्टिम् ॥ १३ ॥

□

# विषयानुक्रमणिका

**इति विषयानुक्रमणिका समाप्ता ।**

□

## श्रीसीतारामयोर्ध्यानं वन्दनं च

वैदेहीसहितं सुरद्रुमतले हैमे महामण्डपे
मध्ये पुष्पकमासने मणिमये वीरासने सुस्थितम् ।
अग्रे वाचयति प्रभञ्जनसुते तत्त्वं मुनिभ्यः परं
व्याख्यातं भरतादिभिः परिवृतं रामं भजे श्यामलम् ॥१॥

वामे भूमिसुता पुरश्च हनुमान् पश्चात् सुमित्रासुतः
शत्रुघ्नो भरतश्च पार्श्वदलयोर्वाय्वादिकोणेषु च ।
सुग्रीवश्च विभीषणश्च युवराट् तारासुतो जाम्बवान्
मध्ये नीलसरोजकोमलरुचिं रामं भजे श्यामलम् ॥२॥

ध्यायेदाजानुबाहुं धृतशरधनुषं बद्धपद्मासनस्थं
पीतं वासो वसानं नवकमलदल-स्पर्द्धिनेत्रं प्रसन्नम् ।
वामाङ्कारूढसीता-मुखकमल-मिलल्-लोचनं नीरदाभं
नानालङ्कारदीप्तं दधतमुरुजटामण्डलं रामचन्द्रम् ॥३॥

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि पर-पदप्राप्तये प्रस्थितस्य ।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानां
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम ॥४॥

रामं लक्ष्मणपूर्वजं रघुवरं सीतापतिं सुन्दरं
काकुत्स्थं करुणार्णवं गुणनिधिं विप्रप्रियं धार्मिकम् ।
राजेन्द्रं सत्यसन्धं दशरथतनयं श्यामलं शान्तमूर्तिं
वन्दे लोकाभिरामं रघुकुलतिलकं राघवं रावणारिम् ॥५॥

नमोऽस्तु रामाय स-लक्ष्मणाय
देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै ।
नमोऽस्तु रुद्रेन्द्र-यमा-ऽनिलेभ्यः
नमोऽस्तु चन्द्रार्क-मरुद्गणेभ्यः ॥६॥

रामो राजमणिः सदा विजयते रामं रमेशं भजे
रामेणाऽभिहता निशाचरचमू रामाय तस्मै नमः ।
रामान्नास्ति परायणं परतरं रामस्य दासोऽस्म्यहं
रामे चित्तलयः सदा भवतु मे भो राम ! मामुद्धर ॥७॥

श्रीमङ्गलमूर्तये नमः

# अध्यात्मरामायणम्

## 'रामप्रिया'-हिन्दीव्याख्या-सहितम्

## *माहात्म्यम्*

**अप्रमेय-त्रयातीत-निर्मलज्ञान-मूर्तये ।**
**मनोगिरां विदूराय दक्षिणामूर्तये नमः ॥१॥**

सूत उवाच

**कदाचिन्नारदो योगी परानुग्रहवाञ्छया ।**
**पर्यटन् सकलाँल्लोकान् सत्यलोकमुपागमत् ॥२॥**

---

यन्नाम्ना प्रददाति निर्वृतिमसौ काश्यां प्रभुः शङ्करः
संसारार्णवतारणं महितं यन्नाम रामाऽभिधम् ।
तस्य श्रीरघुपुङ्गवस्य चरितं चाऽध्यात्मरामायण
तद्व्याख्या नृगिरा पिपर्तु सुजनान् 'रामप्रिया' सन्ततम् ॥१॥
तातो यस्य सुधीन्द्र-सन्तशरणो माता जयन्ती सती
आचार्यः शुकदेवशर्मविबुधो नाम्ना चतुर्वेदकः ।
गङ्गास्नानपरः सदागममतिर्वेदान्तचर्चारतो
नाम्ना 'श्रीशिवदत्तमिश्र' इति स व्याख्याति रामायणम् ॥२॥

जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों से परे होने के कारण अप्रमेय हैं, तीनों गुणों से रहित एवं निर्मल ज्ञानस्वरूप हैं। मन, वाणी आदि इन्द्रियों से सर्वथा अगोचर हैं, उन दक्षिणा मूर्ति भगवान् सदाशिव को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥

सूत जी ने कहा—किसी समय योगिराज नारद जी लोकोपकार की इच्छा से समस्त लोकों में भ्रमण करते हुए सत्यलोक में चले गये ॥२॥

तत्र दृष्ट्वा मूर्तिमद्भिश्छन्दोभिः परिवेष्टितम् ।
बालार्कप्रभया सम्यग् भासयन्तं सभागृहम् ॥३॥
मार्कण्डेयादि-मुनिभिः स्तूयमानं मुहुर्मुहुः ।
सर्वार्थगोचरज्ञानं सरस्वत्या समन्वितम् ॥४॥
चतुर्मुखं जगन्नाथं भक्ताऽभीष्टफलप्रदम् ।
प्रणम्य दण्डवद्-भक्त्या तुष्टाव मुनिपुङ्गवः ॥५॥
सन्तुष्टस्तं मुनिं प्राह स्वयम्भूर्वैष्णवोत्तमम ।
किं प्रष्टुकामस्त्वमसि तद् वदिष्यामि ते मुने ! ॥६॥
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य मुनिर्ब्रह्माणमब्रवीत् ।
त्वत्तः श्रुतं मया सर्वं पूर्वमेव शुभाऽशुभम् ॥७॥
इदानीमेकमेवास्ति श्रोतव्यं सुरसत्तम ।
तद्रहस्यमपि ब्रूहि यदि तेऽनुग्रहो मयि ॥८॥

---

वहाँ पर उन्होंने साक्षात् शरीर धारण किये हुए, वेदों से घिरे ब्रह्मदेव को देखा। वे बालसूर्य के समान अपनी प्रभा से सभागृह को आलोकित कर रहे थे ॥ ३ ॥ मार्कण्डेय आदि मुनिगण बारम्बार उनकी स्तुति कर रहे थे, उनको अतीन्द्रिय पदार्थों का भी ज्ञान था तथा वे सरस्वती से सुशोभित हो रहे थे ॥ ४ ॥ इस प्रकार भक्तों को अभीष्ट फल देने वाले जगत्पति ब्रह्मा को देख नारदजी उन्हें साष्टांग प्रणाम कर भक्तिभाव से उनकी स्तुति करने लगे ॥ ५ ॥

स्तुति से सन्तुष्ट हुए स्वयम् भगवान् ब्रह्मा ने वैष्णवाग्रणी नारदजी से कहा—'हे मुने ! तुम क्या पूछना चाहते हो पूछो ? मैं तुम्हें सब कुछ बताऊँगा' ॥ ६ ॥ ब्रह्मा के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर नारदजी ने उनसे कहा—हे देव ! मैं आप से शुभ एवं अशुभ कर्मों का वर्णन पूर्व में सुन चुका हूँ ॥ ७ ॥ हे सुरसत्तम ! अब मुझे आप से एक ही बात जानने की इच्छा है। यदि आप मेरे ऊपर अनुग्रह करना चाहते हैं, तो गोपनीय होने पर भी आप मुझे बताइये ॥ ८ ॥

प्राप्ते कलियुगे घोरे नराः पुण्यविवर्जिताः ।
दुराचाररताः सर्वे सत्यवार्तापराङ्मुखाः ॥९॥
परापवादनिरताः परद्रव्याभिलाषिणः ।
परस्त्रीसक्तमनसः परहिंसापरायणाः ॥१०॥
देहात्मदृष्टयो मूढा नास्तिकाः पशुबुद्धयः ।
मातृ-पितृकृत-द्वेषाः स्त्रीदेवाः काम-किङ्कराः ॥११॥
विप्रा लोभग्रहग्रस्ता वेदविक्रयजीविनः ।
धनार्जनार्थमभ्यस्तविद्या मदविमोहिताः ॥१२॥
त्यक्तस्वजातिकर्माणः प्रायशः परवञ्चकाः ।
क्षत्रियाश्च तथा वैश्याः स्वधर्मत्यागशीलिनः ॥१३॥
तद्वच्छूद्राश्च ये केचिद् ब्राह्मणाचारतत्पराः ।
स्त्रियश्च प्रायशो भ्रष्टा भर्त्रवज्ञाननिर्भयाः ॥१४॥

---

आगे घोर कलिकाल के आ जाने पर मनुष्य पुण्य कर्म का त्याग कर दुष्कर्म में निरत हो जायेंगे। एवं सत्य भाषण से विमुख हो जायेंगे ।। ९ ।। वे दूसरों की निन्दा करेंगे, दूसरे का धन चाहेंगे। पर-स्त्री में आसक्ति रखेंगे तथा दूसरों की हिंसा में परायण रहेंगे ।। १० ।। वे मूर्ख, शरीर को ही आत्मा मानने वाले होंगे। ईश्वर, देवता, गुरु एवं शास्त्र-वचनों में श्रद्धा नहीं करेंगे। पशुओं के समान आचरण करेंगे। तथा अपने पोषक एवं समुत्पादक माता-पिता से द्वेष कर स्त्री-भक्त हो काम की गुलामी करेंगे ।। ११ ।। ब्राह्मण लोभ-ग्रह से ग्रस्त हो वेद को बेंच कर अपनी जीविका चलायेंगे। और धनोपार्जन करने वाली विद्या का अभ्यास करेंगे तथा सदैव उन्मत्त दिखाई देंगे ।। १२ ।।

इसी प्रकार क्षत्रिय एवं वैश्य भी स्व-स्व जाति विहित कर्मों का त्याग कर पर-वञ्चक हो जायेंगे। और अपने-अपने धर्म का त्याग कर देंगे ॥१३॥ इसी तरह शूद्र भी अपने धर्म-कर्म का त्याग कर ब्राह्मणोचित सदाचार में निरत हो जायेंगे। स्त्रियाँ दुश्चरित्र होकर अपने पति का अपमान निडर होकर करेंगी ।। १४ ।। निःसन्देह वे स्त्रियाँ अपने सास तथा श्वसुर से द्रोह

श्वशुरद्रोहकारिण्यो भविष्यन्ति न संशयः ।
एतेषां नष्टबुद्धीनां परलोकः कथं भवेत् ॥१५॥
इति चिन्ताकुलं चित्तं जायते मम सन्ततम् ।
लघूपायेन येनैषां परलोकगतिर्भवेत् ।
तमुपायमुपाख्याहि सर्वं वेत्ति यतो भवान् ॥१६॥
इत्यृषेर्वाक्यमाकर्ण्य प्रत्युवाचाम्बुजासनः ।
साधु पृष्टं त्वया साधो वक्ष्ये तच्छृणु सादरम् ॥१७॥
पुरा त्रिपुरहन्तारं पार्वती भक्तवत्सला ।
श्रीरामतत्त्वं जिज्ञासुः पप्रच्छ विनयान्विता ॥१८॥
प्रियायै गिरिशस्तस्यै गूढं व्याख्यातवान् स्वयम् ।
पुराणोत्तममध्यात्मरामायणमिति स्मृतम् ॥१९॥
तत्पार्वती जगद्धात्री पूजयित्वा दिवानिशम् ।
आलोचयन्ती स्वानन्दमग्ना तिष्ठति साम्प्रतम् ॥२०॥

---

करेंगी। नारद ने कहा—इन नष्ट बुद्धिवाले चतुर्वर्णों का सुधार किस प्रकार होगा ? और किस प्रकार वे उत्तम लोक प्राप्त करेंगे ? ॥ १५ ॥

हे ब्रह्मदेव ! मेरा चित्त इन्हीं चिन्ताओं से निरन्तर सन्तप्त रहता है। अतः जिन सुगम उपायों से इन लोगों के परलोक का सुधार हो वह उपाय आप हमें बताइए, क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं ॥ १६ ॥

देवर्षि नारद के वचन को सुनकर कमलासन पर विराजमान ब्रह्मा ने कहा—हे साधो ! तुमने अच्छी बात पूछी है। मैं उसे बतलाता हूँ, श्रद्धा पूर्वक सुनो ॥ १७ ॥ भक्तों के ऊपर कृपा करने वाली जगदम्बा पार्वती ने श्रीरामतत्त्व जानने की इच्छा से त्रिपुर-विनाशक भगवान् शङ्कर से बड़े विनय से पूर्व-काल में यही प्रश्न किया था ॥ १८ ॥ उस समय भगवान् गिरीश ने जिस निगूढ़ तत्व का उपदेश अपनी प्रिया से किया था वह तत्त्वोपदेश पुराणों में सर्वोत्तम अध्यात्म-रामायण नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ १९ ॥ इस समय जगत् का पालन करने वाली भगवती पार्वती उस पुराण का पूजन करती हुई ध्यान में निमग्न हो उसका मनन कर सदैव आत्मानन्द में लीन रहती हैं ॥ २० ॥ जब प्राणियों के पुण्य का उदय होगा तो उसी कथा का लोक में

अचरिष्यति तल्लोके प्राण्यदृष्टवशाद् यदा ।
तस्याऽध्ययनमात्रेण जना यास्यन्ति सद्गतिम् ॥२१॥
तावद् विजृम्भते पापं ब्रह्महत्यापुरःसरम् ।
यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ॥२२॥
तावत् कलिमहोत्साहो निःशङ्कं सम्प्रवर्तते ।
यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ॥२३॥
तावद्यमभटाः शूराः सञ्चरिष्यन्ति निर्भयाः ।
यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ॥२४॥
तावत् सर्वाणि शास्त्राणि विवदन्ते परस्परम् ॥२५॥
तावत् स्वरूपं रामस्य दुर्बोधं महतामपि ।
यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ॥२६॥
अध्यात्मरामायण - सङ्कीर्तन - श्रवणादिजम् ।
फलं वक्तुं न शक्नोमि कार्त्स्न्येन मुनिसत्तम ! ॥२७॥
तथाऽपि तस्य माहात्म्यं वक्ष्ये किञ्चित्तवानघ ।
शृणु चित्तं समाधाय शिवेनोक्तं पुरा मम ॥२८॥

---

प्रचार होगा। उसी अध्यात्मरामायण के अध्ययन मात्र से लोग सद्गति को प्राप्त करेंगे ॥ २१ ॥ संसार में ब्रह्महत्यादि पापों का उदय तभी तक रहेगा, जब तक अध्यात्मरामायण का प्रादुर्भाव नहीं होता ॥ २२ ॥ कलिकाल का महान् उत्साह तभी तक निःशङ्क बढ़ता रहेगा, जब तक अध्यात्मरामायण का उदय नहीं होता ॥ २३ ॥ यमराज के शूर-वीर दूत निर्भय होकर तभी तक विचरते रहेंगे जब तक अध्यात्मरामायण का उदय नहीं होता ॥ २४ ॥ सभी शास्त्रों का आपस में विवाद तभी तक रहेगा, जब तक अध्यात्मरामायण का उदय नहीं होता ॥ २५ ॥ महा-पुरुषों को भी भगवान् श्रीराम के स्वरूप का बोध तब तक नहीं होगा, जब तक अध्यात्मरामायण का प्रकाश नहीं होता ॥ २६ ॥

ब्रह्माजी ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ नादर जी ! अध्यात्मरामायण के कीर्तन तथा श्रवणादि के सम्पूर्ण फल का वर्णन करने में मैं भी सर्वथा असमर्थ हूँ ॥ २७ ॥ तथापि मैं तुम्हें उसका थोड़ा-सा माहात्म्य सुना रहा हूँ, जिसे शिवजी ने मुझे पूर्वकाल में सुनाया था, सावधानी से तुम उसे सुनो ॥ २८ ॥

अध्यात्मरामायणतः श्लोकं श्लोकार्धमेव वा ।
यः पठेद् भक्तिसंयुक्तः स पापान्मुच्यते क्षणात ॥२९॥
यस्तु प्रत्यहमध्यात्म-रामायणमनन्यधीः ।
यथाशक्ति वदेद् भक्त्या स जीवन्मुक्त उच्यते ॥३०॥
यो भक्त्याऽर्चयतेऽध्यात्म - रामायणमतन्द्रितः ।
दिने दिनेऽश्वमेधस्य फलं तस्य भवेन्मुने ॥३१॥
यदृच्छयाऽपि योऽध्यात्मरामायणमनादरात ।
अन्यतः शृणुयान् मर्त्यः सोऽपि मुच्येत पातकात ॥३२॥
नमस्करोति योऽध्यात्मरामायणमदूरतः ।
सर्वदेवार्चनफलं स प्राप्नोति न संशयः ॥३३॥
लिखित्वा पुस्तकेऽध्यात्मरामायणमशेषतः ।
यो दद्याद्रामभक्तेभ्यस्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥३४॥
अधीतेषु च वेदेषु शास्त्रेषु व्याकृतेषु च ।
यत्फलं दुर्लभं लोके तत्फलं तस्य सम्भवेत ॥३५॥

---

इस अध्यात्मरामायण से जो पुरुष एक श्लोक अथवा आधा श्लोक भी भक्ति पूर्वक पाठ करता है वह सद्यः पाप से मुक्त हो जाता है ॥२९॥ जो पुरुष इस अध्यात्मरामायण को नित्य प्रति अनन्य बुद्धि से भक्तिपूर्वक यथा शक्ति दूसरों से कहता है वह जीवन्मुक्त हो जाता है ॥ ३० ॥ हे मुने ! जो पुरुष इस अध्यात्मरामायण की भक्तिभाव से सावधानी पूर्वक प्रतिदिन अर्चना करता है वह अश्वमेधयज्ञ का फल प्राप्त करता है ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य मनमाने ढंग से अनादर पूर्वक भी दूसरों से अध्यात्मरामायण का श्रवण करता है, पापों से उसका भी छुटकारा हो जाता है ॥३२॥

जो कोई अध्यात्मरामायण के सन्निकट जाकर उसे प्रणाम करता है, वह सम्पूर्ण देवताओं की पूजा का फल प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं ॥३३॥ जो पुरुष सम्पूर्ण अध्यात्मरामायण को लिखकर पुस्तक के रूप में रामभक्तों को उसका दान करता है उसके पुण्यफल को सुनो ॥३४॥ वेदों के स्वाध्याय एव शास्त्रों की व्याख्या करने से भी जो फल प्राप्त नहीं होता वह उसे प्राप्त होता है ॥३५॥ एकादशी के दिन उपवास कर जो राम-

एकादशीदिनेऽध्यात्म - रामायणमुपोषितः ।
यो रामभक्तः सदसि व्याकरोति नरोत्तमः ॥३६॥
तस्य पुण्यफलं वक्ष्ये शृणु वैष्णवसत्तम ।
प्रत्यक्षरं तु गायत्रीपुरश्चर्याफलं भवेत् ॥३७॥
उपवासव्रतं कृत्वा श्रीरामनवमीदिने ।
रात्रौ जागरितोऽध्यात्म-रामायणमनन्यधीः ।
यः पठेच्छृणुयाद् वाऽपि तस्य पुण्यं वदाम्यहम् ॥३८॥
कुरुक्षेत्रादि - निखिल - पुण्यतीर्थेष्वनेकशः ।
आत्मतुल्यं धनं सूर्यग्रहणे सर्वतोमुखे ॥३९॥
विप्रेभ्यो व्यासतुल्येभ्यो दत्त्वा यत्फलमश्नुते ।
तत्फलं सम्भवेत्तस्य सत्यं सत्यं न संशयः ॥४०॥
यो गायते मुदाऽध्यात्मरामायणमहर्निशम् ।
आज्ञां तस्य प्रतीक्षन्ते देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥४१॥
पठन् प्रत्यमहमध्यात्मरामायणमनुव्रतः ।
यद्यत् करोति तत्कर्म ततः कोटिगुणं भवेत् ॥४२॥

---

भक्त सभा के मध्य में इस अध्यात्मरामायण की व्याख्या करता है ॥३६॥
ब्रह्मा जी ने कहा—हे वैष्णवश्रेष्ठ नारदजी ! उसके पुण्य का फल सुनो । उस व्याख्या के एक-एक अक्षर से उसे गायत्री पुरश्चरण का फल प्राप्त होता है ॥३७॥ श्री रामनवमी के दिन उपवास परायण होकर, रात्रि में जागरण कर, जो पुरुष इस अध्यात्मरामायण का पाठ करता है अथवा सुनता है उसका पुण्यफल कहता हूँ ॥३८॥ सर्वग्रास सूर्यग्रहण के समय, कुरुक्षेत्र आदि समस्त तीर्थों में अपने बराबर धन का दान, व्यास जैसे अनेक ब्राह्मणों को अनेकों बार देने से जितना फल प्राप्त होता है, उतना फल अध्यात्म-रामायण के पाठ से उसे प्राप्त होता है, यह बात सत्य है, यह बात सत्य है, इसमें सन्देह नहीं ॥३९–४०॥

जो पुरुष दिन-रात अध्यात्मरामायण का गान किया करता है, उसके आज्ञा की प्रतीक्षा स्वर्ग में इन्द्रादि देवगण भी किया करते हैं ॥४१॥ प्रति-दिन नियम पूर्वक प्रसन्नचित्त हो अध्यात्मरायायण का पाठ करते हुए मनुष्य जो कुछ भी पुण्य करता र हता है वह करोड़ों गुना फल देता है ॥ ४२ ॥

तत्र श्रीरामहृदयं यः पठेत सुसमाहितः ।
स ब्रह्मघ्नोऽपि पूतात्मा त्रिभिरेव दिनैर्भवेत ॥४३॥
श्रीरामहृदयं यस्तु हनूमत्प्रतिमान्तिके ।
त्रिः पठेत् प्रत्यहं मौनी स सर्वेप्सितभाग् भवेत ॥४४॥
पठन् श्रीरामहृदयं तुलस्यश्वत्थयोर्यदि ।
प्रत्यक्षरं प्रकुर्वीत ब्रह्महत्यानिवर्तनम् ॥४५॥
श्रीरामगीतामाहात्म्यं कृत्स्नं जानाति शङ्करः ।
तदर्धं गिरिजा वेत्ति तदर्धं वेद्म्यहं मुने ॥४६॥
तत्ते किञ्चित् प्रवक्ष्यामि कृत्स्नं वक्तुं न शक्यते ।
यज्ज्ञात्वा तत्क्षणाल्लोकश्चित्तशुद्धिमवाप्नुयात ॥४७॥
श्रीरामगीता यत्पापं न नाशयति नारद ॥
तन्न नश्यति तीर्थादौ लोके क्वापि कदाचन ।
तन्न पश्याम्यहं लोके मार्गमाणोऽपि सर्वदा ॥४८॥

---

जो पुरुष अत्यन्त सावधानी से इस अध्यात्मरामायण के अन्तर्गत वर्तमान श्रीरामहृदय का पाठ करता है, वह ब्रह्महत्या-जैसे पाप से भी तीन ही दिन में छुटकारा पा जाता है ॥४३॥ जो पुरुष इस श्रीरामहृदय का पाठ श्रीहनुमान् जी की मूर्त्ति के समीप प्रतिदिन तीन बार मौन होकर करता है उसको समस्त अभीष्ट की प्राप्ति हो जाती है ॥४४॥ यदि कोई पुरुष तुलसी अथवा अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष के नीचे श्रीरामहृदय का पाठ करे, तो वह एक-एक अक्षर से ब्रह्महत्या जैसे पापों को नष्ट कर देता है ॥४५॥

ब्रह्मा जी ने कहा—हे नारद ! श्रीरामगीता का माहात्म्य पूर्णरूप से भगवान् शङ्कर ही जानते हैं। उसका आधा माहात्म्य श्री पार्वतीजी जानती हैं तथा उसका आधा मैं जानता हूँ ॥४६॥ उस रामगीता का सम्पूर्ण माहात्म्य कहने में असमर्थ होने के कारण उसका कुछ अंश हे नारद ! मैं तुम्हें सुना रहा हूँ। उस माहात्म्य के सुन लेने मात्र से संसारी जीवों के चित्त की शुद्धि तत्क्षण हो जाती है ॥४७॥

हे देवर्षि नारद ! जिस पाप को श्रीराम-गीता ने नष्ट नहीं किया वह पाप संसार के किसी भी तीर्थादि में नष्ट नहीं हो सकता। मैं ऐसे पापों को सदैव ढूंढता रहता हूँ, जो पाप रामगीता के पाठ से नष्ट न होता हो ॥४८॥

रामेणोपनिषत्सिन्धुमुन्मथ्योत्पादितां मुदा ।
लक्ष्मणायार्पितां गीता सुधां पीत्वाऽमरो भवेत् ॥४९॥
जमदग्निसुतः पूर्वं कार्तवीर्यवधेच्छया ।
धनुर्विद्यामभ्यसितुं महेशस्यान्तिके वसन् ॥५०॥
अधीयमानां पार्वत्या रामगीतां प्रयत्नतः ।
श्रुत्वा गृहीत्वाऽऽशु पठन्नारायणकलामगात् ॥५१॥
ब्रह्महत्यादि-पापानां निष्कृतिं यदि वाञ्छति ।
रामगीतां मासमात्रं पठित्वा मुच्यते नरः ॥५२॥
दुष्प्रतिग्रह-दुर्भोज्य-दुरालापादिसम्भवम् ।
पापं यत्तत् कीर्तनेन रामगीता विनाशयेत् ॥५३॥
शालग्रामशिलाग्रे च तुलस्यश्वत्थसन्निधौ ।
यतीनां पुरतस्तद्वद्रामगीतां पठेत्तु यः ॥५४॥
स तत्फलमवाप्नोति यद्वाचोऽपि न गोचरम् ॥५५॥

---

जिस रामगीता रूप अमृत को भगवान् श्रीराम ने उपनिषत्सागर का मन्थन कर उत्पन्न किया और प्रसन्नता से लक्ष्मण को पिलाया। उस रामगीता रूप अमृत का पान मनुष्य को नित्य करना चाहिए, जिसे वह अमर हो जाय ॥४९॥

पूर्वकाल में श्रीपरशुराम जी कार्त्तवीर्य का वध करने के लिए जब धनुर्विद्या पढ़ने हेतु श्री महादेवजी के सन्निकट निवास कर रहे थे ॥५०॥ उस समय उन्होंने श्रीरामगीता का अध्ययन करती हुई श्रीपार्वतीजी के मुख सुनकर यत्नपूर्वक उनसे ग्रहण किया। और उसका पाठ करते-करते नारायण के कलास्वरूप हो गये ॥५१॥ यदि कोई मनुष्य ब्रह्महत्या जैसे घोर पापों से छुटकारा पाना चाहता हो, तो उसे एक मास मात्र श्रीरामगीता का पाठ करना चाहिए ॥५२॥ शास्त्र निषिद्ध दान, अभक्ष्यभक्षण एवं अश्लील आदि वार्त्ता से जितने पाप होते हैं, वे सभी प्रकार के पाप रामगीता के पाठ मात्र से नष्ट हो जाते हैं ॥५३॥

शालिग्राम शिला के समक्ष, तुलसी एवं पीपल वृक्ष के निकट एवं यतिजनों के आगे रामगीता के पाठ से जो फल प्राप्त होता है, उसे वाणी द्वारा कहा नहीं जा सकता ।।५४-५५॥

रामगीतां पठन् भक्त्या यः श्राद्धे भोजयेद् द्विजान् ।
तस्य ते पितरः सर्वे यान्ति विष्णोः परं पदम् ॥५६॥
एकादश्यां निराहारो नियतो द्वादशीदिने ।
स्थित्वाऽगस्त्यतरोर्मूले रामगीतां पठेत्तु यः ।
स एव राघवः साक्षात सर्वदेवैश्च पूज्यते ॥५७॥
विना दानं विना ध्यानं विना तीर्थावगाहनम् ।
रामगीतां नरोऽधीत्य तदनन्तफलं लभेत ॥५८॥
बहुना किमिहोक्तेन शृणु नारद तत्त्वतः ।
श्रुति-स्मृति-पुराणेतिहासागम-शतानि च ।
अर्हन्ति नाल्पमध्यात्मरामायणकलामपि ॥५९॥
अध्यात्मरामचरितस्य मुनीश्वराय
माहात्म्यमेतदुदितं कमलासनेन ।
यः श्रद्धया पठति वा शृणुयात स मर्त्यः
प्राप्नोति विष्णुपदवीं सुरपूज्यमानः ॥६०॥

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डेऽध्यात्मरामायणमाहात्म्यं सम्पूर्णम् ।

---

जो मनुष्य श्राद्ध में रामगीता का भक्तिपूर्वक पाठ कर ब्राह्मणों को भोजन कराता है, उसके पितर विष्णु लोक को प्राप्त करते हैं ॥५६॥ जो पुरुष एकादशी को निराहार एवं जितेन्द्रिय हो द्वादशी के दिन अगस्त्य वृक्ष के मूल के सन्निधान में बैठकर रामगीता का पाठ करता है, वह साक्षात् राम स्वरूप ही है और समस्त देवगण उसकी पूजा करते हैं ॥५७॥ नित्य प्रति रामगीता का पाठ करने वाला मनुष्य दान, ध्यान एवं तीर्थस्नान के बिना ही अक्षय फल प्राप्त करता है ॥५८॥

हे नारद ! रामगीता के माहात्म्य के विषय में बहुत अधिक क्या कहें, यथार्थ यही है कि श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण आदि सैकड़ों ग्रन्थ अध्यात्म-रामायण के एक तुच्छ कला की बराबरी नहीं कर सकते ॥५९॥ अध्यात्मरामायण के इस माहात्म्य को स्वयं श्रीब्रह्मा जी ने अपने श्रीमुख से देवर्षि नारद को बताया है। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक इस अध्यात्म-रामायण को पढ़ता या सुनता है वह देवताओं से पूजित होकर श्रीविष्णु भगवान् के लोक को प्राप्त करता है ॥ ६० ॥

इस प्रकार आचार्य पण्डित श्रीशिवदत्त मिश्र शास्त्रीकृत 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या में ब्रह्माण्डपुराण के उत्तरखण्ड में अध्यात्मरामायण का माहात्म्य समाप्त ।

०

# अध्यात्मरामायणम्

## 'रामप्रिया'-हिन्दीव्याख्या-सहितम्

## बालकाण्डम्

*

### १. प्रथमः सर्गः

( रामहृदयम् )

यः पृथिवीभरवारणाय दिविजैः संप्रार्थितश्चिन्मयः
संजातः पृथिवीतले रविकुले मायामनुष्योऽव्ययः ।
निश्चक्रं हतराक्षसः पुनरगाद् ब्रह्मत्वमाद्यं स्थिरां
कीर्तिं पापहरां विधाय जगतां तं जानकीशं भजे ॥ १ ॥
विश्वोद्भव-स्थिति-लयादिषु हेतुमेकं मायाश्रयं विगतमायमचिन्त्यमूर्तिम्
आनन्दसान्द्रममलं निजबोधरूपं सीतापतिं विदिततत्त्वमहं नमामि॥२॥
पठन्ति ये नित्यमनन्यचेतसः शृण्वन्ति चाऽध्यात्मिकसंज्ञितं शुभम् ।
रामायणं सर्वपुराणसम्मतं निर्धूतपापा हरिमेव यान्ति ते ॥३॥
अध्यात्मरामायणमेव नित्यं पठेद्यदीच्छेद् भवबन्धमुक्तिम् ।
गवां सहस्रायुतकोटिदानात् फलं लभेद्यः शृणुयात् स नित्यम् ॥४॥

---

रामहृदय—देवताओं की प्रार्थना से पृथ्वी का भार उतारने के लिए जिन अविनाशी चिन्मय प्रभु ने अवतार लेकर राक्षस-समूहों का वध किया। तथा जो संसार में अपनी पाप-विनाशिनी अविचल कीर्ति स्थापित कर अपने ब्रह्मस्वरूप में लीन हो गये, उन जानकीनाथ का मैं भजन करता हूँ ॥१॥ जो विश्व की उत्पत्ति, पालन तथा संहार के एक मात्र कारण हैं, माया के आश्रय होकर भी स्वयं माया से रहित हैं, उन अचिन्त्य स्वरूप, आनन्दघन, निर्मल तथा ज्ञानस्वरूप तत्त्ववेत्ता श्री रामचन्द्र जी को नमस्कार करता हूँ ॥२॥ जो लोग सर्व पुराण सम्मत, कल्याणकारी इस अध्यात्मरामायण का एकाग्रचित्त से पाठ करते हैं अथवा सुनते हैं उनका पाप नष्ट हो जाता है और वे श्री भगवान् हरि को प्राप्त करते हैं ॥३॥

संसार से मुक्ति की इच्छा करनेवाले पुरुष को अध्यात्मरामायण का पाठ नित्य नियमपूर्वक करना चाहिए, तथा जो मनुष्य लाखों, करोड़ों गोदान का फल प्राप्त करना चाहता है, उसे नित्य अध्यात्मरामायण का श्रवण

पुरारिगिरिसम्भूता श्रीरामार्णवसङ्गता ।
अध्यात्मरामगङ्गेयं पुनाति भुवनत्रयम् ॥ ५ ॥
कैलासाग्रे कदाचिद् रविशतविमले मन्दिरे रत्नपीठे
संविष्टं ध्याननिष्ठं त्रिनयनमभयं सेवितं सिद्धसङ्घैः ।
देवी वामाङ्कसंस्था गिरिवरतनया पार्वती भक्तिनम्रा
प्राहेदं देवमीशं सकलमलहरं वाक्यमानन्दकन्दम् ॥ ६ ॥

पार्वत्युवाच

नमोऽस्तु ते देव जगन्निवास सर्वात्मदृक् त्वं परमेश्वरोऽसि ।
पृच्छामि तत्त्वं पुरुषोत्तमस्य सनातनं त्वं च सनातनोऽसि ॥ ७ ॥
गोप्यं यदत्यन्तमनन्यवाच्यं वदन्ति भक्तेषु महानुभावाः ।
तदप्यहोऽहं तव देव भक्ता प्रियोऽसि मे त्वं वद यत्तु पृष्टम् ॥ ८ ॥
ज्ञानं सविज्ञानमथानुभक्ति-वैराग्ययुक्तं च मितं विभास्वत ।
जानाम्यहं योषिदपि त्वदुक्तं यथा तथा ब्रूहि तरन्ति येन ॥ ९ ॥

करना चाहिए ॥४॥ यह अध्यात्मरामायण रूपी गङ्गा श्री शङ्कर रूप पर्वत से निकलकर रामरूपी समुद्र में मिलती है, जो त्रिलोकी को सदैव पवित्र कर रही है। किसी समय कैलाश शिखर के ऊपरी भाग पर विराजमान, सैकड़ों सूर्य के समान देदीप्यमान भवन में रत्न सिंहासन पर देवाधिदेव भगवान् शंकर ध्यान-मुद्रा में बैठे हुए थे, सिद्ध-समूह उनकी सेवा कर रहे थे ॥५॥ उन सर्व पापहारी, नित्य निर्भय भगवान् भोलानाथ के वामाङ्ग में विराजमान भगवती पार्वती ने विनम्र होकर भक्ति-भाव से इस प्रकार पूछा ॥६॥

पार्वती ने कहा—हे जगन्निवास ! हे देव ! आप प्राणी मात्र के अन्तःकरण के साक्षी एवं परमेश्वर हैं, मैं आप को प्रणाम करती हूँ। मैं आप से पुरुषोत्तम के सनातन तत्त्व को पूछना चाहती हूँ। क्योंकि आप भी स्वयं सनातन हैं ॥७॥ महानुभाव लोग उस परम गोपनीय विषय को भी, जो दूसरे से कहने योग्य नहीं होता, अपने भक्तों से प्रगटरूप में कह देते हैं। हे नाथ ! मैं आप की भक्त एवं अर्द्धाङ्गिनी होने से आप की ही हूँ, अतः मैं जो कुछ पूछ रही हूँ उसको आप बताइए ॥८॥ हे नाथ ! मनुष्य जिस ज्ञान से संसाररूपी समुद्र से पार हो जाते हैं, वैराग्य एवं भक्ति से युक्त ब्रह्मतत्त्व का साक्षात्कार कराने वाले प्रकाश स्वरूप उस आत्मज्ञान का वर्णन थोड़े ही शब्दों में इस प्रकार कीजिए जिससे मैं स्त्री होकर भी आप के वचनों

पृच्छामि चाऽन्यच्च परं रहस्यं तदेव चाग्रे वद वारिजाक्ष ।
श्रीरामचन्द्रेऽखिल-लोकसारे भक्तिर्दृढा नौर्भवति प्रसिद्धा ॥१०॥
भक्तिः प्रसिद्धा भवमोक्षणाय नाऽन्यत्ततः साधनमस्ति किञ्चित् ।
तथाऽपि हृत्संशयबन्धनं मे विभेत्तुमर्हस्यमलोक्तिभिस्त्वम् ॥११॥
वदन्ति रामं परमेकमाद्यं निरस्त-मायागुण-सम्प्रवाहम् ।
भजन्ति चाहर्निशमप्रमत्ताः परं पदं यान्ति तथैव सिद्धाः ॥१२॥
वदन्ति केचित् परमोऽपि रामः स्वाविद्यया संवृतमात्मसंज्ञम् ।
जानाति नात्मानमतः परेण सम्बोधितो वेद परात्मतत्त्वम् ॥१३॥
यदि स्म जानाति कुतो विलापः सीताकृतेऽनेन कृतःपरेण ।
जानाति नैवं यदि केन सेव्यः समो हि सर्वैरपि जीवजातैः ॥१४॥
अत्रोत्तरं किं विदितं भवद्भिस्तद् ब्रूत मे संशयभेदि वाक्यम् ॥१५॥

को स्वाभाविक रूप से समझ सकूँ ।।९।। हे कमलनयन ! इसके अतिरिक्त मैं एक और गुप्त रहस्य आप से पूछ रही हूँ, सर्व-प्रथम उसे ही आप मुझे बतावें । यह तो सभी लोग जानते हैं कि संसार रूप समुद्र का सन्तरण करने के लिये समस्त तत्त्वों के सारभूत भगवान् श्री रामचन्द्र जी की भक्ति ही एकमात्र दृढ नौका है ।।१०।।

संसार-सागर से मुक्त होने के लिये भक्ति ही सर्वोत्तम साधन है । उससे श्रेष्ठ और कोई भी साधन नहीं है, तथापि आप अपने पवित्र वचनों से मेरे हृदय की संशय रूपी ग्रन्थि को नष्ट कीजिए ।।११।। सिद्ध लोग श्रीराम को अद्वितीय, सबके आदिकारण और माया के गुण-प्रवाह से सर्वथा पृथक् बताते हैं, अतः वे प्रमाद रहित हो उनका अहर्निश भजन करते हुए परम पद को प्राप्त करते हैं ।।१२।। परन्तु कोई-कोई राम को परब्रह्म मानते हुए भी अवतार दशा में माया से आवृत हो जाने के कारण उन्हें आत्मज्ञान से रहित बताते हैं । इसीलिये वसिष्ठादि के उपदेश करने पर उनको आत्म-ज्ञान हुआ ऐसा मानते हैं ।।१३।। अतः मुझे भी सन्देह हो रहा है कि यदि वे आत्मज्ञानी थे, तो उन परमात्मा ने सीता के लिये इतना विलाप क्यों किया ? ऐसा करने से तो यही जान पड़ता है कि वे आत्मज्ञान से रहित सामान्य मनुष्यों के समान ही थे, पुनः उनका भजन क्यों किया जाना चाहिए ।।१४।। इस विषय में आप ने क्या उत्तर सोचा है ? मेरे इस संशय को दूर करने के लिए मुझे आप उपदेश करें ।।१५।।

श्रीमहादेव उवाच

धन्याऽसि भक्ताऽसि परात्मनस्त्वं यज्ज्ञातुमिच्छा तव रामतत्त्वम् ।
पुरा न केनाप्यभिचोदितोऽहं वक्तुं रहस्यं परमं निगूढम् ॥१६॥
त्वयाऽद्य भक्त्या परिनोदितोऽहं वक्ष्ये नमस्कृत्य रघूत्तमं ते ।
रामः परात्मा प्रकृतेरनादिरानन्द एकः पुरुषोत्तमो हि ॥१७॥
स्वमायया कृत्स्नमिदं हि सृष्ट्वा नभोवदन्तर्बहिरास्थितो यः ।
सर्वान्तरस्थोऽपि निगूढ आत्मा स्वमायया सृष्टमिदं विचष्टे ॥१८॥
जगन्ति नित्यं परितो भ्रमन्ति यत्सन्निधौ चुम्बकलोहवद्धि ।
एतन्न जानन्ति विमूढचित्ताः स्वाविद्यया संवृतमानसा ये ॥१९॥
स्वाज्ञानमप्यात्मनि शुद्धबुद्धे स्वारोपयन्तीह निरस्तमाये ।
संसारमेवानुसरन्ति ते वै पुत्रादिसक्ताः पुरुकर्मयुक्ताः ॥२०॥

---

तब श्री महादेव जी ने कहा–हे देवि ! तुम धन्य हो, परमात्मा की परम भक्त हो क्योंकि तुम्हारे मन में रामतत्त्व जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई है। आज तक इस निगूढ तत्त्व को कहने के लिए किसी ने मुझसे ऐसा प्रश्न नहीं किया था ॥१६॥ इसलिए मैं श्रीराम की वन्दना कर तुम्हारे इस निगूढ प्रश्न का उत्तर दे रहा हूँ। श्रीरामचन्द्र जी निःसन्देह प्रकृति से परे परमात्मा हैं, अनादि हैं तथा आनन्दघन अद्वितीय पुरुषोत्तम हैं ॥१७॥ वे परमात्मा श्रीरामचन्द्र जी अपनी माया से समस्त संसार की सृष्टि कर आकाश के समान भीतर और बाहर व्याप्त हैं तथा सबके अन्तःकरण में आत्मस्वरूप से संस्थित होकर इस सृष्टि का संचालन करते हैं ॥१८॥ चुम्बक के सन्निधान से जिस प्रकार जड़ लोहे में गति उत्पन्न होती है उसी प्रकार परमात्मा श्रीराम के सन्निधान मात्र से सृष्टि चक्र घूमता रहता है। मूढ लोगों का मन अविद्या से सदा ढँका रहता है अतः वे लोग उस परमात्मा राम को नहीं जान सकते ॥१९॥ इतना ही नहीं, वे अज्ञानी पुरुष माया से रहित शुद्ध-बुद्ध उस राम रूप परमात्मा में अपना अज्ञान भी आरोपित करते हैं और अपने समान उन्हें भी अज्ञानी मानते हैं, देह, गेह, पुत्रादि में आसक्त इस प्रकार के अज्ञानी प्राणी संसार चक्र में कर्म के बन्धनों में फँस कर उसी में भटकते रहते है ॥२०॥

जानन्ति नैवं हृदये स्थितं वै चामीकरं कण्ठगतं यथाज्ञाः ।
यथाप्रकाशो न तु विद्यते रवौ ज्योतिःस्वभावे परमेश्वरे तथा ।
विशुद्धविज्ञानघने रघूत्तमेऽविद्या कथं स्यात् परतः परात्मनि ॥२१॥

यथा हि चाऽक्ष्णा भ्रमता गृहादिकं विनष्टदृष्टेर्भ्रमतीव दृश्यते ।
तथैव देहेन्द्रियकर्तुरात्मनः कृते परेऽध्यस्य जनो विमुह्यति ॥२२॥

नाहो न रात्रिः सवितुर्यथा भवेत् प्रकाशरूपाव्यभिचारतः क्वचित् ।
ज्ञानं तथाऽज्ञानमिदं द्वयं हरौ रामे कथं स्थास्यति शुद्धचिद्घने ॥२३॥

तस्मात् परानन्दमये रघूत्तमे विज्ञानरूपे हि न विद्यते तमः ।
अज्ञानसाक्षिण्यरविन्दलोचने मायाश्रयत्वान्न हि मोहकारणम् ॥२४॥

अत्र ते कथयिष्यामि रहस्यमपि दुर्लभम् ।
सीता - राम - मरुत्सूनु - संवादं मोक्षसाधनम् ॥२५॥

---

ऐसे अज्ञजन अपने कण्ठ मे पड़े हुए सुवर्णमय हार को न जानने के समान हृदयस्थित रामरूप परमात्मा को भी नहीं जानते, इसीलिए उनमें अपने अज्ञान का आरोप करते हैं। जिस प्रकार सूर्य में तम का सर्वथा अभाव है उसी प्रकार प्रकृति से अतीत विशुद्ध विज्ञानघन, ज्योतिस्वरूप उन परमात्मा परमेश्वर श्रीराम में भी अविद्या टिक नहीं सकती ॥२१॥ जिस प्रकार चक्कर लगाते समय मनुष्यों को नेत्रों के घूमने से भ्रम वश, गृह आदि भी घूमते हुए प्रतीत होते है, उसी प्रकार लोग भी अपने देह एवं इन्द्रियों के कर्त्तापन का अभिमान विशुद्ध आतमा में आरोपित कर मोहित होते रहते हैं ॥२२॥ जिस प्रकार सदैव प्रकाशित होने के कारण सूर्य में रात-दिन का कोई भेद उत्पन्न नहीं होता, उसी प्रकार शुद्ध चेतनघन राम रूप परमातमा में ज्ञान तथा अज्ञान का व्यवहार सर्वथा असम्भव है ॥२३॥

अतएव विज्ञानस्वरूप आनन्दमय शुद्ध चिद्घन रघूत्तम परमातमा में अज्ञान का लेशमात्र भी नहीं रह सकता। वे कमल नयन अज्ञान के साक्षी होते हुए भी उससे सर्वथा निर्लिप्त हैं, माया उनके आश्रित है, वह उन्हें कभी मोहित नहीं कर सकती ॥२४॥ हे पार्वति ! इस विषय में मैं तुम्हें राम, सीता एवं हनुमान् के संवाद को सुनाता हूँ, जो मोक्ष का साधन है तथा अत्यन्त गोपनीय होने से लोगों के लिए सर्वथा दुर्लभ है ॥२५॥

पुरा रामायणे रामो रावणं देवकण्टकम् ।
हत्वा रणे रणश्लाघी सपुत्रबलवाहनम् ॥२६॥
सीतया सह सुग्रीव-लक्ष्मणाभ्यां समन्वितः ।
अयोध्यामगमद्रामो हनूमत्प्रमुखैर्वृतः ॥२७॥
अभिषिक्तः परिवृतो वसिष्ठाद्यैर्महात्मभिः ।
सिंहासने समासीनः कोटिसूर्यसमप्रभः ॥२८॥
दृष्ट्वा तदा हनूमन्तं प्राञ्जलिं पुरतः स्थितम् ।
कृतकार्यं निराकाङ्क्षं ज्ञानापेक्षं महामतिम् ॥२९॥
रामः सीतामुवाचेदं ब्रूहि तत्त्वं हनूमते ।
निष्कल्मषोऽयं ज्ञानस्य पात्रं नो नित्यभक्तिमान् ॥३०॥
तथेति जानकी प्राह तत्त्वं रामस्य निश्चितम् ।
हनूमते प्रपन्नाय सीता लोकविमोहिनी ॥३१॥
रामं विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम् ।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रमगोचरम् ॥३२॥

---

पूर्वकाल में रामावतार के समय युद्धप्रिय श्रीरामचन्द्र जी देवकण्टक रावण को पुत्र, सेना एवं वाहनों के सहित युद्ध में मारकर सुग्रीव एवं लक्ष्मण तथा सीता के साथ हनुमान् आदि प्रमुख वानरों से घिरे हुए अयोध्यापुरी में लौट आये ॥२६-२७॥ राज्याभिषेक होने पर वसिष्ठ आदि महर्षियों से घिरे हुए, करोड़ों सूर्य के समान देदीप्यमान श्रीरामचन्द्र जी सिंहासन पर समासीन हुए ॥२८॥ उस समय सेवा-कार्य से निवृत्त, निःस्पृह परम बुद्धिमान् श्री हनुमान् जी को तत्त्व-जिज्ञासा की दृष्टि से अपने आगे हाथ जोड़े हुए खड़े देखकर श्रीराम ने सीता से कहा—हे सीते ! यह हनुमान् सर्वथा निष्पाप है और हम दोनों में नित्य भक्ति रखता है, ज्ञान का पात्र भी है इसलिए इसे तत्त्व का उपदेश करो ॥२९-३०॥ उस समय 'बहुत अच्छा' कहती हुई लोक-मोहनी श्री जानकी शरणागत हनुमान् को भगवान् श्रीराम का निश्चित तत्त्व बताने लगीं ॥३१॥

श्री सीताजी ने हनुमान् से कहा—हे पुत्र ! तुम श्रीराम को सच्चिदा-

आनन्दं निर्मलं शान्तं निर्विकारं निरञ्जनम् ।
सर्वव्यापिनमात्मानं स्वप्रकाशमकल्मषम् ॥३३॥
मां विद्धि मूलप्रकृतिं सर्गस्थित्यन्तकारिणीम् ।
तस्य सन्निधिमात्रेण सृजामीदमतन्द्रिता ॥३४॥
तत्सान्निध्यान्मया सृष्टं तस्मिन्नारोप्यतेऽबुधैः ।
अयोध्यानगरे जन्म रघुवंशेऽतिनिर्मले ॥३५॥
विश्वामित्रसहायत्वं मखसंरक्षणं ततः ।
अहल्याशापशमनं चापभङ्गो महेशितुः ॥३६॥
मत्पाणिग्रहणं पश्चाद् भार्गवस्य मदक्षयः ।
अयोध्यानगरे वासो मया द्वादशवार्षिकः ॥३७॥
दण्डकारण्यगमनं विराधवध एव च ।
मायामारीचमरणं मायासीताहृतिस्तथा ॥३८॥
जटायुषो मोक्षलाभः कबन्धस्य तथैव च ।
शबर्याः पूजनं पश्चात् सुग्रीवेण समागमः ॥३९॥

---

नन्द, अद्वय, सभी उपाधियों से रहित सत्तामात्र, इन्द्रिय एवं मन से अगोचर, आनन्दघन, निर्मल, शान्त, निर्विकार, माया से रहित, सर्वव्यापक, स्वयं-प्रकाश तथा निष्पाप परमात्मा समझो ॥३२-३३॥ और मुझे जगत् की उत्पत्ति, पालन एवं संहार करने वाली मूलप्रकृति समझो। इनकी सन्निधि मात्र से मैं सदैव बड़ी सावधानी से इस जगत् की सृष्टि किया करती हूँ ॥३४॥ अज्ञ लोग इनकी सन्निधि मात्र से की गयी इस विश्व की सृष्टि को इनमें कर्तृत्वादि का आरोप करते हैं। अयोध्यापुरी में अत्यन्त पावन रघु-कुल में इनका जन्म ग्रहण करना, विश्वामित्र की सहायता तथा उनके यज्ञ का संरक्षण, अहल्या को शापमुक्त करना, श्रीमहादेवजी के धनुष को तोड़ना, पश्चात् मेरा पाणिग्रहण कर परशुराम का गर्व खण्डन करना, मेरे साथ विवाह के बाद बारह वर्ष पर्यन्त अयोध्या में निवास, तदनन्तर दण्डकारण्य में प्रवेश, वहाँ विराध वध करना, मृग रूपधारी मारीच का वध करना, मायामयी सीता का हरण होना, जटायु एवं कबन्ध को मुक्ति प्रदान करना, शबरी द्वारा सत्कार प्राप्त करना, सुग्रीव से मित्रता का होना, बाली का

वालिनश्च वधः पश्चात् सीतान्वेषणमेव च ।
सेतुबन्धश्च जलधौ लङ्कायाश्च निरोधनम् ॥४०॥
रावणस्य वधो युद्धे सपुत्रस्य दुरात्मनः ।
विभीषणे राज्यदानं पुष्पकेण मया सह ॥४१॥
अयोध्यागमनं पश्चाद्राज्ये रामाभिषेचनम् ।
एवमादीनि कर्माणि मयैवाचरितान्यपि ।
आरोपयन्ति रामेऽस्मिन् निर्विकारेऽखिलात्मनि ॥४२॥
रामो न गच्छति न तिष्ठति नानुशोच-
त्याकाङ्क्षते त्यजति नो न करोति किञ्चित् ।
आनन्दमूर्तिरचलः परिणामहीनो
मायागुणाननुगतो हि तथा विभाति ॥४३॥
ततो रामः स्वयं प्राह हनूमन्तमुपस्थितम् ।
शृणु तत्त्वं प्रवक्ष्यामि ह्यात्मानात्मपरात्मनाम् ॥४४॥
आकाशस्य यथा भेदस्त्रिविधो दृश्यते महान् ।

---

वध करना, श्री सीता का अन्वेषण करना, समुद्र पर पुल बाँधकर लङ्कापुरी को घेरना, पुत्र सहित दुरात्मा रावण का वध करना, विभीषण को लङ्का का राज्य देना, पुष्पक विमान द्वारा मेरे साथ अयोध्या में लौटना तथा राज्यपद पर श्रीराम का समासीन होना आदि समस्त कार्य मेरे द्वारा ही किया गया है फिर भी अज्ञान के कारण लोग इन कार्यों को निर्विकार परमात्मा में आरोपित करते हैं ॥३५-४२॥

वस्तुतः श्रीराम तो परब्रह्म ही हैं, वे न चलते हैं, न खड़े रहते हैं, न सोचते हैं, न इच्छा करते हैं, न त्याग करते हैं और न कोई शरीरेन्द्रिय चेष्टा करते हैं। वे सर्वथा आनन्द स्वरूप, अविचल और परिणाम (विकार) रहित हैं, किन्तु माया के गुणों से अनुगत (व्याप्त) होने के कारण वैसे ही प्रतीत होते हैं ॥४३॥

तदनन्तर श्रीरामचन्द्र जी ने सम्मुख खड़े हुए हनुमान् जी से स्वयं कहा—हनुमान् ! मैं तुम्हें आत्मा, अनात्मा तथा परमात्मा का तत्त्व समझाता हूँ, सावधानी से सुनो ॥४४॥ जिस प्रकार जलाशय में आकाश के तीन भेद स्पष्ट रूप से ज्ञात होते हैं, प्रथम महाकाश, जलावच्छिन्न आकाश और

जलाशये महाकाशस्तदवच्छिन्न एव हि।
प्रतिबिम्बाख्यमपरं दृश्यते त्रिविधं नभः ॥४५॥
बुद्ध्यवच्छिन्नचैतन्यमेकं पूर्णमथापरम्।
आभासस्त्वपरं बिम्बभूतमेवं त्रिधा चितिः ॥४६॥
साभासबुद्धेः कर्तृत्वमविच्छिन्नेऽविकारिणि।
साक्षिण्यारोप्यते भ्रान्त्या जीवत्वं च तथा बुधैः ॥४७॥
आभासस्तु मृषा बुद्धिरविद्याकार्यमुच्यते।
अविच्छिन्नं तु तद्ब्रह्म विच्छेदस्तु विकल्पतः ॥४८॥
अविच्छिन्नस्य पूर्णेन एकत्वं प्रतिपाद्यते।
तत्त्वमस्यादिवाक्यैश्च साभासस्याहमस्तथा ॥४९॥
ऐक्यज्ञानं यदोत्पन्नं महावाक्येन चात्मनोः।
तदाविद्या स्वकार्यैश्च नश्यत्येव न संशयः ॥५०॥

---

तीसरा प्रतिबिम्बाकाश, अतः जिस प्रकार आकाश के महान् तीन भेद दिखाई पड़ते हैं ॥४५॥ उसी प्रकार चेतन आत्मा भी तीन प्रकार का है; पहला बुद्ध्यावच्छिन्न चेतन, दूसरा सर्वत्र परिपूर्ण रूप से व्याप्त है एवं तीसरा वह जो बुद्धि में प्रतिबिम्बित होकर भासता है, जो आभास चेतन नाम से प्रसिद्ध है ॥४६॥ चिदाभास सहित बुद्धि में ही कर्त्तृत्व है किन्तु अज्ञजन भ्रान्तिवश निरवच्छिन्न अव्यय और सर्वद्रष्टा परम चेतन में ही कर्त्तृत्व और जीवत्व का आरोप करते हैं और उसे ही कर्त्ता, भोक्ता आदि मानते हैं ॥४७॥ आभास चेतन तो मिथ्या है और बुद्धि अविद्या का कार्य है, परब्रह्म परमात्मा वस्तुतः विच्छेद से रहित है, अतः उसकी परिच्छिन्नता भी वैकल्पिक है ॥४८॥ साभास अहं रूप अविच्छिन्न चेतन की 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों के द्वारा पूर्णचेतन के साथ एकता बतलायी जाती है ॥४९॥

जब महावाक्य के द्वारा जीवात्मा एवं परमात्मा की एकता का बोध हो जाता है, उस समय अविद्या समूल अपने कार्यों के साथ नष्ट हो जाती है, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥५०॥ मेरा भक्त ऐसा समझ कर मुझे प्राप्त

एतद् विज्ञाय मद्भक्तो मद्भावायोपपद्यते ।
मद्भक्तिविमुखानां हि शास्त्रगर्तेषु मुह्यताम् ।
न ज्ञानं न च मोक्षः स्यात्तेषां जन्मशतैरपि ॥५१॥

इदं रहस्यं हृदयं ममात्मनो
मयैव साक्षात् कथितं तवानघ ! ।
मद्भक्तिहीनाय शठाय न त्वया
दातव्यमैन्द्रादपि राज्यतोऽधिकम् ॥५२॥

श्रीमहादेव उवाच

एतत्तेऽभिहितं देवि श्रीरामहृदयं मया ।
अतिगुह्यतमं हृद्यं पवित्रं पापशोधनम् ॥५३॥
साक्षाद्रामेण कथितं सर्ववेदान्तसंग्रहम् ।
यः पठेत् सततं भक्त्या स मुक्तो नाऽत्र संशयः ॥५४॥
ब्रह्महत्यादि-पापानि बहुजन्मार्जितान्यपि ।
नश्यन्त्येव न सन्देहो रामस्य वचनं यथा ॥५५॥

---

पूर्ण अधिकारी हो जाता है किन्तु मेरी भक्ति को छोड़कर जो लोग शास्त्र-रूपी गड्ढे में पड़े-पड़े भटकते रहते हैं, उन्हें सैकड़ों जन्म-पर्यन्त न तो ज्ञान हो पाता है और न वे मोक्ष ही प्राप्त कर सकते हैं ॥५१॥

हे परम निष्पाप हनुमान् जी ! यह परम रहस्य आत्मस्वरूप मुझ राम का हृदय है । इस रहस्य का उपदेश मैंने स्वयं तुम्हारे लिये किया है । यदि इन्द्र के राज्य से भी अधिक सम्पत्ति तुम्हें प्राप्त हो, तो भी तुम इस रहस्य को मेरी भक्ति से विहीन दुष्ट पुरुष को कदापि मत बताना ॥ ५२ ॥

इसके अनन्तर, श्री महादेव जी ने कहा—हे पार्वती ! मैंने तुम्हें परम गोपनीय, मनोहर, अत्यन्त पवित्र, पापनाशक 'श्रीराम-हृदय' रहस्य का आख्यान किया ॥ ५३ ॥ यह सम्पूर्ण वेदान्तों का संग्रह है और श्री रामचन्द्रजी के द्वारा स्वयं कहा गया है । इस रामहृदय का नित्य भक्ति पूर्वक पाठ करनेवाला मनुष्य मुक्ति को प्राप्त कर लेता है, इसमें सन्देह नहीं ॥५४॥ अनेक जन्म के सञ्चित ब्रह्म हत्यादि जैसे महान् पाप इसके पठन मात्र से निःसन्देह नष्ट हो जाते हैं । श्री राम का वचन ही इसमें प्रमाण है ॥५५॥

योऽतिभ्रष्टोऽतिपापी परधनपरदारेषु नित्योद्यतो वा
स्तेयी ब्रह्मघ्न-माता-पितृवध-निरतो योगिवृन्दापकारी।
यः सम्पूज्याभिरामं पठति च हृदयं रामचन्द्रस्य भक्त्या
योगीन्द्रैरप्यलभ्यं पदमिह लभते सर्वदेवैः स पूज्यम् ॥५६॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे बालकाण्डे
श्रीरामहृदयं नाम प्रथमः सर्गः ॥१॥

---

जो कोई अत्यन्त भ्रष्ट, महापापी, परायी सम्पत्ति एवं परायी स्त्रियों में सदा प्रवृत्त रहने वाला, चोर, ब्रह्मघ्न, माता एवं पिता का हत्यारा, योगिजनों को उपद्रुत करने वाला मनुष्य भी श्री रामचन्द्र जी का पूजन कर भक्ति से इस रामहृदय का पाठ करे तो वह समस्त देवताओं से वन्दनीय उस परमपद को प्राप्त करता है, जो बड़े-बड़े योगिराजों के लिये भी दुर्लभ है ॥ ५६ ॥

इस प्रकार 'राम-प्रिया' हिन्दी व्याख्या सहित अध्यात्मरामायण के उमा-महेश्वर संवाद में बालकाण्ड का श्रीरामहृदय नामक प्रथम सर्ग समाप्त ॥ १ ॥

*

## २. द्वितीयः सर्गः

( भारपीडित पृथ्वी का ब्रह्मादि देवताओं के समीप जाना और भगवान् के द्वारा प्रकट होकर पृथ्वी को धैर्य बँधाना )

पार्वत्युवाच

धन्यास्म्यनुगृहीताऽस्मि कृतार्थाऽस्मि जगत्प्रभो ! ।
विच्छिन्नो मेऽतिसन्देह-ग्रन्थिर्भवदनुग्रहात् ॥१॥
त्वन्मुखाद् गलितं रामतत्त्वामृतरसायनम् ।
पिबन्त्या मे मनो देव न तृप्यति भवापहम् ॥२॥

---

पार्वती ने कहा—हे जगत्स्वामिन् ! आप के अनुग्रह से मैं धन्य और कृतकृत्य हो गयी । इतना ही नहीं, इस अनुग्रह से मेरे सन्देह की गाँठ भी टूट गयी ॥ १ ॥ हे देव ! आप के मुख से निकले हुए संसार के भय को दूर करने वाले इस रामतत्त्वरूपी अमृतमय रसायन का पान करते हुए मेरा

श्रीरामस्य कथा त्वत्तः श्रुता संक्षेपतो मया ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण स्फुटाक्षरम् ॥३॥

श्रीमहादेव उवाच

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि गुह्याद् गुह्यतरं महत् ।
अध्यात्मरामचरितं रामेणोक्तं पुरा मम ॥४॥
तदद्य कथयिष्यामि शृणु तापत्रयापहम् ।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुरज्ञानोत्थमहाभयात् ।
प्राप्नोति परमामृद्धिं दीर्घायुः पुत्रसन्ततिम् ॥५॥

भूमिर्भारेण मग्ना दशवदनमुखाशेष-रक्षोगणानां
धृत्वा गोरूपमादौ दिविजमुनिजनैः साकमब्जासनस्य ।
गत्वा लोकं रुदन्ती व्यसनमुपगतं ब्रह्मणे प्राह सर्वं
ब्रह्मा ध्यात्वा मुहूर्तं सकलमपि हृदावेदशेषात्मकत्वात् ॥६॥

---

मन तृप्त नहीं हो रहा है ॥ २ ॥ मैंने आप के मुख से श्रीराम की कथा संक्षेप में सुनी थी। किन्तु अब उसे स्पष्ट शब्दों में विस्तार पूर्वक सुनना चाहती हूँ ॥ ३ ॥

श्री महादेव जी ने कहा—हे देवि ! मैं तुम्हें परमगोपनीय महान् अध्यात्मरामायण की कथा सुना रहा हूँ। जिसे श्री रामचन्द्रजी ने स्वयं मुझे सुनाया था ॥ ४ ॥ तीनों तापों को नष्ट करने वाले इस अध्यात्म-रामायण को मैं तुम्हें सुनाता हूँ। इसके सुनने मात्र से जीवों का अज्ञान-जन्य भय दूर हो जाता है और परम ऐश्वर्य, दीर्घायु तथा पुत्र-पौत्र आदि की सन्तान परम्परा प्राप्त होती है ॥ ५ ॥

एक बार रावण आदि समस्त राक्षसों के भार से पीड़ित पृथ्वी गौ का रूप धारण कर देवताओं और मुनिजनों के साथ ब्रह्मलोक को गयी। वहाँ पर जाकर उसने अपने पर पड़ा हुआ सारा दुःख ब्रह्मदेव से निवेदन किया। ब्रह्माजी ने मुहूर्त्त मात्र ध्यान मे अवस्थित हो सारा वृत्तान्त जान लिया क्योंकि वे सर्वज्ञ हैं ॥ ६ ॥

तस्मात् क्षीरसमुद्रतीरमगमद् ब्रह्माथ देवैर्वृतो
देव्या चाऽखिललोकहृत्स्थमजरं सर्वज्ञमीशं हरिम् ।
अस्तौषीच्छ्रुतिसिद्ध-निर्मल-पदैः स्तोत्रैः पुराणोद्भवै-
र्भक्त्या गद्गदया गिरातिविमलैरानन्दबाष्पैर्वृतः ॥७॥

ततः स्फुरत्सहस्रांशु-सहस्र-सदृशप्रभः
आविरासीद् हरिः प्राच्यां दिशां व्यपनयंस्तमः ॥८॥
कथंचिद् दृष्टवान् ब्रह्मा दुर्दर्शमकृतात्मनाम् ।
इन्द्रनीलप्रतीकाशं स्मितास्यं पद्मलोचनम् ॥९॥
किरीट-हार-केयूर-कुण्डलैः कटकादिभिः ।
विभ्राजमानं श्रीवत्स-कौस्तुभ-प्रभयान्वितम् ॥१०॥
स्तुवद्भिः सनकाद्यैश्च पार्षदैः परिवेष्टितम् ।
शङ्ख - चक्र - गदा - पद्म-वनमाला-विराजितम् ॥११॥
स्वर्णयज्ञोपवीतेन स्वर्णवर्णाम्बरेण च ।
श्रिया भूम्या च सहितं गरुडोपरि संस्थितम् ॥१२॥

---

तदनन्तर ब्रह्माजी देवताओं के सहित पृथ्वी को साथ लेकर ब्रह्मलोक से क्षीर सागर के तट पर गये। वहाँ उन्होंने सर्वान्तिर्यामी, जरा-मृत्यु रहित सर्वज्ञ भगवान् श्री हरि की श्रुत्युक्त निर्मल पदों से तथा पुराणों में कहे गये स्तोत्रों से भक्तियुक्त गद्-गद हो निर्मल वाणी के द्वारा स्तुति की ॥ ७ ॥

तदनन्तर देदीप्यमान सहस्रों सूर्यों के समान प्रभावाले भगवान् अपने तेज से दिशाओं के अन्धकार को दूर करते हुए पूर्व दिशा में प्रकट हो गये ॥८॥ पुण्य हीन पुरुषों के लिये सर्वथा दुर्दर्श भगवान् श्री हरि को ब्रह्मा जी ने भी किसी प्रकार देखा। भगवान् का दिव्य विग्रह इन्द्रनीलमणि के समान प्रकाशित हो रहा था। वे मन्द-मन्द हास करते थे, उनके नेत्र कमल के समान विशाल थे ॥ ९ ॥ किरीट, केयूर, हार, कुण्डल तथा कटक आदि आभूषणों से शोभा पा रहे थे एवं श्रीवत्स तथा कौस्तुभमणि की प्रभा से देदीप्यमान थे ॥ १० ॥

सनकादि पार्षद उन्हें चारों ओर से घेरकर स्तुति कर रहे थे एवं शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म एवं वनमाला से शोभा पा रहे थे ॥ ११ ॥ सुवर्ण निर्मित यज्ञोपवीत तथा सुवर्ण के समान चमकते हुए पीताम्बर से सुशोभित थे, तथा लक्ष्मी एवं भूमि के साथ गरुड़ पर विराजमान थे ॥ १२ ॥ इस प्रकार

हर्षगद्‌गदया वाचा स्तोतुं समुपचक्रमे ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

नतोऽस्मि ते पदं देव ! प्राण-बुद्धीन्द्रियात्मभिः ।
यच्चिन्त्यते कर्मपाशाद् हृदि नित्यं मुमुक्षुभिः ॥१४॥
मायया गुणमय्या त्वं सृजस्यवसि लुम्पसि ।
जगत्तेन न ते लेप आनन्दानुभवात्मनः ॥१५॥
तथा शुद्धिर्न दुष्टानां दानाध्ययनकर्मभिः ।
शुद्धात्मता ते यशसि सदा भक्तिमतां यथा ॥१६॥
अतस्तवाङ्घ्रिर्मे दृष्टश्चित्तदोषापनुत्तये ।
सद्योऽन्तर्हृदये नित्यं मुनिभिः सात्वतैर्वृतः ॥१७॥
ब्रह्माद्यैः स्वार्थसिद्धयर्थमस्माभिः पूर्वसेवितः ।
अपरोक्षानुभूत्यर्थं ज्ञानिभिर्हृदि भावितः ॥१८॥

---

उनकी दिव्य शोभा देखकर ब्रह्मा जी ने हर्ष से गद्‌गद हो उनकी स्तुति करने लगे ॥ १३ ॥

ब्रह्मा जी ने कहा—हे देव ! कर्म बन्धन से मुक्त होने के लिये मुमुक्षुजन, प्राण, बुद्धि, इन्द्रिय एवं मन को एकाग्र कर निरन्तर हृदय में आप का ध्यान करते हैं। उन आप के चरणारविन्दों को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १४ ॥ हे देव ! आप अपनी त्रिगुणात्मक माया से इस विश्व की सृष्टि, पालन तथा संहार करते हैं किन्तु कभी भी इसमें लिप्त नहीं होते । इस प्रकार आनन्दानुभव स्वरूप आप को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १५ ॥ हे देव ! मलिन अन्तःकरण वाले पुरुष दान, अध्ययन एवं सत्कर्म से उतने शुद्ध नहीं होते जितने आपके यश में अभिरुचि रखने वाले आप के भक्त शुद्ध रहते हैं ॥१६॥ भक्तों एवं मुनियों के द्वारा आप के जो चरण निरन्तर ध्यान में लाये जाते हैं ऐसे आपके चरण-कमलों का अपने हृदय के समस्त पापों का समूल नाश के लिये मैंने दर्शन किया ॥ १७ ॥

हे नाथ ! पूर्व काल में भी हम सभी ब्रह्मा आदि देवगणों ने अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिये आप के इन चरणों का ध्यान किया है, आप के ये चरण ज्ञानी लोग भी अपरोक्षानुभव के लिये सर्वदा अपने हृदय में ध्यान करते रहते हैं ॥ १८ ॥ हे विभो ! आप के वक्षःस्थल पर नित्य विराज-

तवाङ्घ्रिपूजा-निर्माल्य - तुलसीमालया विभो ।
स्पर्धते वक्षसि पदं लब्ध्वाऽपि श्रीः सपत्निवत् ॥१९॥
अतस्त्वत्पादभक्तेषु तव भक्तिः श्रियोऽधिका ।
भक्तिमेवाभिवाञ्छन्ति त्वद्भक्ताः सारवेदिनः ॥२०॥
अतस्त्वत्पादकमले भक्तिरेव सदाऽस्तु मे ।
संसारामयतप्तानां भेषजं भक्तिरेव ते ॥२१॥
इति ब्रुवन्तं ब्रह्माणं बभाषे भगवान् हरिः ।
किं करोमीति तं वेधाः प्रत्युवाचातिहर्षितः ॥२२॥
भगवन् रावणो नाम पौलस्त्यतनयो महान् ।
राक्षसानामधिपति - र्मद्दत्त - वरदर्पितः ॥२३॥
त्रिलोकीं लोकपालांश्च बाधते विश्वबाधकः ।
मानुषेण मृतिस्तस्य मया कल्याण-कल्पिता ।
अतस्त्वं मानुषो भूत्वा जहि देवरिपुं प्रभो ॥२४॥

---

मान महालक्ष्मी भी आपके चरणों में पूजा के लिये चढ़ी हुई तुलसी की माला को देख कर उनसे सौत के समान डाह करती हैं ॥ १९ ॥ इससे यह ज्ञात होता है कि आपके चरणों में अनुराग रखने वाले भक्तजनों में आपकी प्रीति लक्ष्मी से भी बढ़ कर है। अतः तत्त्वग्राही भक्तजन आपके चरणों में निरन्तर भक्ति की ही इच्छा किया करते हैं ॥ २० ॥ संसार-रोग से सन्तप्त रोगियों के लिये आपकी भक्ति ही एक मात्र औषध है, अतः हे देव ! मेरी भक्ति आप के चरण-कमलों में निरन्तर बनी रहे ॥ २१ ॥

इस प्रकार स्तुति करने पर श्री भगवान् ने ब्रह्मा से कहा–'हे ब्रह्मन् ! मैं तुम्हारा कौन-सा कार्य करूँ ?' तब ब्रह्माने हर्षित होकर उनसे कहा ॥२२॥ हे भगवन् ! पुलस्त्यपुत्र विश्रवा से उत्पन्न रावण नाम वाला राक्षस, राक्षसों का राजा है। वह इस समय मेरे द्वारा दिये गये वरदान के कारण उन्मत्त हो गया है ॥ २३ ॥ वह विश्वबाधक रावण तीनों लोकों तथा समस्त लोकपालों को निरन्तर पीड़ा दे रहा है। हे कल्याणमय ! मैंने उसकी मृत्यु मनुष्य के हाथ से होने के लिये लिख दी है। अतः हे प्रभो ! आप मनुष्य रूप में अवतार लेकर उस दुरात्मा देव-कण्टक का शीघ्र वध कीजिए ॥ २४ ॥

श्रीभगवानुवाच

कश्यपस्य वरो दत्तस्तपसा तोषितेन मे ॥२५॥
याचितः पुत्रभावाय तथेत्यङ्गीकृतं मया ।
स इदानीं दशरथो भूत्वा तिष्ठति भूतले ॥२६॥
तस्याहं पुत्रतामेत्य कौसल्यायां शुभे दिने ।
चतुर्धात्मानमेवाहं सृजामीतरयोः पृथक् ॥२७॥
योगमायापि सीतेति जनकस्य गृहे तदा ।
उत्पत्स्यते तया सार्धं सर्वं सम्पादयाम्यहम् ।
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे विष्णुर्ब्रह्मा देवानथाब्रवीत् ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

विष्णुर्मानुषरूपेण भविष्यति रघोः कुले ॥२९॥
यूयं सृजध्वं सर्वेऽपि वानरेष्वंशसम्भवान् ।
विष्णोः सहायं कुरुत यावत् स्थास्यति भूतले ॥३०॥
इति देवान् समादिश्य समाश्वास्य च मेदिनीम् ।
ययौ ब्रह्मा स्वभवनं विज्वरः सुखमास्थितः ॥३१॥

---

तब श्री भगवान् ने कहा—मैंने कश्यप की तपस्या से सन्तुष्ट होकर उनके पुत्र रूप में उत्पन्न होने के लिये वरदान की स्वीकृति दे रखी है। वे कश्यप इस समय भूतल पर दशरथ के रूप में अवतीर्ण हुए हैं ॥ २५-२६ ॥ मैं उन्हीं के यहाँ पुत्र रूप से चार अंशों में पृथक्-पृथक् होकर शुभ दिनों में कौसल्या तथा अन्य दो रानियाँ—कैकेयी एवं सुमित्रा के गर्भ से जन्म लूँगा ॥ २७ ॥ उस समय मेरी योगमाया भी जनक के घर में सीतारूप से उत्पन्न होगीं। उनको साथ लेकर मैं आप के समस्त मनोरथ को सिद्ध करूँगा। इतना कहने के अनन्तर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये। तब ब्रह्मा ने देवताओं से कहा—॥ २८ ॥

हे देवगण ! भगवान् विष्णु रघुकुल में मनुष्य रूप से अवतरित होंगे। तुम लोग भी अपने-अपने अंशों से भूतल पर पुत्र उत्पन्न करो। और अपने उन पुत्र रूप अंशों से भगवान् विष्णु को तबतक सहायता करो जबतक वे पृथ्वी तल पर निवास करें ॥ २९-३० ॥ इस प्रकार देवताओं को आज्ञा देकर और पृथ्वी को आश्वासन देकर ब्रह्मदेव अपने लोक को चले गये तथा स्वयं निश्चिन्त हो सुख पूर्वक वहाँ निवास करने लगे ॥ ३१ ॥

देवाश्च सर्वे हरिरूपधारिणः स्थिताः सहायार्थमितस्ततो हरेः ।
महाबलाः पर्वतवृक्षयोधिनः प्रतीक्षमाणा भगवन्तमीश्वरम् ॥३२॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वर-संवादे बालकाण्ड

द्वितीयः सर्गः ॥२॥

---

इधर समस्त देवगण भी श्री भगवान् की सहायता के लिये पर्वत तथा वृक्षों से लड़ाई करने वाले महाबलवान् वानरों का रूप धारण कर उनके अवतार की प्रतीक्षा करते हुए जहाँ-तहाँ निवास करने लगे ॥ ३२ ॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी-व्याख्या सहित श्रीअध्यात्मरामायण के उमा-महेश्वर संवाद में बालकाण्ड का द्वितीय सर्ग समाप्त ॥ २ ॥

*

## ३. तृतीयः सर्गः

### ( भगवान् के जन्म तथा बाललीला का चरित्र )

श्रीमहादेव उवाच

अथ राजा दशरथः श्रीमान् सत्यपरायणः ।
अयोध्याधिपतिर्वीरः सर्वलोकेषु विश्रुतः ॥१॥

सोऽनपत्यत्वदुःखेन पीडितो गुरुमेकदा ।
वसिष्ठं स्वकुलाचार्यमभिवाद्येदमब्रवीत् ॥२॥

स्वामिन् पुत्राः कथं मे स्युः सर्वलक्षणलक्षिताः ।
पुत्रहीनस्य मे राज्यं सर्वं दुःखाय कल्पते ॥३॥

---

श्रीमहादेवजी ने कहा—सम्पूर्ण लोकों में प्रसिद्ध सत्यपरायण श्री-सम्पन्न, महावीर दशरथ नाम के एक राजा अयोध्या नगरी के अधिपति थे ॥ १ ॥ एक बार वे पुत्र न होने के दुःख से दुःखी हो अपने गुरु एवं कुल के आचार्य श्री वसिष्ठ जी को प्रणाम कर इस प्रकार कहा ॥ २ ॥ हे स्वामिन् ! सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त पुत्र मुझे किस उपाय से होगा ? क्योंकि विना पुत्र के यह सम्पूर्ण राज्य मेरे दुःखका कारण बन रहा है ॥ ३ ॥

ततोऽब्रवीद् वसिष्ठस्तं भविष्यन्ति सुतास्तव ।
चत्वारः सत्त्वसम्पन्ना लोकपाला इवापराः ॥४॥
शान्ताभर्तारमानीय ऋष्यशृङ्गं तपोधनम् ।
अस्माभिः सहितः पुत्रकामेष्टिं शीघ्रमाचर ॥५॥
तथेति मुनिमानीय मन्त्रिभिः सहितः शुचिः ।
यज्ञकर्म समारेभे मुनिभिर्वीतकल्मषैः ॥६॥
श्रद्धया हूयमानेऽग्नौ तप्तजाम्बूनदप्रभः ।
पायसं स्वर्णपात्रस्थं गृहीत्वोवाच हव्यवाट् ॥७॥
गृहाण पायसं दिव्यं पुत्रीयं देवनिर्मितम् ।
लप्स्यसे परमात्मानं पुत्रत्वेन न संशयः ॥८॥
इत्युक्त्वा पायसं दत्त्वा राज्ञे सोऽन्तर्दधेऽनलः ।
ववन्दे मुनिशार्दूलौ राजा लब्धमनोरथः ॥९॥
वसिष्ठ-ऋष्यशृङ्गाभ्यामनुज्ञातो ददौ हविः ।
कौसल्यायै स-कैकेय्यै अर्धमर्धं प्रयत्नतः ॥१०॥

---

तब वसिष्ठ जी ने महाराज दशरथ से कहा—हे राजन् ! अत्यन्त पराक्रम-शाली, दूसरे लोकपालों के समान तुम्हारे चार पुत्र उत्पन्न होंगे ॥ ४ ॥ तुम शान्तापति परमतपस्वी श्रृङ्गीऋषि को बुलाकर हम लोगों को साथ लेकर शीघ्र ही महायज्ञ का अनुष्ठान करो ॥ ५ ॥ राजा ने 'तथास्तु' कह मुनि को बुलाकर मन्त्रियों के सहित पवित्र हो पुण्यशील मुनिगणों की सहायता से यज्ञानुष्ठान आरम्भ कर दिया ॥ ६ ॥ उस यज्ञानुष्ठान के समय अग्नि में श्रद्धापूर्वक आहुति देने से तप्त सुवर्ण के समान दीप्तिमान् भगवान् हव्यवाट्-अग्नि एक स्वर्णपात्र में पायस लेकर प्रगट हो गये और बोले—॥ ७ ॥ हे राजन् ! देव-निर्मित पुत्र प्रदान करने वाले इस पायस को ग्रहण करो। इससे तुम परमात्मा को पुत्र रूप में अवश्य प्राप्त करोगे ॥८॥

अग्निदेव ने ऐसा कहकर वह खीर राजा को प्रदान किया और स्वयं अन्तर्धान हो गये। अपना मनोरथ पूर्ण हुआ देख कर महाराज ने वसिष्ठ और ऋषि श्रृङ्गी के चरणों की वन्दना की ॥ ९ ॥ और उन दोनों की आज्ञा से बड़ी सावधानी के साथ वह हवि महारानी कौसल्या और कैकेयी

ततः सुमित्रा सम्प्राप्ता जगृध्नुः पौत्रिकं चरुम् ।
कौसल्या तु स्वभागार्धं ददौ तस्यै मुदान्विता ॥११॥
कैकेयी च स्वभागार्धं ददौ प्रीतिसमन्विता ।
उपभुज्य चरुं सर्वाः स्त्रियो गर्भसमन्विताः ॥१२॥
देवता इव रेजुस्ताः स्वभासा राजमन्दिरे ।
दशमे मासि कौसल्या सुषुवे पुत्रमद्भुतम् ॥१३॥
मधुमासे सिते पक्षे नवम्यां कर्कटे शुभे ।
पुनर्वस्वृक्षसहिते उच्चस्थे ग्रहपञ्चके ॥१४॥
मेषं पूषणि संप्राप्ते पुष्पवृष्टिसमाकुले ।
आविरासीज्जगन्नाथः परमात्मा सनातनः ॥१५॥
नीलोत्पलदलश्यामः पीतवासाश्चतुर्भुजः ।
जलजारुण - नेत्रान्तः - स्फुरत्कुण्डल-मण्डितः ॥१६॥

---

को आधी-आधी बाँट दी ॥ १० ॥ उसी समय पुत्रप्रद उस चरु को ग्रहण करने की इच्छा से सुमित्रा भी वहाँ पहुँच गयीं। कौसल्या ने अपने चरु का आधा भाग प्रसन्नता पूर्वक उन्हें दे दिया ॥ ११ ॥ इसी प्रकार कैकेयी भी प्रसन्नता से अपने चरु का आधा भाग सुमित्रा को दे दिया। तब उस चरु को भक्षण कर लेने के कारण राजा दशरथ की सभी रानियाँ गर्भवती हो गयीं ॥१२॥ वे रानियाँ अपने-अपने राज-भवनों में अपनी कान्ति से देवताओं के समान सुशोभित हो गयीं। फिर दसवें महीने में कौसल्या ने अत्यन्त अद्भुत बालक को उत्पन्न किया ॥ १३ ॥

चैत्र मास के शुक्लपक्ष की नवमी के दिन पुनर्वसु नक्षत्र में जब पाँच ग्रह अपने-अपने उच्च स्थान पर स्थित थे ॥ १४ ॥ तथा सूर्य मेषराशि का था, मध्याह्नकाल में सनातन परमात्मा जगन्नाथ आविर्भूत हुए। उस समय आकाश-मण्डल से देवताओं के द्वारा पुष्प की वृष्टि हो रही थी ॥ १५ ॥

उस सनातन परमात्मा का शरीर नील कमल के समान श्याम वर्ण का था। उनकी चार भुजाएँ थीं तथा वे पीताम्बर धारण किये हुए थे, उनके नेत्रों का भीतरी भाग लाल कमल के समान अरुण वर्ण का था। तथा कानों में देदीप्यमान कुण्डल शोभा पा रहेथे ॥१६॥ वे सहस्रों सूर्यों के

सहस्रार्क-प्रतीकाशः किरीटी कुञ्चितालकः ।
शङ्ख - चक्र - गदा - पद्म-वनमाला-विराजितः ॥१७॥
अनुग्रहाख्य - हृत्स्थेन्दु - सूचक-स्मितचन्द्रिकः ।
करुणारस - सम्पूर्ण-विशालोत्पल - लोचनः ।
श्रीवत्स - हार-केयूर - नूपुरादि - विभूषणः ॥१८॥
दृष्ट्वा तं परमात्मानं कौसल्या विस्मयाकुला ।
हर्षाश्रुपूर्णनयना नत्वा प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥१९॥

कौसल्योवाच

देवदेव नमस्तेऽस्तु शङ्ख-चक्र-गदाधर ।
परमात्माच्युतोऽनन्तः पूर्णस्त्वं पुरुषोत्तमः ॥२०॥
वदन्त्यगोचरं वाचां बुद्ध्यादीनामतीन्द्रियम् ।
त्वां वेदवादिनः सत्तामात्रं ज्ञानैकविग्रहम् ॥२१॥
त्वमेव मायया विश्वं सृजस्यवसि हंसि च ।
सत्त्वादिगुणसंयुक्तस्तुर्य एवामलः सदा ॥२२॥

---

समान, अपने शरीर की प्रभा बिखेर रहे थे, उनके शिर पर प्रकाशमान मुकुट था और केश घुँघराले थे, वे हाथों में शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए थे, गले में वैजयन्ती माला शोभा पा रही थी ॥१७॥ जिस प्रकार चन्द्रमा अपनी चन्द्रिका बिखेरता है, उसी प्रकार वे भी हृदयस्थित अनुग्रह के द्वारा मुखमण्डल पर मन्द-मुसकान की शोभा बिखेर रहे थे। उनका विशाल नेत्र कमल करुणा रस से आप्लावित था, श्रीवत्स, हार, केयूर और नूपुर आदि आभूषणों से भूषित थे ॥१८॥

इस प्रकार स्वयं परमात्मा को अपने पुत्र के रूप में प्रगट हुआ देखकर माता कौसल्या विस्मय से व्याकुल हो गयी। उनके नेत्र आनन्दाश्रु से पूर्ण हो गये। तदनन्तर हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए उन्होंने कहा ॥१९॥

कौसल्या जी बोलीं-हे देवदेव ! हे शङ्ख-चक्र-गदाधारिन् ! आप अच्युत, अनन्त, परमात्मा हैं तथा पूर्ण पुरुषोत्तम हैं, मैं आप को नमस्कार करती हूँ ॥२०॥ हे नाथ ! वेदवादी लोग आप को बुद्धि तथा वाणी से परे, इन्द्रियों से अतीत, सत्ता मात्र तथा एक मात्र ज्ञान-स्वरूप बतलाते हैं ॥२१॥ हे नाथ ! आप अपनी माया से सत्त्व, रज एवं तम इन तीन गुणों से युक्त होकर इस

करोषीव न कर्ता त्वं गच्छसीव न गच्छसि ।
शृणोषि न शृणोषीव पश्यसीव न पश्यसि ॥२३॥
अप्राणो ह्यमनाः शुद्ध इत्यादि श्रुतिरब्रवीत् ।
समः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्नपि न लक्ष्यसे ॥२४॥
अज्ञान-ध्वान्त-चित्तानां व्यक्त एव सुमेधसाम् ।
जठरे तव दृश्यन्ते ब्रह्माण्डाः परमाणवः ॥२५॥
त्वं ममोदरसम्भूत इति लोकान् विडम्बसे ।
भक्तेषु पारवश्यं ते दृष्टं मेऽद्य रघूत्तम ॥२६॥
संसारसागरे मग्ना पति-पुत्र-धनादिषु ।
भ्रमामि मायया तेऽद्य पादमूलमुपागता ॥२७॥
देव त्वद्रूपमेतन्मे सदा तिष्ठतु मानसे ।
आवृणोतु न मां माया तव विश्वविमोहिनी ॥२८॥

---

विश्व की रचना पालन और संहार करते हैं। आप सर्वथा निर्मल तुरीय पद में स्थित रहते हैं ॥२२॥

यद्यपि आप कर्त्ता नहीं हैं, फिर भी करते-जैसे प्रतीत होते हैं, आप चलते नहीं हैं, फिर भी चलते, जैसे मालूम पड़ते हैं। न सुनते हुए भी सुनते-जैसे प्रतीत होते हैं। और देखने वाले न होकर भी आप देखने वालों जैसा प्रतीत होते हैं ॥२३॥ भगवती श्रुति भी आप को अमनाः अप्राणः' कहकर पुकारती हैं, आप सर्वथा शुद्ध हैं। सभी प्राणियों के अन्तरात्मा में समान रूप से स्थित हुए भी आप दिखाई नहीं देते ॥२४॥

यद्यपि आप अज्ञान से जिनका अन्तःकरण ढका हुआ है उनको आप दिखाई नहीं देते किन्तु आप का साक्षात्कार मनीषी लोग कर लेते हैं। हे भगवन्! आप के उदर में अनेकों ब्रह्माण्ड परमाणु जैसे दिखाई पड़ते हैं ॥२५॥ फिर भी 'आप मेरे पेट से जन्म ले रहे हैं' ऐसा जो आप लोगों को प्रगट कर रहे हैं इससे हे रघूत्तम! मैंने आप की भक्त परवशता देख ली ॥ २६ ॥ मैं आप की माया से मोहित होकर संसार-सागर में डूबी हुई पति, पुत्र एवं धनादि के फेरे में पड़कर भटक रही थी किन्तु भाग्य से आप के चरण का सहारा प्राप्त हो गया ॥२७॥

हे देव! आप का यह रूप मेरे मानस में सदैव विराजमान रहे। और विश्व को मोहित करने वाली आप की माया मुझे कदापि न व्यापे ॥२८॥

उपसंहर विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम् ।
दर्शयस्व महानन्दबालभावं सुकोमलम् ।
ललितालिङ्गनालापैस्तरिष्याम्युत्कटं तमः ॥२९॥

श्रीभगवानुवाच

यद्यदिष्टं तवास्त्यम्ब तत्तद् भवतु नान्यथा ॥३०॥
अहं तु ब्रह्मणा पूर्वं भूमेर्भारापनुत्तये ।
प्रार्थितो रावणं हन्तुं मानुषत्वमुपागतः ॥३१॥
त्वया दशरथेनाहं तपसाराधितः पुरा ।
मत्पुत्रत्वाभिकाङ्क्षिण्या तथा कृतमनिन्दिते ॥३२॥
रूपमेतत् त्वया दृष्टं प्राक्तनं तपसः फलम् ।
मद्दर्शनं विमोक्षाय कल्पते ह्यन्यदुर्लभम् ॥३३॥
संवादमावयोर्यस्तु पठेद् वा शृणुयादपि ।
स याति मम सारूप्यं मरणे मत्स्मृतिं लभेत् ॥३४॥

---

हे विश्वात्मा ! आप अपने इस अलौकिक रूप को समेट लीजिए और परम आनन्द दायक माधुर्य से परिपूर्ण बाल रूप धारण कर मुझे दर्शन दीजिये, जिससे मैं आप के परम ललित रूप का आलिङ्गन और संभाषण के द्वारा अत्यन्त उत्कट अज्ञान अन्धकार को पार कर जाऊँ ॥२९॥

तब श्री भगवान् बोले–हे माता ! आप को जो अभीष्ट है वही हो, आप के विरुद्ध कुछ भी न हो ॥३०॥ पूर्वकाल में ब्रह्मा ने मुझसे पृथ्वी का भार उतारने की प्रार्थना की थी। इसलिये उनकी प्रार्थना से मैंने रावण आदि राक्षसों का वध करने के लिये ही मनुष्य रूप में अवतार धारण किया है ॥३१॥ हे अनिन्दिते ! दशरथजी के सहित तुमने भी पूर्व जन्म में मुझे पुत्र रूप से प्राप्त करने की इच्छा से तपस्या के द्वारा मेरी आराधना की थी, उसे इस समय प्रगट होकर पूर्ण कर रहा हूँ ॥३२॥

तुमने पूर्व जन्म के तपस्या के फलस्वरूप मेरे इस दिव्य रूप का दर्शन किया है। अन्यों के लिये मेरा दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है। क्योंकि मेरे इस रूप के दर्शन मात्र से मनुष्य का मोक्ष हो जाता है ॥३३॥ जो व्यक्ति हमारे और तुम्हारे इस संवाद को सुनेगा अथवा पढ़ेगा उसे मेरी सारूप्य मुक्ति प्राप्त होगी तथा मरणकाल में उसे मेरी स्मृति प्राप्त होगी ॥३४॥

इत्युक्त्वा मातरं रामो बालो भूत्वा रुरोद ह ।
बालत्वेऽपीन्द्रनीलाभो विशालाक्षोऽतिसुन्दरः ॥३५॥
बालारुणप्रतीकाशो लालिताखिललोकपः ।
अथ राजा दशरथः श्रुत्वा पुत्रोद्भवोत्सवम् ।
आनन्दार्णवमग्नोऽसावाययौ गुरुणा सह ॥३६॥
रामं राजीवपत्राक्षं दृष्टवा हर्षाश्रुसंप्लुतः ।
गुरुणा जातकर्माणि कर्तव्यानि चकार सः ॥३७॥
कैकेयी चाऽथ भरतमसूत कमलेक्षणा ।
सुमित्रायां यमौ जातौ पूर्णेन्दुसदृशाननौ ॥३८॥
तदा ग्रामसहस्राणि ब्राह्मणेभ्यो मुदा ददौ ।
सुवर्णानि च रत्नानि वासांसि सुरभीः शुभाः ॥३९॥
यस्मिन् रमन्ते मुनयो विद्यया ज्ञानविप्लवे ।
तं गुरुः प्राह रामेति रमणाद्राम इत्यपि ॥४०॥

---

इस प्रकार माता से कहकर भगवान् बालक बन कर रोने लगे, उस बाल्यावस्था में वे इन्द्रनीलमणि के समान श्यामवर्ण के थे, विशाल नेत्र होने के कारण वे अत्यन्त सुन्दर प्रतीत हो रहे थे ।।३५।।

प्रातःकालीन बाल सूर्य के समान उनके शरीर की ज्योति अरुण वर्ण की थी, समस्त लोकपालों के द्वारा वे लालित हो रहे थे । महाराज दशरथ ने जब पुत्रोत्पत्ति का समाचार सुना तो वे आनन्द-समुद्र में डूब गये । और शीघ्र ही गुरु वसिष्ठ के साथ राजभवन में पधारे ।।३६।।

वहाँ आकर जब उन्होंने जब कमल नयनाभिराम राम को देखा तो वे आनन्दाश्रुओं से परिपूर्ण हो उठे । और गुरुजी के द्वारा उनका आवश्यक जात कर्मादि संस्कार कराया ।।३७।।

तदनन्तर कमलेक्षणा कैकेयी से भरत उत्पन्न हुए तथा सुमित्रा से पूर्ण चन्द्र के समान मुखवाले दो यमज बालक उत्पन्न हुए ।।३८।। उस समय महाराज दशरथ ने सहस्रों ग्राम, बहुत-सा सुवर्ण तथा अनेक रत्न, विविध प्रकार के वस्त्र तथा शुभ लक्षणों वाली अनेक गाएँ ब्राह्मणों को दीं ।।३९।।

विद्या के द्वारा अविद्या के नष्ट हो जाने पर जिनमें मुनिगण रमण करते हैं, अथवा अपनी सुन्दरता से जो भक्तजनों के चित्त को रमाते हैं

भरणाद् भरतो नाम लक्ष्मणं लक्षणान्वितम् ।
शत्रुघ्नं शत्रुहन्तारमेवं गुरुरभाषत ॥४१॥
लक्ष्मणो रामचन्द्रेण शत्रुघ्नो भरतेन च ।
द्वन्द्वीभूय चरन्तौ तौ पायसांशानुसारतः ॥४२॥
रामस्तु लक्ष्मणेनाथ विचरन् बाललीलया ।
रमयामास पितरौ चेष्टितैर्मुग्धभाषितैः ॥४३॥
भाले स्वर्णमया-ऽश्वत्थ-पर्ण-मुक्ताफलप्रभम् ।
कण्ठे रत्नमणिव्रात-मध्यद्वीपि-नखाञ्चितम् ॥४४॥
कर्णयोः स्वर्णसम्पन्न-रत्नार्जुन-सटालुकम् ।
शिञ्जान-मणिमञ्जीर-कटिसूत्राङ्गदैर्वृतम् ॥४५॥
स्मित-वक्त्राल्पदशनमिन्द्रनीलमणि-प्रभम् ।
अङ्गणे रिङ्गमाणं तं तर्णकाननु सर्वतः ॥४६॥

---

उनका नाम गुरु जी ने 'राम' रखा ॥४०॥ इसी प्रकार दूसरे पुत्र का नाम संसार का भरण-पोषण करने के कारण भरत तथा सर्वलक्षण सम्पन्न होने के कारण तीसरे का लक्ष्मण तथा शत्रुहन्ता होने के कारण चौथे का नाम शत्रुघ्न रखा ॥४१॥ पायस के भागानुसार लक्ष्मण रामजी के साथ तथा शत्रुघ्न भरत के साथ जोड़ीदार बनकर निवास करने लगे ॥४२॥

श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण के साथ विचरते हुए अपनी बाल लीलाओं और चेष्टाओं एवं तोंतली बातों से अपने माता-पिता को आनन्द देने लगे ॥४३॥

जिनके ललाट में सुवर्ण से निर्मित अश्वत्थपत्र में मोतियों की लड़ियाँ शोभा पा रही हैं तथा कण्ठ में रत्न और मणियों के समूह के साथ बीच-बीच में व्याघ्र-नख सजाकर पिरोई गई माला शोभा पा रही है ॥४४॥

कानों में अर्जुन वृक्ष के कच्चे फलों के समान रत्न-जटित सुवर्ण के आभूषण लटक रहे है, जिनके पैरों में शब्दायमान मणिनिर्मित मञ्जीर (नूपुर), कटि में सुवर्ण की मेखला तथा भुजदण्ड पर बाजूबन्द शोभा पा रहे हैं ॥४५॥ उन इन्द्रनील मणि की शोभावाले अल्पदशनावलीयुक्त मुसकान से भरे हुए मुखमण्डल युक्त श्रीराम को आँगन में बछड़े के पीछे बाल गति से दौड़ते हुए देखकर दशरथ और कौशल्या आनन्द से परिपूर्ण हो जाते थे ।

दृष्ट्वा दशरथो राजा कौसल्या मुमुदे तदा।
भोक्ष्यमाणो दशरथो राममेहीति चासकृत् ॥४७॥

आह्वयत्यतिहर्षेण प्रेम्णा नायाति लीलया।
आनयेति च कौसल्यामाह सा सस्मिता सुतम् ॥४८॥

धावत्यपि न शक्नोति स्प्रष्टुं योगिमनोगतिम्।
प्रहसन् स्वयमायाति कर्दमाङ्कितपाणिना।
किञ्चिद् गृहीत्वा कवलं पुनरेव पलायते ॥४९॥

कौसल्या जननी तस्य मासि मासि प्रकुर्वती।
वायनानि विचित्राणि समलङ्कृत्य राघवम् ॥५०॥

अपूपान् मोदकान् कृत्वा कर्णशष्कुलिकास्तथा।
कर्णपूरांश्च विविधान् वर्षवृद्धौ च वायनम् ॥५१॥

गृहकृत्यं तथा त्यक्तं तस्य चापल्यकारणात्।
एकदा रघुनाथोऽसौ गतो मातरमन्तिके ॥५२॥

---

महाराज दशरथ जब भोजन करने बैठते थे, उस समय 'राम आ' ऐसा कह कर बारम्बार श्रीराम को हर्ष पूर्वक अपने समीप बुलाते थे ॥ ४६-४७ ॥

इस प्रकार बारम्बार बुलाये जाने पर भी क्रीडा में आसक्त राम जब न आते तो वे कौसल्या से पकड़कर ले आने के लिये कहते। किन्तु जो योगि-जनों के चित्त के एक मात्र आश्रय हैं, उन श्रीराम को कौशल्या जी हँस कर दौड़ती हुई किसी प्रकार न पकड़ पातीं। तब माता को थकी देखकर वे स्वयं ही हाथों में कीच लगाये हुए वहीं आ जाते, तदनन्तर एकाध ग्रास खा कर पुनः भाग जाते ॥४८-४९॥ माता कौशल्या प्रतिमास राम को भली-भाँति वस्त्र एवं आभूषण पहना कर मिठाई आदि पक्वानों से उत्सव किया करती थीं। उनके वर्ष गाँठ के दिन भी पूआ, मोदक, जलेबी तथा कचौड़ी आदि विविध व्यञ्जनों द्वारा उत्सव सम्पन्न करती थीं ॥ ५०-५१॥

राम की चपलता के कारण कौशल्या ने अपने घर का सारा काम-काज छोड़ दिया। एक बार राम अपनी माता कौसल्या के पास गये ॥५२॥

भोजनं देहि मे मातर्न श्रुतं कार्यसक्तया ।
ततः क्रोधेन भाण्डानि लगुडेनाहनत् तदा ॥५३॥
शिक्यस्थं पातयामास गव्यं च नवनीतकम् ।
लक्ष्मणाय ददौ रामो भरताय यथाक्रमम् ॥५४॥
शत्रुघ्नाय ददौ पश्चाद् दधि दुग्धं तथैव च ।
सूदेन कथिते मात्रे हास्यं कृत्वा प्रधावति ॥५५॥
आगतां तां विलोक्याथ ततः सर्वैः पलायितम् ।
कौसल्या धावमानाऽपि प्रस्खलन्ती पदे पदे ॥५६॥
रघुनाथं करे धृत्वा किञ्चिन्नोवाच भामिनी ।
बालभावं समाश्रित्य मन्दं मन्दं रुरोद ह ॥५७॥
ते सर्वे लालिता मात्रा गाढमालिङ्ग्य यत्नतः ।
एवमानन्द-सन्दोह-जगदानन्द-कारकः ॥५८॥
मायाबालवपुर्धृत्वा रमयामास दम्पती ।
अथ कालेन ते सर्वे कौमारं प्रतिपेदिरे ॥५९॥

---

और माता से भोजन माँगा, किन्तु काम में लगी रहने के कारण उन्होंने न सुना। इस पर क्रुद्ध हो राम ने डंडे से सारा बर्तन फोड़ डाला ॥ ५३ ॥ उन्होंने छींके पर रखे गये गोरस एवं माखन को गिरा दिया और भरत तथा लक्ष्मण को क्रमशः बाँट दिया ॥५४॥ उसी प्रकार वहाँ रखे हुये दुग्ध तथा दही को शत्रुघ्न को दे दिया। जब रसोइये ने यह समाचार कौशल्या कहा तो माता हँस कर उन्हें पकड़ने के लिये दौड़ीं ।५५। माता को पकड़ने के लिये आती हुई देखकर सभी लोग भाग निकले। यद्यपि कौशल्या पकड़ने के लिये दौड़ रही थीं किन्तु पग-पग पर उनके पाँव फिसल रहे थे ॥५६॥ उन्होंने राम को पकड़ तो लिया किन्तु कुछ नहीं बोलीं। उस समय रामचन्द्र बाल भाव से धीरे-धीरे रोने लगे ॥ ५७ ॥ माता ने राम को रोता हुआ देखकर उन्हें बड़े प्रेम से हृदय लगा कर प्यार किया। इस प्रकार आनन्द-सन्दोह जगदानन्द कारक भगवान् श्रीराम माया से बालभाव को प्राप्त हो दम्पती दशरथ और कौशल्या को आनन्द देने लगे। तदनन्तर कुछ काल बीतने पर उन चारों भाइयों ने कौमारावस्था में प्रवेश किया ॥ ५८-५९ ॥

उपनीता वसिष्ठेन सर्वविद्याविशारदाः ।
धनुर्वेदे च निरताः सर्वशास्त्रार्थवेदिनः ॥६०॥
बभूवुर्जगतां नाथा लीलया नररूपिणः ।
लक्ष्मणस्तु सदा राममनुगच्छति सादरम् ॥६१॥
सेव्य-सेवकभावेन शत्रुघ्नो भरतं तथा ।
रामश्चापधरो नित्यं तूणीबाणान्वितः प्रभुः ॥६२॥
अश्वारूढो वनं याति मृगयायै सलक्ष्मणः ।
हत्वा दुष्टमृगान् सर्वान् पित्रे सर्वं न्यवेदयत् ॥६३॥
प्रातरुत्थाय सुस्नातः पितरावभिवाद्य च ।
पौरकार्याणि सर्वाणि करोति विनयान्वितः ॥६४॥
बन्धुभिः सहितो नित्यं भुक्त्वा मुनिभिरन्वहम् ।
धर्मशास्त्र-रहस्यानि शृणोति व्याकरोति च ॥६५॥

---

तदनन्तर श्री वसिष्ठजी ने उन चारों राजकुमारों का उपनयन संस्कार किया। फिर वे सर्व-विशारद होकर सम्पूर्ण शास्त्रों के अर्थों के ज्ञाता और धनुर्वेद में निष्णात हो गये ॥ ६० ॥ इसका कारण यह था कि वे सभी सम्पूर्ण लोक के स्वामी होते हुए भी लीला से मनुष्य रूप धारण किये हुए थे। उनमें लक्ष्मणजी आदरपूर्वक सेवा-सेवक भाव से राम का अनुगमन करते थे और उसी प्रकार शत्रुघ्न भी सेवा-सेवक भाव से भरत जी की सेवा किया करते थे। भगवान् राम नित्य प्रति लक्ष्मण को साथ लेकर धनुष बाण और तरकस धारण कर घोड़े पर सवार हो मृगया के लिये वन जाते और दुष्ट सिंह, व्याघ्रादि जन्तुओं को मार कर पिता जी को दिखाते थे ॥६१-६३॥ श्रीराम जी नित्य प्रति स्नान के अनन्तर माता-पिता को प्रणाम करते थे और फिर विनम्रतापूर्वक नगर निवासियों के समस्त कार्य की देख-रेख करते थे ॥६४॥ फिर भाइयों सहित भोजन कर नित्य प्रति मुनियों से धर्मशास्त्र का श्रवण करते और स्वयं भी उसकी व्याख्या करते ॥ ६५ ॥

एवं परात्मा मनुजावतारो मनुष्यलोकाननुसृत्य सर्वम् ।
चक्रेऽविकारी परिणामहीनो विचार्यमाणे न करोति किञ्चित् ॥६६॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
बालकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

## ४. चतुर्थः सर्ग.

( विश्वामित्रजी का आगमन, राम और लक्ष्मण को अपने साथ ले जाना
एवं ताटका का वध करना )

श्रीमहादेव उवाच

कदाचित् कौशिकोऽभ्यागादयोध्यां ज्वलनप्रभः ।
द्रष्टुं रामं परात्मानं जातं ज्ञात्वा स्वमायया ॥ १ ॥
दृष्ट्वा दशरथो राजा प्रत्युत्थायाऽचिरेण तु ।
वसिष्ठेन समागम्य पूजयित्वा यथाविधि ॥ २ ॥
अभिवाद्य मुनिं राजा प्राञ्जलिर्भक्तिनम्रधीः ।
कृतार्थोऽस्मि मुनीन्द्राहं त्वदागमनकारणात् ॥ ३ ॥

---

इस प्रकार अव्यय परिणाम रहित परमात्मा ने मनुष्य के रूप में अवतार लेकर मनुष्यों के अनुसार ही समस्त कार्य किये। किन्तु यदि विचार कर देखा जाय तो वे कुछ भी नहीं करते ॥ ६६ ॥

इस प्रकार 'राम-प्रिया' हिन्दी व्याख्या सहित अध्यात्म रामायण के उमा-महेश्वर संवाद में बालकाण्ड का तीसरा सर्ग समाप्त ॥ ३ ॥

श्री महादेवजी बोले—किसी समय अग्नि के समान अति तेजस्वी महर्षि विश्वामित्र परमात्मा को अपनी माया से राम के रूप में प्रगट हुआ जान कर, उनके दर्शन की इच्छा से अयोध्यापुरी में आये ॥ १ ॥ उन्हें देख कर महाराज दशरथ बड़ी शीघ्रता से खड़े हो गये और वशिष्ठ के सहित जाकर उनका स्वागत तथा पूजा कर अभिवादन किया। फिर भक्ति से विनम्र चित्त हो हाथ जोड़कर कौशिक मुनि से कहा—हे मुनीन्द्र ! मैं आपके इस शुभागमन से धन्य हो गया ॥२-३॥ आप जैसे महानुभाव जहाँ पधारते

त्वद्विधा यद्गृहं यान्ति तत्रैवायान्ति सम्पदः ।
यदर्थमागतोऽस्मि त्वं ब्रूहि सत्यं करोमि तत ॥ ४ ॥
विश्वामित्रोऽपि तं प्रीतः प्रत्युवाच महीपतिः ।
अहं पर्वणि संप्राप्ते दृष्ट्वा यष्टुं सुरान् पितॄन् ॥ ५ ॥
यदारभे तदा दैत्या विघ्नं कुर्वन्ति नित्यशः ।
मारीचश्च सुबाहुश्चाऽपरे चानुचरास्तयोः ॥ ६ ॥
अतस्तयोर्वधार्थाय ज्येष्ठं रामं प्रयच्छ मे ।
लक्ष्मणेन सह भ्राता तव श्रेयो भविष्यति ॥ ७ ॥
वसिष्ठेन सहामन्त्र्य दीयतां यदि रोचते ।
पप्रच्छ गुरुमेकान्ते राजा चिन्तापरायणः ॥ ८ ॥
किं करोमि गुरो ! रामं त्यक्तुं नोत्सहते मनः ।
बहुवर्षसहस्रान्ते कष्टेनोत्पादिताः सुताः ॥ ९ ॥
चत्वारोऽमरतुल्यास्ते तेषां रामोऽतिवल्लभः ।
रामस्त्वितो गच्छति चेन्न जीवामि कथञ्चन ॥१०॥

---

हैं वहाँ सभी सम्पत्तियाँ पहुँच जाती हैं, इसमें संदेह नहीं । किन्तु आप जिस प्रयोजन से मेरे यहाँ पधारे हैं वह प्रयोजन बताइए, मैं सत्य कहता हूँ आप की आज्ञा का पालन अवश्य करूँगा ॥ ४ ॥

तब महर्षि विश्वामित्र ने दशरथ से कहा—हे राजन् ! पर्वकाल उपस्थित हुआ देख कर जब मैं देवताओं एवं पितृगणों के लिये यज्ञ आरम्भ करता हूँ उस समय मारीच, सुबाहु तथा उनके अन्य अनुचर दैत्य नित्य ही उसमें विघ्न डाला करते हैं ॥ ५-६ ॥ इसलिये आप उन दैत्यों का वध करने के लिये मुझे अपने जेठे पुत्र राम को भाई लक्ष्मण के सहित दीजिये । इससे तुम्हारा भी परम कल्याण होगा ॥७॥ यदि आपकी इच्छा हो तो वशिष्ठ-जी की सम्मति लेकर अपने कुमारों को मुझे दो । तब राजा चिन्तित होकर एकान्त में गुरु वशिष्ठजी से पूछा ॥ ८ ॥

दशरथजी ने कहा—गुरुदेव ! मेरा मन राम को छोड़ने के लिये नहीं कहता, क्योंकि सहस्रों वर्षों के बाद बड़े कष्ट से देवताओं के समान ये मुझे चार पुत्र उत्पन्न हुए हैं, यदि राम यहाँ से चले जायेंगे तो मैं किसी प्रकार भी जी नहीं सकता ॥९-१०॥ यदि मैं विश्वामित्र की बात न मानूँ तो वे

प्रत्याख्यातो यदि मुनिः शापं दास्यत्यसंशयः ।
कथं श्रेयो भवेन्मह्यमसत्यं चापि न स्पृशेत् ॥११॥

वसिष्ठ उवाच

शृणु राजन् देवगुह्यं गोपनीयं प्रयत्नतः ।
रामो न मानुषो जातः परमात्मा सनातनः ॥१२॥
भूमेर्भारावताराय ब्रह्मणा प्रार्थितः पुरा ।
स एव जातो भवने कौसल्यायां तवाऽनघ ॥१३॥
त्वं तु प्रजापतिः पूर्वं कश्यपो ब्रह्मणः सुतः ।
कौसल्या चाऽदितिर्देवमाता पूर्वं यशस्विनी ।
भवन्तौ तप उग्रं वै तेपाथे बहुवत्सरम् ॥१४॥
अग्राम्यविषयौ विष्णुपूजा-ध्यानैकतत्परौ ।
तदा प्रसन्नो भगवान् वरदो भक्तवत्सलः ॥१५॥
वृणीष्व वरमित्युक्ते त्वं मे पुत्रो भवामल ।
इति त्वया याचितोऽसौ भगवान् भूतभावनः ॥१६॥

अवश्य ही शाप देंगे अतः आप ही बताइए कि मेरा कल्याण किस प्रकार होगा। तथा मुझे असत्य भाषण का पाप भी न लगे ॥११॥

तब वशिष्ठजी ने कहा—हे राजन् ! जिसे देवता लोग भी नहीं जानते, वैसी एक बात मैं तुम्हें बता रहा हूँ तुम सुनो, इसे प्रयत्न पूर्वक अपने मन में ही रखना किसी से प्रगट नहीं करना। ये राम मनुष्य नहीं हैं। साक्षात् सनातन परमात्मा ही तुम्हारे यहाँ प्रगट हुए हैं ॥१२॥ हे राजन् ! पूर्वकाल में पृथ्वी का भार उतारने के लिये ब्रह्मा जी ने भगवान् से प्रार्थना की थी। इसीलिए वे तुम्हारे घर में कौशल्या के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं ॥१३॥ आप पूर्व काल में ब्रह्मा के पुत्र प्रजापति कश्यप थे और यशश्विनी कौशल्या देव-माता अदिति थी। तुम दोनों ने बहुत वर्षों तक उग्र तपस्या की थी ॥१४॥ दोनों ने बहुत वर्षों तक ग्राम्य विषयों का त्याग कर एक मात्र विष्णु की पूजा तथा उनके ध्यान में तत्पर होकर उग्र तप किया था। तब कालान्तर में भक्तवत्सल वरदाता भगवान् ने तुम दोनों पर प्रसन्न हो वर माँगने के लिये कहा ॥१५॥

उस समय तुम दोनों ने भगवान् से यही वर माँगा कि 'हे अमल ! आप हमारे पुत्र हों' तब भूत भावन भगवान् ने कहा, 'ऐसा ही हो'। इसलिए स्वयं

तथेत्युक्त्वाऽद्य पुत्रस्ते जातो रामः स एव हि ।
शेषस्तु लक्ष्मणो राजन् राममेवान्वपद्यत ॥१७॥
जातौ भरत-शत्रुघ्नौ शङ्ख-चक्रे गदाभृतः ।
योगमायाऽपि सीतेति जाता जनकनन्दिनी ॥१८॥
विश्वामित्रोऽपि रामाय तां योजयितुमागतः ।
एतद् गुह्यतमं राजन् ! न वक्तव्यं कदाचन ॥१९॥
अतः प्रीतेन मनसा पूजयित्वाऽथ कौशिकम् ।
प्रेषयस्व रमानाथं राघवं सह-लक्ष्मणम् ॥२०॥
वसिष्ठेनैवमुक्तस्तु राजा दशरथस्तदा ।
कृतकृत्यमिवात्मानं मेने प्रमुदितान्तरः ॥२१॥
आहूय रामरामेति लक्ष्मणेति च सादरम् ।
आलिङ्ग्य मूर्ध्न्यवघ्राय कौशिकाय समर्पयत् ॥२२॥
ततोऽतिहृष्टो भगवान् विश्वामित्रः प्रतापवान् ।
आशीर्भिरभिनन्द्याथ आगतौ राम-लक्ष्मणौ ॥२३॥

---

भगवान् विष्णु राम रूप से तुम्हारे पुत्र हुए हैं और शेष जी लक्ष्मण के रूप में प्रगट होकर उनके अनुगामी हो रहे हैं ॥१६–१७॥ गदाधारी भगवान् विष्णु के शङ्ख और चक्र भी भरत तथा शत्रुघ्न के रूप में अवतरित हुए हैं। और उनकी योगमाया भी जनक की कन्या होकर सीता नाम से प्रगट हुई हैं ॥१८॥ विश्वामित्र जी का इस समय यह आगमन राम एवं सीता का संयोग कराने के लिये ही हुआ है। हे राजन् ! यह परम गोपनीय रहस्य है इसे किसी से तुम प्रकाशित मत करना ॥१९॥ इसीलिए तुम प्रसन्नचित्त से कौशिक मुनि का सत्कार कर लक्ष्मीपति श्रीराम को लक्ष्मण सहित उनके साथ भेज दो ॥२०॥ वशिष्ठजी से इस प्रकार कहे जानेपर महाराज दशरथ ने अपने को कृतकृत्य माना। और मन में अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥२१॥

उन्होंने आदर पूर्वक राम और लक्ष्मण ऐसा कहकर बुलाया, और उन दोनों भाइयों को हृदय से लगाकर सिर सूँघा तथा विश्वामित्र को सौंप दिया ॥२२॥ फिर प्रतापी विश्वामित्र अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने समीप आये हुए राम एवं लक्ष्मण को अपने आशीर्वाद से सम्मानित किया ॥२३॥

गृहीत्वा चाप-तूणीर-बाण-खड्गधरौ ययौ ।
किञ्चिद् देशमतिक्रम्य राममाहूय भक्तितः ॥२४॥

ददौ बलां चातिबलां विद्ये द्वे देवनिर्मिते ।
ययोर्ग्रहणमात्रेण क्षुत्क्षामादि न जायते ॥२५॥

तत उत्तीर्य गङ्गां ते ताटकावनमागमन ।
विश्वामित्रस्तदा प्राह रामं सत्यपराक्रमम् ॥२६॥

अत्राऽस्ति ताटका नाम राक्षसी कामरूपिणी ।
बाधते लोकमखिलं जहि तामविचारयन् ॥२७॥

तथेति धनुरादाय सगुणं रघुनन्दनः ।
टङ्कारमकरोत्तेन शब्देनापूरयद् वनम् ॥२८॥

तच्छ्रुत्वाऽसहमाना सा ताटका घोररूपिणी ।
क्रोधसम्मूर्च्छिता राममभिदुद्राव मेघवत् ॥२९॥

---

धनुष, तरकस, बाण तथा खड्ग आदि से सुसज्जित राम, लक्ष्मण को लेकर चल पड़े। थोड़ी दूर चलने पर उन्होंने प्रेमपूर्वक राम को बुलाया ॥२४॥ और देवनिर्मित बला और अतिबला नाम की दो विद्यायें उन्हें दीं। जिसके ग्रहण करने मात्र से क्षुधा और दुर्बलता आदि बाधायें नहीं होतीं ॥२५॥ तदनन्तर वे लोग गङ्गा जी को पार कर ताटका वन में आये। तब विश्वामित्र ने सत्यप्रतिज्ञ राम से ऐसा कहा ॥२६॥

विश्वामित्र ने राम से कहा–भद्र राम! यहाँ पर इच्छानुसार रूप धारण करने वाली ताटका नाम की राक्षसी रहती है। यह सभी लोगों को दुःख दिया करती है, इसलिये तुम बिना विचार किये ही इसका वध करो ॥२७॥ तब रघुनन्दन रामजी ने 'तथास्तु' ऐसा कह कर धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाई और उस धनुष से इतना बड़ा टङ्कार किया कि उसकी प्रतिध्वनि से सारा वन गुञ्जायमान हो गया ॥२८॥ घोर रूप धारिणी ताटका उस टङ्कार को सुन कर सहन न कर सकी और क्रोध से उन्मत्त होकर मेघ के समान गर्जना करती हुई राम पर झपटी ॥२९॥

तामेकेन शरेणाशु ताडयामास वक्षसि ।
पपात विपिने घोरा वमन्ती रुधिरं बहु ॥३०॥
ततोऽतिसुन्दरी यक्षी सर्वाभरणभूषिता ।
शापात पिशाचतां प्राप्ता मुक्ता रामप्रसादतः ॥३१॥
नत्वा रामं परिक्रम्य गता रामाज्ञया दिवम् ॥३२॥
ततोऽतिहृष्टः परिरभ्य रामं, मूर्धन्यवघ्राय विचिन्त्य किञ्चित ।
सर्वास्त्रजालं सरहस्यमन्त्रं, प्रीत्याभिरामाय ददौ मुनीन्द्रः ॥३३॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा महेश्वरसंवादे
बालकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

---

श्रीराम ने बड़ी शीघ्रता से उसके वक्षःस्थल पर एक बाण मारा, जिससे वह घोर रूपिणी उसी वन में अत्यन्त रुधिर का वमन करती हुई पृथ्वी पर गिर पड़ी ॥३०॥ फिर शाप के कारण पिशाचता को प्राप्त हुई वह ताटका श्रीराम की कृपा से शाप मुक्त हो सम्पूर्ण आभूषणों से सुसज्जित यक्षिणी हो गई। और राम की परिक्रमा कर उन्हें प्रणाम कर उनकी आज्ञा ले स्वर्ग को चली गयी ॥३१-३२॥

ताटका के वध से विश्वामित्र जी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उन्होंने राम का आलिङ्गन कर उनका सिर सूँघा। फिर थोड़ा विचार करने के उपरान्त रहस्य और मन्त्रों सहित सम्पूर्ण अस्त्रों को प्रेम से अभिराम राम को दिया ॥३३॥

इस प्रकार 'राम-प्रिया' हिन्दी व्याख्या सहित अध्यात्मरामायण के
उमा-महेश्वर-संवाद में बालकाण्ड का चतुर्थ सर्ग समाप्त ॥४॥

## ५. पञ्चमः सर्गः

( मारीच और सुबाहुका दमन तथा अहल्योद्धार )

श्रीमहादेव उवाच

तत्र कामाश्रमे रम्ये कानने मुनिसङ्कुले ।
उषित्वा रजनीमेकां प्रभाते प्रस्थिताः शनैः ॥ १ ॥
सिद्धाश्रमं गताः सर्वे सिद्धचारणसेवितम् ।
विश्वामित्रेण संदिष्टा मुनयस्तन्निवासिनः ॥ २ ॥
पूजां च महतीं चक्रू राम-लक्ष्मणयोर्द्रुतम् ।
श्रीरामः कौशिकं प्राह मुने दीक्षां प्रविश्यताम् ॥ ३ ॥
दर्शयस्व महाभाग कुतस्तौ राक्षसाधमौ ।
तथेत्युक्त्वा मुनिर्यष्टुमारेभे मुनिभिः सह ॥ ४ ॥
मध्याह्ने ददृशाते तौ राक्षसौ कामरूपिणौ ।
मारीचश्च सुबाहुश्च वर्षन्तौ रुधिरास्थिनी ॥ ५ ॥
रामोऽपि धनुरादाय द्वौ बाणौ सन्दधे सुधीः ।
आकर्णान्तं समाकृष्य विससर्ज तयोः पृथक् ॥ ६ ॥

---

श्री महादेवजी बोले—हे पार्वती ! तदनन्तर मुनिजनों से युक्त परम रमणीय उस काम्याश्रम नामक वन में विश्वामित्र सहित वे दोनों भाई एक रात्रि निवास कर प्रातःकाल होते ही धीरे-धीरे वहाँ से चल पड़े ॥१॥ वहाँ से वे लोग सिद्ध और चारणों से सेवित सिद्धाश्रम में पहुँच गये। तदनन्तर विश्वामित्र की आज्ञा से वहाँ निवास करने वाले मुनियों ने श्री रामचन्द्र जी की बहुत बड़ी पूजा की। फिर श्रीरामचन्द्रजी ने विश्वामित्र से कहा, हे महामुने ! आप यज्ञ की दीक्षा ग्रहण करें ॥२-३॥ और हे महाभाग ! आप मुझे बता दीजिये कि वे नीच राक्षस कहाँ निवास करते हैं। इसके बाद मुनि ने 'तथास्तु' कह कर मुनियों को साथ ले यज्ञ करना प्रारम्भ कर दिया ॥४॥ उस यज्ञ में मारीच और सुबाहु नामक राक्षस, जो इच्छानुसार रूप धारण कर सकते थे, रक्त और हड्डी की वर्षा करते हुए दिखाई पड़े ॥५॥ परम चतुर श्रीरामचन्द्रजी भी धनुष को लेकर उस पर दो बाण चढ़ाये और कर्ण पर्यन्त खींच कर उन दोनों बाणों को अलग-अलग राक्षसों की ओर छोड़े ॥६॥

तयोरेकस्तु मारीचं भ्रामयञ्छतयोजनम् ।
पातयामास जलधौ तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ७ ॥
द्वितीयोऽग्निमयो बाणः सुबाहुमजयत् क्षणात् ।
अपरे लक्ष्मणेनाशु हतास्तदनुयायिनः ॥ ८ ॥
पुष्पौघैराकिरन् देवा राघवं सहलक्ष्मणम् ।
देवदुन्दुभयो नेदुस्तुष्टुवुः सिद्धचारणाः ॥ ९ ॥
विश्वामित्रस्तु सम्पूज्य पूजार्हं रघुनन्दनम् ।
अङ्के निवेश्य चालिङ्ग्य भक्त्या वाष्पाकुलेक्षणः ॥१०॥
भोजयित्वा सह भ्रात्रा रामं पक्वफलादिभिः ।
पुराणवाक्यैर्मधुरैर्निनाय दिवसत्रयम् ॥११॥
चतुर्थेऽहनि सम्प्राप्ते कौशिको राममब्रवीत् ।
राम राम महायज्ञं द्रष्टुं गच्छामहे वयम् ॥१२॥

---

उन दोनों बाणों मे-से एक बाण तो मारीच को आकाश में घुमाते हुए सौ योजन दूर समुद्र में ले जाकर गिरा दिया, जिससे सब चकित हो गये ।।७।। और दूसरा अग्निमय बाण सुबाहु को क्षण भर में आकाश-मण्डल में जला डाला । फिर लक्ष्मण ने उनके अनुयायी राक्षसों को शीघ्र ही क्षण भर में मार डाला ।।८।। उस समय देवताओं ने राम एवं लक्ष्मण पर फूलों की वर्षा की और आकाश में दुन्दुभी आदि बाजों का घोष किया तथा सिद्ध और चारण उनकी स्तुति करने लगे ।।९।। पुनः पूजा के योग्य श्रीरामचन्द्रजी का महामुनि विश्वामित्र ने भली प्रकार से पूजन किया और उन्हें गोद में लेकर आलिङ्गन किया, उस समय भक्ति के आवेग से उनके नेत्र सजल पूर्ण हो उठे ।।१०।। फिर महर्षि ने श्रीराम और लक्ष्मण को सुमधुर पके हुए फल आदि भोजन कराते हुए और पुराणों में कहे गये अनेक प्रकार की कथाएँ सुनाते हुए उस आश्रम में तीन दिन और बिताये ।।११।।

इस प्रकार चौथे दिन आने पर विश्वामित्रजी ने राम से कहा— हे राम ! अब हम लोग एक महायज्ञ देखने के लिये चलेंगे ।।१२।। वह

विदेहराजनगरे जनकस्य महात्मनः ।
तत्र माहेश्वरं चापमस्ति न्यस्तं पिनाकिना ॥१३॥
द्रक्ष्यसि त्वं महासत्त्वं पूज्यसे जनकेन च ।
इत्युक्त्वा मुनिभिस्ताभ्यां ययौ गङ्गासमीपगम् ॥१४॥
गौतमस्याश्रमं पुण्यं यत्राऽहल्यास्थिता तपः ।
दिव्य-पुष्प-फलोपेत-पादपैः परिवेष्टितम् ॥१५॥
मृगपक्षिगणैर्हीनं नानाजन्तुविवर्जितम् ।
दृष्ट्वोवाच मुनिं श्रीमान् रामो राजीवलोचनः ॥१६॥
कस्यैतदाश्रमपदं भाति भास्वच्छुभं महत ।
पत्र-पुष्प-फलैर्युक्तं जन्तुभिः परिवर्जितम् ॥१७॥
आह्लादयति मे चेतो भगवन् ब्रूहि तत्त्वतः ॥१८॥

विश्वामित्र उवाच

शृणु राम पुरा वृत्तं गौतमो लोकविश्रुतः ।
सर्वधर्मभृतां श्रेष्ठस्तपसाराधयन् हरिम् ॥१९॥

---

महायज्ञ महाराज जनक के द्वारा मिथिला में हो रहा है। उस मिथिलापुरी में श्रीशंकरजी के द्वारा एक बहुत बड़ा धनुष धरोहर के रूप में रखा हुआ है ॥१३॥ वहाँ उस महादिव्य धनुष का तुम दर्शन करोगे । तथा जनक जी भी तुम्हारी भली प्रकार पूजा करेंगे। ऐसा कहकर मुनियों को साथ लेकर श्रीराम लक्ष्मण के सहित वे गङ्गा के समीपवर्ती महामुनि गौतम के परम पवित्र आश्रम में आये, जो मनोहर पुष्प और फलों से युक्त वृक्षों से परिपूर्ण था और जहाँ अहल्या तप कर रही थी ॥१४-१५॥

उस पवित्र आश्रम को मृग, पक्षी तथा नाना प्रकार के जीवों से रहित देख कर कमल-नयन श्रीराम ने महामुनि विश्वामित्र से पूछा ॥१६॥ हे महामुने ! पत्र, पुष्प एवं फलों से परिपूर्ण किन्तु जन्तुओं से रहित यह परम रमणीय और पवित्र आश्रम किसका है? इस आश्रम को देख कर मेरा चित्त अत्यन्त प्रसन्न हो रहा है, आप इसका वृत्तान्त मुझे बताइए ॥१७-१८॥

तब विश्वामित्र ने कहा—हे राम ! इस आश्रम का वृत्तान्त सुनो । किसी समय इस आश्रम में जगद्विख्यात, परम धार्मिक मुनिवर गौतमजी

तस्मै ब्रह्मा ददौ कन्यामहल्यां लोकसुन्दरीम् ।
ब्रह्मचर्येण सन्तुष्टः शुश्रूषणपरायणाम् ॥२०॥

तया सार्धमिहावासीद् गौतमस्तपतां वरः ।
शक्रस्तु तां धर्षयितुमन्तरं प्रेप्सुरन्वहम् ॥२१॥

कदाचिन्मुनिवेषेण गौतमे निर्गते गृहात् ।
धर्षयित्वाऽथ निरगात् त्वरितं मुनिरप्यगात् ॥२२॥

दृष्ट्वा यान्तं स्वरूपेण मुनिः परमकोपनः ।
पप्रच्छ कस्त्वं दुष्टात्मन् मम रूपधरोऽधमः ॥२३॥

सत्यं ब्रूहि न चेद् भस्म करिष्यामि न संशयः ।
सोऽब्रवीद् देवराजोऽहं पाहि मां कामकिङ्करम् ॥२४॥

कृतं जुगुप्सितं कर्म मया कुत्सितचेतसा ।
गौतमः क्रोधताम्राक्षः शशाप दिविजाधिपम् ॥२५॥

---

भगवान् को प्रसन्न करने की इच्छा से तप करते हुए निवास करते थे ॥१९॥ उनके ब्रह्मचर्य से सन्तुष्ट हो भगवान् ब्रह्मा ने उन्हें लोक सुन्दरी सेवाव्रत में परायण एक कन्या दी ॥२०॥ परम तपस्वी महामुनि गौतम उस कन्या के साथ इस आश्रम में निवास करने लगे । इधर इन्द्र उस पर मोहित होकर प्रतिदिन उससे रमण करने की इच्छा से अवसर की प्रतीक्षा करने लगे ॥२१॥

एक समय महर्षि गौतम जब घर से बाहर गये हुए थे, उस समय देव-राज इन्द्र गौतम का रूप धारण कर अहल्या के साथ रमण कर शीघ्रता से भाग ही रहे थे कि एकाएक वहाँ महर्षि गौतम लौट आये ॥२२॥ और अपना रूप धारण किये हुए इन्द्र को वहाँ से जाते देख गौतम मुनि को बड़ा क्रोध उत्पन्न हो गया और उन्होंने इन्द्र से पूछा—हे दुष्टात्मन् ! मेरा रूप धारण करने वाले परम नीच तुम कौन हो ? ॥२३॥ सत्य-सत्य बताओ अन्यथा मैं तुम्हें भस्म कर दूँगा, इसमें सन्देह मत करना । तब इन्द्र ने कहा—महाराज ! मैं देवराज इन्द्र हूँ । काम के वशीभूत होकर मैंने ऐसा नीच कार्य किया है । हे महामुने ! मेरी रक्षा कीजिए । तब महामुनि ने क्रोध से आँखें लाल कर इन्द्र को शाप दिया ॥२४-२५॥

योनिलम्पट दुष्टात्मन् सहस्रभगवान् भव ।
शप्त्वा तं देवराजानं प्रविश्य स्वाश्रमं द्रुतम् ॥२६॥
दृष्ट्वाऽहल्यां वेपमानां प्राञ्जलिं गौतमोऽब्रवीत् ।
शप्त्वा तं देवराजानं प्रविश्य स्वाश्रमं द्रुतम् ॥२७॥
दृष्ट्वाऽहल्यां वेपमानां प्राञ्जलिं गौतमोऽब्रवीत् ।
दुष्टे त्वं तिष्ठ दुर्वृत्ते शिलायामाश्रमे मम ॥२८॥
निराहारा दिवारात्रं तपः परममास्थिता ।
आतपानिल-वर्षादि-सहिष्णुः परमेश्वरम् ॥२९॥
ध्यायन्ती राममेकाग्रमनसा हृदि संस्थितम् ।
नानाजन्तुविहीनोऽयमाश्रमो मे भविष्यति ॥३०॥
एवं वर्षसहस्रेषु ह्यनेकेषु गतेषु च ।
रामो दाशरथिः श्रीमानागमिष्यति साऽनुजः ॥३१॥
यदा त्वदाश्रयशिलां पादाभ्यामाक्रमिष्यति ।
तदैव धूतपापा त्वं रामं सम्पूज्य भक्तितः ॥३२॥

---

हे दुष्टात्मन् ! तू योनिलम्पट है, इसलिए शीघ्र ही सहस्रों भगों से युक्त हो जा । इस प्रकार देवराज इन्द्र को शाप देकर उन्होंने अपने आश्रम में प्रवेश किया ॥२६॥ फिर भय से थर-थर काँपती हुई हाथ जोड़े हुए अहल्या को देख कर महर्षि ने उससे कहा—हे दुष्टे ! तुम दुराचारिणी हो अतः इसी आश्रम में शिला में निवास करती रहो ॥२७॥

इस आश्रम में तू निराहार रह कर धूप, वायु एवं वर्षादि को सहन करती हुई दिन-रात तपस्या करती रहो ॥२८॥ एवं हृदय में स्थित परमात्मा राम का एकाग्रमन से ध्यान करो, आज से मेरा यह आश्रम विविध प्रकार के जन्तुओं से रहित हो जायेगा ॥२९॥ इसी प्रकार तुम्हें तपस्या करते हुए जब कई हजार वर्ष बीत जायेंगे तब दशरथनन्दन श्रीराम अपने अनुज श्री लक्ष्मण के साथ इस आश्रम में प्रवेश करेंगे ॥३०॥ उस समय उस शिला पर जिसमें तुम्हारा निवास है, वे अपना दोनों पैर रखेंगे, उस समय तुम पाप से छुटकारा पा जाओगी और भक्ति पूर्वक राम की पूजा करोगी ॥३१॥ जब उनकी परिक्रमा तथा नमस्कार कर स्तुति करोगी तो तुम्हारा मेरे शाप से छुटकारा हो जायेगा । और फिर पूर्ववत् तुम सुखपूर्वक मेरी सेवा करने लग जाओगी ॥३२॥

परिक्रम्य नमस्कृत्य स्तुत्वा शापाद् विमोक्ष्यसे।
पूर्ववन्मम शुश्रूषां करिष्यसि यथासुखम् ॥३२॥
इत्युक्त्वा गौतमः प्रागाद्धिमवन्तं नगोत्तमम्।
तदाद्यहल्या भूतानामदृश्या स्वाश्रमे शुभे ॥३३॥
तव पादरजःस्पर्शं काङ्क्षते पवनाशना।
आस्तेऽद्यापि रघुश्रेष्ठ तपो दुष्करमास्थिता ॥३४॥
पावयस्व मुनेर्भार्यामहल्यां ब्रह्मणः सुताम्।
इत्युक्त्वा राघवं हस्ते गृहीत्वा मुनिपुङ्गवः ॥३५॥
दर्शयामास चाहल्यामुग्रेण तपसा स्थिताम्।
रामः शिलां पदा स्पृष्ट्वा तां चाऽपश्यत् तपोधनाम् ॥३६॥
ननाम राघवोऽहल्यां रामोऽहमिति चाऽब्रवीत्।
ततो दृष्ट्वा रघुश्रेष्ठं पीतकौशेयवाससम् ॥३७॥
चतुर्भुजं शङ्ख - चक्र - गदा - पङ्कजधारिणम्।
धनुर्बाणधरं रामं लक्ष्मणेन समन्वितम् ॥३८॥

---

ऐसा कहने के अनन्तर महर्षि गौतम पर्वत-श्रेष्ठ हिमालय पर चले गये। उसी समय से वह अहल्या भी वायु का भक्षण (निराहार रूप से) करती हुई, प्राणी मात्र से अलक्षित रहकर, आपके चरण-रज के स्पर्श की कामना से, अपने इस आश्रम में कठोर तपस्या में निरत होकर निवास करती है ॥३३-३४॥

विश्वामित्र ने राम से कहा—हे राम ! अब तुम ब्रह्मा की कन्या महर्षि गौतम की पत्नी इस अहल्या का उद्धार करो। ऐसा कह कर महर्षि विश्वामित्र ने राम का हाथ पकड़कर उग्र तप में स्थित अहल्या को दिखलाया। तब श्रीराम ने अपने चरण से अहल्या का स्पर्श कर परम तपस्विनी अहल्या को देखा ॥३५-३६॥

श्रीराम ने 'मैं राम हूं' ऐसा कह कर अहल्या को प्रणाम किया। इधर अहल्या ने भी रेशमी पीताम्बर पहने हुए श्रीराम को देखा ॥ ३७ ॥ उनके भुजाओं में शंख, चक्र, गदा एवं पद्म शोभा पा रहे थे। वे धनुष एवं बाण धारण किये हुए थे तथा साथ में श्रीलक्ष्मणजी थे ॥३८॥

स्मितवक्त्रं पद्मनेत्रं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् ।
नीलमाणिक्यसङ्काशं द्योतयन्तं दिशो दश ॥३९॥
दृष्ट्वा रामं रमानाथं हर्षविस्फारितेक्षणा ।
गौतमस्य वचः स्मृत्वा ज्ञात्वा नारायणं वरम् ॥४०॥
सम्पूज्य विधिवद् राममर्घ्यादिभिरनिन्दिता ।
हर्षाश्रुजलनेत्रान्ता दण्डवत् प्रणिपत्य सा ॥४१॥
उत्थाय च पुनर्दृष्ट्वा रामं राजीवलोचनम् ।
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गा गिरा गद्गदयैलत ॥४२॥

अहल्योवाच

अहो कृतार्थाऽस्मि जगन्निवास ते, पादाब्ज-संलग्न-रजःकणादहम् ।
स्पृशामि यत्पद्मजशङ्करादिभि, र्विमृग्यते रन्धितमानसैः सदा ॥४३॥
अहो विचित्रं तव राम चेष्टितं, मनुष्यभावेन विमोहितं जगत् ।
चलस्यजस्रं चरणादिवर्जितः, सम्पूर्ण आनन्दमयोऽतिमायिकः ॥४४॥

---

उनका मुख-मण्डल ईषद्धास्य से युक्त था, उनके नेत्र कमल के समान विशाल थे, वक्षःस्थल पर श्रीवत्स का चिह्न सुशोभित था, उनके नीलमणि के सदृश श्याम वर्ण के शरीर की आभा से दशों दिशाएँ जगमगा रही थीं ॥३९॥ लक्ष्मीपति श्रीराम को देखकर अहल्या के नेत्र प्रसन्नता से खिल उठे, उसे गौतम के वचन स्मरण होने लगे। उसने श्रीराम को नारायण रूप में अवतरित जान लिया ॥४०॥ उस अनिन्दिता ने अर्घ्य आदि से विधिवत् श्रीराम की पूजा की, उसके नेत्रों में आनन्दाश्रु उमड़ पड़े और उसने राम को साष्टांग प्रणाम किया॥ ४१ ॥ पुनः खड़ी हो गयी और सर्वाङ्ग से पुलकित हो रामका दर्शन किया। तदनन्तर गद्गद वाणी से राम की स्तुति करने लगी ॥ ४२ ॥

अहल्या ने कहा—हे जगन्निवास ! मैं आपके चरण-कमल में लगे हुए रजःकण के स्पर्श से धन्य हो गयी। यह हमारा महान् सौभाग्य है कि आपके जिन पादारविन्दों को ब्रह्मा एवं शंकर निरन्तर एकाग्रचित्त हो ध्यान में लानेका प्रयत्न किया करते हैं, मैं आपके उन पाद-पद्मों का स्पर्श कर रही हूँ ॥ ४३ ॥ हे राम ! तुम्हारी लीलाएँ अत्यन्त विचित्र हैं। आप मनुष्य रूपमें अवतरित होकर भी अपनी लीला से सारे जगत्

यत्पाद-पङ्कज-पराग-पवित्रगात्रा भागीरथी भवविरिञ्चिमुखान् पुनाति ।
साक्षात् स एव मम दृग्विषयो यदास्ते, किं वर्ण्यते मम पुराकृतभागधेयम् ४५
मर्त्यावतारे मनुजाकृतिं हरिं रामाभिधेयं रमणीयदेहिनम् ।
धनुर्धरं पद्मविशाललोचनं, भजामि नित्यं न परान् भजिष्ये ॥४६॥
यत्पादपङ्कजरजः श्रुतिभिर्विमृग्यं, यन्नाभिपङ्कजभवः कमलासनश्च ।
यन्नामसाररसिको भगवान् पुरारिस्तं रामचन्द्रमनिशं हृदि भावयामि ४७
यस्यावतारचरितानि विरिञ्चिलोके, गायन्ति नारदमुखा भवपद्मजाद्याः ।
आनन्दजाश्रु-परिषिक्त-कुचाग्रसीमा, वागीश्वरी च तमहं शरणं प्रपद्ये ॥४८
सोऽयं परात्मा पुरुषः पुराणएकः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः ।
मायातनुं लोकविमोहनीयां, धत्ते परानुग्रह एष रामः ॥४९॥
अयं हि विश्वोद्भवसंयमानामेकः स्वमायागुणबिम्बितो यः ।
विरिञ्चि-विष्ण्वीश्वर-नामभेदान्, धत्ते स्वतन्त्रः परिपूर्ण आत्मा ॥५०॥

को मोहित करते रहते हैं । यद्यपि आप चरणादि से रहित हैं फिर भी आप निरन्तर चलते रहते हैं । आप पूर्णानन्द हैं तथा सर्वथा माया से परे भी हैं ॥ ४४ ॥ जिनके चरणरज से पवित्र भगवती भागीरथी शिव, ब्रह्मा आदि देवेशों को भी पुनीत करती रहती हैं, उन परमात्माका मैं साक्षात् दर्शन कर रही हूँ । अतः मैं अपने पूर्वजन्म में किये गये, सुकृत का किस प्रकार वर्णन करूँ ॥ ४५ ॥ मैं इस मृत्युलोक में परम रमणीय मनुष्य देह धारण किये हुए धनुषधारी कमल-लोचन परमात्मा स्वरूप श्रीराम को भजती हूँ । और किसी के भजन की इच्छा मुझ में नहीं हैं ॥ ४६ ॥

श्रुतियाँ जिनके चरण-कमल के रज को ढूँढ़ती रहती है । जिनके नाभि में उत्पन्न हुए कमल से ब्रह्मा का आविर्भाव हुआ है । भगवान् सदा-शिव जिनके नामामृत के रसिक हैं । उन रामचन्द्रका मैं निरन्तर ध्यान करती हूँ ॥ ४७ ॥ जिनके अवतार चरित्रों का गान ब्रह्मलोक में नारदादि महार्षिगण एवं सदाशिव तथा ब्रह्मदेव आदि देवेश्वरगण तथा आनन्दाश्रुओं से परिपूर्ण कुचाग्र महा सरस्वती आदि महा देवियाँ किया करती हैं, मैं उन परमात्मा की शरण का आश्रय करती हूँ ॥ ४८ ॥ वही पुराण पुरुष परमातमा जो अद्वितीय, स्वयंप्रकाश, अनन्त एवं सबका आदि कारण हैं, सबके ऊपर अनुग्रह करने के लिये इस राम के स्वरूप में जगन्मोहन,

नमोऽस्तु ते राम तवाङ्घ्रिपङ्कजं, श्रिया धृतं वक्षसि लालितं प्रियात् ।
आक्रान्तमेकेन जगत्त्रयं पुरा, ध्येयं मुनीन्द्रैरभिमानवर्जितैः ॥५१॥
जगतामादिभूतस्त्वं जगत्त्वं जगदाश्रयः ।
सर्वभूतेष्वसंयुक्त एको भाति भवान् परः ॥५२॥
ओंकारवाच्यस्त्वं राम वाचामविषयः पुमान् ।
वाच्य-वाचकभेदेन भवानेव जगन्मयः ॥५३॥
कार्य - कारणकर्तृत्व - फलसाधन - भेदतः ।
एको विभासि राम त्वं मायया बहुरूपया ॥५४॥
त्वन्मायामोहितधियस्त्वां न जानन्ति तत्त्वतः ।
मानुषं त्वाभिमन्यन्ते मायिनं परमेश्वरम् ॥५५॥
आकाशवत्त्वं सर्वत्र बहिरन्तर्गतोऽमलः ।
असङ्गो ह्यचलो नित्यः शुद्धो बुद्धः सदव्ययः ॥५६॥

---

माया मय शरीर धारण किया है ॥ ४९ ॥ सर्वथा स्वतन्त्र एवं परिपूर्ण यह रामरूप परमात्मा यद्यपि बिना दूसरे की सहायता से अकेले विश्व की सृष्टि, पालन तथा संहार का कारण हैं, तथापि अपने माया गुणका आश्रय लेने के कारण वह ब्रह्मा, विष्णु तथा शङ्कर आदि नाना नामों से पुकारा जाता है ॥ ५० ॥

हे राम ! मैं आपके उन चरण-कमलों में नमस्कार करती हूँ, जिसे लक्ष्मी अपने वक्षःस्थल पर रख कर बड़े प्रेम से लालन करती रहती हैं, जिसने अकेले ही तीनों जगत् को नाप लिया था एवं निरभिमान हो महामुनिगण आपके जिन चरणों का निरन्तर ध्यान करते रहते हैं ॥ ५१ ॥ हे राम ! आप जगत् के कारण हैं, जगत् स्वरूप हैं तथा जगत् के अधिष्ठान हैं, तथा सभी प्राणियों से पृथक् अद्वितीय एवं परब्रह्म स्वरूप हैं ॥ ५२ ॥ हे राम ! आप प्रणव से वाच्य हैं, वाणी के अविषय एवं परमात्मा स्वरूप हैं तथा वाच्य-वाचक भेद (शब्द और अर्थ स्वरूप) से इस जगत् के स्वरूप हैं ॥ ५३ ॥ हे राम ! आप एक होते हुए भी अपनी बहुरूपमयी माया से कार्य-कारण कर्ता फल तथा साधन भेद से अनेक रूपों में भासित हो रहे हैं ॥ ५४ ॥ हे राम ! तुम्हारी माया से मोहित होने के कारण अज्ञ लोग वस्तुतः आपके रूप को नहीं जानते हैं, वे मायापति आप परमेश्वर को

योषिन्मूढाहमज्ञा ते तत्त्वं जाने कथं विभो ।
तस्मात्ते शतशो राम नमस्कुर्यामनन्यधीः ॥५७॥
देव मे यत्र कुत्रापि स्थिताया अपि सर्वदा ।
त्वत्पादकमले सक्ता भक्तिरेव सदाऽस्तु मे ॥५८॥
नमस्ते पुरुषाध्यक्ष नमस्ते भक्तवत्सल ।
नमस्तेऽस्तु हृषीकेश नारायण नमोऽस्तु ते ॥५९॥
भवभयहरमेकं भानुकोटिप्रकाशं, करधृत-शरचापं कालमेघावभासम् ।
कनकरुचिरवस्त्रं रत्नवत्कुण्डलाढ्यं, कमलविशदनेत्रं सानुजं राममीडे॥६०
स्तुत्वैवं पुरुषं साक्षाद्राघवं पुरतः स्थितम् ।
परिक्रम्य प्रणम्याशु सानुज्ञाता ययौ पतिम् ॥६१॥

---

मनुष्य समझते हैं ॥ ५५ ॥ हे राम ! आप आकाश के समान निर्मल हैं तथा इस जगत् के भीतर और बाहर विराजमान हैं। आप असङ्ग कूटस्थ नित्य शुद्ध-बुद्ध सत्स्वरूप एवं विकारों से रहित हैं ॥ ५६ ॥ हे नाथ ! मैं तो मूढ़ अज्ञानी स्त्री जाति की हूँ, अतः आपके तत्त्व को किस प्रकार जान सकती हूँ। अतः अनन्य भाव से मैं केवल आप को सैकड़ों नमस्कार करती हूँ ॥५७॥ हे देव ! मैं जहाँ-कहीं भी रहूँ। वहीं सर्वदा आप के चरण-कमलों में मेरी आसक्ति पूर्ण भक्ति बनी रहे ॥ ५८ ॥ हे पुरुषोत्तम ! आप को नमस्कार है, हे भक्त-वत्सल ! आपको नमस्कार है, हे हृषीकेश ! आपको नमस्कार है। तथा हे नारायण ! आपको पुनः बारम्बार नमस्कार है ॥ ५९ ॥

जो अकले ही संसार के भय को दूर करने वाले हैं, सैकड़ों सूर्य के समान देदीप्यमान हैं, जिनके हाथ में धनुष और बाण सुशोभित हैं, जिनके शरीर की दिव्य कान्ति, काले मेघ के समान है, जो सोने के समान जगमगाते हुए पीताम्बर धारण किये हुए हैं तथा रत्नजटित कुण्डलों से युक्त एवं कमल के समान विशाल नेत्रों से शोभित हो रहे हैं, लक्ष्मण सहित उन श्रीराम की मैं स्तुति करती हूँ ॥६०॥ इस प्रकार अपने सम्मुख स्थित साक्षात् परमात्मा पुरुष राम की परिक्रमा और वन्दना कर अहल्या उनकी आज्ञा ले शीघ्र ही अपने पति के पास चली गयी ॥६१॥

अहल्यया कृतं स्तोत्रं यः पठेद् भक्तिसंयुतः ।
स मुच्यतेऽखिलैः पापैः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥६२॥
पुत्राद्यर्थे पठेद् भक्त्या रामं हृदि निधाय च ।
संवत्सरेण लभते वन्ध्या अपि सुपुत्रकम् ॥६३॥
सर्वान् कामानवाप्नोति रामचन्द्र - प्रसादतः ॥६४॥
ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पगोऽपि पुरुषः स्तेयी सुरापोऽपि वा
मातृ - भ्रातृ-विहिंसकोऽपि सततं भोगैकबद्धातुरः ।
नित्यं स्तोत्रमिदं जपन् रघुपतिं भक्त्या हृदिस्थं स्मरन्
ध्यायन् मुक्तिमुपैति किं पुनरसौ स्वाचारयुक्तो नरः ॥६५॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे बालकाण्डे
अहल्योद्धरणं नाम पञ्चमः सर्गः ॥५॥

---

जो पुरुष अहल्या के द्वारा किये गये इस स्तोत्र को भक्ति-पूर्वक पढ़ता है, वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है तथा साक्षात् परम पद को प्राप्त कर लेता है ॥६२॥ जो वन्ध्या स्त्री पुत्र-प्राप्ति की कामना से राम का हृदय में ध्यान कर भक्ति पूर्वक इस स्तोत्र का पाठ करती है, उसे एक वर्ष के भीतर ही सुन्दर पुत्र पैदा होता है ॥६३॥ इस स्तोत्र का पाठ करने वाले मनुष्य का समस्त मनोभिलषित पूर्ण होता है ॥६४॥ ब्राह्मण का वध करने वाला ब्रह्मद्रोही, गुरुपत्नीगामी, सुवर्णस्तेयी एवं सुरा पान करने वाला, मातृ-पितृ-भ्रातृ वधकर्त्ता तथा निरन्तर भोगासक्त रहनेवाला पुरुष भी यदि अपने हृदय में विराजमान श्रीराम का स्मरण तथा ध्यान करते हुए भक्ति पूर्वक इस स्तोत्र का पाठ करे, तो वह मुक्त हो जाता है फिर स्वधर्म परायण आचार-निष्ठ पुरुषों की बात ही क्या है ॥६५॥

इस प्रकार 'शिव-प्रिया' हिन्दी टीका सहित अध्यात्म-रामायण के उमा-महेश्वर संवाद में बालकाण्ड का अहल्योद्धार नामक पञ्चम सर्ग समाप्त ।

## ६. षष्ठः सर्गः

(धनुर्भङ्ग एवं विवाह)

सूत उवाच

विश्वामित्रोऽथ तं प्राह राघवं सहलक्ष्मणम् ।
गच्छामो वत्स मिथिलां जनकेनाभिपालिताम् ॥१॥
दृष्ट्वा क्रतुवरं पश्चादयोध्यां गन्तुमर्हसि ।
इत्युक्त्वा प्रययौ गङ्गामुत्तर्तुं सहराघवः ।
तस्मिन् काले नाविकेन निषिद्धो रघुनन्दनः ॥२॥

नाविक उवाच

क्षालयामि तव पादपङ्कजं नाथ दारुदृषदोः किमन्तरम् ।
मानुषीकरणचूर्णमस्ति ते पादयोरिति कथा प्रथीयसी ॥३॥

पादाम्बुजं ते विमलं हि कृत्वा, पश्चात् परं तीरमहं नयामि ।
नोचेत्तरी सद्युवती मलेन, स्याच्चेद् विभो विद्धि कुटुम्बहानिः ॥४॥

---

सूत जी ने कहा—अहल्या के पतिलोक चले जाने के बाद विश्वामित्र ने लक्ष्मण के सहित श्रीराम से कहा—हे वत्स ! अब हम लोग जनक द्वारा पालित मिथिलापुरी को चलेंगे ॥१॥ वहाँ पर धनुष यज्ञ देखने के अनन्तर तुम अयोध्यापुरी जा सकते हो। ऐसा कह कर विश्वामित्र जी राम को साथ लेकर गङ्गाजी को पार करने के लिये तट पर आये। उस समय नाविक ने राम को नाव पर चढ़ने के लिए मना कर दिया ॥२॥

नाविक ने कहा–हे नाथ ! यह बात प्रसिद्ध हो गयी है कि आप के पैरों में मनुष्य बनाने वाला कोई चूर्ण है जब पत्थर भी आप के चरण-रज के स्पर्श से स्त्री का रूप धारण कर सकता है, तो लकड़ी से बनी नाव उससे कहीं अधिक कोमल ही होती है, अतः वह भी स्त्री रूप न हो जाय, इसलिए मैं आप के चरण-कमलों को धोऊँगा ॥३॥ सर्व-प्रथम आप के चरणों को धोकर उसमें लगे हुए धूल को दूर कर मल रहित करूँगा। तदनन्तर आप को गङ्गा पार ले चलूँगा। यदि ऐसा नहीं करूँगा तो यह नाव भी आपके चरण में लिपटे हुए धूलि के स्पर्श से सुन्दर युवती हो जायेगी। और मेरे सारे कुटुम्ब की जीविका नष्ट हो जायेगी ॥४॥ ऐसा कह कर केवट ने

इत्युक्त्वा क्षालितौ पादौ परं तीरं ततो गताः ।
कौशिको रघुनाथेन सहितो मिथिलां ययौ ॥५॥
विदेहस्य पुरं प्रातर्ऋषिवाटं समाविशत् ।
प्राप्तं कौशिकमाकर्ण्य जनकोऽतिमुदान्वितः ॥६॥
पूजाद्रव्याणि संगृह्य सोपाध्यायः समाययौ ।
दण्डवत् प्रणिपत्याऽथ पूजयामास कौशिकम् ॥७॥
पप्रच्छ राघवौ दृष्ट्वा सर्वलक्षणसंयुतौ ।
द्योतयन्तौ दिशः सर्वाश्चन्द्र-सूर्याविवापरौ ॥८॥
कस्यैतौ नरशार्दूलौ पुत्रौ देवसुतोपमौ ।
मनःप्रीतिकरौ मेऽद्य नर - नारायणाविव ॥९॥
प्रत्युवाच मुनिः प्रीतो हर्षयन् जनकं तदा ।
पुत्रौ दशरथस्यैतौ भ्रातरौ राम-लक्ष्मणौ ॥१०॥
मखसंरक्षणार्थाय मयानीतौ पितुः पुरात् ।
आगच्छन् राघवो मार्गे ताटकां विश्वघातिनीम् ॥११॥

---

श्रीराम के चरण-कमलों को धोया फिर उन सभी लोगों को गङ्गा के पार ले गया। इस प्रकार विश्वामित्र राम एवं लक्ष्मण को साथ लेकर मिथिलापुरी को चले ॥५॥ प्रातःकाल होते ही मिथिलापुरी में जा पहुँचे और वहाँ पर ऋषियों के निवास-स्थान पर ठहर गये। विश्वामित्र के आने का समाचार सुनकर जनकजी परम प्रसन्न हुए ॥६॥ और उनके पूजा की सामग्री एकत्रित कर उपाध्याय के साथ विश्वामित्र की अगवानी करने के लिए जा पहुँचे। उन्होंने विश्वामित्र को साष्टाङ्ग प्रणाम किया और उनकी पूजा की ॥७॥ फिर सम्पूर्ण लक्षणों से सर्वाङ्गपूर्ण एवं अपने तेज से दशों दिशाओं को उद्भासित करते हुए दूसरे सूर्य एवं चन्द्रमा के समान उन राजकुमारों को देखकर उन्होंने विश्वामित्र से पूछा ॥८॥ हे महर्षे ! देवपुत्र अश्विनी कुमारों के समान परम मनोहर ये नरशार्दूल किसके पुत्र हैं ? इस समय ये दोनों मेरे हृदय में साक्षात् नर-नारायण के समान प्रीति उत्पन्न कर रहे हैं ॥९॥ तब मुनि ने जनक को हर्षित करते हुए प्रसन्नता से कहा—ये दोनों महाराज दशरथ के पुत्र हैं, इनका नाम राम और लक्ष्मण है ॥१०॥ मैं अपनी यज्ञ की रक्षा के लिए इन्हें अयोध्या से यहाँ लाया हूँ। मार्ग में आते

शरेणैकेन हतवान्नोदितो मेऽतिविक्रमः ।
ततो ममाश्रमं गत्वा मम यज्ञविहिंसकान् ॥१२॥
सुबाहुप्रमुखान् हत्वा मारीचं सागरेऽक्षिपत् ।
ततो गङ्गातटे पुण्ये गौतमस्याश्रमं शुभम् ॥१३॥
गत्वा तत्र शिलारूपा गौतमस्य वधूः स्थिता ।
पादपङ्कजसंस्पर्शात् कृता मानुषरूपिणी ॥१४॥
दृष्ट्वाऽहल्यां नमस्कृत्य तया सम्यक् प्रपूजितः ।
इदानीं द्रष्टुकामस्ते गृहे माहेश्वरं धनुः ॥१५॥
पूजितं राजभिः सर्वैर्दृष्टमित्यनुशुश्रुवे ।
अतो दर्शय राजेन्द्र शैवं चापमनुत्तमम् ।
दृष्ट्वा-ऽयोध्यां जिगमिषुः पितरं द्रष्टुमिच्छति ॥१६॥
इत्युक्तो मुनिना राजा पूजार्हाविति पूजया ।
पूजयामास धर्मज्ञो विधिदृष्टेन कर्मणा ॥१७॥

---

हुए मेरी प्रेरणा से अत्यन्त पराक्रमी इन श्रीरघुनाथ जी ने एक ही बाण से विश्व का विघात करनेवाली ताटका का वध किया। तदनन्तर मेरे आश्रम में जाकर मेरे यज्ञ में विघ्न करने वाले सुबाहु आदि प्रमुख राक्षसों को मार कर मारीच नामक राक्षस को समुद्र में फेंक दिया। फिर ये गंगा तट पर महर्षि गौतम के पुनीत आश्रम में आये ॥११-१३॥ जहाँ पर गौतम मुनि की पत्नी शिला हो गयी थीं, वहाँ जाकर उन्होंने अपने चरण-कमल के स्पर्श से उसे मनोहर महर्षि की पत्नी बना दिया ॥१४॥ अहल्या को देख कर श्रीरामजी ने उसको नमस्कार किया। फिर उससे भली प्रकार पूजित हो आपके यहाँ रखे गये शङ्कर जी के धनुष को देखने के लिए आये हुए हैं ॥१५॥ मैंने सुना है कि, आप के द्वारा वह धनुष नित्य पूजा जाता है और सभी राजा लोग उसे देख चुके हैं। अतः हे राजेन्द्र ! उस परम श्रेष्ठ शंकर के धनुष को इन्हें दिखा दीजिए। उसे देख कर ये अपने पिता के दर्शन के लिए शीघ्र ही अयोध्या जाना चाहते हैं ॥१६॥

मुनिवर विश्वामित्रजी से इस प्रकार कहे जाने पर, धर्मज्ञ राजा जनक ने राम और लक्ष्मण को पूजा के योग्य जान कर विधि पूर्वक उनकी पूजा

ततः सम्प्रेषयामास मन्त्रिणं बुद्धिमत्तरम् ।

जनक उवाच

शीघ्रमानय विश्वेश-चापं रामाय दर्शय ॥१८॥

ततो गते मन्त्रिवरे राजा कौशिकमब्रवीत् ।
यदि रामो धनुर्धृत्वा कोट्यामारोपयेद् गुणम् ॥१९॥

तदा मयात्मजा सीता दीयते राघवाय हि ।
तथेति कौशिकोऽप्याह रामं संवीक्ष्य सस्मितम् ॥२०॥

शीघ्रं दर्शय चापाग्र्यं रामायाऽमिततेजसे ।
एवं ब्रुवति मौनीश आगताश्चापवाहकाः ॥२१॥

चापं गृहीत्वा बलिनः पञ्चसाहस्रसङ्ख्यकाः ।
घण्टाशतसमायुक्तं मणिवज्रादिभूषितम् ॥२२॥

दर्शयामास रामाय मन्त्री मन्त्रयतां वरः ।
दृष्ट्वा रामः प्रहृष्टात्मा बुद्ध्वा परिकरं दृढम् ॥२३॥

---

की। तदनन्तर धनुष ले आने के लिए अपने बुद्धिमान् मन्त्री को भेजा। जनक ने कहा—हे मन्त्रिन् ! तुम शीघ्र ही महादेव जी के धनुष को लाकर श्री रामचन्द्र जी को दिखाओ ॥१७-१८॥ मन्त्री के चले जाने पर राजा जनक ने विश्वामित्र जी से कहा, यदि रामचन्द्र धनुष उठा कर उसके दोनों किनारों पर रोंदा चढ़ा देंगे तो मैं अपनी कन्या सीता का विवाह निश्चय ही इनके साथ कर दूँगा। तब विश्वामित्र ने राम की ओर निहारते हुए मन्द स्मित से 'तथास्तु' ऐसा कहा ॥१९-२०॥

विश्वामित्र ने जनक से कहा—हे राजन् ! आप उस श्रेष्ठ धनुष को परम तेजस्वी राम को दिखाइए। विश्वामित्र के इतना कहते ही धनुष-वाहक वहाँ आ पहुँचे ॥२१॥ पाँच हजार वीर उस धनुष को लेकर वहाँ आये। उस धनुष में सैकड़ों घण्टियाँ बँधी हुई थीं, तथा अनेक मणि और रत्नों से वह धनुष शोभित हो रहा था ॥२२॥ जनक के मन्त्रणा देने वालों में परम श्रेष्ठ मन्त्री ने वह धनुष श्रीराम को दिखाया। धनुष देख कर राम को परम प्रसन्नता हुई। उन्होंने शीघ्र ही कमर में फेंटा बाँध लिया,

गृहीत्वा वामहस्तेन लीलया तोलयन् धनुः ।
आरोपयामास गुणं पश्यत्स्वखिलराजसु ॥२४॥
ईषदाकर्षयामास पाणिना दक्षिणेन सः ।
बभञ्जाखिलहृत्सारो दिशः शब्देन पूरयन् ॥२५॥
दिशश्च विदिशश्चैव स्वर्गं मर्त्यं रसातलम् ।
तदद्भुतमभूत्तत्र देवानां दिवि पश्यताम् ॥२६॥
आच्छादयन्तः कुसुमैर्देवाः स्तुतिभिरीडिरे ।
देवदुन्दुभयो नेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥२७॥
द्विधा भग्नं धनुर्दृष्ट्वा राजालिङ्ग्य रघूद्वहम् ।
विस्मयं लेभिरे सीतामातरोऽन्तःपुराजिरे ॥२८॥
सीता स्वर्णमयीं मालां गृहीत्वा दक्षिणे करे ।
स्मितवक्त्रा स्वर्णवर्णा सर्वाभरणभूषिता ॥२९॥

उन्होंने खेल में ही उस धनुष को बाँयें हाथ से उठा कर ऊपर किया और सम्पूर्ण राजमण्डल के देखते-देखते उस पर डोरी कस दी ॥२३ २४॥ फिर तो दाहिने हाथ से उस धनुष को सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय सर्वस्व राम ने थोड़ा सा खींचा । फिर दशों दिशाओं को शब्दायमान करते हुए उस धनुष को तोड़ दिया ॥२५॥ दिशा, विदिशा, स्वर्ग लोक, मृत्यु लोक तथा पाताल लोक उस धनुष के टूटने के शब्द से व्याप्त हो गया और स्वर्ग लोक में स्थित देवताओं के देखते-देखते यह एक बड़ा आश्चर्य-सा हो गया ॥२६॥ देवताओं ने पुष्प-वर्षा से राम को आच्छादित कर लिया और उनकी स्तुति करने लगे । देवताओं ने नगाड़े आदि बाजे बजाये और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं ॥२७॥

इस प्रकार धनुष को दो टुकड़ों में टूटा हुआ देख कर महाराज जनक ने श्रीरामचन्द्र जी का आलिङ्गन किया । उनके अन्तःपुर की स्त्रियाँ, सीता की माताएँ आदि आश्चर्य से चकित हो गयीं ॥२८॥

इधर सुवर्ण के समान गौर वर्ण वाली, सर्वालङ्कार भूषिता श्री सीता जी मन ही मन मुसकाती हुई अपने दाहिने हाथ में सुवर्णमयी माला लेकर राम के समीप आ गयीं ॥२९॥

मुक्ताहारैः कर्णपत्रैः क्वणच्चरणनूपुरा ।
दुकूलपरिसंवीता वस्त्रान्तर्व्यञ्जितस्तनी ॥३०॥
रामस्योपरि निक्षिप्य स्मयमाना मुदं ययौ ।
ततो मुमुदिरे सर्वे राजदाराः स्वलङ्कृतम् ॥३१॥
गवाक्षजालरन्ध्रेभ्यो दृष्ट्वा लोकविमोहनम ।
ततोऽब्रवीन्मुनिं राजा सर्वशास्त्रविशारदः ॥३२॥
भो कौशिक मुनिश्रेष्ठ ! पत्रं प्रेषय सत्वरम् ।
राजा दशरथः शीघ्रमागच्छतु सपुत्रकः ॥३३॥
विवाहार्थं कुमाराणां सदारः सहमन्त्रिभिः ।
तथेति प्रेषयामास दूतांस्त्वरित-विक्रमान् ॥३४॥
ते गत्वा राजशार्दूलं रामश्रेयो न्यवेदयन् ।
श्रुत्वा रामकृतं राजा हर्षेण महताप्लुतः ॥३५॥
मिथिलागमनार्थाय त्वरयामास मन्त्रिणः ।
गच्छन्तु मिथिलां सर्वे गजा-ऽश्व-रथ-पत्तयः ॥३६॥

---

उस समय वे मोतियों की माला एवं कर्णफूल पहने हुए थीं । चलते समय उनके पैरों में पावजेब के शब्दों का झंकार हो रहा था । नवीन रेशमी साड़ी पहने हुए थीं तथा उनके पीन पयोधर उस वस्त्र से झलक रहे थे ॥३०॥ सीताजी मन्द मुनकाती हुई राम के गले में जयमाल डाल कर बहुत प्रसन्न हुईं । उस समय अन्तःपुर की समस्त रानियाँ भी लोक-विमोहन राम के परम लावण्यमय रूप को झरोखे से देखकर प्रसन्न हो रही थीं । तदनन्तर सर्वशास्त्रज्ञ राजा जनक ने विश्वामित्र से कहा ॥३१-३२॥

हे कौशिक जी ! आप शीघ्र ही महाराज दशरथ के पास पत्र भेजिए । वे अपने कुमारों के विवाह के लिए शीघ्र ही पुत्र, स्त्री एवं मन्त्रियों के साथ यहाँ पधारें । विश्वामित्रजी ने 'तथास्तु' कह कर महाराज दशरथ के पास दूतों को भेजा ॥३३-३४॥ उन दूतों ने अयोध्या में जाकर राजशार्दूल महाराज दशरथ से राम का समाचार कहा । राम के अद्भुत पराक्रम का समाचार सुन कर महाराज दशरथ आनन्द-सागर में डूब गये ॥३५॥ उन्होंने शीघ्रता से मिथिलापुरी चलने के लिए मन्त्रियों को आज्ञा दी और कहा,

रथमानय मे शीघ्रं गच्छाम्यद्यैव मा चिरम् ।
वसिष्ठस्त्वग्रतो यातु सदारः सहितोऽग्निभिः ॥३७॥
राममातॄः समादाय मुनिर्मे भगवान् गुरुः ।
एवं प्रस्थाप्य सकलं राजर्षिर्विपुलं रथम् ॥३८॥
महत्या सेनया सार्धमारुह्य त्वरितो ययौ ।
आगतं राघवं श्रुत्वा राजा हर्षसमाकुलः ॥३९॥
प्रत्युज्जगाम जनकः शतानन्दपुरोधसा ।
यथोक्तपूजया पूज्यं पूजयामास सत्कृतम् ॥४०॥
रामस्तु लक्ष्मणेनाशु ववन्दे चरणौ पितुः ।
ततो हृष्टो दशरथो रामं वचनमब्रवीत् ॥४१॥
दिष्टया पश्यामि ते राम मुखं फुल्लाम्बुजोपमम् ।
मुनेरनुग्रहात् सर्वं सम्पन्नं मम शोभनम् ॥४२॥
इत्युक्त्वाऽऽघ्राय मूर्धानमालिङ्ग्य च पुनः पुनः ।
हर्षेण महताविष्टो ब्रह्मानन्दं गतो यथा ॥४३॥

---

घोड़े, हाथी, रथ एवं पैदल सेना सहित सभी लोग साथ में चलें ॥३६॥ मेरे कुल-गुरु भगवान् वसिष्ठ जी अरुन्धती एवं अग्नियों के सहित राम की माताओं को लेकर सबसे आगे चलें। इस प्रकार सबको विदा कर महाराज दशरथ स्वयं एक बड़े विशाल रथ पर सवार हो महती सेना के साथ मिथिलापुरी की ओर चले। इस प्रकार महाराज दशरथ के आगमन की सूचना पाकर महाराज जनक उनकी अगवानी करने के लिए प्रसन्नता के साथ अपने पुरोहित शतानन्द जी के साथ आये और पूजा के योग्य महाराज दशरथ का आदर पूर्वक पूजन किया ॥३७-४०॥

तदनन्तर श्री राम जी भी लक्ष्मण के साथ जाकर अपने पिता को प्रणाम किया। फिर महाराज दशरथ प्रसन्न होकर राम से कहने लगे ॥४१॥ हे राम ! आज इतने दिन के बाद बड़े सौभाग्य से कमल के समान विकसित तुम्हारे मुख को देख रहा हूँ। महामुनि विश्वामित्र के अनुग्रह से मेरा कल्याण ही हुआ ॥४२॥ इस प्रकार राम का बारम्बार आलिङ्गन करते हुए महाराज दशरथ ने उनका मस्तक सूँघा। तथा प्रसन्नता से आनन्द-सागर में डूब गये ॥४३॥

ततो जनकराजेन मन्दिरे सन्निवेशितः ।
शोभने सर्वभोगाढ्ये सदारः स-सुतः सुखी ॥४४॥
ततः शुभे दिने लग्ने सुमुहूर्ते रघूत्तमम् ।
आनयामास धर्मज्ञो रामं सभ्रातृकं तदा ॥४५॥
रत्नस्तम्भसुविस्तारे सुविताने सुतोरणे ।
मण्डपे सर्वशोभाढ्ये मुक्तापुष्पफलान्विते ॥४६॥
वेदविद्भिः सुसम्बाधे ब्राह्मणैः स्वर्णभूषितैः ।
सुवासिनीभिः परितो निष्ककण्ठीभिरावृते ॥४७॥
भेरी-दुन्दुभि-निर्घोषै-र्गीत-नृत्यैः समाकुले ।
दिव्यरत्नाञ्चिते स्वर्णपीठे रामं न्यवेशयत् ॥४८॥
वसिष्ठं कौशिकं चैव शतानन्दः पुरोहितः ।
यथाक्रमं पूजयित्वा रामस्योभयपार्श्वयोः ॥४९॥
स्थापयित्वा स तत्राऽग्निं ज्वालयित्वा यथाविधि ।
सीतामानीय शोभाढ्यां नानारत्नविभूषिताम् ॥५०॥

---

इसके बाद महाराज जनक ने रानियों एवं राजकुमारों के सहित महाराज दशरथ को एक ऐसे महल में ठहराया, जो सम्पूर्ण भोग सामग्रियों से परिपूर्ण था ॥४४॥ फिर परम धर्मज्ञ जनक ने शुभ दिन में सुन्दर मुहूर्त एवं शुभ लग्न के समय भाइयों सहित राम को बुलवाया ॥४५॥ फिर सर्वशोभा सम्पन्न एक विस्तीर्ण मण्डप में, जिसमें रत्न के खम्भे लगे हुए थे, जिसका चँदवा परम रमणीय था, जो उत्तम तोरण से युक्त था, जिसमें मोतियों के पुष्प और फल लगे हुए थे, जो वेदज्ञ ब्राह्मणों से ठसाठस भरा हुआ था और स्वर्णाभरण भूषित, सुन्दर वस्त्र धारण किये हुए सुहागिन स्त्रियाँ जिसको घेरे हुई थीं, उस मण्डप में श्री रामचन्द्र जी को, महाराज जनक ने दिव्य रत्न जटिल सुवर्णमय सिंहासन पर बैठाया। उस समय दुन्दुभी आदि बाजों के निर्घोष से तथा नृत्य एवं गान के शब्दों से बड़ा कोलाहल हो रहा था ॥४६-४८॥

पुनः जनक के पुरोहित शतानन्द ने क्रमशः वसिष्ठ और जनक का पूजन किया। तथा रामचन्द्र जी के दोनों पार्श्व भाग में उन्हें क्रमशः बैठाया ॥४९॥ और वैदिक मन्त्रों से सविधि अग्नि का स्थापन कर उसे

सभार्यो जनकः प्रायाद् रामं राजीवलोचनम् ।
पादौ प्रक्षाल्य विधिवत्तदपो मूर्ध्न्यधारयत् ॥५१॥

या धृता मूर्ध्नि शर्वेण ब्रह्मणा मुनिभिः सदा ।
ततः सीतां करे धृत्वा साक्षतोदकपूर्वकम् ॥५२॥

रामाय प्रददौ प्रीत्या पाणिग्रहविधानतः ।
सीता कमलपत्राक्षी स्वर्णमुक्तादिभूषिता ॥५३॥

दीयते मे सुता तुभ्यं प्रीतो भव रघूत्तम ।
इति प्रीतेन मनसा सीतां रामकरेऽर्पयन् ॥५४॥

मुमोद जनको लक्ष्मीं क्षीराब्धिरिव विष्णवे ।
उर्मिलां चौरसीं कन्यां लक्ष्मणाय ददौ मुदा ॥५५॥

तथैव श्रुतिकीर्तिं च माण्डवीं भ्रातृकन्यके ।
भरताय ददावेकां शत्रुघ्नायापरां ददौ ॥५६॥

---

प्रज्वलित किया । तत्पश्चात् सपत्नीक जनक जी नाना रत्नों से विभूषित जानकी को लेकर मण्डप में रामचन्द्र जी के समीप आये और श्रीराम का चरण धोकर उस चरणोदक को अपने शिर पर रखा ॥५०-५१॥

भगवान् के जिस चरणोदक को शिव, ब्रह्मा तथा अन्यान्य मुनि जन भी अपने शिर पर धारण करते हैं, उसे अपने शिर पर रखकर महाराज जनक ने चावल और जल अपने हाथ में ले सीताजी का हाथ पकड़ कर विवाह की विधि से प्रीति पूर्वक श्री रामजी को दान कर दिया। और कहा– हे रघूत्तम ! कमल के समान नेत्रों वाली, स्वर्ण और मोतियों के आभूषणों से युक्त इस सीता को आपके लिए दान दे रहा हूँ, आप प्रसन्न होइए। ऐसा कह कर उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से राम के लिए सीता समर्पित की फिर क्षीर सागर जिस प्रकार महालक्ष्मी को श्री विष्णु भगवान् के लिये दान कर प्रसन्नता का अनुभव करता है, उसी प्रकार वे भी प्रसन्न हुए। फिर अपनी औरसी कन्या उर्मिला को भी लक्ष्मण के लिए दान कर दिया ॥५२-५५॥ तथा अपने भाई की कन्या माण्डवी और श्रुति कीर्त्ति को भी क्रमशः भरत एवं शत्रुघ्न को विवाह दी ॥५६॥

चत्वारो दारसम्पन्ना भ्रातरः शुभलक्षणाः ।
विरेजुः प्रभया सर्वे लोकपाला इवापरे ॥५७॥

ततोऽब्रवीद् वसिष्ठाय विश्वामित्राय मैथिलः ।
जनकः स्वसुतोदन्तं नारदेनाभिभाषितम् ॥५८॥

यज्ञभूमिविशुद्ध्यर्थं कर्षतो लाङ्गलेन मे ।
सीतामुखात् समुत्पन्ना कन्यका शुभलक्षणा ॥५९॥

तामद्राक्षमहं प्रीत्या पुत्रिकाभावभाविताम् ।
अर्पिता प्रियभार्यायै शरच्चन्द्रनिभानना ॥६०॥

एकदा नारदोऽभ्यागाद् विविक्ते मयि संस्थिते ।
रणयन् महतीं वीणां गायन् नारायणं विभुम् ॥६१॥

पूजितः सुखमासीनो मामुवाच सुखान्वितः ।
शृणुष्व वचनं गुह्यं तवाभ्युदयकारणम् ॥६२॥

---

इस प्रकार अनन्त कल्याण-गुण सम्पन्न चारों भाई अपनी-अपनी पत्नियों के साथ दूसरे लोकपालों के समान प्रकाश-पुञ्ज से सुशोभित हुए ॥५७॥ पुनः मिथिलाधिपति जनक ने देवर्षि नारद के द्वारा कहा गया अपनी पुत्री का वृत्तान्त वसिष्ठ एवं विश्वामित्र को सुनाया ॥५८॥

जनक जी ने कहा–एक बार जब मैं यज्ञ-भूमि की शुद्धि के लिए हल चला रहा था, उसी समय मेरे हल के अग्रभाग से शुभलक्षणा इस सीता का जन्म हुआ ॥५९॥ जब मैंने इसे देखा तो मुझे इसमें कन्या के समान प्रीति उत्पन्न हुई। फिर शरत्कालीन चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाली इस कन्या को अपनी प्रिय पत्नी को सौंप दिया ॥६०॥ एक दिन जब मैं एकान्त में बैठा हुआ था, उसी समय देवर्षि नारद अपनी महती नाम की वीणा बजाते हुए और सर्वव्यापक श्री भगवान् नारायण का गुणगान करते हुए मेरे पास आये ॥६१॥ मैंने सत्कार पूर्वक उन्हें बैठाया और उनकी पूजा की। तब वे सुखपूर्वक बैठ कर प्रसन्न हो मुझ से बोले–हे राजन्! अपने कल्याण का कारण भूत एक गुप्त वचन सुनो ॥६२॥

परमात्मा हृषीकेशो भक्तानुग्रहकाम्यया ।
देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं रावणस्य वधाय च ॥६३॥
जातो राम इति ख्यातो मायामानुषवेषधृक् ।
आस्ते दाशरथिर्भूत्वा चतुर्धा परमेश्वरः ॥६४॥
योगमायापि सीतेति जाता वै तव वेश्मनि ।
अतस्त्वं राघवायैव देहि सीतां प्रयत्नतः ॥६५॥
नाऽन्येभ्यः पूर्वभार्यैषा रामस्य परमात्मनः ।
इत्युक्त्वा प्रययौ देवगतिं देवमुनिस्तदा ॥६६॥
तदारभ्य मया सीता विष्णोर्लक्ष्मीर्विभाव्यते ।
कथं मया राघवाय दीयते जानकी शुभा ॥६७॥
इति चिन्तासमाविष्टः कार्यमेकमचिन्तयम् ।
मत्पितामहगेहे तु न्यासभूतमिदं धनुः ॥६८॥
ईश्वरेण पुरा क्षिप्तं पुरदाहादनन्तरम् ।
धनुरेतत्पणं कार्यमिति चिन्त्य कृतं तथा ॥६९॥
सीतापाणिग्रहार्थाय सर्वेषां माननाशनम् ।
त्वत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ रामो राजीवलोचनः ॥७०॥

---

परमात्मा हृषीकेश भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने के लिए देवताओं की कार्य-सिद्धि तथा रावण का वध करने के लिए अपनी माया से मनुष्य रूप में अवतीर्ण हो राम के नाम से विख्यात हुए हैं ॥६३॥ वे परमेश्वर अपने को चार अंशों में विभक्त कर दशरथ के पुत्र बन कर अयोध्या में निवास करते हैं ॥६४॥ और इधर उनकी योगमाया सीता के रूप से तुम्हारे घर में प्रगट हुई हैं । अतः तुम प्रयत्न पूर्वक इस सीता का विवाह रामचन्द्र के साथ कर दो । दूसरों के साथ इसका विवाह कदापि मत करना । क्योंकि यह पहले से ही परमात्मा राम की भार्या हैं ॥६५॥ ऐसा कहकर देवर्षि नारद देवगति से चले गये ॥६६॥ उसी समय से मैं इस सीता को विष्णु-पत्नी लक्ष्मी समझता हूँ । मैं इसी चिन्ता में सदैव डूबा रहता था कि किस प्रकार शुभलक्षणा इस जानकी को राम के लिए दान करूँ ? पुनः मुझे एक युक्ति सूझी कि भगवान् शङ्कर ने त्रिपुर का वध करने के अनन्तर जो धनुष मेरे पितामह के यहाँ

आगतोऽत्र धनुर्द्रष्टुं फलितो मे मनोरथः ।
अद्य मे सफलं जन्म राम त्वां सह सीतया ॥७१॥
एकासनस्थं पश्यामि भ्राजमानं रविं यथा ।
त्वत्पादाम्बुधरो ब्रह्मा सृष्टिचक्रप्रवर्तकः ॥७२॥
बलिस्त्वत्पादसलिलं धृत्वाऽभूद् दिविजाधिपः ।
त्वत्पादपांसुसंस्पर्शादहल्या भर्तृशापतः ॥७३॥
सद्य एव विनिर्मुक्ता कोऽन्यस्त्वत्तोऽधिरक्षिता ॥७४॥
यत्पाद-पङ्कज-पराग-सुरागयोगि, वृन्दैर्जितं भवभयं जितकालचक्रैः ।
यन्नामकीर्तनपरा जितदुःखशोका, देवास्तमेव शरणं सततं प्रपद्ये ॥७५॥
इति स्तुत्वा नृपः प्रादाद् राघवाय महात्मने ।
दीनाराणां कोटिशतं रथानामयुतं तदा ॥७६॥

---

धरोहर के रूप में रखा है। उस धनुष को ही सीता के विवाह के लिए बाजी पर दाव के रूप में लगाना चाहिए। इससे सम्पूर्ण राजाओं का गर्व भी नष्ट हो जायेगा। ऐसा करने से हे मुनिश्रेष्ठ! आप की कृपा से कमल-नयन श्रीरामचन्द्र जी का आगमन इस धनुष को देखने के लिए हो गया। ऐसा करने से मेरा मनोरथ सिद्ध हो गया। हे राम! आज मेरा जन्म सार्थक हो गया।

जो सीता के साथ सूर्य के समान तेजस्वी आप को एक आसन पर विराजमान देख रहा हूँ। हे नाथ! आपके चरणोदक को अपने सिर पर धारण करने के कारण इस सृष्टि-चक्र के प्रवर्त्तक हो गये हैं ॥६७-७२॥ हे प्रभो! आप के चरणोदक को सिर पर धारण करने के कारण ही असुरराज बलि ने इन्द्र पद प्राप्त कर लिया है। बहुत क्या कहें, अहल्या आप के चरणों की धूलि के स्पर्श से पति के शाप से शीघ्र ही मुक्त हो गयी। आप से बढ़ कर मेरा और कौन रक्षक है ॥७३-७४॥ हे प्रभो! काल चक्र के प्रवाह को जीत लेने वाले योगी जन आपके पाद-पङ्कज के पराग का आश्रय लेकर संसार के समस्त भय को जीत कर निर्भय हो जाते हैं। एवं देवगण आप के नाम-संकीर्त्तन के प्रभाव से दुःख और शोक को जीत लेते हैं। मैं आप के उन चरण-कमलों की शरण ग्रहण करता हूँ ॥ ७५ ॥ इस प्रकार स्तुति कर महाराज जनक ने महात्मा श्रीरघुनाथ

अश्वानां नियुतं प्रादाद् गजानां षट्शतं तथा ।
पत्तीनां लक्षमेकं तु दासीनां त्रिशतं ददौ ॥७७॥
दिव्याम्बराणि हारांश्च मुक्तारत्नमयोज्ज्वलान् ।
सीतायै जनकः प्रादात् प्रीत्या दुहितृवत्सलः ॥७८॥
वसिष्ठादीन् सुसम्पूज्य भरतं लक्ष्मणं तथा ।
पूजयित्वा यथान्यायं तथा दशरथं नृपम् ॥७९॥
प्रस्थापयामास नृपो राजानं रघुसत्तमम् ।
सीतामालिङ्ग्य रुदतीं मातरः साश्रुलोचनाः ॥८०॥
श्वश्रू-शुश्रूषण-परा नित्यं राममनुव्रता ।
पातिव्रत्यमुपालम्ब्य तिष्ठ वत्से यथासुखम् ॥८१॥
प्रयाणकाले रघुनन्दनस्य, भेरी-मृदङ्गानक-तूर्यघोषः ।
स्वर्वासिभेरी-घन तूर्यशब्दैः, संमूर्च्छितो भूतभयङ्करोऽभूत् ॥८२॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
बालकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

---

जी को सौ करोड़ सुवर्ण मुद्रा, दस हजार रथ, दस लाख घोड़े, छह सौ हाथी, एक लाख पैदल सेना तथा तीन सौ दासियाँ दहेज में दीं ।।७६-७७।। पुनः दुहितृवत्सल श्री जनक ने प्रेम पूर्वक सीता को अनेक दिव्य वस्त्र तथा मोती के बने हुए रत्नजटित अनेकों हार दिये ।। ७८ ।।

तदनन्तर वसिष्ठ आदि की पूजा की, फिर भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न तथा महाराज दशरथ का यथोचित धन-मानादि से सत्कार कर रघुश्रेष्ठ महाराज दशरथ को विदा किया। माताओं ने भी रोती हुई सीता को गले लगाया और अश्रुपूर्ण नेत्रों से उन्हें आशीर्वाद दिया ।। ७९--८० ।। हे वत्से ! तुम सास की सेवा करती हुई रामचन्द्र का अनुगमन तथा पातिव्रत्य धर्म का पालन कर सुख पूर्वक रहो ।। ८१ ।। फिर श्री राम जी के प्रस्थान करने के समय भेरी, मृदङ्ग, आनक और तूर्य आदि बाजाओं का घोष जब आकाश में देवताओं के द्वारा बजाये गये तो भेरी, झाँझ और तूर्य आदि के शब्दों से मिल कर प्राणी मात्र को भय कारक हुआ ।। ८२ ।।

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या सहित अध्यात्मरामायण के उमा-महेश्वर संवाद में बालकाण्ड का षष्ठ सर्ग समाप्त ।। ६ ।।



## ७. सप्तमः सर्गः

### ( परशुराम से श्रीराम का साक्षात्कार )

सूत उवाच

अथ गच्छति श्रीरामे मैथिलाद्योजनत्रयम् ।
निमित्तान्यतिघोराणि ददर्श नृपसत्तमः ॥ १ ॥
नत्वा वसिष्ठं पप्रच्छ किमिदं मुनिपुङ्गव ।
निमित्तानीह दृश्यन्ते विषमाणि समन्ततः ॥ २ ॥
वसिष्ठस्तमथ प्राह भयमागामि सूच्यते ।
पुनरप्यभयं तेऽद्य शीघ्रमेव भविष्यति ॥ ३ ॥
मृगाः प्रदक्षिणं यान्ति पश्य त्वां शुभसूचकाः ।
इत्येवं वदतस्तस्य ववौ घोरतरोऽनिलः ॥ ४ ॥
मुष्णंश्चक्षूंषि सर्वेषां पांसुवृष्टिभिरर्दयन् ।
ततो व्रजन् ददर्शाग्रे तेजोराशिमुपस्थितम् ॥ ५ ॥

---

सूत जी ने कहा—मिथिला से विदा हो जब श्री रामचन्द्र जी के तीन योजन चलने पर राजसत्तम महाराज दशरथ ने अत्यन्त घोर अपशकुन देखे ॥ १ ॥ उसके बाद उन्होंने वसिष्ठजी को प्रणाम करके पूछा—हे मुनिश्रेष्ठ ! इसका क्या कारण है कि चारों ओर से अत्यन्त भयंकर अपशकुन दिखाई पड़ रहे हैं ॥ २ ॥ तब वसिष्ठ जी ने कहा—ये दिखाई देने वाले अपशकुन आगे होने वाले किसी भय की सूचना दे रहे हैं। परन्तु इन अपशकुनों से यह भी सूचित होता है कि पुनः शीघ्र ही अभय हो जायेगा ॥ ३ ॥ हे राजन् ! देखो, ये मृग तुम्हारे दाहिनी ओर से जा रहे हैं, जो तुम्हारे शुभ की सूचना दे रहे हैं। वसिष्ठ जी ऐसा कह ही रहे थे कि एकाएक अत्यन्त भयंकर वायु चलने लगा ॥४॥

धूलि की वर्षा करते हुए उस वायु ने सबको अन्धा कर दिया। फिर उन्होंने चलते-चलते एक तेज-पुञ्ज को अपने सम्मुख आता हुआ

कोटिसूर्यप्रतीकाशं विद्युत्पुञ्जसमप्रभम् ।
तेजोराशिं ददर्शाथ जामदग्न्यं प्रतापवान् ॥ ६ ॥
नीलमेघनिभं प्रांशुं जटामण्डलमण्डितम् ।
धनुःपरशुपाणिं च साक्षात् कालमिवान्तकम् ॥ ७ ॥
कार्तवीर्यान्तकं रामं दृप्तक्षत्रियमर्दनम् ।
प्राप्तं दशरथस्याग्रे कालमृत्युमिवापरम् ॥ ८ ॥
तं दृष्ट्वा भयसन्त्रस्तो राजा दशरथस्तदा ।
अर्घ्यादिपूजां विस्मृत्य त्राहि त्राहीति चाऽब्रवीत् ॥ ९ ॥
दण्डवत् प्रणिपत्याह पुत्रप्राणं प्रयच्छ मे ।
इति ब्रुवन्तं राजानमनादृत्य रघूत्तमम् ॥१०॥
उवाच निष्ठुरं वाक्यं क्रोधात् प्रचलितेन्द्रियः ।
त्वं राम इति नाम्ना मे चरसि क्षत्रियाधम ॥११॥

---

देखा ॥ ५ ॥ करोडों सूर्यों के समान परम तेजस्वी तथा विद्युत्-पुञ्ज के समान आभा वाले परशुराम को उन्होंने आता हुआ देखा ॥६॥ वे परशुराम काले मेघ के समान नील वर्ण, डील-डौल से ऊँचे और जटामण्डल धारण किये हुए, हाथों में धनुष और फरसा धारण किये हुए, प्राणियों का अन्त करने वाले साक्षात् काल जैसे प्रतीत हो रहे थे। ७ ॥ कार्त्तवीर्य का वध करने वाले, घमण्डी क्षत्रियों का वध करने वाले एवं दूसरे मृत्यु के समान वे परशुराम दशरथ के सामने सहसा आकर खड़े हो गये ॥ ८ ॥ अपने सामने खड़े उन परशुराम को देख कर महाराज दशरथ इतने भयसंत्रत हो गये कि उनका अर्घ्यादि से सत्कार करना भूल गये और 'रक्षा करो, रक्षा करो' ऐसा पुकारने लगे ॥९॥ उन्होंने परशुराम को साष्टाङ्ग प्रणाम किया और कहा—महाज ! मेरे पुत्रों को प्राणदान दो ॥१०॥ किन्तु इन की प्रार्थना की ओर कुछ भी ध्यान न देकर क्रोध से व्याकुल हुए परशुराम कठोर वाणी से रामचन्द्र जी से कहा—हे क्षत्रियाधम राम ! तू मेरे 'राम' इस नाम को धारण कर पृथ्वी में विख्यात हो कर विचरण करता है ॥ ११ ॥

द्वन्द्वयुद्धं प्रयच्छाशु यदि त्वं क्षत्रियोऽसि वै ।
पुराणं जर्जरं चापं भङ्क्त्वा त्वं कत्थसे मुधा ॥१२॥
अस्मिंस्तु वैष्णवे चापं आरोपयसि चेद् गुणम् ।
तदा युद्धं त्वया सार्धं करोमि रघुवंशज ॥१३॥
नो चेत् सर्वान् हनिष्यामि क्षत्रियान्तकरो ह्यहम् ।
इति ब्रुवति वै तस्मिंश्चचाल वसुधा भृशम् ॥१४॥
अन्धकारो बभूवाथ सर्वेषामपि चक्षुषाम् ।
रामो दाशरथिर्वीरो वीक्ष्य तं भार्गवं रुषा ॥१५॥
धनुराच्छिद्य तद्धस्तादारोप्य गुणमञ्जसा ।
तूणीराद् बाणमादाय संधायाकृष्य वीर्यवान् ॥१६॥
उवाच भार्गवं रामं शृणु ब्रह्मन् वचो मम ।
लक्ष्यं दर्शय बाणस्य ह्यमोघो मम सायकः ॥१७॥
लोकान् पादयुगं वाऽपि वद शीघ्रं ममाज्ञया ।
अयं लोकः परो वाऽस्य त्वया गन्तुं न शक्यते ॥१८॥

---

यदि तुम क्षत्रिय हो तो मेरे साथ द्वन्द्व युद्ध करो, तू पुराने जीर्ण धनुष को तोड़ कर व्यर्थ ही अभिमान कर रहा है ॥१२॥ हे रघुवंशज ! यदि तुम इस विष्णु के द्वारा दिये गये मेरे इस वैष्णव धनुष पर डोरी चढ़ा दो तो मैं तुम्हारे साथ द्वन्द्व युद्ध करूँगा ॥१३॥ यदि तुम ऐसा नहीं कर सकते तो मैं सबका वध कर डालूँगा। क्योंकि मैं क्षत्रियों का काल हूँ । परशुरामजी जिस समय ऐसा कह रहे थे, उस समय पृथ्वी बारम्बार काँप रही थी ॥१४॥ उस समय सभी के नेत्रों के सामने अन्धकार छा गया । तब दशरथ-नन्दन श्री राम ने परशुराम की ओर क्रोध से देखते हुए उनके हाथ से वह धनुष छीन लिया। और उसको खींचकर विना किसी प्रयत्न के उस पर डोरी कस दी। और तरकस से वाण निकाल कर धनुष पर रखा । फिर महापराक्रमी श्रीराम ने धनुष को खींचकर भृगुनन्दन परशुराम से कहा । हे ब्रह्मन् ! मेरी बात सुनो, मेरा वाण कभी निष्फल नहीं जाता, तुम इस बाण का लक्ष्य बताओ ॥१५-१७॥ इस वाण से क्या तुम्हारे पुण्य से अर्जित लोकों का विनाश करूँ? अथवा लोकान्तर में जाने वाले तुम्हारे इन दोनों पैरों को

एवं त्वं हि प्रकर्तव्यं वद शीघ्रं ममाज्ञया ।
एवं वदति श्रीरामे भार्गवो विकृताननः ॥१९॥

संस्मरन् पूर्ववृत्तान्तमिदं वचनमब्रवीत् ।
राम राम महाबाहो जाने त्वां परमेश्वरम् ॥२०॥

पुराणपुरुषं विष्णुं जगत्सर्गलयोद्भवम् ।
बाल्येऽहं तपसा विष्णुमाराधयितुमञ्जसा ॥२१॥

चक्रतीर्थं शुभं गत्वा तपसा विष्णुमन्वहम् ।
अतोषयं महात्मानं नारायणमनन्यधीः ॥२२॥

ततः प्रसन्नो देवेशः शङ्खचक्रगदाधरः ।
उवाच मां रघुश्रेष्ठ प्रसन्नमुखपङ्कजः ॥२३॥

श्रीभगवानुवाच

उत्तिष्ठ तपसो ब्रह्मन् फलितं ते तपो महत् ।
मच्चिदंशेन युक्तस्त्वं जहि हैहयपुङ्गवम् ॥२४॥

---

नष्ट करूँ ? इन दो लक्ष्यों में तुम शीघ्र ही बताओ कि मैं क्या करूँ ? अब तुम इस लोक या परलोक में कहीं नहीं जा सकते ॥१८॥

राम ने कहा—तुम शीघ्र ही मुझे बताओ कि अब मुझे तुम्हारे साथ क्या करना चाहिए। श्रीराम के ऐसा कहते ही परशुराम का मुखमण्डल मलिन हो गया ॥१९॥ फिर उन्हें पूर्व वृत्तान्त का स्मरण हो गया और कहने लगे—हे राम ! हे राम ! हे महाबाहो ! मैंने जान लिया कि आप साक्षात् परमेश्वर हैं ॥२०॥ आप सृष्टि की उत्पत्ति, पालन तथा संहार के कारणभूत पुराण-पुरुष विष्णु हैं। मैं अपनी बाल्यावस्था में तप द्वारा विष्णु की आराधना के लिए अनायास ही चक्रतीर्थ में गया और अनन्यभाव से तप करते हुए वहाँ मैंने श्री नारायण विष्णु को प्रसन्न कर लिया ॥ २१-२२॥ हे रघुश्रेष्ठ ! उस समय शङ्ख, चक्र, गदा धारण किये हुए प्रसन्न वदन देवेश्वर विष्णु ने मुझ से प्रसन्न होकर कहा ॥२३॥

श्री भगवान् ने कहा—हे ब्राह्मण ! अब तुम तपस्या मत करो। उठो ! तुम्हारा महान् तप सफल हो गया। तुमने जिस कार्य के लिए इतनी बड़ी

कार्तवीर्यं पितृहणं यदर्थं तपसः श्रमः ।
ततस्त्रिःसप्तकृत्वस्त्वं हत्वा क्षत्रियमण्डलम् ॥२५॥
कृत्स्नां भूमिं कश्यपाय दत्त्वा शान्तिमुपावह ।
त्रेतामुखे दाशरथिर्भूत्वा रामोऽहमव्ययः ॥२६॥
उत्पत्स्ये परया शक्त्या तदा द्रक्ष्यसि मां ततः ।
मत्तेजः पुनरादास्ये त्वयि दत्तं मया पुरा ॥२७॥
तदा तपश्चरँल्लोके तिष्ठ त्वं ब्रह्मणो दिनम् ।
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवस्तथा सर्वं कृतं मया ॥२८॥
स एव विष्णुस्त्वं राम जातोऽसि ब्रह्मणार्थितः ।
मयि स्थितं तु त्वत्तेजस्त्वयैव पुनराहृतम् ॥२९॥
अद्य मे सफलं जन्म प्रतीतोऽसि मम प्रभो ।
ब्रह्मादिभिरलभ्यस्त्वं प्रकृतेः परगो मतः ॥३०॥

---

तपस्या का कष्ट उठाया है, मेरे चिदंश से युक्त हो अपने पितृघाती हैहयवंशी उस कार्तवीर्य का वध कर उस कार्य को पूरा करो। फिर इक्कीस बार समस्त क्षत्रियों का वध कर यह समस्त पृथ्वी कश्यप को दान कर शान्ति प्राप्त करो। मैं अविनाशी परमात्मा जब त्रेता युग में दशरथ के यहाँ 'राम' के रूप में जन्म लूँगा, तब तुम सीता रूप शक्ति के सहित मेरा दर्शन प्राप्त करोगे और उस समय तुम्हें अपना दिया हुआ वह तेज मैं वापस ले लूँगा ॥२४-२७॥ मेरे चिदंश को ग्रहण करने के अनन्तर तुम ब्रह्मा के एक दिन अर्थात् एक कल्प तक तपस्या करते हुए पृथ्वी में निवास करोगे। ऐसा कह कर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये। अतः हे राम! उन्होंने मुझ से ऐसा कहा था, मैंने वैसा कर दिया ॥२८॥

आप स्वयं विष्णु हैं, ब्रह्मा के प्रार्थना करने पर आप राम रूप से इस पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए हैं, मुझ में आप का जो दिया हुआ तेज था, उसे आपने ग्रहण कर लिया ॥२९॥ हे प्रभो! अब मैंने आप को पहचान लिया अतः मेरा जन्म सफल हो गया। आप ब्रह्मादि देवताओं के द्वारा अप्राप्य हैं तथा प्रकृति से सर्वथा परे हैं ॥३०॥ आप में अज्ञानजन्य षड्विकार नहीं हैं।

त्वयि जन्मादिषड्भावा न सन्त्यज्ञानसंभवाः ।
निर्विकारोऽसि पूर्णस्त्वं गमनादिविवर्जितः ॥३१॥

यथा जले फेनजालं धूमो वह्नौ यथा त्वयि ।
त्वदाधारा त्वद्-विषया माया कार्यं सृजत्यहो ॥३२॥

यावन्मायावृता लोकास्तावत्त्वां न विजानते ।
अविचारितसिद्धैषा विद्या विद्याविरोधिनी ॥३३॥

अविद्याकृतदेहादिसङ्घाते प्रतिबिम्बिता ।
चिच्छक्तिर्जीवलोकेऽस्मिन् जीव इत्यभिधीयते ॥३४॥

यावद् देहमनः - प्राण-बुद्ध्यादिष्वभिमानवान् ।
तावत् कर्तृत्व-भोक्तृत्व-सुख-दुःखादिभाग् भवेत् ॥३५॥

आत्मनः संसृतिर्नास्ति बुद्धेर्ज्ञानं न जात्विति ।
अविवेकाद् द्वयं युङ्क्त्वा संसारीति प्रवर्तते ॥३६॥

---

आप विकार रहित हैं और गमन आदि क्रिया के न होने से आप अचल और पूर्ण हैं ।।३१। अहो ! यह कितने आश्चर्य की बात है कि आप में ही वर्त्तमान आप की आश्रित यह माया नाना प्रकार के विचित्र कार्यों का सृजन किया करती है ।।३२।।

माया के आवरण से आवृत संसारी जीव आप को तब तक नहीं जान सकते, जब तक अविद्या के आवरण से घिरे हुए हैं । यह अविद्या अविचार के कारण नित्य मालूम पड़ती है तथा विद्या के सामने टिक नहीं सकती ।। ३३ ।। इस जीवलोक में अविद्या निर्मित देहादि संघात में जब चित्-शक्ति प्रतिबिम्बित होती है तब जीव संज्ञा से अभिहित होती है ।। ३४ ।। यह जीव जब तक देह, मन, प्राण एवं बुद्ध्यादि इन्द्रियों में अभिमान बुद्धि रखता है तब तक कर्तृत्व, भोक्तृत्व, सुखी एवं दुःखादि का उपभोग करता रहता है ।। ३५ ।। वास्तव में आत्मा का जन्म-मरणादि रूप बन्धन होता ही नहीं और न तो बुद्धि में ज्ञान शक्ति रहती है । अवि-वेक के कारण जब बुद्धि और जीव मिल जाते हैं, तब जीव संसारी बन कर कर्म मार्ग में प्रवृत्त होता है ।। ३६ ।। जिस प्रकार जल एवं अग्नि के संयोग

जडस्य चित्समायोगाच्चित्त्वं भूयाच्चितेस्तथा ।
जडसङ्गाज्जडत्वं हि जलाग्न्योर्मेलनं यथा ॥३७॥
यावत्त्वत्पादभक्तानां सङ्गसौख्यं न विन्दति ।
तावत् संसारदुःखौघान्न निवर्तेन्नरः सदा ॥३८॥
तत्सङ्गलब्धया भक्त्या यदा त्वां समुपासते ।
तदा माया शनैर्याति तानवं प्रतिपद्यते ॥३९॥
ततस्त्वज्ज्ञानसम्पन्नः सद्गुरुस्तेन लभ्यते ।
वाक्यज्ञानं गुरोर्लब्ध्वा त्वत्प्रसादाद् विमुच्यते ॥४०॥
तस्मात्त्वद्भक्तिहीनानां कल्पकोटिशतैरपि ।
न मुक्तिशङ्का विज्ञानशङ्का नैव सुखं तथा ॥४१॥
अतस्त्वत्पादयुगले भक्तिर्मे जन्म जन्मनि ।
स्यात् त्वद्भक्तिमतां सङ्गोऽविद्यायाभ्यां विनश्यति ॥४२॥

---

हो जाने पर जल के गुण से अग्नि में शैत्य एवं अग्नि के गुण से जल में उष्णता आती है, उसी प्रकार जड़ बुद्धि एवं चेतन आत्मा के संयोग से आत्मा के चेतन गुण से बुद्धि में चेतनता तथा शुद्ध-बुद्ध आत्मा में जड़ बुद्धि के गुण कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि जड़ता का आभास होता रहता है ॥३७॥

परशुराम जी ने कहा—हे राम ! मनुष्य जब तक आपके भक्तों के संग सुख का निरन्तर अनुभव नहीं करता तब तक वह संसार के दुःख-समूहों से पार नहीं हो पाता ॥३८। जब आप के भक्तजनों के संग से प्राप्त होने वाली भक्ति से मनुष्य आपकी उपासना करता है, तब आप की माया शनैः-शनैः क्षीण होकर दूर भागने लगती है ॥३९॥ उस उपासना से वह ज्ञान-सम्पन्न हो जाता है और उसे सद्गुरु की प्राप्ति हो जाती है। गुरु-कृपा से आपका प्रसाद रूप महावाक्य ज्ञान उपलब्ध हो जाता है तथा मनुष्य की मुक्ति हो जाती है ॥४०॥ इसलिए हे राम ! आपकी भक्ति से रहित पुरुषों की करोड़ों कल्पों में मुक्ति नहीं होती और तत्त्वज्ञान भी नहीं होता। फिर सुख की कल्पना तो सर्वथा दूर है ॥४१॥ अतः मेरी यही कामना है कि आपके चरण-युगलों में जन्म-जन्मान्तर मेरी भक्ति बनी रहे और निरन्तर आपके भक्तों का साथ रहे, क्योंकि आप की भक्ति एवं सत्सङ्ग प्राप्त होने पर ही अविद्या का नाश होता है ॥४२॥

लोके त्वद्भक्तिनिरतास्त्वद्धर्मामृतवर्षिणः ।
पुनन्ति लोकमखिलं किं पुनः स्वकुलोद्भवान् ॥४३॥

नमोऽस्तु जगतां नाथ नमस्ते भक्तिभावन ।
नमः कारुणिकानन्त रामचन्द्र नमोऽस्तु ते ॥४४॥

देव यद्यत् कृतं पुण्यं मया लोकजिगीषया ।
तत्सर्वं तव बाणाय भूयाद्राम नमोऽस्तु ते ॥४५॥

ततः प्रसन्नो भगवान् श्रीरामः करुणामयः ।
प्रसन्नोऽस्मि तव ब्रह्मन् यत्ते मनसि वर्तते ॥४६॥

दास्ये तदखिलं कामं मा कुरुष्वात्र संशयम् ।
ततः प्रीतेन मनसा भार्गवो राममब्रवीत् ॥४७॥

यदि मेऽनुग्रहो राम तवास्ति मधुसूदन ।
त्वद्भक्तसङ्गस्त्वत्पादे दृढा भक्तिः सदाऽस्तु मे ॥४८॥

---

हे नाथ ! आप की निरन्तर उपासना करने वाले भक्त भगवद्धर्म रूप अमृत की वर्षा करते रहते हैं और वे समस्त संसार को पवित्र करते हैं । फिर अपने कुल के पुरुषों को पवित्र करने की बात ही क्या है ? ॥४३॥ हे जगन्नाथ ! आपको नमस्कार है, हे भक्तिभावन ! आप को नमस्कार है, हे कारुणिक, हे अनन्त ! आपको नमस्कार है । हे रामचन्द्र ! आप को पुनः मेरा नमस्कार है ॥४४। हे नाथ ! मैंने पुण्य-लोक की कामना से जो-जो पुण्य कर्म किये हैं, वे सभी प्रकार के पुण्य आप के बाणों के लक्ष्य के रूप में समर्पित कर रहा हूँ । हे राम ! आपको पुनः मेरा नमस्कार है ॥४५॥

परशुराम के द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर करुणामय भगवान् श्रीराम प्रसन्न हो गये और कहने लगे, परशुराम ! मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ । अतः तुम्हारे मन की समस्त कामनाएँ पूर्ण करूँगा, तुम संशय मत करो । तब प्रसन्न चित्त हो परशुराम ने रामचन्द्र जी से कहा ॥४६-४७॥

परशुराम ने कहा—हे मधुसूदन राम ! यदि आप की मेरे ऊपर कृपा है, तो मुझे आप के भक्तों का निरन्तर साथ रहे और आप के चरण-कमलों में मेरी निरन्तर भक्ति बनी रहे ॥४८॥ यदि भक्ति रहित भी पुरुष मेरे द्वारा

स्तोत्रमेतत् पठेद्यस्तु भक्तिहीनोऽपि सर्वदा ।
त्वद्भक्तिस्तस्य विज्ञानं भूयादन्ते स्मृतिस्तव ॥४९॥
तथेति राघवेणोक्तः परिक्रम्य प्रणम्य तम् ।
पूजितस्तदनुज्ञातो महेन्द्राचलमन्वगात ॥५०॥
राजा दशरथो हृष्टो रामं मृतमिवागतम् ।
आलिंगयालिंगयहर्षेण नेत्राभ्यां जलमुत्सृजन ॥५१॥
ततः प्रीतेन मनसा स्वस्थचित्तः पुरं ययौ ।
रामलक्ष्मणशत्रुघ्नभरता देवसंमिताः ।
स्वां स्वां भार्यामुपादाय रेमिरे स्व-स्वमन्दिरे ॥५२॥
मातापितृभ्यां संहृष्टो रामः सीतासमन्वितः ।
रेमे वैकुण्ठभवने श्रिया सह यथा हरिः ॥५३॥
युधाजिन्नाम कैकेयीभ्राता भरतमातुलः ।
भरतं नेतुमागच्छत् स्वराज्यं प्रीतिसंयुतः ॥५४॥

---

किये गये इस स्तोत्र का पाठ करे, तो उसे भी आप की भक्ति सर्वदा प्राप्त हो, और वह ज्ञानी होकर अन्त काल में आपकी स्मृति प्राप्त करे ॥४९॥

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी ने 'तथास्तु' कहा। पुनः परशुरामजी ने उनकी परिक्रमा कर उन्हें प्रणाम किया और उनसे पूजित हो उनकी आज्ञा से महेन्द्र पर्वत पर चले गये ॥५०॥ इधर महाराज दशरथ ने रामको मानो मृत्यु के मुख से लौटे हुए की तरह समझकर अत्यन्त हर्ष से गद्‌गद हो सजल नेत्रों से अश्रुपात करते हुए राम का वारम्बार आलिगन किया। फिर प्रसन्न मन से अयोध्यापुरी चले आये ॥५१॥ राम, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न अपनी-अपनी पत्नियों के साथ देवताओं के समान अपने-अपने महलों में रमण करने लगे ॥५२॥ सीता समन्वित श्रीराम माता-पिता को आनन्दित करने लगे और वैकुण्ठ लोक में भगवान् विष्णु जिस प्रकार महालक्ष्मी से रमण करते हैं, उसी प्रकार अयोध्यापुरी में रमण करने लगे ॥५३॥ उसी समय कैकेयी के भाई, श्री भरत के मामा युधाजित् भरतजी को प्रीतिपूर्वक अपने यहाँ ले जाने के लिए अयोध्यापुरी आये ॥५४॥ शत्रुजित् महाराज

प्रेषयामास भरतं राजा स्नेहसमन्वितः ।
शत्रुघ्नं चापि संपूज्य युधाजितमरिन्दमः ॥५५॥
कौसल्या शुशुभे देवी रामेण सह सीतया ।
देवमातेव पौलोम्या शच्या शक्रेण शोभना ॥५६॥
साकेते लोकनाथ-प्रथित-गुणगणो लोकसंगातकीर्तिः
श्रीरामः सीतयास्तेऽखिल-जन-निकरानन्द-सन्दोहमूर्तिः ।
नित्यश्रीर्निर्विकारो निरवधिविभवो नित्यमायानिरासो
मायाकार्यानुसारी मनुज इव सदा भाति देवोऽखिलेशः॥५७॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे
बालकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥७॥

समाप्तमिदं बालकाण्डम् ।

---

दशरथ ने युधाजित् का सत्कार किया। और बड़े प्रेम के साथ भरत एवं शत्रुघ्न को उनके साथ विदा कर दिया ॥५५॥

तदनन्तर राम एवं सीता के सहित कौसिल्या इस प्रकार सुशोभित हुई जिस प्रकार पुलोम पुत्री इन्द्राणी एवं इन्द्र के साथ देवमाता अदिति शोभायमान हों ॥५६॥ जिनके गुणगणों की प्रसिद्धि लेकपालों तक पहुँच चुकी है। सारा संसार जिनके यशों का निरन्तर गान करता रहा है। जो सम्पूर्ण जनों के आनन्द-समूह के मूर्तिमान् रूप हैं एवं नित्य महा श्री से युक्त अव्यय तथा अनन्त ऐश्वर्य समन्वित हैं। माया से रहित होकर भी जो मायावश मनुष्य जैसे प्रतीत हो रहे हैं, ऐसे श्रीराम साकेत लोक में सीताजी के साथ विराजने लगे ॥५७॥

इस प्रकार आचार्य पण्डित श्री शिवदत्त मिश्र शास्त्री विरचित 'राम-प्रिया' हिन्दी टीका सहित अध्यात्मरामायण के उमा-महेश्वर-संवाद में बालकाण्ड का सप्तम सर्ग समाप्त ॥७॥

—:०:—

# अध्यात्मरामायणम्

## 'रामप्रिया'-हिन्दीव्याख्या-सहितम्

## अयोध्याकाण्डम्

### १. प्रथमः सर्गः

( भगवान राम के पास नारदजी का आना )

श्रीमहादेव उवाच

एकदा सुखमासीनं रामं स्वान्तःपुराजिरे ।
सर्वाभरणसम्पन्नं रत्नसिंहासने स्थितम् ॥ १ ॥

नीलोत्पलदलश्यामं कौस्तुभामुक्तकन्धरम् ।
सीतया रत्नदण्डेन चामरेणाथ वीजितम् ॥ २ ॥

विनोदयन्तं ताम्बूल-चर्वणादिभिरादरात् ।
नारदोऽवतरद् द्रष्टुमम्बराद्यत्र राघवः ॥ ३ ॥

शुद्धस्फटिकसङ्काशः शरच्चन्द्र इवामलः ।
अतर्कितमुपायातो नारदो दिव्यदर्शनः ॥ ४ ॥

---

श्री महादेव जी ने कहा-हे पार्वति ! एक समय सर्वाभरण विभूषित श्री रामचन्द्र जी जब अपने अन्तःपुर के आँगन में रत्न सिंहासन पर विराज रहे थे ॥१॥ उस समय नीले कमल के समान श्याम वर्ण वाले और गले में कौस्तुभमाला धारण करने वाले उन नयनाभिराम श्रीराम को रत्न दण्ड से जड़े हुए चँवर के द्वारा श्री सीताजी पंखा कर रही थीं ।।२।। सत्कारपूर्वक दिये गये ताम्बूलादि के द्वारा जब वे आनन्दित हो रहे थे । उसी समय उनका दर्शन करने के लिए नारद जी आकाश मार्ग से उतर कर वहाँ पहुँच गये ।।३।।

शुद्ध स्फटिकमणि के समान स्वच्छ एवं शरत्कालीन चन्द्रमा के समान प्रकाशमान दिव्य दर्शन नारद जी को सहसा आये हुए देख कर ।।४।।

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय रामः प्रीत्या कृताञ्जलिः ।
ननाम शिरसा भूमौ सीतया सह भक्तिमान् ।। ५ ।।

उवाच नारदं रामः प्रीत्या परमया युतः ।
संसारिणां मुनिश्रेष्ठ दुर्लभं तव दर्शनम् ।
अस्माकं विषयासक्तचेतसां नितरां मुने ।। ६ ।।

अवाप्तं मे पूर्वजन्म-कृतपुण्य-महोदयैः ।
संसारिणोऽपि हि मुने लभ्यते सत्समागमः ।। ७ ।।

अतस्त्वद्-दर्शनादेव कृतार्थोऽस्मि मुनीश्वर ।
किं कार्यं ते मया कार्यं ब्रूहि तत्करवाणि भोः ।। ८ ।।

अथ तं नारदोऽप्याह राघवं भक्तवत्सलम् ।
किं मोहयसि मां राम वाक्यैर्लोकानुसारिभिः ।। ९ ।।

संसार्यहमिति प्रोक्तं सत्यमेतत्त्वया विभो ।
जगतामादिभूता या सा माया गृहिणी तव ।।१०।।

---

भगवान् श्रीरामचन्द्र जी ने उनका स्वागत कर हाथ जोड़ सीता जी के सहित प्रेम और भक्ति से उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया ।।५।। पुनः श्रीराम ने अत्यन्त प्रेम से नारद जी से कहा—हे मुने ! आप का यह दर्शन विषयासक्त हमारे जैसे संसारी मनुष्यों के लिए अत्यन्त दुर्लभ है ।।६।। हे मुने ! मुझे आपका यह दर्शन पूर्वजन्म के पुण्य के उदय होने से प्राप्त हुआ है। निश्चय ही पुण्योदय के प्रभाव से संसारी जनों को भी सन्त का समागम प्राप्त होता है ।।७।। अतः हे मुने ! आज आप के दर्शन से मैं कृतकृत्य हो गया। अब आप बताइए कि मुझे आपका क्या कार्य करना है, उसे मैं शीघ्र ही पूर्ण करूँ ।।८।।

तब देवर्षि नारद ने भक्त-वत्सल श्रीराम से कहा—हे श्रीराम ! आप मुझे इस सामान्य लौकिक वाक्यों से क्यों मोहित कर रहे हैं ।।९।। हे भगवन् ! आपने जो कहा कि 'मैं संसारी हूँ' सो यह वाक्य तो ठीक ही है, क्योंकि इस जगत् की कारणभूता यह माया आप की गृहिणी हैं ।।१०।।

त्वत्सन्निकर्षाज्जायन्ते तस्यां ब्रह्मादयः प्रजाः ।
त्वदाश्रया सदा भाति माया या त्रिगुणात्मिका ॥११॥
सूतेऽजस्रं शुक्ल-कृष्ण-लोहिताः सर्वदा प्रजाः ।
लोकत्रयमहागेहे गृहस्थस्त्वमुदाहृतः ॥१२॥
त्वं विष्णुर्जानकी लक्ष्मीः शिवस्त्वं जानकी शिवा ।
ब्रह्मा त्वं जानकी वाणी सूर्यस्त्वं जानकी प्रभा ॥१३॥
भवान् शशाङ्कः सीता तु रोहिणी शुभलक्षणा ।
शक्रस्त्वमेव पौलोमी सीता स्वाहानलो भवान् ॥१४॥
यमस्त्वं कालरूपश्च सीता संयमिनी प्रभो ।
निर्ऋतिस्त्वं जगन्नाथ तामसी जानकी शुभा ॥१५॥
राम त्वमेव वरुणो भार्गवी जानकी शुभा ।
वायुस्त्वं राम सीता तु सदागतिरितीरिता ॥१६॥

---

आप के द्वारा सम्बन्ध होने पर उस माया में ब्रह्मादि प्रजाओं की उत्पत्ति होती है, यह सत्त्व, रज एवं तमोमयी त्रिगुणात्मिका माया आप के आश्रय से ही भासित होती रहती है ॥११॥ यह त्रिगुणात्मिका माया निरन्तर अपने गुणों के अनुसार श्वेत, लोहित एवं कृष्णवर्ण वाली प्रजा का सृजन करती रहती है। अतः हे नाथ ! त्रिलोक रूप इस महा गृह के आप गृहस्थ कहे जाते हैं ॥१२॥

यदि आप विष्णु हैं तो जानकी लक्ष्मी है, यदि आप शिव हैं तो जानकी पार्वती हैं, यदि आप ब्रह्मा हैं तो जानकी सरस्वती हैं, यदि आप सूर्य हैं तो जानकी प्रभा हैं ॥१३॥ यदि आप चन्द्रमा हैं तो शुभलक्षणा जानकी रोहिणी हैं, यदि आप इन्द्र हैं तो जानकी इन्द्राणी-शची हैं। यदि आप अग्नि हैं तो जानकी स्वाहा हैं ॥१४॥ यदि आप सबका नियमन करने वाले काल हैं तो जानकी संयमिनी हैं, हे जगन्नाथ ! यदि आप निर्ऋति हैं तो जानकी तामसी देवी हैं ॥१५॥

हे राम ! आप वरुण है तो शुभ कारिणी जानकी भार्गवी हैं, यदि आप वायु हैं तो सीता सदागति हैं ॥१६॥ हे राम ! आप कुबेर हैं तो सीता

कुबेरस्त्वं राम सीता सर्वसम्पत् प्रकीर्तिता ।
रुद्राणी जानकी प्रोक्ता रुद्रस्त्वं लोकनाशकृत् ॥१७॥
लोके स्त्रीवाचकं यावत् तत्सर्वं जानकी शुभा ।
पुन्नामवाचकं यावत् तत्सर्वं त्वं हि राघव ॥१८॥
तस्माल्लोकत्रये देव युवाभ्यां नास्ति किञ्चन ॥१९॥
त्वदाभासोदिताज्ञानमव्याकृतमितीर्यते ।
तस्मान्महांस्ततः सूत्रं लिङ्गं सर्वात्मकं ततः ॥२०॥
अहङ्कारश्च बुद्धिश्च पञ्चप्राणेन्द्रियाणि च ।
लिङ्गमित्युच्यते प्राज्ञैर्जन्म-मृत्यु-सुखादिमत् ॥२१॥
स एव जीवसंज्ञश्च लोके भाति जगन्मयः ।
अवाच्यानाद्यविद्यैव कारणोपाधिरुच्यते ॥२२॥
स्थूलं सूक्ष्मं कारणाख्यमुपाधित्रितयं चितेः ।
एतैर्विशिष्टो जीवः स्याद् वियुक्तः परमेश्वरः ॥२३॥

---

सम्पत्ति हैं। यदि आप लोकसंहारक रुद्र हैं, तो जानकी रुद्राणी हैं ॥१७॥ हे राघव! पुरुषवाचक यावत् पदार्थ इस लोक में हैं, वे सब आप ही हैं, इसी प्रकार स्त्रीवाचक यावत्पदार्थ इस लोक में हैं वे सभी शुभलक्षण जानकी हैं ॥ १८ ॥ इसलिए हे नाथ ! इस त्रैलोक्य में आप दोनों के अतिरिक्त और किसी भी पदार्थ की सत्ता नहीं है ॥१९॥ हे राघव ! आपके ही आभास से उदय हुआ अज्ञान अव्याकृत शब्द से पुकारा जाता है, उस अव्याकृत से महत्तत्त्व, महत्तत्त्व से सूत्रात्मा ( हिरण्यगर्भ ) तथा उस सूत्रात्मा से सर्वात्मक यह लिङ्गशरीर उत्पन्न हुआ है ॥२०॥ अहङ्कार, बुद्धि, पञ्चप्राण एवं दश इन्द्रियों के समूह को ही प्राज्ञ जन जन्म, मृत्यु, सुख एवं दुःखादिधर्मों वाला लिङ्गदेह बताते हैं ॥२१॥

वह लिङ्गदेह ही जागतिक विकारों से युक्त होने के कारण जीव शब्द से पुकारा जाता है, अनिर्वचनीय, अनादि अविद्या ही कारण उपाधि के नाम से विख्यात है ॥२२॥ इस चेतना की स्थूल, सूक्ष्म एवं कारणरूप तीन उपाधियाँ कही गयी हैं, अतः वह चेतन जब इन उपाधियों से युक्त हो जाता है, तो उसे जीव कहते हैं, पर जब वह इन उपाधियों से मुक्त हो

जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्त्याख्या संसृतिर्या प्रवर्तते ।
तस्या विलक्षणः साक्षी चिन्मात्रस्त्वं रघूत्तम ! ॥२४॥
त्वत्त एव जगज्जातं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
त्वय्येव लीयते कृत्स्नं तस्मात् त्वं सर्वकारणम् ॥२५॥
रज्जावहिमिवात्मानं जीवं ज्ञात्वा भयं भवेत् ।
परात्माहमिति ज्ञात्वा भयदुःखैर्विमुच्यते ॥२६॥
चिन्मात्र-ज्योतिषा सर्वाः सर्वदेहेषु बुद्धयः ।
त्वया यस्मात् प्रकाश्यन्ते सर्वस्यात्मा ततो भवान् ॥२७॥
अज्ञानान्मन्यस्यते सर्वं त्वयि रज्जौ भुजङ्गवत् ।
त्वज्ज्ञानाल्लीयते सर्वं तस्माज्ज्ञानं सदाभ्यसेत् ॥२८॥
त्वत्पादभक्तियुक्तानां विज्ञानं भवति क्रमात् ।
यस्मात् त्वद्भक्तियुक्ता ये मुक्तिभाजस्त एव हि ॥२९॥

---

जाता है तो उसे परमेश्वर कहा जाता है ॥२३॥ हे रघूत्तम ! जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति यह तीन प्रकार की सृष्टि कही गयी है। उन तीन प्रकार की सृष्टियों से विलक्षण, किन्तु उसके साक्षी ( द्रष्टा ) चेतन आप ही हैं ॥२४॥

हे रघूत्तम ! यह सारा जगत् आपसे ही उत्पन्न हुआ है, तथा आप में ही अवस्थित है, और आप में ही यह लीन भी होता है। इस लिये आप ही इस जगत् के कारण हैं ॥२५॥

रज्जु में हुए सर्पभ्रम के समान अपने को जीव मानने से पुरुष को भय होता है किन्तु जब वह 'मैं परमात्मा हूँ' ऐसा समझ लेता है; तो उसका भय और दुःखों से छुटकारा हो जाता है ॥२६॥ आप सभी प्राणियों के शरीर में निवास कर अपने चिन्मात्र ज्योति से सबकी बुद्धि को प्रकाशित करते रहते हैं। इसलिए आप ही सबके आत्मा हैं ॥२७॥ जिस प्रकार रज्जु में सर्प का भ्रम हो जाता है, उसी प्रकार आप में अज्ञान के कारण जगत् की कल्पना की जाती है। पर ज्ञान होने पर यह सारा जगत् उस परमात्मा में लीन हो जाता है, अतः ज्ञान का अभ्यास सदैव करते रहना चाहिए ॥२८॥

हे रघूत्तम! आप के चरण-कमलों में भक्ति रखनेवालों को क्रमशः ज्ञान की उत्पत्ति होती है, इसलिए जो आप में भक्ति रखते हैं वे ही मुक्ति के

अहं त्वद्भक्तभक्तानां तद्भक्तानां च किङ्करः ।
अतो मामनुगृह्णीष्व मोहयस्व न मां प्रभो ! ॥३०॥
त्वन्नाभिकमलोत्पन्नो ब्रह्मा मे जनकः प्रभो ! ।
अतस्तवाहं पौत्रोऽस्मि भक्तं मां पाहि राघव ! ॥३१॥
इत्युक्त्वा बहुशो नत्वा स्वानन्दाश्रुपरिप्लुतः ।
उवाच वचनं राम ब्रह्मणा नोदितोऽस्म्यहम् ॥३२॥
रावणस्य वधार्थाय जातोऽसि रघुसत्तम ।
इदानीं राज्यरक्षार्थं पिता त्वामभिषेक्ष्यति ॥३३॥
यदि राज्याभिसंसक्तो रावणं न हनिष्यसि ।
प्रतिज्ञा ते कृता राम भूभारहरणाय वै ॥३४॥
तत्सत्यं कुरु राजेन्द्र ! सत्यसन्धस्त्वमेव हि ।
श्रुत्वैतद् गदितं रामो नारदं प्राह सस्मितम् ॥३५॥
शृणु नारद मे किञ्चिद् विद्यतेऽविदितं क्वचित् ।
प्रतिज्ञातं च यत्पूर्वं करिष्ये तन्न संशयः ॥३६॥

---

अधिकारी हैं ॥२९॥ हे नाथ ! मैं आपके भक्तोंके भक्त तथा उनके भी भक्तों का दास हूँ । अतः हे प्रभो ! मुझे मोह में मत डाल प्रत्युत् मेरे ऊपर अनुग्रह की दृष्टि रखें ॥३०॥ आपके नाभिकमल से उत्पन्न ब्रह्मा मेरे पिता हैं, इस सम्बन्ध के कारण मैं आपका पौत्र हूँ । अतः आप मेरी रक्षा कीजिए ॥३१॥

देवर्षि नारद इस प्रकार श्री राम की स्तुति कर बारम्बार प्रणाम कर नेत्रों में आनन्दाश्रु से पूर्ण हो कहने लगे—हे रघूत्तम ! मुझे ब्रह्मा जी ने आपके पास भेजा है ॥३२॥ आप का यह अवतार रावण के वध के लिए हुआ है किन्तु आपके पिता इसी समय अपनी राज्य-रक्षा के लिए आपका अभिषेक करना चाहते हैं ॥३३॥ यदि राज्यपालन में आप आसक्त हो जायेंगे तो निश्चय ही रावण का वध न हो सकेगा । फिर पृथ्वी के भार उतारने के लिए आप ने जो प्रतिज्ञा की थी उसका क्या होगा ॥३४॥

हे प्रभो ! आप सत्यसन्ध हैं, अतः अपनी प्रतिज्ञा सत्य कीजिए । इस प्रकार नारद द्वारा कहे गये वचनों को सुनकर श्री रामचन्द्र ने मन्दस्मित से कहा—॥३५॥ देवर्षि नारद ! क्या मुझसे भी कोई बात छिपी रह सकती है ।

किन्तु कालानुरोधेन तत्तत्प्रारब्धसंक्षयात् ।
हरिष्ये सर्वभूभारं क्रमेणासुरमण्डलम् ॥३७॥
रावणस्य विनाशार्थं श्वो गन्ता दण्डकाननम् ।
चतुर्दश समास्तत्र ह्युषित्वा मुनिवेषधृक् ॥३८॥
सीतामिषेण तं दुष्टं सकुलं नाशयाम्यहम् ।
एवं रामे प्रतिज्ञाते नारदः प्रमुमोद ह ॥३९॥
प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा दण्डवत् प्रणिपत्य तम् ।
अनुज्ञातश्च रामेण ययौ देवगतिं मुनिः ॥४०॥
संवादं पठति शृणोति संस्मरेद् वा
यो नित्यं मुनिवर-रामयोः स भक्त्या ।
संप्राप्नोत्यमर-सुदुर्लभं विमोक्षं
कैवल्यं विरतिपुरःसरं क्रमेण ॥४१॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
अयोध्याकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥१॥

*

अस्तु, मैंने जो भी प्रतिज्ञा की है निःसन्देह उसको पूर्ण करूँगा ॥३६॥ किन्तु कालक्रम के अनुरोध से जिन-जिन असुरोंका प्रारब्ध क्षीण होगा उन-उन असुरों को मार कर पृथ्वी का भार उतारूँगा। ३७॥ मैं रावण के विनाश के लिए स्वयं कल ही दण्डकारण्य जाऊँगा। और वहाँ चौदह बर्ष तक मुनि वेष धारणकर निवास करूँगा ॥३८॥ सीताहरण के बहाने मै कुटुम्ब सहित रावण का विनाश करूँगा। श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा इस प्रकार प्रतिज्ञा करने पर देवर्षि नारद बहुत ही प्रसन्न हुए ॥३९॥ देवर्षि नारद ने श्री राम की तीन प्रदक्षिणा की और उनको दण्डवत् प्रणाम कर, उनकी आज्ञा से आकाश मार्ग द्वारा देवलोक को चले गये ॥४०॥

जो लोग देवर्षि नारद तथा श्री राम के इस संवाद को भक्ति पूर्वक पढ़ेंगे, सुनेंगे तथा उसका स्मरण करेगे वे वैराग्य से पूर्ण हो देवताओं के लिये भी अत्यन्त दुर्लभ कैवल्य पद प्राप्त करेंगे ॥४१॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या सहित अध्यात्मरामायण के उमा-महेश्वर-संवाद में अयोध्या काण्ड का प्रथम सर्ग समाप्त ॥१॥

*

## २. द्वितीयः सर्गः

( राज्याभिषेक की तैयारी तथा वसिष्ठजी और रघुनाथजी का संवाद )

श्रीमहादेव उवाच

अथ राजा दशरथः कदाचिद् रहसि स्थितः ।
वसिष्ठं स्वकुलाचार्यमाहूयेदमभाषत ॥१॥
भगवन् ! राममखिलाः प्रशंसन्ति मुहुर्मुहुः ।
पौराश्च निगमा वृद्धा मन्त्रिणश्च विशेषतः ॥२॥
ततः सर्वगुणोपेतं रामं राजीवलोचनम् ।
ज्येष्ठं राज्येऽभिषेक्ष्यामि वृद्धोऽहं मुनिपुङ्गव ! ॥३॥
भरतो मातुलं द्रष्टुं गतः शत्रुघ्नसंयुतः ।
अभिषेक्ष्ये श्व एवाशु भवांस्तच्चानुमोदताम् ॥४॥
सम्भाराः सम्भ्रियन्तां च गच्छ मन्त्रय राघवम् ।
उच्छ्रीयन्तां पताकाश्च नानावर्णाः समन्ततः ॥५॥
तोरणानि विचित्राणि स्वर्णमुक्तामयानि वै ।
आहूय मन्त्रिणं राजा सुमन्त्रं मन्त्रिसत्तमम् ॥ ६ ॥

---

श्री महादेव जी ने कहा—एक दिन महाराज दशरथ किसी एकान्त स्थान में बैठे हुए थे, उन्होंने अपने कुलपुरोहित श्री वसिष्ठ जी को बुलाकर कहा ॥१॥ हे भगवन् ! सभी पुरवासी, वेदज्ञ, वृद्ध विशेषतः मन्त्रिजन राम की बारम्बार प्रशंसा किया करते हैं ॥२॥ इसलिए हे मुनिश्रेष्ठ, सर्वगुण-सम्पन्न, कमल-नयन अपने जेठे पुत्र श्री राम को राज्यपद पर अभिषिक्त करना चाहता हूँ। क्योंकि अब मैं वृद्ध हो चुका हूँ ॥३॥

यद्यपि इस समय भरत, शत्रुघ्न के साथ अपने मामा के यहाँ गये हुए हैं, किन्तु मैं कल ही इनका अभिषेक करना चाहता हूँ। इस विषय में आप अपनी सम्मति दे दीजिए ॥४॥ आप सारे अभिषेक की सामग्री तैयार कराइए और राम के पास जाकर उनको यथोचित परामर्श दीजिए एवं ऐसे अवसर पर नगर में सर्वत्र रंग-बिरंगी झण्डियाँ फहरानी चाहिए ॥५॥ चित्र-विचित्र सुवर्ण एवं मुक्तानिर्मित तोरण (झालर) लगाये जाना चाहिए। ऐसा कह कर उन्होंने मन्त्रि-श्रेष्ठ सुमन्त को बुलाया और आज्ञा दी ॥६॥

आज्ञापयति यद्यत् त्वां मुनिस्तत्तत् समानय ।
यौवराज्येऽभिषेक्ष्यामि श्वोभूते रघुनन्दनम् ॥ ७ ॥
तथेति हर्षात् स मुनिं किं करोमीत्यभाषत ।
तमुवाच महातेजा वसिष्ठो ज्ञानिनां वरः ॥ ८ ॥
श्वःप्रभाते मध्यकक्षे कन्यकाः स्वर्णभूषिताः ।
तिष्ठन्तु षोडश गजः स्वर्णरत्नादिभूषितः ॥ ९ ॥
चतुर्दन्तः समायातु ऐरावतकुलोद्भवः ।
नानातीर्थोदकैः पूर्णाः स्वर्णकुम्भाः सहस्रशः ॥१०॥
स्थाप्यन्तां नववैयाघ्रचर्माणि त्रीणि चानय ।
श्वेतच्छत्रं रत्नदण्डं मुक्तामणिविराजितम् ॥११॥
दिव्यमाल्यानि वस्त्राणि दिव्यान्याभरणानि च ।
मुनयः सत्कृतास्तत्र तिष्ठन्तु कुशपाणयः ॥१२॥
नर्तक्यो वारमुख्याश्च गायका वेणुकास्तथा ।
नानावादित्रकुशला वादयन्तु नृपाङ्गणे ॥१३॥

---

मन्त्रिसत्तम ! मैं कल श्रीराम का अभिषेक करना चाहता हूँ, अतः वसिष्ठजी की आज्ञानुसार समस्त अभिषेक की सामग्री एकत्रित करो ।।७।।

सुमन्त्र जी ने राजा दशरथ से 'जो आज्ञा' कहकर हर्षपूर्ण हो, वसिष्ठजी से 'मैं क्या करूँ' ? ऐसा कहा । तब ज्ञानियों में श्रेष्ठ वसिष्ठ जी ने सुमन्त्र से कहा ।।८।। 'कल प्रातःकाल मध्य द्वार पर सुवर्ण-भूषित सोलह कन्यायें खड़ी रहनी चाहिए और सुवर्ण-रत्नादि से विभूषित ।।९।। ऐरावत कुलोत्पन्न चार दाँतों वाला एक हाथी, जो स्वर्ण, रत्न आदि अलङ्कारों से अलंकृत हो, उसे भी उपस्थित रहना चाहिये । अनेक तीर्थों के जल से पूर्ण सहस्रों सुवर्ण कलश भी स्थापित किये जाने चाहिये ।।१०।। तीन नये व्याघ्र चर्म भी लाकर रखो, मुक्तामणि से विभूषित एक श्वेत छत्र भी लाओ, जिसमें रत्न के डंडे लगे हों ।।११।। अनेकों सुन्दर मालायें, वस्त्र एवं दिव्याभरण भी उपस्थित रहना चाहिए । सम्मानित मुनिगण हाथ में कुशा लिये हुए उपस्थित रहें ।।१२।। नर्तकियाँ, वेश्यायें, गायक तथा वेणुवादक एवं वाद्य-कुशल कलाकार महाराज दशरथ के प्राङ्गण में गाना-बजाना

हस्त्यश्व-रथ-पादाता बहिस्तिष्ठन्तु सायुधाः ।
नगरे यानि तिष्ठन्ति देवतायतनानि च ॥१४॥
तेषु प्रवर्ततां पूजा नानाबलिभिरावृता ।
राजानः शीघ्रमायान्तु नानोपायनपाणयः ॥१५॥
इत्यादिश्य मुनिः श्रीमान् सुमन्त्रं नृपमन्त्रिणम् ।
स्वयं जगाम भवनं राघवस्यातिशोभनम् ॥१६॥
रथमारुह्य भगवान् वसिष्ठो मुनिसत्तमः ।
त्रीणि कक्षाण्यतिक्रम्य रथात् क्षितिमवातरत् ॥१७॥
अन्तः प्रविश्य भवनं स्वाचार्यत्वादवारितः ।
गुरुमागतमाज्ञाय रामस्तूर्णं कृताञ्जलिः ॥१८॥
प्रत्युद्गम्य नमस्कृत्य दण्डवद् भक्तिसंयुतः ।
स्वर्णपात्रेण पानीयमानिनायाशु जानकी ॥१९॥
रत्नासने समावेश्य पादौ प्रक्षाल्य भक्तितः ।
तदपः शिरसा धृत्वा सीतया सह राघवः ॥२०॥

---

आरम्भ करें ॥१३॥ और राजप्रासाद के बाहर हाथी, घोड़े, रथ एवं पदाति (पैदल) से युक्त चतुरङ्गिणी सेना शस्त्रों से सुसज्जित होकर खड़ी रहे। नगर में जितने भी देवताओं के स्थान हैं ॥१४॥ उन्हें अनेक प्रकार की बलि देकर अनेक प्रकार से उनकी पूजा की जाय। और राजा लोग अनेक प्रकार की भेंट लेकर शीघ्रता से राज दरबार में आवें ॥१५॥

राज-मन्त्री सुमन्त्र को इस प्रकार की आज्ञा दे, श्रीमान् वसिष्ठ जी स्वयं श्रीरामचन्द्र जी के मनोरम महल में गये ॥१६॥ मुनि-श्रेष्ठ भगवान् वसिष्ठ रथ पर सवार हो श्रीराम के महल की तीन कक्षायें पार कर रथ से नीचे उतर गये ॥१७॥ रघुकुल के आचार्य होने के कारण वे बे-रोक-टोक अन्तःपुर में चले गये। गुरु को आये हुए देखकर राम ने हाथ जोड़ कर उनका स्वागत किया ॥१८॥ और भक्ति युक्त हो आगे बढ़कर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। सीताजी भी उस समय सुवर्ण पात्र में जल ले आयीं ॥१९॥

इसके अनन्तर श्रीराम जी ने वसिष्ठ जी को रत्न-सिंहासन पर बैठाया और भक्तिपूर्वक वसिष्ठ जी का चरण प्रक्षालन कर सीता सहित चरणोदक को शिर पर रखकर कहा ॥२०॥

धन्योऽस्मीत्यब्रवीद् रामस्तव पादाम्बुधारणात् ।
श्रीरामेणैवमुक्तस्तु प्रहसन् मुनिरब्रवीत् ॥२१॥
त्वत्पादसलिलं धृत्वा धन्योऽभूद् गिरिजापतिः ।
ब्रह्माऽपि मत्पिता ते हि पादतीर्थहताशुभः ॥२२॥
इदानीं भाषसे यत्त्वं लोकानामुपदेशकृत् ।
जानामि त्वां परात्मानं लक्ष्म्या संजातमीश्वरम् ॥२३॥
देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं भक्तानां भक्तिसिद्धये ।
रावणस्य वधार्थाय जातं जानामि राघव ॥२४॥
तथापि देवकार्यार्थं गुह्यं नोद्घाटयाम्यहम् ।
तथा त्वं मायया सर्वं करोषि रघुनन्दन ! ॥२५॥
तथैवाऽनुविधास्येऽहं शिष्यस्त्वं गुरुरप्यहम् ।
गुरुर्गुरूणां त्वं देव पितॄणां त्वं पितामहः ॥२६॥

---

महाराज ! आपके चरणोदक धारण करने के कारण मैं धन्य हो गया। राम के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर वसिष्ठजी ने हँसते हुए कहा ॥२१॥ हे राम ! तुम्हारे चरणोदक को धारण कर पार्वती-वल्लभ भगवान् शंकर धन्य हो गये। किं बहुना ! मेरे पिता ब्रह्मदेव भी तुम्हारा चरणोदक धारण कर निष्पाप हो गये ॥२२॥

इस समय आप केवल संसार को उपदेश देने के लिए ही (गुरु के चरणोदक को धारण कर मैं कृतकृत्य हो गया, अतः सबको गुरु-पूजा करनी चाहिए) ऐसा कह रहे हैं। हे राम ! मैं यह भली भाँति जानता हूँ कि आप लक्ष्मी सहित परमात्मा विष्णु हैं ॥२३॥

हे राम ! आप देवकार्य की सिद्धि के लिये, भक्तों की भक्ति सफल बनाने के लिये एवं रावण का वध करने के लिए राम के रूप में अवतरित हुए हैं। इस बात को मैं अच्छी प्रकार जानता हूँ ॥२४॥ देवताओं का कार्य सिद्ध हो जाय, इसलिये मैं इस गुप्त रहस्य का उद्घाटन नहीं करना चाहता। हे रघुनन्दन ! जिस प्रकार आप माया के आश्रय से (छिप कर) सब कार्य करेंगे ॥२५॥ उसी प्रकार मैं भी यदि 'तुम शिष्य हो और मैं गुरु हूँ' इस प्रकार का (माया से) व्यवहार करूँगा। किन्तु हे देव ! आप गुरुओं के गुरु, एवं पितरों के भी पितामह हो ॥२६॥

अन्तर्यामी जगद्यात्रावाहकस्त्वमगोचरः ।
शुद्धसत्त्वमयं देहं धृत्वा स्वाधीनसम्भवम् ॥२७॥
मनुष्य इव लोकेऽस्मिन् भासि त्वं योगमायया ।
पौरोहित्यमहं जाने विगर्ह्यं दूष्यजीवनम् ॥२८॥
इक्ष्वाकूणां कुले रामः परमात्मा जनिष्यते ।
इति ज्ञातं मया पूर्वं ब्रह्मणा कथितं पुरा ॥२९॥
ततोऽहमाशया राम तव सम्बन्धकाङ्क्षया ।
अकार्षं गर्हितमपि तवाचार्यत्वसिद्धये ॥३०॥
ततो मनोरथो मेऽद्य फलितो रघुनन्दन ! ।
त्वदधीना महामाया सर्वलोकैकमोहिनी ॥३१॥
मां यथा मोहयेन्नैव तथा कुरु रघूद्वह ।
गुरुनिष्कृतिकामस्त्वं यदि देह्येतदेव मे ॥३२॥
प्रसङ्गात् सर्वमप्युक्तं न वाच्यं कुत्रचिन्मया ।
राज्ञा दशरथेनाहं प्रेषितोऽस्मि रघूद्वह ॥३३॥

---

आप अन्तर्यामी हैं, लौकिक व्यवहार के निर्वाह करने वाले एवं इन्द्रियों से अगोचर हैं। आपने अपनी इच्छा से इस शुद्ध सत्त्वमय शरीर को धारण किया है ॥२७॥ आप योगमाया के प्रभाव से इस लोक में सामान्य मनुष्य–जैसे प्रतीत हो रहे हैं। इतना ही नहीं, मैं यह भी जानता हूँ कि पौरोहित्य कार्य, अति निन्दनीय एवं कुत्सित जीविका है ॥२८॥ किन्तु जब मुझे ब्रह्मा के द्वारा पूर्व काल में यह मालूम हुआ कि इक्ष्वाकु कुल में स्वयं परमात्मा अवतार लेंगे ॥२९॥ तब हे राम ! मैंने आप से सम्बन्ध जोड़ने की इच्छा से आपकी आचार्यता प्राप्त करने के लिये इस पौरोहित्य जैसे नीच कर्म को भी स्वीकार कर लिया ॥३०॥

हे रघुनन्दन ! मेरी इच्छा आज पूर्ण हुई। सम्पूर्ण लोगों को मोहने वाली यह माया आप के अधीन है ॥३१॥ अतः हे राघव ! यदि आप गुरु-ऋण से उऋण होना चाहते हैं, तो मुझे यह वरदान दीजिए कि यह माया मुझे कभी भी मोहित न करे ॥३२॥ प्रसङ्ग उपस्थित होने पर मैंने यह सब बातें आप से कही हैं। मैं और कहीं इसकी चर्चा भी नहीं करूँगा। हे राघव ! मुझे महाराज दशरथ ने आप के पास भेजा है ॥३३॥

त्वामामन्त्रयितुं राज्ये श्वोऽभिषेक्ष्यति राघव ।
अद्य त्वं सीतया सार्धमुपवासं यथाविधि ॥३४॥
कृत्वा शुचिर्भूमिशायी भव राम ! जितेन्द्रियः ।
गच्छामि राजसान्निध्यं त्वं तु प्रातर्गमिष्यसि ॥३५॥
इत्युक्त्वा रथमारुह्य ययौ राजगुरुर्द्रुतम् ।
रामोऽपि लक्ष्मणं दृष्ट्वा प्रहसन्निदमब्रवीत ॥३६॥
सौमित्रे यौवराज्ये मे श्वोऽभिषेको भविष्यति ।
निमित्तमात्रमेवाहं कर्ता भोक्ता त्वमेव हि ॥३७॥
मम त्वं हि बहिःप्राणो नाऽत्र कार्या विचारणा ।
ततो वसिष्ठेन यथा भाषितं तत्तथाकरोत् ॥३८॥
वसिष्ठोऽपि नृपं गत्वा कृतं सर्वं न्यवेदयत ।
वसिष्ठस्य पुरो राज्ञा ह्युक्तं रामाभिषेचनम् ॥३९॥

---

हे राघव ! महाराज कल आपका राज्याभिषेक करना चाहते हैं, इस बात को सूचित करने के लिए उन्होंने मुझे आपके पास भेजा है । अतः आज आप सीता के साथ विधि पूर्वक उपवास कीजिए ॥३४॥ इस समय आप पवित्रता पूर्वक जितेन्द्रिय हो पृथ्वी पर शयन करें। अब मैं राजा के पास जा रहा हूँ, आप कल प्रातःकाल राजा के पास पधारें ॥३५॥ राजगुरु ऐसा कह कर शीघ्रता से रथ पर सवार हो तुरन्त ही राजा के पास चले गये। इधर रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण को देख कर हँसते हुए कहा ॥३६॥

हे लक्ष्मण ! कल युवराज पद पर मेरा अभिषेक होगा। मैं तो केवल नाम मात्र का युवराज रहूँगा, किन्तु तुम तो इसके सब प्रकार से कर्त्ता एवं भोक्ता रहोगे ॥३७॥ हे लक्ष्मण ! तुम हमारे बाहरी प्राण हो, इसमें कोई विचार की आवश्यकता नहीं है। तदनन्तर वसिष्ठ जी ने जैसा कहा था, रामचन्द्र जी ने वैसा ही किया ॥३८॥ इधर वसिष्ठ जी ने भी दशरथ के पास जाकर अपना सारा किया कार्य बता दिया। जिस समय महाराज दशरथ वसिष्ठजी से राज्याभिषेक का यह समाचार कह रहे थे ॥३९॥

यदा तदैव नगरे श्रुत्वा कश्चित् पुमान् जगौ ।
कौसल्यायै राममात्रे सुमित्रायै तथैव च ॥४०॥
श्रुत्वा ते हर्षसम्पूर्णो ददतुर्हारमुत्तमम् ।
तस्मै ततः प्रीतमना कौसल्या पुत्रवत्सला ॥४१॥
लक्ष्मीं पर्यचरद् देवीं रामस्यार्थप्रसिद्धये ।
सत्यवादी दशरथः करोत्येव प्रतिश्रुतम् ॥४२॥
कैकेयीवशगः किन्तु कामुकः किं करिष्यति ।
इति व्याकुलचित्ता सा दुर्गां देवीमपूजयत् ॥४३॥
एतस्मिन्नन्तरे देवा देवीं वाणीमचोदयन् ।
गच्छ देवि ! भुवो लोकमयोध्यायां प्रयत्नतः ॥४४॥
रामाभिषेकविघ्नार्थं यतस्व ब्रह्मवाक्यतः ।
मन्थरां प्रविशस्वादौ कैकेयीं च ततः परम् ॥४५॥
ततो विघ्ने समुत्पन्ने पुनरेहि दिवं शुभे ।
तथेत्युक्त्वा तथा चक्रे प्रविवेशाथ मन्थराम् ॥४६॥

---

उस समय इस समाचार को सुन कर किसी पुरुष ने सारे नगर में, एवं कौसल्या तथा सुमित्रा से भी यह समाचार सुना दिया ॥४०॥ उन दोनों माताओं ने इस समाचार को सुन कर उस पुरुष को अत्युत्तम हार प्रदान किया । फिर पुत्रवत्सला कौसल्या ने प्रसन्न होकर ।४१॥

श्रीराम के अभीष्ट सिद्धि के लिये महालक्ष्मी का पूजन किया । दशरथ सत्यवादी हैं, अतः वे अवश्य ही अपनी प्रतिज्ञा का पालन करेंगे ॥४२॥ किन्तु वे कामी एवं कैकेयी के वशवर्त्ती हैं । अतः वे क्या करेंगे ? इस चिन्ता से व्याकुल हो उन्होंने दुर्गादेवी का पूजन प्रारम्भ किया ॥४३॥

इसी समय देवताओं ने भगवती सरस्वती से निवेदन किया, हे देवि ! तुम भूलोक में प्रयत्न पूर्वक अयोध्या नगरी में जाओ ।४४॥ और ब्रह्मा जी की आज्ञा से रामचन्द्र के राज्याभिषेक महोत्सव में विघ्न उत्पन्न करो । प्रथम तुम मन्थरा में प्रवेश करो, तदनन्तर कैकेयी में प्रवेश करो ॥४५॥ हे शुभे ! इस प्रकार अभिषेक में विघ्न उपस्थित कर तुम पुनः देवलोक में लौट आना । सरस्वती ने भी 'बहुत अच्छा' कह कर मन्थरा में प्रवेश किया ॥४६॥

सार्ऽपि कुब्जा त्रिवक्रा तु प्रासादाग्रमथारुहत् ।
नगरं परितो दृष्ट्वा सर्वतः समलङ्कृतम् ॥४७॥
नानातोरणसम्बाधं पताकाभिरलङ्कृतम् ।
सर्वोत्सवसमायुक्तं विस्मिता पुनरागमत् ॥४८॥
धात्रीं पप्रच्छ मातः! किं नगरं समलङ्कृतम् ।
दानोत्सवसमायुक्ता कौसल्या चातिहर्षिता ॥४९॥
ददाति विप्रमुख्येभ्यो वस्त्राणि विविधानि च ।
तामुवाच तदा धात्री रामचन्द्राभिषेचनम् ॥५०॥
श्वो भविष्यति तेनाद्य सर्वतोऽलङ्कृतं पुरम् ।
तच्छ्रुत्वा त्वरितं गत्वा कैकेयीं वाक्यमब्रवीत् ॥५१॥
पर्यङ्कस्थां विशालाक्षीमेकान्ते पर्यवस्थिताम् ।
किं शेषे दुर्भगे मूढे महद्-भयमुपस्थितम् ॥५२॥
न जानीषेऽतिसौन्दर्यमानिनी मत्तगामिनी ॥५३॥

---

इधर तीन स्थान में टेढ़ी वह कूबरी अटारी पर चढ़ गयी। तदनन्तर उसने सारे नगर के सजावट को देखा ॥४७॥ सारे नगर में बन्दनवार बँधे हुए थे, एवं चित्र-विचित्र की पताकायें सुशोभित हो रही थीं। नगर में चारों ओर उत्सव हो रहे थे, यह देखकर विस्मित हुई वह मन्थरा फिर नीचे लौट आयी ॥४८॥ उसने धात्री से पूछा—देवि, यह नगर आज क्यों सजाया गया है। आज कौसल्या बड़े प्रसन्न मन से उत्सव मनाती हुई ॥४९॥ ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के वस्त्रों का दान दे रही है। तब धात्री ने राम कि राज्याभिषेक की बात कही ॥५०॥ धाई ने मन्थरा से कहा—कल राम का राज्याभिषेक होनेवाला है। इसीलिये नगर हर प्रकार से सजाया जा रहा है। यह सुनते ही मन्थरा ने कैकेयी के पास जाकर सारा समाचार सुनाया ॥५१॥

उस समय विशाल नेत्रों वाली कैकेयी पलंग पर बैठी हुई थी, उसने जाकर कहा—अरे अभागिन मूर्ख कैकेयी! तू यहाँ सो रही है, क्या तू नहीं जानती कि तुम्हारे ऊपर घोर संकट उपस्थित हो रहा है ॥५२॥ तुम्हें अपनी सुन्दरता का बड़ा गर्व है, उस गर्व में फूली रहने के कारण तुम्हें किसी बात का पता नहीं चलता ॥५३॥

रामस्यानुग्रहाद् राज्ञः श्वोऽभिषेको भविष्यति ।
तच्छ्रुत्वा सहसोत्थाय कैकेयी प्रियवादिनी ॥५४॥

तस्यै दिव्यं ददौ स्वर्णनूपुरं रत्नभूषितम् ।
हर्षस्थाने किमिति मे कथ्यते भयमागतम् ॥५५॥

भरतादधिको रामः प्रियकृन्मे प्रियंवदः ।
कौसल्यां मां समं पश्यन् सदा शुश्रूषते हि माम् ॥५६॥

रामाद् भयं किमापन्नं तव मूढे वदस्व मे ।
तच्छ्रुत्वा विषसादाथ कुब्जाकारणवैरिणी ॥५७॥

शृणु मद्-वचनं देवि ! यथार्थं ते महद्भयम् ।
त्वां तोषयद् सदा राजा प्रियवाक्यानि भाषते ॥५८॥

कामुकोऽतथ्यवादी च त्वां वाचा परितोषयन् ।
कार्यं करोति तस्या वै राममातुः सुपुष्कलम् ॥५९॥

---

महाराज दशरथ राम के ऊपर अनुग्रह कर कल ही उनका अभिषेक करने वाले हैं। इस बात को सुनकर मधुरभाषिणी कैकेयी सहसा पर्यङ्क से उठ बैठी ॥५४॥ उसने अपना रत्न भूषित सुवर्ण नूपुर मन्थरा को उतार कर दे दिया। और कहने लगी, यह तो बड़े आनन्द की बात है फिर तू संकट उपस्थित हुआ है ऐसा क्यों कह रही है ॥५५॥ सबसे प्रिय बोलनेवाले मधुरभाषी राम भरत की अपेक्षा मुझे अधिक प्रिय हैं। वे मुझे एवं कौसल्या को समान रूप से देखते हैं। और मेरी तो सदैव सेवा करते रहते हैं ॥५६॥

अरे मूर्खे ! तुझे राम से क्यों भय उत्पन्न हो गया ? तू सच बता। कैकेयी के इस बात को सुनकर अकारण वैर करने वाली कुब्जा दुःखी हो गयी ॥५७॥ उसने कैकेयी से कहा—देवि ! मेरी बात सुनो, सचमुच तुम्हें बहुत भय उपस्थित हो गया है। राजा तुमको केवल सन्तुष्ट रखने के लिए ही सदैव चिकनी-चुपड़ी बातें किया करते हैं ॥५८॥ वे कामी तथा असत्यभाषी हैं, तुम्हें केवल बातों से बहलाया करते हैं, किन्तु राम-माता कौसल्या का

मनस्येतद्विधायैव प्रेषयामास ते सुतम् ।
भरतं मातुलकुले प्रेषयामास सानुजम् ॥६०॥
सुमित्रायाः समीचीनं भविष्यति न संशयः ।
लक्ष्मणो राममन्वेति राज्यं सोऽनुभविष्यति ॥६१॥
भरतो राघवस्याग्रे किङ्करो वा भविष्यति ।
विवास्यते वा नगरात् प्राणैर्वा हाप्यतेऽचिरात् ॥६२॥
त्वं तु दासीव कौसल्यां नित्यं परिचरिष्यसि ।
ततोऽपि मरणं श्रेयो यत्सपत्न्याः पराभवः ॥६३॥
अतः शीघ्रं यतस्वाद्य भरतस्याऽभिषेचने ।
रामस्य वनवासार्थं वर्षाणि नव पञ्च च ॥६४॥
ततो रूढोऽभये पुत्रस्तव राज्ञि भविष्यति ।
उपायं ते प्रवक्ष्यामि पूर्वमेव सुनिश्चितम् ॥६५॥
पुरा देवासुरे युद्धे राजा दशरथः स्वयम् ।
इन्द्रेण याचितो धन्वी सहायार्थं महारथः ॥६६॥

---

पूरा-पूरा कार्य करते हैं ॥५९॥ उन्होंने रामको राज्य देनेके लिये ही तुम्हारे लड़के भरत को शत्रुघ्न सहित मामा के पास भेज दिया है ॥६०॥

इसमें अधिक लाभ सुमित्रा का ही है। क्योंकि उनके पुत्र लक्ष्मण राम के अनुगामी हैं, इसलिए वे राज्य का भोग करेंगे ही ॥६१॥ अब रही बात भरत की, या तो वे जीवन भर राम का गुलाम बन कर रहेंगे। अथवा नगर से निकाल दिये जायेंगे। अथवा उनको प्राण दण्ड दे दिया जायेगा ॥६२॥ और तुम कौसल्या की दासी के समान सदैव सेवा करोगी। किन्तु इस प्रकार सौत से अपमानित होकर जीने की अपेक्षा तुम्हारा मर जाना ही श्रेयस्कर होगा। ६३॥ इसलिये जब तक समय है भरत के राज्याभिषेक एवं राम के चौदह वर्ष पर्यन्त वनवास का प्रयत्न करो ॥६४॥ हे रानी! इस प्रकार का उपाय करने पर तुम्हारे पुत्र का निष्कण्टक राज्य हो जायेगा। अतः इस कार्य के लिये मैंने बहुत पहले जो उपाय सोच रखा है, उसे तुम्हें बता रही हूँ ॥६५॥

पूर्व काल में जब देवासुर संग्राम हो रहा था, उस समय देवराज इन्द्र ने स्वयं महाराज दशरथ के पास आकर ॥६६॥ उनसे सहायता करने की

जगाम सेनया सार्धं त्वया सह शुभानने ।
युद्धं प्रकुर्वतस्तस्य राक्षसैः सह धन्विनः ॥६७॥

तदाक्षकीलो न्यपतच्छिन्नस्तस्य न वेद सः ।
त्वं तु हस्तं समावेश्य कीलरन्ध्रेऽतिधैर्यतः ॥६८॥

स्थितवत्यसितापाङ्गि पतिप्राणपरीप्सया ।
ततो हत्वाऽसुरान् सर्वान् ददर्श त्वामरिन्दमः ॥६९॥

आश्चर्यं परमं लेभे त्वामालिङ्ग्य मुदान्वितः ।
वृणीष्व यत्ते मनसि वाञ्छितं वरदोऽस्म्यहम् ॥७०॥

वरद्वयं वृणीष्व त्वमेवं राजाऽवदत् स्वयम् ।
त्वयोक्तो वरदो राजन् ! यदि दत्तं वरद्वयम् ॥७१॥

त्वय्येव तिष्ठतु चिरं न्यासभूतं ममाऽनघ ।
यदा मेऽवसरो भूयात् तदा देहि वरद्वयम् ॥७२॥

---

प्रार्थना की । हे सुमुखि ! उस समय महाराज दशरथ स्वयं ही एक बहुत बड़ी सेना लेकर तुम्हारे साथ संग्राम-भूमि में गये । और धनुष लेकर राक्षसों से युद्ध करने लगे ॥६७॥ उस युद्ध में उनके रथ की धूरी की कील टूटकर पृथ्वी पर गिर गयी, इसका ज्ञान महाराज को नहीं हुआ । तब तुमने धैर्य धारण कर अपना हाथ कील के छिद्र में प्रविष्ट कर दिया ॥६८॥

हे कृष्णकटाक्ष वाली कैकेयी ! तुमने इस प्रकार अपने पति की प्राण-रक्षा के लिये बहुत देर तक अपना हाथ लगाये रखा । जब उन्होंने समस्त असुरों का विनाश कर लिया तो उनकी दृष्टि तुम्हारी ओर गयी ॥६९॥ तुम्हें इस प्रकार की स्थिति में देख उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और प्रसन्नता से तुम्हारा आलिङ्गन करते हुए बोले, देवि ! 'मैं तुम्हें वर देना चाहता हूँ । तुम्हारी जो इच्छा हो माँगो ॥७०॥ तुम मुझ से दो वर माँग सकती हो । ऐसा उस समय राजा ने स्वयं कहा । तदनन्तर तुमने वर देने के लिये समुद्यत उस राजा से कहा—राजन् ! यदि मुझे आप प्रसन्नतापूर्वक दो वर देना चाहते हैं ॥७१॥ तो हे अनघ ! ये मेरे दो वरदान न्यास (धरोहर) के रूप में आप के ही पास रहें, जब अवसर होगा तो मुझे ये दोनों वर

तथेत्युक्त्वा स्वयं राजा मन्दिरं व्रज सुव्रते ।
त्वत्तः श्रुतं मया पूर्वमिदानीं स्मृतिमागतम् ॥७३॥
अतः शीघ्रं प्रविश्याऽद्य क्रोधागारं रुषान्विता ।
विमुच्य सर्वाभरणं सर्वतो विनिकीर्य च ।
भूमावेव शयाना त्वं तूष्णीमातिष्ठ भामिनि ॥७४॥
यावत् सत्यं प्रतिज्ञाय राजाऽभीष्टं करोति ते ।
श्रुत्वा त्रिवक्रयोक्तं तत्तदा केकयनन्दिनी ॥७५॥
तथ्यमेवाऽखिलं मेने दुःसङ्गाहितविभ्रमा ।
तामाह कैकेयी दुष्टा कुतस्ते बुद्धिरीदृशी ॥७६॥
एवं त्वां बुद्धिसम्पन्नां न जाने वक्रसुन्दरि ।
भरतो यदि राजा मे भविष्यति सुतः प्रियः ॥७७॥
ग्रामान् शतं प्रदास्यामि मम त्वं प्राणवल्लभा ।
इत्युक्त्वा कोपभवनं प्रविश्य सहसा रुषा ॥७८॥

---

दीजियेगा ॥७२॥ फिर राजा ने 'तथास्तु' कह कर तुम से कहा—हे सुव्रते ! अब घर चलो । हे देवि ! पूर्व काल में मैंने यह सारा वृत्तान्त तुम से सुना था, वह इस समय मुझे स्मरण हो आया है ॥७३॥

हे रानी ! तुम शीघ्र ही रोष पूर्ण हो, कोप-भवन में चली जाओ और वहाँ यत्र-तत्र अपने आभूषणों को उतार कर बिखेर दो । और चुपचाप पृथ्वी पर पड़ी रहो ॥७४॥ सत्य प्रतिज्ञ राजा जब तक तुम्हारा मनोरथ पूर्ण न करें तब तक कोप-भवन में पड़ी रहो । त्रिवक्रा मन्थरा के द्वारा कही गई इस बात को सुनकर कैकेयी ने उसका कथन सत्य मान लिया ॥ ७५ ॥ उस समय दुःसङ्ग के कारण उसकी बुद्धि नष्ट हो गयी । उस दुष्टा ने मन्थरा से कहा—'ऐसी बुद्धि तुम्हें कहाँ से आयी' ॥ ७६ ॥

अरी त्रिवक्रे ! मैं तुम्हें ऐसी बुद्धिमती नहीं जानती थी । यदि मेरा प्रिय पुत्र भरत राजा हो गया ।७७। तो मैं तुम्हें सौ ग्राम दूँगी । सचमुच तू मुझे प्राणों से भी प्यारी है । ऐसा कह कर कैकेयी ने रोष पूर्वक कोप-भवन में प्रवेश किया ॥७८॥ उसने अपने सम्पूर्ण आभूषण उतार कर

विमुच्य सर्वाभरणं परिकीर्य समन्ततः ।
भूमौ शयाना मलिना मलिनाम्बरधारिणी ॥७९॥
प्रोवाच शृणु मे कुब्जे यावद्रामो वनं व्रजेत् ।
प्राणांस्त्यक्ष्येऽथ वा वक्रे शयिष्ये तावदेव हि ॥८०॥
निश्चयं कुरु कल्याणि ! कल्याणं ते भविष्यसि ।
इत्युक्त्वा प्रययौ कुब्जा गृहं साऽपि तथाऽकरोत् ॥८१॥
धीरोऽत्यन्तदयान्वितोऽपि सगुणा चारान्वितो वाऽथवा
नीतिज्ञो विधिवाददेशिकपरो विद्याविवेकोऽथवा ।
दुष्टानामतिपाप-भावित-धियां सङ्गं सदा चेद् भजेत्
तद् बुद्ध्या परिभावितो व्रजति तत् साम्यं क्रमेण स्फुटम् ॥८२॥
अतः सङ्गः परित्याज्यो दुष्टानां सर्वदैव हि ।
दुःसङ्गी च्यवते स्वार्थाद् यथेयं राजकन्यका ॥८३॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
अयोध्याकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥२॥

*

---

जहाँ-तहाँ फेंक दिया और मैले-कुचैले वस्त्र धारण कर मलीन अवस्था में पृथ्वी में पड़ गई और कुब्जा से कहने लगी-॥७९॥ अरी कुब्जे ! सुन जब तक राम का वनवास नहीं होगा तब तक मैं इसी प्रकार पृथ्वी में पड़ी रहूँगी, भले ही मेरे प्राण चले जायँ ।८०। तब कुब्जा ने उससे कहा— हे कल्याणि ! तुम अपने निश्चय पर डटी रहो, तुम्हारा कल्याण अवश्य होगा। ऐसा कह कर कुब्जा अपने घर चली गयी। और कैकेयी ने जैसा मन्थरा के द्वारा कहा गया था, वैसा ही किया ॥ ८१ ॥

कोई पुरुष चाहे, कितना ही धैर्यवान्, दयालु, सद्गुणी, सदाचारी, नीतिज्ञ, कर्त्तव्य परायण, गुरुका आज्ञापालक, विद्या एवं विवेक से युक्त क्यों न हो, किन्तु यदि वह दुष्ट एवं पापबुद्धि जनों का साथ करेगा, तो उसकी बुद्धि से प्रभावित होकर वह धीरे-धीरे उस पापी मनुष्य के समान ही हो जायेगा ॥८२॥ इसलिए सत्पुरुष को चाहिए कि वह दुष्टजनों का साथ छोड़ दे, अन्यथा उन पापी मनुष्यों का साथ करने से उसी प्रकार पतित हो जायेगा, जैसे राजकन्या कैकेयी मन्थरा के साथ पतित बुद्धि की हो गयी ॥ ८३ ॥

इस प्रकार 'राम-प्रिया' हिन्दी व्याख्या सहित अध्यात्मरामायण के उमा-महेश्वर संवाद में अयोध्याकाण्ड का द्वितीय सर्ग समाप्त । २ ॥

## ३. तृतीयः सर्गः

(राजा दशरथ का कैकेयी को वर देना)

श्रीमहादेव उवाच

ततो दशरथो राजा रामाभ्युदयकारणात् ।
आदिश्य मन्त्रिप्रकृतीः सानन्दो गृहमाविशत् ॥ १ ॥

तत्राऽदृष्ट्वा प्रियां राजा किमेतदति विह्वलः ।
या पुरा मन्दिरं तस्याः प्रविष्टे मयि शोभना ॥ २ ॥

हसन्ती मामुपायाति सा किं नैवाऽद्य दृश्यते ।
इत्यात्मन्येव सञ्चिन्त्य मनसाऽतिविदूयता ॥ ३ ॥

पप्रच्छ दासीनिकरं कुतो वः स्वामिनी शुभा ।
नायाति मां यथापूर्वं मत्-प्रिया प्रियदर्शना ॥ ४ ॥

ता ऊचुः क्रोधभवनं प्रविष्टा नैव विद्महे ।
कारणं तत्र देव ! त्वं गत्वा निश्चेतुमर्हसि ॥ ५ ॥

---

श्रीमहादेवजीने कहा—हे पार्वति ! तदनन्तर महाराज दशरथ ने राम के अभ्युदय के लिये मन्त्रियों एवं प्रजा वर्गों को आज्ञा देकर सानन्द अन्तःपुर में प्रवेश किया ॥ १ ॥ उस रनिवास में अपनी प्रियतमा कैकेयी को न देख वे बहुत दुःखी हो गये और मन में कहने लगे कि, क्या कारण है जो रनिवास में कैकेयी दिखाई नहीं पड़ती ? वह तो मेरे रनिवासमें प्रवेश करते ही ॥ २ ॥ हँसते हुए मेरा स्वागत करती थी किन्तु आज क्यों दिखाई नहीं पड़ती ? अपने मन में ऐसा विचार कर वे बड़े दुःखी हुए ॥३॥ फिर उन्होंने दासियों से पूछा—'आज शुभलक्षणा तुम्हारी स्वामिनी कहाँ हैं। प्रियदर्शना वह मेरी प्राणप्रिया आज पूर्ववत् मेरे सामने क्यों नहीं आ रही है' ॥ ४ ॥

उब दासियों ने कहा—महराज; हम लोगों को कारण का पता तो नहीं चलता किन्तु इतना जानती हूँ कि वे कोप-भवन में हैं। आप स्वयं जाकर सब बात मालूम कीजिए ॥ ५ ॥ दासियों के द्वारा इस प्रकार

इत्युक्तो भयसन्त्रस्तो राजा तस्याः समीपगः ।
उपविश्य शनैर्देहं स्पृशन् वै पाणिनाऽब्रवीत् ॥ ६ ॥
किं शेषे वसुधापृष्ठे पर्यङ्कादीन् विहाय च ।
मां त्वं खेदयसे भीरु ! यतो मां नाऽवभाषसे ॥ ७ ॥
अलङ्कारं परित्यज्य भूमौ मलिनवाससा ।
किमर्थं ब्रूहि सकलं विधास्ये तव वाञ्छितम् ॥ ८ ॥
को वा तवाहितं कर्ता नारो वा पुरुषोऽपि वा ।
स मे दण्डयश्च वध्यश्च भविष्यति न संशयः ॥ ९ ॥
ब्रूहि देवि ! यथा प्रीतिस्तदवश्यं ममाग्रतः ।
तदिदानीं साधयिष्ये सुदुर्लभमपि क्षणात् ॥१०॥
जानासि त्वं मम स्वान्तं प्रियं मां स्ववशे स्थितम् ।
तथापि मां खेदयसे वृथा तव परिश्रमः ॥११॥

---

कहे जाने पर महराज दशरथ भयभीत हो गये । और कैकेयी के पास जाकर बैठ गये और उसके शरीर पर धीरे-धीरे हाथ फेरते हुए बोले ॥६॥ अयि भीरु ! आज पलंग आदि आसनों को छोड़कर तुम पृथ्वीपर क्यों पड़ी हो । मुझे सबसे बड़ा खेद इस बात का है कि आज तुम मुझ से कुछ बोल नहीं रही हो ॥७॥ तुमने अपने अलङ्कार यत्र-तत्र क्यों बिखेर दिया है और मलिन वस्त्र धारण कर पृथ्वी पर क्यों पड़ी हो ? मुझे स्पष्ट रूप से इसका कारण बताओ । अवश्य ही मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूंगा ॥८॥ तुम्हारा अनिष्ट करने वाला कौन है ? वह चाहे स्त्री हो अथवा पुरुष, मेरे द्वारा वह अवश्य दण्डनीय होगा, इतना ही नहीं उसका वध भी किया जा सकता है ॥९॥

हे देवि ! तुम जिससे प्रसन्न हो सकती हो, उस बात को अवश्य ही मेरे सामने व्यक्त करो, मैं दुर्लभ होते हुए भी उसे एक क्षण में अभी पूरा करूँगा ॥१०॥ हे देवि ! तुम मेरे अन्तःकरण को जानती हो। मैं तुम्हारा प्रिय एवं तुम्हारे सदैव वश में रहने वाला हूँ, फिर भी तुम मुझे इस प्रकार खिन्न कर रही हो, तुम्हारा यह श्रम व्यर्थ है ॥११॥ अच्छा, तुम्हीं बताओ,

ब्रूहि कं धनिनं कुर्यां दरिद्रं ते प्रियङ्करम् ।
धनिनं क्षणमात्रेण निर्धनं च तवाहितम् ॥१२॥

ब्रूहि कं वा वधिष्यामि वधार्हो वा विमोक्ष्यसे ।
किमत्र बहुनोक्तेन प्राणान् दास्यामि ते प्रिये ॥१३॥

मम प्राणात् प्रियतरो रामो राजीवलोचनः ।
तस्योपरि शपे ब्रूहि त्वद्धितं तत् करोम्यहम् ॥१४॥

इति ब्रुवाणं राजानं शपन्तं राघवोपरि ।
शनैर्विमृज्य नेत्रे सा राजानं प्रत्यभाषत ॥१५॥

यदि सत्यप्रतिज्ञोऽसि शपथं कुरुषे यदि ।
याच्ञां मे सफलां कर्तुं शीघ्रमेव त्वमर्हसि ॥१६॥

पूर्वं देवासुरे युद्धे मया त्वं परिरक्षितः ।
तदा वरद्वयं दत्तं त्वया मे तुष्टचेतसा ॥१७॥

---

तुम्हारा प्रिय करने वाले किस कंगाल को धनी बना दूँ । अथवा तुम्हारे अहित करने वाले किस धनी को क्षण मात्र में कंगाल बना दूँ ॥१२॥ बताओ किस अवध्य का वध करूँ अथवा किस वधार्ह पुरुष को जीवन दान दूँ । हे प्रिये ! अब बहुत कहने से क्या लाभ ? मैं तुम्हारे लिये अपना प्राण भी दे सकता हूँ ॥१३॥

राजीवलोचन श्री राम मुझे प्राणों से भी प्रियतर हैं, मैं उन्हीं की शपथ देता हूँ, जो तुम्हें प्रिय हो उसे अवश्य करूँगा ॥१४॥

महाराज दशरथ के इस प्रकार कहने पर एवं श्री राम का शपथ देने पर वह कैकेयी धीरे-धीरे अपने नेत्र के आँसुओं को पोंछती हुई महाराज दशरथ से बोली—॥१५॥ हे राजन् ! यदि आप सत्य-प्रतिज्ञ हैं और राम की सौगन्ध भी दे रहे हैं, तो शीघ्र ही मेरी याच्ञा को पूर्ण कीजिए ॥१६॥

पूर्व काल में जब देवासुर संग्राम हो रहा था, तो मैंने आप के प्राणों की रक्षा की थी । तब आपने प्रसन्न होकर मुझे दो वरदान देने के लिए कहा था ॥१७॥ हे सुव्रत ! उन दोनों वरदानों को धरोहर के रूप में मैंने

तद् द्वयं न्यासभूतं मे स्थापितं त्वयि सुव्रत ! ।
तत्रैकेन वरेणाशु भरतं मे प्रियं सुतम् ॥१८॥
एभिः संभृत-संभारैर्यौवराज्येऽभिषेचय ।
अपरेण वरेणाशु रामो गच्छतु दण्डकान् ॥१९॥
मुनिवेषधरः श्रीमान् जटावल्कलभूषणः ।
चतुर्दश समास्तत्र कन्द-मूल-फलाशनः ॥२०॥
पुनरायातु तस्यान्ते वने वा तिष्ठतु स्वयम् ।
प्रभाते गच्छतु वनं रामो राजीवलोचनः ॥२१॥
यदि किञ्चिद् विलम्बेत प्राणांस्त्यक्ष्ये तवाग्रतः ।
भव सत्यप्रतिज्ञस्त्वमेतदेव मम प्रियम् ॥२२॥
श्रुत्वैतद् दारुणं वाक्यं कैकेय्या रोमहर्षणम् ।
निपपात महीपालो वज्राहत इवाचलः ॥२३॥
शनैरुन्मील्य नयने विमृज्य परया भिया ।
दुःस्वप्नो वा मया दृष्टो ह्यथवा चित्तविभ्रमः ॥२४॥

---

आप के ही पास छोड़ रखा था। उसमें एक वर से आप शीघ्र ही मेरे प्रिय पुत्र भरत का युवराज पद पर इसी एकत्रित सामग्री से अभिषेक कीजिए। और दूसरे वर से राम दण्डक वन में प्रस्थान करें ॥१८-१९॥ वे मुनियों जैसा वेष धारण कर जटा, वल्कल आदि धारण कर, एवं कन्द-मूल खाते हुए वहाँ चौदह वष पर्यन्त निवास करें ।।२०।।

इसके अनन्तर चाहे वे अयोध्या में लौटें अथवा अपनी इच्छानुसार वन में ही निवास करें। राजीवलोचन राम कल प्रातःकाल अवश्य वन चले जाँय ।। २१ ।। यदि राम ने वन जाने में किञ्चिन्मात्र विलम्ब किया तो अवश्य ही मैं आपके देखते-देखते अपना प्राण त्याग कर दूँगी। बहुत क्या कहें, आप अपनी प्रतिज्ञा सत्य कीजिये। बस यही हमारा प्रिय है ।।२२।। कैकेयी के द्वारा कहे गये इस रोमाञ्चकारी एवं दारुण वचन सुन कर महाराज दशरथ वज्राहत पर्वत के समान गिर पड़े ।। २३ ।। फिर धीरे-धीरे उन्होंने अपने नेत्र खोले तथा अत्यन्त भय से संत्रस्त हो नेत्रों के आँसुओं को पोंछते हुए मन ही मन विचार करने लगे, क्या मैं यह दुःस्वप्न देख रहा हूँ अथवा मेरे चित्त में कोई भ्रम उत्पन्न हो गया है ।।२४।।

इत्यालोक्य पुरः पत्नीं व्याघ्रीमिव पुरः स्थिताम् ।
किमिदं भाषसे भद्रे ! मम प्राणहरं वचः ॥२५॥

रामः कमपराधं ते कृतवान् कमलेक्षणः ।
ममाग्रे राघवगुणान् वर्णयस्यनिशं शुभान् ॥२६॥

कौसल्यां मां समं पश्यन् शुश्रूषां कुरुते सदा ।
इति ब्रुवन्ती त्वं पूर्वमिदानीं भाषसेऽन्यथा ॥२७॥

राज्यं गृहाण पुत्राय रामस्तिष्ठतु मन्दिरे ।
अनुगृह्णीष्व मां वामे रामान्नास्ति भयं तव ॥२८॥

इत्युक्त्वाऽश्रुपरीताक्षः पादयोर्निपपात ह ।
कैकेयी प्रत्युवाचेदं साऽपि रक्तान्तलोचना ॥२९॥

राजेन्द्र ! किं त्वं भ्रान्तोऽसि उक्तं तद् भाषसेऽन्यथा ।
मिथ्या करोषि चेत् स्वीयं भाषितं नरको भवेत् ॥३०॥

---

फिर अपने आगे बाघिन की तरह बैठी हुई कैकेयी को देख कर कहने लगे—हे कल्याणि ! तुम मेरे प्राणों को हरण करने वाले ऐसे वचन क्यों बोल रही हो ॥ २५ ॥ कमलेक्षण राम ने तुम्हारा क्या अपराध किया है ? तुम तो मेरे आगे सदैव ही राम के उत्तम गुणों का बखान किया करती थी ॥२६॥ तुम तो सदैव कहा करती थी कि राम कौसल्या और मुझे समान भाव से देखते हैं। और समान रूप से सेवा भी करते हैं। किन्तु आज तुम्हें क्या हो गया, जो इस प्रकार उल्टी बात कह रही हो ॥२७॥ तुम अपने पुत्र भरत के लिए राज्य ले लो किन्तु राम को घर पर ही रहने दो। हे वामस्वभावे ! तुम मेरे ऊपर कृपा करो। राम से तुम्हें कोई भय नहीं है ॥२८॥ महाराज दशरथ कैकेयी से ऐसा कह कर रोते हुए उसके चरणों पर गिर पड़े। तदनन्तर कैकेयी ने आँखें लाल कर क्रोध से कहा ॥२९॥ हे राजेन्द्र ! क्या तुम पागल हो गये हो, जो बात कह कर उलट रहे हो। याद रखो, यदि तुम अपनी प्रतिज्ञा पूरी न करोगे तो तुम्हें नरक भोगना होगा ॥ ३० ॥ यदि कल प्रातःकाल रामचन्द्र मृगचर्म एवं

वनं न गच्छेद् यदि रामचन्द्रः प्रभातकालेऽजिनचीरयुक्तः
उद्बन्धनं वा विषभक्षणं वा कृत्वा मरिष्ये पुरतस्तवाऽहम् ॥३१॥
सत्यप्रतिज्ञोऽहमितीह लोके विडम्बसे सर्वसभान्तरेषु ।
रामोपरि त्वं शपथं च कृत्वा मिथ्याप्रतिज्ञा नरकं प्रयाहि ॥३२॥

इत्युक्तः प्रियया दीनो मग्नो दुःखार्णवे नृपः ।
मूर्च्छितः पतितो भूमौ विसंज्ञो मृतको यथा ॥३३॥
एवं रात्रिगता तस्य दुःखात् संवत्सरोपमा ।
अरुणोदयकाले तु वन्दिनो गायका जगुः ॥३४॥
निवारयित्वा तान् सर्वान् कैकेयी रोषमास्थिता ।
ततः प्रभातसमये मध्यकक्षमुपस्थिताः ॥३५॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या ऋषयः कन्यकास्तथा ।
छत्रं च चामरं दिव्यं गजो वाजी तथैव च ॥३६॥
अन्याश्च वारमुख्या याः पौरजानपदास्तथा ।
वसिष्ठेन यथाज्ञप्तं तत् सर्वं तत्र संस्थितम् ॥३७॥

---

वल्कल धारण कर वन नहीं गये, तो तुम्हारे आगे ही फाँसी लगा कर अथवा विष खाकर मर जाऊँगी ॥ ३१ ॥ राजन् ! तुम ससार में एवं सभी सभाओं में 'मैं सत्य-प्रतिज्ञ हूँ' ऐसा कह कर लोगों को धोखा दिया करते हो। अब राम का शपथ खाकर यदि अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं करते तो निश्चय ही नरक में जाओगे ॥ ३२ ॥

इस प्रकार कैकेयी द्वारा कहे गये कठोर वचन सुन कर महाराज दशरथ दुःख-समुद्र में डूबकर व्याकुल हो गये। और मृतक के समान संज्ञाशून्य हो मूर्च्छित हो कर पृथ्वी पर गिर गये ॥ ३३ ॥ इस प्रकार दुःख के कारण उनकी वह रात्रि एक वर्ष के समान बीती। इधर प्रातःकाल होते ही बन्दी एवं गायक गण स्तुति-गान करने लगे ॥ ३४ ॥ किन्तु कैकेयी ने रोषपूर्ण हो सब को मना कर दिया। इधर सबेरा होने पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ऋषिगण, कन्यायें, दिव्य, छत्र, चामर, हाथी, घोड़े आदि मध्य कक्ष में उपस्थित किये गये ॥३५-३६॥ इसके अतिरिक्त वसिष्ठ जी की आज्ञानुसार श्रेष्ठ गणिकायें, पुरवासी तथा जनपद निवासी भी वहाँ उपस्थित

स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च रात्रौ निद्रां न लेभिरे ।
कदा द्रक्ष्यामहे रामं पीतकौशेयवाससम् ॥३८॥
सर्वाभरणसम्पन्नं किरीट-कटकोज्ज्वलम् ।
कौस्तुभाभरणं श्यामं कन्दर्पशतसुन्दरम् ॥३९॥
अभिषिक्तं समायातं गजारूढं स्मिताननम् ।
श्वेतच्छत्रधरं तत्र लक्ष्मणं लक्षणान्वितम् ॥४०॥
रामं कदा वा द्रक्ष्यामः प्रभातं वा कदा भवेत् ।
इत्युत्सुकधियः सर्वे बभूवुः पुरवासिनः ॥४१॥
नेदानीमुत्थितो राजा किमर्थं चेति चिन्तयन् ।
सुमन्तः शनकैः प्रायाद् यत्र राजावतिष्ठते ॥४२॥
वर्धयन् जयशब्देन प्रणमन् शिरसा नृपम् ।
अतिखिन्नं नृपं दृष्ट्वा कैकेयीं समपृच्छत ॥४३॥

---

किये गये ॥ ३७ ॥ उस रात स्त्रियों, बालकों तथा वृद्धों को नींद नहीं आयी। सभी की यह अभिलाषा थी कि पीताम्बरधारी राम को कब देखेंगे ॥ ३८ ॥

सब यही सोच रहे थे कि, राज्याभिषेक के अनन्तर समस्त आभूषणों से युक्त नवीन किरीट एवं कुण्डल धारण किये हुए, कौस्तुभमणि विभूषित, सैकड़ों कामदेव के समान कमनीय गजारूढ़ होकर आते हुए, और सुलक्षण युक्त लक्ष्मण के द्वारा श्वेत छत्र से विराजमान श्यामसुन्दर राम का दर्शन कब होगा ॥३९-४०॥ वह मङ्गल प्रभात का काल कब उपस्थित होगा, जब हम श्री राम का दर्शन प्राप्त करेंगे। इस प्रकार की उत्सुकता से समस्त पुरवासियों का मन उत्कण्ठित हो रहा था ॥४१॥

इसी समय मन्त्रिसत्तम सुमन्त्र 'राजा अभी तक क्यों नहीं उठे'? ऐसा विचार कर महाराज दशरथ के समीप गये ॥४२॥ सुमन्त्र ने राजा के पास जाकर जय-जयकार शब्दों से उनका अभिनन्दन किया। और शिर से झुक कर उन्हें प्रणाम किया। किन्तु उनको अत्यन्त खिन्न देख कर कैकेयी से पूछा ॥४३॥

देवि कैकेयि ! वर्धस्व किं राजा दृश्यतेऽन्यथा ।
तमाह कैकेयी राजा रात्रौ निद्रां न लब्धवान् ॥४४॥
राम रामेति रामेति राममेवानुचिन्तयन् ।
प्रजागरेण वै राजा ह्यस्वस्थ इव लक्ष्यते ।
राममानय शीघ्रं त्वं राजा द्रष्टुमिहेच्छति ॥४५॥
अश्रुत्वा राजवचनं कथं गच्छामि भामिनी ।
तच्छ्रुत्वा मन्त्रिणो वाक्यं राजा मन्त्रिणमब्रवीत् ॥४६॥
सुमन्त्र ! रामं द्रक्ष्यामि शीघ्रमानय सुन्दरम् ।
इत्युक्तस्त्वरितं गत्वा सुमन्त्रो राममन्दिरम् ॥४७॥
अवारितः प्रविष्टोऽयं त्वरितं राममब्रवीत् ।
शीघ्रमागच्छ भद्रं ते राम राजीवलोचन ! ॥४८॥
पितुर्गेहं मया सार्धं राजा त्वां द्रष्टुमिच्छति ।
इत्युक्तो रथमारुह्य सम्भ्रमात् त्वरितो ययौ ॥४९॥

---

देवि कैकेयि ! तुम्हारी जय हो, आज राजा अन्य मनस्क क्यों दिखाई पड़ रहे हैं। तब कैकेयी ने कहा—आज रात राजा को नींद नहीं आयी ॥४४॥ वे रात्रि भर राम का चिन्तन करते हुए 'राम-राम' ऐसा रटते रहे। अतः जागते रहने के कारण वे अस्वस्थ-जैसे दिखाई पड़ रहे हैं। हे सुमन्त्र ! तुम शीघ्र ही राम को ले आओ। क्योंकि राजा राम को देखना चाहते हैं ॥४५॥

तदनन्तर सुमन्त्र ने कहा—हे भामिनि ! मैं राजा की आज्ञा पाये बिना कैसे ( राम को बुलाने के लिए ) जा सकता हूँ। मन्त्री के द्वारा इस प्रकार की बातें सुनकर महाराज ने उनसे कहा ॥४६॥ सुमन्त्र ! मैं श्यामसुन्दर राम को देखना चाहता हूँ। राजा के द्वारा इस प्रकार की बात सुनकर सुमन्त्र शीघ्र ही श्रीराम के पास चल पड़े ॥४७॥ और बे-रोक-टोक राम के महल में जाकर उनसे कहने लगे। राम ! तुम्हारा कल्याण हो। तुम शीघ्र ही मेरे साथ पिता के पास चलो। राजा तुम्हें देखना चाहते हैं, सुमन्त्र के इस बात को सुनकर राम आश्चर्य-चकित हो रथ पर सवार हो शीघ्रता से पिता के पास गये ॥४८-४९॥

रामः सारथिना सार्धं लक्ष्मणेन समन्वितः ।
मध्यकक्षे वसिष्ठादीन् पश्यन्नेव त्वरान्वितः ॥५०॥
पितुः समीपं सङ्गम्य ननाम चरणौ पितुः ।
राममालिङ्गितुं राजा समुत्थाय स-सम्भ्रमः ॥५१॥
बाहू प्रसार्य रामेति दुःखान् मध्ये पपात ह ।
हाहेति रामस्तं शीघ्रमालिङ्ग्याङ्के न्यवेशयत् ॥५२॥
राजानं मूर्च्छितं दृष्ट्वा चुक्रुशुः सर्वयोषितः ।
किमर्थं रोदनमिति वसिष्ठोऽपि समाविशत् ॥५३॥
रामः पप्रच्छ किमिदं राज्ञो दुःखस्य कारणम् ।
एवं पृच्छति रामे सा कैकेयी राममब्रवीत् ॥५४॥
त्वमेव कारणं ह्यत्र राज्ञो दुःखोपशान्तये ।
किञ्चित् कार्यं त्वया राम ! कर्तव्यं नृपतेर्हितम् ॥५५॥
कुरु सत्यप्रतिज्ञस्त्वं राजानं सत्यवादिनम् ।
राज्ञा वरद्वयं दत्तं मम सन्तुष्टचेतसा ॥५६॥

---

श्रीराम ने सारथी एवं लक्ष्मण के साथ मध्यद्वार पर उपस्थित वसिष्ठादि को देखते हुए पिता के पास पहुँच कर उनके चरणों में प्रणाम किया। इधर दशरथ भी राम को गले लगाने के लिये बड़ी शीघ्रता से उठने लगे ॥५०-५१॥ उन्होंने ज्यों ही राम का आलिङ्गन करने के लिए बाहु फैलाया कि इतने में हा राम!' कहते हुए बीच में ही गिर पड़े। फिर राम ने हाहाकार कर शीघ्रता से उन्हें गले लगाया, और अपनी गोद में बैठा लिया ॥५२॥ रनिवास की समस्त रानियाँ राजा को अचेत देख कर रोने लगीं। इस करुण क्रन्दन को सुनकर वसिष्ठ जी भी वहाँ पहुँच गये ॥५३॥

श्री राम ने महाराज के दुःख का कारण कैकेयी से पूछा। तब कैकेयी ने श्री राम से कहा—॥५४॥ हे राम! महाराज के दुःख के कारण तुम्हीं हो अतः तुम्हें उनके दुःख की शान्ति के लिए उनका प्रिय कुछ कार्य करना होगा ॥५५॥ तुम सत्यप्रतिज्ञ हो, महाराज को सत्यवादी बनाओ। उन्होंने प्रसन्न होकर सन्तुष्ट चित्त से मुझे दो वर दिये हैं ॥५६॥ किन्तु उसे सफल

त्वदधीनं तु तत्सर्वं वक्तुं त्वां लज्जते नृपः।
सत्यपाशेन सम्बद्धं पितरं त्रातुमर्हसि ॥५७॥

पुत्रशब्देन चैतद्धि नरकात् त्रायते पिता।
रामस्तयोदितं श्रुत्वा शूलेनाभिहतो यथा ॥५८॥

व्यथितः कैकेयीं प्राह किं मामेवं प्रभाषसे।
पित्रर्थे जीवितं दास्ये पिबेयं विषमुल्बणम् ॥५९॥

सीतां त्यक्ष्येऽथ कौसल्यां राज्यं चापि त्यजाम्यहम्।
अनाज्ञप्तोऽपि कुरुते पितुः कार्यं स उत्तमः ॥६०॥

उक्तः करोति यः पुत्रः स मध्यम उदाहृतः।
उक्तोऽपि कुरुते नैव स पुत्रो मल उच्यते ॥६१॥

अतः करोमि तत्सर्वं यन्मामाह पिता मम।
सत्यं सत्यं करोम्येव रामो द्विर्नाभिभाषते ॥६२॥

---

बनाना तुम्हारे अधीन है। महाराज तुमसे कहने में संकोच कर रहे हैं। अतः तुम सत्यपाश में बँधे हुए पिता की रक्षा करो ॥५७॥

हे राम ! पुत्र शब्द का यही अर्थ है कि, जो नरक से अपने पिता की रक्षा करे। कैकेयी की बातों को सुनकर राम का हृदय ऐसा विदीर्ण हो गया मानो किसी ने उनके हृदय में शूल चुभा दिया हो ॥५८॥ और वे व्यथित होकर कैकेयी से कहने लगे—मातः ! ऐसी बातें मुझ से क्यों कहती हो ? मैं पिता के लिए राज्य छोड़ने की बात क्या ? जीवन भी त्याग सकता हूँ। और भयंकर विष का भी पान कर सकता हूँ ॥५९॥

मैं बहुत क्या कहूँ, सीता, कौसल्या और राज्य का त्याग भी कर सकता हूँ, पिता के कहे बिना जो पुत्र उनका अभीष्ट करता है वह उत्तम पुत्र है ॥६०॥ किन्तु जो पुत्र पिता के कहने पर अभीष्ट कार्य करता है वह मध्यम पुत्र है और कहने पर भी जो पिता की आज्ञा नहीं मानता वह पुत्र विष्टा के समान है ॥६१॥ अतः मेरे पिताजी ने मुझे जो आज्ञा दी है, मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगा। यह सत्य है, यह सत्य है, राम कभी दो बातें नहीं करता ॥६२॥

इति रामप्रतिज्ञां सा श्रुत्वा वक्तुं प्रचक्रमे ।
राम त्वदभिषेकार्थं संभाराः संभृताश्च ये ॥६३॥

तैरेव भरतोऽवश्यमभिषेच्यः प्रियो मम ।
अपरेण वरेणाशु चीरवासा जटाधरः ॥६४॥

वनं प्रयाहि शीघ्रं त्वमद्यैव पितुराज्ञया ।
चतुर्दश समास्तत्र वस मुन्यन्नभोजनः ॥६५॥

एतदेव पितुस्तेऽद्य कार्यं त्वं कर्तुमर्हसि ।
राजा तु लज्जते वक्तुं त्वामेवं रघुनन्दन ! ॥६६॥

श्रीराम उवाच

भरतस्यैव राज्यं स्यादहं गच्छामि दण्डकान् ।
किन्तु राजा न वक्तीह मां न जानेऽत्र कारणम् ॥६७॥

श्रुत्वैतद् रामवचनं दृष्ट्वा रामं पुरः स्थितम् ।
प्राह राजा दशरथो दुःखितो दुःखितं वचः ॥६८॥

---

राम के द्वारा की गयी इस प्रतिज्ञा को सुनकर कैकेयी ने कहना आरम्भ किया। हे राम ! तुम्हारे अभिषेक के लिए जो सामग्री प्रस्तुत की गयी है ॥६३॥ अवश्य ही उस सामग्री से मेरे प्रिय पुत्र भरत का राज्याभिषेक होना चाहिए ( यह तो मेरा प्रथम वर है )। दूसरे वर के अनुसार तुम वल्कल एवं जटा धारण कर वन को जाओ ।६४॥ बस तुम्हारे पिता का केवल इतना ही कार्य है जिसे तुम्हें करना चाहिए। राजा यह सब तुम से कहने में संकोच कर रहे हैं ॥६५-६६॥

तब श्री राम ने कहा—माँ, यह राज्य भरत का ही हो। मैं दण्डक वन अभी जा रहा हूँ। किन्तु मुझे इसका कारण ज्ञात नहीं होता कि महाराज मुझसे बोल क्यों नहीं रहे हैं ॥६७॥ श्री राम के द्वारा कहे गये इस वचन को सुनकर तथा उन्हें अपने सामने उपस्थित देखकर दुःखी महाराज दशरथ ने उनसे इस प्रकार दुःख-भरे वचन कहे ॥६८॥

स्त्रीजितं भ्रान्तहृदयमुन्मार्ग-परिवर्तिनम् ।
निगृह्य मां गृहाणेदं राज्यं पापं न तद् भवेत् ॥६९॥
एवं चेदनृतं नैव मां स्पृशेद् रघुनन्दन ! ।
इत्युक्त्वा दुःखसन्तप्तो विललाप नृपस्तदा ॥७०॥
हा राम हा जगन्नाथ हा मम प्राणवल्लभ ! ।
मां विसृज्य कथं घोरं विपिनं गन्तुमर्हसि ॥७१॥
इति रामं समालिङ्ग्य मुक्तकण्ठो रुरोद ह ।
विमृज्य नयने रामः पितुः सजलपाणिना ॥७२॥
आश्वासयामास नृपं शनैः स नयकोविदः ।
किमत्र दुःखेन विभो ! राज्यं शास्तु मेऽनुजः ॥७३॥
अहं प्रतिज्ञां निस्तीर्य पुनर्यास्यामि ते पुरम् ।
राज्यात् कोटिगुणं सौख्यं मम राजन् ! वने सतः ॥७४॥
त्वत्सत्यपालनं देवकार्यं चापि भविष्यति ।
कैकेय्याश्च प्रियो राजन् ! वनवासो महागुणः ॥७५॥

---

हे राम ! स्त्री-परवश, भ्रान्तचित्त एवं उन्मार्ग में गमन करने वाले मुझ-जैसे पापात्मा को बाँध कर यह राज ले लो, इसमें दोष न होगा ॥६९॥

हे राम ! तुम्हारे ऐसा करने पर मुझे अनृत का पाप न लगेगा। ऐसा कह अत्यन्त दुःखी हो महाराज दशरथ विलाप करने लगे ॥७०॥ हा राम ! हा जगन्नाथ ! हा प्राणवल्लभ ! मुझे इस अवस्था में छोड़कर तुम घोर जंगल में कैसे जा रहे हो ? ॥७१॥

ऐसा कह कर उन्होंने राम को कण्ठ से लगा लिया और जी भरकर रोने लगे। राम ने अपने हाथों में जल लेकर उनका नेत्र प्रक्षालित किया ॥७२॥ परम नीतिज्ञ श्री राम ने धीरे-धीरे उनको आश्वासन दिया। हे प्रभु! इसमें दुःख की क्या बात है कि मेरे छोटे भाई भरत राज्य का शासन करें ॥७३॥ मैं प्रतिज्ञा का पालन कर पुन अयोध्यापुरी में आ जाऊँगा। वन में मुझे राज्य की अपेक्षा सैकड़ों गुना सुख प्राप्त होगा ॥७४॥ आपके सत्य का पालन, देवताओं का कार्य और कैकेयी का प्रिय ( हित ) होगा। अतः हे राजन् ! मेरे वन जाने में महान् लाभ है ॥ ७५ ॥

इदानीं गन्तुमिच्छामि व्येतु मातुश्च हृज्ज्वरः ।
सम्भाराश्चोपह्रीयन्तामभिषेकार्थमाहृताः ॥७६॥
मातरं च समाश्वास्य अनुनीय च जानकीम् ।
आगत्य पादौ वन्दित्वा तव यास्ये सुखं वनम् ॥७७॥
इत्युक्त्वा तु परिक्रम्य मातरं द्रष्टुमाययौ ।
कौसल्यापि हरेः पूजां कुरुते रामकारणात् ॥७८॥
होमं च कारयामास ब्राह्मणेभ्यो ददौ धनम् ।
ध्यायते विष्णुमेकाग्रमनसा मौनमास्थिता ॥७९॥
अन्तःस्थमेकं घनचित्प्रकाशं
निरस्त-सर्वातिशय-स्वरूपम् ।
विष्णुं सदानन्दमयं हृदब्जे
सा भावयन्ती न ददर्श रामम् ॥८०॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वर-संवादे
अयोध्याकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

हे राजन् ! मैं शीघ्र ही वन जा रहा हूँ। जिससे माता कैकेयी के हृदयका सन्ताप दूर हो जाय। राज्याभिषेक के लिए एकत्रित यह सारी सामग्री अलग रखवा दी जाय ॥७६॥ माता को आश्वासन देकर और जानकी को समझा-बुझा कर मैं अभी आपके पास लौट रहा हूँ। फिर आपके चरणों में बन्दना कर सुखपूर्वक वन को जाऊँगा ॥७७॥ ऐसा कह पिता की परिक्रमा कर श्री राम माता का दर्शन करने के लिए उनके पास गये। कौसल्या भी उस समय राम का कल्याण करने के लिए भगवान् विष्णु की पूजा कर रही थीं ॥७८॥ उन्होंने ब्राह्मणों से होम करवाया। और उन्हें बहुत-सा धन दिया। फिर मौन धारण एवं चित्त को समाहित कर विष्णु का ध्यान करने लगीं ॥७९॥ सर्वान्तर्यामी, चिद्घन स्वरूप, परम तेजस्वी, सभी स्वरूपों से परे, आनन्द-मय विष्णु का हृत्कमल में ध्यान करते रहने के कारण वे राम को देख न पायीं ॥८०॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दीटीका सहित अध्यात्म-रामायण के उमा-महेश्वर संवाद में अयोध्याकाण्ड का तृतीय सर्ग समाप्त ॥ ३ ॥

*

## ४. चतुर्थः सर्गः

(भगवान् राम का माता से विदा होकर सीता, लक्ष्मण के साथ वन प्रस्थान)

श्रीमहादेव उवाच

ततः सुमित्रा दृष्ट्वैनं रामं राज्ञीं ससम्भ्रमा।
कौसल्यां बोधयामास रामोऽयं समुपस्थितः ॥१॥

श्रुत्वैव रामनामैषा बहिर्दृष्टिप्रवाहिता।
रामं दृष्ट्वा विशालाक्षमालिङ्ग्याङ्के न्यवेशयत् ॥२॥

मूर्ध्न्यवघ्राय पस्पर्श गात्रं नीलोत्पलच्छवि।
भुङ्क्ष्व पुत्रेति च प्राह मिष्टमन्नं क्षुधार्दितः ॥३॥

रामः प्राह न मे मातर्भोजनावसरः कुतः।
दण्डकागमने शीघ्रं मम कालोऽद्य निश्चितः ॥४॥

कैकेयीवरदानेन सत्यसन्धः पिता मम।
भरताय ददौ राज्यं ममाप्यारण्यमुत्तमम् ॥५॥

---

श्रीमहादेवजी ने कहा—हे पार्वती! इसके अनन्तर महारानी सुमित्रा ने राम को वहाँ उपस्थित देख कर श्रीराम आपके पास खड़े हैं ॥१॥ श्रीराम के नाम को सुनते ही कौसल्या ने अपने नेत्र खोले। और विशाल नयन राम को गले लगा कर गोंद में बैठा लिया ॥२॥ तथा उनका सिर सूँघकर नीलकमल के समान शोभायमान उनके गात्र स्पर्श किया। और कहा—बेटा, भूखे होगे इसलिए कुछ मिष्ठान्न भक्षण कर लो ॥३॥ श्रीराम ने कहा-हे माता! मुझे भोजन करने का यह अवसर नहीं है। क्योंकि यह अवसर मुझे दण्डकारण्य जाने के लिए शीघ्र ही निश्चित किया गया है ॥४॥ सत्य-प्रतिज्ञ महाराज दशरथ ने 'भरत को राज्य एवं मुझे उत्तम वनवास' इस प्रकार का दो वर कैकेयी को दिया है ॥५॥

चतुर्दश समास्तत्र ह्युषित्वा मुनिवेषधृक् ।
आगमिष्ये पुनः शीघ्रं न चिन्तां कर्तुमर्हसि ॥६॥
तच्छ्रुत्वा सहसोद्विग्ना मूर्च्छिता पुनरुत्थिता ।
आह रामं सुदुःखार्ता दुःखसागरसम्प्लुता ॥७॥

यदि राम ! वनं सत्यं यासि चेन्नय मामपि ।
त्वद्विहीना क्षणार्द्धं वा जीवितं धारये कथम् ॥८॥

यथा गौर्बालकं वत्सं त्यक्त्वा तिष्ठेन्न कुत्रचित् ।
तथैव त्वां न शक्नोमि त्यक्तुं प्राणात् प्रियं सुतम् ॥९॥

भरताय प्रसन्नश्चेद्राज्यं राजा प्रयच्छतु ।
किमर्थं वनवासाय त्वामाज्ञापयति प्रियम् ॥१०॥

कैकेय्या वरदो राजा सर्वस्वं वा प्रयच्छतु ।
त्वया किमपराद्धं हि कैकेय्या वा नृपस्य वा ॥११॥

---

हे माता ! मैं मुनि वेष धारण कर चौदह वर्ष वन में रह कर शीघ्र ही लौट आऊँगा। तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करो ।।६।।

राम की बातों को सुन कर कौसल्या सहसा उद्विग्न हो मूर्च्छित हो गयीं। फिर उठ कर दुःखी हो दुःख-सागर में गोते लगाती हुई राम से कहने लगीं ।।७।। हे राम ! यदि वस्तुतः तुम वन जाना ही चाहते हो, तो मुझे भी अपने साथ वन मे ले चलो। भला, तुम्हारे बिना मैं आधे क्षण भी किस प्रकार जीवन धारण कर सकती हूँ ।।८।। जिस प्रकार गौ अपने छोटे शिशु को छोड़ कर एक क्षण कहीं नहीं रह सकती, उसी प्रकार मैं भी अपने प्राणप्रिय पुत्र को छोड़ कर नहीं जी सकती ।।९।। यदि महाराज भरत के ऊपर प्रसन्न हैं, तो वे अपना राज्य भरत को दें, किन्तु प्रिय पुत्र को वन में जाने के लिए क्यों आज्ञा दे रहे हैं ।।१०।। वर देने वाले महाराज वर के रूप में भले ही कैकेयी को अपना सर्वस्व दे दें। किन्तु तुमने महाराज का अथवा कैकेयी का क्या बिगाड़ा है ।।११।। हे पुत्र ! जैसे तुम्हारे

पिता गुरुर्यथा राम तवाहमधिका ततः ।
पित्राऽऽज्ञप्तो वनं गन्तुं वारयेयमहं सुतम् ॥१२॥

यदि गच्छसि मद्-वाक्यमुल्लङ्घ्य नृपवाक्यतः ।
तदा प्राणान् परित्यज्य गच्छामि यमसादनम् ॥१३॥

लक्ष्मणोऽपि ततः श्रुत्वा कौसल्यावचनं रुषा ।
उवाच राघवं वीक्ष्य दहन्निव जगत्त्रयम् ॥१४॥

उन्मत्तं भ्रान्तमनसं कैकेयीवशवर्तिनम् ।
बद्ध्वा निहन्मि भरतं तद्-बन्धून् मातुलानपि ॥१५॥

अद्य पश्यन्तु मे शौर्यं लोकान् प्रदहतः पुरा ।
राम ! त्वमभिषेकाय कुरु यत्नमरिन्दम ! ॥१६॥

धनुष्पाणिरहं तत्र निहन्यां विघ्नकारिणः ।
इति ब्रुवन्तं सौमित्रिमालिङ्ग्य रघुनन्दनः ॥१७॥

---

पिता पूज्य हैं, उसी प्रकार उससे भी अधिक ( माता होने के कारण ) मैं पूज्य हूँ। अतः उन्होंने यदि तुम्हें वनवास की आज्ञा दी है, तो मैं उसे निषेध करती हूँ ॥१२॥

यदि तुम मेरी बात न मान कर केवल राजा की आज्ञानुसार वन जाओगे तो निश्चय समझो मैं प्राणों का परित्याग कर यमपुर को चली जाऊँगी ॥१३॥ कौसल्या द्वारा कहे गये इस वाक्य को सुनकर लक्ष्मण क्रोध में भर कर राम की ओर देखने लगे। और त्रिलोकी को भस्म करते हुए-से बोले—॥१४॥ मैं उन्मत्त, भ्रान्त चित्त एवं सर्वथा कैकेयी के वश में रहने वाले दशरथ को बाँध कर भरत तथा उनके सहायक मामा आदि को मार डालूँगा ॥१५॥ सारा संसार त्रैलोक्य को जलाने वाले मेरे पुरुषार्थ को आज भली भाँति देखे। हे अरिदंम राम ! आप शीघ्र ही अभिषेक की तैयारी करें ॥१६॥

आपके राज्याभिषेक में विघ्न उपस्थित करने वालों को मैं हाथ में धनुष-बाण लेकर शीघ्र ही वध कर डालूँगा। ऐसा कहते हुए लक्ष्मण को श्री राम ने अपने गले लगा लिया। और कहा—॥१७॥

शूरोऽसि रघुशार्दूल ! ममाऽत्यन्तहिते रतः ।
जानामि सर्वं त सत्यं किन्तु तत्समयो न हि ॥१८॥

यदिदं दृश्यते सर्वं राज्यं देहादिकं च यत् ।
यदि सत्यं भवेत्तत्र आयासः सफलश्च ते ॥१९॥

भोगा मेघवितानस्थ-विद्युल्लेखेव चञ्चलाः ।
आयुरप्यग्निसन्तप्त - लोहस्थ - जलबिन्दुवत् ॥२०॥

यथा व्यालगलस्थोऽपि भेको दंशानपेक्षते ।
तथा कालाहिना ग्रस्तो लोको भोगानशाश्वतान् ॥२१॥

करोति दुःखेन हि कर्मतन्त्रं
शरीरभोगार्थमहर्निशं नरः ।
देहस्तु भिन्नः पुरुषात् समीक्ष्यते
को वाऽत्र भोगः पुरुषेण भुज्यते ॥२२॥

---

हे रघुशार्दूल ! तुम वास्तव में शूर हो। और सतत मेरी भलाई करने वाले हो। तुम जो कहते हो, उसे सत्य मानता हूँ किन्तु ऐसा कार्य करने का यह अवसर नहीं है ॥१८॥

संसार में दिखाई पड़ने वाला यह राज्य एवं देहादिक यदि सत्य होता, तो उसके प्राप्ति के लिए किया गया यह सारा प्रयास सफल माना जाता ॥१९॥ किन्तु राज्यादि ये विपुल भोग तो मेघरूपी वितान में चमकती हुई बिजली की रेखा के समान चञ्चल हैं, किं वहुना मनुष्य की आयु भी अग्नि-सन्तप्त लोहे के तवे पर पड़ी हुई जलबूंद के समान अस्थिर है ॥२०॥

जैसे साँप के मुँह में लीला गया मेंढक अपने खाने योग्य जीव-जन्तुओं की अपेक्षा करता रहता है, उसी प्रकार काल रूपी साँप के गले में पड़ा हुआ यह जीव भी अनित्य भोगों को चाहता रहता है ॥२१॥ कैसा आश्चर्य है कि मनुष्य शरीर के भोगों के लिए निरन्तर रात-दिन कष्ट सहता हुआ नाना प्रकार के कर्मों को करता रहता है। यदि उसे यह ज्ञान हो जाय कि, शरीर आत्मा से भिन्न है तो वह निर्लेप पुरुष कैसे किसी भोग की इच्छा से कर्म में प्रवृत्त हो सकता है ? ॥२२॥

पितृ-मातृ-सुत-भ्रातृ-दार-बन्ध्वादिसंगमः ।
प्रपायामिव जन्तूनां नद्यां काष्ठौघवच्चलः ॥२३॥
छायेव लक्ष्मीश्चपला प्रतीता, तारुण्यमम्बूर्मिवदध्रुवं च ।
स्वप्नोपमं स्त्रीसुखमायुरल्पं,तथाऽपि जन्तोरभिमान एषः ॥२४॥
संसृतिः स्वप्नसदृशी सदा रोगादिसङ्कुला ।
गन्धर्वनगरप्रख्या मूढस्तामनुवर्तते ॥२५॥
आयुष्यं क्षीयते यस्मादादित्यस्य गताऽऽगतैः ।
दृष्ट्वाऽन्येषां जरामृत्यू कथञ्चिन्नैव बुध्यते ॥२६॥
स एव दिवसः सैव रात्रिरित्येव मूढधीः ।
भोगाननुपतत्येव कालवेगं न पश्यति ॥२७॥
प्रतिक्षणं क्षरत्येतदायुरामघटाम्बुवत् ।
सपत्ना इव रोगौघाः शरीरं प्रहरन्त्यहो ॥२८॥

---

इस संसार में पिता, माता, पुत्र, भाई, स्त्री एवं सम्बन्धियों का संयोग प्याऊ पर एकत्रित हुए जीव के समान, अथवा नदी में प्रवाह वश एकत्रित काष्ठ-समूह के समान चञ्चल है ॥२३॥ यह लक्ष्मी छाया के समान चञ्चल दिखाई पड़ती है और जल के लहरों के समान जवानी भी अनित्य है, स्त्री-सुख स्वप्न के समान क्षणिक है, आयु तो स्वल्प है ही। फिर भी मनुष्य को इतना अभिमान है ॥२४॥ यह सारा संसार रोग-शोक से संकुल है और स्वप्न एवं गन्धर्वनगर के समान असत्य है, फिर भी मूर्ख जन इसको सत्य मान कर अनुसरण करते हैं ॥२५॥

सूर्य के उदय और अस्त होने से नित्य ही मनुष्य की आयु क्षीण हो रही है, और मनुष्यों की दिन-रात जरा मृत्यु हो रही है, फिर भी किसी को चेत नहीं हो रहा है ॥२६॥ नित्य प्रति रात-दिन एक ही समान हो रहे हैं, फिर भी मूर्ख भोगों के पीछे दौड़ता रहता है। काल के वेग को नहीं देखता ॥२७॥ कच्चे घड़े में रखे हुए जल के समान आयु प्रतिक्षण नष्ट हो रही है। और रोग-समूह शत्रु के समान शरीरको नष्ट कर रहे

जरा व्याघ्रीव पुरतस्तर्जयन्त्यवतिष्ठते ।
मृत्युः सहैव यात्येष समयं सम्प्रतीक्षते ॥२९॥
देहेऽहंभावमापन्नो राजाहं लोकविश्रुतः ।
इत्यस्मिन् मनुते जन्तुः कृमि-विड्-भस्मसंज्ञिते ॥३०॥
त्वगस्थि - मांस - विण्मूत्र - रेतो-रक्तादिसंयुतः ।
विकारी परिणामी च देह आत्मा कथं वद ? ॥३१॥
यमास्थाय भवाँल्लोकं दग्धुमिच्छति लक्ष्मण ! ।
देहाभिमानिनः सर्वे दोषाः प्रादुर्भवन्ति हि ॥३२॥
देहोऽहमिति यो बुद्धिरविद्या सा प्रकीर्तिता ।
नाऽहं देहश्चिदात्मेति बुद्धिर्विद्येति भण्यते ॥३३॥
अविद्या संसृतेर्हेतुर्विद्या तस्या निवर्तिका ।
तस्माद्यत्नः सदा कार्यो विद्याभ्यासे मुमुक्षुभिः ।
कामक्रोधादयस्तत्र शत्रवः शत्रुसूदन ! ॥३४॥

---

हैं ॥२८॥ यह बुढ़ाई बाघिन के समान डराती हुई सामने खड़ी है और मृत्यु भी इसी के साथ चलता हुआ काल की प्रतीक्षा कर रहा है ॥२९॥ देह को ही अहंकार वश अपना मानने वाला यह जीव कृमि, विष्ठा एवं भस्म स्वरूप इस शरीर को ही 'मैं लोक-विख्यात राजा हूँ' ऐसा मानता है ॥३०॥

भला, हे लक्ष्मण ! तुम्हीं बताओ, चमड़ा, हड्डी, मांस, विष्ठा, मूत्र, रेत एवं रक्त से बना हुआ विकार युक्त यह परिणामी देह आत्मा किस प्रकार हो सकता है ॥३१॥ हे लक्ष्मण ! इस शरीर को ही आत्मा मान कर तो तुम तीनों लोकों को जलाना चाहते हो। हे भाई ! देह में ही आत्मबुद्धि रखने वाले पुरुष को इस प्रकार के दोष उत्पन्न होते हैं ॥३२॥ देह में ही आत्मबुद्धि करना यही तो अविद्या है। किन्तु मैं जड़ देह से अतिरिक्त चेतन आत्मा हूँ, इस प्रकार की बुद्धि को विद्या कहते हैं ॥३३॥ हे भाई ! यह अविद्या ही जन्म-मरण रूप संसार का कारण है, किन्तु विद्या उसको निवृत्त करने वाली है। इसलिए मुक्ति की इच्छा रखने वाले पुरुष को विद्या के लिए यत्न करना चाहिए। इस विद्या के अर्जन करने में काम, क्रोधादि विघ्नकारक शत्रु हैं ॥३४॥ उनमें केवल क्रोध ही

तत्राऽपि क्रोध एवाऽलं मोक्षविघ्नाय सर्वदा।
येनाविष्टः पुमान् हन्ति पितृ-भ्रातृ-सुहृत्-सखीन् ॥३५॥

क्रोधमूलो मनस्तापः क्रोधः संसारबन्धनम्।
धर्मक्षयकरः क्रोधस्तस्मात् क्रोधं परित्यज ॥३६॥

क्रोध एष महान् शत्रुस्तृष्णा वैतरणी नदी।
सन्तोषो नन्दनवनं शान्तिरेव हि कामधुक् ॥३७॥

तस्माच्छान्तिं भजस्वाऽद्य शत्रुरेवं भवेन्न ते।
देहेन्द्रिय-मनःप्राण-बुद्ध्यादिभ्यो विलक्षणः ॥३८॥

आत्माशुद्धः स्वयंज्योतिरविकारी निराकृतिः।
यावद् देहेन्द्रियप्राणैर्भिन्नत्वं नात्मनो विदुः ॥३९॥

तावत् संसारदुःखौघैः पीड्यन्ते मृत्युसंयुताः।
तस्मात्त्वं सर्वदा भिन्नमात्मानं हृदि भावय ॥४०॥

---

मोक्ष-साधन में विघ्न करने के लिए पर्याप्त शत्रु है। इसी क्रोध के आवेग से पुरुष पिता, भाई, सुहृद एवं बन्धुओं का नाश कर डालते हैं ॥३५॥

हे भाई! मन को सन्ताप उत्पन्न करने वाला क्रोध ही है। क्रोध संसार में बाँधने वाला तथा धर्म का क्षय करने वाला है। इसलिए तुम क्रोध करना छोड़ दो ॥३६॥ यह क्रोध मनुष्य का महान् शत्रु है और तृष्णा वैतरणी नदी है, जिसका पार करना असम्भव है। सन्तोष नन्दन वन के समान सुखद है एवं शान्ति ही कामधेनु है ॥३७॥ इसलिए हे भाई लक्ष्मण! तुम शान्ति धारण करो। ऐसा करने से काम-क्रोधादि शत्रु तुम्हारा कुछ बिगाड़ न सकेंगे। यह समझ लो कि यह जीव देह, इन्द्रिय, मन, प्राण और बुद्धि से सर्वथा भिन्न है ॥३८॥ यह आत्मा शुद्ध, स्वयं प्रकाश, विकाररहित और निराकार है। मनुष्य जब तक देह, इन्द्रिय और प्राण से विलक्षण आत्मा को नहीं जानता, तब तक सांसारिक दुःखों से पीड़ित रहता है। और मृत्यु-पाश में बँधा रहता है, इसलिए हे लक्ष्मण! तुम अपने हृदय में 'देहादि से पृथक् आत्मा है' इसका अनुभव

बुद्ध्यादिभ्यो बहिः सर्वमनुवर्तस्व मा खिदः।
भुञ्जन् प्रारब्धमखिलं सुखं वा दुःखमेव वा ॥४१॥
प्रवाहपतितं कार्यं कुर्वन्नपि न लिप्यसे।
बाह्ये सर्वत्र कर्तृत्वमावहन्नपि राघव! ॥४२॥
अन्तःशुद्धस्वभावस्त्वं लिप्यसे न च कर्मभिः।
एतन्मयोदितं कृत्स्नं हृदि भावय सर्वदा ॥४३॥
संसारदुःखैरखिलैर्बाध्यसे न कदाचन।
त्वमप्यम्ब! ममाऽऽदिष्टं हृदि भावय नित्यदा ॥४४॥
समागमं प्रतीक्षस्व न दुःखैः पीड्यसे चिरम्।
न सदैकत्र संवासः कर्ममार्गानुवर्तिनाम् ॥४५॥
यथा प्रवाहपतित-प्लवानां सरितां तथा।
चतुर्दशसमासङ्ख्या क्षणार्द्धमिव जायते ॥४६॥
अनुमन्यस्व मामम्ब! दुःखं सन्त्यज्य दूरतः।
एवं चेत् सुखसंवासो भविष्यति वने मम ॥४७॥

---

करो ॥३९-४०॥ तुम लौकिक व्यवहारों का अनुसरण करो, और प्रारब्ध के अनुसार सुख और दुःख को भोगते हुए चित्त में खेद मत उत्पन्न करो ॥४१॥

हे राघव! आत्मा से पृथक् इन्द्रियादि में कर्तृत्व प्रकट करते हुए भी तुम प्रारब्धानुसार कार्य करते हुए बन्धन में नहीं पड़ोगे ॥४२॥ भीतर से आत्मा के शुद्ध स्वभाव रहने के कारण तुम कर्म से लिप्त न रहोगे। मेरे इस सम्पूर्ण कथन पर तुम हृदय से विचार करो ॥४३॥ ऐसा करने से तुम सांसारिक दुःखों से कदापि लिप्त न होओगे। हे माँ! तुम भी मेरे इस कथन पर विचार करना ॥४४॥ मेरे उक्त कथन पर विचार करते हुए मेरे आने की प्रतीक्षा करना, ऐसा करने से तुम्हें अधिक काल तक दुःख न होगा। हे माता! इस बात को जान लो कि कर्मबन्धन में बँधे हुए जीवों का सर्वदा एक साथ निवास उसी प्रकार नहीं हुआ करता ॥४५॥ जिस प्रकार नदी के प्रवाह में पतित नावों का एक साथ रहना सम्भव नहीं। यह चौदह वर्ष का वनवास आधे क्षण के समान बीत जायेगा ॥४६॥ हे माता! अब दुःख को दूर करो। और मुझे वन जाने की आज्ञा प्रदान करो। आपके ऐसा करने से मैं वन में सुखपूर्वक रहूँगा ॥४७॥

इत्युक्त्वा दण्डवन् मातुः पादयोरपतच्चिरम् ।
उत्थाप्याङ्के समावेश्य आशीर्भिरभ्यनन्दयत् ॥४८॥

सर्वे देवाः सगन्धर्वा ब्रह्म-विष्णु-शिवादयः ।
रक्षन्तु त्वां सदा यान्तं तिष्ठन्तं निद्रया युतम् ॥४९॥

इति प्रस्थापयामास समालिङ्ग्य पुनः पुनः ।
लक्ष्मणोऽपि तदा रामं नत्वा हर्षाश्रुगद्गदः ॥५०॥

आह राम ! ममाऽन्तःस्थ संशयोऽयं त्वयाहृतः ।
यास्यामि पृष्ठतो राम ! सेवां कर्तुं तदादिश ॥५१॥

अनुगृह्णीष्व मां राम ! नो चेत् प्राणांस्त्यजाम्यहम् ।
तथेति राघवोऽप्याह लक्ष्मणं याहि माचिरम् ॥५२॥

प्रतस्थे तां समाधातुं गतः सीतापतिर्विभुः ।
आगतं पतिमालोक्य सीता सुस्मितभाषिणी ॥५३॥

---

ऐसा कह कर श्रीराम माता के चरणों में डण्डे के समान बहुत देर तक पड़े रहे। फिर माता ने उन्हें उठाकर गोद में बैठा लिया और आशीर्वाद देकर उनका अभिनन्दन किया ॥४८॥ माता ने कहा—हे राम ! वन में चलते, बैठते एवं सोते समय गन्धर्व सहित सभी देवगण, ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवादिक तुम्हारी रक्षा करें ॥४९॥ इस प्रकार बारम्बार हृदय से लगाते हुए माता ने राम को विदा किया। और लक्ष्मण ने भी हर्षाश्रु से पूर्ण हो गद्गद वाणी से कहा–॥५०॥ हे राम ! आपने मेरे अन्तःकरण के संशय को दूर किया, मैं आपकी सेवा करने के लिए पीछे-पीछे चलूँगा, इसलिए आप आज्ञा दीजिए ॥५१॥ हे नाथ ! मुझ पर कृपा कीजिए अन्यथा मैं प्राण दे दूँगा। इस प्रकार लक्ष्मण द्वारा कहे जाने पर राम ने 'तथास्तु' कहा, फिर वन चलने की आज्ञा देते हुए कहा–शीघ्र चलो देर मत करो ॥५२॥

फिर सीतापति भगवान् श्री राम सीता को सान्त्वना देने के लिए अपने महल में गये। मन्दस्मितभाषिणी श्री सीता ने भी पति को आया

स्वर्णपात्रस्थसलिलैः पादौ प्रक्षाल्य भक्तितः ।
पप्रच्छ पतिमालोक्य देव ! किं सेनया विना ॥५४॥

आगतोऽसि गतः कुत्र श्वेतच्छत्रं च ते कुतः ।
वादित्राणि न वाद्यन्ते किरीटादिविवर्जितः ॥५५॥

सामन्तराजसहितः सम्भ्रमान्नागतोऽसि किम् ? ।
इति स्म सीतया पृष्टो रामः सस्मितमब्रवीत् ॥५६॥

राज्ञा मे दण्डकारण्ये राज्यं दत्तं शुभेऽखिलम् ।
अतस्तत्पालनार्थाय शीघ्रं यास्यामि भामिनि ! ॥५७॥

अद्यैव यास्यामि वनं त्वं तु श्वश्रूसमीपगा ।
शुश्रूषां कुरु मे मातुर्न मिथ्यावादिने वयम् ॥५८॥

इति ब्रुवन्तं श्रीरामं सीता भीताऽब्रवीद् वचः ।
किमर्थं वनराज्यं ते पित्रा दत्तं महात्मना ॥५९॥

---

हुआ देखकर ।।५३।। सुवर्ण पात्र में जल भर कर श्रीराम के पैरों का भक्ति पूर्वक प्रक्षालन किया और उनकी ओर देखते हुए पूछा—देव ! बिना सेना के आप ऐसे क्यों आये ? ।।५४।। आप प्रातःकाल में कहाँ गये थे, आप का वह श्वेत छत्र कहाँ है । बाजे भी तो नहीं बज रहे हैं । आप के सिर पर मुकुट आदि राजचिह्न क्यों नहीं दिखाई देते ? ।।५५।।

आप मन्त्री एवं राजाओं के साथ ठाट-बाट से क्यों नहीं आये ? सीता के द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर राम ने हँसते हुए कहा—।।५६।। हे कल्याणकारिणी ! पिताजी ने मुझे समस्त दण्डकारण्य का राज्य दिया है। अतः हे भामिनि ! उसका पालन करने के लिए मैं शीघ्र ही दण्डकारण्य जा रहा हूँ ।।५७।। मैं आज ही वन जा रहा हूँ, किन्तु तुम सास के पास जाकर उनकी सेवा करो। मैं असत्य भाषण नहीं करता ।।५८।।

श्रीराम के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर सीताजी भयभीत हो गयीं और कहने लगीं। आपके महात्मा पिताजी ने आपको वन का राज्य क्यों दिया है ।।५९।।

तामाह राम ! कैकेय्यै राजा प्रीतो वरं ददौ ।
भरताय ददौ राज्यं वनवासं ममाऽनघे ! ॥६०॥
चतुर्दश समास्तत्र वासो मे किल याचितः ।
तया देव्या ददौ राजा सत्यवादी दयापरः । ६१॥
अतः शीघ्रं गमिष्यामि मा विघ्नं कुरु भामिनि ! ।
श्रुत्वा तद्रामवचनं जानकी प्रीतिसंयुता ॥६२॥
अहमग्रे गमिष्यामि वनं पश्चात् त्वमेष्यसि ।
इत्याह मां विना गन्तुं तव राघव ! नोचितम् ॥६३॥

तामाह राघवः प्रीतः स्वप्रियां प्रियवादिनीम् ।
कथं वनं त्वां नेष्येऽहं बहुव्याघ्रमृगाकुलम् ॥६४॥
राक्षसा घोररूपाश्च सन्ति मानुषभोजिनः ।
सिंह-व्याघ्र-वराहाश्च सञ्चरन्ति समन्ततः ॥६५॥
कट्वम्ल-फल-मूलानि भोजनार्थं सुमध्यमे ! ।
अपूपानि व्यञ्जनानि विद्यन्ते न कदाचन ॥६६॥

---

तब श्री राम ने कहा—हे अनघे ! कैकेयी के ऊपर प्रसन्न होकर महाराज ने उन्हें 'भरत को राज्य तथा मुझे वनवास' यह दो वरदान दिये हैं ॥६०॥ उसने मेरे लिये चौदह वर्ष का वनवास माँगा, सत्यवादी दयालु राजा ने उसे स्वीकार कर लिया है ॥६१॥

अतः हे भामिनि ! मैं शीघ्र ही वन-प्रस्थान करना चाहता हूँ, तुम उसमें विघ्न मत उपस्थित करो । श्रीराम के द्वारा कहे गये इस प्रकार के वचन को सुनकर सीता ने प्रसन्नता से कहा—॥६२॥ पहले मैं वन जाऊँगी तदनन्तर आप आना । हे राघव ! मेरे बिना तुम्हारा वन जाना उचित नहीं जान पड़ता ॥६३॥ तब प्रसन्न होकर अपनी प्रिय बोलनेवाली श्रीजानकी से राम ने कहा–मैं अनेकों व्याघ्रादि एवं वन्य पशुओं से संकुल वन में तुम्हें किस प्रकार ले चलूँ ६४। वन में मनुष्यों का भोजन करने वाले अनेक भयानक राक्षस रहते हैं और चारों ओर सिंह, व्याघ्र और वराह आदि हिंसक जन्तु घूमते रहते हैं ॥६५॥ हे सुन्दर कटिवाली सीते! वन में कड़ुए, खट्टे, फल-मूल भोजन के लिए प्राप्त होते हैं। वहाँ पूये और अन्य व्यञ्जन तो कभी

काले काले फलं वाऽपि विद्यते कुत्र सुन्दरि ! ।
मार्गो न दृश्यते क्वाऽपि शर्कराकण्टकान्वितः ॥६७॥
गुहागह्वरसम्बाधं झिल्लीदंशादिभियु तम् ।
एवं बहुविधं दोषं वनं दण्डकसंज्ञितम् ॥६८॥
पादचारेण गन्तव्यं शीतवातातपादिमत ।
राक्षसादीन् वने दृष्ट्वा जीवितं हास्यसेऽचिरात् ॥६९॥
तस्माद् भद्रे ! गृहे तिष्ठ शीघ्रं द्रक्ष्यसि मां पुनः ।
रामस्य वचनं श्रुत्वा सीता दुःखसमन्विता ॥७०॥
प्रत्युवाच स्फुरद् वक्त्रा किञ्चित् कोपसमन्विता ।
कथं मामिच्छसे त्यक्तुं धर्मपत्नी पतिव्रताम् ॥७१॥
त्वदनन्यामदोषां मां धर्मज्ञोऽसि दयापरः ।
त्वत्समीपे स्थितां राम ! को वा मां धर्षयेद् वने ॥७२॥
फल-मूलादिकं यद्यत् तव भुक्तावशेषितम् ।
तदेवामृततुल्यं मे तेन तुष्टा रमाम्यहम् ॥७३॥

---

मिलते ही नहीं ॥६६॥ और फल भी सर्वदा नहीं मिलते । हे सुन्दरि ! वे भी समय-समय पर कभी-कभी प्राप्त होते हैं, मार्ग शर्करा एवं कण्टक से आकीर्ण रहने के कारण दिखाई नहीं पड़ते ॥६७॥ ऐसे तो वह दण्डक वन ऐसे ही अनेकों दोषों से पूर्ण है, फिर अनेक गुफाओं एवं गड्ढों से उसकी भयंकरता और भी बढ़ गयी है । झिल्ली एवं डँसों से भी वह परिपूर्ण है ॥६८॥ उस वन में शीत, वायु एवं घाम सदैव होते रहते हैं, वहाँ पैदल ही जाने का रास्ता है । तुम वहाँ राक्षसादि के भयानक रूप को देखकर प्राण त्याग कर दोगी ॥६९॥ इसलिए हे कल्याणकारिणी ! तुम घर पर ही रहो । फिर मुझे शीघ्र ही देखोगी । राम के वचन सुनकर सीता दुःखी हो गयीं ॥७०॥ और क्रोध से ओठों को कँपाती हुई बोलीं—हे राम ! आप मुझ पतिव्रता धर्मपत्नी का परित्याग क्यों कर रहे हैं ॥७१॥

आप धर्मज्ञ एवं दयालु हैं, अतः सर्वथा निर्दोष और पतिप्राणा मुझ धर्मपत्नी का परित्याग क्यों कर रहे हैं ? हे राम ! तुम्हारे साथ रहते हुए मुझे कौन डरा सकता है ॥७२॥ आपके भोजन से अवशिष्ट कन्द, मूल, फलादि मेरे लिए अमृत तुल्य होंगे । मैं उसी से सन्तुष्ट रह कर सानन्द

त्वया सह चरन्त्या मे कुशाः काशाश्च कण्टकाः ।
पुष्पास्तरणतुल्या मे भविष्यन्ति न संशयः ॥७४॥

अहं त्वा क्लेशये नैव भवेयं कार्यसाधिनी ।
बाल्ये मां वीक्ष्य कश्चिद् वै ज्योतिःशास्त्रविशारदः॥७५॥

प्राह ते विपिने वासः पत्या सह भविष्यति ।
सत्यवादी द्विजो भूयाद् गमिष्यामि त्वया सह ॥७६॥

अन्यत् किञ्चित् प्रवक्ष्यामि श्रुत्वा मां नय काननम् ।
रामायणानि बहुशः श्रुतानि बहुभिर्द्विजैः ॥७७॥

सीतां विना वनं रामो गतः किं कुत्रचिद् वद ।
अतस्त्वया गमिष्यामि सर्वथा त्वत्सहायिनी ॥७८॥

यदि गच्छसि मां त्यक्त्वा प्राणांस्त्यक्ष्यामि तेऽग्रतः ।
इति तं निश्चयं ज्ञात्वा सीताया रघुनन्दनः ॥७९ ॥

---

रहूँगी ॥७३॥ यह निःसन्देह समझिए कि आप के साथ रहने पर वन के ये काश एवं कण्टक मेरे लिए फूल के बिछौने का काम करेंगे ॥७४॥

किसी भी प्रकार मैं आपके क्लेश का कारण न बनूँगी, बल्कि आपकी कार्यसाधिका बन कर वन में निवास करूँगी। मुझे बाल्यावस्था में देखकर किसी ज्योतिषी ने कहा था ॥७५॥ कि तू अपने पति के साथ वन में निवास करोगी। उस ब्राह्मण ज्योतिषी का वाक्य सत्य हो। मैं अवश्य ही तुम्हारे साथ वन में चलूँगी ॥७६॥

हे पतिदेव! मैं एक अन्य बात भी आपसे कहना चाहती हूँ। उसे सुनकर मुझे वन में चलने की अनुमति दीजिए। आपने अनेक ब्राह्मणों के मुख से अनेक रामायण सुना होगा ॥७७॥ क्या किसी भी रामायण में ऐसा है कि कोई राम सीता के बिना अकेले वन गया हो। इसलिए मैं आपकी सहायता करने के लिए आपके साथ वन चलूंगी ॥७८॥ यदि आप मुझे छोड़कर अकेले वन गये तो निश्चय समझिए मैं आपके आगे प्राण त्याग कर दूँगी। रघुनन्दन राम ने सीता के इस दृढ़ निश्चय को जानकर ॥७९॥ सीता से

अब्रवीद् देवि ! गच्छ त्वं वनं शीघ्रं मया सह ।
अरुन्धत्यै प्रयच्छाशु हारानाभरणानि च ॥८०॥
ब्राह्मणेभ्यो धनं सर्वं दत्वा गच्छामहे वनम् ।
इत्युक्त्वा लक्ष्मणेनाशु द्विजानाहूय भक्तितः ॥८१॥
ददौ गवां वृन्दशतं धनानि, वस्त्राणि दिव्यानि विभूषणानि ।
कुटुम्बवद्भ्यः श्रुतशीलवद्भ्यो, मुदा द्विजेभ्यो रघुवंशकेतुः ॥८२॥
अरुन्धत्यै ददौ सीता मुख्यान्याभरणानि च ।
रामो मातुः सेवकेभ्यो ददौ धनमनेकधा ॥८३॥
स्वकान्तः पुरवासिभ्यः सेवकेभ्यस्तथैव च ।
पौरजानपदेभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यः सहस्रशः ॥८४॥
लक्ष्मणोऽपि सुमित्रां तु कौसल्यायै समर्पयत् ।
धनुष्पाणिः समागत्य रामस्याग्रे व्यवस्थितः ॥८५॥
रामः सीता लक्ष्मणश्च जग्मुः सर्वे नृपालयम् ॥८६॥

---

कहा—हे देवि ! तुम मेरे साथ वन चलो। और अपने ये हार तथा आभूषण वसिष्ठ-पत्नी अरुन्धती को दे दो ॥८०॥

मैं अपना सब धन ब्राह्मणों को बुलाकर दे देता हूँ, ऐसा कह उन्होंने लक्ष्मण के द्वारा भक्ति पूर्वक ब्राह्मणों को बुलवाया ॥८१॥ रघुवंशकेतु श्री राम ने सैकड़ों गायों के समूह, धन, दिव्य वस्त्र एवं विविध आभूषण, विद्या तथा शील से सम्पन्न कुटुम्बी ब्राह्मणों को प्रसन्नतापूर्वक दान कर दिया ॥८२॥

इधर सीता ने भी अरुन्धती को उत्तमोत्तम आभूषण प्रदान किये। और राम ने माता की सेवा करने वालों को बहुत-सा धन दिया ॥८३॥ इसी प्रकार अन्तःपुर में रहने वाले पुरवासी एवं सेवकों को देशवासियों एवं सैकड़ों ब्राह्मणों को भी बहुत-सा धन दिया ॥८४॥ इधर लक्ष्मण ने भी अपनी माता सुमित्रा को कौसल्या के लिए सौंप दिया। और स्वयं हाथ में धनुष-बाण लेकर राम के आगे सावधानी से खड़े हो गये ॥८५॥ इस प्रकार राम, सीता और लक्ष्मण महाराज दशरथ के पास गये ॥८६॥

श्रीरामः सह सीतया नृपपथे गच्छन् शनैः सानुजः
पौरान् जानपदान् कुतूहलदृशः सानन्दमुद्वीक्षयन् ।
श्यामः कामसहस्रसुन्दरवपुः कान्त्या दिशो भासयन्
पादन्यास-पवित्रिता-ऽखिलजगत् प्रापालय तत्पितुः ॥८७॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे
चतुर्थः सर्गः ॥४॥

*

## ५. पञ्चमः सर्गः

( भगवान् राम का वनगमन )

श्रीमहादेव उवाच

आयान्तं नागरा दृष्ट्वा मार्गे रामं सजानकिम् ।
लक्ष्मणेन समं वीक्ष्य ऊचुः सर्वे परस्परम् ॥१॥
कैकेय्या वरदानादि श्रुत्वा दुःखसमावृताः ।
बत राजा दशरथः सत्यसन्धं प्रियं सुतम् ॥२॥

---

श्री राम, सीता एवं अपने छोटे भाई लक्ष्मण के साथ जब राजमार्ग से जा रहे थे, उस समय वे कुतूहल से पूर्ण नेत्रों वाले पुरवासियों एवं देशवासियों की ओर सानन्द देख रहे थे, वे श्यामसुन्दर सैकड़ों कामदेव के समान कमनीय थे। तथा अपने शरीर की दिव्य छटा से दशों दिशाओं को उद्भासित कर रहे थे। इस प्रकार अपने चरण के स्पर्श से सम्पूर्ण संसार को पवित्र करते वे पिता के घर पहुँचे ॥८७॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी टीका सहित अध्यात्म-रामायण में उमा-महेश्वर संवाद में अयोध्या काण्ड का चतुर्थ सर्ग समाप्त ॥४॥

*

श्री महादेव जी ने कहा—हे पार्वती ! मार्ग में जानकी एवं लक्ष्मण के सहित श्री राम को आते देखकर सब पुरवासी आपस में इस प्रकार कहने लगे ॥१॥ वे सभी पहले से कैकेयी के द्वारा माँगे गये वरदान को सुनकर दुःखी थे। उन्होंने कहा—हाय ! यह बड़ा अनर्थ हुआ कि राजा दशरथ ने

स्त्रीहेतोरत्यजत् कामी तस्य सत्यवता कुतः ।
कैकेयी वा कथं दुष्टा रामं सत्यं प्रियङ्करम् ॥३॥
विवासयामास कथं क्रूरकर्मातिमूढधीः ।
हे जना ! नाऽत्र वस्तव्यं गच्छामोऽद्यैव काननम् ॥४॥
यत्र रामः सभार्यश्च सानुजो गन्तुमिच्छति ।
पश्यन्तु जानकीं सर्वे पादचारेण गच्छतीम् ॥५॥
पुंभिः कदाचिद् दृष्ट्वा वा जानकी लोकसुन्दरी ।
साऽपि पादेन गच्छन्ती जनसङ्घेष्वनावृता ॥६॥
रामोऽपि पादचारेण गजा-ऽश्वादि-विवर्जितः ।
गच्छति द्रक्ष्यथ विभुं सर्वलोकैकसुन्दरम् ॥७॥
राक्षसी कैकेयीनाम्ना जाता सर्वविनाशिनी ।
रामस्यापि भवेद् दुःखं सीतायाः पादयानतः ॥८॥
बलवान् विधिरेवात्र पुंप्रयत्नो हि दुर्बलः ।
इति दुःखाकुले वृन्दे साधूनां मुनिपुङ्गवः ॥९॥

---

स्त्री के लिये काम के पराधीन होकर अपने सत्यपरायण प्रिय पुत्र का परित्याग कर दिया। उनकी सत्यनिष्ठा कहाँ चली गयी, उस दुष्टा कैकेयी ने सत्यवादी लोकप्रिय राम को वनवास क्यों दिया ? ॥२-३॥

वह इस प्रकार की क्रूर तथा हतबुद्धि किस प्रकार हो गयी। भाइयो ! अब हम लोगों को यहाँ नहीं रहना चाहिए। आज ही हम लोग भी उसी वन में चलेंगे ॥४॥ जहाँ राम भाई एवं जानकी के साथ जाना चाहते हैं। देखो तो, आज जानकी पैदल ही बन जा रही हैं ॥५॥

जो लोक-सुन्दरी जानकी पुरुषों के द्वारा कभी कदाचित् ही देखी गयी हों, वह आज बिना किसी परदे के इस जन-समूह में पैदल चल रही हैं ॥६॥ देखो, सर्वलोकैक सुन्दर प्रभु राम भी हाथी, घोड़े के बिना आज पैदल ही बन जा रहे हैं ॥७॥ अरे! यह कैकेयी नाम की राक्षसी सबका सर्वनाश करने के लिए उत्पन्न हुई है। सीता को पैदल चलते हुए देखकर राम को भी महान् दुःख हो रहा होगा ॥८॥ किन्तु भाग्य बलवान् है, पुरुष का प्रयत्न तो सर्वथा अकिञ्चित्कर है। इस प्रकार साधु समाज को दुःखातुर देखकर महर्षि

अब्रवीद् वामदेवोऽथ साधूनां सङ्घमध्यगः ।
मानुशोचथ रामं वा सीतां वा वच्मि तत्त्वतः ॥१०॥

एष रामः परो विष्णुरादिनारायणः स्मृतः ।
एषा सा जानकी लक्ष्मीर्योगमायेति विश्रुता ॥११॥

असौ शेषस्तमन्वेति लक्ष्मणाख्यश्च साम्प्रतम् ।
एष मायागुणैर्युक्तस्तत्तदाकारवानिव ॥१२॥

एष एव रजोयुक्तो ब्रह्माऽभूद् विश्वभावनः ।
सत्त्वाविष्टस्तथा विष्णुस्त्रिजगत् प्रतिपालकः ॥१३॥

एष रुद्रस्तामसोऽन्ते जगत्प्रलयकारणम् ।
एष मत्स्यः पुरा भूत्वा भक्तं वैवस्वतं मनुम् ॥१४॥

नाव्यारोप्य लयस्यान्ते पालयामास राघवः ।
समुद्रमथने पूर्वं मन्दरे सुतलं गते ॥१५॥

---

वामदेव, उनके बीच में आकर कहने लगे—आप लोगों से मैं सच्ची बात बताता हूँ, आप लोग राम एवं सीता के लिए चिन्तित न हों ॥९-१०॥

ये राम आदि नारायण स्वरूप महाविष्णु हैं; और यह जानकी उनकी योगमाया महालक्ष्मी हैं ॥११॥ और ये जो लक्ष्मण नाम धारण कर इनके पीछे-पीछे चल रहे हैं, ये भगवान् शेष हैं। यह भगवान् ही माया के गुणों से युक्त होकर तत्तदाकार रूप में भासित हो रहे हैं ॥१२॥ यह सनातन विष्णु ही रजोगुणों से युक्त होकर ब्रह्म के रूप से विश्व की रचना करते हैं। और सत्त्वगुण से युक्त होकर विष्णु रूप से तीनों जगत् का पालन करते हैं ॥१३॥ और अन्त में तमोगुण से युक्त हो रुद्र रूप से जगत् का संहार करते हैं। इन्हीं श्री रघुनाथ जी ने पूर्व काल में मत्स्य रूप धारण कर अपने भक्त वैवस्वत मनु को ॥१४॥ नाव में बैठाकर प्रलयान्त में उनकी रक्षा की थी। तथा समुद्र-मन्थन के समय जब मन्दराचल सुतल लोक में चला गया था ॥१५॥ तब इन्हीं श्री रामचन्द्र जी ने कूर्मरूप धारण कर उसे

अधारयत् स्वपृष्ठेऽद्रिं कूर्मरूपी रघूत्तमः ।
मही रसातलं याता प्रलये सूकरोऽभवत् ॥१६॥

तोलयामास दंष्ट्राग्रे न क्षोणीं रघुनन्दनः ।
नारसिंहं वपुः कृत्वा प्रह्लादवरदः पुरा ॥१७॥

त्रैलोक्यकण्टकं रक्षः पाटयामास तन्नखैः ।
पुत्रराज्यं हृतं दृष्ट्वा ह्यदित्या याचितः पुरा ॥१८॥

वामनत्वमुपागम्य याच्ञया चाहरन् पुनः ।
दुष्टक्षत्रिय - भूभारनिवृत्त्यै भार्गवोऽभवत् ॥१९॥

स एव जगतां नाथ ! इदानीं रामतां गतः ।
रावणादीनि रक्षांसि कोटिशो निहनिष्यति ॥२०॥

मानुषेणैव मरणं तस्य दृष्टं दुरात्मनः ।
राज्ञा दशरथेनापि तपसाराधितो हरिः ॥२१॥

---

अपनी पीठ पर धारण किया था। प्रलयकाल में जब हिरण्याक्ष के द्वारा पृथ्वी पाताल चली गयी थी तो इन्हीं श्रीरामजी ने वराह रूप धारण किया था ॥१६॥ और पृथ्वी को अपने दाढ़ पर उठाकर उसका उद्धार किया था। इन्होंने ही नरसिंह रूप धारण कर प्रह्लाद को वरदान दिया था ॥१७॥ और त्रैलोक्य के कण्टकस्वरूप हिरण्याक्ष का वक्षःस्थल अपने तीक्ष्ण नखों से विदीर्ण किया था। बलि के द्वारा अपने पुत्र इन्द्र के राज्य का अपहरण कर लिए जाने पर अदिति ने इनसे प्रार्थना की थी ॥१८॥ तब इन्होंने वामन रूप धारण कर बलि से इन्द्र का राज्य वापस ले लिया। फिर जब पृथ्वी दुष्ट क्षत्रियों के भार से पीड़ित हो रही थी तो इन्होंने परशुराम का रूप धारण कर क्षत्रियों का वध किया ॥१९॥ वही प्रभु जगन्नाथ विष्णु इस समय राम का रूप धारण कर रघुकुल में उत्पन्न हुए हैं। इस समय ये रावण आदि अनेक राक्षसों का वध करेंगे ॥२०॥

उस दुष्ट दुरात्मा रावण की मृत्यु मनुष्य के हाथ से ही होने वाली है। महाराज दशरथ ने तपस्या से विष्णु की आराधना कर उनसे वर

पुत्रत्वाकाङ्क्षया विष्णोस्तदा पुत्रोऽभवद् हरिः ।
स एव विष्णुः श्रीरामो रावणादिवधाय हि ॥२२॥

गन्ताऽद्यैव वनं रामो लक्ष्मणेन सहायवान् ।
एषा सीता हरेर्माया सृष्टि-स्थित्यन्त-कारिणी ॥२३॥

राजा वा कैकेयी वाऽपि नाऽत्र कारणमण्वपि ।
पूर्वेद्युर्नारदः प्राह भूभारहरणाय च ॥२४॥

रामोऽप्याह स्वयं साक्षाच्छ्वो गमिष्याम्यहं जनम् ।
अतो रामं समुद्दिश्य चिन्तां त्यजत बालिशाः ॥२५॥

रामरामेति ये नित्यं जपन्ति मनुजा भुवि ।
तेषां मृत्युभयादीनि न भवन्ति कदाचन ॥२६॥

का पुनस्तस्य रामस्य दुःखशङ्का महात्मनः ।
रामनाम्नैव मुक्तिः स्यात् कलौ नान्येन केनचित् ॥२७॥

---

माँगा था कि वे विष्णु उनके पुत्र बन कर अवतार लें। इसीलिए भगवान् उनके यहाँ पुत्र बन कर प्रकट हुए हैं। वही विष्णु श्रीराम हैं। जो इस समय रावण का वध करने के लिये ॥२१-२२॥ लक्ष्मण के साथ आज वन जा रहे हैं और ये सीता ही विश्व की उत्पत्ति, पालन तथा संहार करने वाली उन महाविष्णु की माया हैं ॥२३। राम के इस वन जाने में महाराज दशरथ अथवा महारानी कैकेयी अणुमात्र भी कारण नहीं हैं। अभी कल ही देवर्षि नारद ने आकर इनसे पृथ्वी के भार को उतारने की प्रार्थना की थी ॥२४॥ तदनन्तर राम ने उनसे कहा कि मैं कल ही वन को जाऊँगा। इसलिए हे भोले लोग! आप लोग राम के विषय में चिन्ता करना छोड़ दो ॥२५॥ हे भाइयो! जो लोग इस पृथ्वी पर सदैव 'राम-राम' ऐसा जप करते हैं, उन्हें मृत्यु आदि का भय तो कभी होता ही नहीं ॥२६॥ जिसके नाम में इतनी शक्ति है, उस महात्मा राम के लिए दुःख की शङ्का ही क्यों की जानी चाहिए। कलियुग में तो लोगों की मुक्ति राम-नाम से ही हो सकती है। और कोई दूसरा उपाय ही नहीं हैं ॥२७॥ ये लोककर्त्ता महाप्रभु

मायामानुषरूपेण विडम्बयति लोककृत् ।
भक्तानां भजनार्थाय रावणस्य वधाय च ॥२८॥
राज्ञश्चाऽभीष्टसिद्ध्यर्थं मानुषं वपुराश्रितः ।
इत्युक्त्वा विररामाथ वामदेवो महामुनिः ॥२९॥
श्रुत्वा तेऽपि द्विजाः सर्वे रामं ज्ञात्वा हरिं विभुम् ।
जहुर्हृत्संशयग्रन्थिं राममेवान्वचिन्तयन् ॥३०॥
य इदं चिन्तयेन्नित्यं रहस्यं राम - सीतयोः ।
तस्य रामे दृढा भक्तिर्भवेद् विज्ञानपूर्विका ॥३१॥
रहस्यं गोपनीयं वो यूयं वै राघवप्रियाः ।
इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रस्तेऽपि रामं परं विदुः ॥३२॥
ततो रामः समाविश्य पितृगेहमवारितः ।
सानुजः सीतया गत्वा कैकेयीमिदमब्रवीत् ॥३३॥
आगताः स्मो वयं मातस्त्रयस्ते सम्मतं वनम् ।
गन्तुं कृतधियः शीघ्रमाज्ञापयतु नः पिता ॥३४॥

---

भक्तों के भजन के लिए एवं रावणादि राक्षसों का वध करने के लिए माया से मनुष्यरूप धारण कर लीला कर रहे हैं ॥२८॥ और महाराज दशरथ के अभीष्ट सिद्धि के लिए भी इन्होंने मनुष्य रूप धारण किया है। ऐसा कह कर वामदेव मुनि मौन हो गये ॥२९॥ इस बात को सुनकर वहाँ एकत्रित समस्त द्विज गण भगवान् राम को व्यापक विष्णु जान लिया। और हृदय के संशय रूपी गाँठ को छोड़कर श्री राम स्मरण करने लगे ॥३०॥

जो लोग राम और सीता के इस रहस्य का स्मरण करेंगे उनकी दृढ़ एवं विज्ञान युक्त भक्ति भगवान् राम में हो जायेगी ॥३१॥ आप सभी राम के प्रिय हैं, अतः इस रहस्य को गुप्त रखें। पुनः ऐसा कह वामदेव जी चले गये। और पुरवासियों ने जान लिया कि राम परमामा हैं ॥३२॥ फिर श्रीराम सीता, लक्ष्मण के साथ बे-रोक-टोक पिता के गृह में प्रविष्ट होकर महाराज दशरथ के पास पहुँच गये। और कैकेयी से कहने लगे ॥३३॥ हे माता! आपके आज्ञानुसार वन जाने की इच्छा से हम तीनों तैयार होकर पिताजी के पास आये हुए हैं, अतः पिताजी हमें आज्ञा प्रदान करें ॥३४॥

इत्युक्त्वा सहसोत्थाय चीराणि प्रददौ स्वयम् ।
रामाय लक्ष्मणायाथ सीतायै च पृथक् पृथक् ॥३५॥
रामस्तु वस्त्राण्युत्सृज्य वन्यचीराणि पर्यधात् ।
लक्ष्मणोऽपि तथा चक्रे सीता तन्न विजानती ॥३६॥
हस्ते गृहीत्वा रामस्य लज्जया मुखमैक्षत ।
रामो गृहीत्वा तच्चीरमंशुके पर्यवेष्टयत् ॥३७॥
तद् दृष्ट्वा रुरुदुः सर्वे राजदाराः समन्ततः ।
वसिष्ठस्तु तदाकर्ण्य रुदितं भर्त्सयन् रुषा ॥३८॥
कैकेयीं प्राह दुर्वृत्ते राम एव त्वया वृतः ।
वनवासाय दुष्टे ! त्वं सीतायै किं प्रयच्छसि ॥३९॥
यदि रामं समन्वेति सीता भक्त्या पतिव्रता ।
दिव्याम्बरधरा नित्यं सर्वाभरणभूषिता ॥४०॥
रमयत्वनिशं रामं वनदुःखनिवारिणी ।
राजा दशरथोऽप्याह सुमन्त्रं रथमानय ॥४१॥

---

राम के द्वारा ऐसा कहे जाने पर कैकेयी सहसा उठ खड़ी हो गयी। और राम, लक्ष्मण तथा सीता के लिए अलग-अलग वल्कल वस्त्र लाकर रख दिया ॥३५॥ राम ने अपना राजोचित बहुमूल्य वस्त्र त्याग कर वनवासियों-जैसा वल्कल वस्त्र धारण कर लिया। लक्ष्मण ने भी ऐसा ही किया। किन्तु सीता तो उसे पहनना भी नहीं जानती थीं ॥३६॥ उन्होंने उस वल्कल वस्त्र को हाथ में ले लिया और लज्जा से राम के मुख की ओर देखने लगीं। राम ने सीता के हाथ से वल्कल लेकर सीता के वस्त्रों पर उसे लपेट दिया ॥३७॥ यह देख कर सारे रनिवास की रानियाँ रोने लगीं। उनके रोने के शब्द को सुन कर वसिष्ठ जी ने कैकेयी को क्रोध से डाँटते हुए कहा—॥३८॥ अयि दुर्वृत्ते ! तुमने तो केवल राम के लिए ही वनवास माँगा है। फिर सीता को ये वल्कल क्यों दे रही हो ? ॥३९॥ यदि पतिव्रता सीता भक्तिपूर्वक राम के साथ जाना चाहती हैं तो वह अपने सभी आभूषणों से विभूषित हो दिव्य वस्त्र धारण किये हुए ही जा सकती हैं ॥४०॥ और राम को वन के दुःखों से बचाती हुई नित्य प्रति उन्हें आनन्दित करें। तब दशरथ ने सुमन्त्र को रथ लाने की आज्ञा दी ॥४१॥

रथमारुह्य गच्छन्तु वनं वनचरप्रियाः ।
इत्युक्त्वा राममालोक्य सीतां चैव सलक्ष्मणम् ॥४२॥
दुःखान्निपतितो भूमौ रुरोदाश्रुपरिप्लुतः ।
आरुरोह रथं सीता शीघ्रं रामस्य पश्यतः ॥४३॥
रामः प्रदक्षिणं कृत्वा पितरं रथमारुहत् ।
लक्ष्मणः खड्गयुगलं धनुस्तूणीयुगं तथा ॥४४॥
गृहीत्वा रथमारुह्य नोदयामास सारथिम् ।
तिष्ठ तिष्ठ सुमन्त्रेति राजा दशरथोऽब्रवीत् ॥४५॥
गच्छ गच्छेति रामेण नोदितोऽचोदयद् रथम् ।
रामे दूरं गते राजा मूर्च्छितः प्रापतद्भुवि ॥४६॥
पौरास्तु बालवृद्धाश्च वृद्धा ब्राह्मणसत्तमाः ।
तिष्ठ तिष्ठेति रामेति क्रोशन्तो रथमन्वयुः ॥४७॥
राजा रुदित्वा सुचिरं मां नयन्तु गृहं प्रति ।
कौसल्याया राममातुरित्याह परिचारकान् ॥४८॥

---

वनवासियों के प्रिय ये लोग रथ पर चढ़ कर ही वन को जायेंगे। ऐसा कह वे राम, लक्ष्मण एवं सीता की ओर देखते हुए दुःख से पृथ्वी पर गिर पड़े और अश्रुपूर्ण नेत्रों से रोने लगे। इधर सीता राम के देखते-देखते रथ पर चढ़ गयीं ॥४२-४३॥ राम भी पिता की प्रदक्षिणा कर रथ पर सवार हो गये। लक्ष्मण भी दो खड्ग, दो धनुष और दो तरकस लेकर रथ पर चढ़ गये और सारथी को रथ हाँकने की आज्ञा दी। तब दशरथ ने कहा—'सुमन्त्र ! ठहरो, सुमन्त्र ! ठहरो' ॥४४-४५॥ किन्तु राम ने 'रथ ले चलो, रथ शीघ्र ले चलो' ऐसा कर कर शीघ्रता से रथ हाँकने को कहा, इसलिए सुमन्त्र ने रथ हाँक दिया। फिर राम के दूर निकल जाने पर महाराज पृथ्वी पर मूर्च्छित हो गिर पड़े ॥४६॥ इधर पुरवासी, बालक, वृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध श्रेष्ठ ब्राह्मण 'हे राम रथ को रोको, ठहरो ठहरो' ऐसा कहते हुए रथ के पीछे-पीछे दौड़ पड़े ॥४७॥ राजा दशरथ इस प्रकार देर तक रोते रहे, फिर उन्होंने अपने सेवकों से कहा—मुझे राम-माता कौसल्या के घर ले चलो ॥४८॥ वहाँ चलने पर मुझ दुखिया का

किञ्चित् कालं भवेत्तत्र जीवनं दुःखितस्य मे ।
अत ऊर्ध्वं न जीवामि चिरं रामं विना कृतः ॥४९॥
ततो गृहं प्रविश्यैव कौसल्यायाः पपात ह ।
मूर्च्छितश्च चिराद् बुद्ध्वा तूष्णीमेवावतस्थिवान् ॥५०॥
रामस्तु तमसातीरं गत्वा तत्राऽवसत् सुखी ।
जलं प्राश्य निराहारो वृक्षमूलेऽस्वपद् विभुः ॥५१॥
सीतया सह धर्मात्मा धनुष्पाणिस्तु लक्ष्मणः ।
पालयामास धर्मज्ञः सुमन्त्रेण समन्वितः ॥५२॥
पौराः सर्वे समागत्य स्थितास्तस्या विदूरतः ।
सक्ता रामं पुरं नेतुं नो चेद् गच्छामहे वनम् ॥५३॥
इति निश्चयमाज्ञाय तेषां रामोऽतिविस्मितः ।
नाऽहं गच्छामि नगरमेते वै क्लेशभागिनः ॥५४॥
भविष्यन्तीति निश्चित्य सुमन्त्रमिदमब्रवीत् ।
इदानीमेव गच्छामः सुमन्त्र ! रथमानय ॥५५॥

---

जीवन कुछ काल के लिए बच सकता है। किन्तु राम के बिना मैं अधिक दिनों तक जी नहीं सकता ॥४९॥

तदनन्तर कौसल्या के घर पहुँचते ही महाराज अचेत हो पृथ्वी पर गिर पड़े। फिर मूर्च्छा के अनन्तर चेत हो जाने पर चुपचाप बैठे रहे ॥५०॥ इधर राम ने तमसा के तट पर पहुँच कर सुखपूर्वक निवास किया। वे परमात्मा राम उस रात को कुछ न खाकर केवल जल पीकर वृक्ष के नीचे सीता सहित सो गए ॥५१॥ और महात्मा लक्ष्मण सुमन्त्र के साथ हाथ में धनुष धारण कर उनकी रक्षा करने लगे ॥५२॥ समस्त पुरवासी भी राम के समीप आकर ठहर गये। उन्होंने निश्चय किया कि या तो हम लोग राम को घर लौटाकर ले चलेंगे, नहीं तो इन्हीं के साथ वन में चले जायेंगे ॥५३॥ उन पुरवासियों के इस प्रकार के निश्चय का पता लग जाने पर राम को महान् आश्चर्य हुआ। उन्होंने सोचा कि मैं तो अयोध्या लौटूँगा नहीं, किन्तु वन में इन्हें व्यर्थ का क्लेश ही होगा ॥५४॥

ऐसा निश्चय कर उन्होंने सुमन्त्र को बुला कर कहा—सुमन्त्र ! तुम रथ ले आओ, हम अभी वन चलेंगे ॥५५॥ राम की आज्ञा पाकर सुमन्त्र

इत्याज्ञप्तः सुमन्त्रोऽपि रथं वाहैरयोजयत् ।
आरुह्य रामः सीता च लक्ष्मणोऽपि ययुर्द्रुतम् ।।५६।।
अयोध्याभिमुखं गत्वा किञ्चिद् दूरं ततो ययुः ।
तेऽपि राममदृष्ट्वैव प्रातरुत्थाय दुःखिताः ।।५७।।
रथनेमिगतं मार्गं पश्यन्तस्ते पुरं ययुः ।
हृदि रामं स-सीतं ते ध्यायन्तस्तस्थुरन्वहम् ।।५८।।
सुमन्त्रोऽपि रथं शीघ्रं नोदयामास सादरम् ।
स्फीतान् जनपदान् पश्यन् रामः सीतासमन्वितः ।।५९।।
गङ्गातीरं समागच्छत् शृङ्गवेराविदूरतः ।
गङ्गां दृष्ट्वा नमस्कृत्य स्नात्वा सानन्दमानसः ।।६०।।
शिंशपावृक्षमूले स निषसाद रघूत्तमः ।
ततो गुहो जनैः श्रुत्वा रामागममहोत्सवम् ।।६१।।
सखायं स्वामिनं द्रष्टुं हर्षात्तूर्णं समापतत् ।
फलानि मधु-पुष्पादि गृहीत्वा भक्तिसंयुतः ।।६२।।

---

ने रथ में घोड़े जोत दिये तब राम, लक्ष्मण एवं सीता सहित शीघ्र ही रथ पर सवार हो वन की ओर चल पड़े ।।५६।।

सुमन्त्र ने अपना रथ कुछ दूर अयोध्या की ओर ले जाकर फिर वन की ओर लौटाया। इधर प्रातःकाल होने पर जब पुरवासी उठे तो राम को न देख बड़े दुःखी हुए ।।५७।। एवं रथ के नेमि के लीक से मार्ग का पता लगाते हुए वे अयोध्यापुरी को लौट आये। और सीता सहित श्रीराम का ध्यान करते हुए वहीं रहने लगे ।।५८।। इधर सुमन्त्र ने भी बड़ी सावधानी से अपना रथ आगे बढ़ाया। सीता सहित श्रीरामचन्द्र जी भी अनेक समृद्धशाली देशों को देखते हुए शृङ्गबेरपुर के निकट गङ्गा तट पर पहुँचे। उन्होंने गङ्गा को देखकर प्रसन्नता से नमस्कार कर स्नान किया ।।५९-६०।। फिर रघूत्तम राम शिंशपा वृक्ष के नीचे बैठ गये। तदनन्तर निषादराज गुह ने लोगों से राम के आने का माङ्गलिक समाचार सुना ।।६१।। और अपने सखा एवं एकमात्र स्वामी का दर्शन करने के लिए बड़े हर्ष से भक्तिपूर्वक फल, शहद एवं पुष्पादि का उपायन लेकर वहाँ आया ।।६२।।

रामस्याग्रे विनिक्षिप्य दण्डवत् प्रापतद् भुवि ।
गुहमुत्थाप्य तं तूर्णं राघवः परिषस्वजे ॥६३॥

संपृष्टकुशलो रामं गुहः प्राञ्जलिरब्रवीत् ।
धन्योऽहमद्य मे जन्म नैषादं लोकपावन ! ॥६४॥

बभूव परमानन्दः स्पृष्ट्वा तेऽङ्गं रघूत्तम ! ।
नैषादराज्यमेतत्ते किङ्करस्य रघूत्तम ! ॥६५॥

त्वदधीनं वसन्नत्र पालयाऽस्मान् रघूद्वह ! ।
आगच्छ यामो नगरं पावनं कुरु मे गृहम् ॥६६॥

गृहाण फल-मूलानि त्वदर्थं सञ्चितानि मे ।
अनुगृह्णीष्व भगवन् ! दासस्तेऽहं सुरोत्तम ! ॥६७॥

रामस्तमाह सुप्रीतो वचनं शृणु मे सखे ! ।
न वेक्ष्यामि गृहं ग्रामं नववर्षाणि पञ्च च ॥६८॥

---

और राम के आगे धर कर दण्ड के समान पृथ्वी पर गिर पड़ा । तदनन्तर राम ने उसे उठाकर गले लगा लिया ॥६३॥

राम के द्वारा कुशल-मंगल पूछे जाने पर गुह ने हाथ जोड़कर कहा—हे लोकपावन ! आज मैं धन्य हो गया । और मेरा निषादकुल में जन्म लेना सफल हो गया ॥६४। हे रघूत्तम ! आप के अङ्ग स्पर्श का सौभाग्य प्राप्त कर मुझे महान् आनन्द हो रहा है । हे रघूत्तम ! आपके दास का यह नैषादराज आप का ही है ॥६५॥

हे रघूद्वह ! आप यहीं निवास करते हुए हम सभी का पालन करें । हे नाथ ! आइए और मेरे साथ चल कर मेरे नगर और घर को पवित्र कीजिए ॥६६॥ हे नाथ ! मैंने जो कन्द, फल एवं मूल आपके लिए सञ्चित किये हैं, उन्हें ग्रहण कीजिए । मैं आप का दास हूँ, अतः मेरे ऊपर अनुग्रह कीजिए ॥६७॥ तब राम ने बड़ी प्रसन्नता से कहा–हे मित्र ! मेरी बात सुनो, मैं (पिता की आज्ञा से) चौदह वर्ष तक किसी घर अथवा गाँव में नहीं जा

दत्तमन्येन नो भुञ्जे फल-मूलादि किञ्चन ।
राज्यं ममैतत्तं सर्वं त्वं सखा मेऽतिवल्लभः ॥६९॥

वटक्षीरं समानाय्य जटा-मुकुटमादरात् ।
बबन्ध लक्ष्मणेनाथ सहितो रघुनन्दनः ॥७०॥

जलमात्रं तु सम्प्राश्य सीतया सह राघवः ।
आस्तृतं कुशपर्णाद्यैः शयनं लक्ष्मणेन हि ॥७१॥

उवास तत्र नगरप्रसादाग्रे यथा पुरा ।
सुष्वाप तत्र वैदेह्या पर्यङ्क इव संस्कृते ॥७२॥

ततोऽविदूरे परिगृह्य चापं, सबाण-तूणीर-धनुः स लक्ष्मणः ।
ररक्ष रामं परितो विपश्यन्, गुहेन सार्धं सशरासनेन ॥७३॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे
पञ्चमः सर्गः ॥५॥

*

सकता ॥६८॥ और न दूसरे के द्वारा दिये गये फल, मूल आदि किसी भी वस्तु का भोजन ही कर सकता हूँ। तुम्हारा यह राज्य मेरा है और तुम प्राणप्रिय सखा हो ॥६९॥ फिर श्री राम ने वट का दूध मँगवा कर और जटा-मुकुट को भली-भाँति सँवारकर लक्ष्मण सहित उसे बाँध लिया ॥७०॥

राम ने वहाँ केवल जल मात्र का प्राशन किया। फिर लक्ष्मण के द्वारा कुशा एवं पत्र से विरचित बिछौने पर सीता सहित उसी प्रकार आसीन हो गये ॥७१॥ जिस प्रकार अयोध्या के अपने महल में सुसज्जित पलंग पर सीता सहित पौढ़ते थे ॥७२॥

उसके पास ही लक्ष्मण जी भी धनुष पर बाण चढ़ा चारों तरफ देखते हुए श्री रामचन्द्र जी की रक्षा करने लगे ॥७३॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दीटीका सहित अध्यात्म-रामायण के उमा-महेश्वर संवाद में अयोध्याकाण्ड का पञ्चम सर्ग समाप्त ॥ ५ ॥

*

## ६. षष्ठः सर्गः

( राम का गङ्गोत्तरण तथा भरद्वाज और वाल्मीकिजी से भेंट )

श्रीमहादेव उवाच

सुप्तं रामं समालोक्य गुहः सोऽश्रुपरिप्लुतः ।
लक्ष्मणं प्राह विनयाद् भ्रातः पश्यसि राघवम् ॥१॥

शयानं कुशपत्रौघसंस्तरे सीतया सह ।
यः शेते पर्णपर्यङ्के स्वास्तीर्णे भवनोत्तमे ॥२॥

कैकेयी रामदुःखस्य कारणं विधिना कृता ।
मन्थराबुद्धिमास्थाय कैकेयी पापमाचरत् ॥३॥
तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणः प्राह सखे ! शृणु वचो मम ।
कः कस्य हेतुर्दुःखस्य कश्च हेतुः सुखस्य वा ॥४॥
स्वपूर्वार्जितकर्मैव कारणं सुख-दुःखयोः ॥५॥

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता, परो ददातीति कुबुद्धिरेषा ।
अहं करोमीति वृथाऽभिमानः, स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः ॥६॥

---

श्री महादेव जी ने कहा—हे पार्वती ! कुशपर्ण की शय्या पर सोते हुए राम को देख कर गुह के नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये। उसने बड़े विनय से लक्ष्मण से कहा—भाई लक्ष्मण ! इन राम को देखो ॥१॥ जो अपने भव्य भवन में सुवर्ण निर्मित पलंग पर सुन्दर बिछौने पर सोते थे, वे राम कुश एवं पत्र-निर्मित साथरी पर सीता सहित सो रहे हैं ॥२॥ हाय ! विधाता ने राम के इस दुःख का कारण कैकेयी को बनाया। मन्थरा की बुद्धि पर विश्वास कर कैकेयी ने यह बहुत बड़ा पाप किया ॥३॥ गुह की इस बात को सुनकर लक्ष्मण जी कहने लगे—भाई ! किसी के सुख एवं दुःख का कारण और दूसरा कौन है ॥४॥ मेरे विचार से पूर्वजन्म के किये गये कर्म ही सुख और दुःख के कारण होते हैं ॥५॥ सुख एवं दुःख को देने वाला कोई दूसरा कारण नहीं है। कोई दूसरा सुख-दुःख देने वाला है, ऐसा समझना कुबुद्धि है। और 'मैं करता हूँ' यह अभिमान भी व्यर्थ ही है। क्योंकि यह सारा संसार अपने कर्म में बँधा हुआ है ॥६॥

सुहृन्मित्रार्युदासीन - द्वेष्यमध्यस्थ - बान्धवाः ।
स्वयमेवाचरन् कर्म तथा तत्र विभाव्यते ॥७॥
सुखं वा यदि वा दुःखं स्वकर्मवशगो नरः ।
यद्यथागतं तत्तद् भुक्त्वा स्वस्थमना भवेत् ॥८॥
न मे भोगागमे वाञ्छा न मे भोगविवर्जने ।
आगच्छत्वथ मागच्छत्वभोगवशगो भवेत् ॥९॥
यस्मिन् देशे च काले च यस्माद् वा येन केन वा ।
कृतं शुभाऽशुभं कर्म भोज्यं तत्तत्र नान्यथा ॥१०॥
अलं हर्षविषादाभ्यां शुभाऽशुभफलोदये ।
विधात्रा विहितं यद्यत्तदलङ्घ्यं सुराऽसुरैः ॥११॥
सर्वदा सुख-दुःखाभ्यां नरः प्रत्यवरुध्यते ।
शरीरं पुण्यपापाभ्यामुत्पन्नं सुख-दुःखवत् ॥१२॥
सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम् ।
द्वयमेतद्धि जन्तूनामलङ्घ्यं दिनरात्रिवत् ॥१३॥

---

यह मनुष्य स्वयं अपने तत्तत् कर्म के आचरण के प्रभाव से सुहृद, मित्र, शत्रु, उदासीन, द्वेष्य, मध्यस्थ एवं बान्धवों की कल्पना कर उन्हें प्राप्त करता है ॥७॥ अतः मनुष्य को चाहिए कि वह अपने कर्म के अनुसार जैसे तैसे प्राप्त सुख तथा दुःख का भोग भोगते हुए निर्विकार रहे ॥८॥ मुझे न भोग की इच्छा है, और न तो त्यागने की ही इच्छा है। भोग चाहे प्राप्त हो अथवा न प्राप्त हो, हम भोगों के अधीन कदापि नहीं हैं ॥९॥ जिस देश में, जिस काल में, जिस-किसी से, जिस प्रकार के शुभ अथवा अशुभ कर्म किये जाते हैं, उन्हें उसी प्रकार अवश्य भोगना पड़ता है ॥१०॥ अतः शुभाशुभ कर्म के फलोदय होने पर हर्ष या विषाद करना व्यर्थ है। विधाता के विधान का देवता और असुर भी उल्लंघन नहीं कर सकते ॥११॥ यह मनुष्य सुख तथा दुःख के घेरे में घिरा हुआ है, यह मनुष्य-शरीर पाप और पुण्य के मेल से बना होने के कारण सुख-दुःख स्वरूप ही है ॥१२॥ सुख के अनन्तर दुःख एवं दुःख के अनन्तर सुख पर्याय क्रम से इस प्रकार आता रहता है। जिस प्रकार दिन के बाद रात्रि एवं रात्रि के बाद दिन का होना अवश्यंभावी है। अतः विधाता के द्वारा विहित सुख-दुःख जीवों के लिए अनुल्लंघनीय है ॥१३॥

सुखमध्ये स्थितं दुःखं दुःखमध्ये स्थितं सुखम् ।
द्वयमन्योन्यसंयुक्तं प्रोच्यते जलपङ्कवत् ॥१४॥
तस्माद्धैर्येण विद्वांस इष्टाऽनिष्टोपपत्तिषु ।
न हृष्यन्ति न मुह्यन्ति सर्वं मायेति भावनात् ॥१५॥
गुह-लक्ष्मणयोरेवं भाषतोर्विमलं नभः ।
बभूव रामः सलिलं स्पृष्ट्वा प्रातः समाहितः ॥१६॥
उवाच शीघ्रं सुदृढां नावमानय मे सखे ! ।
श्रुत्वा रामस्य वचनं निषादाधिपतिर्गुहः ॥१७॥
स्वयमेव दृढां नावमानिनाय सुलक्षणाम् ।
स्वामिन्नारुह्यतां नौकां सीतया लक्ष्मणेन च ॥१८॥
वाहये ज्ञातिभिः सार्धमहमेव समाहितः ।
तथेति राघवः सीतामारोप्य शुभलक्षणाम् ॥१९॥
गुहस्य हस्तावालम्ब्य स्वयं चारोहदच्युतः ।
आयुधादीन् समारोप्य लक्ष्मणोऽप्यारुरोह च ॥२०॥

---

सुख के मध्य में दुःख एवं दुःख के मध्य में सुख, ये दोनों आपस में इस प्रकार मिले रहते हैं, जैसे जल और पङ्क दोनों एक में मिले रहते हैं ॥१४॥ इसलिए विद्वान् लोग इष्ट अथवा अनिष्ट के प्राप्त होने पर 'यह सब माया है' ऐसा विचार कर धैर्य धारण करते हुए हर्ष अथवा शोक से अभिभूत नहीं होते ॥१५॥ इस प्रकार लक्ष्मण एवं गुह के बात चीत करते-करते आकाश में उजाला हो गया। फिर रामचन्द्रजी जल से आचमन कर नित्यकर्म से निवृत्त हो गये ॥१६॥ उस निषादराज से कहा—हे मित्र ! मेरे लिए एक सुदृढ़ नौका लाओ। राम के इस बात को सुन कर निषादाधिपति गुह सुन्दर लक्षणों से युक्त सुदृढ़ नौका ले आकर कहने लगे। स्वामिन् ! आप सीता एवं लक्ष्मण सहित नाव पर चढ़िए ॥१७-१८॥ मैं स्वयं अपने ज्ञातियों के साथ सावधानी पूर्वक नाव को चलाऊँगा, फिर वे 'तथास्तु' कह कर सर्वप्रथम सुलक्षणा सीता को चढ़ाया ॥१९॥

तदनन्तर स्वयं भगवान् अच्युत गुह का हाथ पकड़ कर स्वयं चढ़े। तथा आयुधों को नाव पर रख कर स्वयं लक्ष्मण जी नौकारूढ हो

गुहस्तान् वाहयामास ज्ञातिभिः सहितः स्वयम् ।
गङ्गामध्ये गतां गङ्गां प्रार्थयामास जानकी ॥२१॥

देवि गङ्गे! नमस्तुभ्यं निवृत्ता वनवासतः ।
रामेण सहिताऽहं त्वां लक्ष्मणेन च पूजये ॥२२॥

इत्युक्त्वा परकूलं तौ शनैरुत्तीर्य जग्मतुः ॥२३॥

गुहोऽपि राघवं प्राह गमिष्यामि त्वया सह ।
अनुज्ञां देहि राजेन्द्र! नो चेत् प्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥२४॥

श्रुत्वा नैषादिवचनं श्रीरामस्तमथाऽब्रवीत् ।
चतुर्दश समाः स्थित्वा दण्डके पुनरप्यहम् ॥२५॥

आयास्याम्युदितं सत्यं नासत्यं रामभाषितम् ।
इत्युक्त्वाऽलिङ्ग्य तं भक्तं समाश्वास्य पुनः पुनः ॥२६॥
निवर्तयामास गुहं सोऽपि कृच्छ्राद्ययौ गृहम् ॥२७॥
ततो रामस्तु वैदेह्या लक्ष्मणेन समन्वितः ॥२८॥

---

गये ॥२०॥ फिर गुह अपने ज्ञातियों के साथ स्वयं नौका चलाने लगा। जब नाव गङ्गा के बीच में पहुँची तो जानकी ने गङ्गा से प्रार्थना की ॥२१॥ देवि गङ्गे! तुम्हें मेरा नमस्कार हो। वनवास से लौटने पर मैं राम एवं लक्ष्मण सहित तुम्हारी पूजा करूँगी ॥२२॥ जानकी के द्वारा इस प्रकार की प्रार्थना कर लेने पर राम, लक्ष्मण, सीता के साथ धीरे-धीरे पार उतर कर चलने लगे ॥२३॥ तब गुह ने श्रीराम से कहा—हे नाथ! मुझे भी अपने साथ चलने की आज्ञा दें अन्यथा मैं प्राण त्याग कर दूँगा ॥२४॥ निषादराज गुह के इस प्रकार कहे जाने पर राम ने उससे कहा—मैं दण्डक वन में चौदह वर्ष तक रह कर यहाँ पुनः लौटूँगा ॥२५॥ 'मैं अवश्य आऊँगा' यह मैं सत्य कह रहा हूँ। राम कभी झूठा नहीं बोलते। ऐसा कहते हुए राम ने भक्त गुह को सान्त्वना दी। और उसे गले लगा लिया ॥२६॥ निषादराज गुह भी बड़े कष्ट से घर की ओर लौटे। ॥२७॥

तदनन्तर राघवेन्द्र राम लक्ष्मण और सीता के साथ भरद्वाज के आश्रम में पहुँच कर बाहर खड़े हो गये। और वहाँ खड़े हुए एक ब्रह्मचारी को

भरद्वाजाश्रमपदं गत्वा बहिरुपस्थितः।
तत्रैकं बटुकं दृष्ट्वा रामः प्राह च हे बटो ! ॥२९॥
रामो दाशरथिः सितालक्ष्मणाभ्यां समन्वितः।
आस्ते बहिर्वनस्येति ह्युच्यतां मुनिसन्निधौ ॥३०॥
तच्छ्रुत्वा सहसा गत्वा पादयोः पतितो मुनेः।
स्वामिन् ! रामः समागत्य वनाद् बहिरवस्थितः ॥३१॥
सभार्यः सानुजः श्रीमानाह मां देवसन्निभः।
भरद्वाजाय मुनये ज्ञापयस्व यथोचितम् ॥३२॥
तच्छ्रुत्वा सहसोत्थाय भरद्वाजो मुनीश्वरः।
गृहीत्वाऽर्घ्यं च पाद्यं च रामसामीप्यमाययौ ॥३३॥
दृष्ट्वा रामं यथान्यायं पूजयित्वा सलक्ष्मणम्।
आह मे पर्णशालां भो राम राजीवलोचन ! ॥३४॥
आगच्छ पादरजसा पुनीहि रघुनन्दन !।
इत्युक्त्वोटजमानीय सीतया सह राघवौ ॥३५॥

---

देखकर कहा—॥२८-२९॥ हे बटो ! मुनि से जाकर कहो कि दशरथ-पुत्र राम, अपने अनुज लक्ष्मण एवं भार्या सीता के साथ आश्रम के बाहर खड़े हैं ॥३०॥

राम की बात को सुन कर वह ब्रह्मचारी मुनि के पास जाकर उनके चरणों में शिर रख कर कहा—हे स्वामी ! राम आश्रम के बाहर खड़े हैं ॥३१॥ वे देवतुल्य श्रीमान् राम अपने छोटे भाई लक्ष्मण और भार्या के साथ हैं। उन्होंने मुझे कहा है कि मुनिवर को जाकर यथायोग्य मेरे आने की सूचना दो ॥३२।

वटु के द्वारा इस बात को सुनकर महामुनि भरद्वाज सहसा उठ खड़े हुए। और शीघ्र ही अर्घ्य, पाद्य लेकर राम के पास आ गये ॥३३॥ उन्होंने लक्ष्मण युक्त श्रीराम को देखकर यथोचित उनकी पूजा की। और कहा—कमलनयन श्रीराम ! आइए। और अपने चरण-रज से मेरी पर्णशाला पवित्र कीजिए। ऐसा कह सीता के साथ दोनों राजकुमारों को अपनी पर्ण-शाला में ले आये ॥३४-३५॥ और भक्तिपूर्वक उनका पुन जन किया। और

भक्त्या पुनः पूजयित्वा चकारातिथ्यमुत्तमम् ।
अद्याहं तपसः पारं गतोऽस्मि तव सङ्गमात् ॥३६॥

ज्ञातं राम! तवोदन्तं भूतं चागामिकं च यत् ।
जानामि त्वां परात्मानं मायया कार्यमानुषम् ॥३७॥

यदर्थमवतीर्णोऽसि प्रार्थितो ब्रह्मणा पुरा ।
यदर्थं वनवासस्ते यत् करिष्यसि वै पुरः ॥३८॥

जानामि ज्ञानदृष्ट्याऽहं जातया त्वदुपासनात् ।
इतः परं त्वां किं वक्ष्ये कृतार्थोऽहं रघूत्तम! ॥३९॥

यस्त्वां पश्यामि काकुत्स्थं पुरुषं प्रकृतेः परम् ।
रामस्तमभिवाद्याह सीतालक्ष्मणसंयुतः ॥४०॥

अनुग्राह्यास्त्वया ब्रह्मन्! वयं क्षत्रियबान्धवाः ।
इति सम्भाष्य तेऽन्योऽन्यमुषित्वा मुनिसन्निधौ ॥४१॥

---

उत्तम रीति से उनका अतिथि-सत्कार किया। फिर कहा, आज आपके आने से मैंने तपस्या से भी परे फल को प्राप्त किया ॥३६॥

हे राम! मैं तुम्हारे भूत एवं भविष्य के सभी वृत्तान्तों को जानता हूँ। और यह भी जानता हूँ कि आप साक्षात् परमात्मा हैं। और माया से मनुष्य रूप धारण किए हुए हैं ॥३७॥ ब्रह्मा के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर आपने जिस लिये अवतार लिया है, एवं जिस लिए आपका वनवास हुआ है तथा वन में जाकर आप आगे जो-जो कार्य करेंगे। वह सब आपकी उपासना द्वारा प्राप्त ज्ञान-दृष्टि से मैं सब जानता हूँ। हे नाथ! अब मैं इससे अधिक क्या कहूँ कि आज मैं आपके दर्शन से कृतार्थ हो गया ॥३८-३९॥

जो प्रकृति से परे साक्षात् पुरुषोत्तम आपको ककुत्स्थ कुल में उत्पन्न हुआ देख रहा हूँ। तदनन्तर सीता और लक्ष्मण सहित श्रीराम ने उन्हें प्रणाम कर कहा—॥४०॥ हे ब्रह्मन्! हम लोग क्षत्रियकुलोत्पन्न हैं, अतः आपके कृपा पात्र हैं। इस प्रकार आपस में वार्तालाप करने के उपरान्त श्रीराम मुनि के आश्रम में उस रात ठहर गये ॥४१॥ फिर प्रातःकाल उठ

प्रातरुत्थाय यमुनामुत्तीर्य्य मुनिदारकैः ।
कृताप्लवेन मुनिना दृष्टमार्गेण राघवः ॥४२॥
प्रययौ चित्रकूटाद्रिं वाल्मीकेर्यत्र चाश्रमः ।
गत्वा रामोऽथ वाल्मीकेराश्रमं ऋषिसङ्कुलम् ॥४३॥
नानामृगद्विजाकीर्णं नित्यपुष्प - फलाकुलम् ।
तत्र दृष्ट्वा समासीनं वाल्मीकिं मुनिसत्तमम् ॥४४॥
ननाम शिरसा रामो लक्ष्मणेन च सीतया ।
दृष्ट्वा रामं रमानाथं वाल्मीकिर्लोकसुन्दरम् ॥४५॥
जानकीलक्ष्मणोपेतं जटामुकुट - मण्डितम् ।
कन्दर्पसदृशाकारं कमनीयाम्बुजेक्षणम् ॥४६॥
दृष्ट्वैव सहसोत्तस्थौ विस्मयानिमिषेक्षणः ।
आलिङ्ग्य परमानन्दं रामं हर्षाश्रुलोचनः ॥४७॥
पूजयित्वा जगत्पूज्यं भक्त्याऽर्घ्यादिभिरादृतः ।
फलमूलैः स - मधुरैर्भोजयित्वा च लालितः ॥४८॥

---

कर मुनि कुमारों के द्वारा निर्मित नाव पर यमुना पार हो, मुनि के द्वारा बताये गये मार्ग से चित्रकूट की ओर प्रस्थान किया। जहाँ ऋषि गणों से परिपूर्ण महर्षि वाल्मीकि का आश्रम था ॥४२-४३॥ महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में जाकर उन्होंने देखा कि वह आश्रम अनेक जङ्गली जन्तुओं और पक्षियों से परिपूर्ण है तथा सर्वदा फल-पुष्पादि से परिपूर्ण है। उस अपने आश्रम में महर्षि वाल्मीकि बैठे हुए हैं ॥४४॥

फिर वहाँ जाकर श्रीराम ने जानकी एवं लक्ष्मण सहित सिर झुका कर प्रणाम किया। महर्षि वाल्मीकि ने जब त्रिलोक सुन्दर, जटा-मुकुटमण्डित कन्दर्प के समान कमनीय, मनोहर कमल के समान नेत्र वाले, और लक्ष्मी-पति श्रीराम को लक्ष्मण एवं सीता के सहित देखा—॥४५-४६॥ तो वे आसन से उठ खड़े हो गये, उनकी दृष्टि आश्चर्य में पड़कर निमेष रहित हो गयी, वे रोमाञ्चित हो गये। उनके नेत्रों से जल की धारा बहने लगी। फिर उन्होंने राम का आलिङ्गन किया ॥४७॥

तदनन्तर उन्होंने जगत्पूज्य श्रीराम का भक्तिपूर्वक आदर से अर्घ्यादि के द्वारा पूजन किया। और मीठे-मीठे फल-मूल खिला कर उनका लालन

राघवः प्राञ्जलिः प्राह वाल्मीकिं विनयान्वितः ।
पितुराज्ञां पुरस्कृत्य दण्डकानागता वयम् ॥४६॥

भवन्तो यदि जानन्ति किं वक्ष्यामोऽत्र कारणम् ।
यत्र मे सुखवासाय भवेत् स्थानं वदस्व तत् ॥५०॥

सीतया सहितः कालं किञ्चित्तत्र नयाम्यहम् ।
इत्युक्तो राघवेणासौ मुनिः सस्मितमब्रवीत् ॥५१॥

त्वमेव सर्वलोकानां निवासस्थानमुत्तमम् ।
तवापि सर्वभूतानि निवास - सदनानि हि ॥५२॥

एवं साधारणं स्थानमुक्तं ते रघुनन्दन ! ।
सीतया सहितस्येति विशेषं पृच्छतस्तव ॥५३॥

तद् वक्ष्यामि रघुश्रेष्ठ ! यत्ते नियतमन्दिरम् ।
शान्तानां समदृष्टीनामद्वेष्टॄणां च जन्तुषु ।
त्वामेव भजतां नित्यं हृदयं तेऽधिमन्दिरम् ॥५४॥

---

किया ॥४८॥ फिर श्रीराम ने नम्रता से हाथ जोड़कर वाल्मीकि से कहा—हम पिता की आज्ञा से दण्डकवन आये हैं ।४९॥ आप लोग तो सब जानते हैं, इसका कारण हम क्या बतावें ? अतः हे महर्षि ! जहाँ मैं सुखपूर्वक निवास कर सकूँ वह स्थान हमें बताइए ॥५०॥ आपके द्वारा निर्दिष्ट उस स्थान में मैं सीता के साथ रह कर कुछ समय बिताऊँगा । राघवेन्द्र राम के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर मुनि ने हँसते हुए कहा—॥५१॥

हे राघव ! जगत् के समस्त प्राणियों के आप सर्वोत्तम निवास-गृह हैं । और यह सारे जीव भी आपके निवास स्थान हैं ॥५२॥ इस प्रकार आपके रहने के लिए हमने सामान्य स्थान बताया । किन्तु आपने सीता सहित अपने रहने के लिए स्थान पूछा है ॥५३॥ इसलिए मैं आपको उस स्थान का निर्देश कर रहा हूँ, जहाँ आप निश्चिन्त रूप से सीता सहित निवास करें । शान्त, समदर्शी, जन्तुओं से द्वेष न रख कर केवल जो तुम्हारी ही भजन करते है, ऐसे लोगों के हृदय में आप प्रधान रूप से निवास करें ॥५४॥

धर्माऽधर्मान् परित्यज्य त्वामेव भजतोऽनिशम् ।
सीतया सह ते राम ! तस्य हृत्सुखमन्दिरम् ॥५५॥

त्वन्मन्त्रजापको यस्तु त्वामेव शरणं गतः ।
निर्द्वन्द्वो निस्पृहस्तस्य हृदयं ते सुमन्दिरम् ॥५६॥

निरहङ्कारिणः शान्ता ये राग-द्वेषवर्जिताः ।
समलोष्टाश्मकनकास्तेषां ते हृदयं गृहम् ॥५७॥

त्वयि दत्तमनोबुद्धिर्यः सन्तुष्टः सदा भवेत् ।
त्वयि सन्त्यक्तकर्मा यस्तन्मनस्ते शुभं गृहम् ॥५८॥

यो न द्वेष्ट्यप्रियं प्राप्य प्रियं प्राप्य न हृष्यति ।
सर्वं मायेति निश्चित्य त्वां भजेत् तन्मनो गृहम् ॥५९॥

षड्भावादिविकारान् यो देहे पश्यति नात्मनि ।
क्षुत्तृट् सुखं भयं दुःखं प्राणबुद्ध्योर्निरीक्षते ॥६०॥

---

हे राम ! जो धर्म एवं अधर्म का परित्याग कर निरन्तर आपका भजन करते हैं, उनका हृदय-स्थल, सीता के सहित आपके निवास के योग्य है ॥५५॥ जो तुम्हारे मन्त्र का सर्वदा जप करते हैं, एवं निरन्तर तुम्हारी शरण में रहते हैं, जो द्वन्द्व ( माया ) से रहित और निस्पृह हैं। उनका हृदय सुखपूर्वक आपके निवास योग्य है ॥५६॥ जो अहङ्कार रहित, शान्त एवं राग-द्वेष रहित हैं, तथा मिट्टी एव सुवर्ण में समान दृष्टि रखने वाले हैं। उनका हृदय आपका घर है ॥५७॥

जो आप ही में मन एवं बुद्धि को लगा कर सर्वदा सन्तुष्ट रहते हैं तथा अपने समस्त कर्मों का समर्पण आप में कर देते हैं, उनका मन आप का शुभ गृह है ॥५८॥ जो अप्रिय वस्तु पाकर द्वेष नहीं करता, और प्रिय वस्तु प्राप्त कर हर्षित नहीं होता, और यह सब माया का ही प्रपञ्च है, ऐसा समझ कर आप का भजन करता है, उसका मन आप का घर होवे ॥५९॥ जो जायते, तिष्ठति, विपरिणमते, विवर्धते, अपक्षीयते, विनश्यति इन छह विकारों को शरीर में देखता है, किन्तु आत्मा में नहीं, इसी प्रकार क्षुधा एवं तृषा को प्राण के विकार तथा सुख-दुःख और भय

संसारधर्मैर्निर्मुक्तस्तस्य ते मानसं गृहम् ॥६१॥

पश्यन्ति ये सर्वगुहाशयस्थं, त्वां चिद्घनं सत्यमनन्तमेकम् ।
अलेपकं सर्वगतं वरेण्यं, तेषां हृदब्जे सह सीतया वस ॥६२॥

निरन्तराभ्यास-दृढीकृतात्मनां, त्वत्पादसेवा-परिनिष्ठितानाम् ।
त्वन्नामकीर्त्या हतकल्मषाणां, सीतासमेतस्य गृहं हृदब्जे ॥६३॥

राम ! त्वन्नाममहिमा वर्ण्यते केन वा कथम् ? ।
यत्प्रभावादहं राम ! ब्रह्मर्षित्वमवाप्तवान् ॥६४॥

अहं पुरा किरातेषु किरातैः सह वर्धितः ।
जन्ममात्रद्विजत्वं मे शूद्राचाररतः सदा ॥६५॥

शूद्रायां बहवः पुत्रा उत्पन्ना मेऽजितात्मनः ।
ततश्चोरैश्च सङ्गम्य चौरोऽहमभवं पुरा ॥६६॥

---

को बुद्धि के विकार मानता है, आत्मा के नहीं । एवं जो सांसारिक दुःखों से सर्वथा मुक्त रहता है, उसका मन आप का निवास स्थल हो ॥६०-६१॥

हे राम ! जो चिद्घन एवं सत्यस्वरूप, अनन्त, एक माया रहित होने से निर्लेप, सर्वगत एवं स्तुत्य आप को सभी प्राणियों के अन्तःकरण में देखते हैं, उनके हृत्कमल में आप सीता सहित निवास करें ॥६२॥ निरन्तर अभ्यास करने से जिनकी आत्मा आप में दृढ़ हो गयी है तथा जो आप के चरण-कमल की सेवा में परिनिष्ठित हो गये हैं और आप के नाम संकीर्त्तन के प्रभाव से जिनके पाप विनष्ट हो गये हैं, उनके हृत्कमल में आप का गृह हो ॥६३॥

तदनन्तर पुनः महर्षि वाल्मीकि ने कहा—हे राम ! तुम्हारे नाम की महिमा का वर्णन कौन किस प्रकार कह सकता है । हे राम ! मैं तो आप के नाम के प्रभाव से ही ब्रह्मर्षित्व को प्राप्त किया हूँ ॥६४॥ मैं पूर्व काल में किरातों में रह कर उन्हीं के साथ बड़ा हुआ । मेरा ब्राह्मण कुल में केवल जन्म ही हुआ था किन्तु मैं शूद्र का आचरण करता था ॥६५॥ मुझ अजितेन्द्रिय के शूद्रा स्त्री के गर्भ से बहुत से पुत्र उत्पन्न हुए । फिर चोरों के साथ रह कर मैं भी पक्का चोर हो गया ॥६६॥ मैं जीवों के काल के समान सर्वदा धनुष-बाण धारण किये रहता था । एक दिन

धनुर्बाणधरो नित्यं जीवानामन्तकोपमः ।
एकदा मुनयः सप्त दृष्टा महति कानने ॥६७॥
साक्षान्मया प्रकाशन्तो ज्वलनार्कसमप्रभाः ।
तानन्वधावं लोभेन तेषां सर्वपरिच्छदान् ॥६८॥
ग्रहीतुकामस्तत्राहं तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवम् ।
दृष्ट्वा मां मुनयोऽपृच्छन् किमायासि द्विजाधम ! ॥६९॥
अहं तानब्रवं किञ्चिदादातुं मुनिसत्तमाः ।
पुत्रदारादयः सन्ति बहवो मे बुभुक्षिताः ॥७०॥
तेषां संरक्षणार्थाय चरामि गिरिकानने ।
ततो मामूचुरव्यग्राः पृच्छ गत्वा कुटुम्बकम् ॥७१॥
यो यो मया प्रतिदिनं क्रियते पापसञ्चयः ।
यूयं तद्-भागिनः किं वा नेति वेति पृथक् पृथक् ॥७२॥
वयं स्थास्यामहे तावदागमिष्यसि निश्चयः ।
तथेत्युक्त्वा गृहं गत्वा मुनिभिर्यदुदीरतम् ॥७३॥

---

की बात है कि, मैंने उस घोर वन में जाते हुए सप्तर्षियों को देखा ॥६७॥ वे अग्नि तथा सूर्य के समान प्रकाशित होने के कारण साक्षात् उन्हीं के समान मालूम पड़ते थे। मैं भी उनके समस्त वस्त्रादि। सामग्री को छीनने के लोभ से बड़ी तेजी से उनके पीछे-पीछे दौड़ा ॥६८॥

और कहने लगा, अरे ठहरो ठहरो। तदनन्तर मुनियों ने मेरी ओर देख कर कहा—हे द्विजाधम ! तू क्यों आ रहा है ॥६९॥ तब मैंने कहा—हे मुनियो ! मेरे पुत्र तथा स्त्रियाँ बभुक्षित हैं।७०। उनके भरण-पोषण के लिए कुछ लेने की इच्छा से आ रहा हूँ। उन्हीं का पालन-पोषण करने के लिए मैं घोर पर्वतों और जङ्गलों में घूमता रहता हूँ तब उन्होंने निर्भयता पूर्वक मुझसे कहा—कि,तुम अपने कुटुम्बियों के पास जा कर पूछो कि,।७१। तुम्हारे लिए मैं जो प्रतिदिन पाप सञ्चय कर रहा हूँ, उसमें तुम लोग भागीदार होगे अथवा नहीं। ऐसा जा कर प्रत्येक से अलग-अलग पूछो ॥७२॥ इस बात का निश्चय कर लो कि जब तक तुम पूछ कर यहाँ नहीं आ जाते तब तक हम यहीं रहेंगे। तब मैंने 'बहुत अच्छा' कह

अपृच्छं पुत्रदारादींस्तैरुक्तोऽहं रघूत्तम !।
पापं तवैव तत्सर्वं वयं तु फलभागिनः ॥७४॥
तच्छ्रुत्वा जातनिर्वेदो विचार्य पुनरागमम् ।
मुनयो यत्र तिष्ठन्ति करुणापूर्णमानसाः ॥७५॥
मुनीनां दर्शनादेव शुद्धान्तःकरणोऽभवम् ।
धनुरादीन् परित्यज्य दण्डवत् पतितोऽस्म्यहम् ॥७६॥
रक्षध्वं मां मुनिश्रेष्ठा गच्छन्तं निरयार्णवम् ।
इत्यग्रे पतितं दृष्ट्वा मामूचुर्मुनिसत्तमाः ॥७७॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते सफलः सत्समागमः ।
उपदेक्ष्यामहे तुभ्यं किञ्चित्तेनैव मोक्ष्यसे ।
परस्परं समालोच्य दुर्वृत्तोऽयं द्विजाधमः ॥७८॥
उपेक्ष्य एव सद्वृत्तैस्तथापि शरणं गतः ।
रक्षणीयः प्रयत्नेन मोक्षमार्गोपदेशतः ॥७९॥

---

कर अपने घर आ कर 'जैसा मुनियों ने कहा था' वैसा ही अपने कुटुम्बियों एवं पुत्र तथा स्त्री से पूछा। तब उन लोगों ने कहा—पाप तो तुम्हारे ही हिस्से का है, हम तो केवल उसके फल स्वरूप धनादि के भोगने वाले हैं ॥७३-७४॥ स्त्री-पुत्रादि कुटुम्बियों के इस उत्तर को सुन मैं बड़ा दुःखी हुआ और विचार करता हुआ जहाँ परम दयालु महामुनीश्वर गण थे वहाँ आया ॥७५॥ मुनीश्वरों के दर्शन मात्र से मेरा अन्तःकरण शुद्ध हो गया था और अपने धनुष आदि आयुधों का परित्याग कर डंडे के समान उनके आगे पृथ्वी पर गिर गया ॥७६॥ और कहा—हे मुनियो ! नरक रूपी महासमुद्र में डूबते हुए मुझ अधम की रक्षा करो। तब इस प्रकार चिल्लाते हुए और पृथ्वी पर गिरा देख वे मुनिगण मुझसे कहने लगे ॥७७॥

'उठो, उठो, तुम्हारा कल्याण हो, सन्तों के संगति का तुम्हें फल मिल गया। अब हम तुम्हें थोड़ा उपदेश करेंगे। तू उसी से मुक्त हो जायेगा।' ऐसा कह वे आपस में विचार करने लगे कि यद्यपि यह द्विजाधम, दुराचारी होने से सर्वथा उपेक्षा के योग्य है। लेकिन शरण में आ जाने के कारण मोक्ष मार्ग का उपदेश कर इसकी यत्नपूर्वक रक्षा भी करनी चाहिए ॥७८-७९॥

इत्युक्त्वा राम ! ते नाम व्यत्यस्ताक्षरपूर्वकम् ।
एकाग्रमनसाऽत्रैव मरेति जप सर्वदा ॥८०॥
आगच्छामः पुनर्यावत्तावदुक्तं सदा जप ।
इत्युक्त्वा प्रययुः सर्वे मुनयो दिव्यदर्शनाः ॥८१॥
अहं यथोपदिष्टं तैस्तथाकरवमञ्जसा ।
जपन्नेकाग्रमनसा बाह्यं विस्मृतवानहम् ॥८२॥
एवं बहुतिथे काले गते निश्चलरूपिणः ।
सर्वसङ्गविहीनस्य वल्मीकोऽभून्ममोपरि ॥८३॥
ततो युगसहस्रान्ते ऋषयः पुनरागमन् ।
मामूचुर्निष्क्रमस्वेति तच्छ्रुत्वा तूर्णमुत्थितः ॥८४॥
वल्मीकान्निर्गतश्चाहं नीहारादिव भास्करः ।
मामप्याहुर्मुनिगणा वाल्मीकिस्त्वं मुनीश्वर ! ॥८५॥
वल्मीकात् सम्भवो यस्माद् द्वितीयं जन्म तेऽभवत् ।
इत्युक्त्वा ते ययुर्दिव्यगतिं रघुकुलोत्तम ! ॥८६॥

---

हे राम ! ऐसा कह कर उन मुनियों ने तुम्हारे नाम के अक्षरों का उलटा 'मरा' इन दो अक्षरों का मुझे उपदेश दिया और कहा कि, सर्वदा तुम इसका जप करो ॥८०॥ तुम तब तक इसी महामन्त्र का जप करो जब तक हम लोग वहाँ से लौट कर न आ जायें। ऐसा कह वे सभी दिव्य दर्शन मुनि वहाँ से चले गये ॥८१॥ तब उन मुनियों ने मुझे जैसा उपदेश किया था, मैंने ठीक वैसा ही जप किया। इस प्रकार निरन्तर एकाग्र मन से जप करते रहने के कारण मुझे बाहरी ज्ञान नहीं रहा ॥८२॥ इस तरह बहुत समय तक निश्चलता पूर्वक रहने से मुझ सर्वाङ्ग विहीन के ऊपर वल्मीक मिट्टी का ढेर लग गया ॥८३॥ तदनन्तर एक हजार युग बीत जाने पर वे मुनिगण पुनः लौट कर आये और मुझसे कहने लगे—'तुम निकल जाओ' इस बात को सुनते ही मैं तुरन्त उठ खड़ा हो गया ॥८४॥ जिस प्रकार कुहरे को चीर कर सूर्य निकलता है; उसी प्रकार मैं भी उस वल्मीक के ढेर से निकल आया। तब मुनिगणों ने मुझसे कहा—हे मुनीश्वर ! तुम वाल्मीकि हो ॥८५॥ अतः तुम्हारा यह दूसरा जन्म मिट्टी के ढेर से हुआ है इसलिए तुम वाल्मीकि हो। हे रघूत्तम ! ऐसा कह कर वे ऋषिगण दिव्यगति से चले गये ॥८६॥

अहं ते राम ! नाम्नश्च प्रभावादीदृशोऽभवम् ।
अद्य साक्षात् प्रपश्यामि ससीतं लक्ष्मणेन च ॥८७॥
रामं राजीवपत्राक्षं त्वां मुक्तो नात्र संशयः ।
आगच्छ राम ! भद्रं ते स्थलं वै दर्शयाम्यहम् ॥८८॥
एवमुक्त्वा मुनिः श्रीमाँल्लक्ष्मणेन समन्वितः ।
शिष्यैः परिवृतो गत्वा मध्ये पर्वतगङ्गयोः ॥८९॥
तत्र शालां सुविस्तीर्णां कारयामास वासभूः ।
प्राक् पश्चिमं दक्षिणोदक् शोभनं मन्दिरद्वयम् ॥९०॥
जानक्या सहितो रामो लक्ष्मणेन समन्वितः ।
तत्र ते देवसदृशा ह्यवसन् भवनोत्तमे ॥९१॥
वाल्मीकिना तत्र सुपूजितोऽयं, रामः ससीतः सह लक्ष्मणेन ।
देवैर्मुनीन्द्रैः सहितो मुदास्ते, स्वर्गे यथा देवपतिः सशच्या ॥९२॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
अयोध्याकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥६॥

---

हे राम ! मैं आप के नाम के प्रभाव से ऐसा हो गया किन्तु आज तो सीता और लक्ष्मण के साथ मैं तुम्हारा साक्षात् दर्शन कर रहा हूँ ॥८७॥ निश्चय ही कमलनयन श्री राम के दर्शन से मैं मुक्त हो गया। राम! तुम्हारा कल्याण हो। आओ, मैं तुम्हें रहने के लिए स्थान दिखाता हूँ ॥८८॥ शिष्यगणों से घिरे हुए महर्षि वाल्मीकि इस प्रकार कह कर लक्ष्मण के साथ गङ्गा और पर्वत के बीच वाले स्थल में जाकर उनके रहने के योग्य एक विस्तीर्ण पर्णशाला बनवायी। एक पर्णशाला पूर्व से पश्चिम, तथा उत्तर से दक्षिण को फैली हुई थी। इस प्रकार दो सुन्दर घर बनवा दिये ॥८९-९०॥ उस उत्तम भवन में जानकी एवं लक्ष्मण के सहित श्रीराम देवताओं के समान निवास करने लगे ॥९१॥ वाल्मीकि के द्वारा इस प्रकार सम्मानित हो देवता एवं मुनियों सहित श्री राम, सीता एवं लक्ष्मण के साथ प्रसन्नता पूर्वक उस पर्णकुटी में इस प्रकार रहने लगे जैसे स्वर्ग में इन्द्राणी के साथ इन्द्र रहते हैं ॥९२॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या सहित अध्यात्म-रामायण के उमा-महेश्वर संवाद में अयोध्या काण्ड का षष्ठ सर्ग समाप्त ॥६॥

## ७. सप्तमः सर्गः

( सुमन्त्र का अयोध्या लौटना, राजा दशरथ का स्वर्गवास, भरतजी का ननिहाल से आना और पिता की अन्त्येष्टि करना )

श्रीमहादेव उवाच

सुमन्त्रोऽपि तदायोध्यां दिनान्ते प्रविवेश ह ।
वस्त्रेण मुखमाच्छाद्य वाष्पाकुलित - लोचनः ॥१॥

बहिरेव रथं स्थाप्य राजानं द्रष्टुमाययौ ।
जयशब्देन राजानं स्तुत्वा तं प्रणनाम ह ॥२॥

ततो राजा नमन्तं तं सुमन्त्रं विह्वलोऽब्रवीत् ।
सुमन्त्र ! रामः कुत्रास्ते सीतया लक्ष्मणेन च ॥३॥

कुत्र त्यक्तस्त्वया रामः किं मां पापिनमब्रवीत् ।
सीता वा लक्ष्मणो वाऽपि निर्दयं मां किमब्रवीत् ॥४॥

हा राम ! हा गुणनिधे ! हा सीते प्रियवादिनि ! ।
दुःखार्णवे निमग्नं मां म्रियमाणं न पश्यसि ॥५॥

---

श्री महादेव जी ने कहा—हे पार्वती ! इधर सुमन्त्र ने भी सायं काल के समय वस्त्र से अपना मुँह ढक कर रोते हुए अयोध्या में प्रवेश किये ॥१॥ उन्होंने रथ को बाहर खड़ा कर दिया। और राजा को देखने के लिए चले। सर्वप्रथम जय-जयकार शब्दों से राजा की स्तुति की फिर उन्हें प्रणाम किया ॥२॥ राजा ने नमस्कार करते हुए सुमन्त्र को देखकर दुःख से व्याकुल होकर कहा—हे सुमन्त्र ! सीता, लक्ष्मण से युक्त राम कहाँ हैं ॥३॥ तुम ने राम को कहाँ छोड़ा। उन्होंने मुझ पापी को क्या कहा है। इसी प्रकार सीता एवं लक्ष्मण ने भी मुझ निर्दयी को क्या कहा है ॥४॥ हा राम ! हा गुणनिधे ! हा प्रियवादिनी सीते ! मैं दुःखसागर में डूब कर मर रहा हूँ क्या तुम लोग नहीं देखते हो ॥५॥

विलप्यैवं चिरं राजा निमग्नो दुःखसागरे ।
एवं मन्त्री रुदन्तं तं प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥६॥
रामः सीता च सौमित्रिर्मया नीता रथेन ते ।
शृङ्गवेरपुराभ्याशे गङ्गाकूले व्यवस्थिताः ॥७॥
गुहेन किञ्चिदानीतं फलमूलादिकं च यत् ।
स्पृष्ट्वा हस्तेन सम्प्रीत्या नाग्रहीद् विससर्ज तत् ॥८॥
वटक्षीरः समानाय्य गुहेन रघुनन्दनः ।
जटामुकुटमाबद्ध्य मामाह नृपते स्वयम् ॥९॥
सुमन्त्र ! ब्रूहि राजानं शोकस्तेऽस्तु न मत्कृते ।
साकेतादधिकं सौख्यं विपिने नो भविष्यति ॥१०॥
मातुर्मे वन्दनं ब्रूहि शोकं त्यजतु मत्कृते ।
आश्वासयतु राजानं वृद्धं शोकपरिप्लुतम ॥११॥
सीता चाश्रुपरीताक्षी मामाह नृपसत्तम ! ।
दुःखगद्गदया वाचा रामं किञ्चिदवेक्षती ॥१२॥

---

इस प्रकार बहुत देर तक विलाप करते हुए राजा दुःख-सागर में डूब गये। महाराज को इस प्रकार रोते देख मन्त्री सुमन्त्र ने हाथ जोड़ कर कहा—॥६॥ महाराज ! मैं राम, सीता एवं लक्ष्मण को आप के रथ में बैठा कर यहाँ से ले गया। वे लोग शृंगवेरपुर के निकट गङ्गा के किनारे जाकर ठहर गये ॥७॥ निषादराज गुह के द्वारा लाये गये फल-मूलादिकों को उन्होंने ग्रहण किया। प्रीतिपूर्वक केवल हाथ से उसे स्पर्श कर वहीं छोड़ दिया ॥८॥ रघुनन्दन राम ने गुह द्वारा वट-क्षीर मँगवा कर जटाओं का मुकुट सिर पर बाँधा और मुझसे स्वयं बोले—॥९॥

हे सुमन्त्र ! महाराज से जाकर कहना कि वे हम लोगों के लिए सर्वथा शोक न करें। हमें वन में अयोध्या की अपेक्षा अधिक सुख प्राप्त होगा ॥१०॥ माता से मेरा प्रणाम कह कर कहना कि, वे मेरे लिए शोक का त्याग करें। विशेष कर शोकाकुल वयोवृद्ध राजा को तुम सान्त्वना देते रहना ॥११॥ फिर हे नृपसत्तम ! सीता ने आँसुओं में जल भर कर राम की ओर कुछ-कुछ देखती हुई गद्गद वाणी से मुझसे कहा ॥१२॥

साष्टाङ्गं प्रणिपातं मे ब्रूहि श्वश्र्वोः पदाम्बुजे ।
इति प्ररुदती सीता गता किञ्चिदवाङ्मुखी ॥१३॥

ततस्तेऽश्रुपरीताक्षा नावमारुरुहुस्तदा ।
यावद् गङ्गां समुत्तीर्य गतास्तावदहं स्थितः ॥१४॥

ततो दुःखेन महता पुनरेवाहमागतः ।
ततो रुदन्ती कौसल्या राजानमिदमब्रवीत् ॥१५॥

कैकेय्यै प्रियभार्यायै प्रसन्नो दत्तवान् वरम् ।
त्वं राज्यं देहि तस्यैव मत्पुत्रः किं विवासितः ॥१६॥

कृत्वा त्वमेव तत्सर्वमिदानीं किं नु रोदिषि ।
कौसल्यावचनं श्रुत्वा क्षते स्पृष्ट इवाग्निना ॥१७॥

पुनः शोकाश्रुपूर्णाक्षः कौसल्यामिदमब्रवीत् ।
दुःखेन म्रियमाणं मां किं पुनर्दुःखयस्यलम् ॥१८॥

---

हे सुमन्त्र ! दोनों सासुओं के चरण-कमलों में हमारा साष्टाङ्ग प्रणाम कहना। ऐसा कह कर सीता लज्जा से नीचे मुख कर सिर झुकाती हुई वहाँ से चली गईं ॥१३॥

तदनन्तर वे सभी नेत्रों में जल भर कर नाव पर सवार हो गये। वे जब तक गङ्गा पार कर उस पार पहुँचे तब तक मैं खड़ा हो कर उन्हें देखता रहा ॥१४॥ फिर वहाँ से चल कर मैं बड़े दुःख से अयोध्या आया हूँ। तथा रोती हुई कौसल्या ने राजा से कहा—॥१५॥ हे राजन् ! यदि अपनी प्रिय भार्या कैकेयी से प्रसन्न हो कर आप ने वरदान दिया तो भले ही उनके पुत्र भरत को आप राजगद्दी दे देते, किन्तु मेरे पुत्र को आप ने इस प्रकार देश-निकाला क्यों किया—॥१६॥

आप यह सारा उपद्रव कर अब क्यों रो रहे हैं ? कौसल्या की बात को सुन कर महाराज को ऐसी वेदना हुई मानो व्रण में आग लग गयी हो ॥१७॥ फिर आँखों में आँसू भर कर उन्होंने कहा—मैं स्वयं दुःख से मर रहा हूँ। इस प्रकार मरते हुए मुझे तुम क्यों दुःख दे रही हो ॥१८॥

इदानीमेव मे प्राणा उत्क्रमिष्यन्ति निश्चयः ।
शप्तोऽहं बाल्यभावेन केनचिन्मुनिना पुरा ॥१९॥
पुराहं यौवने दृप्तश्चापबाणधरो निशि ।
अचरं मृगयासक्तो नद्यास्तीरे महावने ॥२०॥
तत्रार्धरात्रसमये मुनिः कश्चित्तृषार्दितः ।
पिपासार्दितयोः पित्रोर्जलमानेतुमुद्यतः ।
अपूरयज्जले कुम्भं तदा शब्दोऽभवन् महान् ॥२१॥
गजः पिबति पानीयमिति मत्वा महानिशि ।
बाणं धनुषि सन्धाय शब्दवेधिनमक्षिपम् ॥२२॥
हा हतोऽस्मीति तत्राऽभूच्छब्दो मानुषसूचकः ।
कस्यापि न कृतो दोषो मया केन हतो विधे ! ॥२३॥
प्रतीक्षते मां माता च पिता च जलकाङ्क्षया ।
तच्छ्रुत्वा भयसन्त्रस्तस्ततोऽहं पौरुषं वचः ॥२४॥

---

मेरे प्राण तो अभी निश्चय ही चले जायेंगे। इसमें सन्देह नहीं। पूर्वकाल में मेरी मूर्खता के कारण किसी मुनि ने मुझे शाप दिया था, (वह कथा इस प्रकार है) ॥१९॥

पूर्व काल में एक बार जब मैं युवावस्था के मद से उन्मत्त था। रात्रि के समय हाथ में धनुष-बाण लेकर मृगया खेलने के लिए नदी के किनारे किसी बीहड़ वन में गया ॥२०॥ उस समय अर्धरात्रि में प्यासा कोई मुनि प्यासे माता-पिता को जल लाने के लिए नदी में अपना घड़ा डुबोया। जिससे महान् शब्द हुआ ॥२१॥ 'यह नदी में कोई हाथी जल पी रहा है' ऐसा सोच कर मैंने उस अर्ध रात्रि में धनुष पर शब्द-वेधी बाण चढ़ा कर गज को मारने के लिए छोड़ा ॥२२॥

'बाण के लगते ही हाय ! हाय ! मैं मारा गया ?' इस प्रकार का मनुष्य की सूचना देने वाला कोई शब्द हुआ। 'हाय विधाता ! मैंने तो किसी का कोई अपराध भी नहीं किया। फिर अकारण मुझे किसी ने क्यों मारा ? ॥२३॥ हाय ! मेरे वृद्ध माता-पिता जल के लिए मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे।' इस प्रकार किसी पुरुष-द्वारा कहे गये वचन को सुन कर मैं

शनैर्गत्वाऽथ तत्पार्श्वं स्वामिन्! दशरथोऽस्म्यहम् ।
अजानता मया विद्धस्त्रातुमर्हसि मां मुने ! ॥२५॥
इत्युक्त्वा पादयोस्तस्य पतितो गद्गदाक्षरः ।
तदा मामाह स मुनिर्मा भैषीर्नृपसत्तम ! ॥२६॥
ब्रह्महत्या स्पृशेन्न त्वां वैश्योऽहं तपसि स्थितः ।
पितरौ मां प्रतीक्षेते क्षुत्तृड्भ्यां परिपीडितौ ॥२७॥
तयोस्त्वमुदकं देहि शीघ्रमेवाविचारयन् ।
न चेत्त्वां भस्मसात् कुर्यात् पिता मे यदि कुप्यति ॥२८॥
जलं दत्त्वा तु तौ नत्वा कृतं सर्वं निवेदय ।
शल्यमुद्धर मे देहात् प्राणांस्त्यक्ष्यामि पीडितः ॥२९॥
इत्युक्तो मुनिना शीघ्रं बाणमुत्पाटय देहतः ।
सजलं कलशं धृत्वा गतोऽहं यत्र दम्पती ॥३०॥

---

भय से सन्न हो गया ॥२४॥ और धीरे-धीरे उस पुरुष के पास जाकर कहा—स्वामिन् ! मैं दशरथ हूँ। हे मुने ! मैंने अन-जाने यह बाण छोड़ा है, जिससे आप मारे गये । आप मेरी रक्षा कीजिए ॥२५॥

ऐसा कह कर मैं गद्-गद कण्ठ से उसके चरणों में गिर गया। तब मुनीश्वर ने मुझसे कहा—हे नृपश्रेष्ठ ! डरो मत ॥२६॥ हे राजन् ! तुम्हें ब्रह्महत्या का पाप नहीं लगेगा। मैं एक वैश्य हूँ, जो तपस्या में लगा हुआ हूँ। मेरे माता-पिता भूख-प्यास से व्याकुल हो मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे ॥२७॥ इसलिए बिना कुछ सोचे-विचारे जल ले जा कर उन्हें दो। यदि ऐसा नहीं करोगे तो मेरे पिता क्रुद्ध हो कर तुम्हें भस्म कर सकते हैं ॥२८॥ उन्हें जल देकर और नमस्कार कर तुम अपना किया सारा वृत्तान्त सुना देना। इस समय शीघ्र ही तुम मेरे शरीर में चुभे हुए अपने बाणों को निकाल दो, मुझे बहुत पीड़ा हो रही है। अतः मैं अपना प्राण त्याग करूँगा ॥२९॥ मुनि के ऐसा कहने पर मैंने शीघ्र ही उनके शरीर से बाण निकाल दिया। और जल का घड़ा लेकर जहाँ उनके माता-पिता थे वहाँ गया ॥३०॥

अतिवृद्धावन्धदृशौ क्षुत्पिपासार्दितौ निशि ।
नायाति सलिलं गृह्य पुत्रः किं वाऽत्र कारणम् ॥३१॥
अनन्यगतिकौ वृद्धौ शोच्यौ तृट्परिपीडितौ ।
आवामुपेक्षते किं वा भक्तिमानावयोः सुतः ॥३२॥
इति चिन्ताव्याकुलौ तौ मत्पादन्यासजं ध्वनिम् ।
श्रुत्वा प्राह पिता पुत्रं ! किं विलम्बः कृतस्त्वया ॥३३॥
देह्यावयोः सुपानीयं पिब त्वमपि पुत्रक ! ।
इत्येवं लपतोर्भीत्या सकाशमगमं शनैः ॥३४॥
पादयोः प्रणिपत्याहमब्रवं विनयान्वितः ।
नाहं पुत्रस्त्वयोध्याया राजा दशरथोऽस्म्यहम् ॥३५॥
पापोऽहं मृगयासक्तो रात्रौ मृगविहिंसकः ।
जलावताराद् दूरेऽहं स्थित्वा जलगतं ध्वनिम् ॥३६॥

---

उस समय वे दम्पती चिन्ता में इस प्रकार व्याकुल हो रहे थे। हम लोग अत्यन्त वृद्ध एवं आँखों से अन्धे हैं, इस रात्रि में भूख और प्यास से तड़प रहे हैं। मेरा पुत्र अभी तक जल लेकर नहीं आया, इसका क्या कारण है? ॥३१॥ हाय! हम लोगों का पुत्र के अतिरिक्त और कोई सहारा नहीं है, हम वृद्ध हैं, शोचनीय स्थिति है; भूख और प्यास से व्याकुल हैं। पितृ-भक्त होने पर भी हमारा लड़का इस समय हम लोगों की उपेक्षा क्यों कर रहा है? ॥३२॥

इस प्रकार की चिन्ता में जब वे दम्पती व्याकुल हो रहे थे तभी मेरे पैरों की आहट सुन कर पिता ने पूछा—हे पुत्र! तुमने इतनी देर क्यों की? ॥३३॥ प्रिय पुत्र! तुम हम दोनों को शीघ्र ही पवित्र जल दो और स्वयं भी जल पीओ। जब वे इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय मैं भय से सन्त्रस्त हो कर धीरे-धीरे उनके पास गया ॥३४॥ और उनके चरणों में अपना प्रणाम कर विनय से कहा—मैं आपका पुत्र नहीं हूँ। किन्तु अयोध्या-नरेश दशरथ हूँ ॥३५॥

पापात्मा मैं मृगया में आसक्ति के कारण रात्रि में पशुओं का वध करता था। मैं जब जल के किनारे से दूर था, उसी समय मुझे जल में कुछ शब्द सुनाई पड़ा। उस शब्द को सुन कर मैंने शब्द-वेधी एक

श्रुत्वाऽहं शब्दवेधित्वादेकं बाणमथात्यजम् ।
हतोऽस्मीति ध्वनिं श्रुत्वा भयात्तत्राहमागतः ॥३७॥

जटा विकीर्य पतितं दृष्ट्वाऽहं मुनिदारकम् ।
भीतो गृहीत्वा तत्पादौ रक्ष रक्षेति चाऽब्रवम् ॥३८॥

मा भैषीरिति मां प्राह ब्रह्महत्याभयं न ते ।
मत्पित्रोः सलिलं दत्त्वा नत्वा प्रार्थय जीवितम् ॥३९॥

इत्युक्तो मुनिना तेन ह्यागतो मुनिहिंसकः ।
रक्षेतां मां दयायुक्तौ युवां हि शरणागतम् ॥४०॥

इति श्रुत्वा तु दुःखार्तौ विलप्य बहु शोच्य तम् ।
पतितौ नौ सुतो यत्र नय तत्राविलम्बयन् ॥४१॥

ततो नीतौ सुतो यत्र मया तौ वृद्धदम्पती ।
स्पृष्ट्वा सुतं तौ हस्ताभ्यां बहुशोऽथ विलेपतुः ॥४२॥

---

बाण छोड़ा । तदनन्तर 'हाय मैं मारा गया !' इस शब्द को सुन कर मैं भय से डरता हुआ वहाँ गया ॥३६-३७॥ जाते ही मैंने देखा कि एक मुनिकुमार जटा फैलाये हुए वहाँ आहत पड़ा है, फिर भय से मैंने उनके चरण पकड़ लिये और 'रक्षा करो, रक्षा करो' ऐसा कहने लगा ॥३८॥

तब उन्होंने मुझसे कहा—तुम डरो मत, ब्रह्महत्या का पाप तुम्हें नहीं लगेगा। तुम शीघ्र ही मेरे माता-पिता के पासजाकर उन्हें जल पिलाओ। और अपने जीवनदान की उनसे प्रार्थना करो ॥३९॥ मुनिकुमार के ऐसा कहने पर यह मुनिहिंसक आप के पास आया है। मैं आप दोनों के शरण में आया हूँ। अतः मुझ शरणागत की रक्षा कीजिए ॥४०॥ मेरी इस बात को सुन कर वे दम्पती अत्यन्त दुःखी हुए और विलाप कर शोक करते हुए पृथ्वी पर गिर पड़े। फिर थोड़ी देर के बाद उन्होंने मुझसे कहा—मेरा लड़का जहाँ है वहाँ मुझे शीघ्र ही ले चलो ॥४१॥ मैंने उन दोनों वृद्ध दम्पतियों को वहाँ पहुँचाया, जहाँ उनका लड़का पड़ा था। वे अपने हाथों से उस लड़के का स्पर्श कर विलाप करने

हाहेति क्रन्दमानौ तौ पुत्रपुत्रेत्यवोचताम् ।
जलं देहीति पुत्रेति किमर्थं न ददास्यलम् ॥४३॥

ततो मामूचतुः शीघ्रं चितां रचय भूपते ! ।
मया तदैव रचिता चितिस्तत्र निवेशिताः ।
त्रयस्तत्राऽग्निरुत्सृष्टो दग्धास्ते त्रिदिवं ययुः ॥४४॥

तत्र वृद्धः पिता प्राह त्वमप्येवं भविष्यसि ।
पुत्रशोकेन मरणं प्राप्स्यसे वचनान्मम ॥४५॥

स इदानीं मम प्राप्तः शापकालोऽनिवारितः ।
इत्युक्त्वा विललापाथ राजा शोकसमाकुलः ॥४६॥

हा राम पुत्र ! हा सीते ! हा लक्ष्मण गुणाकर ! ।
त्वद्- वियोगादहं प्राप्तो मृत्युं कैकेयिसम्भवम् ॥४७॥

वदन्नेवं दशरथः प्राणांस्त्यक्त्वा दिवं गतः ।
कौसल्या च सुमित्रा च तथाऽन्या राजयोषितः ॥४८॥

---

लगे ॥४२॥ वे हा पुत्र ! हा पुत्र ! कह कर बारम्बार विलाप करते हुए कह रहे थे कि पुत्र ! जल दो। आज हमें जल क्यों नहीं देते ॥४३॥

तदनन्तर उन्होंने मुझसे कहा—हे राजन् ! शीघ्र ही चिता तैयार करो। इस बात को सुन कर मैंने शीघ्र ही चिता तैयार कर दी। उन तीनों को चिता पर बैठा दिया। और उसमें आग लगा दी। इस प्रकार वे सभी स्वर्ग चले गये ॥४४॥ मरते समय उस वृद्ध पिता ने मुझसे कहा—राजन् ! मेरे शाप से तुम भी मेरी तरह पुत्र-शोक में ही मरोगे ॥४५॥ कौसल्ये ! वही अनिवार्य शाप-काल मुझे प्राप्त हो गया है। ऐसा कह राजा दशरथ शोक से सन्तप्त हो विलाप करने लगे ॥४६॥

राजा ने कहा—हा पुत्र राम ! हा सीते ! हा गुण-समुद्र लक्ष्मण ! तुम्हारे वियोग के कारण कैकेयी के द्वारा उपस्थित की गयी मृत्यु को मैं प्राप्त हो रहा हूँ ॥४७॥ इस प्रकार का विलाप करते हुए महाराज दशरथ प्राण त्याग कर स्वर्ग चले गये। इधर कौसल्या, सुमित्रा तथा

चुक्रुशुश्च विलेपुश्च उरस्ताडनपूर्वकम् ।
वसिष्ठः प्रययौ तत्र प्रातर्मन्त्रिभिरावृतः ॥४९॥
तैलद्रोण्यां दशरथं क्षिप्त्वा दूतानथाब्रवीत् ।
गच्छत त्वरितं साश्वा युधाजिन्नगरं प्रति ॥५०॥
तत्रास्ते भरतः श्रीमाञ्छत्रुघ्नसहितः प्रभुः ।
उच्यतां भरतः शीघ्रमागच्छेति ममाज्ञया ॥५१॥
अयोध्यां प्रति राजानं कैकेयीं चापि पश्यतु ।
इत्युक्तास्त्वरितं दूता गत्वा भरतमातुलम् ॥५२॥
युधाजितं प्रणम्योचुर्भरतं सानुजं प्रति ।
वसिष्ठस्त्वब्रवीद् राजन् ! भरतः सानुजः प्रभुः ॥५३॥
शीघ्रमागच्छतु पुरीमयोध्यामविचारयन् ।
इत्याज्ञप्तोऽथ भरतस्त्वरितं भयविह्वलः ॥५४॥
आययौ गुरुणाऽऽदिष्टः सह दूतैस्तु सानुजः ।
राज्ञो वा राघवस्यापि दुःखं किञ्चिदुपस्थितम् ॥ ५५॥

---

अन्यान्य रानियाँ ॥४८। छाती पीट-पीट कर विलाप करने लगीं। प्रातः-काल होने पर वसिष्ठ जी मन्त्रियों के सहित वहाँ आये ॥४९॥ उन्होंने तैल पूर्ण नौका में महाराज दशरथ के शव को रखवा कर दूतों से कहा—हे दूतो! तुम लोग घोड़े पर सवार होकर युधाजित् के नगर को जाओ ॥५०॥ वहाँ पर शत्रुघ्न के सहित श्रीमान् भरत विराजमान हैं। तुम लोग वहाँ जाकर मेरी आज्ञा से श्रीमान् भरत से इसप्रकार कहना—॥५१॥ कि वे शीघ्र ही अयोध्यापुरी में आकर महाराज दशरथ एवं कैकेयी का दर्शन करें। वसिष्ठ जी की इसप्रकार आज्ञा पाकर वे दूत शीघ्र ही कैकय देश को जाकर ॥५२॥

भरत के मामा युधाजित् एवं शत्रुघ्न सहित भरत को प्रणाम कर कहा—राजन्! वसिष्ठ जी की ऐसी आज्ञा है कि भरत छोटे भाई शत्रुघ्न सहित ॥५३॥ बिना कुछ आगा-पीछे किये अयोध्या चले आवें। वसिष्ठ जी की इस आज्ञा को सुन कर भरत जी भय से व्याकुल हो ॥५४॥ 'अवश्य ही राम अथवा महाराज पर कोई विपत्ति आई हुई है' ऐसा सोच कर दूतों के साथ अयोध्या चल पड़े ॥५५॥ मन ही मन में ऐसी

इति चिन्तापरो मार्गे चिन्तयन्नगरं ययौ ।
नगरं भ्रष्टलक्ष्मीकं जनसम्बाधवर्जितम् ॥५६॥
उत्सवैश्च परित्यक्तं दृष्ट्वा चिन्तापरोऽभवत् ।
प्रविश्य राजभवनं राजलक्ष्मीविवर्जितम् ॥५७॥
अपश्यत् कैकेयीं तत्र एकामेवासने स्थिताम् ।
ननाम शिरसा पादौ मातुर्भक्तिसमन्वितः ॥५८॥
आगतं भरतं दृष्ट्वा कैकेयी प्रेमसम्भ्रात् ।
उत्थायालिङ्ग्य रभसा स्वाङ्कमारोप्य संस्थिता ॥५९॥
मूर्ध्न्यवघ्राय पप्रच्छ कुशलं स्वकुलस्य सा ।
पिता मे कुशली भ्राता माता च शुभलक्षणा ॥६०॥
दिष्ट्या त्वमद्य कुशली मया दृष्टोऽसि पुत्रक ! ।
इति पृष्टः स भरतो मात्रा चिन्ताकुलेन्द्रियः ॥६१॥
दूयमानेन मनसा मातरं समपृच्छत ।
मातः पिता मे कुत्रास्ते एका त्वमिह संस्थिता ॥६२॥

---

चिन्ता करते हुए जब अयोध्या आये। उन्होंने देखा कि सारा नगर श्री-हीन, जनसमूह रहित एवं उत्सव से वर्जित हो रहा है। इसप्रकार नगर की अवस्था देख भरत जी और चिन्ता मग्न हो गये, राजभवन में प्रवेश करते ही देखा कि सारा राजभवन श्री से विहीन है ॥५६-५७॥ वहाँ एक मात्र कैकेयी अकेले आसन पर बैठी हुई है, भरत ने जाकर भक्ति-पूर्वक माता के चरणो में शिर नवाया ॥५८॥

कैकेयी भरत को आये देख प्रेमवश उठी और शीघ्रता से गले लगा कर अपने गोद में बैठा लिया ॥५९॥ फिर भरत का सिर सूंघ कर अपने कुल का कुशल-मङ्गल पूछने लगी। उसने कहा—मेरे भाई, पिता एवं शुभलक्षणा माता का कुशल तो है ?। ६०॥

हे पुत्र ! मैं बहुत दिनों के अनन्तर आज तुम्हें कुशलपूर्वक देख रही हूँ। माता के द्वारा इसप्रकार पूछे जाने पर चिन्ता से भरत की इन्द्रियाँ व्याकुल हो गयीं ॥६१॥ उन्होंने मन ही मन दुःखी होकर माता से पूछा—मातः ! पिताजी कहाँ हैं ? तुम अकेली आज यहाँ क्यों बैठी हो ? ॥६२॥

त्वया विना न मे तातः कदाचिद्रहसि स्थितः ।
इदानीं दृश्यते नैव कुत्र तिष्ठति मे वद ? ॥६३॥
अदृष्ट्वा पितरं मेऽद्य भयं दुःखं च जायते ।
अथाह कैकेयी पुत्रं किं दुःखेन तवानघ ! ॥६४॥
या गतिर्धर्मशीलानामश्वमेधादि-याजिनाम् ।
तां गतिं गतवानद्य पिता ते पितृवत्सल ! ॥६५॥
तच्छ्रुत्वा निपपातोर्व्यां भरतः शोकविह्वलः ।
हा तात! क्व गतोऽसि त्वं त्यक्त्वा मां वृजिनार्णवे ॥६६॥
असमर्प्यैव रामाय राज्ञे मां क्व गतोऽसि भोः ।
इति विलपितं पुत्रं पतितं मुक्तमूर्धजम् ॥६७॥
उत्थाप्यामृज्य नयने कैकेयी पुत्रमब्रवीत् ।
समाश्वसिहि भद्रं ते सर्वं सम्पादितं मया ॥६८॥

---

माँ ! पिताजी तो कभी तुम्हारे बिना अकेले नहीं रहते थे। इस समय वे यहाँ दिखाई नहीं देते । बताओ वे कहाँ हैं ? ॥ ६३॥

भरत ने कहा—माँ ! पिता जी को न देखने के कारण मुझे बड़ा दुःख और भय हो रहा है। तब कैकेयी ने कहा—हे पुत्र ! तुम दुःखी क्यों हो रहे हो ? ॥६४॥ हे पितृवत्सल भरत ! धर्मशीलों की जो गति होती है अथवा अश्वमेधादि यज्ञ करने वालों की जो गति होती है । तुम्हारे पिता उस गति को आज प्राप्त हो गये हैं ॥६५॥

भरत इस बात को सुनते ही शोक-विह्वल हो पृथ्वी पर गिर गये और बोले—हे तात ! मुझे इस शोक-समुद्र में छोड़कर कहाँ चले गये ॥६६॥ हा पिता ! मुझे राम को बिना सौंपे आप कहाँ चले गये । इस प्रकार विलाप करते हुए और पृथ्वी पर बिखरे हुए केशों से पड़े हुए भरत जी को देख कर--॥६७॥ ककेयी ने उन्हें उठा कर आँसू पोंछते हुए कहा--बेटा ! धैर्य धारण करो। तुम्हारा कल्याण हो। मैंने तुम्हारा सब काम ठीक कर लिया है ॥६८॥

तामाह भरतस्तातो म्रियमाणः किमब्रवीत् ।
तमाह कैकेयी देवी भरतं भयवर्जिता ॥६९॥

हा राम ! राम ! सीतेति लक्ष्मणेति पुनः पुनः ।
विलपन्नेव सुचिरं देहं त्यक्त्वा दिवं ययौ ॥७०॥

तामाह भरतो हेऽम्ब ! रामः सन्निहितो न किम् ।
तदानीं लक्ष्मणो वाऽपि सीता वा कुत्र ते गताः ॥७१॥

कैकेय्युवाच

रामस्य यौवराज्यार्थं पिता ते सम्भ्रमः कृतः ।
तव राज्यप्रदानाय तदाऽहं विघ्नमाचरम् ॥७२॥
राज्ञा दत्तं हि मे पूर्वं वरदेन वरद्वयम् ।
याचितं तदिदानीं मे तयोरेकेन तेऽखिलम् ॥७३॥
राज्यं रामस्य चैकेन वनवासो मुनिव्रतम् ।
ततः सत्यपरो राजा राज्यं दत्वा तदैव हि ॥७४॥

---

तब भरत ने कैकेयी से कहा—मरते समय महाराज ने मुझे क्या कहा था ? तब देवी कैकेयी निर्भय होकर भरत से कहने लगी ॥६९॥ वे हा राम ! हा राम ! हा सीते ! हा लक्ष्मण ! इस प्रकार शोक से विलाप करते हुए स्वर्गलोक चले गये ॥७०॥ तदनन्तर भरत ने पूछा—माँ, क्या उस समय उनके निकट श्रीराम नहीं थे ? लक्ष्मण भी नहीं थे ? सीता भी वहीं थीं ? ये तीनों कहाँ चले गये थे ? ॥७१॥

तब कैकेयी ने कहा—पुत्र ! राम को युवराज पद पर अभिषिक्त करने के लिए महाराज ने सारी तैयारी की थी। किन्तु मैंने तुम्हें राज्य दिलाने के लिए उसमें विघ्न उपस्थित कर दिया ॥७२॥ वर देने वाले महाराज ने पूर्वकाल में मुझे दो वर देने को कहा था। मैंने उन वरों के लिए उपयुक्त काल देख एक वर से तुम्हारे लिए सम्पूर्ण राज्य माँग लिया ॥७३॥ और दूसरे वर से राम को मुनि-व्रत धारण कर वनवास माँग लिया। फिर सत्यप्रतिज्ञ महाराज ने तुम्हें उसी समय राज्य देकर ॥७४॥

रामं सम्प्रेषयामास वनमेव पिता तव ।
सीताप्यनुगता रामं पातिव्रत्यमुपाश्रिता ॥७५॥
सौभ्रात्रं दर्शयन् राममनुयातोऽपि लक्ष्मणः ।
वनं गतेषु सर्वेषु राजा तानेव चिन्तयन् ॥७६॥
प्रलपन् रामरामेति ममार नृपसत्तमः ।
इति मातुर्वचः श्रुत्वा वज्राहत इव द्रुमः ॥७७॥
पपात भूमौ निःसंज्ञस्तं दृष्ट्वा दुःखिता तदा ।
कैकेयी पुनरप्याह वत्स ! शोकेन किं तव ॥७८॥
राज्ये महति सम्प्राप्ते दुःखस्यावसरः कुतः ।
इति ब्रुवन्तीमालोक्य मातरं प्रदहन्निव ॥७९॥
असम्भाष्यासि पापे मे घोरे त्वं भर्तृघातिनी ।
पापे त्वद्गर्भजातोऽहं पापवानस्मि साम्प्रतम् ।
अहमग्निं प्रवेक्ष्यामि विषं वा भक्षयाम्यहम् ॥८०॥

---

राम को वन में भेज दिया। और सीता भी पातिव्रत्य धर्म का पालन करती हुई उनके साथ वन चली गयीं ॥७५॥ लक्ष्मण भी भ्रातृ-प्रेम प्रकट करते हुए राम के पीछे-पीछे चले गये। इस प्रकार इन लोगों के वन चले जाने पर राजा उन्हीं का स्मरण करते हुए ॥७६॥ और उन्हीं के शोक में हा राम! हा राम! ऐसा विलाप करते हुए अपना शरीर त्याग दिये गये। माता की इस बात को सुन श्रीभरत जी वज्र से आहत वृक्ष के समान अचेत हो पृथ्वी पर गिर गये ॥७७॥

भरत की इस अवस्था को देख कैकेयी कुछ दुःखी-सी होकर कहने लगी—वत्स! तुम्हारे शोक का क्या कारण है ॥७८॥ इतना बड़ा महान् राज्य तुम्हें प्राप्त हुआ है। फिर दुःखी होने का कारण क्या है? इस प्रकार कहती हुई माता को देख कर भरत जी क्रोध से भस्म करने के समान कहने लगे ॥७९॥

हे घोरे! तू पति का प्राण लेने वाली है, अतः मैं तुझ पापिनी से बात नहीं करना चाहता। अरी पापे! तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न होने के कारण मैं भी प्रत्यक्ष पापी हो गया। अरी पापे! मैं अग्नि में प्रवेश करूँगा अथवा विष भक्षण करूँगा ॥८०॥ अथवा तलवार से स्वयं अपना सिर

खड्गेन वाऽथ चात्मानं हत्वा यामि यमक्षयम् ।
भर्तृघातिनि ! दुष्टे ! त्वं कुम्भीपाकं गमिष्यसि ॥८१॥
इति निर्भर्त्स्य कैकेयीं कौसल्याभवनं ययौ ।
साऽपि तं भरतं दृष्ट्वा मुक्तकण्ठा रुरोद ह ॥८२॥
पादयोः पतितस्तस्या भरतोऽपि तदाऽरुदत् ।
आलिङ्ग्य भरतं साध्वी राममाता यशस्विनी ।
कृशार्तदीनवदना साश्रुनेत्रेदमब्रवीत् ॥८३॥
पुत्र ! त्वयि गते दूरमेवं सर्वमभूदिदम् ।
उक्तं मात्रा श्रुतं सर्वं त्वया ते मातृचेष्टितम् ॥८४॥
पुत्रः सभार्यो वनमेव यातः, सलक्ष्मणो मे रघुरामचन्द्रः ।
चीराम्बरो बद्धजटाकलापः, सन्त्यज्य मां दुःखसमुद्रमग्नाम् ॥८५॥
हा राम ! हा मे रघुवंशनाथ ! जातोऽसि मे त्वं परतः परात्मा ।
तथाऽपि दुःखं न जहाति मां वै, गरीयबलीयान्निति मे मनीषा ॥८६॥

---

काट कर मर जाऊँगा। अरी दुष्टे! अरी पतिघातिनी! तू कुम्भी पाक नरक में जायेगी ॥८१॥

कैकेयी को इस प्रकार डरा-धमका कर श्रीभरत जी कौसल्या के घर चले गये। कौसल्या भी भरत को देख कर फूट-फूट कर रोने लगीं ॥८२॥ भरत भी उनके चरणों में गिर कर रोने लगे। तब भरत को गले लगा कर कृश वर्ण वाली अत्यन्त दीन किन्तु यशस्विनी राम-माता कौसल्या आँखों में आँसू भर भर बोलीं—॥८३॥

हे पुत्र! तुम्हारे दूर चले जाने पर ये जितने अनर्थ हुए हैं। उन्हें तुमने अपनी माता के मुख से सुन लिया होगा। इस विषय में अपनी माता की करतूत भी समझ गये होगे ॥८४॥ मेरे पुत्र राम-सीता और जानकी सहित, वल्कल धारण कर, सिर पर जटा-जूट बाँध कर दुःख-समुद्र में डूबती हुई मुझे अकेली छोड़ कर वन को चले गये ॥८५॥ हाय राम! हा मेरे रघुवशनाथ! तुम परमात्मा होकर भी मेरे गर्भ से उत्पन्न हुए। किन्तु तिस पर भी दुःख ने हमारा साथ नहीं छोड़ा। इसलिए मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि भाग्य बलवान् है ॥८६॥

स एवं भरतो वीक्ष्य विलपन्तीं भृशं शुचा ।
पादौ गृहीत्वा प्राहेदं शृणु मातर्वचो मम ॥८७॥
कैकेय्या यत्कृतं कर्म रामराज्याभिषेचने ।
अन्यद् वा यदि जानामि सा मया नोदिता यदि ॥८८॥
पापं मेऽस्तु तदा मातर्ब्रह्महत्याशतोद्भवम् ।
हत्वा वसिष्ठं खड्गेन अरुन्धत्या समन्वितम् ॥८९॥
भूयात् तत्पापमखिलं मम जानामि यद्यहम् ।
इत्येवं शपथं कृत्वा रुरोद भरतस्तदा ॥९०॥
कौसल्या तमथालिङ्ग्य पुत्र ! जानामि मा शुचः ।
एतस्मिन्नन्तरे श्रुत्वा भरतस्य समागमम् ॥९१॥
वसिष्ठो मन्त्रिभिः सार्धं प्रययौ राजमन्दिरम् ।
रुदन्तं भरतं दृष्ट्वा वसिष्ठः प्राह सादरम् ॥९२॥
वृद्धो राजा दशरथो ज्ञानी सत्यपराक्रमः ।
भुक्त्वा मर्त्यसुखं सर्वमिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः ॥९३॥

---

भरत शोक-सन्तप्त कौसल्या को इस प्रकार विलाप करती देख उनके चरण पकड़ कर कहने लगे—हे माता ! मेरी बात सुनो ॥८७॥ कैकेयी ने राम के इस राज्याभिषेक में जो-जो अनर्थ किया है, अथवा इसके अतिरिक्त भी जो कार्य उसने किया है, उसको यदि मैं जानता होऊँ अथवा उसमें मेरी सम्मति हो ॥८८॥ तो हे माता ! मुझे सैकड़ों ब्रह्महत्या का पाप लगे। अथवा अरुन्धती सहित वसिष्ठ को खड्ग से मारने का जितना पाप होता है वह पाप मुझे लगे। यदि मेरी इसमें सम्मति हो अथवा मैं इसे जानता होऊँ। इस प्रकार शपथ कर भरत जी रो पड़े ॥८९-९०॥

तब कौसल्या ने उन्हें हृदय से लगा कर कहा—बेटा ! मैं सब जानती हूँ। तुम इसके लिए शोक मत करो। इसी बीच भरत के आने का समाचार सुन कर ॥९१॥ वसिष्ठ जी ने मन्त्रियों के साथ राजभवन में प्रवेश किया। और रोते हुए भरत को देख आदर पूर्वक बोले—॥९२॥

महाराज दशरथ, वृद्ध, ज्ञानी एवं सत्य पराक्रमी थे। वे इस मृत्यु-लोक के समस्त सुखों का भोग करते हुए, विपुल दक्षिणावाले अश्वमेध आदि

अश्वमेधादिभिर्यज्ञैर्लब्ध्वा रामं सुतं हरिम् ।
अन्ते जगाम त्रिदिवं देवेन्द्रार्द्धासनं प्रभुः ॥९४॥
तं शोचसि वृथैव त्वमशोच्यं मोक्षभाजनम् ।
आत्मा नित्योऽव्ययः शुद्धो जन्म-नाशादिवर्जितः ॥९५॥
शरीरं जडमत्यर्थमपवित्रं विनश्वरम् ।
विचार्यमाणे शोकस्य नावकाशः कथञ्चन ॥९६॥
पिता वा तनयो वाऽपि यदि मृत्युवशं गतः ।
मूढास्तमनुशोचन्ति स्वात्मताडनपूर्वकम् ॥९७॥
निःसारे खलु संसारे वियोगो ज्ञानिनां यदा ।
भवेद् वैराग्यहेतुः स शान्तिसौख्यं तनोति च ॥९८॥
जन्मवान् यदि लोकेऽस्मिंस्तर्हि तं मृत्युरन्वगात् ।
तस्मादपरिहार्योऽयं मृत्युर्जन्मवतां सदा ॥९९॥

---

यज्ञों का अनुष्ठान कर साक्षात् विष्णु भगवान् को राम के रूप में प्राप्त कर अन्त में स्वर्ग चले गये। और वहाँ जाकर इन्द्र के आधे आसन के अधिकारी हो गये ॥९३-९४॥ वे अशोचनीय हैं और मोक्ष के पात्र हैं। हे भरत ! तुम उनके लिए व्यर्थ का शोक करते हो। यह आत्मा नित्य, अविकारी, शुद्ध तथा जन्म-नाशादि से रहित है ॥९५॥

यह शरीर जड़, अत्यन्त अपवित्र एवं नश्वर है। आत्मा एवं शरीर के विषय में इस प्रकार विचार करने पर शोक के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता ॥९६॥ चाहे पिता हो, चाहे पुत्र हो, इसके मर जाने पर मूर्ख जन ही छाती पीटकर रोते एवं शोक करते हैं ॥९७॥ इस असार संसार में यदि ज्ञानियों को किसी का वियोग होता है, तो वे उसे वैराग्य का कारण समझते हैं, तथा वह वैराग्य उन्हें शान्ति और सुख प्रदान करता है ॥९८॥

यदि इस मृत्युलोक में किसी ने जन्म लिया है, तो मृत्यु भी उसके साथ लगी हुई है। इसलिए जन्म लेने वालों की मृत्यु को भी कोई रोक नहीं सकता ॥९९॥ अपने कर्म के भोग के कारण प्राणियों के जन्म एवं मरण

स्वकर्मवशतः सर्वजन्तूनां प्रभवाप्ययौ ।
विजानन्नप्यविद्वान् यः कथं शोचति बान्धवान् ॥१००॥

ब्रह्माण्डकोटयो नष्टाः सृष्टयो बहुशो गताः ।
शुष्यन्ति सागराः सर्वे कैवास्था क्षणजीविते ॥१०१॥

चलपत्रान्त-लग्नाम्बु-बिन्दुवत् क्षणभङ्गुरम् ।
आयुस्त्यजत्यवेलायां कस्तत्र प्रत्ययस्तव ॥१०२॥

देही प्राक्तन-देहोत्थ-कर्मणा देहवान् पुनः ।
तद्-देहोत्थेन च पुनरेवं देहः सदात्मनः ॥१०३॥

यथा त्यजति वै जीर्णं वासो गृह्णाति नूतनम् ।
तथा जीर्णं परित्यज्य देही देहं पुनर्नवम् ॥१०४॥

भजत्येव सदा तत्र शोकस्यावसरः कुतः ।
आत्मा न म्रियते जातु जायते न च वर्धते ॥१०५॥

---

होते रहते हैं, इस बात को जानता हुआ मूर्ख ही अपने बन्धु-बान्धवों के मरने पर शोकाकुल होता है ॥१००॥ अब तक करोड़ों ब्रह्माण्ड नष्ट हो गये। इस ब्रह्माण्ड की अनेकों सृष्टियाँ भी बीत गयीं। सम्पूर्ण समुद्र भी एक दिन सूख जायेंगे, फिर इस क्षणिक जीवन का क्या भरोसा किया जाये ॥१०१॥ यह आयु वायु के झोंके से चंचल पीपल के पत्ते पर पड़े हुए जल-बिन्दु के समान क्षणभंगुर है। अतः असमय में ही वह पुरुष का त्याग कर सकती है, अतः उस आयु का तुम विश्वास क्यों करते हो ॥१०२॥

यह आत्मा अपने पूर्व देह के किये हुए कर्मों के अनुसार यह शरीर धारण किया। और इस शरीर के द्वारा किये गये कर्मों के अनुसार आगे भी शरीर धारण करेगा। इस प्रकार इस आत्मा को सदैव देह की प्राप्ति होती रहती है ॥१०३॥ जैसे मनुष्य अपने पुराने कपड़े को त्याग कर नवीन वस्त्र धारण करता है। इसी प्रकार यह आत्मा भी जीर्ण शरीर का त्याग कर नवीन शरीर धारण करता है ॥१०४॥ फिर इसमें शोक करने का कारण क्या है ? यह आत्मा न मरता है न जन्म लेता है, और न बढ़ता ही है, सर्वदा अविकारी है ॥१०५॥ यह आत्मा जन्मादि षड् विकारों से रहित

षड्भावरहितोऽनन्तः सत्यप्रज्ञानविग्रहः ।
आनन्दरूपो बुद्ध्यादिसाक्षी लयविवर्जितः ॥१०६॥
एक एव परो ह्यात्मा ह्यद्वितीयः समः स्थितः ।
इत्यात्मानं दृढं ज्ञात्वा त्यक्त्वा शोकं कुरु क्रियाम् ॥१०७॥
तैलद्रोण्याः पितुर्देहमुद्धृत्य सचिवैः सह ।
कृत्यं कुरु यथान्यायमस्माभिः कुलनन्दन ! ॥१०८॥
इति सम्बोधितः साक्षाद् गुरुणा भरतस्तदा ।
विसृज्याज्ञानजं शोकं चक्रे सविधिवत क्रियाम् ॥१०९॥
गुरुणोक्तप्रकारेण आहिताग्नेर्यथाविधि ।
संस्कृत्य स पितुर्देहं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥११०॥
एकादशेऽहनि प्राप्ते ब्राह्मणान् वेदपारगान् ।
भोजयामास विधिवच्छतशोऽथ सहस्रशः ॥१११॥
उद्दिश्य पितरं तत्र ब्राह्मणेभ्यो धनं बहु ।
ददौ गवां सहस्राणि ग्रामान् रत्नाम्बराणि च ॥११२॥

---

अनन्त सच्चित् आनन्दस्वरूप और बुद्धियादि का साक्षी है। इसका नाश कभी होता ही नहीं ॥१०६॥

वसिष्ठ जी ने कहा—हे भरत ! यह परमात्मा एक ही है, सभी प्राणियों में समान रूप से स्थित है। इस प्रकार आत्मा के स्वरूप को दृढ़ता से जान कर शोक का त्याग करो और पिता की और्ध्वदैहिक क्रिया करो ॥१०७॥ हे कुलनन्दन ! तुम तैल के नौका में रखे गये महाराज दशरथ के शरीर को निकाल कर मन्त्रियों एवं हम ऋषिगणों की सहायता से विधिपूर्वक अपने पिता की क्रिया करो ॥१०८॥ इस प्रकार गुरु वसिष्ठ के द्वारा समझाने पर भरत जी ने अज्ञान से उत्पन्न अपने समस्त शोक को दूर कर अपने पिता का अन्त्येष्टि संस्कार विधिपूर्वक सम्पन्न किया ॥१०९॥ उन्होंने गुरु की आज्ञा के अनुसार अग्निहोत्री के समान शास्त्रीय रीति से विधिपूर्वक पिता के देह का संस्कार किया ॥११०॥ फिर ग्यारहवें दिन सैकड़ों, हजारों वेद पारगामी ब्राह्मणों को विधि पूर्वक भोजन करवाया ॥१११॥ और पिता के निमित्त सैकड़ों गायें, सैकड़ों ग्राम एवं अनेक प्रकार के वस्त्र, रत्न तथा बहुत से धन का दान दिया ॥११२॥ फिर वे श्रीरामचन्द्रजी का

अवसत् स्वगृहे　　यत्र　　राममेवानुचिन्तयन् ।
वसिष्ठेन सह भ्रात्रा मन्त्रिभिः परिवारितः ॥११३॥
रामेऽरण्यं प्रयाते सह जनकसुता-लक्ष्मणाभ्यां सुघोरं
　　माता मे राक्षसीव प्रदहति हृदयं दर्शनादेव सद्यः ।
गच्छाम्यारण्यमद्य स्थिरमतिरखिलं दूरतोऽपास्य राज्यं
　　रामं सीतासमेतं स्मितरुचिरमुखं नित्यमेवानुसेवे ॥११४॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे
सप्तमः सर्गः ॥७॥

*

---

स्मरण करते हुए गुरु वसिष्ठ, भाई एवं मन्त्रियों के साथ घर पर निवास करने लगे ॥११३॥

घर में रहते हुए उन्होंने विचार किया कि श्रीरामजी, भाई लक्ष्मण एवं जनक-नन्दिनी जानकी के साथ घोर जंगल में निवास कर रहे हैं, इसमें निमित्त कारण हमारी माता है, जो देखने मात्र से राक्षसी के समान हमारे हृदय में दाह उत्पन्न करती है, अतः अब मैं निश्चय ही इस राज्य को छोड़कर वन को जाऊँगा। और वहाँ सीता सहित, मन्द मुसकान से सुशोभित मुख वाले श्रीराम की नित्य सेवा करूँगा ॥११४॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दीटीका सहित अध्यात्म-रामायण के उमा-महेश्वर संवाद में अयोध्याकाण्ड का सप्तम सर्ग समाप्त ॥ ७ ॥

*

## ८. अष्टमः सर्गः

( भरतजी का वन-प्रस्थान, मार्ग में गुह तथा भरद्वाज से भेंट एवं चित्रकूट-दर्शन )

श्रीमहादेव उवाच

वसिष्ठो मुनिभिः सार्धं मन्त्रिभिः परिवारितः ।
राज्ञः सभां देवसभा-सन्निभामविशद् विभुः ॥ १ ॥
तत्राऽऽसने समासीनश्चतुर्मुख इवाऽपरः ।
आनीय भरतं तत्र उपवेश्य सहानुजम् ॥ २ ॥
अब्रवीद् वचनं देशकालोचितमरिन्दमम् ।
वत्स ! राज्येऽभिषेक्ष्यामस्त्वामद्य पितृशासनात् ॥ ३ ॥
कैकेय्या याचितं राज्यं त्वदर्थं पुरुषर्षभ ! ।
सत्यसन्धो दशरथः प्रतिज्ञाय ददौ किल ॥ ४ ॥
अभिषेको भवत्वद्य मुनिभिर्मन्त्रपूर्वकम् ।
तच्छ्रुत्वा भरतोऽप्याह मम राज्येन किं मुने ! ॥ ५ ॥

---

श्री महादेवजी ने कहा – हे पार्वती ! भरत जी द्वारा पिता की क्रिया कर लेने के अनन्तर वसिष्ठजी मुनियों के साथ मन्त्रियों से घिरे हुए देव-सभा के सदृश राजसभा में गये ॥१॥ वहाँ पर दूसरे ब्रह्मा के समान अपने आसन पर बैठे हुए श्रीवसिष्ठजी ने शत्रुघ्न सहित भरत को बुलवा कर बैठाया ॥२॥ और शत्रु-विनाशक भरतजी से देश कालोचित वचन कहा– वत्स भरत ! आज हम तुम्हारे पिता के कथनानुसार राज्यपद पर तुम्हें अभिषिक्त करेंगे ॥३॥

हे पुरुष-श्रेष्ठ ! कैकेयी ने तुम्हारे लिए ही महाराज दशरथ से राज्य माँगा था। महाराज दशरथ सत्यपरायण थे, इसलिए प्रतिज्ञा करने के कारण उन्होंने राज्य दे दिया ॥४॥ अतः समस्त मुनिगण मन्त्रोच्चारण पूर्वक तुम्हारा अभिषेक करें। इस बात को सुनकर भरत जी ने कहा– हे महामुने ! मुझे राज्य से क्या लेना-देना है ॥ ५ ॥ इस राज्य के

रामो राजाधिराजश्च वयं तस्यैव किङ्कराः ।
श्वः प्रभाते गमिष्यामो राममानेतुमञ्जसा ॥ ६ ॥
अहं यूयं मातरश्च कैकेयीं राक्षसीं विना ।
हनिष्याम्यधुनैवाऽहं कैकेयीं मातृगन्धिनीम् ॥ ७ ॥
किन्तु मां नो रघुश्रेष्ठः स्त्रीहन्तारं सहिष्यते ।
तच्छ्वो भूते गमिष्यामि पादचारेण दण्डकान् ॥ ८ ॥
शत्रुघ्नसहितस्तूर्णं यूयमायात वा न वा ।
रामो यथा वने यातस्तथाऽहं वल्कलाम्बरः ॥ ९ ॥
फल-मूल-कृताहारः शत्रुघ्नसहितो मुने ! ।
भूमिशायी जटाधारी यावद्रामो निवर्तते ॥१०॥
इति निश्चित्य भरतस्तूष्णीमेवावतस्थिवान् ।
साधु साध्विति तं सर्वे प्रशशंसुर्मुदान्विताः ॥११॥
ततः प्रभाते भरतं गच्छन्तं सर्वसैनिकाः ।
अनुजग्मुः सुमन्त्रेण नोदिताः साऽश्वकुञ्जराः ॥१२॥

---

महाराजाधिराज श्रीराम ही हैं, हम तो उनके किङ्कर हैं। अतः उन्हें ले आने के लिए हम कल प्रातःकाल शीघ्र ही वन को जायेंगे ॥६॥

हम आप सब लोग, कैकयी को छोड़कर अन्य सभी मातायें वन को चलेंगे। मैं तो अभी नाम मात्र से माता होने वाली इस कैकेयी का बध कर देता ॥७॥ किन्तु सर्वश्रेष्ठ श्रीराम मुझ स्त्री-हत्यारे को क्षमा प्रदान न करेंगे। इसलिए मैं तो कल प्रातःकाल ही दण्डक वन को जाऊँगा ॥८॥ आप लोग चलें या न चलें। मैं तो शत्रुघ्न सहित अवश्य ही वन को जाऊँगा। हे मुने ! राम जिस प्रकार वन गये हैं और जब तक लौट कर आ नहीं जाते तब तक मैं भी शत्रुघ्न सहित चीर और जटा-जूट धारण कर फल-फूल का आहार करता हुआ पृथ्वी पर शयन करूँगा ॥९-१०॥ ऐसा निश्चय कर भरत जी चुप हो गये। सभी सभासद् प्रसन्न होकर साधुवाद देते हुए उनकी प्रशंसा करने लगे ॥११॥ इस प्रकार प्रातःकाल होने पर जब भरत जी वन चलने लगे, तो सुमन्त्र की आज्ञा से उनके पीछे हाथी एवं घोड़ों के सहित समस्त चतुरङ्गिणी सेना भी चल पड़ी ॥१२॥ कौसल्यादि

कौसल्याद्या राजदारा वसिष्ठप्रमुखा द्विजाः ।
छादयन्तो भुवं सर्वे पृष्ठतः पार्श्वतोऽग्रतः ॥१३॥
शृङ्गवेरपुरं गत्वा गङ्गाकूले समन्ततः ।
उवास महती सेना शत्रुघ्नपरिचोदिता ॥१४॥
आगतं भरतं श्रुत्वा गुहः शङ्कितमानसः ।
महत्या सेनया सार्धमागतो भरतः किल ॥१५॥
पापं कर्तुं न वा याति रामस्याविदितात्मनः ।
गत्वा तद्-हृदयं ज्ञेयं यदि शुद्धस्तरिष्यति ॥१६॥
गङ्गा नो चेत् समाकृष्य नावस्तिष्ठन्तु सायुधाः ।
ज्ञातयो मे समायत्ताः पश्यन्तः सर्वतो दिशम् ॥१७॥
इति सर्वान् समादिश्य गुहो भरतमागतः ।
उपायनानि संगृह्य विविधानि बहून्यपि ॥१८॥
प्रययौ ज्ञातिभिः सार्धं बहुभिर्विविधायुधैः ।
निवेद्योपायनान्यग्रे भरतस्य समन्ततः ॥१९॥

---

रानियाँ एवं वसिष्ठादिक द्विजगण भी पृथ्वी का आच्छादन करते हुए उनके आगे-पीछे और अगल-बगल यथा योग्य चलने लगे ।।१३।।

तदनन्तर शृंगवेरपुर में जाकर शत्रुघ्न की आज्ञा से उनकी वह महान् सेना गङ्गा के किनारे पर जहाँ-तहाँ ठहर गयी ।।१४।। भरत का आगमन सुनकर गुह के मन में यह शङ्का हुई कि भरत बड़ी सेना लेकर आ गये हैं ।।१५।। क्या वे राम के अनजान में उनका कोई अनिष्ट करना चाहते हैं ? इसलिए उनके पास जाकर सर्वप्रथम उनका अभिप्राय जान लेना चाहिए यदि उनका मनोभाव राम के अनुकूल हो, तो वे गङ्गा पार जा सकते हैं ।।१६।। अन्यथा मेरे समस्त ज्ञाती गण चारों ओर देखते हुए सावधानी के साथ अस्त्र-शस्त्र लेकर तैयार हो जायँ और नावें गङ्गा में खींच कर खड़ी कर दें ।।१७।। निषादराज गुह इस प्रकार अपने समस्त ज्ञातियों को आदेश देकर अनेक प्रकार की उपहार सामग्री लेकर, हथियार-बन्द ज्ञातियों के साथ जहाँ भरत थे, वहाँ आया । और भेंट-सामग्री समर्पित कर चारों ओर देखते हुए, उसने देखा कि वल्कल वस्त्र धारण किये

दृष्ट्वा भरतमासीनं सानुजं सह मन्त्रिभिः।
चीराम्बरं घनश्यामं जटा-मुकुटधारिणम् ॥२०॥

राममेवानुशोचन्तं रामरामेति वादिनम्।
ननाम शिरसा भूमौ गुहोऽहमिति चाऽब्रवीत् ॥२१॥

शीघ्रमुत्थाप्य भरतो गाढमालिङ्ग्य सादरम्।
पृष्ट्वानामयमव्यग्रः सखायमिदमब्रवीत् ॥२२॥

भ्रातस्त्वं राघवेणात्र समेतः समवस्थितः।
रामेणाऽऽलिङ्गितः सार्द्र नयनेनामलात्मना ॥२३॥

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि यत्त्वया परिभाषितः।
रामो राजीवपत्राक्षो लक्ष्मणेन च सीतया ॥२४॥

यत्र रामस्त्वया दृष्टस्तत्र मां नय सुव्रत!।
सीतया सहितो यत्र सुप्तस्तद् दर्शयस्व मे ॥२५॥

---

हुए, जटा-जूट बाँधे हुए, मेघश्याम श्री भरतजी अनुज शत्रुघ्न एवं मन्त्रियों के सहित बैठे हुए हैं ॥ १८ २० । उसने देखा कि श्री भरत जी राम का ही सोच कर रहे हैं और राम-राम का जप कर रहे हैं। इस प्रकार बैठे हुए श्रीभरतको देखकर निषाद ने पृथ्वी पर सिर रख कर उन्हें प्रणाम किया। और 'मैं गुह हूं' ऐसा निवेदन किया ॥२१॥ भरत जी ने उसे शीघ्र उठाया। और गले लगाकर उससे कुशल-मंगल पूछा, फिर मित्र–जैसा व्यवहार करते हुए उन्होंने निषादराज से इस प्रकार कहा—॥२२॥

भाई! तुम राम के साथ यहाँ रहे थे, निर्मल हृदय राम ने आँखों में आँसू भर कर तुम्हारा आलिङ्गन किया था ॥२३॥ अहा! तुम परम धन्य तथा कृतकृत्य हो, जो सजीव लोचन राम-लक्ष्मण एवं सीता ने तुमसे वार्त्तालाप किया था ॥२४॥

हे सुव्रत! तुम मुझे उस स्थल पर ले चलो, जहाँ तुमने श्री राम का दर्शन किया था। इतना ही नहीं, जहाँ सीता सहित श्रीरामजी सोये थे, उस स्थान का भी मुझे दर्शन कराओ ॥२५॥ तुम राम के परमप्रिय भक्त हो, अतः

त्वं रामस्य प्रियतमो भक्तिमानसि भाग्यवान् ।
इति संस्मृत्य संस्मृत्य रामं साश्रुविलोचनः ॥२६॥

गुहेन सहितस्तत्र यत्र रामः स्थितो निशि ।
ययौ ददर्श शयनस्थलं कुशसमास्तृतम् ॥२७॥

सीता-ऽऽभरण-संलग्न-स्वर्णबिन्दुभिरर्चितम् ।
दुःख-सन्तप्त-हृदयो भरतः पर्यदेवयत् ॥२८॥

अहोऽतिसुकुमारी या सीता जनकनन्दिनी ।
प्रासादे रत्नपर्यङ्के कोमलास्तरणे शुभे ॥२९॥

रामेण सहिता शेते सा कथं कुशविष्टरे ।
सीता रामेण सहिता दुःखेन मम दोषतः ॥३०॥

धिङ् मां जातोऽस्मि कैकेय्यां पापराशिसमानतः ।
मन्निमित्तमिदं क्लेशं रामस्य परमात्मनः ॥३१॥

---

भाग्यवान् हो । इस प्रकार बारंबार श्रीराम का स्मरण करते हुए भरत जी के नेत्रों में आँसू भर आये ॥२६॥

श्रीभरत जी निषादराज गुह के साथ उस स्थल पर गये, जहाँ रात में श्रीराम ने निवास किया था । वहाँ जाकर कुशों से आच्छादित श्रीराम के शयन-स्थान को भी देखा ॥२७॥ भरत जी ने देखा कि उस शयन-स्थान पर सीता के आभूषणों में संलग्न दो-चार सुवर्ण के छोटे-छोटे कण झड़े हुए पड़े हैं । उसे देख कर भरत का हृदय दुःख से सन्तप्त हो उठा । और वे इस प्रकार विलाप करने लगे ॥२८॥

हाय ! परम सुकुमारी जनक दुलारी, जो सीता उत्तम राजमहल में कोमल बिछौने से युक्त रत्न निर्मित पलंग पर राम के साथ सोती थीं॥२९॥ आज वही सीता राम के साथ कठोर कुशा के आस्तरण पर किस प्रकार क्लेश पूर्वक सोयी होगीं । ३०॥ हाय ! मुझे धिक्कार है, जो मैं मूर्त्तिमान् पाप-पुञ्ज के समान कैकेयी के गर्भ से उत्पन्न हुआ हूँ । जो परमात्मा राम को मेरे लिए इतना कष्ट उठाना पड़ा ॥३१॥ अहा लक्ष्मण का जन्म अत्यन्त सफल हो

अहोऽतिसफलं जन्म लक्ष्मणस्य महात्मनः ।
राममेव सदान्वेति वनस्थमपि हृष्टधीः ॥३२॥
अहं रामस्य दासा ये तेषां दासस्य किङ्करः ।
यदि स्यां सफलं जन्म मम भूयान्न संशयः ॥३३॥
भ्रातर्जानासि यदि तत् कथयस्व ममाऽखिलम् ।
यत्र तिष्ठति तत्राऽहं गच्छाम्यानेतुमञ्जसा ॥३४॥
गुहस्तं शुद्धहृदयं ज्ञात्वा सस्नेहमब्रवीत् ।
देव ! त्वमेव धन्योऽसि यस्य ते भक्तिरीदृशी ॥३५॥
रामे राजीवपत्राक्षे सीतायां लक्ष्मणे तथा ।
चित्रकूटाद्रिनिकटे मन्दाकिन्यविदूरतः ॥३६॥
मुनीनामाश्रमपदे रामस्तिष्ठति सानुजः ।
जानक्या सहितो नन्दात् सुखमास्ते किल प्रभुः ॥३७॥
तत्र गच्छामहे शीघ्रं गङ्गां ततुमिहार्हसि ।
इत्युक्त्वा त्वरितं गत्वा नावः पञ्चशतानि ह ॥३८॥

---

गया। जो प्रसन्न मन से वन में रहने वाले श्रीराम का अनुसरण करते हैं ॥३२॥ मेरा जन्म तो तभी सफल होगा जब मैं राम के दासों के दास का दास हो जाऊँ ॥३३॥

हे भाई ! यदि राम के रहने का स्थान जानते हो तो मुझे बताओ कि राम कहा हैं, वे जहाँ-कहीं भी होंगे, मैं उन्हें लिवा ले आने के लिए तुरन्त चलना चाहता हूँ ॥३४॥ गुह ने जब भरत को इस प्रकार भावशुद्ध हृदय देखा तो स्नेह पूर्वक कहा–हे स्वामिन् ! कमलनयन राम, लक्ष्मण एवं सीता में आपकी जब ऐसी भक्ति है, तो आप धन्य हैं। राम छोटे भाई लक्ष्मण के साथ चित्रकूट पर्वत के पास मन्दाकिनी नदी के तट के समीप मुनियों के आश्रम में निवास करते हैं। और वहाँ वे जानकी के साथ आनन्द-पूर्वक सुख से विराजमान हैं। ३५-३७॥

चलिए हम लोग शीघ्र वहीं चलें। पहले आप यहाँ गङ्गा पार कर लें। ऐसा कह कर गुह ने सेना सहित भरत को गङ्गा जी से पार करने के

समानयत् स-सैन्यस्य तत्तु गङ्गां महानदीम् ।
स्वयमेवानिनायैकां राजनावं गुहस्तदा ॥३९॥

आरोप्य भरतं तत्र शत्रुघ्नं राममातरम् ।
वसिष्ठं च तथाऽन्यत्र कैकेयीं चान्ययोषितः ॥४०॥

तीर्त्वा गङ्गां ययौ शीघ्रं भरद्वाजाश्रमं प्रति ।
दूरे स्थाप्य महासैन्यं भरतः सानुजो ययौ ॥४१॥

आश्रमे मुनिमासीनं ज्वलन्तमिव पावकम् ।
दृष्ट्वा ननाम भरतः साष्टाङ्गमतिभक्तितः ॥४२॥

ज्ञात्वा दाशरथिं प्रीत्या पूजयामास मौनिराट् ।
पप्रच्छ कुशलं दृष्ट्वा जटा-वल्कल-धारिणम् ॥४३॥

राज्यं प्रशासतस्तेऽद्य किमेतद् वल्कलादिकम् ।
आगतोऽसि किमर्थं त्वं विपिनं मुनिसेवितम् ॥४४॥

---

लिए पाँच सौ नावें मँगवायीं। और स्वयं एक राजोचित नौका ले आया ॥ ३८-३९ ॥ उसने उस नौका पर शत्रुघ्न सहित भरत को राम-माता कौसल्या को, वसिष्ठ को तथा कैकेयी एवं अन्य रानियों को चढ़ाया ॥४०॥ इस प्रकार निषादराज गुह के द्वारा गङ्गा पार होकर श्री भरतजी भरद्वाज आश्रम की ओर चले। वहाँ पर उन्होंने उस महती सेना को आश्रम से दूर रखकर स्वयं शत्रुघ्न के साथ भरद्वाज के आश्रम में गये ॥ ४१ ॥ उस आश्रम में जाज्वल्यमान अग्नि के समान तेजस्वी महा-मुनि बैठे हुए थे। उन्हें देखते ही भरतजी ने बड़ी भक्ति से साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥ ४२ ॥

मुनिराज भरद्वाज ने दशरथ नन्दन भरत को आया हुआ देख प्रीति से उनकी पूजा की। और उन्हें जटा एवं बल्कल धारण किये हुये देख उनका कुशलमङ्गल पूछ कर कहा-॥ ४३ ॥ भाई भरत ! राज्य का प्रशासन करते हुए तुमने यह वल्कल आदि कैसे धारण कर लिया। और मुनिजनों से सेवित इस तपोवन में तुम क्यों आये हो ? ४४ ॥

भरद्वाजवचः श्रुत्वा भरतः साश्रलोचनः ।
सर्वं जानासि भगवन् ! सर्वभूताशयस्थितः ॥४५॥
तथाऽपि पृच्छसे किञ्चित्तदनुग्रह एव मे ।
कैकेय्या यत्कृतं कर्म रामराज्यविघातनम् ॥४६॥
वनवासादिकं वाऽपि न हि जानामि किञ्चन ।
भवत्पादयुगं मेऽद्य प्रमाणं मुनिसत्तम ! ॥४७॥
इत्युक्त्वा पादयुगलं मुनेः स्पृष्ट्वाऽऽर्त्तमानसः ।
ज्ञातुमर्हसि मां देव ! शुद्धो वाऽशुद्ध एव वा ॥४८॥
मम राज्येन किं स्वामिन् ! रामे तिष्ठति राजनि ।
किङ्करोऽहं मुनिश्रेष्ठ ! रामचन्द्रस्य शाश्वतः ॥४९॥
अतो गत्वा मुनिश्रेष्ठ ! रामस्य चरणान्तिके ।
पतित्वा राज्यसम्भारान् ! समर्प्याऽत्रैव राघवम् ॥५०॥
अभिषेक्ष्ये वसिष्ठाद्यैः पौरजानपदैः सह ।
नेष्येऽयोध्यां रमानाथं दासः सेवेऽतिनीचवत् ॥५१॥

---

भरद्वाज की बात सुनते ही भरत के नेत्रों में आँसू आ गये। उन्होंने कहा–भगवन् ! आप सभी प्राणियों के अन्तःकरण में निवास करते हैं, अतः आप सब कुछ जानते ॥ ४५ ॥ उन्होंने कहा–सब कुछ जानते हुए भी आप मुझसे कुछ पूछ रहे हैं, यह आपका मेरे ऊपर महान् अनुग्रह ही है। हे मुनिराज ! राम के राज्याभिषेक में विघ्न उपस्थित करने वाला जो भी बनवासादि कार्य कैकयी ने किया है, मैं उसे रञ्चमात्र भी नहीं जानता। यह बात मैं आपके चरणों की साक्षी दे कर कहता हूँ ॥४६-४८॥ ऐसा कह अत्यन्त दुःखी हो उन्होंने महर्षि के दोनों चरणों को पकड़ कर कहा–हे मुने ! आप स्वयं जान सकते हैं कि मैं इस विषय में दोषी हूँ या निर्दोष हूँ ॥४९॥ इसलिए हे मुनिराज ! मैं श्री रामचन्द्र जी के पास जाकर उनके चरणों में गिर कर यह सारी राज्य-सामग्री उन्हें सौंप दूँगा ॥ ५० ॥ मैं वहाँ पर पुरवासियों और वसिष्ठ के साथ राम का राज्याभिषेक कर दूँगा। और उन्हें अयोध्या लौटा लाऊँगा। और दास बनकर उन लक्ष्मीपति भगवान् की तुच्छ जन जैसे सेवा करूँगा ॥५१॥ श्री भरद्वाज ने

इत्युदीरितमाकर्ण्य भरतस्य वचो मुनिः ।
आलिङ्ग्य मूर्ध्न्यवघ्राय प्रशशंस सविस्मयः ।।५२।।

वत्स ! ज्ञातं पुरैवैतद् भविष्यं ज्ञानचक्षुषा ।
मा शुचस्त्वं परो भक्तः श्रीरामे लक्ष्मणादपि ।।५३।।

आतिथ्यं कर्तुमिच्छामि स-सैन्यस्य तवानघ ! ।
अद्य भुक्त्वा ससैन्यस्त्वं श्वो गन्ता रामसन्निधिम् ।।५४।।

यथाऽऽज्ञापयति भवांस्तथेति भरतोऽब्रवीत् ।
भरद्वाजस्त्वपः स्पृष्ट्वा मौनी होमगृहे स्थितः ।।५५।।

दध्यौ कामदुघां कामवर्षिणीं कामदो मुनिः ।
असृजत् कामधुक् सर्वं यथाकाममलौकिकम् ।।५६।।

भरतस्य स-सैन्यस्य यथेष्टं च मनोरथम् ।
यथा ववर्ष सकलं तृप्तास्ते सर्वसैनिकाः ।।५७।।

---

भरत के इस उद्‌गार को सुनकर उन्हें गले लगा लिया । और आश्चर्यान्वित हो उनका सिर सूँघ कर उनकी प्रशंसा करने लगे ।।५२।।

भरद्वाज ने कहा—वत्स ! मैंने यह सब भविष्य ज्ञान-दृष्टि से पहले ही जान लिया था । तुम शोक मत करो; लक्ष्मण से भी अधिक तुम राम के परम प्रिय भक्त हो ।। ५३ ।। हे अनघ ! मैं सेना सहित तुम्हारा अतिथि-सत्कार करना चाहता हूँ । आज सेना सहित तुम मेरे इस आश्रम में भोजन करो, कल राम के पास जाना ।। ५४ ।।

तदनन्तर भरत ने कहा-आप की जैसी आज्ञा होगी वैसा ही होगा । तब मुनिवर होमघर में जाकर जल का आचमन कर मौन धारण कर बैठ गये ।। ५५ ।। सम्पूर्ण कामनाओं को देने वाले महामुनि याज्ञवल्क्य ने होम-गृह में मौन धारण कर कामनाओं को पूर्ण करने वाली कामधेनु का स्मरण किया । स्मरण करते ही उस कामधेनु ने अलौकिक सभी प्रकार के भोगों को पर्याप्त रूप से प्रस्तुत कर दिया ।। ५६ ।। उस कामधेनु ने सेना सहित भरत के सम्पूर्ण मनोरथों को यथेष्ट रूप से इस प्रकार पूर्ण किया कि समस्त सैनिक सन्तुष्ट हो गये ।। ५७ ।। योगिराज भरद्वाज ने सर्वप्रथम

वसिष्ठं पूजयित्वाऽग्रे शास्त्रदृष्टेन कर्मणा।
पश्चात् ससैन्यं भरतं तर्पयामास योगिराट् ॥५८॥

उषित्वा दिनमेकं तु आश्रमे स्वर्गसन्निभे।
अभिवाद्य पुनः प्रातर्भरद्वाजं सहानुजः।
भरतस्तु कृतानुज्ञः प्रययौ रामसन्निधिम् ॥५९॥
चित्रकूटमनुप्राप्य दूरे संस्थाप्य सैनिकान्।
रामसंदर्शनाकाङ्क्षी प्रययौ भरतः स्वयम् ॥६०॥

शत्रुघ्नेन सुमन्त्रेण गुहेन च परन्तपः।
तपस्विमण्डलं सर्वं विचिन्वानो न्यवर्तत ॥६१॥
अदृष्ट्वा राममभवनमपृच्छदृषिमण्डलम्।
कुत्रास्ते सीतया सार्धं लक्ष्मणेन रघूत्तमः ॥६२॥

ऊचुरग्रे गिरेः पश्चाद् गङ्गाया उत्तरे तटे।
विविक्तं रामसदनं रम्यं काननमण्डितम् ॥६३॥

---

शास्त्रीय रीति से वसिष्ठ का पूजन किया। फिर सेना सहित भरत को तृप्त किया ॥ ५८ ॥

इस प्रकार उस स्वर्ग सदृश आश्रम में एक दिन रह कर प्रातःकाल में भरद्वाज को प्रणाम कर उनकी आज्ञा ले भरत जी शत्रुघ्न के साथ राम के पास चले ॥ ५९ ॥ चित्रकूट के समीप में पहुँचने पर उन्होंने सेना को थोड़ी दूर पर रख दिया। और स्वयं राम के दर्शन की अभिलाषा से आगे बढ़े ॥ ६० ॥ परन्तप भरत जी, शत्रुघ्न, सुमन्त्र एवं गुह के साथ सम्पूर्ण तपस्वी मण्डल में राम को खोजते हुए लौट पड़े ॥ ६१ ॥ इस प्रकार खोजने पर जब उन्हें राम का पता न लगा तो वे ऋषि-मण्डली में जाकर पूछने लगे कि राम सीता एवं लक्ष्मण के साथ कहाँ रहते हैं ? ॥ ६२ ॥

तब ऋषियों ने कहा—आगे दिखाई पड़ने वाले इस पहाड़ के पीछे, मन्दाकिनी गङ्गा के उत्तरी छोर पर वनावली से रमणीक, एकान्त में राम की कुटी है ॥ ६३ ॥ राम की वह कुटी फल युक्त आम और पनस के

सफलैराम्रपनसैः कदलीखण्डसंवृतम् ।
चम्पकैः कोविदारैश्च पुन्नागैर्विपुलैस्तथा ॥६४॥
एवं दर्शितमालोक्य मुनिभिर्भरतोऽग्रतः ।
हर्षाद् ययौ रघुश्रेष्ठभवनं मन्त्रिणा सह ॥६५॥
ददर्श दूरादतिभासुरं शुभं, रामस्य गेहं मुनिवृन्दसेवितम् ।
वृक्षाग्र-संलग्न-सुवल्कलाजिनं, रामाभिरामं भरतः सहानुजः ॥६६॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे
अष्टमः सर्गः ॥८॥

*

---

एवं केले के समूहों से घिरी है। उसके चारों ओर चम्पा, कचनार एवं नाग केसर के वृक्ष हैं। ६४॥ इस प्रकार मुनियों के द्वारा बतलाये जाने पर भरत जी मन्त्रियों को साथ ले सबसे आगे होकर परम प्रसन्नता से श्री रघुनाथ जी के आश्रम की ओर बढ़े॥ ६५॥

आगे बढ़ने पर शत्रुघ्न सहित उन्होंने दूर से ही मुनिजनों से सेवित, परम सुन्दर एवं प्रकाशमान रामचन्द्र जी का सुन्दर भवन देखा। जिसमें वृक्ष की शाखा पर वल्कल एवं मृगचर्म लटक रहे थे। और जो राम के निवास से परम रमणीक हो गया था॥ ६६॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दीटीका सहित अध्यात्म
रामायण के उमा-महेश्वरसवाद में अयोध्या
काण्ड का आठवाँ सर्ग समाप्त ॥८॥

*

## ९. नवमः सर्गः

**( भगवान् राम एवं भरत का मिलाप, भरतजी का अयोध्या लौटना, श्री रामका अत्रिमुनि के आश्रम पर जाना )**

श्रीमहादेव उवाच

अथ गत्वाऽऽश्रमपदसमीपं भरतो मुदा ।
सीतारामपदैर्युक्तं पवित्रमतिशोभनम् ॥ १ ॥

स तत्र वज्राङ्कुश-वारिजाञ्चित-ध्वजादिचिह्नानि पदानि सर्वतः ।
ददर्श रामस्य भुवोऽतिमङ्गलान्यचेष्टयत् पादरजः सुसानुजः ॥ २ ॥

अहो सुधन्योऽहममूनि राम-पादारविन्दाङ्कित-भूतलानि ।
पश्यामि यत्पादरजो विमृग्यं ब्रह्मादिदेवैः श्रुतिभिश्च नित्यम् ॥३॥

इत्यद्भुत-प्रेमरसाप्लुताशयो विगाढचेता रघुनाथभावने ।
आनन्दजाश्रु-स्नपित-स्तनान्तरः शनैरवापाश्रमसन्निधिं हरेः ॥ ४॥

---

श्रीमहादेवजी ने कहा—हे पार्वति ! तदनन्तर भरतजी बड़ी प्रसन्नता से सीता-राम के पद-चिह्नों से युक्त, अत्यन्त पवित्र, परम रमणीक आश्रम के समीप स्थल पर पहुँचे ॥१॥ उन्होंने वहाँ पर वज्र, अंकुश, कमल एवं ध्वज आदि चिह्नों से सुशोभित पृथ्वी के लिए परम कल्याणकारी श्री राम के पद-चिह्नों को देखा। फिर वे शत्रुघ्न सहित उस चरण-रज में लोटने लगे ॥२॥ उन्होंने कहा-अहा ! मैं परम धन्य हूँ, जो राम के चरण-कमलों से युक्त इस पृथ्वी को देख रहा हूँ, जिनके चरण-रज को ब्रह्मादि देवगण और सम्पूर्ण श्रुतियाँ खोजती फिरती हैं ॥३॥

ऐसा कहते हुए श्री भरत का हृदय अद्भुत प्रेम रस से भर गया। और उनका चित्त श्री राम की भावना में मग्न हो गया। एवं हृदयस्थल आनन्दाश्रु के उमड़ने से भींग गया। इस प्रकार भरत जी धीरे-धीरे आश्रम के समीप आये ॥४॥ उन्होंने देखा कि आश्रम में दूर्वादल के समान श्याम

स तत्र दृष्ट्वा रघुनाथमास्थितं दूर्वादल-श्यामलमायतेक्षणम् ।
जटा-किरीटं नववल्कलाम्बरं प्रसन्नवक्त्रं तरुणारुणद्युतिम् ॥ ५ ॥
विलोकयन्तं जनकात्मजां शुभां सौमित्रिणा सेवितपादपङ्कजम् ।
तदाभिदुद्राव रघूत्तमं शुचा हर्षाच्च तत्पादयुगं त्वराग्रहीत् ॥ ६ ॥
रामस्तमाकृष्य सुदीर्घबाहुर्दोर्भ्यां परिष्वज्य सिषिञ्च नेत्रजैः ।
जलैरथाङ्कोपरि संन्यवेशयत् पुनः पुनः संपरिषस्वजे विभुः ॥ ७ ॥

अथ ता मातरः सर्वाः समाजग्मुस्त्वरान्विताः ।
राघवं द्रष्टुकामास्तास्तृषार्ता गौर्यथा जलम् ॥ ८ ॥
रामः स्वमातरं वीक्ष्य द्रुतमुत्थाय पादयोः ।
ववन्दे साश्रु सा पुत्रमालिङ्ग्याऽतीव दुःखिता ॥ ९ ॥
इतराश्च तथा नत्वा जननी रघुनन्दनः ।
ततः समागतं दृष्ट्वा वसिष्ठं मुनिपुङ्गवम् ॥१०॥

---

शरीर और विशाल नेत्र वाले श्री राम बैठे हुए हैं। उन्होंने जटा का मुकुट एवं नवीन वल्कल धारण कर रखा है। उनका मुख-मण्डल प्रसन्न है तथा वे मध्याह्न के सूर्य के समान चमक रहे हैं ॥५॥

श्रीरामजी शुभलक्षणा जनकनन्दिनी की ओर देख रहे हैं तथा लक्ष्मण जी उनके चरण-कमलों की सेवा कर रहे हैं, फिर तो भरतजी ने हर्षोद्रेक एवं शोक से युक्त हो दौड़ कर श्रीराम के चरणों को शीघ्रता से पकड़ लिया ॥६॥ लम्बी भुजा वाले श्रीराम ने उन्हें अपनी दोनों बाहुओं से उठा कर गले लगा लिया। और अपनी गोद में बैठाकर आँसुओं से सींचते हुए बारम्बार उनको हृदय से लगाया ॥७॥

तदनन्तर जिस प्रकार प्यासी गौएँ जल की ओर दौड़ती हैं, उसी प्रकार कौसल्या आदि समस्त मातायें श्रीराम को देखने के लिए शीघ्रता से दौड़ीं ॥८॥ इधर राम ने जब अपनी ओर माता को आते देखा तो उन्होंने शीघ्रता से उठ कर माता के चरणों में गिर कर प्रणाम किया। माताओं ने बड़े दुःख के साथ उनको हृदय से लगा लिया ॥९॥ इसी प्रकार राम ने अन्य माताओं को भी प्रणाम किया। तदनन्तर मुनिपुंगव वसिष्ठ जी को आते देख ॥१०॥

साष्टाङ्गं प्रणिपत्याह धन्योऽस्मीति पुनः पुनः ।
यथार्हमुपवेश्याह सर्वानेव रघूद्वहः ॥११॥

पिता मे कुशली किं वा मां किमाहातिदुःखितः ।
वसिष्ठस्तमुवाचेदं पिता ते रघुनन्दन ! ॥१२॥

त्वद्-वियोगाभितप्तात्मा त्वामेव परिचिन्तयन् ।
रामरामेति सीतेति लक्ष्मणेति ममार ह ॥१३॥

श्रुत्वा तत्कर्णशूलाभं गुरोर्वचनमञ्जसा ।
हा हतोऽस्मीति पतितो रुदन् रामः स-लक्ष्मणः ॥१४॥

ततोऽनुरुरुदुः सर्वा मातरश्च तथापरे ।
हा तात ! मां परित्यज्य क्व गतोऽसि घृणाकर ! ॥१५॥

अनाथोऽस्मि महाबाहो ! मां को वा लालयेदितः ।
सीता च लक्ष्मणश्चैव विलेपतुरतो भृशम् ॥१६॥

---

साष्टाङ्ग प्रणाम कर रामचन्द्रजी ने बारम्बार कहा—'मैं धन्य हूँ, मैं धन्य हूँ।' पश्चात् यथायोग्य उन्हें बैठा कर वे सभी से पूछने लगे ॥११॥ 'हमारे पिता जी कुशल से तो हैं।' उन्होंने दुःखी होकर मुझे क्या सन्देश दिया है ? तब वसिष्ठ जी ने कहा—हे रघुनन्दन ! तुम्हारे पिता, तुम्हारे वियोग से दुःखी होकर 'हे राम ! हे राम ! हे सीते ! और हे लक्ष्मण !' इस प्रकार तुम्हारा ही चिन्तन करते हुए प्राण त्याग कर दिया ॥१२-१३॥ कानों में शूल के समान चुभने वाले वसिष्ठ जी के सहसा इस प्रकार के वचन को सुन कर रामजी लक्ष्मण सहित 'हाय मैं मारा गया' ऐसा कहते हुए रोकर पृथ्वी पर गिर पड़े। १४॥

तदनन्तर रामचन्द्रजी के इस प्रकार रोते ही सभी माताएं एवं सभा में उपस्थित अन्यान्य सभासद रोने लगे। राम ने कहा—'हा तात ! हा दयानिधे !' मुझे छोड़कर आप कहाँ चले गये ॥१५। 'हे महा बाहो ! मैं अनाथ हो गया। अब इसके बाद मुझे कौन प्यार करेगा।' इसके अनन्तर सीता और लक्ष्मण भी विलाप करने लगे ॥१६॥ पुनः वसिष्ठजी ने शान्ति

वसिष्ठः शान्तवचनैः शमयामास तां शुचम् ।
ततो मन्दाकिनीं गत्वा स्नात्वा ते वीतकल्मषाः ॥१७॥

राज्ञे ददुर्जलं तत्र सर्वे ते जलकाङ्क्षिणे ।
पिण्डान् निर्वापयामास रामो लक्ष्मणसंयुतः ॥१८॥

इङ्गुदीफल-पिण्याक-रचितान् मधुसम्प्लुतान् ।
वयं यदन्नाः पितरस्तदन्नाः स्मृतिनोदिताः ॥१९॥

इति दुःखाश्रुपूर्णाक्षः पुनः स्नात्वा गृहं ययौ ।
सर्वे रुदित्वा सुचिरं स्नात्वा जग्मुस्तदाश्रमम् ॥२०॥

तस्मिंस्तु दिवसे सर्वे उपवासं प्रचक्रिरे ।
ततः परेद्युर्विमले स्नात्वा मन्दाकिनीजले ॥२१॥

उपविष्टं समागम्य भरतो राममब्रवीत् ।
राम राम महाभाग ! स्वात्मानमभिषेचय ॥२२॥

---

युक्त वचनों से उनके शोक को दूर किया। वे लोग भी मन्दाकिनी में जाकर स्नान करने के उपरान्त शुद्ध हो गये ॥१७॥

उन लोगों ने जल की आकांक्षा रखने वाले महाराज दशरथ को जल दिया। तथा लक्ष्मण सहित श्रीराम ने दशरथ जी के निमित्त पिण्डदान किया ॥१८॥ इङ्गुदी के फल और पिण्याक के पिण्ड बना कर उस पर मधु डाल कर पिण्डदान करते हुए उन्होंने कहा—( महाराज आप इसे खाइए ) 'हमारा जो अन्न है, वही अन्न हमारे पितरों को भी प्रिय होगा।' ऐसा स्मृतियों का वचन है ॥१९॥ फिर दुःख से दुःखी वे सभी रोते हुए पुनः स्नान कर आश्रम आये। इसी प्रकार और सब भी बहुत देर तक रोकर अन्त में स्नान कर आश्रम की ओर लौटे ॥२०॥

उस दिन सब लोगों ने उपवास किया। फिर दूसरे दिन मन्दाकिनी के विमल जल में स्नान कर भरतजी आश्रम में बैठे हुए श्रीराम से कहने लगे—हे राम! हे राम! हे महाभाग! आप अपने को अभिषिक्त कीजिए ॥२१-२२॥ हे महाराज! पितृ-परम्परा से प्राप्त यह राज्य ज्येष्ठ

राज्यं पालय पित्र्यं ते ज्येष्ठस्त्वं मे पिता तथा।
क्षत्रियाणामयं धर्मो यत्प्रजापरिपालनम् ॥२३॥
दृष्ट्वा यज्ञैर्बहुविधैः पुत्रानुत्पाद्य तन्तवे।
राज्ये पुत्रं समारोप्य गमिष्यसि ततो वनम् ॥२४॥
इदानीं वनवासस्य कालो नैव प्रसीद मे।
मातुर्मे दुष्कृतं किञ्चित् स्मर्तुं नार्हसि पाहि नः ॥२५॥
इत्युक्त्वा चरणौ भ्रातुः शिरस्याधाय भक्तितः।
दासस्य पुरतः साक्षाद् दण्डवत् पतितो भुवि ॥२६॥
उत्थाप्य राघवः शीघ्रमारोप्याऽङ्केऽतिभक्तितः।
उवाच भरतं रामः स्नेहार्द्रनयनः शनैः ॥२७॥
शृणु वत्स ! प्रवक्ष्यामि त्वयोक्तं यत् तथैव तत्।
किन्तु मामब्रवीत् तातो नव वर्षाणि पञ्च च ॥२८॥
उषित्वा दण्डकारण्ये पुरं पश्चात् समाविश।
इदानीं भरतायेदं राज्यं दत्तं मयाऽखिलम् ॥२९॥

---

होने के कारण आप का ही है। आप ज्येष्ठ भाई हैं, इसलिए मेरे पिता तुल्य हैं। प्रजा पालन करना, यही क्षत्रियों का मुख्य धर्म है ॥२३॥

अनेक प्रकार के यज्ञों से यजन कर, वंशवृद्धि के निमित्त पुत्र उत्पन्न कर, उस पुत्र के बड़ा होने पर उसे राज्य का अधिकारी बना कर तब वन को जाइए ॥२४॥ हे नाथ ! अभी यह वनवास का समय नहीं है, आप मेरे ऊपर प्रसन्न हो जाइए। मेरी माता ने जो आप के प्रति पाप किया है, उसे भूल जाइए। और मेरी रक्षा कीजिए ॥२५॥

ऐसा कह कर भरत जी ने भाई श्री राम के चरणों को भक्तिपूर्वक अपने मस्तक पर रख लिया। और राम के आगे डण्डे के समान पृथ्वी पर गिर पड़े ॥२६॥ राम ने शीघ्रता से भरत को उठाकर बड़े स्नेह से अपने गोद में बैठा लिया। और स्नेह से नेत्रों में जल भर कर धीरे-धीरे उनसे कहने लगे ॥२७॥

हे भाई ! मेरी बात तो सुनो ! तुमने जो बात कही है वह तो सर्वथा ठीक ही है। किन्तु पिता ने मुझ से कहा है कि, चौदह वर्ष पर्यन्त दण्डकारण्य में रह कर तुम अयोध्या में लौटना। इस समय यह सारा राज्य मैंने भरत को दे दिया है ॥२८-२९॥ अतः यह बात सुस्पष्ट है कि पिता जी ने

ततः पित्रैव सुव्यक्तं राज्यं दत्तं तवैव हि ।
दण्डकारण्यराज्यं मे दत्तं पित्रा तथैव च ॥३०॥
अतः पितुर्वचः कार्यमावाभ्यामतियत्नतः ।
पितुर्वचनमुल्लङ्घ्य स्वतन्त्रो यस्तु वर्तते ॥३१॥
स जीवन्नेव मृतको देहान्ते निरयं व्रजेत् ।
तस्माद् राज्यं प्रशाधि त्वं वयं दण्डकपालकाः ॥३२॥
भरतस्त्वब्रवीद् रामं कामुको मूढधीः पिता ।
स्त्रीजितो भ्रान्तहृदय उन्मत्तो यदि वक्ष्यति ।
तत्सत्यमिति न ग्राह्यं भ्रान्तवाक्यं यथा सुधीः ॥३३॥

श्रीराम उवाच

न स्त्रीजितः पिता ब्रूयान्न कामी नैव मूढधीः ।
पूर्वं प्रतिश्रुतं तस्य सत्यवादी ददौ भयात् ॥३४॥

---

यह सारा राज्य तुम्हें ही दिया है। और मुझे उन्होंने दण्डकारण्य का राज्य दिया है ॥३०॥ इसलिए हे भाई! हम दोनों को अपने पिता की आज्ञा का प्रयत्न पूर्वक पालन करना चाहिए। जो पिता की आज्ञा का उल्लङ्घन कर स्वेच्छाचारी हो जाता है ॥३१॥ उसे जीते ही मरा समझना चाहिए। किं बहुना शरीर छोड़ने पर उसे नरक की प्राप्ति होती है। इसलिए इस राज्य का पालन तुम करो, हम तो दण्डक बन की रक्षा करेंगे ॥३२॥

तब भरत जी ने राम से कहा—पिताजी कामुक, मूढ बुद्धि, स्त्री के वशवर्त्ती, भ्रान्त चित्त एवं पागल थे। अतः उन्होंने जो कुछ कहा है वह ग्राह्य नहीं है। क्या कोई भी बुद्धिमान् पुरुष भ्रान्त पुरुषों की बात को ग्राह्य समझता है ॥३३॥

तब श्री राम ने कहा—भाई! पिता जी ने कामी, मूर्ख एवं स्त्रीपरस्त होकर ऐसी बातें नहीं कही है। किन्तु सत्यवादी होने के कारण प्रतिज्ञा-भङ्ग के भय से उन्होंने अपने प्रतिज्ञानुसार ही ऐसा कहा है ॥३४॥

असत्याद् भीतिरधिका महतां नरकादपि।
करोमीत्यहमप्येतत् सत्यं तस्यै प्रतिश्रुतम् ॥३५॥
कथं वाक्यमहं कुर्यामसत्यं राघवो हि सन्।
इत्युदीरितमाकर्ण्य रामस्य भरतोऽब्रवीत् ॥३६॥
तथैव चीरवसनो वने वत्स्यामि सुव्रत!।
चतुर्दश समास्त्वं तु राज्यं कुरु यथासुखम् ॥३७॥

श्रीराम उवाच

पित्रा दत्तं तवैवैतद्राज्यं मह्यं वनं ददौ।
व्यत्ययं यद्यहं कुर्यामसत्यं पूर्ववत् स्थितम् ॥३८॥

भरत उवाच

अहमप्यागमिष्यामि सेवे त्वां लक्ष्मणो यथा।
नो चेत् प्रायोपवेशेन त्यजाम्येतत् कलेवरम् ॥३९॥

---

सत्यवादी लोग नरक की अपेक्षा असत्य से अधिक डरते हैं। 'मैं भी ऐसा ही करूँगा।' यह कह कर उनसे प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। फिर रघुवंश में जन्म लेकर मैं उस बात को असत्य किस प्रकार करूँ। राम के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर भरत ने कहा—॥३५-३६॥

हे सुव्रत! मैं ही आपके बदले पिता की आज्ञा मान कर बल्कल धारण कर चौदह वर्ष निवास करूँगा। और आप सुखपूर्वक अयोध्या का राज्य कीजिए॥३७॥

तदनन्तर श्री राम ने कहा—जब पिताजी ने तुम्हें राज्य दिया और मुझे वनवास दिया। यदि मैं इसका उलटा करूँ तो असत्य जैसे का तैसे ही रह जाता है॥३८॥

तब भरत जी ने कहा—हे राम! यदि आप वन से लौटना नहीं चाहते तो मुझे यह आज्ञा दीजिए कि मैं भी लक्ष्मण के समान आप के साथ वन में रहकर आपकी सेवा करूँ। यदि आप मुझे इस प्रकार की आज्ञा नहीं देते तो मैं अन्न, जल छोड़कर प्रायोपवेश से आप के सामने ही शरीर त्याग कर दूँगा॥३९॥ इस प्रकार अपना निश्चय प्रगट कर और मन से भी यही

इत्येवं निश्चयं कृत्वा दर्भानास्तीर्य चातपे ।
मनसाऽसि विनिश्चित्य प्राङ्मुखोपविवेश सः ॥४०॥
भरतस्यापि निर्बन्धं दृष्ट्वा रामोऽतिविस्मितः ।
नेत्रान्तसंज्ञां गुरवे चकार रघुनन्दनः ॥४१॥
एकान्ते भरतं प्राह वसिष्ठो ज्ञानिनां वरः ।
वत्स ! गुह्यं शृणुष्वेदं मम वाक्यात् सुनिश्चितम् ॥४२॥
रामो नारायणः साक्षाद् ब्रह्मणा याचितः पुरा ।
रावणस्य वधार्थाय जातो दशरथात्मजः ॥४३॥
योगमायाऽपि सीतेति जाता जनकनन्दिनी ।
शेषोऽपि लक्ष्मणो जातो राममन्वेति सर्वदा ॥४४॥
रावणं हन्तुकामास्ते गमिष्यन्ति न संशयः ।
कैकेय्या वरदानादि यद्यन्निष्ठुरभाषणम् ॥४५॥

---

बात विचार कर श्री भरत जी धूप में कुशा बिछा कर पूर्व की ओर मुख करके प्रायोपवेश के लिए बैठ गये ॥४०॥

भरत के इस प्रकार के हठ को देख कर राम को बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर उन्होंने श्री वसिष्ठ जी की ओर नेत्रों से संकेत किया ॥४१॥ तब महा ज्ञानी वसिष्ठ जी भरत को एकान्त में ले जाकर कहने लगे— वत्स भरत ! मैं तुम से एक गुप्त बात कहता हूँ उसे सुनो, और मेरे वाक्यों का विश्वास करो ॥४२॥

श्री राम जी साक्षात् नारायण हैं, ब्रह्मा ने रावण का वध करने के लिए उनसे प्रार्थना की थी। वही नारायण ब्रह्मा की प्रार्थना से दशरथ के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए हैं ॥४३॥ और यह सीता उनकी योगमाया हैं, जो जनकपुत्री के रूप में जन्म ली हैं। यह शेष जी लक्ष्मण के रूप में जन्म लिये हैं, जो सदैव राम का अनुगमन करते हैं ॥४४॥

वे रावण का बध करना चाहते हैं, इसलिए निश्चय ही वन को जायेंगे। कैकेयी के जो वरदान आदि एवं निष्ठुर भाषण आदि कार्य हैं, वे सब

सर्वं देवकृतं नो चेदेवं सा भाषयेत् कथम् ? ।
तस्मात्त्यजाग्रहं तात ! रामस्य विनिवर्तने ॥४६॥
निवर्तस्व महासैन्यैर्मातृभिः सहितः पुरम् ।
रावणं सकुलं हत्वा शीघ्रमेवागमिष्यति ॥४७॥
इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं भरतो विस्मयान्वितः ।
गत्वा समीपं रामस्य विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥४८॥
पादुके देहि राजेन्द्र ! राज्याय तव पूजिते ।
तयोः सेवां करोम्येव यावदागमनं तव ॥४९॥
इत्युक्त्वा पादुके दिव्ये योजयामास पादयोः ।
रामस्य ते ददौ रामो भरतायाऽतिभक्तितः ॥५०॥
गृहीत्वा पादुके दिव्ये भरतो रत्नभूषिते ।
रामं पुनः परिक्रम्य प्रणनाम पुनः पुनः ॥५१॥
भरतः पुनराहेदं भक्त्या गद्गदया गिरा ।
नवपञ्चसमान्ते तु प्रथमे दिवसे यदि ॥५२॥

---

देवताओं की प्रेरणा से ही हुआ समझो। अन्यथा वह इस प्रकार के वचन किस प्रकार बोल सकती थी। इसलिए हे तात! तुम राम को बन से लौटाने का आग्रह छोड़ दो ॥४५-४६॥ तुम माताओं एवं महती सेना के साथ अयोध्या लौट चलो। राम भी कुल सहित रावण का वध कर शीघ्र ही अयोध्या लौटेंगे ॥४७॥

गुरु वसिष्ठ जी की इस बात को सुन कर भरत जी को महान् विस्मय हुआ। उन्होंने आश्चर्य-चकित हो राम के पास जाकर कहा—॥४८॥ हे राजेन्द्र! मुझे राज्य का शासन चलाने के लिए जगत्-पूज्य अपनी पादुकाएँ दे दीजिए। जब तक आप अयोध्या नहीं लौटेंगे। तब तक मैं उसी की सेवा करूँगा ॥४९॥ ऐसा कहकर श्री भरत ने राम के पैरों में पादुकाएँ पहना दीं। उन्होंने भी भरत की भक्ति देखकर वे पादुकाएँ उन्हें दे दीं ॥५०॥ रत्न-भूषित दिव्य पादुकाएँ लेकर फिर राम की परिक्रमा की। और उन्हें अनेक बार प्रणाम किया ॥५१॥

नागमिष्यसि चेद् राम ! प्रविशामि महानलम् ।
बाढमित्येव तं रामो भरतं संन्यवर्तयत् ॥५३॥

स-सैन्यः स-वसिष्ठश्च शत्रुघ्नसहितः सुधीः ।
मातृभिर्मन्त्रिभिः सार्धं गमनायोपचक्रमे ॥५४॥

कैकेयी राममेकान्ते स्रवन्नेत्रजलाकुला ।
प्राञ्जलिः प्राह हे राम ! तव राज्यविघातनम् ॥५५॥

कृतं मया दुष्टधिया मायामोहितचेतसा ।
क्षमस्व मम दौरात्म्यं क्षमासारा हि साधवः ॥५६॥

त्वं साक्षाद् विष्णुरव्यक्तः परमात्मा सनातनः ।
मायामानुषरूपेण मोहयस्यखिलं जगत् ।
त्वयैव प्रेरितो लोकः कुरुते साध्वसाधु वा ॥५७॥

---

तदनन्तर भक्ति पूर्वक भरत जी गद्गद वाणी से कहने लगे। चौदह वर्ष के समाप्त होते ही पहले दिन यदि आप अयोध्या न पहुँचे तो हे राम ! मैं महाग्नि में प्रवेश कर प्राण दे दूँगा। तब श्री राम ने 'बहुत अच्छा' कहकर भरत जी को विदा कर दिया॥ ५२-५३ ॥ फिर परम बुद्धिमान् भरत जी सेना, वसिष्ठ, शत्रुघ्न, माताओं एवं मन्त्रियों के साथ अयोध्या लौटने की तैयारी करने लगे ॥ ५४ ॥

इसी समय कैकेयी भी नेत्रों में आँसू भर कर हाथ जोड़कर एकान्त में राम से कहने लगी—हे राम ! मैंने माया से मोहित चित्त होने के कारण दुर्बुद्धि से तुम्हारे राज्याभिषेक में विघ्न उपस्थित किया सो तुम मेरी इस दुष्टता को क्षमा करना। क्योंकि साधुलोग सर्वदा क्षमाशील होते हैं॥ ५५-५६ ॥ आप साक्षाद् विष्णु, अव्यक्त, परमात्मा तथा सनातन हैं। आप अपनी माया से मनुष्य रूप धारण कर संसार को मोहित कर रहे हैं। इस जगत् में लोग आप की ही प्रेरणा से अच्छा-बुरा कार्य करते हैं॥ ५७ ॥

त्वदधीनमिदं विश्वमस्वतन्त्रं करोति किम् ।
यथा कृत्रिमनर्तक्यो नृत्यन्ति कुहकेच्छया ॥५८॥
त्वदधीना तथा माया नर्तकी बहुरूपिणी ।
त्वयैव प्रेरिताऽहं च देवकार्यं करिष्यता ॥५९॥
पापिष्ठं पापमनसा कर्माचिरमरिन्दम ! ।
अद्य प्रतीतोऽसि मम देवानामप्यगोचरः ॥६०॥
पाहि विश्वेश्वरानन्त ! जगन्नाथ ! नमोऽस्तु ते ।
छिन्धि स्नेहमयं पाशं पुत्रवित्तादिगोचरम् ॥६१॥
त्वज्ज्ञानानलखड्गेन त्वामहं शरणं गता ।
कैकेय्या वचनं श्रुत्वा रामः सस्मितमब्रवीत् ॥६२॥
यदाऽहं मां महाभागे नाऽनृतं सत्यमेव तत् ।
मयैव प्रेरिता वाणी तव वक्त्राद् विनिर्गता ॥६३॥

---

हे राम ! यह सारा जगत् तुम्हारे ही आधीन है, अतः परतन्त्र होने के कारण यह कुछ भी करने में असमर्थ है, जिस प्रकार कठपुतली नचाने वाले बाजीगर के अधीन होकर नाचती रहती है ॥ ५८ ॥ उसी प्रकार नाना रूपों को धारण करने वाली यह माया रूपी नटी भी आप के अधीन होकर नाचती रहती है ।

हे अरिन्दम ! देवकार्य की सिद्धि की इच्छा करने वाले आप की प्रेरणा से ही मुझ पापिनी ने इतना बड़ा पाप कर्म किया । आज मैंने जान लिया कि आप देवताओं के भी मन, बुद्धि एवं वाणी से सर्वथा परे हैं ॥५९-६०॥ हे विश्वेश्वर ! हे अनन्त ! हे जगन्नाथ ! आप को बारम्बार नमस्कार है, मेरी रक्षा कीजिए । आप अपने ज्ञान रूपी खड्ग से पुत्र, धन आदि में लगे हुए मेरे स्नेह-पाश को काट दीजिए । मैं आप की शरण हूँ । कैकेयी की इस बात को सुनकर रामचन्द्र जी मुसकराकर कहने लगे ॥ ६१—६२ ॥

हे महाभागे ! जैसा तुमने कहा है, सो सब सत्य है, मिथ्या नहीं है, मेरी प्रेरणा से ही तुम्हारे मुख से इस प्रकार के शब्द निकले थे ॥ ६३ ॥

देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थमत्र दोषः कुतस्तव ।
गच्छ त्वं हृदि मां नित्यं भावयन्ती दिवानिशम् ॥६४॥
सर्वत्र विगतस्नेहा मद्-भक्त्या मोक्ष्यसेऽचिरात् ।
अहं सर्वत्र समदृग् द्वेष्यो वा प्रिय एव वा ॥६५॥
नास्ति मे कल्पकस्येव भजतोऽनुभजाम्यहम् ।
मन्मायामोहितधियो मामम्ब ! मनुजाकृतिम् ॥६६॥
सुख-दुःखाद्यनुगतं जानन्ति न तु तत्त्वतः ।
दिष्ट्या मद्गोचरं ज्ञानमुत्पन्नं ते भवापहम् ॥६७॥
स्मरन्ती तिष्ठ भवने लिप्यसे न च कर्मभिः ।
इत्युक्ता सा परिक्रम्य रामं सानन्दविस्मया ॥६८॥
प्रणम्य शतशो भूमौ ययौ गेहं मुदान्विता ।
भरतस्तु सहाऽमात्यैर्मातृभिर्गुरुणा सह ॥६९॥

---

मैंने देवताओं की कार्य-सिद्धि के लिए ही यह सब कार्य किया है, फिर इसमें तुम्हारा क्या दोष है ? अब तुम जाओ और रात-दिन मेरी ही भावना किया करो ॥ ६४ ॥

सांसारिक पदार्थों से स्नेह दूर करो, फिर तो शीघ्र ही मेरी भक्ति से तुम मुक्त हो जाओगी । मैं सर्वत्र समदर्शी हूँ मेरा कोई उसी प्रकार न तो प्रिय है और न कोई द्वेष्य ही है ॥ ६५ । जिस प्रकार मायावी को अपनी माया से राग और द्वेष नहीं होता । जो मुझे जिस प्रकार भजता है मैं भी उसे उसी प्रकार भजता हूँ । मेरी माया से मोहित बुद्धिवाले मुझे सुख-दुःख में अनुगत साधारण मनुष्य मानते हैं। तत्त्वतः वे मेरा स्वरूप नहीं जानते । हे माता ! यह तुम्हारे बड़े भाग्य की बात है कि संसार के भय को दूर करने वाला मेरा तत्त्व ज्ञान तुम्हें उत्पन्न हो गया ॥ ६६-६७ ॥

तुम मेरा स्मरण करती हुई घर में ही रहो। तुम कर्म के बन्धनों में नहीं बंधोगी । रामचन्द्र जी के द्वारा इस प्रकार समझाने पर कैकेयी आनन्द और विस्मय पूर्वक राम की प्रदक्षिणा की ॥ ६८ ॥

पृथ्वी पर गिर कर सैकड़ों बार प्रणाम कर वह घर की ओर चली। इधर भरत भी मन्त्रिगणों, माताओं एवं वसिष्ठ जी के साथ ॥ ६९ ॥

अयोध्यायामगमच्छीघ्रं राममेवानुचिन्तयन् ।
पौरजानपदान् सर्वानयोध्यायामुदारधीः ॥७०॥
स्थापयित्वा यथान्यायं नन्दिग्रामं ययौ स्वयम् ।
तत्र सिंहासने नित्यं पादुके स्थाप्य भक्तितः ॥७१॥
पूजयित्वा यथा रामं गन्ध-पुष्पा-ऽक्षतादिभिः ।
राजोपचारैरखिलैः प्रत्यहं नियतव्रतः ॥७२॥
फल-मूलाशनो दान्तो जटा-वल्कल-धारकः ।
अधःशायी ब्रह्मचारी शत्रुघ्नसहितस्तदा ॥७३॥
राजकार्याणि सर्वाणि यावन्ति पृथिवीतले ।
तानि पादुकयोः सम्यङ् निवेदयति राघवः ॥७४॥
गणयन् दिवसानेव रामागमनकाङ्क्षया ।
स्थितो रामार्पितमनाः साक्षाद् ब्रह्ममुनिर्यथा ॥७५॥
रामस्तु चित्रकूटाद्रौ वसन् मुनिभिरावृतः ।
सीतया लक्ष्मणेनापि किञ्चित् कालमुपावसत् ॥७६॥

---

राम का स्मरण करते हुए अयोध्या की ओर चले, अयोध्या पहुँचकर उदारबुद्धि भरत जो सभी पुरवासियों एवं देशवासियों को यथायोग्य बसाकर स्वयं नन्दिग्राम में गये और वहाँ पर अत्यन्त भक्ति के साथ सिंहासन पर चरण-पादुकाएँ रख दीं ॥ ७०–७१ ॥ वे रामचन्द्र के समान ही, नित्यप्रति गन्ध, पुष्प, अक्षतादि एवं सम्पूर्ण राजोचित उपचारों से नियम पूर्वक उनकी पूजा करने लगे ॥ ७२ ॥

इस प्रकार वे शत्रुघ्न सहित फल-मूल का भोजन करते, इन्द्रियों का दमन करते जटा-वल्कल धारण करते, पृथ्वी पर सोते और ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए नन्दिग्राम में निवास करने लगे ॥ ७३ ॥ इस पृथ्वी पर जितने भी राज-कार्य उनके सामने आते, उन्हें वे रघुश्रेष्ठ भरत पादुकाओं के सामने भली प्रकार निवेदन करते ॥ ७४ ॥

इस प्रकार भरत जी राम के आने की बाट जोहते हुए, उनके वनवास के दिनों को गिनते हुए, राम में ही मन लगाकर साक्षात् ब्रह्मर्षियों के

नागराश्च सदा यान्ति रामदर्शनलालसाः ।
चित्रकूटस्थितं ज्ञात्वा सीतया लक्ष्मणेन च ॥७७॥

दृष्ट्वा तज्जनसम्बाधं रामस्तत्याज तं गिरिम् ।
दण्डकारण्यगमने कार्यमप्यनुचिन्तयन् ॥७८॥

अन्वगात् सीतया भ्रात्रा ह्यत्रेराश्रममुत्तमम् ।
सर्वत्र सुखसंवासं जनसम्बाधवर्जितम् ॥७९॥

गत्वा मुनिमुपासीनं भासयन्तं तपोवनम् ।
दण्डवत् प्रणिपत्याह रामोऽहमभिवादये ॥८०॥

पितुराज्ञां पुरस्कृत्य दण्डकाननमागतः ।
वनवासमिषेणापि धन्योऽहं दर्शनात्तव ॥८१॥

श्रुत्वा रामस्य वचनं रामं ज्ञात्वा हरिं परम् ।
पूजयामास विधिवद् भक्त्या परमया मुनिः ॥८२॥

---

समान नियमपूर्वक नन्दिग्राम में निवास करने लगे ॥ ७५ ॥ इधर राम ने भी मुनियों से घिरे रहकर सीता और लक्ष्मण के साथ कुछ दिन चित्रकूट में व्यतीत किया ॥७६॥ सीता एवं लक्ष्मण के साथ चित्रकूट में विराजमान श्री रामचन्द्र जी को सुन कर नगरनिवासी प्रायः उनके दर्शनों की इच्छा से सदैव आने लगे ॥ ७७ ॥

तब रामचन्द्र जी ने इस प्रकार की भीड़ देखकर, एवं अपने दण्डकारण्य में जाने के कार्य को भी सोच कर चित्रकूट को छोड़ दिया ॥ ७८ ॥ पुनः सीता और लक्ष्मण के साथ वे अति उत्तम, जन-समूहशून्य, सुख से रहने योग्य, अत्रि मुनि के आश्रम पर गये ॥ ७९ ॥ उस आश्रम में जाकर अपने तेज से समस्त वन को उद्भासित करते हुए, अत्रि मुनि को आश्रम में बैठे हुए देखा। फिर उनके सन्निकट जाकर दण्डवत् प्रणाम कर कहा–'हे मुने ! मैं राम हूँ और आप का अभिवादन करता हूँ ॥ ८० ॥

हे मुने ! मैं पिता की आज्ञा से दण्डकारण्य में आया हूँ। आज इस वनवास के बहाने से भी आपका दर्शन पाकर धन्य हो गया' ॥ ८१ ॥ श्रीराम के इस वचन को सुनकर अत्रि मुनि ने उन्हें साक्षात् परब्रह्म जान

वन्यैः फलैः कृतातिथ्यमुपविष्टं रघूत्तम ! ।
सीतां च लक्ष्मणं चैव सन्तुष्टो वाक्यमब्रवीत् ॥८३॥

भार्या मेऽतीव संवृद्धा ह्यनसूयेति विश्रुता ।
तपश्चरन्ती सुचिरं धर्मज्ञा धर्मवत्सला ॥८४॥

अन्तस्तिष्ठति तां सीता पश्यत्वरिनिषूदन ! ।
तथेति जानकीं प्राह रामो राजीवलोचनः ॥८५॥

गच्छ देवीं नमस्कृत्य शीघ्रमेहि पुनः शुभे ! ।
तथेति रामवचनं सीता चापि तथाऽकरोत् ॥८६॥

दण्डवत् पतितामग्रे सीतां दृष्ट्वाऽतिहृष्टधीः ।
अनसूया समालिङ्ग्य वत्से ! सीतेति सादरम् ॥८७॥

दिव्ये ददौ कुण्डले द्वे निर्मिते विश्वकर्मणा ।
दुकूले द्वे ददौ तस्यै निर्मले भक्तिसंयुता ॥८८॥

---

कर अत्यन्त भक्ति से विधिपूर्वक पूजा की ॥ ८२ ॥ उन्होंने वन्य-फलों से अतिथि-सत्कार करने के उपरान्त आसन पर विराजमान श्रीराम, लक्ष्मण एवं जानकी से प्रसन्नता पूर्वक इस प्रकार कहा ॥ ८३ ॥

अनसूया नाम से विख्यात मेरी भार्या वृद्ध हो गयी है। वह धर्म के रहस्यों को जानने वाली एवं धर्मवत्सला है। और बहुत दिनों से तपस्या में निरत है ॥ ८४ ॥ हे अरिनिषूदन राम ! वह कुटी के भीतर बैठी हुई है, अतः सीता जाकर उसका दर्शन करें। तब राजवीलोचन राम ने 'तथाऽस्तु' कहकर जानकी से कहा ॥ ८५ ॥

हे शुभे ! तुम जाओ, और देवी को नमस्कार कर शीघ्रता से चली आओ। सीता ने भी 'बहुत अच्छा' कह कर राम की आज्ञा का पालन किया। ८६॥ अनसूया जी भी अपने आगे डण्डे के समान गिर पड़ी हुई सीता को देख कर प्रसन्न हो गयीं और 'बेटी सीता !' ऐसा कह कर उनका आदर-पूर्वक आलिङ्गन किया ॥ ८७ ॥ और बड़े स्नेह से विश्वकर्मा के द्वारा निर्मित दो दिव्य कुण्डल एवं दो स्वच्छ रेशमी साड़ियाँ दीं ॥ ८८ ॥ फिर

अङ्गरागं च सीतायै ददौ दिव्यं शुभानना ।
न त्यक्ष्यतेऽङ्गरागेण शोभा त्वां कमलानने ! ॥८९॥
पातिव्रत्यं पुरस्कृत्य राममन्वेहि जानकि ! ।
कुशली राघवो यातु त्वया सह पुनर्गृहम् ॥९०॥
भोजयित्वा यथान्यायं रामं सीतासमन्वितम् ।
लक्ष्मणं च तदा रामं पुनः प्राह कृताञ्जलिः ॥९१॥
राम ! त्वमेव भुवनानि विधाय तेषां
संरक्षणाय सुर-मानुष-तिर्यगादीन् ।
देहान् बिभर्षि न च देहगुणैर्विलिप्त-
स्त्वत्तो बिभेत्यखिलमोहकरी च माया ॥९२॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे
नवमः सर्गः ॥९॥

समाप्तमिदमयोध्याकाण्डम् ।

---

सुन्दर मुखवाली अनसूया ने सीता के लिए अत्युत्तम दिव्य अङ्गराग देते हुए कहा–हे कमलमखी ! इस अङ्गराग के लगाने से तुम्हारे शरीर की शोभा सदैव बनी रहेगी ॥८९॥

हे जानकी ! पातिव्रत्य धर्म का पालन करते हुए तुम सदैव राम की आज्ञा का पालन करना। रघुनाथ जी तुम्हारे साथ ही कुशल-पूर्वक घर लौटें ॥ ९० ॥ फिर उन्होंने सीता सहित राम एवं लक्ष्मण को विधिपूर्वक भोजन कराया। और हाथ जोड़ कर कहने लगीं ॥ ९१ ॥

हे राम ! तुम्हीं इन समस्त भुवनों की रचना कर उनके संरक्षण के लिए देवता, मनुष्य एवं तिर्यक् आदि योनियों में शरीर धारण करते हो किन्तु देह के गुणों से लिप्त नहीं होते। सारे संसार को मोहित करने वाली यह माया भी तुमसे सदा डरती रहती है ॥ ९२ ॥

इस प्रकार आचार्य पण्डित शिवदत्त मिश्र शास्त्रीकृत 'राम-प्रिया' हिन्दी टीका सहित अध्यात्म-रामायण के उमा-महेश्वर संवाद में अयोध्याकाण्ड का
नवम सर्ग समाप्त ॥ ९ ॥

# अध्यात्मरामायणम्

## 'रामप्रिया'-हिन्दीव्याख्या-सहितम्

## अरण्यकाण्डम्

*

### १. प्रथमः सर्गः

( विराध-वध )

श्रीमहादेव उवाच

अथ तत्र दिनं स्थित्वा प्रभाते रघुनन्दनः ।
स्नात्वा मुनिं समामन्त्र्य प्रयाणायोपचक्रमे ॥१॥
मुने ! गच्छामहे सर्वे मुनिमण्डलमण्डितम् ।
विपिनं दण्डकं यत्र त्वमाज्ञातुमिहार्हसि ॥२॥
मार्गप्रदर्शनार्थाय शिष्यानाज्ञप्तुमर्हसि ।
श्रुत्वा रामस्य वचनं प्रहस्यात्रिर्महायशाः ।
प्राह तत्र रघुश्रेष्ठं राम राम ! सुराश्रय ! ॥३॥
सर्वस्य मार्गद्रष्टा त्वं तव को मार्गदर्शकः ।
तथाऽपि दर्शयिष्यन्ति तव लोकानुसारिणः ॥४॥

---

श्री महादेव जी ने कहा—हे पार्वति ! उस दिन रघुनन्दन राम अत्रि के आश्रम में निवास कर प्रातःकाल नित्यक्रिया से निवृत्त हो मुनिवर की सम्मति लेकर दण्डकारण्य चलने को तैयार हो गये ॥ १ ॥

श्रीराम ने कहा—हे मुने ! अब हम मुनिगणों से सुशोभित दण्डकारण्य को जाना चाहते हैं । अतः आप हमें वहाँ जाने की आज्ञा प्रदान कीजिए ॥ २ ॥ और हमें मार्ग-दर्शन कराने हेतु शिष्यों को आज्ञा दीजिए । राम के इस वचन को सुन कर महायशस्वी अत्रि मुनि हँसते हुए

इति शिष्यान् समादिश्य स्वयं किञ्चित् तमन्वगात् ।
रामेण वारितः प्रीत्या अत्रिः स्वभवनं ययौ ॥५॥
क्रोशमात्रं ततो गत्वा ददर्श महतीं नदीम् ।
अत्रेः शिष्यानुवाचेदं रामो राजीवलोचनः ॥६॥
नद्याः सन्तरणे कश्चिदुपायो विद्यते न वा ।
ऊचुस्ते विद्यते नौका सुदृढा रघुनन्दन ! ॥७॥
तारयिष्यामहे युष्मान् वयमेव क्षणादिह ।
ततो नावि समारोप्य सीतां राघव-लक्ष्मणौ ॥८॥
क्षणात् सन्तारयामासुर्नदीं मुनिकुमारकाः ।
रामाभिनन्दिताः सर्वे जग्मुरत्रे रथाश्रमम् ॥९॥
तावेत्य विपिनं घोरं झिल्ली-झङ्कार-नादितम् ।
नानामृगगणाकीर्णं सिंह-व्याघ्रादि-भीषणम् ॥१०॥

---

राम से कहने लगे-हे राम ! हे देवताओं को आश्रय देने वाले प्रभो ! सबके मार्ग-दर्शक तो आप हैं, फिर भला आप का मार्ग दर्शक कौन हो सकता है ? किन्तु लोक रीति का अनुसरण करने वाले आप को मेरे शिष्यगण मार्ग दिखाने के लिए जायेंगे ॥ ३-४ ॥

इस प्रकार महर्षि अत्रि राम को मार्ग दिखाने हेतु शिष्यों को आज्ञा प्रदान कर स्वयं कुछ दूर तक उनके साथ गये । फिर उनके प्रीतिपूर्वक मना करने पर अपने आश्रम चले आये ॥ ५ ॥ अत्रि के आश्रम से कोशभर चलने के उपरान्त राम ने एक बहुत बड़ी नदी देखी । तब कमल-लोचन राम ने अत्रि के शिष्यों से पूछा ॥ ६ ॥

हे ब्रह्मचारियो ! इस नदी को पार करने के लिए कोई उपाय है अथवा नहीं ? तब शिष्यों ने कहा-हे रघुनन्दन ! यहाँ पर एक सुदृढ़ नौका है ॥ ७ ॥ उस नौका से क्षणमात्र में हम लोग आप को नदी के उस पार पहुँचा देंगे । उन मुनि-कुमारों ने सीता, राम एवं लक्ष्मण को नौका में बैठा कर नदी के उस पार पहुँचा दिया । श्रीरामचन्द्र जी के द्वारा प्रशंसित हो अत्रिमुनि के वे शिष्य आश्रम को लौट आये ॥ ८-९ ॥ तथा वे लोग

राक्षसैर्घोररूपैश्च सेवितं रोमहर्षणम् ।
प्रविश्य विपिनं घोरं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥११॥
इतः परं प्रयत्नेन गन्तव्यं सहितेन मे ।
धनुर्गुणेन संयोज्य शरानपि करे दधत् ॥१२॥
अग्रे यास्याम्यहं पश्चात् त्वमन्वेहि धनुर्धर ! ।
आवयोर्मध्यगा सीता मायेवात्मपरात्मनोः ॥१३॥
चक्षुश्चारय सर्वत्र दृष्टं रक्षोभयं महत् ।
विद्यते दण्डकारण्ये श्रुतपूर्वमरिन्दम ! ॥१४॥
इत्येवं भाषमाणौ तौ जग्मतुः सार्धयोजनम् ।
तत्रैका पुष्करिण्यास्ते कह्लार-कुमुदोत्पलैः ॥१५॥
अम्बुजैः शीतलोदेन शोभमाना व्यदृश्यत ।
तत्समीपमथो गत्वा पीत्वा तत्सलिलं शुभम् ॥१६॥

---

झिल्लियों के झनकार से शब्दायमान, वन्य-पशुओं से व्याप्त और सिंह, व्याघ्र आदि हिंस्र जन्तुओं से महाभयानक वन में पहुँच गये ॥ १० ॥

अत्यन्त भयानक रूप धारण करने वाले राक्षस उस वन में रहते थे। जहाँ जाने पर लोगों के रोंगटे खड़े हो जाते थे। उस घोर वन में जाने के बाद श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा—॥ ११ ॥ भाई लक्ष्मण ! अब यहाँ से हम दोनों को बहुत सावधानी से चलना चाहिए। धनुष पर डोरी चढ़ा कर और हाथ में बाण लेकर आगे-आगे मैं चलूँगा। तुम अपना धनुष लेकर पीछे-पीछे चलो। और जिस प्रकार आत्मा तथा परमात्मा के बीच में माया रहती है उसी प्रकार यह सीता हम दोनों के मध्य में होकर चलें ॥ १२-१३ ॥ हे अरिन्दम ! हमने 'दण्डकारण्य में राक्षसों का बहुत बड़ा भय रहा करता है' ऐसा पूर्व में सुना है और यहाँ पर वह भय दिखाई दे रहा है, इसलिए चारों ओर निगाह दौड़ाते हुए चलो ॥ १४ ॥

इस प्रकार आपस में बात-चीत करते हुए वे दोनों अत्रि मुनि के आश्रम से डेढ़ योजना दूर चले आये। वहाँ पर कुमुद, कह्लार एवं कमलिनी आदि से सुशोभित एक पुष्करिणी ( तलैया ) थी ॥ १५ ॥ शीतल जल से परिपूर्ण उस पुष्करिणी में कमल-समूह खिले हुए थे। उसके निकट जाकर

ऊषुस्ते सलिलाभ्याशे क्षणं छायामुपाश्रिताः ।
ततो ददृशुरायान्तं महासत्त्वं भयानकम् ॥१७॥
करालदंष्ट्रवदनं भीषयन्तं स्वगर्जितैः ।
वामांसे न्यस्त-शूलाग्र-ग्रथितानेक-मानुषम् ॥१८॥
भक्षयन्तं गज-व्याघ्र-महिषं वनगोचरम् ।
ज्यारोपितं धनुर्धृत्वा रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥१९॥
पश्य भ्रातर्महाकायो राक्षसोऽयमुपागतः ।
आयात्यभिमुखं नोऽग्रे भीरूणां भयमावहन् ॥२०॥
सज्जीकृतधनुस्तिष्ठ मा भैर्जनकनन्दिनि ! ।
इत्युक्त्वा बाणमादाय स्थितो राम इवाचलः ॥२१॥
स तु दृष्ट्वा रमानाथं लक्ष्मणं जानकीं तदा ।
अट्टहासं ततः कृत्वा भीषयन्निदमब्रवीत् ॥२२॥

---

उन लोगों ने उसका जल पान किया ॥ १६ ॥ पुनः जल के निकट विश्राम करने की इच्छा से छाया में बैठ गये। इतने में महाभयानक, अत्यन्त बलवान् एक राक्षस उन्हें आता हुआ दिखाई पड़ा ॥ १७ ॥ उसके मुख के दांत बहुत तीक्ष्ण थे, अपनी गर्जना से वह महाभय उत्पन्न करता था। उसके बायें कन्धे पर त्रिशूल लटक रहा था, जिसके अग्र भाग में बहुत-से मरे हुए मनुष्य गुँथे हुए थे ॥ १८ ॥ वह वन में दिखाई पड़ने वाले गज, व्याघ्र एवं महिष को खाता हुआ आ रहा था, तब उस धनुष को जिस पर डोरी चढ़ी हुई थी, उसे हाथ में उठाकर राम ने लक्ष्मण से कहा ॥ १९ ॥

हे भाई ! देखो, भीरुओं को महाभय उत्पन्न करने वाला यह महाकाय राक्षस हमलोगों की ओर बढ़ा चला आ रहा है ॥२०॥ अतः तुम भी अपना धनुष चढ़ा लो। 'हे जनकनन्दिनि ! तुम डरो मत।' ऐसा कहकर श्रीराम धनुष पर बाण चढ़ाकर पर्वत के समान अचल होकर खड़े हो गये ॥२१॥

तदनन्तर उस राक्षस ने राम-जानकी एवं लक्ष्मण को देखकर महाभयानक अट्टहास किया और उन्हें भयभीत करते हुए इस प्रकार कहने लगा—॥ २२ ॥ अरे ! बाण, तरकस, जटा और वल्कल धारण किये हुए

कौ युवां बाण-तूणीर-जटा-वल्कलधारिणौ ।
मुनिवेषधरौ बालौ स्त्रीसहायौ सुदुर्मदौ ॥२३॥

सुन्दरौ बत मे वक्त्र-प्रविष्ट-कवलोपमौ ।
किमर्थमागतौ घोरं वनं व्यालनिषेवितम् ॥२४॥

श्रुत्वा रक्षोवचो रामः स्मयमान उवाच तम् ।
अहं रामस्त्वयं भ्राता लक्ष्मणो मम सम्मतः ॥२५॥

एषा सीता मम प्राणवल्लभा वयमागताः ।
पितृवाक्यं पुरस्कृत्य शिक्षणार्थं भवादृशाम् ॥२६॥

श्रुत्वा तद्रामवचनमट्टहासमथाऽकरोत् ।
व्यादाय वक्त्रं बाहुभ्यां शूलमादाय सत्वरः ॥२७॥

मां न जानासि राम ! त्वं विराधं लोकविश्रुतम् ।
मद्भयान् मुनयः सर्वे त्यक्त्वा वनमितो गताः ॥२८॥

यदि जीवितुमिच्छाऽस्ति त्यक्त्वा सीतां निरायुधौ ।
पलायतं न चेच्छीघ्रं भक्षयामि युवामहम् ॥२९॥

---

मुनि का वेष धारण कर वन में विचरने वाले ! तुम दोनों बालक कौन हो ? तुम्हारे साथ यह एक स्त्री है ( वह कौन है ) तथा तुम लोग बड़े उन्मत्त दिखाई पड़ रहे हो ॥ २३ ॥ तुम दोनों बड़े सुन्दर हो तथा मेरे मुख में प्रविष्ट ग्रास के समान कोमल हो। बताओ, तुम लोग हिंसक जीवों से पूर्ण इस घोर जंगल में क्यों आये हो ? ॥ २४ ॥ राक्षस के इस वचन को सुनकर रामचन्द्रजी ने हँसते हुए उससे कहा—मैं राम हूँ, और यह मेरा आज्ञाकारी छोटा भाई लक्ष्मण है ॥ २५ ॥ मेरे साथ में रहने वाली यह स्त्री मेरी प्राणवल्लभा सीता है। हम लोग पिता की आज्ञा मानकर तुम्हारे जैसे क्रूर लोगों को शिक्षा देने हेतु इस वन में आये हुए हैं ॥ २६ ॥

राम के इस वाक्य को सुनकर वह राक्षस अट्टहास करने लगा और अपना मुँह फैला कर हाथों में त्रिशूल लेकर उनसे कहने लगा— ॥ २७ ॥ हे राम ! क्या तुम नहीं जानते कि मैं लोक-प्रख्यात विराध नामक राक्षस हूँ। यहाँ निवास करने वाले समस्त मुनि मेरे भय से इस वन को छोड़कर

इत्युक्त्वा राक्षसः सीतामादातुमभिदुद्रुवे ।
रामश्चिच्छेद तद्-बाहू शरेण प्रहसन्निव ॥३०॥
ततः क्रोधपरीतात्मा व्यादाय विकटं मुखम् ।
राममभ्यद्रवद्रामश्चिच्छेद परिधावतः ॥३१॥
पदद्वयं विराधस्य तदद्भुतमिवाभवत् ॥३२॥
ततः सर्प इवास्येन ग्रसितुं राममापतत् ।
ततोऽर्धचन्द्राकारेण बाणेनास्य महच्छिरः ॥३३॥
चिच्छेद रुधिरौघेण पपात धरणीतले ।
ततः सीता समालिङ्ग्य प्रशशंस रघूत्तमम् ॥३४॥
ततो दुन्दुभयो नेदुर्दिवि देवगणेरिताः ।
ननृतुश्चाप्सरा हृष्टा जगुर्गन्धर्व-किन्नराः ॥३५॥
विराधकायादतिसुन्दराकृतिर्विभ्राजमानो विमलाम्बरावृतः ।
प्रतप्त-चामीकर-चारुभूषणो व्यदृश्यताग्रे गगने रविर्यथा ॥३६॥

---

अन्यत्र चले गये हैं ॥ २८ । यदि तुम दोनों को अपने जीवन की इच्छा हो तो सीता को छोड़कर बिना शस्त्रों के यहाँ से भाग जाओ अन्यथा मैं तुम दोनों को खा जाऊँगा ॥ २९ ॥ ऐसा कहकर वह राक्षस सीता को पकड़ने के लिए शीघ्रता से उनकी ओर दौड़ पड़ा । तब राम ने हँसते हुए अपने बाण से उसकी भुजायें काट डालीं ॥ ३० ॥

तदनन्तर क्रोध में भरा हुआ वह राक्षस अपना विकराल मुँह फैलाकर शीघ्रता से राम की ओर दौड़ा । राम ने अपनी ओर आते हुए उस राक्षस के दोनों पैर काट दिये । उस समय वह बड़ा आश्चर्य-सा हो गया ॥३१-३२॥ तत्पश्चात् वह राम को मुख से खाने के लिए साँप के समान सरकता हुआ उनकी ओर बढ़ा । तब राम ने अपने अर्ध-चन्द्राकार बाण से उसका महान् सिर काट दिया ॥ ३३ ॥

इस प्रकार रुधिर से लथपथ हो वह पृथ्वी पर गिर पड़ा और मर गया । सीता ने श्रीराम का आलिङ्गन किया । और भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगीं ॥ ३४ ॥ उस समय देवता लोग आकाश में दुन्दुभी बजाने लगे । अप्सराएँ नाचने लगीं और गन्धर्व एवं किन्नर गान करने लगे ॥ ३५ ॥

प्रणम्य रामं प्रणतार्तिहारिणं, भवप्रवाहोपरमं घृणाकरम् ।
प्रणम्य भूयः प्रणनाम दण्डवत्, प्रपन्नसर्वार्तिहरं प्रसन्नधीः ॥३७॥

विराध उवाच

श्रीराम ! राजीवदलायताक्ष !, विद्याधरोऽहं विमलप्रकाशः ।
दुर्वाससा कारण-कोपमूर्तिना, शप्तः पुरा सोऽद्य विमोचितस्त्वया ॥३८॥
इतः परं त्वच्चरणारविन्दयोः, स्मृतिः सदा मेऽस्तु भयोपशान्तये ।
त्वन्नामसङ्कीर्तनमेव वाणी, करोतु मे कर्णपुटं त्वदीयम् ॥३९॥
कथामृतं पातु करद्वयं ते, पादारविन्दार्चनमेव कुर्यात् ।
शिरश्च ते पादयुगप्रणामं, करोतु नित्यं भवदीयमेवम् ॥४०॥
नमस्तुभ्यं भगवते विशुद्धज्ञानमूर्तये ।
आत्मारामाय रामाय सीतारामाय वेधसे ॥४१॥

---

विराध के शरीर से अत्यन्त सुन्दर आकृति से शोभायमान, स्वच्छ वस्त्र धारण किये, तपाये हुए सोने के आभूषणों से सुसज्जित एक पुरुष प्रकट हुआ, जो आकाश स्थित सूर्यदेव के समान देदीप्यमान हो रहा था ॥ ३६ ॥ उसने शरणागतों के भय को दूर करने वाले, संसार-समुद्र से मुक्त करने वाले दयामय श्रीरामचन्द्रजी को दण्डवत् प्रणाम कर परम प्रसन्नता से कहा— ॥ ३७ ॥

विराध ने कहा—हे कमलदल विशाल नयन, मैं स्वच्छ तेजोमय सम्पन्न विद्याधर हूँ । हे नाथ ! अकारण क्रोध करने वाले दुर्वासा मुनि ने मुझे शाप दिया था । आपने मुझे उस शाप से मुक्त कर दिया ॥ ३८ ॥ हे नाथ ! अब मुझे संसार के जन्म-मरण आदि बन्धन को दूर करने के लिए आपके चरणारविन्दों की स्मृति बराबर बनी रहे । और वाणी आपके नामों का संकीर्तन करती रहे तथा मेरे कर्णपुट आपके कथामृत का निरन्तर पान करते रहें ॥ ३९ ॥

हे नाथ ! मेरे दोनों हाथ आपके पादार्चन करते रहें एवं मेरा सिर आपके चरणयुगल में प्रणाम करता रहे ॥ ४० ॥ हे भगवन् ! विशुद्ध ज्ञान स्वरूप, आत्मा मात्र में रमण करने से रामस्वरूप एवं माया के साथ विराजमान होने से सीता रामस्वरूप, संसार की रचना करने के कारण हिरण्य गर्भस्वरूप आपको नमस्कार है ॥ ४१ ॥

प्रपन्नं पाहि मां राम ! यास्यामि त्वदनुज्ञया ।
देवलोकं रघुश्रेष्ठ ! माया मां मा वृणोतु ते ॥४२॥
इति विज्ञापितस्तेन प्रसन्नो रघुनन्दनः ।
ददौ वरं तदा प्रीतो विराधाय महामतिः ॥४३॥
गच्छ विद्याधराशेष-मायादोष-गुणा जिताः ।
त्वया मद्दर्शनात् सद्यो मुक्तो ज्ञानवतां वरः ॥४४॥
मद्भक्तिर्दुर्लभा लोके जाता चेन्मुक्तिदा यतः ।
अतस्त्वं भक्तिसम्पन्नः परं याहि ममाज्ञया ॥४५॥
रामेण रक्षोनिधनं सुघोरं, शापाद् विमुक्तिर्वरदानमेवम् ।
विद्याधरत्वं पुनरेव लब्धं, रामं गृणन्नेति नरोऽखिलार्थान् ॥४६॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वर-संवादे
अरण्यकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥१॥



---

हे राम ! मैं आपकी शरणागत हूँ, आप मेरी रक्षा कीजिए। मैं आपकी आज्ञा से स्वर्ग जा रहा हूँ। अब आपकी माया मुझे आच्छादित न करे॥ ४२ ॥ विराध के द्वारा इस प्रकार प्रार्थना किये जाने पर महामति भगवान् राम ने प्रसन्न होकर उसको वरदान दिया॥ ४३ ॥

हे विद्याधर ! तुम जाओ। अब तुम मेरी माया के सम्पूर्ण गुणों एवं दोषों को जीत चुके हो। तुम ज्ञानियों में श्रेष्ठ हो और मेरे दर्शन से तुम शीघ्र ही मुक्त हो गये हो॥ ४४ ॥ इस लोक में मेरी भक्ति दुर्लभ है, यदि वह किसी को प्राप्त हो जाती है, तो अवश्य मुक्ति प्रदान करती है। इसलिए तुम भक्ति-सम्पन्न होकर दिव्य लोक को जाओ॥ ४५ ॥

इस प्रकार श्रीराम ने भयंकर विराध राक्षस का वध किया। उसे दुर्वासा के शाप से मुक्त किया, विद्याधरत्व प्राप्त करवा कर उसे वरदान दिया। ऐसे राम को, जो कीर्त्तन द्वारा स्मरण करता है वह अपने समस्त अभिलषित पदार्थों को प्राप्त करता है॥ ४६ ॥

इस प्रकार आचार्य पण्डित शिवदत्त मिश्र शास्त्रीकृत 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या सहित अध्यात्मरामायण के उमा-महेश्वर-संवाद में अरण्य-काण्ड का प्रथम सर्ग समाप्त ॥१॥

*

## १. द्वितीयः सर्गः

( शरभङ्ग और सुतीक्ष्ण आदि मुनीश्वरों से भेंट )

श्रीमहादेव उवाच

विराधे स्वर्गते रामो लक्ष्मणेन च सीतया ।
जगाम शरभङ्गस्य वनं सर्वसुखावहम् ॥१॥
शरभङ्गस्ततो दृष्ट्वा रामं सौमित्रिणा सह ।
आयान्तं सीतया सार्धं सम्भ्रमादुत्थितः सुधीः ॥२॥
अभिगम्य सुसम्पूज्य विष्टरेषूपवेशयत् ।
आतिथ्यमकरोत् तेषां कन्द-मूल-फलादिभिः ॥३॥
प्रीत्याह शरभङ्गोऽपि रामं भक्तपरायणम् ।
बहुकालमिहैवासं तपसे कृतनिश्चयः ॥४॥
तव सन्दर्शनाकाङ्क्षी राम ! त्वं परमेश्वरः ।
अद्य मत्तपसा सिद्धं यत्पुण्यं बहु विद्यते ।
तत्सर्वं तव दास्यामि ततो मुक्तिं व्रजाम्यहम् ॥५॥

---

श्री महादेवजी ने कहा—हे पार्वति ! विराध के स्वर्ग चले जाने पर श्री राम, लक्ष्मण एवं सीता सहित, शरभङ्ग मुनि के सर्व-सुख सम्पन्न तपोवन में गये ॥१॥ परम बुद्धिमान् शरभङ्ग मुनि ने जब लक्ष्मण, सीता के सहित श्री राम को आते हुए देखा तो वे सहसा उठ खड़े हुए ॥ २ ॥ उनकी अगवानी की । तथा भली भाँति पूजा कर उन्हें आसन पर बैठाया । और कन्द-मूल एवं फलादि से उनका आतिथ्य-सत्कार किया ॥ ३ ॥

शरभङ्ग ने भक्तों के ऊपर कृपा करने वाले भक्त-परायण श्री राम से प्रसन्नता पूर्वक कहा—हे राम ! मैं आपके दर्शन की इच्छा से तपस्या का निश्चय कर बहुत समय तक यहाँ रहा । हे राम ! आप परमेश्वर हैं । आज मेरी तपस्या से प्राप्त जो बहुत-से पुण्य हैं, उन सभी पुण्यों को आपको समर्पित कर रहा हूँ । और स्वयं मोक्ष पद को जाना चाहता हूँ ॥४-५॥

समर्प्य रामस्य महत्सुपुण्यं, फलं विरक्तः शरभङ्गयोगी।
चितिं समारोहयदप्रमेयं, रामं ससीतं सहसा प्रणम्य ॥६॥
ध्यायंश्चिरं राममशेषहृत्स्थं दूर्वादलश्यामलमम्बुजाक्षम्।
चीराम्बरं स्निग्धजटाकलापं, सीतासहायं सहलक्ष्मणं तम् ॥७॥
को वा दयालुः स्मृतकामधेनुरन्यो जगत्यां रघुनायकादहो।
स्मृतो मया नित्यमनन्यभाजा, ज्ञात्वा स्मृतिं मे स्वयमेव यातः ॥८॥
पश्यत्विदानीं देवेशो रामो दाशरथिः प्रभुः।
दग्ध्वा स्वदेहं गच्छामि ब्रह्मलोकमकल्मषः ॥९॥
अयोध्याधिपतिर्मेऽस्तु हृदये राघवः सदा।
यद्वामाङ्के स्थिता सीता मेघस्येव तडिल्लता ॥१०॥
इति रामं चिरं ध्यात्वा दृष्ट्वा च पुरतः स्थितम्।
प्रज्वाल्य सहसा वह्निं दग्ध्वा पञ्चात्मकं वपुः ॥११॥

---

ऐसा कह महाविरक्त योगी शरभङ्ग महर्षि अपनी तपस्या से अर्जित समस्त पुण्य राम को समर्पित किया। पुनः सीता सहित अप्रमेय परमात्मा श्री राम को प्रणाम कर चिता पर आरूढ हो गये ॥ ६ ॥

उस समय वे सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में निवास करने वाले दूर्वादल के समान श्यामल शरीर, कमल नेत्र, वल्कल वस्त्र धारी, सुन्दर जटा-जूट धारण करने वाले, सीता एवं लक्ष्मण के सहित विराजमान श्री राम का बहुत काल पर्यन्त ध्यान कर रहे थे ॥ ७ ॥ और मन-ही-मन ऐसा सोच रहे थे, अहा! इस जगत् में स्मरण मात्र से ही कामधेनु के समान, समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले श्री राम के समान और कौन दयालु है? मैं अनन्य भक्ति से उनका स्मरण कर रहा था, किन्तु वे मेरे स्मरण को जानकर स्वयमेव यहाँ पहुँच गये ॥ ८ ॥

यह दशरथनन्दन देवेश राम मुझे इस समय देखते रहें कि मैं निष्पाप होकर अपने शरीर को जलाकर ब्रह्मलोक को जा रहा हूँ ॥ ९ ॥ जिनके वामाङ्क में, मेघस्थित बिजली के समान श्री सीता जी विराजमान हैं, ऐसे अयोध्यापति श्री राम मेरे हृदय में निवास करें ॥ १० ॥

इस प्रकार बहुत काल पर्यन्त राम का ध्यान करते हुए एवं अपने आगे

दिव्यदेहधरः साक्षाद् ययौ लोकपतेः पदम् ।
ततो मुनिगणाः सर्वे दण्डकारण्यवासिनः ।
आजग्मू राघवं द्रष्टुं शरभङ्गनिवेशनम् ॥१२॥
दृष्टवा मुनिसमूहं तं जानकी-राम-लक्ष्मणाः ।
प्रणेमुः सहसा भूमौ मायामानुषरूपिणः ॥१३॥
आशीभिरभिनन्द्याथ रामं सर्वहृदि स्थितम् ।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे धनुर्बाणधरं हरिम् ॥१४॥
भूमेर्भारावताराय जातोऽसि ब्रह्मणार्थितः ।
जानीमस्त्वां हरिं लक्ष्मीं जानकीं लक्ष्मणं तथा ॥१५॥
शेषांशं शङ्ख - चक्रे द्वे भरतं सानुजं तथा ।
अतश्चादौ ऋषीणां त्वं दुःखं भोक्तुमिहार्हसि ॥१६॥
आगच्छ यामो मुनिसेवितानि, वनानि सर्वाणि रघूत्तम! क्रमात् ।
द्रष्टुं सुमित्रासुत-जानकीभ्यां, तदा दयास्मासु दृढा भविष्यति ॥१७॥

---

संस्थित प्रत्यक्ष श्री राम के स्वरूप का दर्शन करते हुए शरभङ्ग महर्षि ने चिता में आग लगाकर अपने पाञ्च भौतिक शरीर को जला दिया ॥ ११ ॥ वे दिव्य शरीर धारण कर साक्षात् ब्रह्मलोक को चले गये। तदनन्तर दण्डकारण्य में रहने वाले सभी मुनिगण श्री राम को देखने के लिए शरभङ्ग मुनि के आश्रम में आये ॥ १२ ॥ उन मुनि-समूह को देखकर माया मानव रूप धारी सीता, राम और लक्ष्मण ने सहसा पृथ्वी पर माथा टेकते हुए उन्हें प्रणाम किया ॥ १३ ॥ उन मुनियों ने सर्वान्तिर्यामी श्री राम को आशीर्वाद देकर उनका अभिनन्दन किया। और हाथ जोड़कर धनुर्बाण-धारी श्री राम से कहने लगे ॥ १४ ॥

हे राम ! आप ब्रह्मा द्वारा प्रार्थना किये जाने पर पृथ्वी का भार उतारने के लिए अवतीर्ण हुए हैं। हम लोग आप राम को विष्णु, जानकी को महालक्ष्मी एवं लक्ष्मण को शेषांश समझ रहे हैं ॥ १५ ॥ इसी प्रकार भरत एवं शत्रुघ्न को भी शङ्ख, चक्र का अवतार जानते हैं। इसलिए अवतार लेने के कारण आप अब सर्वप्रथम ऋषियों के दुःख को दूर कीजिए ॥ १६ ॥

हे रघूत्तम ! अब आप आइए और सीता, लक्ष्मण के सहित हमारे साथ

इति विज्ञापितो रामः कृताञ्जलिपुटैर्विभुः ।
जगाम मुनिभिः सार्द्धं द्रष्टुं मुनिवनानि सः ॥१८॥
ददर्श तत्र पतितान्यनेकानि शिरांसि सः ।
अस्थिभूतानि सर्वत्र रामो वचनमब्रवीत् ॥१९॥
अस्थीनि केषामेतानि किमर्थं पतितानि वै ।
तमूचुर्मुनयो राम ! ऋषीणां मस्तकानि हि ॥२०॥
राक्षसैर्भक्षितानीश ! प्रमत्तानां समाधितः ।
अन्तरायं मुनीनां ते पश्यन्तोऽनुचरन्ति हि ॥२१॥
श्रुत्वा वाक्यं मुनीनां स भय-दैन्यसमन्वितम् ।
प्रतिज्ञामकरोद् रामो वधायाशेषरक्षसाम् ॥२२॥
पूज्यमानः सदा तत्र मुनिभिर्वनवासिभिः ।
जानक्या सहितो रामो लक्ष्मणेन समन्वितः ॥२३॥
उवास कतिचित्तत्र वर्षाणि रघुनन्दनः ।
एवं क्रमेण संपश्यन्नृषीणामाश्रमान् विभुः ॥२४॥

---

क्रमशः मुनियों के आश्रम को देखिए। देखने के अनन्तर आप को इस लोगों पर बहुत दया आयेगी ॥१७॥ इस प्रकार हाथ जोड़कर मुनियों के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर प्रभु राम मुनियों के साथ उनके आश्रमों को देखने के लिए उस वन में चले ॥ १८ ॥ वहाँ पर उन्होने बहुत-सी खोपड़ियाँ पड़ी हुई देखीं। उन अस्थि-समूह को देखकर राम ने ऋषियों से पूछा ॥ १९ ॥

हे मुनीश्वरो ! ये किसकी अस्थियाँ हैं और यहाँ पर क्यों रखी गयी हैं ? ऋषियों ने कहा— ये उन ऋषियों के मस्तक हैं। २० ॥ जिन्हें राक्षसों ने खा लिया है। हे ईश ! ये राक्षस, समाधि में मग्न महर्षियों को भक्षण करने के लिए अवसर की प्रतीक्षा में इधर-उधर घूमते रहते हैं ॥ २१ ॥ उस समय भय और दीनता से भरे हुए महर्षियों के वचन को सुन कर श्री राम ने सम्पूर्ण राक्षसों को मारने की प्रतिज्ञा की ॥ २२ ॥ इस प्रकार क्रमशः मुनियों के आश्रम को देखते हुए महर्षियों से सत्कृत होकर राम, लक्ष्मण एवं सीता कुछ वर्षों तक उस वन में रहे ॥ २३-२४ ॥ इसके बाद वे

सुतीक्ष्णस्याश्रमं प्रागात् प्रख्यातमृषिसङ्कुलम् ।
सर्वर्तुगुणसम्पन्नं सर्वकालसुखावहम् ॥२५॥
राममागतमाकर्ण्य सुतीक्ष्णः स्वयमागतः ।
अगस्त्यशिष्यो रामस्य मन्त्रोपासनतत्परः ।
विधिवत् पूजयामास भक्त्युत्कण्ठितलोचनः ॥२६॥

सुतीक्ष्ण उवाच

त्वन्मन्त्र - जाप्यहमनन्त - गुणाप्रमेय-
सीतापते ! शिव-विरिञ्चि-समाश्रिताङ्घ्रे ।
संसार - सिन्धुतरणामल - पोतपाद !
रामाभिराम ! सततं तव दासदासः ॥२७॥
मामद्य सर्वजगतामधिगोचरस्त्वं
त्वन्मायया सुत-कलत्र-गृहान्धकूपे ।
मग्नं निरीक्ष्य मल-पुद्गल-पिण्डमोह-
पाशानुबद्धहृदयं स्वयमागतोऽसि ॥२८॥

---

विख्यात सुतीक्ष्ण के आश्रम में गये। वह आश्रम ऋषि-समूहों से भरा हुआ था। सभी ऋतुओं के गुणों से युक्त एवं सर्वकाल सुखदायक था ॥ २५ ॥

राम के आगमन का समाचार सुनकर राममन्त्र के उपासक, अगस्त्य-शिष्य सुतीक्ष्ण स्वयं अगवानी करने के लिए आये। उनके नेत्र राम की भक्ति से उनके दर्शन के लिए उत्कण्ठित हो रहे थे। उन्होंने शास्त्रीय रीति से राम का पूजन किया ॥ २६ ॥

सुतीक्ष्ण ने कहा—हे अनन्तगुण ! हे अप्रमेय ! मैं सदैव आप के मन्त्रों का जप करता हूँ। हे सीतापते ! शिव एवं ब्रह्मा भी आपके चरणों के आश्रित रहा करते हैं। हे रामाभिराम ! आपके चरण संसार रूपी समुद्र को पार करने के लिए सुदृढ़ पोत हैं। मैं आपके दासों का दास हूँ ॥ २७ ॥ आप संसारी प्राणियों के इन्द्रियों से अगोचर हैं। आप मुझे सुत-कलत्र से युक्त गृह रूपी अन्ध कूप में अपनी माया से गिरा हुआ और मल-मूत्र के पुतले से इस शरीर को पाश में बँधा हुआ देख दर्शन देने के लिए स्वयं ही पधारे हैं ॥ २८ ॥

त्वं सर्वभूतहृदयेषु कृतालयोऽपि
त्वन्मन्त्र-जाप्य-विमुखेषु तनोषि मायाम् ।
त्वन्मन्त्रसाधनपरेष्वपयाति माया
सेवानुरूपफलदोऽसि यथा महीपः ॥२९॥

विश्वस्य सृष्टि-लय - संस्थितिहेतुरेक-
स्त्वं मायया त्रिगुणया विधिरीशविष्णू ।
भासीश ! मोहितधियां विविधाकृतिस्त्वं
यद्वद्-रविः सलिलपात्रगतो ह्यनेकः ॥३०॥

प्रत्यक्षतोऽद्य भवतश्चरणारविन्दं
पश्यामि राम ! तमसः परतः स्थितस्य ।
दृग्रूपतस्त्वमसतामविगोचरोऽपि
त्वन्मन्त्रपूतहृदयेषु सदा प्रसन्नः ॥३१॥

---

यद्यपि आप सभी प्राणियों के हृदय में निवास करते हैं, किन्तु जो लोग आपके मन्त्र-जाप से विमुख हैं, उन्हें माया से मोहित करते रहते हैं और जो आपके मन्त्रों का जप करते हैं उन्हें आप अपनी माया से दूर रखते हैं। इस प्रकार राजा के समान, आप उनकी सेवा के अनुरूप फल देते रहते हैं ॥ २९ ॥ हे ईश ! आप इस विश्व की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय के कारण एक ही हैं, किन्तु त्रिगुणात्मिका माया के प्रभाव से आप ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव इन तीन रूपों से भासित होते रहते हैं। आप माया-मोहित मनुष्यों के लिए एक होते हुए भी अनेक रूपों से इस प्रकार भासित होते रहते हैं, जैसे एक ही सूर्य नाना प्रकार के जलपात्रों में अनेक रूपों से प्रतिबिम्बित होता है ॥ ३० ॥

हे प्रभो ! आप तमोगुण से परे हैं किन्तु मैं तो आपके चरण-कमलों का प्रत्यक्ष दर्शन कर रहा हूँ। अन्तर्यामी रूप से आप सबके साक्षी होते हुए भी असत्पुरुषों के इन्द्रियों से अगोचर हो, किन्तु जिनका हृदय तुम्हारे मन्त्र के जप से शुद्ध हो गया है, उनको प्रसन्न होकर आप दर्शन भी देते हो ॥ ३१ ॥ हे राम ! आप रूपरहित हैं, किन्तु माया की विडम्बना से

पश्यामि राम ! तव रूपमरूपिणोऽपि
मायाविडम्बनकृतं सुमनुष्यवेषम् ।
कन्दर्पकोटिसुभगं कमनीयचाप-
बाणं दयार्द्रहृदयं स्मितचारुवक्त्रम् ॥३२॥

सीतासमेतमजिनाम्बरमप्रधृष्यं
सौमित्रिणा नियत-सेवित-पादपद्मम् ।
नीलोत्पल-द्युतिमनन्तगुणं प्रशान्तं
मद्भागधेयमनिशं प्रणमामि रामम् ॥३३॥

जानन्तु राम ! तव रूपमशेषदेश-
कालाद्युपाधिरहितं घनचित्प्रकाशम् ।
प्रत्यक्षतोऽद्य मम गोचरमेतदेव
रूपं विभातु हृदये न परं विकाङ्क्षे ॥३४॥

इत्येवं स्तुवतस्तस्य रामः सुस्मितमब्रवीत् ।
मुने ! जानामि ते चित्तं निर्मलं मदुपासनात् ॥३५॥

---

मनुष्य वेष धारण किये हुए आपके रूप को मैं देख रहा हूँ। आपका यह मनुष्य रूप करोड़ों कामदेव से भी अधिक सुन्दर है। आप सुन्दर धनुष-बाण धारण किये हुए हैं, आपका हृदय दया से आर्द्र है एवं मुख-मण्डल मन्द स्मित से सुशोभित है ॥ ३२ ॥ आप सीता से युक्त हैं, कृष्णमृग के चर्म को धारण किये हुए हैं, आप सर्वथा अजेय हैं, आपके चरण-कमलों की सेवा श्रीलक्ष्मणजी करते रहते हैं। नीले कमल के समान आपके शरीर की आभा है, आप अनन्त गुणों से युक्त एवं प्रशान्तस्वरूप हैं, कि बहुना आप मेरे सौभाग्यस्वरूप हैं, इस प्रकार के राम को मैं प्रणाम करता हूँ ॥३३॥

हे राम ! यदि कोई आपके रूप को सम्पूर्ण देश-काल की उपाधि से रहित, चिद्घन एवं प्रकाशस्वरूप जानता हो तो जाने, किन्तु मैं तो आज जिस प्रत्यक्ष रूप का दर्शन कर रहा हूँ वही रूप मेरे हृदय में भासित होता रहे। इसके अतिरिक्त मुझे किसी अन्य रूप की इच्छा नहीं है ॥ ३४ ॥ सुतीक्ष्ण के द्वारा इस प्रकार की स्तुति किये जाने पर राम ने हँसते हुए

अतोऽहमागतो द्रष्टुं मद्भक्तं नान्यसाधनम् ।
मन्मन्त्रोपासका लोके मामेव शरणं गताः ॥३६॥
निरपेक्षा नान्यगतास्तेषां दृश्योऽहमन्वहम् ।
स्तोत्रमेतत् पठेद् यस्तु त्वत्कृतं मत्प्रियं सदा ॥३७॥
सद्भक्तिर्मे भवेत्तस्य ज्ञानं च विमलं भवेत् ।
त्वं ममोपासनादेव विमुक्तोऽसीह सर्वतः ॥३८॥
देहान्ते मम सायुज्यं लप्स्यसे नात्र संशयः ।
गुरुं ते द्रष्टुमिच्छामि ह्यगस्त्यं मुनिनायकम् ।
किञ्चित् कालं तत्र वस्तुं मनो मे त्वरयत्यलम् ॥३९॥
सुतीक्ष्णोऽपि तथेत्याह श्वो गमिष्यसि राघव ! ।
अहमप्यागमिष्यामि चिराद् दृष्टो महामुनिः ॥४०॥

---

कहा—हे मुने ! मैं जानता हूँ कि तुम्हारा चित्त मेरी उपासना से निर्मल हो गया है ॥ ३५ ॥ तुम्हारे लिए मेरे अतिरिक्त और कोई दूसरा साधन नहीं है इसलिए मैं तुम्हें देखने के लिए स्वयं आ गया हूँ । इस संसार में जो लोग मेरी उपासना करते हैं एवं मेरी शरण में रहते हैं ॥ ३६ ॥

जो लोग किसी की अपेक्षा नहीं करते और मेरे अतिरिक्त और किसी का भरोसा नहीं रखते, उनको मैं नित्य प्रति दर्शन देता हूँ ॥ ३७ ॥ तुम्हारे द्वारा किया गया यह स्तोत्र मुझे परम प्रिय है । जो व्यक्ति इस स्तोत्र का पाठ करेंगे ॥ ३७ ॥ उन्हें मेरी उत्तम भक्ति प्राप्त होगी तथा उन्हें निर्मल ज्ञान भी होगा । अब तुम मेरी इस उपासना से इस जीवितावस्था में भी सर्वथा मुक्त हो गये ॥३८॥ शरीर के नष्ट हो जाने पर तुम मेरा सायुज्य प्राप्त करोगे, इसमें सन्देह नहीं । अब मैं महामुनीश्वर तुम्हारे गुरु श्री अगस्त्य का दर्शन करना चाहता हूँ । और वहाँ कुछ दिन निवास करने के लिए मेरा मन मुझे शीघ्रता से प्रेरित कर रहा है ॥३९॥

तब सुतीक्ष्ण ने कहा—हे राघव ! 'बहुत अच्छा' वहाँ कल चलिएगा, मुझे भी महामुनि को देखे बहुत दिन बीत गये अतः मैं भी आपके साथ चलूंगा । ४० ।

अथ प्रभाते मुनिना समेतो
　　रामः स-सीतः सह लक्ष्मणेन ।
अगस्त्य-सम्भाषण-लोलमानसः
　　शनैरगस्त्यानुजमन्दिरं ययौ ॥४१॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वर-संवादे
अरण्यकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥२॥

*

## ३. तृतीयः सर्गः

( मुनीश्वर अगस्त्यजी से राम की भेंट )

श्रीमहादेव उवाच

अथ रामः सुतीक्ष्णेन जानक्या लक्ष्मणेन च ।
अगस्त्यस्याऽनुजस्थानं मध्याह्ने समपद्यत ॥१॥

तेन सम्पूजितः सम्यग् भुक्त्वा मूलफलादिकम् ।
परेद्युः प्रातरुत्थाय जग्मुस्तेऽगस्त्यमण्डलम् ॥२॥

---

प्रातःकाल होने पर सीता एवं लक्ष्मण के सहित श्रीराम सुतीक्ष्ण मुनि को लेकर अगस्त्य से वार्त्तालाप की उत्सुकता को मन में धारण किये हुए धीरे-धीरे अगस्त्य के छोटे भाई के आश्रम पर पहुँचे ॥ ४१ ॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या सहित श्री अध्यात्म-रामायण के उमा-महेश्वर संवाद में अरण्यकाण्ड का द्वितीय सर्ग समाप्त ॥ २ ॥

*

श्री महादेवजी ने कहा—हे पार्वती ! उस दिन राम, सुतीक्ष्ण, जानकी एवं लक्ष्मणजी के साथ अगस्त्य मुनि के छोटे भाई के आश्रम पर मध्याह्न-काल में पहुँचे ॥१॥ उन्होंने उनकी भली-भाँति पूजा की । फिर उनके दिये गये मूल, फल आदि को खाकर वे श्रीराम प्रातःकाल होते ही अगस्त्य मुनि के आश्रम की ओर चले ॥ २ ॥

सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यं नानामृगगणैर्युतम् ।
पक्षिसङ्घैश्च विविधैर्नादितं नन्दनोपमम् ॥३॥

ब्रह्मर्षिभिर्देवर्षिभिः सेवितं मुनिमन्दिरैः ।
सर्वतोऽलङ्कृतं साक्षाद् ब्रह्मलोकमिवापरम् ॥४॥

बहिरेवाश्रमस्याथ स्थित्वा रामोऽब्रवीन् मुनिम् ।
सुतीक्ष्ण! गच्छ त्वं शीघ्रमागतं मां निवेदय ॥५॥

अगस्त्यमुनिवर्याय सीतया लक्ष्मणेन च ।
महाप्रसाद इत्युक्त्वा सुतीक्ष्णः प्रययौ गुरोः ॥६॥

आश्रमं त्वरया तत्र ऋषिसङ्घसमावृतम् ।
उपविष्टं रामभक्तैर्विशेषेण समायुतम् ॥७॥

व्याख्यात-राममन्त्रार्थ-शिष्येभ्यश्चाऽतिभक्तितः ।
दृष्ट्वाऽगस्त्यं मुनिश्रेष्ठं सुतीक्ष्णः प्रययौ मुनेः ॥८॥

---

वह अगस्त्य का आश्रम सभी ऋतुओं में होने वाले फल और पुष्पों से परिपूर्ण था। विविध वन्य-पशुओं से युक्त था और अनेक प्रकार के पक्षियों से शब्दायमान होने से नन्दन वन-जैसा प्रतीत हो रहा था ॥३॥ ब्रह्मर्षियों एवं देवर्षियों से सेवित था एवं उसके चारों ओर मुनियों के आश्रम थे। इस प्रकार वह साक्षात् ब्रह्मलोक-जैसा ज्ञात हो रहा था ॥ ४ ॥

तब श्रीराम ने आश्रम से बाहर रहकर सुतीक्ष्ण मुनि से कहा—हे सुतीक्ष्ण ! तुम महर्षि के पास जाओ और सीता, लक्ष्मण सहित मेरे आने की सूचना उन्हें दो। सुतीक्ष्ण भी 'परम प्रसन्नता की बात है।' ऐसा कहकर आश्रम की ओर चले ॥ ५–६ ॥ उन्होंने देखा कि आश्रम में मुनि-मण्डल से घिरे हुए विशेषकर रामभक्तों से युक्त अगस्त्यजी बैठे हुए हैं ॥ ७ ॥ और शिष्यों से भक्तिपूर्वक राम-मन्त्र की व्याख्या कर रहे हैं। इस प्रकार बैठे हुए अगस्त्यजी को देखकर सुतीक्ष्ण उनके पास गये ॥ ८ ॥

दण्डवत् प्रणिपत्याह विनयावनतः सुधीः ।
रामो दाशरथिर्ब्रह्मन् ! सीतया लक्ष्मणेन च ।
आगतो दर्शनार्थं ते बहिस्तिष्ठति साञ्जलिः ॥९॥

अगस्त्य उवाच

शीघ्रमानय भद्रं ते रामं मम हृदिस्थितम् ।
तमेव ध्यायमानोऽहं काङ्क्षमाणोऽत्रसं स्थितः ॥१०॥

इत्युक्त्वा स्वयमुत्थाय मुनिभिः सहितो द्रुतम् ।
अभ्यगात् परया भक्त्या गत्वा राममथाब्रवीत् ॥११॥

आगच्छ राम ! भद्रं ते दिष्ट्या तेऽद्य समागमः ।
प्रियातिथिर्मम प्राप्तोऽद्य मे सफलं दिनम् ॥१२॥

रामोऽपि मुनिमायान्तं दृष्ट्वा हर्षसमाकुलः ।
सीतया लक्ष्मणेनाऽपि दण्डवत् पतितो भुवि ॥१३॥

---

परम बुद्धिमान् सुतीक्ष्णजी ने विनयपूर्वक मुनि को दण्डवत् प्रणाम कर कहा—ब्रह्मन् ! दशरथपुत्र राम, सीता और लक्ष्मण के साथ आपके दर्शन के लिए आये हुए हैं और आश्रम के बाहर साञ्जलि खड़े हैं ॥ ९ ॥ तब अगस्त्य ने कहा—हे वत्स ! तुम्हारा कल्याण हो । तुम मेरे हृदय में स्थित भगवान् राम को शीघ्र ले आओ । मैं उन्हीं के दर्शन की इच्छा से उनका ध्यान करता हुआ यहाँ रह रहा हूँ ॥ १० ॥

अगस्त्यजी ऐसा कहते हुए मुनियों के साथ उठकर शीघ्रता से राम के पास गये और अत्यन्त भक्ति-भाव से भरकर उनसे कहने लगे ॥ ११ ॥ हे राम ! आप आइए, आपका कल्याण हो । आपका यह समागम बड़े भाग्य से हुआ है । आज मुझे मेरे परमप्रिय अतिथि प्राप्त हुए हैं, इसलिए आज का दिन सफल है ॥ १२ ॥ इधर राम भी मुनि को आये हुए देख अत्यन्त हर्ष से सीता एवं लक्ष्मण के साथ दण्ड के समान पृथ्वी पर गिर गये ॥ १३ ॥ मुनिराज ने उन्हें शीघ्र ही उठाकर भक्तिपूर्वक हृदय से लगा

द्रुतमुत्थाप्य मुनिराट् राममालिङ्ग्य भक्तितः ।
तद्गात्र-स्पर्शनाह्लाद-स्रवन्नेत्र-जलाकुलः ॥१४॥
गृहीत्वा करमेकेन करेण रघुनन्दनम् ।
जगाम स्वाश्रमं हृष्टो मनसा मुनिपुङ्गवः ॥१५॥
सुखोपविष्टं सम्पूज्य पूजया बहुविस्तरम् ।
भोजयित्वा यथान्यायं भोज्यैर्वन्यैरनेकधा ॥१६॥
सुखोपविष्टमेकान्ते रामं शशिनिभाननम् ।
कृताञ्जलिरुवाचेदमगस्त्यो भगवानृषिः ॥१७॥
त्वदागमनमेवाऽहं प्रतीक्षन् समवस्थितः ।
यदा क्षीरसमुद्रान्ते ब्रह्मणा प्रार्थितः पुरा ॥१८॥
भूमेर्भारापनुत्त्यर्थं रावणस्य वधाय च ।
तदादि दर्शनाकाङ्क्षी तव राम ! तपश्चरन् ।
वसामि मुनिभिः सार्धं त्वामेव परिचिन्तयन् ॥१९॥

---

लिया । उस समय उनके शरीर के स्पर्श से उत्पन्न आनन्द के कारण मुनि के नेत्रों में जल भर आया ॥ १४ ॥

तत्पश्चात् मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी अपने एक हाथ से श्रीराम का हाथ पकड़ कर बड़ी प्रसन्नता से उन्हें अपने आश्रम में ले आये ॥ १५ ॥ और सुखपूर्वक आसन पर बैठाकर बहुत विस्तार से उनकी पूजा की और अनेक प्रकार के वन्य भोज्य-पदार्थों का यथोचित भोजन कराया ॥ १६ ॥ पुनः एकान्त में सुखपूर्वक बैठे हुए चन्द्रमुख श्रीराम से भगवान् अगस्त्य ऋषि हाथ जोड़कर कहने लगे ॥ १७ ।

हे राम ! पृथ्वी का भार उतारने के लिए एवं रावण का वध करने के लिए जब क्षीर-समुद्र के सन्निकट ब्रह्मा ने आप से अवतार लेने की प्रार्थना की थी तभी से मैं आपके दर्शन की इच्छा से इन मुनियों के साथ तुम्हारा ध्यान करता हुआ तपस्या में निरत हो, तुम्हारे अवतार लेने की प्रतीक्षा में इस आश्रम में निवास कर रहा हूँ ॥ १८-१९ ॥ इस सृष्टि के पहले

सृष्टेः प्रागेक एवासीर्निर्विकल्पोऽनुपाधिकः ।
त्वदाश्रया त्वद्-विषया माया ते शक्तिरुच्यते ॥२०॥

त्वामेव निर्गुणं शक्तिरावृणोति यदा तदा ।
अव्याकृतमिति प्राहुर्वेदान्त-परिनिष्ठिताः ॥२१॥

मूलप्रकृतिरित्येके प्राहुर्मायेति केचन ।
अविद्या संसृतिर्बन्ध इत्यादि बहुधोच्यते ॥२२॥

त्वया संक्षोभ्यमाणा सा महत् तत्त्वं प्रसूयते ।
महत्तत्त्वादहङ्कारस्त्वया सञ्चोदितादभूत् ॥२३॥

अहङ्कारो महत्तत्त्व-संवृतस्त्रिविधोऽभवत् ।
सात्त्विको राजसश्चैव तामसश्चेति भण्यते ॥२४॥

तामसात् सूक्ष्मतन्मात्राण्यासन् भूतान्यतः परम् ।
स्थूलानि क्रमशो राम ! क्रमोत्तरगुणानि ह ॥२५॥

---

आरम्भ में विकल्प तथा उपाधि से रहित आप अकेले थे। आपको अपना विषय बनाने वाली एवं आपके आश्रम में रहने वाली यह माया ही आपकी शक्ति कही जाती है ॥ २० ॥ वह शक्ति जब आप निर्गुण परमात्मा को माया के आवरण से आच्छन्न कर लेती है, तो वेदान्तनिष्ठ पुरुष उस माया को अव्याकृत कहते हैं ॥ २१ ॥ उसी को कोई मूल प्रकृति और कोई माया कहते हैं। वही अविद्या, संसृति और बन्ध आदि नामों से कही जाती है ॥ २२ ॥ जब आप उस माया में क्षोभ उत्पन्न करते हैं, तो उससे महत्तत्त्व प्रकट होता है और उस महत्तत्त्व से आपकी प्रेरणा द्वारा अहङ्कार उत्पन्न होता है ॥ २३ ॥ महत्तत्त्व से आवृत वह अहङ्कार तीन प्रकार का हुआ। जिसे लोग सात्त्विक, राजस और तामस नाम से कहते हैं ॥ २४ ॥

हे राम ! तामस अहङ्कार शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पाँच सूक्ष्म मात्राएँ तथा उन तन्मात्राओं से क्रमशः आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी आदि पञ्च महाभूत उत्पन्न हुए । २५ ॥

राजसानीन्द्रियाण्येव सात्त्विका देवता मनः ।
तेभ्योऽभवत् सूत्ररूपं लिङ्गं सर्वगतं महत् ॥२६॥

ततो विराट् समुत्पन्नः स्थूलाद् भूतकदम्बकात् ।
विराजः पुरुषात् सर्वं जगत्-स्थावर-जङ्गमम् ॥२७॥

देव-तिर्यङ्-मनुष्याश्च कालकर्मक्रमेण तु ।
त्वं रजोगुणतो ब्रह्मा जगतः सर्वकारणम् ॥२८॥

सत्त्वाद् विष्णुस्त्वमेवास्य पालकः सद्भिरुच्यते ।
लये रुद्रस्त्वमेवाऽस्य त्वन्मायागुणभेदतः ॥२९॥

जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्त्याख्या वृत्तयो बुद्धिजैर्गुणैः ।
तासां विलक्षणो राम ! त्वं साक्षी चिन्मयोऽव्ययः ॥३०॥

---

राजस अहङ्कार से इन्द्रियाँ तथा सात्त्विक अहङ्कार से इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता तथा मन की उत्पत्ति हुई । फिर उन सभी के मेल से समष्टि सूक्ष्म ( लिङ्ग ) शरीर हुआ, जिसे लोग सूत्रात्मा भी कहा करते हैं। जो सर्वत्र, सब में व्याप्त है ॥ २६ ॥ पुनः स्थूल भूत समूह से विराट् की उत्पत्ति हुई। तदनन्तर उस विराट् पुरुष से यह स्थावर, जङ्गमात्मक सम्पूर्ण संसार उत्पन्न हुआ ॥ २७ ॥

इस प्रकार काल एवं कर्म के क्रम से आप ही देव, तिर्यक् तथा मनुष्य आदि योनियों में जन्म लेते हैं ॥ २८ ॥ मायिक गुणों के भेद से आप ही रजोगुण से ब्रह्मा के रूप में, सत्त्वगुण से सृष्टिपालक विष्णु के रूप में एवं तमोगुण से लय करने वाले रुद्र के रूप में उत्पन्न हुए हैं, ऐसा सज्जनों का कहना है ॥ २९ ॥

बुद्धि के द्वारा उत्पन्न हुए सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणों से जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्ति ये तीन अवस्थाएँ होती हैं । आप इन सभी से पृथक् इनके द्रष्टा, चित्स्वरूप एवं अविकारी अव्यय पुरुष हैं ॥ ३० ॥

सृष्टिलीलां यदा कर्तुमीहसे रघुनन्दन ! ।
अङ्गीकरोषि मायां त्वं तदा वै गुणवानिव ॥३१॥

राम ! माया द्विधा भाति विद्याऽविद्येति ते सदा ।
प्रवृत्तिमार्गनिरता अविद्यावशवर्तिनः ।
निवृत्तिमार्गनिरता वेदान्तार्थविचारकाः ॥३२॥

त्वद्-भक्तिनिरता ये च ते वै विद्यामयाः स्मृताः ।
अविद्यावशगा ये तु नित्यं संसारिणश्च ते ।
विद्याभ्यासरता ये तु नित्यमुक्तास्त एव हि ॥३३॥

लोके त्वद्-भक्तिनिरतास्त्वन्मन्त्रोपासकाश्च ये ।
विद्या प्रादुर्भवेत्तेषां नेतरेषां कदाचन ॥३४॥

अतस्त्वद्-भक्तिसम्पन्ना मुक्ता एव न संशयः ।
त्वद्भक्त्यमृतहीनानां मोक्षः स्वप्नेऽपि नो भवेत् ॥३५॥

---

हे रघुनन्दन ! जिस समय आप सृष्टि-लीला करना चाहते हैं उस समय माया के वशीभूत होकर सगुण रूप धारण कर लेते हैं ॥ ३१ ॥

हे राम ! तुम्हारी यह माया विद्या और अविद्या के भेद से दो प्रकार से भासती है । जो प्रवृत्ति मार्ग में निरत हैं वे अविद्या के वशवर्ती हैं किन्तु जो निवृत्ति मार्ग में निरत हैं और वेदान्त के अर्थों का विचार करने वाले हैं एवं आपकी भक्ति में सदैव लगे रहते हैं, वे विद्यामय कहे जाते हैं। जो अविद्या के वश में हैं वे सर्वदा जन्म-मरण रूप संसार में भटकते रहते हैं, किन्तु जो विद्या का अभ्यास करते हैं, वे ही नित्यमुक्त हैं ॥३२-३३॥

हे राम ! जो लोग आपकी भक्ति में तत्पर होकर आपके मन्त्रों की उपासना करते हैं, उन्हीं को विद्या प्राप्त होती है, अन्यों को नहीं ॥३४। इसलिए जो लोग आपकी भक्ति को प्राप्त करते हैं वे निःसन्देह मुक्त हो जाते हैं। किन्तु तुम्हारे भक्तिरूपी अमृत से विहीन लोगों को स्वप्न में भी मुक्ति प्राप्त नहीं होती ॥३५॥

किं राम ! बहुनोक्तेन सारं किञ्चिद् ब्रवीमि ते ।
साधुसङ्गतिरेवात्र मोक्षहेतुरुदाहृता ॥३६॥
साधवः समचित्ता ये निःस्पृहा विगतैषिणः ।
दान्ताः प्रशान्तास्त्वद्भक्ता निवृत्ताखिलकामनाः ॥३७॥
इष्टप्राप्ति-विपर्ययोश्च समाः सङ्गविवर्जिताः ।
संन्यस्ता-ऽखिल-कर्माणः सर्वदा ब्रह्मतत्पराः ॥३८॥
यमादिगुणसम्पन्नाः सन्तुष्टा येन केनचित् ।
सत्सङ्गमो भवेद्यर्हि त्वत्कथाश्रवणे रतिः ॥३९॥
समुदेति ततो भक्तिस्त्वयि राम ! सनातने ।
त्वद्भक्तावुपपन्नायां विज्ञानं विपुलं स्फुटम् ॥४०॥
उदेति मुक्तिमार्गोऽयमाद्यश्चतुरसेवितः ।
तस्माद् राघव ! सद्भक्तिस्त्वयि मे प्रेमलक्षणा ॥४१॥
सदा भूयाद्धरे ! सङ्गस्त्वद्भक्तेषु विशेषतः ।
अद्य मे सफलं जन्म भवत्सन्दर्शनादभूत् ॥४२॥

---

हे राम ! बहुत कहने से क्या प्रयोजन है, फिर भी थोड़े में सार बात तुमसे कहता हूँ। संसार में सज्जन पुरुष की सङ्गति ही मोक्ष का कारण कही जाती है ॥३६॥ जो लोग समान रूप से सबको देखते हैं, स्पृहा एवं पुत्र-कलत्रादि तीन ईषणाओं से रहित हैं, इन्द्रियों का दमन करने वाले, प्रशान्त चित्त हैं, तुम्हारे भक्त हैं एवं कामनाओं को त्याग चुके हैं, इष्ट और अनिष्ट की प्राप्ति में हर्ष-शोक से रहित समान रहने वाले, संगहीन, सभी प्रकार के कर्मों का त्याग करने वाले, ब्रह्म में तत्पर, यम, नियम आदि गुणों से युक्त, जिस-किसी से भी सन्तुष्ट हो जाते हैं, वे ही साधु हैं, ऐसे सज्जनों की जब संगति हो जाती है, तो आपके कथा-श्रवण में रति उत्पन्न होती है ॥३७-३९।

हे राम ! इस प्रकार जब आपके कथा-श्रवण में अनुराग उत्पन्न होता है तब आप सनातन में भक्ति का उदय होने लगता है। तदनन्तर भक्ति उत्पन्न होने पर ब्रह्मतत्त्व के साक्षात्कार करने वाला विज्ञान विपुल मात्रा

अद्य मे क्रतवः सर्वे बभूवुः सफलाः प्रभो ! ।
दीर्घकालं मया तप्तमनन्यमतिना तपः ।
तस्येह तपसो राम ! फलं तव यदर्चनम् ॥४३॥

सदा मे सीतया सार्धं हृदये वस राघव ! ।
गच्छतस्तिष्ठतो वाऽपि स्मृतिः स्यान्मे सदा त्वयि ॥४४॥

इति स्तुत्वा रमानाथमगस्त्यो मुनिसत्तमः ।
ददौ चापं महेन्द्रेण रामार्थे स्थापितं पुरा ॥४५॥

अक्षय्यौ बाण - तूणीरौ खड्गौ रत्नविभूषितः ।
जहि राघव ! भूभारभूतं राक्षसमण्डलम् ॥४६॥

यदर्थमवतीर्णोऽसि मायया मनुजाकृतिः ।
इतो योजनयुग्मे तु पुण्यकाननमण्डितः ॥४७॥

---

में स्पष्ट रूप से होने लगता है ॥४०॥ यही चतुरजन सेवित मुक्ति के मार्ग का प्रथम सोपान है, इसलिए हे राघव ! आप में मेरी प्रेमलक्षणा उत्तम भक्ति बनी रहे ॥४१॥ हे हरे ! तुम्हारे भक्तों का मुझे सर्वदा साथ प्राप्त होता रहे । आज आपके दर्शन से मेरा यह जन्म सफल हो गया ॥४२॥ हे प्रभो ! आज मेरे द्वारा किया गया सम्पूर्ण यज्ञ सफल हो गया। मैंने अनन्य मन से बहुत समय तक जो तपस्या की है, उस तपस्या का यही फल है कि मुझे आपके अर्चन का सौभाग्य प्राप्त हुआ ॥४३॥ हे राघव ! आप सीता सहित मेरे हृदय में निवास करें और चलते-फिरते, उठते-बैठते सर्वदा मुझे आपका स्मरण बना रहे ॥४४॥

इस प्रकार मुनिसत्तम अगस्त्य ने रमानाथ भगवान् राम की स्तुति कर पूर्वकाल में राम के ही लिए इन्द्र द्वारा दिये गये धनुष-बाणों से भरे हुए, कभी खाली न होने वाले दो तरकस तथा रत्नजटित खड्ग प्रदान किया। और कहा—हे राम ! तुम इन्हीं से पृथ्वी के भारभूत राक्षसों का संहार करो ॥४५-४६॥ आपने जिस लिए माया-मानव बन कर अवतार लिया है, यहाँ से दो योजन की दूरी पर पुण्य कानन से मण्डित ॥४७॥ गौतमी के

अस्ति पञ्चवटीनाम्ना आश्रमो गौतमीतटे ।
नेतव्यस्तत्र ते कालः शेषो रघुकुलोद्वह ! ॥४८॥

तत्रैव बहुकार्याणि देवानां कुरु सत्पते ! ॥४९॥

श्रुत्वा तदागस्त्यसुभाषितं वचः, स्तोत्रं च तत्त्वार्थसमन्वितं विभुः ।
मुनिं समाभाष्य मुदान्वितो ययौ, प्रदर्शितं मार्गमशेषविद्धरिः ।५०।

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
अरण्यकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥३॥

•

## ४. चतुर्थः सर्गः

( श्री राम का पञ्चवटी में निवास एवं लक्ष्मण को उपदेश )

मार्गे व्रजन् ददर्शाद्रि शैलशृङ्गमिव स्थितम् ।
वृद्धं जटायुषं रामः किमेतदिति विस्मितः ॥१॥

---

तट पर पञ्चवटी नाम का एक आश्रम है। अब आप वहीं जाकर अपना शेष काल व्यतीत करें ॥४८॥ और वहीं रहकर देवताओं के बहुत से कार्य सिद्ध करें ॥४९॥

तदनन्तर सर्वज्ञ प्रभु श्रीराम अगस्त्य जी के द्वारा कहे गये सुन्दर वचन एवं तत्त्वार्थ से भरे हुए उनके स्तोत्र को सुनकर, उनकी अनुमति लेकर प्रसन्नता पूर्वक मुनि के द्वारा प्रदर्शित मार्ग से पञ्चवटी की ओर चले ॥५०॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या विभूषित अध्यात्म-रामायण के
उमा-महेश्वर संवाद में अरण्यकाण्ड का तृतीय सर्ग समाप्त ॥३॥

*

महादेव जी ने कहा—पार्वति ! पञ्चवटी के मार्ग में जाते हुए श्री राम ने पर्वत-शिखर के समान बैठे हुए वृद्धजटायु को देखा। उन्हें उसे देख कर महान् आश्चर्य हुआ कि यह क्या है ? ॥ १ ॥ तब वे लक्ष्मण जी से

धनुरानय सौमित्रे ! राक्षसोऽयं पुरः स्थितः ।
इत्याह लक्ष्मणं रामो हनिष्याम्यृषिभक्षकम् ॥२॥
तच्छ्रुत्वा रामवचनं गृध्रराड् भयपीडितः ।
वधार्होऽहं न ते राम ! पितुस्तेऽहं प्रियः सखा ॥३॥
जटायुर्नाम भद्रं ते गृध्रोऽहं प्रियकृत्तव ॥४॥
पञ्चवटयामहं वत्स्ये तवैव प्रियकाम्यया ।
मृगयायां कदाचित्तु प्रयाते लक्ष्मणेऽपि च ॥५॥
सीता जनककन्या मे रक्षितव्या प्रयत्नतः ।
श्रुत्वा तद्गृध्रवचनं रामः सस्नेहमब्रवीत् ॥६॥
साधु गृध्रमहाराज ! तथैव कुरु मे प्रियम् ।
अत्रैव मे समीपस्थो नातिदूरे वने वसन् ॥७॥

---

कहने लगे—हे सौमित्रे ! तुम धनुष लाओ, देखो सामने यह राक्षस बैठा हुआ है। महर्षियों को भक्षण करने वाले इस दुष्ट राक्षस को मैं अभी मारूँगा ॥ २ ॥

राम के वचन को सुनकर गृध्रराज जटायु भयभीत हो गये। और कहने लगे-हे राम ! मैं तुम्हारे वध के योग्य नहीं हूँ। मैं तुम्हारे पिता का परम मित्र जटायु नाम का गृद्ध हूँ। तुम्हारा कल्याण हो, मैं तो तुम्हारा हितकारी हूँ ॥ ३-४ ॥

मैं भी आप की भलाई के लिए इस पञ्चवटी में निवास करूँगा। जब आप और लक्ष्मण दोनों किसी समय मृगया के निमित्त वन में चले जायेंगे तो मैं जनक-कन्या सिता की रक्षा करूँगा। गृध्र के इस बात को सुनकर श्री रामचन्द्र जी ने स्नेहपूर्वक कहा ॥ ५-६ ॥ हे गृध्र महाराज ! यह तो बड़ी अच्छी बात है। आप मेरे इस आश्रम से अत्यन्त दूर नहीं किन्तु समीप में ही रह कर मेरा प्रियसाधन करें ॥ ७ ॥

इत्यामन्त्रितमालिङ्ग्य ययौ पञ्चवटीं प्रभुः ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया रघुनन्दनः ॥८॥
गत्वा ते गौतमीतीरं पञ्चवट्यां सुविस्तरम् ।
मन्दिरं कारयामास लक्ष्मणेन सुबुद्धिना ॥९॥
तत्र ते न्यवसन् सर्वे गङ्गाया उत्तरे तटे ।
कदम्ब-पनसाम्रादि-फलवृक्ष-समाकुले ॥१०॥
विविक्ते जनसम्बाधवर्जिते नीरुजस्थले ।
विनोदयन् जनकजां लक्ष्मणेन विपश्चिता ॥११॥
अध्युवास सुखं रामो देवलोक इवाऽपरः ।
कन्द-मूल-फलादीनि लक्ष्मणोऽनुदिनं तयोः ॥१२॥
आनीय प्रददौ रामसेवातत्परमानसः ।
धनुर्बाणधरो नित्यं रात्रौ जागर्ति सर्वतः ॥१३॥

---

इस प्रकार प्रभु श्री राम गृध्र को अपनी सम्मति देकर उसका आलिङ्गन कर सीता और लक्ष्मण के साथ पञ्चवटी को गये । ८ ॥

गौतमी के तट पर जाकर उन्होंने पञ्चवटी में परम बुद्धिमान् श्री लक्ष्मण जी से एक विशाल सुन्दर कुटी का निर्माण करवाया ॥ ९ ॥ वहाँ वे गौतमी गङ्गा के उत्तरी तट पर कदम्ब, पनस एवं आम आदि फलदार वृक्षों से युक्त, मनुष्यों के आवागमन से वर्जित, सर्वथा एकान्त, नीरोग स्थान में निवास करने लगे। वहाँ वे बुद्धिमान् लक्ष्मण के साथ जानकीका मन बहलाते हुए देवलोक के समान परम रमणीय स्थान में सुखपूर्वक रहते थे। श्री राम की सेवा में अपने मन को अच्छी तरह लगाते हुए श्री लक्ष्मण जी प्रतिदिन वन से कन्द-मूल एवं फलादि लाकर देते थे और रात्रि के समय धनुष पर बाण धारणकर चारों ओर सावधानी से निगरानी करते हुए उनकी रक्षा के लिए जागते रहते थे ॥ १०-१३ ॥

स्नानं कुर्वन्त्यनुदिनं त्रयस्ते गौतमीजले।
उभयोर्मध्यगा सीता कुरुते च गमाऽऽगमौ ॥१४॥

आनीय सलिलं नित्यं लक्ष्मणः प्रीतमानसः।
सेवतेऽहरहः प्रीत्या एवमासन् सुखं त्रयः ॥१५॥

एकदा लक्ष्मणो राममेकान्ते समुपस्थितम्।
विनयावनतो भूत्वा पप्रच्छ परमेश्वरम् ॥१६॥

भगवन्! श्रोतुमिच्छामि मोक्षस्यैकान्तिकीं गतिम्।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष! संक्षेपाद् वक्तुमर्हसि ॥१७॥

ज्ञानं विज्ञानसहितं भक्तिवैराग्यबृंहितम्।
आचक्ष्व मे रघुश्रेष्ठ! वक्ता नान्योऽस्ति भूतले ॥१८॥

श्रीराम उवाच

शृणु वक्ष्यामि ते वत्स! गुह्याद् गुह्यतरं परम्।
यद् विज्ञाय नरो जह्यात् सद्यो वैकल्पिकं भ्रमम् ॥१९॥

---

वे तीनों नित्य ही गौतमी के जल में स्नान करते थे, सीता भी दोनों के बीच में रहकर आया-जाया करती थीं ॥ १४ ॥ लक्ष्मण जी परम प्रसन्नता से नित्यप्रति जल लाकर उनकी सेवा करते। इस प्रकार वे सभी वहाँ सुखपूर्वक निवास करते ॥ १५ ॥

एक समय जब श्री रामचन्द्र जी एकान्त में बैठे हुए थे, तब लक्ष्मण जी ने राम के पास जाकर बड़ी नम्रता पूर्वक उन परमेश्वर से पूछा ॥१६॥ हे भगवन्! मैं आपके द्वारा मोक्ष के निश्चित साधन को आप से सुनना चाहता हूँ। हे कमलनयन! उसको संक्षेप में मुझे बताइए ॥ १७ ॥ फिर हे रघुश्रेष्ठ! मुझे उस ज्ञान को भी बताइए जो विज्ञान (ब्रह्मतत्त्व) से युक्त भक्ति तथा वैराग्य के विस्तार से विस्तृत हो। इस संसार में इस विषय का उपदेश करने वाला और कोई व्याख्याता नहीं है ॥ १८ ॥

तब श्री राम ने कहा—हे वत्स लक्ष्मण! मैं तुम से परम गोपनीय, श्रेष्ठ ज्ञान के रहस्य को सुनाता हूँ, जिसे जान लेने पर मनुष्य विकल्प जनित समस्त भ्रम को छोड़ देता है ॥ १९ ॥ सर्व-प्रथम मैं तुम से माया का

आदौ मायास्वरूपं ते वक्ष्यामि तदनन्तरम् ।
ज्ञानस्य साधनं पश्चाज्ज्ञानं विज्ञानसंयुतम् ॥२०॥
ज्ञेयं च परमात्मानं यज्ज्ञात्वा मुच्यते भयात् ।
अनात्मनि शरीरादावात्मबुद्धिस्तु या भवेत् ॥२१॥
सैव माया तयैवासौ संसारः परिकल्प्यते ।
रूपे द्वे निश्चिते पूर्वं मायायाः कुलनन्दन ! ॥२२॥
विक्षेपावरणे तत्र प्रथमं कल्पयेज्जगत् ।
लिङ्गाद्यब्रह्मपर्यन्तं स्थूलसूक्ष्मविभेदतः ॥२३॥
अपरं त्वखिलं ज्ञानरूपमावृत्य तिष्ठति ।
मायया कल्पितं विश्वं परमात्मनि केवले ॥२४॥
रज्जौ भुजङ्गवद् भ्रान्त्या विचारे नास्ति किञ्चन ।
श्रूयते दृश्यते यद्यत् स्मर्यते वा नरैः सदा ॥२५॥
असदेव हि तत्सर्वं यथा स्वप्नमनोरथौ ।
देह एव हि संसारवृक्षमूलं दृढं स्मृतम् ॥२६॥

---

स्वरूप कहूँगा। तत्पश्चात् ज्ञान का साधन बताऊँगा फिर विज्ञान सहित ज्ञान का वर्णन करूँगा ॥ २० ॥

तदनन्तर ज्ञान के विषय भूत से परमात्मा का वर्णन करूँगा जिसे जान कर मनुष्य भय से छुटकारा पा जाता है। अनात्म भूत शरीरादि में जो आत्मबुद्धि है उसी को माया कहते हैं ॥ २१ ॥

उसी के द्वारा इस संसार की कल्पना है। हे कुलनन्दन ! उस माया के दो रूप निश्चित किये गये हैं ॥ २२ ॥ उस माया का प्रथम स्वरूप विक्षेप है और दूसरा आवरण है। उसमें प्रथम विक्षेप ही सूक्ष्म शरीर से लेकर महत्तत्व पर्यन्त स्थूल एवं सूक्ष्म भेद से इस जगत् की सृष्टि करता है ॥२३॥ दूसरा आवरण समस्त ज्ञान को आवृत करके स्थित रहता है। यह सम्पूर्ण विश्व रज्जु में सर्प-भ्रम के समान शुद्ध परमात्मा में माया से परिकल्पित है। किन्तु विचार करने पर इसका कोई अस्तित्व नहीं ठहरता। इस संसार में मनुष्य जो सुनता है, देखता है एवं स्मरण करता है, वह सब स्वप्न एवं मनोरथ के समान असत्य है। यह शरीर ही इस संसार-वृक्ष का

तन्मूलः पुत्रदारादिबन्धः किं तेऽन्यथात्मनः ॥२७॥
देहस्तु स्थूलभूतानां पञ्च तन्मात्रपञ्चकम् ।
अहंकारश्च बुद्धिश्च इन्द्रियाणि तथा दश ॥२८॥
चिदाभासो मनश्चैव मूलप्रकृतिरेव च ।
एतत्क्षेत्रमिति ज्ञेयं देह इत्यभिधीयते ॥२९॥
एतैर्विलक्षणो जीवः परमात्मा निरामयः ।
तस्य जीवस्य विज्ञाने साधनान्यपि मे शृणु ॥३०॥
जीवश्च परमात्मा च पर्यायो नात्र भेदधीः ।
मानाभावस्तथा दम्भहिंसादिपरिवर्जनम् ॥३१॥
पराक्षेपादिसहनं सर्वत्रावक्रता तथा ।
मनो-वाक्-काय-सद्भक्त्या सद्गुरोः परिसेवनम् ॥३२॥
बाह्याभ्यन्तरसंशुद्धिः स्थिरता सत्क्रियादिषु ।
मनो-वाक्-काय-दण्डश्च विषयेषु निरीहता ॥३३॥

---

दृढ मूल है ।।२४-२६।। उसी के कारण पुत्र, दारादि का बन्धन है । नहीं तो इनसे आत्मा का क्या सम्बन्ध है । ये तो अनात्म वस्तु हैं ।।२७।।

पांच स्थल भूत, पञ्चतन्मात्रायें, अहंकार बुद्धि, दशो इन्द्रियां, चिदाभास, मन और मूल प्रकृति इन सबके समूह को क्षेत्र कहते हैं; इसी को शरीर भी कहते हैं ।।२८-२९।। सर्वथा दोष रहित परमात्मा या जीव इन संघातों से सर्वथा भिन्न है, उस जीव को साक्षात्कार करने के जो साधन हैं हे लक्ष्मण ! तुम उसे सुनो ।।३०।।

जीव और परमात्मा पर्यायार्थक शब्द हैं, उनमें भेद-बुद्धि नहीं करनी चाहिए। अभिमान का त्याग, इसी प्रकार दम्भ तथा हिंसा का परित्याग,।।३१।। दूसरे के द्वारा किये गये आक्षेप का सहन, सर्वत्र सरलता से व्यवहार, मन, वाणी एवं शरीर के द्वारा निष्कपट भक्ति से गुरुदेव की पूजा करना, ।।३२।।

बाहरी एवं भीतरी (शरीर एवं मन की) शुद्धि रखना, सत्क्रिया में निष्ठापूर्वक दृढता, मन, वाणी तथा शरीर को संयम में रखना, सांसारिक

निरहङ्कारता जन्मजराद्यालोचनं तथा ।
असक्तिः स्नेहशून्यत्वं पुत्र-दार-धनादिषु ॥३४॥

इष्टाऽनिष्टागमे नित्यं चित्तस्य समता तथा ।
मयि सर्वात्मके रामे ह्यनन्यविषया मतिः ॥३५॥

जनसम्बाधरहित - शुद्धदेश - निषेवणम् ।
प्राकृतैर्जनसङ्घैश्च ह्यरतिः सर्वदा भवेत् ॥३६॥

आत्मज्ञाने सदोद्योगो वेदान्तार्थात्रलोकनम् ।
उक्तैरेतैर्भवेज्ज्ञानं विपरीतैर्विपर्ययः ॥३७॥

बुद्धि-प्राण-मनो-देहाहंकृतिभ्यो विलक्षणः ।
चिदात्माहं नित्यशुद्धो बुद्ध एवेति निश्चयम् ॥३८॥

येन ज्ञानेन संवित्ते तज्ज्ञानं निश्चितं च मे ।
विज्ञानं च तदैवैतत् साक्षादनुभवेद्यदा ॥३९॥

---

विषयों में अभिलाषा न रखना, अहङ्कार-राहित्य, जन्म, मृत्यु, रोग तथा बुढ़ापे के कष्टों का विचार करते रहना, पुत्र, स्त्री एव धनादि में आसक्ति एवं स्नेह से सर्वथा शून्य रहना, इष्ट एवं अनिष्ट की प्राप्ति में हर्ष-शोक का त्याग कर समबुद्धि रखना, सर्वत्र व्यापक मुझ राम में अनन्य बुद्धि रखना, मनुष्य के आवागमन से रहित सर्वथा एकान्त और पवित्र स्थान में निवास करना, संसारी लोगों से सर्वथा उदासीन रहना, आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए सतत उद्योग करते रहना और वेदान्त के अर्थों पर सर्वथा विचार करते रहना, इन कहे गये उपर्युक्त साधनों से ही ज्ञान की प्राप्ति होती रहती है। किन्तु इससे विपरीत आचरण से उलटा फल अज्ञान ही प्राप्त होता है ॥३३-३७॥

बुद्धि, प्राण, मन, देह एवं अहङ्कार से विलक्षण, नित्य शुद्ध-बुद्ध मैं ही चेतन आत्मा हूँ, यही ज्ञान है ऐसा मेरा निश्चय है ॥३८॥ इस प्रकार जिस ज्ञान से आत्मतत्त्व का साक्षात्कार हो जाता है, उसे ज्ञान कहते हैं। ऐसा निश्चय है और जब ज्ञान के द्वारा साक्षात् अनुभव होने लगे तो उसे विज्ञान कहते हैं ॥३९॥

आत्मा सर्वत्र पूर्णः स्याच्चिदानन्दात्मकोऽव्ययः।
बुद्ध्याद्युपाधिरहितः परिणामादिवर्जितः ॥४०॥
स्वप्रकाशेन देहादीन् भासयन्ननपावृतः।
एक एवाऽद्वितीयश्च सत्यज्ञानादिलक्षणः ॥४१॥
असङ्गः स्वप्रभो द्रष्टा विज्ञानेनावगम्यते।
आचार्यशास्त्रोपदेशाद्यैक्यज्ञानं यदा भवेत् ॥४२॥
आत्मनोर्जीवपरयोर्मूलाविद्या तदैव हि।
लीयते कार्यकरणैः सहैव परमात्मनि ॥४३॥
साऽवस्था मुक्तिरित्युक्ता ह्युपचारोऽयमात्मनि।
इदं मोक्षस्वरूपं ते कथितं रघुनन्दन ! ॥४४॥
ज्ञान-विज्ञान-वैराग्यसहितं मे परात्मनः।
किन्त्वेतद् दुर्लभं मन्ये मद्भक्ति-विमुखात्मनाम् ॥४५॥
चक्षुष्मतामपि तथा रात्रौ सम्यङ् न दृश्यते।
पदं दीपसमेतानां दृश्यते सम्यगेव हि ॥४६॥

---

यह आत्मा सर्वत्र पूर्ण है। सत्-चित्-आनन्द स्वरूप तथा अविकारी है, बुद्धि आदि उपाधियों से शून्य तथा परिणामादि विकारों से रहित है ॥४०॥ यह अपने प्रकाश से देहादिको प्रकाशित करता हुआ स्वयं प्रकाश-स्वरूप है, आवरण शून्य है, एक है, अद्वितीय, सत्य ज्ञान इसके स्वरूप हैं ॥४१॥ सङ्ग रहित है, स्वयं प्रकाश एवं सबका साक्षी है और विद्या से जाना जाता है। जब आचार्यों के उपदेश एवं शास्त्रों के उपदेश से जीवात्मा और परमात्मा के एकत्व का ज्ञान हो जाता है ॥४२॥ तो मूलाविद्या अपने कार्य (शरीर) एवं कारण ( इन्द्रियाँ बुद्धि आदि अपने स्थूल सूक्ष्म रूपों ) के सहित परमात्मा में लीन हो जाती है ॥४३॥

इस प्रकार अविद्या जब परमात्मा में लीन हो जाती है, तो उसी को मोक्ष कहते हैं। आत्मा का मोक्ष तो उपचार मात्र है। हे भाई लक्ष्मण ! मैंने तुम्हें मोक्ष के स्वरूप को सुना दिया ॥४४॥ इसके साथ ही ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य एवं परमात्मा के स्वरूप का दिग्दर्शन कराया। किन्तु जो लोग मेरी भक्ति से विमुख हैं, उनके लिए मैं इसे अत्यन्त दुर्लभ मानता हूँ ॥४५॥

एवं मद्भक्तियुक्तानामात्मा सम्यक् प्रकाशते ।
मद्भक्तेः कारणं किञ्चिद् वक्ष्यामि शृणु तत्त्वतः ।।४७।।
मद्भक्तसङ्गो मत्सेवा मद्भक्तानां निरन्तरम् ।
एकादश्युपवासादि मम पर्वानुमोदनम् ।।४८।।
मत्कथाश्रवणे पाठे व्याख्याने सर्वदा रतिः ।
मत्पूजा-परिनिष्ठा च मम नामानुकीर्तनम् ।।४९।।
एवं सततयुक्तानां भक्तिरव्यभिचारिणी ।
मयि सञ्जायते नित्यं ततः किमवशिष्यते ।।५०।।
अतो मद्भक्तियुक्तस्य ज्ञानं विज्ञानमेव च ।
वैराग्यं च भवेच्छीघ्रं ततो मुक्तिमवाप्नुयात् ।।५१।।
कथितं सर्वमेतत्ते तव प्रश्नानुसारतः ।
अस्मिन् मनः समाधाय यस्तिष्ठेत् स तु मुक्तिभाक् ।।५२।।

---

आँख के रहने पर भी जिस प्रकार कोई वस्तु रात में दिखाई नहीं पड़ती, किन्तु दीप आदि के प्रकाश होने पर वह ठीक तरह से दिखाई पड़ती है ।।४६।। इसी प्रकार जो लोग मेरी भक्ति से युक्त हैं, उन्हें भली प्रकार आत्मा का साक्षात्कार हो जाता है। हे लक्ष्मण ! मेरी भक्ति जिन हेतुओं से प्राप्त हो जाती है, उन थोड़े से कारणों को सावधानी से सुनो ।।४७।।

प्रथम मेरे भक्तों की संगति, दूसरी मेरी सेवा, तीसरी निरन्तर मेरे भक्तों की सेवा, चौथी एकादशी आदि का व्रत, पाँचवीं मेरे पर्वदिनों को उत्साह पूर्वक मनाना ।।४८।। छठी मेरी कथा का श्रवण, पाठ एवं उसके व्याख्यान में अभिरुचि रखना, सातवीं मेरी पूजा करना, आठवीं मुझ में विश्वास करना तथा नवीं मेरे नाम का कीर्त्तन करना ।।४९।।

जो लोग मुझमें निरन्तर इस प्रकार की नवधा भक्ति करते हैं, उनको मेरी अविचल भक्ति प्राप्त हो जाती है। फिर मेरी भक्ति प्राप्त हो जाने पर मनुष्यको कौन-सा प्राप्तव्य शेष रह जाता है ।।५०।। इस लिये मेरी भक्ति से युक्त पुरुषों को ज्ञान-विज्ञान, वैराग्य तथा मुक्ति शीघ्र ही प्राप्त हो जाती है ।।५१।

हे भाई लक्ष्मण ! मैंने तुम्हें, तुम्हारे प्रश्नों के अनुसार सम्पूर्ण रहस्य सुना

न वक्तव्यमिदं यत्नात् मद्भक्तिविमुखाय हि ।
मद्भक्ताय प्रदातव्यमाहूयापि प्रयत्नतः ॥५३॥

य इदं तु पठेन्नित्यं श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।
अज्ञानपटलध्वान्तं विधूय परिमुच्यते ॥५४॥

भक्तानां मम योगिनां सुविमल-स्वान्तातिशान्तात्मनां
मत्सेवाभिरतात्मनां च विमल-ज्ञानात्मनां सर्वदा ।
सङ्गं यः कुरुते सदोद्यतमतिस्तत्सेवनानन्यधी-
र्मोक्षस्तस्य करे स्थितोऽहमनिशं दृश्यो भवे नाऽन्यथा ॥५५॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
अरण्यकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

*

---

दिया। जो लोग मेरी भक्ति में अपने चित्त को समाहित कर विश्वास पूर्वक रहते हैं, वे मुक्ति के अधिकारी हैं ॥५२॥ हे लक्ष्मण ! जो लोग मेरी भक्ति से विमुख हैं, उनको अनेक प्रयत्न करने पर भी यह रहस्य नहीं बताना चाहिए। और जो मेरे भक्त हैं, उन्हें बुलाकर प्रयत्न पूर्वक इस रहस्य को सुनाना चाहिए ॥५३॥

जो लोग श्रद्धा-भक्ति समेत मेरे द्वारा प्रतिपादित इस रहस्य को पढ़ेंगे वे अपने अज्ञान-समूह रूप महान् अन्धकार को नष्ट कर मुक्त हो जायेंगे ॥५४॥ निर्मल और शान्त हृदय वाले जो लोग मेरी सेवा में निरन्तर निरत रहने वाले, निर्मल ज्ञान युक्त मेरे परम भक्त योगि जनों का संग करेंगे अथवा सावधानी से अनन्य बुद्धि पूर्वक उनकी सेवा करेंगे मुक्ति उनके करतल में विराजमान रहेगी। और मैं उनके आँखों के सामने निरन्तर निवास करूँगा। मेरे दर्शन का यही उपाय है और कोई दूसरा उपाय नहीं है ॥५५॥

**इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या सहित अध्यात्म-रामायण के उमा-महेश्वर संवाद में अरण्यकाण्ड का चतुर्थ सर्ग समाप्त ॥४॥**

*

## ५. पञ्चमः सर्गः

( शूर्पणखा को दण्ड, खर आदि राक्षसों का वध और शूर्पणखा का रावण के पास गमन )

श्रीमहादेव उवाच

तस्मिन् काले महारण्ये राक्षसी कामरूपिणी ।
विचचार महासत्त्वा जनस्थाननिवासिनी ॥१॥

एकदा गौतमीतीरे पञ्चवट्याः समीपतः ।
पद्मवज्राङ्कुशाङ्कानि पदानि जगतीपतेः ॥२॥

दृष्ट्वा कामपरीतात्मा पादसौन्दर्यमोहिता ।
पश्यन्ती सा शनैरायाद्राघवस्य निवेशनम् ॥३॥

तत्र सा तं रमानाथं सीतया सह संस्थितम् ।
कन्दर्पसदृशं रामं दृष्ट्वा कामविमोहिता ॥४॥

राक्षसी राघवं प्राह कस्य त्वं कः किमाश्रमे ।
युक्तो जटावल्कलाद्यैः साध्यं किं तेऽत्र ? मे वद ॥५॥

---

श्री महादेव जी ने कहा–हे पार्वति ! उस समय उस महाघोर अरण्य में, जनस्थान में निवास करने वाली, इच्छानुसार रूप धारण करने वाली महाबलवती शूर्पणखा नाम की राक्षसी घूमा करती थी ॥१॥

एक दिन पञ्चवटी के समीप गौतमी नदी के तट पर श्री रामचन्द्र जी के कमल, वज्र और अंकुश की रेखाओं से युक्त चरण-चिह्नों को देख कर वह उनके पैर के चिह्नों से उनके सौन्दर्य पर मोहित हुई । कामासक्त हो खोजती-खोजती धीरे-धीरे रघुनाथ जी के आश्रम पर आई ॥२-३॥ वहाँ पर कन्दर्प के समान कमनीय, सीता के साथ बैठे हुए लक्ष्मीपति श्री राम को देख कर कामातुर वह राक्षसी श्री राम से बोली–॥४॥ तुम किसके (पुत्र) हो ? कौन हो ? इस आश्रम में जटा-बल्कल धारण कर क्यों रहते हो ? और यहाँ रह कर तुम क्या प्राप्त करना चाहते हो। मुझसे बताओ ॥५॥

अहं शूर्पणखा नाम राक्षसी कामरूपिणी ।
भगिनी राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य महात्मनः ॥६॥
खरेण सहिता भ्रात्रा वसाम्यत्रैव कानने ।
राज्ञा दत्तं च मे सर्वं मुनिभक्षा वसाम्यहम् ॥७॥
त्वां तु वेदितुमिच्छामि वद मे वदतां वर ! ।
तामाह रामनामाहमयोध्याधिपतेः सुतः ॥८॥
एषा मे सुन्दरी भार्या सीता जनकनन्दिनी ।
स तु भ्राता कनीयान्मे लक्ष्मणोऽतीव सुन्दरः ॥९॥
किं कृत्यं ते मया ब्रूहि कार्यं भुवनसुन्दरि ! ।
इति रामवचः श्रुत्वा कामार्ता साऽब्रवीदिदम् ॥१०॥
एहि राम ! मया सार्धं रमस्व गिरिकानने ! ।
कामार्ताऽहं न शक्नोमि त्यक्तुं त्वां कमलेक्षणम् ॥११॥
रामः सीतां कटाक्षेण पश्यन् सस्मितमब्रवीत् ।
भार्या ममैषा कल्याणी विद्यते ह्यनपायिनी ॥१२॥

---

मैं इच्छानुसार रूप धारण करने वाली, राक्षसेन्द्र महात्मा रावण की बहन शूर्पणखा नाम की राक्षसी हूँ ॥६॥ मैं इस दण्डकारण्य में अपने भाई खर के साथ रहती हूँ। राजा ने मुझे यह सारा वन दे दिया है और मैं मुनियों का भक्षण करती हुई यहाँ निवास करती हूँ ॥७॥

हे वक्ताओं में श्रेष्ठ ! मैं तुम्हें जानना चाहती हूँ कि तुम कौन हो ? तब भगवान् राम ने उससे कहा—मैं अयोध्यापति राजा दशरथ का पुत्र हूँ और मेरा नाम राम है ॥८॥ और यह परम सुन्दर जनकनन्दिनी मेरी भार्या हैं ॥ इनका नाम सीता है। और यह परम सुन्दर कुमार मेरा छोटा भाई है। इनका नाम लक्ष्मण है ॥९॥ हे भुवनसुन्दरी ! तुम मुझे बताओ कि तुम्हारा कौन-सा कार्य है जिसे पूरा करना है। राम के इस बात को सुनकर कामातुर शूर्पणखा इस प्रकार पुनः बोली ॥१०॥

हे राम ! तुम चलो और मेरे साथ किसी पर्वत-कन्दरा में रमण करो। इस समय मैं कामार्त्त हूँ। अतः कमलनयन वाले तुम को मैं छोड़ने में असमर्थ हूँ॥११। तब राम ने अपने कटाक्ष से सीता की ओर संकेत

त्वं तु सापत्न्यदुःखेन कथं स्थास्यसि सुन्दरि ! ।
बहिरास्ते मम भ्राता लक्ष्मणोऽतीव सुन्दरः ॥१३॥
तवानुरूपो भविता पतिस्तेनैव सञ्चर ।
इत्युक्ता लक्ष्मणं प्राह पतिर्मे भव सुन्दर ! ॥१४॥
भ्रातुराज्ञां पुरस्कृत्य सञ्ज्छावोऽद्य मा चिरम् ।
इत्याह राक्षसी घोरा लक्ष्मणं काममोहिता ॥१५॥
तामाह लक्ष्मणः साध्वि ! दासोऽहं तस्य धीमतः ।
दासी भविष्यसि त्वं तु ततो दुःखतरं नु किम् ॥१६॥
तमेव गच्छ भद्रं ते स तु राजाखिलेश्वरः ।
तच्छ्रुत्वा पुनरप्यागाद् राघवं दुष्टमानसा ॥१७॥
क्रोधाद् राम ! किमर्थं मां भ्रामयस्यनवस्थितः ।
इदानीमेव तां सीतां भक्षयामि तवाग्रतः ॥१८॥

---

करते हुए कहा। मेरे पास कल्याण करने वाली यह मेरी भार्या विद्यमान है। हे सुन्दरि ! जिसका त्याग करना मेरे लिए असम्भव-सा है ।१२॥ फिर तुम्हीं बताओ जन्मभर सौत के डाह से जलती हुई तुम मेरे पास किस प्रकार रह सकोगी ? बाहर मेरा अत्यन्त सुन्दर छोटा भाई लक्ष्मण है ॥१३॥ वही तुम्हारे अनुकूल पति बनने योग्य है। अतः तुम उसको अपना पति बना कर उसके साथ विहार करो। ऐसा कहे जाने पर काम-मोहित शूर्पणखा लक्ष्मण के पास जाकर कहने लगी। हे सुन्दर ! तुम अपने भाई की आज्ञा मान कर मेरे पति हो जाओ। और मेरे साथ विवाह करो। देर मत करो ॥१४-१५॥ राक्षसी के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर लक्ष्मण बोले–हे साध्वि ! मैं तो उन बुद्धिमान् राम का दास हूँ। मुझे अपना पति बनाने पर तुम्हें भी उनकी दासी बनना पड़ेगा। इससे अधिक और दुःख की बात क्या होगी ॥१६॥ तुम्हारा कल्याण हो, तुम उन्हीं के पास जाओ। वे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के स्वामी हैं। लक्ष्मण के इस बात को सुन कर दुष्ट चित्त वाली वह राक्षसी रामचन्द्र के पास पुनः आयी ॥१७॥ और क्रोध से कहने लगी–हे राम ! तुम तो बहुत अव्यवस्थित चित्त हो, तुम मुझे व्यर्थ ही इधर-उधर भटका रहे हो। मैं अभी तुम्हारे देखते-देखते इस सीता

इत्युक्त्वा विकटाकारा जानकीमनुधावति ।
ततो रामाज्ञया खड्गमादाय परिगृह्यताम् ॥१९॥
चिच्छेद नासां कर्णौ च लक्ष्मणो लघुविक्रमः ।
ततो घोरध्वनिं कृत्वा रुधिराक्तवपुर्द्रुतम् ॥२०॥
क्रन्दमाना पपाताग्रे खरस्य परुषाक्षरा ।
किमेतदिति तामाह खरः खरतराक्षरः ॥२१॥
केनैवं कारितासि त्वं मृत्योर्वक्त्रानुवर्तिना ।
वद मे तं वधिष्यामि कालकल्पमपि क्षणात् ॥२२॥
तमाह राक्षसी रामः सीतालक्ष्मणसंयुतः ।
दण्डकं निर्भयं कुर्वन्नास्ते गोदावरीतटे ॥२३॥
मामेवं कृतवांस्तस्य भ्राता तेनैव चोदितः ।
यदि त्वं कुलजातोऽसि वीरोऽसि जहि तौ रिपू ॥२४॥
तयोस्तु रुधिरं पास्ये भक्षयैतौ सुदुर्मदौ ।
नो चेत् प्राणान् परित्यज्य यास्यामि यमसादनम् ॥२५॥

---

को खाये डालती हूँ ॥१८॥ ऐसा कह महा विकट रूप धारण कर वह जानकी की ओर झपट कर दौड़ पड़ी । तब परम शीघ्रकारी लक्ष्मणने राम की आज्ञा से उसे पकड़ कर खड्ग से उसके नाक, कान काट डाले। तदनन्तर वह राक्षसी महाभयानक शब्द करती हुई रुधिर से लथपथ हो शीघ्रता के साथ खर के पास जाकर रोती-चिल्लाती और कठोर शब्द कहती हुई गिर पड़ी ॥१९-२१ उसे इस प्रकार रोती देखकर तीक्ष्ण स्वर वाले खर ने कहा—अरी तू शीघ्र बता, मृत्यु के मुख में जाने वाले किसने तुम्हारी यह दुर्दशा की है; वह काल के समान बलवान् क्यों न हो। मैं क्षण भर में उसका वध करूँगा ॥२२॥

तब उस राक्षसी ने कहा-सीता और लक्ष्मण सहित राम दण्डकारण्य के निवासियों को निर्भय करते हुए गोदावरी तट पर निवास कर रहे हैं ॥२३॥ उन्हीं की प्रेरणा से उनके छोटे भाई ने मेरी यह दुर्दशा की है। यदि तुम कुलीन एवं वीर हो तो उनका वध करो ॥२४॥ तुम उन

तच्छ्रुत्वा त्वरितं प्रागात् खरः क्रोधेन मूर्च्छितः ।
चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ॥२६॥
चोदयामास रामस्य समीपं वधकाङ्क्षया ।
खरश्च त्रिशिराश्चैव दूषणश्चैव राक्षसः ॥२७॥
सर्वे रामं ययुः शीघ्रं नानाप्रहरणोद्यताः ।
श्रुत्वा कोलाहलं तेषां रामः सौमित्रिमब्रवीत् ॥२८॥
श्रूयते विपुलः शब्दो नूनमायान्ति राक्षसाः ।
भविष्यति महद् युद्धं नूनमद्य मया सह ॥२९॥
सीतां नीत्वा गुहां गत्वा तत्र तिष्ठ महाबल ! ।
हन्तुमिच्छाम्यहं सर्वान् राक्षसान् घोररूपिणः ॥३०॥
अत्र किञ्चिन्न वक्तव्यं शापितोऽसि ममोपरि ।
तथेति सीतामादाय लक्ष्मणो गह्वरं ययौ ॥३१॥

---

मदोन्मत्तों का भक्षण करो और मैं तुम्हारे आगे ही अपने प्राणों का परित्याग कर यमलोक को चली जाऊँगी ॥२५॥

शूर्पणखा की बातों को सुन कर क्रोध से मूर्च्छित होकर खर शीघ्रता से चल पड़ा और उसने शीघ्र ही युद्ध में भयानक कर्म करने वाले चौदह हजार राक्षसों को राम का वध करने के लिए उनके पास भेजा ॥२६॥ खर, दूषण और त्रिशिरा ये सभी राक्षस अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हो राम के पास गये। उस समय आती हुई सेना के कोलाहल को सुनकर राम ने लक्ष्मण से कहा—।२७-२८॥ भाई, महा भयानक कोलाहल सुनाई पड़ रहा है, निश्चय ही राक्षसगण आ रहे हैं। आज मेरे साथ वे महान् युद्ध करेंगे ।२९॥

हे महाबल ! तुम शीघ्र ही सीता को लेकर पर्वत-कन्दरा में चले जाओ। मैं इस समय इन घोर रूप राक्षसों का वध करना चाहता हूँ ॥३०॥ हे भाई ! इस विषय में तुम कुछ मत कहना, तुम्हें मेरी शपथ है। तब लक्ष्मण जी 'जैसी आज्ञा' कह कर सीता जी को लेकर पर्वत-कन्दरा में चले गये ॥३१॥

रामः परिकरं बद्ध्वा धनुरादाय निष्ठुरम् ।
तूणीरावक्षयशरौ बद्ध्वायत्तोऽभवत् प्रभुः ॥३२॥
तत आगत्य रक्षांसि रामस्योपरि चिक्षिपुः ।
आयुधानि विचित्राणि पाषाणान् पादपानपि ॥३३॥
तानि चिच्छेद रामोऽपि लीलया तिलशः क्षणात् ।
ततो बाणसहस्रेण हत्वा तान् सर्वराक्षसान् ॥३४॥
खरं त्रिशिरसं चैव दूषणं चैव राक्षसम् ।
जघान प्रहरार्धेन सर्वानेव रघूत्तमः ॥३५॥
लक्ष्मणोऽपि गुहामध्यात् सीतामादाय राघवे ।
समर्प्य राक्षसान् दृष्ट्वा हतान् विस्मयमाययौ ॥३६॥
सीता रामं समालिङ्ग्य प्रसन्नमुखपङ्कजा ।
शस्त्रव्रणानि चाङ्गेषु ममार्ज जनकात्मजा ॥३७॥
सापि दुद्राव दृष्ट्वा तान् हतान् राक्षसपुङ्गवान् ।
लङ्कां गत्वा सभामध्ये क्रोशन्ती पादसन्निधौ ॥३८॥

---

तदनन्तर राम कमर कस कर, कठोर धनुष को लेकर बाणों से भरे, कभी खाली न होने वाले दो तरकसों को कन्धे में बाँधकर युद्ध करने के लिये तैयार हो गये ॥३२॥ इधर राक्षस गण आकर राम के ऊपर अनेक प्रकार के विचित्र आयुधों पाषाणों एवं वृक्षों की वर्षा करने लगे ॥३३॥ रघूत्तम राम ने भी क्षणमात्र में लीला से, उन राक्षसों के समस्त अस्त्र-शस्त्रादि को तिल-तिल करके काट दिया। फिर एक हजार बाण चला कर उन सभी राक्षसों को मार कर ॥३४॥ खर, दूषण एवं त्रिशिरा नामक राक्षसों का भी आधे पहर में संहार कर दिया ॥३५। तब लक्ष्मण जी ने भी गुफा के मध्य से सीता को लाकर राम को समर्पित कर दिया। उस समय वे सम्पूर्ण राक्षसों को मरा हुआ देख आश्चर्य में डूब गये। ३६॥ जनकात्मजा सीता ने बड़ी प्रसन्नता से राम का आलिङ्गन किया और शस्त्र से आहत उनके अङ्गों पर अपना हाथ फेरा। ३७॥

इधर रावण की बहन शूर्पणखा भी उन समस्त श्रेष्ठ राक्षसों को

रावणस्य पपातोर्व्यां भगिनी तस्य रक्षसः ।
दृष्ट्वा तां रावणः प्राह भगिनी भयविह्वलाम् ॥३९॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वत्से ! त्वं विरूपकरणं तव ।
कृतं शक्रेण वा भद्रे ! यमेन वरुणेन वा ॥४०॥
कुबेरेणाथवा ब्रूहि भस्मीकुर्यां क्षणेन तम् ।
राक्षसी तमुवाचेदं त्वं प्रमत्तो विमूढधीः ॥४१॥
पानासक्तः स्त्रीविजितः षण्ढः सर्वत्र लक्ष्यसे ।
चारचक्षुर्विहीनस्त्वं कथं राजा भविष्यसि ? ॥४२॥
खरश्च निहतः सङ्ख्ये दूषणस्त्रिशिरास्तथा ।
चतुर्दशसहस्राणि राक्षसानां महात्मनाम् ॥४३॥
निहतानि क्षणेनैव रामेणासुरशत्रुणा ।
जनस्थानमशेषेण मुनीनां निर्भयं कृतम् ।
न जानासि विमूढस्त्वमत एव मयोच्यते ॥४४॥

---

मरा हुआ देखकर दौड़ती हुई लङ्का पहुँची। और सभा के बीच रोती हुई रावण के पैरों के समीप पृथ्वी पर गिर पड़ी। अपनी बहन को इस प्रकार रोती-कलपती भय से विह्वल देख रावण बोला—॥३८-३९॥

हे वत्से ! उठो-उठो। तुमको इस प्रकार किसने विरूप किया है। इन्द्र ने, यम ने, वरुण ने अथवा कुबेर ने ऐसा काम किया है ? तू शीघ्र ही बता, मैं उसे एक क्षण में भस्म कर डालूँगा। रावण की बात को सुनकर शूर्पणखा ने कहा—तुम बड़े पागल और मूर्ख हो ॥४०-४१॥ तुम मद्यपान में आसक्त, स्त्री के वशीभूत एवं सभी कामों में निष्क्रिय नपुंसक जैसे दिखाई देते हो। तुम्हारे पास चार ( गुप्तचर ) रूपी नेत्र नहीं हैं, फिर भला तुम कैसे राजा बने रहोगे ॥४२॥ युद्ध में खर मारा गया, दूषण और त्रिशिरा का भी वध हो गया। इसी प्रकार चौदह हजार मुख्य-मुख्य राक्षस-असुर शत्रु राम के द्वारा क्षणभर में जनस्थान में मार डाले गये। उन्होंने वहाँ के मुनियों को निर्भय कर दिया, और तुम्हें इसका पता तक नहीं। इसलिए मैंने कहा कि तुम मूर्ख हो ॥४३-४४॥

रावण उवाच

को वा रामः किमर्थं वा कथं तेनासुरा हताः ? ।
सम्यक् कथय मे तेषां मूलघातं करोम्यहम् ॥४५॥

शूर्पणखोवाच

जनस्थानादहं याता कदाचिद् गौतमीतटे ।
तत्र पञ्चवटी नाम पुरा मुनिजनाश्रया ॥४६॥
तत्राश्रमे मया दृष्टो रामो राजीवलोचनः ।
धनुर्बाणधरः श्रीमान् जटावल्कलमण्डितः ॥४७॥
कनीयाननुजस्तस्य लक्ष्मणोऽपि तथाविधः ।
तस्य भार्या विशालाक्षी रूपिणी श्रीरिवापरा ॥४८॥
देव-गन्धर्व-नागानां मनुष्याणां तथाविधा ।
न दृष्टा न श्रुता राजन् ! द्योतयन्ती वनं शुभा ॥४९॥
आनेतुमहमुद्युक्ता तां भार्यार्थं तवानघ ! ।
लक्ष्मणो नाम तद्-भ्राता चिच्छेद मम नासिकाम् ॥५०॥

---

रावण ने कहा – अरी ! तू बता वह राम कौन है ? उन्होंने किसलिए और क्यों राक्षसों को मारा । तू मुझसे सभी बातें विस्तारपूर्वक बता । मैं उनका सर्वनाश कर डालूँगा ॥४५॥

शूर्पणखा बोली—मैं किसी समय जनस्थान से गौतमी के तट पर गयी । वहाँ एक पञ्चवटी नामक स्थान है जहाँ पहले मुनियों का आश्रम था ॥४६। मैंने वहाँ जाकर देखा कि आश्रम में जटा, वल्कल धारण किये हुए धनुर्बाण धारी, कमलनेत्र शोभाधाम राम विराज रहे हैं ॥४७॥ उनका छोटा भाई लक्ष्मण भी उसी प्रकार रूपवान् था । उनके साथ विशाल नेत्र वाली सीता भी थी, जो सौन्दर्य में साक्षात् लक्ष्मी–जैसी प्रतीत हो रही थी ॥४८॥ हे राजन् ! मैंने देव, गन्धर्व और मनुष्यों मे किसी की भी स्त्री को इतना सुन्दर नहीं देखा । वह अपनी शोभा से दशों दिशाओं को प्रकाशित कर रही थी ॥४९॥

हे अनघ ! उस स्त्री को मैंने ज्यों ही तुम्हारी स्त्री बनाने के लिए हरने का प्रयत्न किया कि उनके छोटे भाई ने मेरी नाक काट ली ॥५०॥ फिर

कर्णौ च नोदितस्तेन रामेण स महाबलः ।
ततोऽहमतिदुःखेन रुदती खरमन्वगाम् ॥५१॥
सोऽपि रामं समासाद्य युद्धं राक्षसयूथपैः ।
अतः क्षणेन रामेण तेनैव बलशालिना ॥५२॥
सर्वे तेन विनष्टा वै राक्षसा भीमविक्रमाः ।
यदि रामो मनः कुर्यात् त्रैलोक्यं निमिषार्धतः ॥५३॥
भस्मीकुर्यान्न सन्देह इति भाति मम प्रभो ! ।
यदि सा तव भार्या स्यात् सफलं तव जीवितम् ॥५४॥
अतो यतस्व राजेन्द्र ! यथा ते वल्लभा भवेत् ।
सीता राजीवपत्राक्षी सर्वलोकैकसुन्दरी ॥५५॥
साक्षाद् रामस्य पुरतः स्थातुं त्वं न क्षमः प्रभो ! ।
मायया मोहयित्वा तु प्राप्स्यसे तां रघूत्तमम् ॥५६॥
श्रुत्वा तत्सूक्तवाक्यैश्च दानमानादिभिस्तथा ।
आश्वास्य भगिनीं राजा प्रविवेश स्वकं गृहम् ।
तत्र चिन्तापरो भूत्वा निद्रां रात्रौ न लब्धवान् ॥५७॥

---

राम के कहने पर उस बलवान् ने मेरे कान भी काट लिये। में दुःख से रोती हुई खर के समीप गयी ॥५१॥

तदनन्तर उसने भी बड़े-बड़े राक्षस-सैनिकों के साथ राम से लड़ाई ठान दिया। किन्तु महा बलशाली राम ने क्षण भर में ही उन महाबलशाली सभी राक्षमों का वध कर दिया। हे प्रभो ! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यदि राम के मन में आ जाय तो वह आधे क्षण में सारे त्रिलोकी को भस्म कर सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं। यदि उनकी स्त्री तुम्हारी स्त्री हो जाय तो तुम्हारा जीवन धन्य हो जायेगा।५२-५४॥ इसलिए हे राजेन्द्र ! तुम ऐसा प्रयत्न करो जिससे कमलनयनी सर्वलोकैकसुन्दरी वह सीता तुम्हारी प्राणप्रिया बन जावे ॥५५॥ हे प्रभो ! तुम राम के सामने प्रत्यक्ष होकर ठहर सकोगे इतनी तुम्हारे में सामर्थ्य नहीं है। तुम माया से मोहित कर ही उस रघुकुलोत्तम सीता को प्राप्त कर सकते हो ॥५६॥

एकेन रामेण कथं ? मनुष्यमात्रेण नष्टः सबलः खरो मे ।
भ्राता कथं ? मे बलवीर्यदर्पयुतो विनष्टो बत राघवेण ॥५८॥
यद्वा न रामो मनुजः परेशो, मां हन्तुकामः सबलं बलौघैः ।
सम्प्रार्थितोऽयं द्रुहिणेन पूर्वं मनुष्यरूपोऽद्य रघोः कुलेऽभूत् ॥५९॥
वध्यो यदि स्यां परमात्मनाहं वैकुण्ठराज्यं परिपालयेऽहम् ।
नो चेदिदं राक्षसराज्यमेव भोक्ष्ये चिरं राममतो व्रजामि ॥६०॥
इत्थं विचिन्त्याऽखिलराक्षसेन्द्रो रामं विदित्वा परमेश्वरं हरिम् ।
विरोधबुद्ध्यैव हरिं प्रयामि द्रुतं न भक्त्या भगवान् प्रसीदेत् ॥६१॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायण उमा-महेश्वरसंवादे
अरण्यकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

---

शूर्पणखा की बात सुनकर राक्षसराज रावण अनेकप्रकार के मधुर-वचनों से दान तथा मान में अपनी भगिनी को धैर्य बँधा कर अपने अन्तःपुर में चला गया, किन्तु चिन्ता के कारण उसे नींद नहीं आयी ॥५७॥ रावण सोचने लगा—अकेले रघुवंशी राम ने, विशेष कर एक मनुष्य ने बल-वीर्य एवं साहसपूर्ण मेरे भाई खर को सेना सहित किस प्रकार मार डाला ॥५८॥ अथवा वह राम मनुष्य नहीं हैं। वे साक्षात् परमात्मा हैं, जिन्होंने पूर्वकाल में ब्रह्मा के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर सेना सहित मेरा वध करने के लिए रघुवंश में मनुष्य रूप से अवतार लिया है ॥५९॥

यदि मैं परमात्मा के द्वारा मारा गया तो निश्चय ही स्वर्ग के राज्य का पालन करूँगा। और यदि नहीं मारा गया तो बहुकाल पर्यन्त इस राक्षस-राज्य का भोग करूँगा। अतः मैं अवश्य ही राम के पास जाऊँगा ॥६०॥

सम्पूर्ण राक्षसों के स्वामी रावण ने अपने मन में ऐसा विचार कर और राम को परमेश्वर हरि समझ कर यही निश्चय किया कि विरोध-बुद्धि से ही राम के पास चलना चाहिए। इसी में कल्याण है क्योंकि भगवान् भक्ति के द्वारा शीघ्र प्रसन्न नहीं होते ॥६१॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या सहित अध्यात्मरामायण के उमा-महेश्वर संवाद में अरण्यकाण्ड का पञ्चम सर्ग समाप्त ॥५॥

## ६. षष्ठः सर्गः

(मिलन एवं मन्त्रणा)

श्रीमहादेव उवाच

विचिन्त्यैवं निशायां स प्रभाते रथमास्थितः ।
रावणो मनसा कार्यमेकं निश्चित्य बुद्धिमान् ॥१॥
ययौ मारीचसदनं परं पारमुदन्वतः ।
मारीचस्तत्र मुनिवज्जटा - वल्कलधारकः ॥२॥
ध्यायन् हृदि परात्मानं निर्गुणं गुणभासकम् ।
समाधिविरमेऽपश्यद् रावणं गृहमागतम् ॥३॥
द्रुतमुत्थाय चालिङ्ग्य पूजयित्वा यथाविधि ।
कृतातिथ्यं सुखासीनं मारीचो वाक्यमब्रवीत् ॥४॥
समागमनमेतत्ते रथेनैकेन रावण ! ।
चिन्तापर इवाभासि हृदि कार्यं विचिन्तयन् ॥५॥

---

श्री महादेव जी ने कहा—हे पार्वती ! इस प्रकार रात्रि में रावण विचार कर प्रभात होते ही रथ पर सवार हो गया ॥१॥ वह अपने मन में एक ही कर्त्तव्य का निश्चय कर समुद्र के उस पार जहाँ मारीच का घर था, गया। उस समय वह मारीच, मुनि के समान जटा, बल्कल धारण किये हुए निर्गुण, समस्त गुणों के भासक परमात्मा का ध्यान करता हुआ समाधि में लीन था। जब उसकी समाधि दूर हुई तो उसने रावण को अपने घर पर आया हुआ देखा ॥२-३॥

रावण को देखते ही मारीच शीघ्रता से उठकर उसे गले लगाकर शास्त्रीय रीति से उसका पूजन किया। आतिथ्य-सत्कार हो जाने के बाद जब रावण स्वस्थ होकर अपने आसन पर बैठा तो मारीच उससे कहने लगा—॥४॥

हे रावण ! तुम रथ पर बैठकर अकेले ही यहाँ आये हो। तुम किसी कार्य का चिन्तन करते हुए चिन्तित जैसे प्रतीत हो रहे हो ॥५॥ यदि वह कार्य

ब्रूहि मे न हि गोप्यं चेत् करवाणि तव प्रियम् ।
न्याय्यं चेद् ब्रूहि राजेन्द्र ! वृजिनं मां स्पृशेन्नहि ॥६॥

रावण उवाच

अस्ति राजा दशरथः साकेताधिपतिः किल ।
रामनामा सुतस्तस्य ज्येष्ठः सत्यपराक्रमः ॥७॥

विवासयामास सुतं वनं वनजनप्रियम् ।
भार्यया सहितं भ्रात्रा लक्ष्मणेन समन्वितम् ॥८॥

स आस्ते विपिने घोरे पञ्चवट्याश्रमे शुभे ।
तस्य भार्या विशालाक्षी सीतालोकविमोहिनी ॥९॥

रामो निरपराधान् मे राक्षसान् भीमविक्रमान् ।
खरं च हत्वा विपिने सुखमास्तेऽतिनिर्भयः ॥१०॥

भगिन्याः शूर्पणखाया निर्दोषायाश्च नासिकाम् ।
कर्णौ चिच्छेद दुष्टात्मा वने तिष्ठति निर्भयः ॥११॥

---

गोपनीय न हो तो तुम उसे मुझे बताओ । हे राजन् ! यदि वह कार्य मेरे करने के योग्य होगा और उसे करने पर मुझे पाप न लगेगा तो मैं तुम्हारा वह प्रिय कार्य अवश्य करूँगा ॥६॥ रावण ने कहा—राजा दशरथ अयोध्यापुरी के राजा हैं, उनके ज्येष्ठ पुत्र सत्य पराक्रमी राम हैं ॥७॥ उन राजा ने वन जनप्रिय अपने पुत्र राम को भार्या सीता एवं भाई लक्ष्मण के साथ वन में निर्वासित कर दिया है ॥८॥ वह इस समय घोर दण्डकारण्य में, जहाँ पञ्चवटी है, वहाँ आश्रम बनाकर निवास कर रहा है। विशाल नयनों वाली सीता उसकी स्त्री है, जो अपने सौन्दर्य से त्रिलोकी को मोहित करने वाली है ॥९॥ वह राम, परम पराक्रमी राक्षसों के साथ मेरे भाई खर का वध कर निर्भय हो उस पञ्चवटी में निवास करता है ॥१०॥

उसने निरपराध मेरी बहन शूर्पणखा का, जिसने उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं किया था, नाक और कान काट लिया फिर भी वह उस वन में निर्भय होकर रह रहा है ॥११॥ इसलिए मैं तुम्हारी सहायता

अतस्त्वया सहायेन गत्वा तत्प्राणवल्लभाम् ।
आनयिष्यामि विपिने रहिते राघवेण ताम् ॥१२॥
त्वं तु मायामृगो भूत्वा ह्याश्रमादपनेष्यसि ।
रामं च लक्ष्मणं चैव तदा सीतां हराम्यहम् ॥१३॥
त्वं तु तावत् सहायं मे कृत्वा स्थास्यसि पूर्ववत् ।
इत्येवं भाषमाणं तं रावणं वीक्ष्य विस्मितः ॥१४॥
केनेदमुपदिष्टं ते मूलघातकरं वचः ।
स एव शत्रुर्वध्यश्च यस्त्वन्नाशं प्रतीक्षते ॥१५॥
रामस्य पौरुषं स्मृत्वा चित्तमद्यापि रावण ! ।
बालोऽपि मां कौशिकस्य यज्ञसंरक्षणाय सः ॥१६॥
आगतस्त्विषुणैकेन पातयामास सागरे ।
योजनानां शतं रामस्तदादि भयविह्वलः ॥१७॥
स्मृत्वा स्मृत्वा तदेवाहं रामं पश्यामि सर्वतः ॥१८॥

---

से जब राम आश्रम में न रहें तो उनकी प्राणप्रिया सीता का हरण करना चाहता हूँ । १२।। तुम माया का मृग बनकर उन राम और लक्ष्मण को आश्रम से दूर ले जाओ। इस प्रकार मैं अकेले में सीता का हरण करूँगा ।।१३।। मेरा काम हो जाने के बाद तुम पूर्ववत् अपने आश्रम में आकर निवास करना। रावण को इस प्रकार कहते देख मारीच आश्चर्य में पड़ गया ।।१४।।

पुनः मारीच रावण से कहने लगा–हे रावण ! सर्वनाश करने वाली इस प्रकार की बातों का उपदेश तुमसे किसने किया ? जो इस प्रकार का उपदेश देकर तुम्हारा सर्वनाश करना चाहता है वह तुम्हारा शत्रु है। और वध करने योग्य है ।।१५। हे रावण ! उनके बाल्यकाल के पराक्रम का स्मरण कर मेरा चित्त अब भी भय से विह्वल हो जाता है। महामुनि विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के लिए जब वे आये थे तब एक ही बाण द्वारा मुझे सौ योजन दूर समुद्र में गिरा दिया था ।।१६-१७।। बारम्बार उस घटना के स्मरण करते ही मुझे चारो ओर राम ही राम दिखाई पड़ते हैं ।।१८।।

दण्डकेऽपि पुनरप्यहं वने पूर्ववैरमनुचिन्तयन् हृदि ।
तीक्ष्णशृङ्गमृगरूपमेकदा मादृशैर्बहुभिरावृतोऽभ्ययाम् ॥१९॥
राघवं जनकजासमन्वितं लक्ष्मणेन सहितं त्वरान्वितः ।
आगतोऽहमथ हन्तुमुद्यतो मां विलोक्य शरमेकमक्षिपत् ॥२०॥
तेन विद्धहृदयोऽहमुद्भ्रमन् राक्षसेन्द्र ! पतितोऽस्मि सागरे ।
तत्प्रभृत्यहमिदं समाश्रितः स्थानमूर्जितमिदं भयार्दितः ॥२१॥
राममेव सततं विभावये भीतभीत इव भोगराशितः ।
राजरत्नरमणीरथादिकं श्रोत्रयोर्यदि गतं भयं भवेत् ॥२२॥
राम आगत इहेति शङ्कया बाह्यकार्यमपि सर्वमत्यजम् ।
निद्रया परिवृतो यदा स्वपे राममेव मनसानुचिन्तयन् ॥२३॥
स्वप्नदृष्टिगतराघवं तदा बोधितो विगतनिद्र आस्थितः ।
तद्भवानपि विमुच्य चाग्रहं राघवं प्रतिगृहं प्रयाहि भोः ॥२४॥

---

अपने पूर्व में किये गये वैर को हृदय में स्मरण करता हुआ (उसके प्रतिशोध की भावना से) जब मैं पुनः दण्डकारण्य में अपने-जैसे बहुत से मृगों के साथ तीक्ष्ण सींग वाले मृग का वेश बनाकर गया ॥१९॥ और बड़ी शीघ्रता से जब मैं उन राम, लक्ष्मण एवं सीता को मारने के लिए चला तो उन्होंने मुझे देखकर एक बाण छोड़ दिया ॥२०॥ हे राक्षसेन्द्र ! उस बाण के हृदय में लग जाने से मैं चक्कर काटता हुआ समुद्र में जा गिरा। उसी भय से भयभीत हो मैं तभी से इस प्रशस्त स्थान में निवास करता हूँ ॥२१॥

राज, रत्न, रमणी एवं रथ आदि भोग-सामग्री में भी आये हुए प्रथमाक्षर 'र' के कानों में पड़ते ही मुझे राम का स्मरण हो जाता है और मैं भयभीत हो जाता हूँ। और राम का ध्यान करने लग जाता हूँ ॥२२॥ कहीं यहाँ पर भी राम न आ जाँय, इस शङ्कालु बुद्धि से मैंने अपने समस्त कार्य छोड़ दिया है। जब मैं निद्रा के परवश होकर सोता हूँ तब भी मुझे मन में राम का स्मरण होता रहता है ॥२३॥ सोने पर भी जब मैं स्वप्न में राम को देखता हूँ तो भय से मेरी निद्रा टूट जाती है। मैं जाग पड़ता हूँ। इस लिए हे रावण ! तुम राम से वैर करने का हठ छोड़ दो और अपने

रक्ष राक्षसकुलं चिरागतं तत्स्मृतौ सकलमेव नश्यति ।
तव हितं वदतो मम भाषितं परिगृहाण परात्मनि राघवे ॥२५॥

त्यज विरोधमतिं भज भक्तितः परमकारुणिको रघुनन्दनः ।
अहमशेषमिदं मुनिवाक्यतोऽश्रृणवमादियुगे परमेश्वरः ॥२६॥

ब्रह्मणार्थित उवाच तं हरिः किं तवेप्सितमहं करवाणि तत् ।
ब्रह्मणोक्तमरविन्दलोचन ! त्वं प्रयाहि भुवि मानुषं वपुः ।
दशरथात्मजभावमञ्जसा जहि रिपुं दशकन्धरं हरे ! ॥२७॥

अतो न मानुषो रामः साक्षान्नारायणोऽव्ययः ।
मायामानुषवेषेण वनं यातोऽतिनिर्भयः ॥२८॥

भूभारहरणार्थाय गच्छ तात ! गृहं सुखम् ।
श्रुत्वा मारीचवचनं रावणः प्रत्यभाषत ॥२९॥

---

घर चले जाओ ॥२४॥ बहुत दिनों से चले आये इस राक्षस वंश की रक्षा करो। राम से वैरभाव का स्मरण करते ही सर्वनाश हो जायेगा। मैं परमात्मा राघव के विषय में यह सब बातें तुम्हारी भलाई के लिए ही कह रहा हूँ। तुम इसको मान लो ॥२५॥

भगवान् से विरोध-भावना का त्याग करो और भक्ति-भाव से उनका स्मरण करो। वे परमात्मा राम बड़े दयालु हैं। मैंने ये सभी बातें मुनियों के मुख से सुनी हैं कि सत्ययुग में ब्रह्मा के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर परमेश्वर श्री हरि ने उनसे कहा कि तुम्हारी क्या अभिलाषा है, मैं उसे शीघ्र पूर्ण करूँगा। तब ब्रह्मा ने कहा— हे अरविन्द लोचन ! हे हरे ! आप पृथ्वी में अवतार लीजिए और दशरथ-नन्दन राम बनकर शीघ्र दशानन रूप शत्रु का वध कीजिए ॥२६-२७॥

इसलिए हे रावण ! राम मनुष्य नहीं हैं। वे साक्षात् परमात्मा अविकारी श्री नारायण हैं। वे माया से मनुष्य रूप धारण कर ( पृथ्वी का भार उतारने के लिए ) निर्भय होकर वन में आये हैं ॥२८॥ हे तात ! तुम घर लौट जाओ, मारीच के द्वारा कहे गये वचन को सुनकर रावण कहने लगा ॥२९॥ यदि स्वयं परमात्मा राम ने ब्रह्मा द्वारा प्रार्थना किये जाने

परमात्मा यदा रामः प्रार्थितो ब्रह्मणा किल ।
मां हन्तुं मानुषो भूत्वा यत्नादिह समागतः ॥३०॥
करिष्यत्यचिरादेव सत्यसङ्कल्प ईश्वरः ।
अतोऽहं यत्नतः सीतामानेष्याम्येव राघवात् ॥३१॥
वधे प्राप्ते रणे वीर ! प्राप्स्यामि परमं पदम् ।
यद् वा रामं रणे हत्वा सीतां प्राप्स्यामि निर्भयः ॥३२॥
तदुत्तिष्ठ महाभाग ! विचित्रमृगरूपधृक् ।
रामं स-लक्ष्मणं शीघ्रमाश्रमादतिदूरतः ॥३३॥
आक्रम्य गच्छ त्वं शीघ्रं सुखं तिष्ठ यथा पुरा ।
अतः परं चेद्यत् किञ्चिद् भाषसे मद्विभीषणम् ॥३४॥
हनिष्याम्यसिनानेन त्वामत्रैव न संशयः ।
मारीचस्तद्वचः श्रुत्वा स्वात्मन्येवान्वचिन्तयत् ॥३५॥
यदि मां राघवो हन्यात्तदा मुक्तो भवार्णवात् ।
मां हन्याद् यदि चेद् दुष्टस्तदा मे निरयो ध्रुवम् ॥३६॥

---

पर मुझे मारने के लिए इस पृथ्वी पर प्रयत्न पूर्वक अवतार लिया है तो वे अवश्य ही मेरा वध करेंगे। क्योंकि ईश्वर सत्य-संकल्प हैं, इसलिए मैं प्रयत्न पूर्वक उन राघव से सीता को ले आऊँगा ॥३०-३१॥ और युद्ध में उनके द्वारा मारा जाकर परम पद प्राप्त करूँगा। यदि मैंने स्वयं उन राम का रणक्षेत्र में वध कर दिया, तो निश्चित ही निर्भयता पूर्वक सीता को प्राप्त करूँगा ॥३२॥ इसलिये हे महाभाग्यवान् ! उठो और शीघ्र ही परम विचित्र मृग रूप धारण कर राम और लक्ष्मण को आश्रम से दूर हटाओ ॥३३॥

फिर तुम अपने आश्रम में आकर सुख से निवास करो। अब इसके बाद मुझे भयभीत करने के लिए यदि तुमने कुछ कहा तो निश्चय ही मैं इसी तलवार से तुम्हारा वध कर दूँगा। तब रावण की इस बात को सुनकर मारीच अपने मन में विचार करने लगा ॥३४-३५॥ यदि मेरा वध राम करें तो मैं इस संसार-समुद्र से पार हो जाऊँगा, किन्तु यदि इस दुष्ट के द्वारा मैं मारा गया तो निश्चय ही नरक प्राप्त होगा ॥३६॥ इस प्रकार श्री राम

इति निश्चित्य मरणं रामादुत्थाय वेगतः ।
अब्रवीद् रावणं राजन् ! करोम्याज्ञां तव प्रभो ! ॥३७॥
इत्युक्त्वा रथमास्थाय गतो रामाश्रमं प्रति ।
शुद्धजाम्बूनदप्रख्यो मृगोऽभूद्रौप्यबिन्दुकः ॥३८॥
रत्नशृङ्गो मणिखुरो नीलरत्नविलोचनः ।
विद्युत्प्रभो विमुग्धास्यो विचचार वनान्तरे ॥३९॥
रामाश्रमपदस्यान्ते सीता दृष्टिपथे चरन् ॥४०॥
क्षणं च धावत्यवतिष्ठते क्षणं
समीपमागत्य पुनर्भयावृतः ।
एवं स मायामृगवेषरूपधृक्
चचार सीतां परिमोहयन् खलः ॥४१॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वर-संवादे
अरण्यकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥६॥

*

के हाथ से मरने का निश्चय कर वह शीघ्रता से उठा और रावण से कहा— प्रभो ! मैं तुम्हारी आज्ञा का पालन करूँगा ॥३७॥

ऐसा कह कर वह रथ पर चढ़ कर राम के आश्रम पर आया और चाँदी के छोटे-छोटे विन्दुओं के सहित शुद्ध सुवर्ण मय मृग का रूप धारण कर लिया ॥३८। उसके रत्नमय शृङ्ग, मणिमय खुर तथा नील रत्नमय नेत्र थे, उसके शरीर से बिजली जैसी आभा निकलती थी। उसका मुख परम रमणीय था। इस प्रकार विचित्र मृग वेश धारण कर वह राम-आश्रम के समीप सीता के आँखों के सामने वन में विचरने लगा ॥३९-४०॥

वह मृग कभी चौकड़ी भरता, और कभी ठिठक कर रुक जाता, कभी सीता के समीप जाकर भयभीत हो भाग जाता। इस प्रकार वह खल मारीच माया से मृग वेष धारण कर सीता जी को मोहित करता हुआ आश्रम में विचरने लगा ॥४१॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या सहित अध्यात्मरामायण के उमा-महेश्वर संवाद में अरण्यकाण्ड का षष्ठ सर्ग समाप्त ॥६॥

*

## ७. सप्तमः सर्गः

( मारीचवध और सीताहरण )

श्रीमहादेव उवाच

अथ रामोऽपि तत्सर्वं ज्ञात्वा रावणचेष्टितम् ।
उवाच सीतामेकान्ते शृणु जानकि ! मे वचः ॥१॥

रावणो भिक्षुरूपेण आगमिष्यति तेऽन्तिकम् ।
त्वं तु छायां त्वदाकारां स्थापयित्वोटजे विश ॥२॥

अग्नावदृश्यरूपेण वर्षं तिष्ठ ममाज्ञया ।
रावणस्य वधान्ते मां पूर्ववत् प्राप्स्यसे शुभे ! ॥३॥

श्रुत्वा रामोदितं वाक्यं साऽपि तत्र तथाऽकरोत् ।
मायासीतां बहिः स्थाप्य स्वयमन्तर्दधेऽनले ॥४॥

मायासीता तदापश्यन् मृगं मायाविनिर्मितम् ।
हसन्ती राममभ्येत्य प्रोवाच विनयान्विता ॥५॥

---

श्री महादेव जी ने कहा–हे पार्वति ! इधर श्री राम ने भी रावण के सारे षड्यन्त्र को जानकर एकान्त में सीता से कहा—हे जानकि ! तुम मेरी बात सुनो ॥१॥ रावण भिक्षु का रूप धारण कर तुम्हारा हरण करने के लिये आयेगा अतः तुम अपने ही समान आकृति वाली छाया को कुटी में छोड़कर अग्नि में प्रवेश करो । और मेरी आज्ञानुसार एक वर्ष तक अदृश्य रूप से वहीं रहो । फिर रावण का वध कर लेने पर तुम मुझे पुनः प्राप्त कर लोगी ॥२-३॥

श्री रामचन्द्र जी की बातों को सुनकर वहाँ पर सीता ने वैसा ही किया । वे मायामयी सीता को बाहर छोड़ स्वयं अग्नि में अन्तर्धान हो गयीं ॥४॥ तब उस मायामयी सीता ने माया से बने हुए उस मृग को देखा । और श्री रामचन्द्र जी के पास आकर बड़ी विनम्रता से कहा–॥५॥

पश्य राम ! मृगं चित्रं काणकं रत्नभूषितम् ।
विचित्रबिन्दुभिर्युक्तं चरन्तमकुतोभयम् ।
बद्ध्वा देहि मम क्रीडामृगो भवतु सुन्दरः ॥६॥
तथेति धनुरादाय गच्छन् लक्ष्मणमब्रवीत् ।
रक्ष त्वमतियत्नेन सीतां मत्प्राणवल्लभाम् ॥७॥
मायिनः सन्ति विपिने राक्षसा घोरदर्शनाः ।
अतोऽत्रावहितः साध्वीं रक्ष सीतामनिन्दिताम् ॥८॥
लक्ष्मणो राममाहेदं देवायं मृगरूपधृक् ।
मारीचोऽत्र न सन्देह एवंभूतो मृगः कुतः ॥९॥

श्रीराम उवाच

यदि मारीच एवायं तदा हन्मि न संशयः ।
मृगश्चेदानयिष्यामि सीताविश्रमहेतवे ॥१०॥
गमिष्यामि मृगं बद्ध्वा ह्यानयिष्यामि सत्वरः ।
त्वं प्रयत्नेन सन्तिष्ठ सीतासंरक्षणोद्यतः ॥११॥

---

हे राम ! रत्नविभूषित कनक वर्ण के इस विचित्र मृग को देखिए, इसके शरीर पर छोटे-छोटे विन्दु हैं और यह बड़ा ही निर्भीक हो कर इस आश्रम के पास चर रहा है। आप इसे बाँध कर मुझे ला दीजिए। यह मेरा सुन्दर क्रीडा मृग होगा ॥६॥ श्री राम 'तथास्तु' कहकर धनुष लेकर चल पड़े। और जाते समय उन्होंने लक्ष्मण जी से कहा—भाई लक्ष्मण ! मेरी प्राणवल्लभा सीता की यत्न पूर्वक सावधानी से रक्षा करना ॥७॥ इस वन में माया करने वाले महा भयानक राक्षस घूम रहे हैं। इसलिए बड़ी सावधानी से अनिन्दिता साध्वी सीता की रक्षा करना ॥८॥ तब लक्ष्मण ने राम से कहा—हे देव ! यह मृगरूप धारी मारीच है, इसमें सन्देह नहीं। भला मृग भी कभी ऐसा हो सकता है ॥९॥

तब राम ने लक्ष्मण से कहा—यदि यह वही मारीच है, तो निश्चय ही उसका वध करूँगा। किन्तु यदि वह वस्तुतः मृग है तो सीता के प्रत्यय के लिए उसे बाँध कर ले आऊँगा ॥१०॥ हे लक्ष्मण ! अब मैं जा रहा हूँ और शीघ्र ही मृग को बाँध कर ले आऊँगा। तबतक तुम सीता की रखवाली

इत्युक्त्वा प्रययौ रामो मायामृगमनुद्रुतः ।
माया यथाश्रया लोकमोहिनी जगदाकृतिः ॥१२॥
निर्विकारश्चिदात्मापि पूर्णोऽपि मृगमन्वगात् ।
भक्तानुकम्पी भगवानिति सत्यं वचो हरिः ॥१३॥
कर्तुं सीताप्रियार्थाय जानन्नपि मृगं ययौ ।
अन्यथा पूर्णकामस्य रामस्य विदितात्मनः ॥१४॥
मृगेण वा स्त्रिया वाऽपि किं कार्यं परमात्मनः ।
कदाचिद् दृश्यतेऽभ्याशे क्षणं धावति लीयते ॥१५॥
दृश्यते च ततो दूरादेवं राममपाहरत् ।
ततो रामोऽपि विज्ञाय राक्षसोऽयमिति स्फुटम् ॥१६॥
विव्याध शरमादाय राक्षसं मृगरूपिणम् ।
पपात रुधिराक्तास्यो मारीचः पूर्वरूपधृक् ॥१७॥

---

करते हुए बड़ी सावधानी से यहीं रहना ॥११॥ ऐसा कह राम माया मृग का अनुसरण करते हुए चल पड़े । लोक को मोहित करने वाली यह संसार स्वरूपिणी माया जिसके आश्रय में रहती है देखो, वह भी माया का अनुसरण कर रहा है ॥१२॥ विकार रहित चिदात्मा वह परमात्मा भी मृग के पीछे दौड़ रहा है। भगवान् श्री हरि भक्तानुकम्पी हैं, यह बात सत्य है ॥१३॥ सब कुछ जानते हुए भी वह परात्पर राम सीता का प्रिय करने के लिए मृग के पीछे-पीछे दौड़ रहे हैं। अन्यथा पूर्णकाम आत्मज्ञ राम को किसी से क्या प्रयोजन है ॥१४॥ उस परमात्मा को मृग से अथवा स्त्री से क्या प्रयोजन ? वह मृग कभी-कभी आँख के सामने समीप में दौड़ता हुआ दिखाई पड़ता और कभी आँखों से ओझल हो कर छिप जाता ॥१५। और कभी बहुत दूर पर दिखाई पड़ता। इस प्रकार छल करता हुआ वह मृग राम को बहुत दूर ले गया। राम ने भी यह निश्चय कर लिया कि यह राक्षस ही है ॥१६॥ उन्होंने मृग रूप धारी उस राक्षस को बाण छोड़कर बींध दिया। उस बाण के लगते ही वह मृग अपना पूर्व मारीच का रूप धारण कर लहू भरे मुख से पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥१७॥ मरते समय वह राक्षस

हा हतोऽस्मि महाबाहो ! त्राहिलक्ष्मण ! मां द्रुतम् ।
इत्युक्त्वा रामवद् वाचा पपात रुधिराशनः ॥१८॥
यन्नामाज्ञोऽपि मरणे स्मृत्वा तत्साम्यमाप्नुयात् ।
किमुताग्रे हरिं पश्यंस्तेनैव निहतोऽसुरः ॥१९॥
तद् देहादुत्थितं तेजः सर्वलोकस्य पश्यतः ।
राममेवाविशद् देवा विस्मयं परमं ययुः ॥२०॥
किं कर्म कृत्वा किं प्राप्तः पातकी मुनिहिंसकः ।
अथवा राघवस्यायं महिमा नात्र संशयः ॥२१॥
रामबाणेन संविद्धः पूर्वं राममनुस्मरन् ।
भयात् सर्वं परित्यज्य गृहवित्तादिकं च यत् ॥२२॥
हृदि रामं सदा ध्यात्वा निर्धूताशेषकल्मषः ।
अन्ते रामेण निहतः पश्यन् राममवाप सः ॥२३॥

---

राम जैसी वाणी में बोला—हा महाबाहो लक्ष्मण ! मैं मारा गया। तुम आकर शीघ्र ही मेरी रक्षा करो ॥१८॥

मरने के समय जिनके नाम का स्मरण कर मूर्ख लोग भी जिनकी समता प्राप्त कर लेते हैं, तो अन्तिम समय में अपने आगे उन श्रीराम को देखते-देखते तथा उन्हीं के द्वारा मारे गये उस मारीच राक्षस के भाग्य का क्या कहना ॥१९॥ सभी लोगों के देखते-देखते उसके शरीर से निकला हुआ तेज राम के शरीर में मिल गया। यह देखकर देवता लोग आश्चर्य-चकित हो गये और कहने लगे ॥२०॥

अहो ! मुनिजनों की हिंसा करने वाले इस पापी राक्षस ने कितना दुष्कृत किया था। किन्तु मरने पर इसे कैसी शुभ गति मिली। यह सब श्रीराम की महिमा का प्रभाव है, इसमें सन्देह नहीं ॥२१॥ यह मारीच राम के बाणों से आहत होकर पूर्व में ही भय से सारे गृह, वित्त आदि का परित्याग कर राम का स्मरण कर रहा था ॥२२॥ और इस प्रकार हृदय में राम के स्मरण से उसके समस्त पाप भी नष्ट हो गये थे। अन्त में राम के देखते-देखते उनके बाणों से मारा जाकर उसने राम को प्राप्त भी कर लिया ॥२३॥ राम का स्मरण करते हुए अपने शरीर का त्याग करने वाला

द्विजो वा राक्षसो वाऽपि पापी वा धार्मिकोऽपि वा ।
त्यजन् कलेवरं रामं स्मृत्वा याति परं पदम् ॥२४॥

इति तेऽन्योन्यमाभाष्य ततो देवा दिवं ययुः ।
रामस्तच्चिन्तयामास म्रियमाणोऽसुराधमः ॥२५॥

हा लक्ष्मणेति मद्वाक्यमनुकुर्वन् ममार किम् ।
श्रुत्वा मद्वाक्यसदृशं वाक्यं सीतापि किं भवेत् ॥२६॥

इति चिन्तापरीतात्मा रामो दूरान् न्यवर्तत ।
सीता तद्भाषितं श्रुत्वा मारीचस्य दुरात्मनः ॥२७॥

भीतातिदुःखसंविग्ना लक्ष्मणं त्विदमब्रवीत् ।
गच्छ लक्ष्मण ! वेगेन भ्राता तेऽसुरपीडितः ॥२८॥

हा लक्ष्मणेति वचनं भ्रातुस्ते न शृणोषि किम् ।
तामाह लक्ष्मणो देवि ! रामवाक्यं न तद्भवेत् ॥२९॥

---

चाहे ब्राह्मण हो, राक्षस हो, पापी हो अथवा धार्मिक हो वह अवश्य ही परमपद को प्राप्त करता है ॥२४॥

देवता लोग इस प्रकार परस्पर सम्भाषण करते हुए स्वर्ग को चले गये। इधर श्री रामचन्द्र जी मन में सोचने लगे—इस नीच राक्षस ने मरती समय मेरे बोली का अनुकरण कर 'हा लक्ष्मण !' ऐसा उच्चारण कर इस प्रकार प्राण त्याग क्यों किया। और इस वाक्य को सुनकर सीता की क्या दशा हुई होगी ॥२५-२६॥

इस प्रकार चिन्ता से ग्रस्त हो श्री रामचन्द्र जी दूर से आश्रम की ओर लौटे। इधर सीता भी दुष्ट मारीच के शब्द को सुनकर भय एवं दुःख से व्याकुल होकर लक्ष्मण से बोलीं— लक्ष्मण ! तुम शीघ्र जाओ। तुम्हारे भाई पर असुर के द्वारा विपत्ति पड़ गयी है ॥२७-२८॥ क्या तुम अपने भाई के द्वारा पुकारे जाते हुए 'हा लक्ष्मण !' इस शब्द को नहीं सुन रहे हो। तब लक्ष्मण ने सीता से कहा—देवि ! यह वाक्य श्री राम का नहीं है ॥२९॥

य: कश्चिद्राक्षसो देवि ! म्रियमाणोऽब्रवीद् वचः ।
रामस्त्रैलोक्यमपि यः क्रुद्धो नाशयति क्षणात् ॥३०॥
स कथं दीनवचनं भाषतेऽमरपूजितः ।
क्रुद्धा लक्ष्मणमालोक्य सीता बाष्पविलोचना ॥३१॥
प्राह लक्ष्मण दुर्बुद्धे ! भ्रातुर्व्यसनमिच्छसि ।
प्रेषितो भरतेनैव रामनाशाभिकाङ्क्षिणा ॥३२॥
मां नेतुमागतोऽसि त्वं रामनाश उपस्थिते ।
न प्राप्स्यसे त्वं मामद्य पश्य प्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥३३॥
न जानातीदृशं रामस्त्वां भार्याहरणोद्यतम् ।
रामादन्यं न स्पृशामि त्वां वा भरतमेव वा ॥३४॥
इत्युक्त्वा बध्यमाना सा स्वबाहुभ्यां रुरोद ह ।
तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणः कर्णौ पिधायातीव दुःखितः ॥३५॥

---

यह तो मरते समय किसी राक्षस के द्वारा कहा हुआ वचन है। भला, जो राम क्रुद्ध होने पर सारे त्रिलोकी को क्षण भर में नष्ट कर सकते हैं ॥३०॥ वह देवपूजित प्रभु ऐसा दीन वचन किस प्रकार कह सकते हैं। तब सीता जी रोती हुई क्रुद्ध होकर लक्ष्मण से कहने लगीं॥ ३१। हे लक्ष्मण ! मालूम पड़ता है कि तुम अपने भाई को विपत्ति में पड़ा हुआ देखना चाहते हो। हे दुर्बुद्धे ! तुम उस भरत के द्वारा गुप्त रूप से भेजे गये हो, जो राम का सर्वनाश करना चाहता है॥३२॥ तुम राम का नाश हो जाने पर मुझे ले जानेके लिए ही आये हो किन्तु तुम्हारी यह अभिलाषा धूल में मिल जायेगी। किसी भी प्रकार तुम मुझे प्राप्त न कर सकोगे। देखो, मैं अपना प्राण त्याग किये देती हूँ ॥३३॥

राम तुम्हें ऐसा नहीं जानते थे कि तुम पत्नी के हरण की कामना से वन में साथ आये हो। किन्तु इस बात को अच्छी तरह जान लो कि मैं राम के अतिरिक्त तुम्हारा या भरत का गात्र भी स्पर्श न करूँगी ॥३४॥ ऐसा कह कर ये बाहुओं से अपनी छाती पीट-पीट कर रोने लगीं। इस बात को सुनकर लक्ष्मण दुःखी हो अपने दोनों कानों पर हाथ रखकर बन्द कर लिया और कहा—॥३५॥

मामेवं भाषसे चण्डि ! धिक् त्वां नाशमुपैष्यसि ।
इत्युक्त्वा वनदेवीभ्यः समर्प्य जनकात्मजाम् ॥३६॥
ययौ दुःखासितं विग्नो राममेव शनैः शनैः ।
ततोऽन्तरं समालोक्य रावणो भिक्षुवेषधृक् ॥३७॥
सीतासमीपमगमत् स्फुरद् दण्डकमण्डलुः ।
सीता तमवलोक्याशु नत्वा सम्पूज्य भक्तितः ॥३८॥
कन्द-मूल-फलादीनि दत्त्वा स्वागतमब्रवीत् ।
मुने ! भुङ्क्ष्व फलादीनि विश्रमस्व यथासुखम् ॥३९॥
इदानीमेव भर्ता मे ह्यागमिष्यति ते प्रियम् ।
करिष्यति विशेषेण तिष्ठ त्वं यदि रोचते ॥४०॥

भिक्षुरुवाच

का त्वं कमलपत्राक्षि ! को वा भर्ता तवानघे ! ।
किमर्थमत्र ते वासो वने राक्षससेविते ।
ब्रूहि भद्रे ! ततः सर्वं स्ववृत्तान्तं निवेदय ॥४१॥

---

हे चण्डि ! तुम्हें धिक्कार है जो मुझ इस प्रकार की बातें कह रही हो। अवश्य ही तुम्हारा सर्वनाश हो जायेगा। ऐसा कह वह उन्होंने सीता को वनदेवियों के हाथ सौंप दिया ॥३६॥ वे दुःख से अत्यन्त संविग्न हृदय हो राम के पास धीरे-धीरे चल पड़े। इधर अवसर पाकर रावण भी भिक्षुक का रूप धारण कर ॥ ३७ ॥ दण्ड और कमण्डलु लिये हुए सीता के पास पहुँचा। सीता ने भी उसे आया हुआ देखकर उसे प्रणाम किया। तथा भक्ति से उसकी पूजा की ॥३८॥

कन्द, मूल, फलादि देकर उसका स्वागत करती हुई बोली—मुझे ! इस कन्द, मूल, फलादि का भोजन करो। और सुखपूर्वक विश्राम करो ॥ ३९ ॥ अभी थोड़ी ही देर में मेरे पति आने वाले हैं। यदि आपकी रुचि हो तो ठहर जाइए, वे आने पर आपका विशेष सत्कार करेंगे ॥४०॥

तब भिक्षुक ने कहा—हे देवी ! कमल के समान नेत्र वाली तुम कौन हो ? हे अनघे ! तुम्हारा पति कौन है ? राक्षस सेवित द्वारा इस वन में

सीतोवाच

अयोध्याधिपतिः श्रीमान् राजा दशरथो महान् ।
तस्य ज्येष्ठः सुतो रामः सर्वलक्षणलक्षितः ॥४२॥

तस्याऽहं धर्मतः पत्नी सीता जनकनन्दिनी ।
तस्य भ्राता कनीयांश्च लक्ष्मणो भ्रातृवत्सलः ॥४३॥

पितुराज्ञां पुरस्कृत्य दण्डके वस्तुमागतः ।
चतुर्दश समास्त्वां तु ज्ञातुमिच्छामि मे वद ॥४४॥

भिक्षुरुवाच

पौलस्त्यतनयोऽहं तु रावणो राक्षसाधिपः ।
त्वत्कामपरितप्तोऽहं त्वां नेतुं पुरमागतः ॥४५॥

मुनिवेषेण रामेण किं करिष्यसि मां भज ।
भुङ्क्ष्व भोगान्मया सार्धं त्यज दुःखं वनोद्भवम् ॥४६॥

---

तुम्हारे रहने का क्या कारण है ? इन सब बातों को तुम मुझे बताओ। तदनन्तर मैं अपना वृत्तान्त निवेदन करूँगा। ॥ ४१ ॥

तब सीता ने कहा श्री सम्पन्न महाराज दशरथ अयोध्या के श्रेष्ठ राजा हैं। सम्पूर्ण लक्षणों से लक्षित श्रीराम उनके जेठे पुत्र हैं ॥४२। उनकी मैं धर्मपत्नी हूँ और जनक की कन्या हूँ। उनके छोटे भाई का नाम लक्ष्मण हैं, जो अत्यन्त भ्रातृवत्सल हैं ॥ ४३ ॥ हम सभी पिता की आज्ञा मानकर इस दण्डक वन में चौदह वर्ष तक निवास करने के लिए आये हैं। अब मैं तुम्हारे विषय में जानना चाहती हूँ। तुम भी अपना परिचय दो ॥४४॥

तब भिक्षुक ने कहा—मैं पुलस्त्य के पुत्र विश्रवस् का पुत्र हूँ, मैं राक्षसों का राजा हूँ। मेरा नाम रावण है। मैं तुम्हें प्राप्त करने की इच्छा से छटपटा रहा हूँ। इसलिए तुम्हें अपने नगर ले चलने के लिए यहाँ आया हूँ ॥४५॥ हे सुन्दरि ! मुनि वेष वाले राम को लेकर तुम क्या करोगी, तुम मुझसे अनुराग करो। और मेरे साथ उत्तम भोग भोगो। अतः इस जङ्गल के समस्त दुःख का परित्याग करो। ॥ ४६ ॥

श्रुत्वा तद्वचनं सीता भीता किञ्चिदुवाच तम् ।
यद्येवं भाषसे मां त्वं नाशमेष्यसि राघवात् ॥४७॥
आगमिष्यति रामोऽपि क्षणं तिष्ठ सहानुजः ।
मां को धर्षयितुं शक्तो हरेर्भार्यां शशो यथा ॥४८॥
रामबाणैर्विभिन्नस्त्वं पतिष्यसि महीतले ।
इति सीतावचः श्रुत्वा रावणः क्रोधमूर्च्छितः ॥४९॥
स्वरूपं दर्शयामास महापर्वतसन्निभम् ।
दशास्यं विंशतिभुजं कालमेघसमद्युतिम् ॥५०॥
तद् दृष्ट्वा वनदेव्यश्च भूतानि च वितत्रसुः ।
ततो विदार्य धरिणीं नखैरुद्धृत्य बाहुभिः ॥५१॥
तोलयित्वा रथे क्षिप्त्वा ययौ क्षिप्रं विहायसा ।
हा राम ! हा लक्ष्मणेति रुदती जनकात्मजा ॥५२॥
भयोद्विग्नमना दीना पश्यन्ती भुवमेव सा ।
श्रुत्वा तत् क्रन्दितं दीनं सीतायाः पक्षिसत्तमः ॥५३॥

---

रावण की बातों को सुनकर सीता कुछ भयभीत हो उठीं। और कहने लगीं। यदि तू इसप्रकार की बात करेगा तो निश्चय ही रामचन्द्र तुम्हारा सर्वनाश कर देंगे ॥ ४७ ॥ तू थोड़ी देर ठहर, राम भाई के सहित अभी आ रहे होंगे। इस प्रकार मुझसे बलात्कार करने वाला तू कौन है ? क्या खरगोश सिंह की भार्या से कभी छेड़खानी कर सकता है ॥ ४८ ॥ अरे ! तू रामचन्द्रजी के बाणों से विदीर्ण होकर शीघ्र ही पृथ्वीतल पर सोवेगा। सीता की बात को सुनते ही रावण क्रोध से मूर्च्छित हो उठा ॥ ४९ ॥

उसने पर्वत के समान महाभयानक अपना रूप दिखाया। उसका वह स्वरूप दशमुख एवं बीस भुजाओं से युक्त था। उसके शरीर की आभा काले मेघ के समान दिखाई पड़ती थी ॥ ५० ॥ उसके उस भयानक रूप को देखते ही वन की देवियाँ एवं अन्य जीव भयभीत हो उठे। इसके बाद उसने अपने नखों से पृथ्वी को खोदकर सीता को बाहु से उठा लिया ॥ ५१ ॥ उन्हें रथ में रख लिया। और बड़ी शीघ्रता से आकाश मार्ग द्वारा चल पड़ा। उस समय भय से संत्रस्त सीता पृथ्वी की ओर देखती हुई हा राम !

जटायुरुत्थितः शीघ्रं नगाग्रात् तीक्ष्णतुण्डकः ।
तिष्ठ तिष्ठेति तं प्राह को गच्छति ममाग्रतः ॥५४॥
मुषित्वा लोकनाथस्य भार्यां शून्याद् वनालयात् ।
शुनको मन्त्रपूतं त्वं पुरोडाशमिवाध्वरे ॥५५॥
इत्युक्त्वा तीक्ष्णतुण्डेन चूर्णयामास तद्रथम् ।
वाहान् बिभेद पादाभ्यां चूर्णयामास तद्धनुः ॥५६॥
ततः सीतां परित्यज्य रावणः खड्गमाददे ।
चिच्छेद पक्षौ सामर्षः पक्षिराजस्य धीमतः ॥५७॥
पपात किञ्चिच्छेषेण प्राणेन भुवि पक्षिराट् ।
पुनरन्यरथेनाशु सीतामादाय रावणः ॥५८॥
क्रोशन्ती रामरामेति त्रातारं नाधिगच्छति ।
हा राम ! हा जगन्नाथ ! मां न पश्यसि दुःखिताम् ॥५९॥

---

हा लक्ष्मण ! ऐसा पुकार कर रो रही थीं । सीता के इस करुण क्रन्दन को पक्षिराज जटायु ने सुना । ५२-५३ ।

उस क्रन्दन को सुनते ही तीक्ष्ण चोंच वाला वह जटायु पहाड़ की चोटी पर से उठा और कहने लगा–'ठहरो-ठहरो', यह कौन मेरे आगे-आगे भागा जा रहा है ॥ ५४ ॥ जिस प्रकार मन्त्रपूत यज्ञ के पुरोडाश को कुत्ता चुरा कर ले जाता है, उसी प्रकार शून्य तपोवन से लोकनाथ राम की भार्या को चुरा कर मेरे आगे से भागने वाला तू कौन है ? ॥ ५५ ॥ ऐसा कह कर जटायु ने अपने तीक्ष्ण चोंचों से उसका रथ चूर्ण-चूर्ण कर डाला । उस रथ के घोड़ों को पञ्जों की मार से छिन्न-भिन्न कर दिया । और धनुष के टुकड़े-टुकड़े कर दिये ॥ ५६ ॥

तब रावण सीता को छोड़कर अपना खड्ग निकाल लिया और अमर्ष युक्त हो उस बुद्धिमान् जटायु के पक्षों को काट दिया ॥ ५७ ॥ जिससे जटायु अधमरे होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा । और रावण दूसरे रथ पर सीता को बठा कर चल दिया ॥ ५८ ॥

उस समय अपने पास किसी रक्षक को न देख कर सीता रोती-पुकारती हुई ऐसा कह रही थी–'हा राम-राम ! हा जगन्नाथ ! हा राम ! क्या तुम

रक्षसा नीयमानां स्वां भार्यां मोचय राघव ! ।
हा लक्ष्मण ! महाभाग ! त्राहि मामपराधिनीम् ॥६०॥

वाक्शरेण हतस्त्वं मे क्षन्तुमर्हसि देवर ! ।
इत्येवं क्रोशमानां तां रामागमनशङ्कया ॥६१॥

जगाम वायुवेगेन सीतामादाय सत्वरः ।
विहायसा नीयमाना सीतापश्यदधोमुखी ॥६२॥

पर्वताग्रे स्थितान् पञ्च वानरान् वारिजानना ।
उत्तरीयार्धखण्डेन विमुच्याभरणादिकम् ॥६३॥

बद्ध्वा चिक्षेप रामाय कथयन्त्विति पर्वते ।
ततः समुद्रमुल्लङ्घ्य लङ्कां गत्वा सरावणः ॥६४॥

स्वान्तःपुरे रहस्ये तामशोकविपिनेऽक्षिपत् ।
राक्षसीभिः परिवृतां मातृबुद्ध्यान्वपालयत् ॥६५॥

---

मुझ दुःखिनी को नहीं देखते हो ? ॥ ५९ । हे राघव ! तुम्हारी भार्या को यह राक्षस लिये जा रहा है। तुम शीघ्र ही मुक्त करो, हा राम ! हा महाभाग लक्ष्मण ! तुम मुझ अपराधिनी की रक्षा करो ॥ ६० ॥ हे देवर ! मैंने तुम्हें वाग्बाणों से मारकर घोर अपराध किया है, उसे क्षमा करना ।' इसप्रकार रोती-कलपती सीता को देख कर रावण राम के आने की आशङ्का से वायु के समान तीव्र वेग से सीता को लेकर शीघ्र ही चल दिया ॥ ६१ ॥

इस प्रकार रावण के द्वारा आकाश-मार्ग से ले जाई जा रही कमलमुखी सीता ने नीचे मुख कर पर्वत के शिखर पर बैठ हुए बानरों को देखा, और अपने आभूषणों को अपने शरीर से निकालकर चदरे के टुकड़े में बाँध कर ॥६२-६३। उसे पर्वत पर फेंक दिया। जिसका अभिप्राय यह था कि 'मेरा समाचार आप लोग राम से कह देंगे।' फिर रावण भी समुद्र पार कर लंका में पहुँचा ॥६४॥ और अन्तःपुर से भी परम गोपनीय एकान्त स्थान, जहाँ अशोक वन था, वहाँ ले जाकर सीता को रखा। एवं उनमें माता जैसा भाव रखता हुआ राक्षसियों के पहरे में रख उनकी रक्षा करने लगा। ६५॥

कृशातिदीना परिकर्मवर्जिता
दुःखेन शुष्यद् वदनातिविह्वला ।
हा राम ! रामेति विलप्यमाना
सीता स्थिता राक्षसवृन्दमध्ये ।।६६।।

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
अरण्यकाण्डे सप्तमः सर्गः ।।७।।

## ८. अष्टमः सर्गः

(सीताके वियोगमें भगवान् राम का विलाप तथा जटायु से भेंट)

श्रीमहादेव उवाच

रामो मायाविनं हत्वा राक्षसं कामरूपिणम् ।
प्रतस्थे स्वाश्रमं गन्तुं ततो दूराद् ददर्श तम् ।।१।।
आयान्तं लक्ष्मणं दीनं मुखेन परिशुष्यता ।
राघवश्चिन्तयामास स्वात्मन्येव महामतिः ।।२।।

---

उन राक्षस-समूह के मध्य में अत्यन्त दुर्बल, दीन और मलीन, दुःख के कारण शुष्क वदन, अत्यन्त विह्वल हुई वह सीता 'हा राम ! हा लक्ष्मण !' इस प्रकार विलाप करती हुई निवास करने लगीं ।६६।।

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या सहित अध्यात्मरामायण के उमा-महेश्वर संवाद में अरण्यकाण्ड का सप्तम सर्ग समाप्त ।।७।।

श्री महादेवजी ने कहा ( हे पार्वती ) श्री राम, काम रूप धारी उस मायावी राक्षस मारीच को मारकर जब आश्रम की ओर चलने लगे ।।१।। तो उन्होंने दीन, उदास मुख से आते हुए लक्ष्मण को देखा । पुनः परम बुद्धिमान् भगवान् राम मन ही मन विचारने लगे ।।२।। लक्ष्मण को इस

लक्ष्मणस्तन्न जानाति मायासीतां मया कृताम् ।
ज्ञात्वाऽप्येनं वञ्चयित्वा शोचामि प्राकृतो यथा ॥३॥

यद्यहं विरतो भूत्वा तूष्णीं स्थास्यामि मन्दिरे ।
तदा राक्षसकोटीनां वधोपायः कथं भवेत् ? ॥४॥

यदि शोचामि तां दुःख-सन्तप्तः कामुको यथा ।
तदा क्रमेणानुचिन्वन् सीतां यास्येऽसुरालयम् ।
रावणं सकुलं हत्वा सीतामग्नौ स्थितां पुनः ॥५॥

मयैव स्थापितां नीत्वा याताऽयोध्यामतन्द्रितः ।
अहं मनुष्यभावेन जातोऽस्मि ब्रह्मणार्थितः ॥६॥

मनुष्यभावमापन्नः किञ्चित्कालं वसामि कौ ।
ततो मायामनुष्यस्य चरितं मेऽनुशृण्वताम् ॥७॥

मुक्तिः स्यादप्रयासेन भक्तिमार्गानुवर्तिनाम् ।
निश्चित्यैवं तदा दृष्ट्वा लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ॥८॥

---

बात का पता नहीं है कि मैंने माया की सीता बना दी है। किन्तु मैं तो जानता हूँ फिर भी लक्ष्मण को इस बात का पता न चले। अतः मैं साधारण मनुष्य के समान सीता के लिए विलाप करूँगा ॥३॥ यदि मैं शोक से विरत होकर चुपचाप आश्रम में बैठ जाता हूँ तो इन करोड़ों राक्षसों के वध का उपाय किस प्रकार होगा ॥४॥ यदि मैं उनके लिए कामातुर जैसा दुःखी हो खोजते-खोजते धीरे-धीरे लङ्का पहुँच जाऊँगा तो सकुटुम्ब रावण का बध कर ॥ ५ ॥ अग्नि में स्थापित की गयी सीता को पुनः अग्नि से निकाल कर उनको लेकर सकुशल अयोध्या चला जाऊँगा। मैंने ब्रह्मा के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर मनुष्यावतार धारण किया है ॥६॥ इसलिए कुछ काल तक इस मनुष्य शरीर से पृथ्वी पर रहना चाहता हूँ। जिससे माया मनुष्य के द्वारा किये गये मेरे चरित्र को सुनने वाले मेरे भक्तों को बिना श्रम के मुक्ति प्राप्त हो जाये। ऐसा निश्चय कर राम ने लक्ष्मण से कहा ॥ ७-८ ॥

किमर्थमागतोऽसि त्वं सीतां त्यक्त्वा मम प्रियाम् ।
नीता वा भक्षिता वाऽपि राक्षसैर्जनकात्मजा ॥९॥
लक्ष्मणः प्राञ्जलिः प्राह सीताया दुर्वचो रुदन् ।
हा ! लक्ष्मणेति वचनं राक्षसोक्तं श्रुतं तया ॥१०॥
त्वद्वाक्यसदृशं श्रुत्वा मां गच्छेति त्वराऽब्रवीत् ।
रुदन्ती सा मया प्रोक्ता देवि ! राक्षसभाषितम् ॥११॥
नेदं रामस्य वचनं स्वस्था भव शुचिस्मिते ! ।
इत्येवं सान्त्विता साध्वी मया प्रोवाच मां पुनः ।
यदुक्तं दुर्वचो राम ! न वाच्यं पुरतस्तव ॥१२॥
कर्णौ पिधाय निर्गत्य यातोऽहं त्वां समीक्षितुम् ।
रामस्तु लक्ष्मणं प्राह तथाऽप्यनुचितं कृतम् ॥१३॥
त्वया स्त्रीभाषितं सत्यं कृत्वा त्यक्ता शुभानना ।
नीता वा भक्षिता वापि राक्षसैर्नात्र संशयः ॥१४॥

---

भाई लक्ष्मण ! मेरी प्राणवल्लभा सीता को अकेली छोड़ कर तुम यहाँ किसलिए आये हो ? कहीं ऐसा न हो कि जनकात्मजा सीता को राक्षस हर ले गये हों अथवा खा गये हों ? ॥ ९ ॥ तब लक्ष्मण रोते हुए हाथ जोड़कर सीता के द्वारा कहे गये उन दुर्वाक्यों को कहने लगे । हे राम ! आपकी जैसी बोली में राक्षस द्वारा कहे गये हा लक्ष्मण !' इस शब्द को सुनकर सीता ने मुझसे कहा–'हे लक्ष्मण ! तुम 'शीघ्र जाओ' ऐसा कहकर वे रोने लगीं । तब मैंने कहा कि देवि ! यह राम का शब्द नहीं है, यह राक्षस का शब्द है । हे शुचिस्मिते ! तुम निश्चिन्त रहो । ॥१०-११॥ इसप्रकार बार-बार मेरे समझाने पर भी सीताजी ने जैसे-जैसे दुर्वचन मुझसे कहे आप के सामने वे शब्द कहने योग्य नहीं हैं ॥ १२ ॥ इसलिए में अपने कानों को बन्द कर आपको देखने के लिए यहाँ चला आया। तब राम ने लक्ष्मण से कहा–भाई ! तुमने बड़ा अनुचित किया ॥१३॥ जो स्त्री के बात का विश्वास कर तुम उसे छोड़कर यहाँ चले आये। इसमें सन्देह नहीं है कि राक्षस सीता को हर ले गये अथवा खा गये ॥१४॥

इति चिन्तापरो राम: स्वाश्रमं त्वरितो ययौ ।
तत्राऽदृष्ट्वा जनकजां विललापातिदुःखितः ॥१५॥

हा प्रिये ! क्व गताऽसि त्वं नासि पूर्ववदाश्रमे ।
अथवा मद्विमोहार्थं लीलया क्व विलीयसे ॥१६॥

इत्याचिन्वन् वनं सर्वं नापश्यज्जानकीं तदा ।
वनदेव्यः कुतः सीतां ब्रुवन्तु मम वल्लभाम् ॥१७॥

मृगाश्च पक्षिणो वृक्षा दर्शयन्तु मम प्रियाम् ।
इत्येवं विलपन्नेव रामः सीतां न कुत्रचित् ॥१८॥

सर्वज्ञः सर्वथा क्वापि नापश्यद् रघुनन्दनः ।
आनन्दोऽप्यन्वशोचत्तामचलोऽप्यनुधावति ॥१९॥

निर्ममो निरहङ्कारोऽप्यखण्डानन्दरूपवान् ।
मम जायेति सीतेति विललापातिदुःखितः ॥२०॥

---

इस प्रकार चिन्ता करते हुए राम अपने आश्रम की ओर चले। वहाँ सीता को न पाकर दुःखी हो विलाप करने लगे। ॥१५॥ हे प्रिये ! तुम कहाँ चली गयी, पहले की तरह तुम आश्रम में दिखाई क्यों नहीं पड़ती। अथवा मुझे मोह में डालने के लिए तुम लीला पूर्वक इसी आश्रम में कहीं छिप गई हो। ॥१६।

इस प्रकार विलाप करते हुए श्री राम ने सारा वन छान डाला, किन्तु कहीं भी जानकी का पता न चला। तब वे वनदेवियों से कहने लगे। हे वनदेवियो ! तुम लोग बताओ मेरी प्राणवल्लभा सीता कहाँ हैं ? ॥१७॥ मृगो, पक्षियो एवं वृक्षो ! तुम लोग मेरी प्रिया को दिखाओ। इस प्रकार विलाप करते हुए श्री राम को कहीं भी जानकी का पता नहीं लगा ॥१८॥

यद्यपि वे सर्वथा सर्वज्ञ हैं, फिर भी सीता को खोज रहे हैं। वे आनन्द स्वरूप हैं फिर भी सीता के लिए शोक कर रहे हैं। और निश्चल हैं फिर भी सीता के लिए दौड़ रहे हैं ॥१९॥ निर्मम, निरहङ्कार एवं अखण्ड आनन्द स्वरूप होकर भी मेरी जाया, मेरी सीता ! ऐसा कह कर दुःखी हो विलाप करते हैं ॥२०॥

एवं मायामनुचरन्नसक्तोऽपि रघूत्तमः ।
आसक्त इव मूढानां भाति तत्त्वविदां न हि ॥२१॥
एवं विचिन्वन् सकलं वनं रामः सलक्ष्मणः ।
भग्नं रथं छत्रचापं कूबरं पतितं भुवि ॥२२॥
दृष्ट्वा लक्ष्मणमाहेदं पश्य लक्ष्मण ! केनचित् ।
नीयमानां जनकजां तं जित्वाऽन्यो जहार ताम् ॥२३॥
ततः कश्चिद् भुवो भागं गत्वा पर्वतसन्निभम् ।
रुधिराक्तवपुर्दृष्ट्वा रामो वाक्यमथाऽब्रवीत् ॥२४॥
एष वै भक्षयित्वा तां जानकीं शुभदर्शनाम् ।
शेते विविक्तेऽतितृप्तः पश्य हन्मि निशाचरम् ॥२५॥
चापमानय शीघ्रं मे बाणं च रघुनन्दन ! ।
तच्छ्रुत्वा रामवचनं जटायुः प्राह भीतवत् ॥२६॥
मां न मारय भद्रं ते म्रियमाणं स्वकर्मणा ।
अहं जटायुस्ते भार्याहारिणं समनुद्रुतः ॥२७॥

---

इस प्रकार वे श्री राम सर्वथा निर्लेप होते हुए भी माया का अनुसरण कर मूढ पुरुषों के लिए आसक्त जैसे दिखाई पड़ रहे हैं। किन्तु तत्त्व-ज्ञानियों के लिए ऐसी बात नहीं है ॥२१॥

इस प्रकार लक्ष्मण सहित श्री राम ने सारे वन में सीता का पता लगाते हुए टूटा हुआ रथ, छत्र, धनुष, कूबर ( रथ का विशेष काष्ठ ) पृथ्वी पर पड़ा हुआ देखा ॥२२॥ उन्हें देखकर उन्होंने लक्ष्मण से कहा—हे लक्ष्मण ! यह देखो ऐसा प्रतीत होता है कि सीता को ले जाने वाले किसी पुरुष को कोई अन्य व्यक्ति जीत कर ले गया गया है ॥२३॥ कुछ दूर जाने पर पहाड़ के समान विशाल काय रुधिर से लथ-पथ शरीर को देखकर उन्होंने कहा—॥२४॥ लक्ष्मण ! देखो, यह कोई निशाचर परम सुन्दरी जानकी को खाकर तृप्त हुआ इस एकान्त में सो रहा है। इसका मैं अभी बध कर डालना चाहता हूँ ॥२५॥

हे रघुनन्दन लक्ष्मण ! तुम मेरे धनुष एवं बाणों को अभी लाओ। राम की इस बात को सुनकर जटायु भयभीत होकर बोला ॥२६॥ महाराज ! मैं

रावणं तत्र युद्धं मे बभूवारिविमर्दन ! ।
तस्य वाहान् रथं चापं छित्त्वाऽहं तेन घातितः ॥२८॥
पतितोऽस्मि जगन्नाथ ! प्राणांस्त्यक्ष्यामि पश्य माम् ।
तच्छ्रुत्वा राघवो दीनं कण्ठप्राणं ददर्श ह ॥२९॥
हस्ताभ्यां संस्पृशन् रामो दुःखाश्रुवृतलोचनः ॥३०॥
जटायो ! ब्रूहि मे भार्या केन नीता शुभानना ।
मत्कार्यार्थं हतोऽसि त्वमतो मे प्रियबान्धवः ॥३१॥
जटायुः सन्नया वाचा वक्त्राद्रक्तं समुद्वमन् ।
उवाच रावणो राम ! राक्षसो भीमविक्रमः ॥३२॥
आदाय मैथिलीं सीतां दक्षिणाभिमुखो ययौ ।
इतो वक्तुं न मे शक्तिः प्राणांस्त्यक्ष्यामि तेऽग्रतः ॥३३॥

---

तो अपने कर्म से मर रहा हूँ मुझे मत मारिए आपका कल्याण हो। हे महाराज ! मैं जटायु हूँ, मैंने आप के भार्या का अपहरण करने वाले रावण का पीछा किया था ॥२७॥

हे अरिमर्दन ! आपके भार्या का अपहरण करने वाले उस रावण से मेरा युद्ध हुआ। मैंने उसके घोड़े, रथ एवं धनुष को काट दिया था किन्तु अन्त में उसके द्वारा घायल कर दिया गया। जिससे इस पृथ्वी पर पड़ा हूँ ॥२८॥ हे जगन्नाथ ! अब आप मेरी ओर देखें. मैं अपना प्राण त्याग करना चाहता हूँ। इस बात को सुनते ही राम ने कण्ठगत प्राण उस जटायु को बड़ा दीन देखा। और आँखों में आँसू भर कर उसके शरीर पर हाथ फेरते हुए बोले ॥२९-३०॥

जटायो ! बताओ मेरी सुमुखी भार्या को कौन हर ले गया है। भाई, तुम मेरे कार्य के लिए घायल किये गये हो, अतः मेरे प्रिय बान्धव हो ॥३१॥ जटायु ने रक्त का वमन करते हुए अस्पष्ट ( लड़खड़ाते ) शब्दों में कहा। महाराज ! महापराक्रमी रावण नाम का एक राक्षस है ॥३२॥ वही मैथिली सीता को हर कर दक्षिण दिशा की ओर ले गया है। हे नाथ ! अब और कुछ कहने की शक्ति मुझमें नहीं है। मैं आपके सामने प्राण त्याग करना चाहता हूँ ॥३३॥

दिष्ट्या दृष्टोऽसि राम ! त्वं म्रियमाणेन मेऽनघ ! ।
परमात्मासि विष्णुस्त्वं मायामनुजरूपधृक् ॥३४॥
अन्तकालेऽपि दृष्ट्वा त्वां मुक्तोऽहं रघुसत्तम ! ।
हस्ताभ्यां स्पृश मां राम ! पुनर्यास्यामि ते पदम् ॥३५॥
तथेति रामः पस्पर्श तदङ्गं पाणिना स्मयन् ।
ततः प्राणान् परित्यज्य जटायुः पतितो भुवि ॥३६॥
रामस्तमनुशोचित्वा बन्धुवत्साश्रुलोचनः ।
लक्ष्मणेन समानाय्य काष्ठानि प्रददाह तम् ॥३७॥
स्नात्वा दुःखेन रामोऽपि लक्ष्मणेन समन्वितः ।
हत्वा वने मृगं तत्र मांसखण्डान् समन्ततः ॥३८॥
शाद्वले प्राक्षिपद् रामः पृथक् पृथगनेकधा ।
भक्षन्तु पक्षिणः सर्वे तृप्तो भवतु पक्षिराट् ॥३९॥
इत्युक्त्वा राघवः प्राह जटायो ! गच्छ मत्पदम् ।
मत्सारूप्यं भजस्वाद्य सर्वलोकस्य पश्यतः ॥४०॥

---

हे निष्पाप राम ! यह मेरा बड़ा ही सौभाग्य है जो आप इस मरती समय में मुझे दर्शन दिये। आप परमात्मा विष्णु हैं और माया से मनुष्य का रूप धारण किये हुए हैं ॥३४॥

हे राम ! अब मैं इस अन्तिम समय में आपका दर्शन कर मुक्त हो गया। आप मुझे अपने हाथों से फिर स्पर्श कीजिए, जिससे मैं परम-पद को चला जाऊँ ॥ ३५ ॥ राम ने 'तथास्तु' कह कर मन्दस्मित से अपने हाथों से उसके अङ्ग का स्पर्श किया। तदनन्तर अपने प्राणों को छोड़ देने से वह पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥३६॥ राम ने अपने आँखों में आँसू भर कर स्वजन के समान जटायु के लिए शोकमग्न हो लक्ष्मण से लकड़ियाँ मँगवा कर स्वयं उसकी दाह-क्रिया की ॥३७॥ दाह करने के उपरान्त उन्होंने लक्ष्मण सहित स्नान किया। और वन के मृगों को मार कर उनके मांस खण्डों को हरी-हरी घासों पर फेंक दिया। और कहा—'सभी पक्षिगण इसे भोजन करें। जिससे पक्षिराज जटायु की तृप्ति हो' ॥ ३८-३९॥

ऐसा कह कर उन्होंने जटायु से कहा—जटायु, तुम मेरे परमपद को

ततोऽनन्तरमेवासौ दिव्यरूपधरः शुभः ।
विमानवरमारुह्य भास्वरं भानुसन्निभम् ॥४१॥

शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-किरीट-वरभूषणैः ।
द्योतयन् स्वप्रकाशेन पीताम्बरधरोऽमलः ॥४२॥

चतुर्भिः पार्षदैर्विष्णोस्तादृशैरभिपूजितः ।
स्तूयमानो योगिगणै राममाभाष्य सत्वरः ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा तुष्टाव रघुनन्दनम् ॥४३॥

जटायुरुवाच

अगणितगुणमप्रमेयमाद्यं सकलजगत्-स्थिति-संयमादिहेतुम् ।
उपरमपरमं परात्मभूतं सततमहं प्रणतोऽस्मि रामचन्द्रम् ॥४४॥

निरवधिसुखमिन्दिराकटाक्षं क्षपित-सुरेन्द्र-चतुर्मुखादिदुःखम् ।
नरवरमनिशं नतोऽस्मि रामं वरदमहं वर-चाप-बाणहस्तम् ॥४५॥

---

जाओ। और मेरा सारूप्य प्राप्त करो ॥४०॥ इसके बाद ही वह जटायु अत्यन्त सुन्दर दिव्यरूप धारण कर देदीप्यमान सूर्य के समान प्रकाशित विमान पर आरूढ़ हुआ ॥४१॥ उस समय वह पीताम्बर धारण किये हुए था तथा शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, किरीट आदि श्रेष्ठ आभूषणों को धारण कर अपने प्रकाश से दिशाओं को उद्भासित कर रहा था ॥४२॥ विष्णु के चार पार्षद उसी प्रकार का वेष धारण कर उसकी पूजा कर रहे थे। और योगि-गण उसकी स्तुति कर रहे थे। उस समय वह हाथ जोड़ कर राम को सम्बोधित करता हुआ शीघ्रता से उनकी स्तुति करने लगा ॥४३॥

जटायु ने कहा—अगणित गुणों से सम्पन्न, अप्रमेय, सारे जगत् के स्थिति, संहार एवं आदि कारण और परम शान्त स्वरूप, परमात्मा रामचन्द्र को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४४ ॥ जो असीम आनन्द स्वरूप, महालक्ष्मी के कटाक्ष के आश्रय, इन्द्र एवं चतुर्मुख के दुःख को दूर करने वाले हैं। उन वर देने वाले, श्रेष्ठ धनुष बाण धारण किये हुए राजा रामचन्द्र को मैं प्रणाम करता हूँ ॥४५॥

त्रिभुवन-कमनीय-रूपमीड्यं रविशतभासुर-मीहित-प्रदानम् ।
शरणदमनिशं सुरागमूले कृतनिलयं रघुनन्दनं प्रपद्ये ॥४६॥
भव-विपिन-दवाग्निनामधेयं भवमुखदैवतदैवतं दयालुम् ।
दनुजपति-सहस्रकोटि-नाशं रवितनयासदृशं हरिं प्रपद्ये ॥४७॥
अविरतभव-भावनातिदूरं भवविमुखैर्मुनिभिः सदैव दृश्यम् ।
भव-जलधिसुता-रणाङ्घ्रिपोतं शरणमहं रघुनन्दनं प्रपद्ये ॥४८॥
गिरिश-गिरिसुता-मनोनिवासं गिरिवरधारिणमीहिताभिरामम् ।
सुरवर-दनुजेन्द्र-सेविताङ्घ्रिं सुरवरदं रघुनायकं प्रपद्ये ॥४९॥
परधन-परदार-वर्जितानां परगुणभूतिषु तुष्टमानसानाम् ।
परहित-निरतात्मनां सुसेव्यं रघुवरमम्बुजलोचनं प्रपद्ये ॥५०॥

संसार में सबसे सुन्दर रूप वाले, स्तुत्य, सैकड़ों सूर्य के समान देदीप्यमान, मनोरथ को पूर्ण करने वाले, नित्य शरणप्रद, राग युक्त हृदय में निवास करने वाले, उन रघुनन्दन की मैं शरण हूँ ॥४६॥ जो संसार रूपी वन को जलाने के लिए दावाग्नि सदृश, संसार के प्रधान देव, महादेव के भी देव, परम दयालु, सहस्रों एवं करोड़ों दानवेन्द्रों का विनाश करने वाले और यमुना के समान श्याम वर्ण वाले हैं, मैं उन श्री हरि की शरण हूँ ॥४७॥ संसारी पुरुषों से निरन्तर दूर रहने वाले किन्तु संसार से उपरम प्राप्त करने वाले, मुनिजनों से दृश्य एवं संसार रूपी समुद्र से पार होने के लिए जिनके चरण पोत के सदृश हैं, उन रघुनन्दन की मैं शरण हूँ ॥४८॥

श्री महादेव जी एवं श्री पार्वती के मनोमन्दिर में निवास करने वाले, कूर्म रूप से मन्दर को धारण करने वाले तथा देवेन्द्र एवं असुरेन्द्रों के द्वारा जिनके चरण-कमल सेवित हैं एवं देवताओं के वर देने वाले हैं ऐसे रघुनाथ जी की मैं शरण हूँ ॥४९॥ परधन एवं परदार से सर्वथा दूर रहने वाले, दूसरे के गुण एवं ऐश्वर्य को देखकर प्रसन्न रहने वाले, अपने मन को परोपकार में लगाने वाले, महात्मा लोगों से जो सुसेवित हैं, ऐसे कमल लोचन श्री राम की मैं शरण हूँ ॥५०॥ मनोहर स्मित से जिनके मुख-कमल

स्मित-रुचिर-विकासिताननाब्जमतिसुलभं सुरराज-नील-नीलम् ।
सित-जलरुह-चारुनेत्र-शोभं रघुपतिमीशगुरोर्गुरुं प्रपद्ये ॥५१॥

हरि-कमलज-शम्भुरूपभेदात् त्वमिह विभासि गुणात्रयानुवृत्तः ।
रविरिव जलपूरितोदपात्रे ष्वमरपति-स्तुतिपात्रमीशमीडे ॥५२॥

रतिपति-शतकोटि-सुन्दराङ्गं शतपथ-गोचर-भावनाविदूरम् ।
यतिपतिहृदये सदा विभातं, रघुपतिमार्तिहरं प्रभुं प्रपद्ये ॥५३॥

इत्येवं स्तुवतस्तस्य प्रसन्नोऽभूद् रघूत्तमः ।
उवाच गच्छ भद्रं ते मम विष्णोः परं पदम् ॥५४॥
शृणोति य इदं स्तोत्रं लिखेद् वा नियतः पठेत् ।
स याति मम सारूप्यं मरणे मत्स्मृतिं लभेत् ॥५५॥

---

सुशोभित हो रहे हैं, भक्तजनों के लिए सर्वथा सुलभ, इन्द्र नीलमणि के समान नीले शरीर वाले एवं श्वेत कमल के समान मनोहर नेत्र वाले, शंकर के परम गुरु उन श्री रघुनाथ जी की मैं शरण हूँ ॥५१॥

हे भगवन् ! सत्त्व, रज तथा तम इन तीनों गुणों के सम्बन्ध से आप एक होते हुए भी विष्णु, ब्रह्मा एवं शिव आदि नाना रूपों से भासित होते हैं। जिसप्रकार एक ही सूर्य विभिन्न जल पूर्ण पात्रों में विभिन्न रूप से भासता है, अतः आप परमात्मा हैं और देवेन्द्र के भी स्तुति के पात्र हैं अतः मैं आप की स्तुति कर रहा हूँ ॥५२॥ सैकड़ों कामदेव के समान आपके श्री अङ्गों की शोभा कमनीय है, सैकड़ों रास्ते से दिखाई पड़ने वाले भी आप मन से बहुत दूर हैं, यतिपति श्री महादेव के हृदय में निवास करने वाले ऐसे आर्त्तिहर रघुनाथ की मैं शरण लेता हूँ ॥५३॥

इसप्रकार गृध्रराज के द्वारा स्तुति करने पर भगवान् परम प्रसन्न हुए और कहा—तुम्हारा कल्याण हो, तुम विष्णु के परम पद को जाओ ॥५४॥ जो लोग गृध्रराज जटायु के द्वारा किये गये इस स्तोत्र को लिखते हैं अथवा नियम पूर्वक पाठ करते हैं, वे अन्त में मेरी स्मृति प्राप्त कर मेरे सारूप्य को प्राप्त करते हैं ॥५५॥

इति राघवभाषितं तदा श्रुतवान् हर्षसमाकुलो द्विजः ।
रघुनन्दनसाम्यमास्थितः प्रययौ ब्रह्मसुपूजितं पदम् ॥५६॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा महेश्वरसंवादे
अरण्यकाण्डेऽष्टमः सर्गः ॥८॥

*

## ९ नवमः सर्गः

( कबन्धोद्धार )

श्रीमहादेव उवाच

ततो रामो लक्ष्मणेन जगाम विपिनान्तरम् ।
पुनर्दुःखं समाश्रित्य सीतान्वेषणतत्परः ॥१॥
तत्राऽद्भुत-समाकारो राक्षसः प्रत्यदृश्यत ।
वक्षस्येव महावक्त्रश्चक्षुरादिविवर्जितः ॥२॥
बाहू योजनमात्रेण व्यापृतौ तस्य रक्षसः ।
कबन्धो नाम दैत्येन्द्रः सर्वसत्त्वविहिंसकः ॥३॥

---

इस प्रकार श्री रामचन्द्र जी के वचन को गृध्रराज ने बड़े हर्ष से सुना । और उन्हीं के समान रूप धारण कर वह ब्रह्मदेव से भी पूजित लोक को चला गया ॥५६॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या सहित अध्यात्म-रामायण के उमा-महेश्वर संवाद में अरण्यकाण्ड का अष्टम सर्ग समाप्त ॥८॥

*

श्री महादेव ने कहा—हे पार्वति ! इसप्रकार श्री राम सीता को खोजते हुए बारम्बार दुःख को प्राप्त कर एक वन से दूसरे वन को गये ॥१॥ वहाँ उन्हें एक विचित्र आकार का राक्षस दिखाई पड़ा, जिसके वक्षःस्थल में ही मुख था, किन्तु उसमें आँख तथा कर्णेन्द्रियाँ नहीं थीं ॥२॥ उस राक्षस की भुजाएँ एक-एक योजन पर्यन्त फैली हुई थीं, सारे प्राणियों को बध करने वाले उस राक्षस का अन्वर्थ नाम कबन्ध था ॥३॥ वन में चलते हुए राम

तद्बाह्वोर्मध्यदेशे तौ चरन्तौ राम-लक्ष्मणौ ।
ददर्शतुर्महासत्त्वं तद् - बाहुपरिवेष्टितौ ॥४॥

रामः प्रोवाच विहसन् पश्य लक्ष्मण ! राक्षसम् ।
शिरःपादविहीनोऽयं यस्य वक्षसि चाननम् ॥५॥

बाहुभ्यां लभ्यते यद्यत् तत्तद् भक्षन् स्थितो ध्रुवम् ।
आवामप्येतयोर्बाह्वोर्मध्ये सङ्कलितौ ध्रुवम् ॥६॥

गन्तुमन्यत्र मार्गो न दृश्यते रघुनन्दन ! ।
किं कर्तव्यमितोऽस्माभिरिदानीं भक्षयेत् स नौ ॥७॥

लक्ष्मणस्तमुवाचेदं किं विचारेण राघव ! ।
आवामेकैकमव्यग्रौ छिन्द्यावास्य भुजौ ध्रुवम् ॥८॥

तथेति रामः खड्गेन भुजं दक्षिणमच्छिनत् ।
तथैव लक्ष्मणो वामं चिच्छेद भुजमञ्जसा ॥९॥

---

और लक्ष्मण भी उसकी भुजाओं के बीच आ जाने पर घिर गये। तब उन्होंने महाबलवान् उस राक्षस को देखा ॥४॥

तब राम ने हँसते हुए लक्ष्मण से कहा—हे लक्ष्मण ! इस राक्षस को देखो। यह राक्षस शिर और पैर से रहित है और इसके वक्षःस्थल में इसका मुख है ॥५॥ यह अपनी भुजाओं से जिसे ग्रहण करता है निश्चय ही उसे खाकर जीवित रहता है। इस समय हम लोग भी इसकी भुजाओं में आ फँसे हैं ॥ ६ ॥ हे रघुनन्दन लक्ष्मण ! अब हम लोगों को अन्यत्र निकलने का कोई मार्ग नहीं है। अब इसके बाद हम लोगों को क्या करना चाहिए। यह हम लोगों को खा जाना चाहता है। ७॥

तब लक्ष्मण ने कहा—हे राघव ! अब विचारने का यह अवसर नहीं है। हम लोग इसकी एक-एक भुजा सावधानी से काट डालें ॥८॥ श्री रामचन्द्र जी ने 'तथास्तु' कहकर उसकी दाहिनी भुजा काट दी। फिर लक्ष्मण ने भी बड़ी शीघ्रता से उसकी बायीं भुजा काट दी ॥९॥ दैत्य

ततोऽतिविस्मितो दैत्यः कौ युवां सुरपुङ्गवौ ? ।
मद्बाहुच्छेदकौ लोके दिवि देवेषु वा कुतः ॥१०॥
ततोऽब्रवीद् हसन्नेव रामो राजीवलोचनः ।
अयोध्याधिपतिः श्रीमान् राजा दशरथो महान् ॥११॥
रामोऽहं तस्य पुत्रोऽसौ भ्राता मे लक्ष्मणः सुधीः ।
मम भार्या जनकजा सीता त्रैलोक्यसुन्दरी ॥१२॥
आवां मृगयया यातौ तदा केनापि रक्षसा ।
नीतां सीतां विचिन्वन्तौ चागतौ घोरकानने ॥१३॥
बाहुभ्यां वेष्टितावत्र तव प्राणरिरक्षया ।
छिन्नौ तव भुजौ त्वं च को वा विकटरूपधृक् ॥१४॥

कबन्ध उवाच

धन्योऽहं यदि रामस्त्वमागतोऽसि ममान्तिकम् ।
पुरा गन्धर्वराजोऽहं रूपयौवनदर्पितः ॥१५॥

---

आश्चर्य में पड़ गया। और कहने लगा—मेरी भुजाओं को काटने वाले आप लोग कौन देवश्रेष्ठ हो। स्वर्गवासी देवताओं में तो कोई ऐसा कार्य करने वाला नहीं है ? फिर मनुष्यों की बात ही क्या ? ॥१०॥ कबन्ध के ऐसा कहने के अनन्तर कमल नेत्र श्री राम ने हँसते हुए कहा—अयोध्या नरेश महाराज बड़े प्रतापी राजा हैं ॥११॥ मैं उनका पुत्र 'राम' हूँ। यह बुद्धिमान् मेरा छोटा भाई लक्ष्मण हैं, मेरी स्त्री जनक की कन्या सीता है, जो त्रैलोक्य-सुन्दरी है ॥१२॥ जिस समय हम लोग मृगया के लिए बाहर गये थे, तब किसी राक्षस ने उन्हें चुरा लिया। उन्हीं को खोजते-खोजते हम लोग इस घोर जङ्गल में आ गये हैं ॥१३॥ यहाँ पर तुमने अपनी विशाल भुजाओं से हमें जकड़ लिया। हम लोगों ने भी अपनी प्राण रक्षा के लिए तुम्हारी भुजाएँ काट डाली हैं। विकट रूप धारण करने वाले तुम कौन है ? ॥१४॥

तब कबन्ध ने कहा—यदि आप राम हैं, तो मैं धन्य हूँ। जो आप स्वयं मेरे पास आये हैं। पूर्व जन्म में मैं गन्धर्वराज था, मुझे अपनी जवानी एवं रूप पर बड़ा गर्व था ॥१५॥ हे रघूत्तम ! मैंने तपस्या कर ब्रह्मा से अबध्यता

विचरँल्लोकमखिलं वरनारीमनोहरः ।
तपसा ब्रह्मणो लब्धमवध्यत्वं रघूत्तम ! ॥१६॥
अष्टावक्रं मुनिं दृष्ट्वा कदाचिदहसं पुरा ।
क्रुद्धोऽसावाह दुष्ट ! त्वं राक्षसो भव दुर्मते ! ॥१७॥
अष्टावक्रः पुनः प्राह वन्दितो मे दयापरः ।
शापस्यान्तं च मे प्राह तपसा द्योतितप्रभः ॥१८॥
त्रेतायुगे दाशरथिर्भूत्वा नारायणः स्वयम् ।
आगमिष्यति ते बाहू छिद्येते योजनायतौ ॥१९॥
तेन शापाद् विनिर्मुक्तो भविष्यसि यथा पुरा ।
इति शप्तोऽहमद्राक्षं राक्षसीं तनुमात्मनः ॥२०॥
कदाचिद् देवराजानमभ्याद्रवमहं रुषा ।
सोऽपि वज्रेण मां राम ! शिरोदेशेऽभ्यताडयत् ॥२१॥
तदा शिरो गतं कुक्षिं पादौ च रघुनन्दन ! ।
ब्रह्मदत्तवरान् मृत्युर्नाभून्मे वज्रताडनात् ॥२२॥

---

का वरदान प्राप्त किया। श्रेष्ठ परम सुन्दरी युवतियों के मन को अपनी रूप-कान्ति से आकर्षित करता हुआ तीनों लोकों में घमा करता था ॥१६॥ किसी समय मैंने अष्टावक्र मुनि को देखकर हँस दिया, तब उन्होंने मुझे क्रुद्ध होकर शाप दिया कि हे दुष्ट दुर्बुद्धे ! तुम राक्षस हो जाओ ॥१७॥ पुनः मैंने बहुत अनुनय-विनय पूर्वक उनकी स्तुति की। तप से परम तेजस्वी उन दयालु मुनीश्वर ने शाप से उद्धार का उपाय इस प्रकार बतलाया ।।१८॥

त्रेतायुग में साक्षात् नारायण जब दशरथ का पुत्र बनकर अवतार लेंगे । और यहाँ आकर तुम्हारी योजन पर्यन्त लम्बी भुजाओं को काटेंगे ॥१९॥ तब तुम शाप से मुक्त होकर पुनः गन्धर्वराज का रूप धारण करोगे। इस प्रकार शाप प्राप्त कर मैंने अपने को राक्षसी शरीर में देखा ॥२०॥ हे राम ! एक बार मैंने देवराज इन्द्र को देखकर उन पर आक्रमण किया। फिर उन्होंने अपने वज्र से मेरे शिर पर प्रहार किया॥२१।

हे रघुनन्दन ! उस वज्र के प्रहार से मेरा शिर और पैर उदर में

मुखाभावे कथं जीवेदयमित्यमराधिपम् ।
ऊचुः सर्वे दयाविष्टा मां विलोक्यास्य वर्जितम् ॥२३॥

ततो मां प्राह मघवा जठरे ते मुखं भवेत् ।
बाहू ते योजनायामौ भविष्यत इतो व्रज ॥२४॥

इत्युक्तोऽत्र वसन्नित्यं बाहुभ्यां वनगोचरान् ।
भक्षयाम्यधुना बाहू खण्डितौ मे त्वयाऽनघ ! ॥२५॥

इतः परं मां श्वभ्रास्ये निक्षिपाग्नीन्धनावृते ।
अग्निना दह्यमानोऽहं त्वया रघुकुलोत्तम ! ॥२६॥

पूर्वरूपमनुप्राप्य भार्यामार्गं वदामि ते ।
इत्युक्ते लक्ष्मणेनाशु श्वभ्रं निर्माय तत्र तम् ॥२७॥

निक्षिप्य प्रादहत् काष्ठैस्ततो देहात् समुत्थितः ।
कन्दर्पसदृशाकारः सर्वाभरणभूषितः ॥२८॥

---

प्रविष्ट हो गया। किन्तु वज्र से आहत होने पर भी ब्रह्मा के वरदान से मेरी मृत्यु नहीं हुई। २ ॥ तब सभी लोगों ने दया पूर्वक देवराज इन्द्र से कहा— इसको मुख नहीं है, अतः यह किस प्रकार जीवन धारण करेगा ॥२३॥ तब इन्द्र ने मुझसे कहा-तुम्हारे पेट में ही मुख होगा। और तुम्हारी भुजाएँ एक-एक योजन लम्बी हो जायेंगी। अच्छा! अब तू यहाँ से चला जा ॥२४॥

इन्द्र के द्वारा ऐसा कहे जाने पर मैं यहीं रहकर सर्वदा अपनी विशाल भुजाओं से जङ्गली जन्तुओं को पकड़कर खाता रहता हूँ। हे रघुनन्दन! आप ने मेरी उन भुजाओं को काट डाला ॥२५॥ अब आप मुझे अग्नि और इन्धन से युक्त किसी गड्ढे में ढकेल दीजिए। इस प्रकार आप के द्वारा जला दिये जाने पर ॥२६॥ मैं अपना विद्याधर का पूर्व शरीर प्राप्त करूँगा। तब तुम्हारी स्त्री का पता बताऊँगा। ऐसा कहे जाने पर लक्ष्मण ने शीघ्र ही गड्ढा तैयार किया। और उस गड्ढे में उसे फेंक दिया ॥२७॥ फिर इन्धन डाल कर उसे जला दिया। तब उसके शरीर से कामदेव के समान सुन्दर सर्वाभरण भूषित एक पुरुष उत्पन्न हुआ ॥२८॥ उसने राम की

रामं प्रदक्षिणं कृत्वा साष्टाङ्गं प्रणिपत्य च ।
कृताञ्जलिरुवाचेदं भक्तिगद्गदया गिरा ॥२९॥

गन्धर्व उवाच

स्तोतुमुत्सहते मेऽद्य मनो रामातिसम्भ्रमात् ।
त्वामनन्तमनाद्यन्तं मनोवाचामगोचरम् ॥३०॥
सूक्ष्मं ते रूपमव्यक्तं देहद्वयविलक्षणम् ।
दृग्रूपमितरत्सर्वं दृश्यं जडमनात्मकम् ।
तत्कथं त्वां विजानीयाद् व्यतिरिक्तं मनः प्रभो ! ॥३१॥
बुद्ध्यात्माभासयोरैक्यं जीव इत्यभिधीयते ।
बुद्ध्यादिसाक्षी ब्रह्मैव तस्मिन्निर्विषयेऽखिलम् ॥३२॥
आरोप्यतेऽज्ञानवशान्निर्विकारेऽखिलात्मनि ।
हिरण्यगर्भस्ते सूक्ष्मं देहं स्थूलं विराट् स्मृतम् ॥३३॥
भावनाविषयो राम ! सूक्ष्मं ते ध्यातृमङ्गलम् ।
भूतं भव्यं भविष्यच्च यत्रेदं दृश्यते जगत् ॥३४॥

---

प्रदक्षिणा कर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। और हाथ जोड़कर भक्ति से गद्गद कण्ठ हो राम से कहने लगा ॥२९॥

गन्धर्व ने कहा—हे राम ! यद्यपि आप अनन्त हैं, आदि एवं अन्त से रहित हैं, मन और वाणी से सर्वथा अगोचर हैं तथापि मेरा मन बड़े वेग से आपकी स्तुति के लिए उत्सुक हो रहा है ॥३०॥ हे नाथ ! आप का अव्यक्त सूक्ष्म रूप आपके हिरण्यगर्भ एवं विराट् इन दो शरीरों से भी विलक्षण है। और दिखाई पड़ने वाला यह इतर दृश्य जगत् जड़ है और अनात्म है। इसलिए हे प्रभो ! आप से सर्वथा भिन्न यह मन आप को कैसे जान सकता है ॥३१॥ बुद्धि और चिदाभास की एकता को ही जीव कहते हैं। किन्तु इस बुद्धि आदि का भी साक्षी ब्रह्म ही है, उस निर्विकार निर्विषय परब्रह्म में अज्ञान से सम्पूर्ण चराचर जगत् आरोपित किया गया है। हे राम ! हिरण्यगर्भ आपका सूक्ष्म रूप है। तथा यह विराट् आपका स्थूल शरीर है ॥३२-३३॥ किन्तु इससे भी विलक्षण आपका भावनामय

स्थूलेऽण्डकोशे देहे ते महदादिभिरावृते ।
सप्तभिरुत्तरगुणैर्विराजो धारणाश्रयः ॥३५॥
त्वमेव सर्वकैवल्यं लोकास्तेऽवयवाः स्मृताः ।
पातालं ते पादमूलं पार्ष्णिस्तव महातलम् ॥३६॥
रसातलं ते गुल्फौ तु तलातलमितीर्यते ।
जानुनी सुतलं राम ! ऊरू ते वितलं तथा ॥३७॥
अतलं च मही राम ! जघनं नाभिगं नभः ।
उरःस्थलं ते ज्योतींषि ग्रीवा ते मह उच्यते ॥३८॥
वदनं जनलोकस्ते तपस्ते शङ्खदेशगम् ।
सत्यलोको रघुश्रेष्ठ ! शीर्षण्यास्ते सदा प्रभो ! ॥३९॥

---

( ज्ञानस्वरूप ) है । इस ज्ञानमय शरीर में भूत, भविष्य और वर्त्तमान यह सारा जगत् दिखलाई पड़ता है, जिसके ध्यान मात्र से ध्यान करने वाले का मङ्गल हो जाता है ॥३४॥

यह स्थूल ब्रह्माण्ड ही आपका विराट् देह है । जो महत्तत्त्वादि सात आवरणों से घिरा हुआ है और अपने उत्तरोत्तरवर्त्ती आवरणों से दश गुना बड़ा है (अर्थात् अण्ड से पृथ्वी का आवरण दशगुना, पृथ्वी से जल का आवरण दश गुना, जल से तेज का आवरण दशगुना, तेज से वायु का आवरण दशगुना, वायु से आकाश का आवरण दशगुना, आकाश से अहङ्कार का आवरण दशगुना और अहङ्कार से महत्तत्त्व का आवरण दशगुना बड़ा है । ) यही आपका विराट् शरीर धारणा का आश्रय है ॥३५॥

हे नाथ ! आप ही कैवल्य मोक्ष स्वरूप हैं । यह समस्त लोक आप के शरीर के अवयव हैं । यह पाताल आपका तलवा है, महातल आप की एँड़ी है ॥३६॥ रसातल आपका गुल्फ, तलातल जानु, सुतल, वितल ऊरु हैं ॥३७॥

हे राम ! अतल और पृथ्वी आप का जघन है, आकाश नाभि है, ज्योति आपका उरःस्थल है, महर्लोक आप की ग्रीवा है ॥३८॥ हे रघुश्रेष्ठ ! जन लोक आपका मुख है, तपःलोक ललाट है तथा हे प्रभो ! सत्यलोक आपका शिर है ॥३९॥ इन्द्रादि लोकपाल आपकी भुजायें एवं

इन्द्रादयो लोकपाला बाहवस्ते दिशः श्रुती ।
अश्विनौ नासिके राम ! वक्त्रं तेऽग्निरुदाहृतः ॥४०॥
चक्षुस्ते सविता राम ! मनश्चन्द्र उदाहृतः ।
भ्रूभङ्ग एव कालस्ते बुद्धिस्ते वाक्पतिर्भवेत् ॥४१॥
रुद्रोऽहङ्काररूपस्ते वाचश्छन्दांसि तेऽव्यय ! ।
यमस्ते दंष्ट्रदेशस्थो नक्षत्राणि द्विजालयः ॥४२॥
हासो मोहकरी माया सृष्टिस्तेऽपाङ्गमोक्षणम् ।
धर्मः पुरस्तेऽधर्मश्च पृष्ठभाग उदीरितः ॥४३॥
निमिषोन्मेषणे रात्रिर्दिवा चैव रघूत्तम ! ।
समुद्राः सप्त ते कुक्षिर्नाड्यो नद्यस्तव प्रभो ! ॥४४॥
रोमाणि वृक्षौषधयो रेतो वृष्टिस्तव प्रभो ! ।
महिमा ज्ञानशक्तिस्ते एवं स्थूलं वपुस्तव ॥४५॥
यदस्मिन् स्थूलरूपे ते मनः सन्धार्यते नरैः ।
अनायासेन मुक्तिः स्यादतोऽन्यन् नहि किञ्चन ॥४६॥

---

दिशायें कान हैं, अश्विनीकुमार नासिका हैं। एवं अग्नि आपका मुख है ॥४०॥ सूर्य आप के नेत्र, एवं मन चन्द्रमा हैं। भ्रूभङ्ग ही काल है, बृहस्पति ही आपकी बुद्धि हैं ॥४१॥

हे अव्यय ! रुद्र ही अहङ्कार तथा वेद आपकी वाणी हैं। यमराज आप की दाढ़ एवं नक्षत्रगण आपकी दन्तावलि हैं ॥४२॥ यह मोहने वाली माया ही आपका हास है। यह सृष्टि ही आपका कटाक्ष है, धर्म आपके आगे का भाग तथा अधर्म पृष्ठ भाग कहा जाता है ॥४३॥ हे रघूत्तम ! दिन-रात निमेष एवं उन्मेष हैं, हे प्रभो ! सात समुद्र आपका उदर तथा नदियाँ ही आप की नाड़ी हैं ॥४४॥

हे प्रभो ! वृक्ष और औषधियाँ आप के रोम और वृष्टि ही आपका वीर्य है, ज्ञानशक्ति आपकी महिमा है, यही आपका स्थूल शरीर है ।४५॥ जिस समय मनुष्य आपके इस स्थूल शरीर में अपनी धारणा स्थिर करता हैं, वह अनायास ही मुक्त हो जाता है। हे राम ! आपके इस स्थूल रूप से अतिरिक्त और कोई पदार्थ है ही नहीं ॥४६॥ इसलिए हे राम ! मैं आप

अतोऽहं राम ! रूपं ते स्थूलमेवानुभावये ।
यस्मिन् ध्याते प्रेमरसः सरोमपुलको भवेत् ॥४७॥
तदैव मुक्तिः स्याद् राम ! यदा ते स्थूलभावकः ।
तदप्यास्तां तवैवाऽहमेतद्रूपं विचिन्तये ॥४८॥
धनुर्बाणधरं श्यामं जटा-वल्कल-भूषितम् ।
अपीव्यवयसं सीतां विचिन्वन्तं सलक्ष्मणम् ॥४९॥
इदमेव सदा मे स्यान्मानसे रघुनन्दन ! ।
सर्वज्ञः शङ्करः साक्षात् पार्वत्या सहितः सदा ॥५०॥
त्वद्रूपमेवं सततं ध्यायन्नास्ते रघूत्तम ! ।
मुमूर्षूणां तदा काश्यां तारकं ब्रह्मवाचकम् ॥५१॥
रामरामेत्युपदिशन् सदा सन्तुष्टमानसः ।
अतस्त्वं जानकीनाथ ! परमात्मा सुनिश्चितः ॥५२॥

---

के इस स्थूल रूप का सर्वदा चिन्तन करता रहता हूँ; जिसके ध्यान करने मात्र से प्रेमोद्रेक और रोमाञ्च होता रहता है ॥४७॥

हे राम ! जब मनुष्य आप के इस स्थूल रूप में भावना को दृढ़ करता है तभी मुक्ति प्राप्त हो जाती है। किन्तु मुझे उसकी भी आवश्यकता नहीं है। अब मैं आप के इस रामस्वरूप का ही ध्यान करूँगा ॥४८॥ लक्ष्मण सहित सीता को खोजते हुए धनुष-बाण धारण किये, जटा,वल्कल भूषित श्याम वर्ण एवं तरुण वयस्क आपका यह सलोना स्वरूप ॥४९॥ मेरे मानस में सदा विराजमान रहे, यही मेरी प्रार्थना है। हे रघुश्रेष्ठ ! आपके इसी रूप का पार्वती सहित सर्वज्ञ शंकर भी सर्वदा चिन्तन किया करते हैं। इसी रूप के ध्यान के प्रभाव से वे 'राम-राम' इस ब्रह्मवाचक तारक मन्त्र के उपदेश से काशी में मरने वाले मनुष्यों को मुक्त करते रहते हैं। तथा सर्वदा सन्तुष्ट रहते हैं। इसलिए हे जानकीनाथ ! आप निश्चित परमात्मा हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥५०-५२॥

सर्वे ते मायया मूढास्त्वां न जानन्ति तत्त्वतः ।
नमस्ते रामभद्राय वेधसे परमात्मने ! ॥५३॥

अयोध्याधिपते ! तुभ्यं नमः सौमित्रिसेवित ! ।
त्राहि त्राहि जगन्नाथ ! मां माया नावृणोतु ते ॥५४॥

श्रीराम उवाच

तुष्टोऽहं देवगन्धर्व ! भक्त्या स्तुत्या च तेऽनघ ! ।
याहि मे परमं स्थानं योगिगम्यं सनातनम् ॥५५॥

जपन्ति ये नित्यमनन्यबुद्ध्या भक्त्या त्वदुक्तं स्तवमागमोक्तम् ।
तेऽज्ञानसम्भूतभवं विहाय मां यान्ति नित्यानुभवानुमेयम् ॥५६॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
अरण्यकाण्डे नवमः सर्गः ॥९॥

---

हे नाथ ! सभी आपकी माया से मोहित हैं, अतः तत्त्वतः आपको नहीं जानते। हे सृष्टिरचयिता वेधा, हे परमात्मा, हे रामभद्र ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥५३॥ हे लक्ष्मणसेवित ! हे अयोध्याधिपते ! आपको नमस्कार है, हे जगन्नाथ ! मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो, आपकी यह माया मुझे मोहित न करे ॥५४॥

तब श्री राम ने कहा—हे अनघ देवगन्धर्व ! तुम्हारी इस भक्ति से तथा स्तुति से हम सर्वथा प्रसन्न हैं। अब तुम मेरे योगि गम्य सनातन परम धाम को जाओ ॥५५॥ हे गन्धर्व ! जो लोग आगमोक्त तुम्हारे इस स्तोत्र का नित्य भक्ति पूर्वक अनन्य बुद्धि से पाठ करेंगे, वे अज्ञानजन्य इस संसार से छुटकारा पाकर नित्यानुभव स्वरूप मुझ परमात्मा को प्राप्त करेंगे ॥५६॥

**इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या सहित अध्यात्मरामायण के उमा-महेश्वर संवाद में अरण्यकाण्ड का नवम सर्ग समाप्त ॥९॥**

## १०. दशमः सर्गः
### ( शबरी से भेंट )

श्रीमहादेव उवाच

लब्ध्वा वरं स गन्धर्वः प्रयास्यन् राममब्रवीत् ।
शबर्यास्ते पुरोभागे आश्रमे रघुनन्दन ! ॥१॥
भक्त्या त्वत्पादकमले भक्तिमार्गविशारदा ।
तां प्रयाहि महाभाग ! सर्वं ते कथयिष्यति ॥२॥
इत्युक्त्वा प्रययौ सोऽपि विमानेनार्कवर्चसा ।
विष्णोः पदं रामनामस्मरणे फलमीदृशम् ॥३॥
त्यक्त्वा तद्-विपिनं घोरं सिंह-व्याघ्रादि-दूषितम् ।
शनैरथाश्रमपदं शबर्या रघुनन्दनः ॥४॥
शबरी राममालोक्य लक्ष्मणेन समन्वितम् ।
आयान्तमाराद्धर्षेण प्रत्युत्थायाऽचिरेण सा ॥५॥
पतित्वा पादयोरग्रे हर्षपूर्णाश्रुलोचना ।
स्वागतेनाभिनन्द्याथ स्वासने संन्यवेशयत् ॥६॥

---

शंकर ने कहा–हे पार्वती ! इस प्रकार वर प्राप्त कर जाते हुए उस गन्धर्व ने कहा–हे रघुनन्दन ! आप को आगे शबरी का आश्रम प्राप्त होगा ॥१॥ वह शबरी आपके चरण-कमलों में भक्ति रखने के कारण भक्ति-मार्ग में कुशल है। आप उसके आश्रम में जाइए। वह आप से सब कुछ कहेगी ॥२॥ ऐसा कह कर वह गन्धर्व सूर्य के समान तेजस्वी विमान से विष्णु के परम धाम को चला गया। यह सत्य है, राम नाम के स्मरण का फल ऐसा ही होता है। ३॥

इधर रघुनन्दन राम भी सिंह, व्याघ्र आदि हिंसक पशुओं से दूषित उस वन को छोड़कर धीरे-धीरे शबरी के आश्रम में पहुँचे ॥४॥ लक्ष्मण सहित श्री राम को अपने समीप आते हुए देखकर कर शबरी अत्यन्त हर्ष से शीघ्रता पूर्वक उठी। राम के आते ही शबरी के नेत्र हर्ष से अश्रुपूर्ण हो गये। और वह उनके चरणों में गिर पड़ी। स्वागत कर कुशल-प्रश्न के अनन्तर उनको आसन पर बैठाया ।५–६॥

राम-लक्ष्मणयोः सम्यक् पादौ प्रक्षाल्य भक्तितः।
तज्जलेनाभिषिच्याङ्गमथार्घ्यादिभिरादृता ॥७॥
सम्पूज्य विधिवद्रामं स-सौमित्रिं सपर्यया।
सङ्गृहीतानि दिव्यानि रामार्थं शबरी मुदा ॥८॥
फलान्यमृतकल्पानि ददौ रामाय भक्तितः।
पादौ सम्पूज्य कुसुमैः सुगन्धैः सानुलेपनैः ॥९॥
कृतातिथ्यं रघुश्रेष्ठमुपविष्टं सहानुजम्।
शबरी भक्तिसम्पन्ना प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत ॥१०॥
अत्राश्रमे रघुश्रेष्ठ! गुरवो मे महर्षयः।
स्थिताः शुश्रूषणं तेषां कुर्वती समुपस्थिता ॥११॥
बहुवर्षसहस्राणि गतास्ते ब्रह्मणः पदम्।
गमिष्यन्तोऽब्रुवन्मां त्वं वसात्रैव समाहिता ॥१२॥
रामो दाशरथिर्जातः परमात्मा सनातनः।
राक्षसानां वधार्थाय ऋषीणां रक्षणाय च ॥१३॥

---

उसने भक्तिपूर्वक श्री राम के चरणों का प्रक्षालन किया। पुनः उस जल से अपने अङ्गों को अभिषिक्त कर अर्घ्यादि विविध सामग्रियों से युक्त हो ॥७॥ लक्ष्मण सहित श्री राम की विधिवत् पूजा की। और राम के लिए एकत्रित किये गये दिव्य फल ॥८॥

जो अमृत के समान स्वादिष्ट थे, भक्ति और हर्ष से उन्हें समर्पित किया। पुनः सुगन्धित चन्दन एवं पुष्पों से उनके चरण-कमलों का पूजन किया ॥९॥ इस प्रकार अतिथि-सत्कार हो चुकने पर जब श्री रामचन्द्रजी लक्ष्मण के सहित बैठे हुए थे तब शबरी ने हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक श्री राम से कहा—॥१०॥

हे रघुश्रेष्ठ! इस आश्रम में मेरे गुरुदेव महर्षि रहते थे, मैं भी उनकी सेवा-शुश्रूषा करती हुई बहुत हजार वर्षों तक यहाँ निवास करती थी। वे तो ब्रह्मलोक चले गये। किन्तु जाते समय उन्होंने मुझसे कहा—तुम इस आश्रम में सावधानी से एकाग्रचित्त हो निवास करना ॥११-१२॥ सनातन परमात्मा ने दशरथ के घर में राम रूप से राक्षसों के बध के लिए एवं

आगमिष्यति सैकाग्रध्याननिष्ठा स्थिरा भव ।
इदानीं चित्रकूटाद्रावाश्रमे वसति प्रभुः ॥१४॥
यावदागमनं तस्य तावद्रक्ष कलेवरम् ।
दृष्ट्वैव राघवं दग्ध्वा देहं यास्यसि तत्पदम् ॥१५॥
तथैवाकरवं राम ! त्वद्ध्यानैकपरायणा ।
प्रतीक्ष्यागमनं तेऽद्य सफलं गुरुभाषितम् ॥१६॥
तव सन्दर्शनं राम ! गुरूणामपि मे न हि ।
योषिन्मूढाप्रमेयात्मन् ! हीनजातिसमुद्भवा ॥१७॥
तव दासस्य दासानां शतसङ्ख्योत्तरस्य वा ।
दासीत्वे नाधिकारोऽस्ति कुतः साक्षात्तवैव हि ॥१८॥
कथं रामाद्य मे दृष्टस्त्वं मनोवागगोचरः ।
स्तोतुं न जाने देवेश ! किं करोमि प्रसीद मे ॥१९॥

---

ऋषियों की रक्षा के लिए अवतार धारण किया है ।।१३।। वे इस आश्रम में आवेंगे। तू एकाग्रचित्त से उनका ध्यान करती हुई यहीं स्थिर रहो। इस समय वे प्रभु चित्रकूट पर्वत पर आश्रम में विराजमान हैं ।१४।। जब तक वे आवें तब तक अपने शरीर की रक्षा कर। पुनः राम का दर्शन कर अपने शरीरको जला कर तू परम पद को चली जायेगी ।१५।।

हे राम ! मैं भी तुम में परायण होकर तुम्हारा ध्यान करती हुई गुरु जी के कथनानुसार तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा कर रही थी। आज गुरु जी का वह वाक्य सफल हो गया ।१६।। हे राम ! आपका यह दर्शन तो मेरे गुरुजी को भी नहीं हुआ। फिर मेरी तो बात ही क्या ? हे अप्रमेयात्मन् ! मैं तो स्त्री हूं, उसमें भी हीन जाति में मेरा जन्म हुआ है और उसमें भी मैं सर्वथा गँवारी हूँ ।।१७।। मैं तो आपके दासों के दास का, इस प्रकार के दासानुदास की परम्परा में सौवें पुरुष तक के दास की दासी होने की भी अधिकारिणी नहीं हूँ। फिर आपकी साक्षात् दासी होने का मुझे अधिकार ही कहाँ है ।।१८।।

हे राम ! आज आपका यह दर्शन किस सौभाग्य से प्राप्त हुआ है, मैं नहीं जानती। आप तो मन और वाणी से भी अगोचर हैं। हे नाथ देवेश !

श्रीराम उवाच

पुंस्त्वे स्त्रीत्वे विशेषो वा जातिनामाश्रमादयः ।
न कारणं मद्भजने भक्तिरेव हि कारणम् ॥२०॥
यज्ञ-दान-तपोभिर्वा वेदाध्ययनकर्मभिः ।
नैव द्रष्टुमहं शक्यो मद्भक्तिविमुखैः सदा ॥२१॥
तस्माद् भामिनि! सङ्क्षेपाद् वक्ष्येऽहं भक्तिसाधनम् ।
सतां सङ्गतिरेवात्र साधनं प्रथमं स्मृतम् ॥२२॥
द्वितीयं मत्कथालापस्तृतीयं मद्गुणेरणम् ।
व्याख्यातृत्वं मद्वचसां चतुर्थं साधनं भवेत् ॥२३॥
आचार्योपासनं भद्रे ! मद्बुद्ध्यामायया सदा ।
पञ्चमं पुण्यशीलत्वं यमादि नियमादि च ॥२४॥
निष्ठा मत्पूजने नित्यं षष्ठं साधनमीरितम् ।
मम मन्त्रोपासकत्वं साङ्गं सप्तममुच्यते ॥२५॥

---

मैं आपकी स्तुति भी नहीं जानती अतः आप मेरे ऊपर स्वयं ही प्रसन्न हो जाइए ॥१९॥ तब श्री राम ने कहा–पुरुषत्व, स्त्रीत्व का भेद एवं जाति, नाम और आश्रम आदि की विशेषताएँ मेरे भजन में कारण नहीं हैं, इसका कारण तो एकमात्र मेरी भक्ति ही है ॥२०॥ यज्ञ, दान, तप वेदाध्ययनादि कर्मों द्वारा मेरी भक्ति से विमुख लोग मुझे कभी नहीं देख सकते ॥२१॥ इस लिए हे भामिनि ! मैं संक्षेप से भक्ति के साधन का वर्णन करता हूँ । उनमें सर्वप्रथम साधन तो सज्जनों की संगति है ॥२२॥ दूसरी भक्ति मेरी कथा का कीर्त्तन करना, तीसरा साधन मेरे गुणों की चर्चा करते रहना और मेरे कहे हुए वाक्यों का ( गीता आदि ग्रन्थों का ) व्याख्यान करना यह चतुर्थ साधन है ॥२३॥

अपने आचार्य का निष्कपट रूप से भगवद्-बुद्धि से सेवा करना यह पञ्चम साधन है, पवित्र स्वभाव से रहना एवं यम-नियम आदि का पालन करना, ॥२४॥ मेरी पूजा में निरन्तर निष्ठा ( आग्रह ) रखना यह छठवाँ साधन है, और मेरे साङ्गो-पाङ्ग मन्त्र की उपासना करना यह सातवाँ साधन है ॥२५॥ मेरे भक्तों की मुझसे अधिक पूजा करना, सभी प्राणियों

मद्भक्तेष्वधिका पूजा सर्वभूतेषु मन्मतिः ।
बाह्यार्थेषु विरागित्वं शमादिसहितं तथा ॥२६॥

अष्टमं नवमं तत्त्वविचारो मम भामिनि ! ।
एवं नवविधा भक्तिः साधनं यस्य कस्य वा ॥२७॥

स्त्रियो वा पुरुषस्यापि तिर्यग्योनिगतस्य वा ।
भक्तिः सञ्जायते प्रेमलक्षणा शुभलक्षणे ! ॥२८॥

भक्तौ सञ्जातमात्रायां मत्तत्त्वानुभवस्तदा ।
ममानुभवसिद्धस्य मुक्तिस्तत्रैव जन्मनि ॥२९॥

स्यात्तस्मात् कारणं भक्तिर्मोक्षस्येति सुनिश्चितम् ।
प्रथमं साधनं यस्य भवेत्तस्य क्रमेण तु ॥३०॥

भवेत् सर्वं ततो भक्तिर्मुक्तिरेव सुनिश्चितम् ।
यस्मान्मद्भक्तियुक्ता त्वं ततोऽहं त्वामुपस्थितः ॥३१॥

---

को भगवत्स्वरूप समझना; बाहरी पदार्थों से वैराग्य करना, शम, दम, तितिक्षा और तीव्र मुमुक्षुत्व का होना यह आठवाँ साधन है ॥२६॥

हे भामिनि ! तत्त्व का विचार ( संसार की असारता ) करते रहना यह नवम साधन है। इस प्रकार नव प्रकार की भक्ति है। इस प्रकार भक्ति के ये नव प्रकार के साधन ॥२७॥ जिस-किसी में पाये जाते हैं, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, पशु हो या पक्षी। उसमें हे शुभ लक्ष्मणे ! प्रेम लक्षणा भक्ति का आविर्भाव हो जाता है ॥२८॥ भक्ति के उत्पन्न होते ही मेरे तत्त्व का अनुभव होने लगता है। और जिसे मेरे तत्त्वों का अनुभव होता है उसे इसी जन्म में मुक्ति प्राप्त हो जाती है ॥२९॥

इससे यह निश्चित रूप से सिद्ध हो जाता है कि मोक्ष का कारण भक्ति है। उपरोक्त कहे गये भक्ति के नव साधनों में जिसे एक भी साधन होता है, उसे क्रमशः नवों भक्ति प्राप्त हो जाती है ॥३०॥ भक्ति के प्राप्त होते ही मुक्ति भी सुनिश्चित है। यतः तुम मेरी भक्ति से युक्त हो, इसलिए मैं अपने आप तुम्हारे पास चला आया ॥३१॥ अब तुम्हें मेरा दर्शन हो गया।

इतो मद्दर्शनान्मुक्तिस्तव नास्त्यत्र संशयः।
यदि जानासि मे ब्रूहि सीता कमललोचना ॥३२॥
कुत्रास्ते केन वा नीता प्रिया मे प्रियदर्शना ॥३३॥

शबर्युवाच

देव! जानासि सर्वज्ञ! सर्वं त्वं विश्वभावन!।
तथापि पृच्छसे यन्मां लोकाननुसृतः प्रभो! ॥३४॥
ततोऽहमभिधास्यामि सीता यत्राऽधुना स्थिता।
रावणेन हृता सीता लङ्कायां वर्ततेऽधुना ॥३५॥
इतः समीपे रामास्ते पम्पानाम सरोवरम्।
ऋष्यमूकगिरिर्नाम तत्समीपे महानगः ॥३६॥
चतुर्भिर्मन्त्रिभिः सार्धं सुग्रीवो वानराधिपः।
भीतभीतः सदा यत्र तिष्ठत्यतुलविक्रमः ॥३७॥

---

अतः तुम्हें सुनिश्चित मुक्ति प्राप्त होगी। यदि तुम्हें मेरी कमल-लोचना सीता का कहीं पता हो तो मुझे बताओ ॥३२॥ मेरी प्राणप्रिया परम सुन्दरी सीता को कौन ले गया। और वह इस समय कहाँ पर है? ॥३३॥

तब शबरी ने कहा–हे देव! हे विश्वभावन! तुम सब कुछ जानते हो। तथापि हे सर्वज्ञ! तुम लोक-रीति का अनुसरण कर मुझसे पूछते हो।॥३४॥ इसलिए मैं भी जहाँ सीता हैं वह स्थान आपको बतला रही हूँ। सीता को रावण हर कर ले गया है और वह इस समय लङ्का में हैं ॥३५॥ हे राम! यहाँ से सन्निकट ही पम्पा नामक सरोवर हैं, उसके समीप में ही ऋष्यमूक नाम का महान् पर्वत है ॥३६॥ वहाँ पर वानरों का राजा परम पराक्रमी सुग्रीव अपने चार मन्त्रियों के साथ भयभीत होकर निवास करता है ॥३७॥ वह अपने बलशाली भाई वाली से सदा डरता रहता है

वालिनश्च भयाद् भ्रातुस्तदगम्यमृषेर्भयात् ।
वालिनस्तत्र गच्छ त्वं तेन सख्यं कुरु प्रभो ! ॥३८॥

सुग्रीवेण स सर्वं ते कार्यं सम्पादयिष्यति ।
अहमग्निं प्रवेक्ष्यामि तवाऽग्रे रघुनन्दन ! ॥३९॥

मुहूर्तं तिष्ठ राजेन्द्र ! यावद् दग्ध्वा कलेवरम् ।
यास्यामि भगवन् ! राम ! तव विष्णोः परं पदम् ॥४०॥

इति रामं समामन्त्र्य प्रविवेश हुताशनम् ।
क्षणान्निर्धूय सकलमविद्याकृतबन्धनम् ।
रामप्रसादाच्छबरी मोक्षं प्रापातिदुर्लभम् ॥४१॥

किं दुर्लभं जगन्नाथे श्रीरामे भक्तवत्सले ।
प्रसन्नेऽधमजन्मापि शबरी मुक्तिमाप सा ॥४२॥

किं पुनर्ब्राह्मणा मुख्याः पुण्याः श्रीरामचिन्तकाः ।
मुक्तिं यान्तीति तद्भक्तिर्मुक्तिरेव न संशयः ॥४३॥

---

किन्तु वह स्थान महर्षि के शाप के भय से सदा अगम्य है, इसलिए हे प्रभो ! आप वहाँ पर जाइए और सुग्रीव से मित्रता कीजिए ॥३८॥ मित्र बन जाने पर वह सुग्रीव आपका सारा कार्य करेगा। और हे रघुनन्दन ! मैं आपके सामने अग्नि में प्रवेश करूँगी ॥३९॥

हे राजेन्द्र ! आप एक मुहूर्त्त यहीं ठहरिए। जब तक मैं अपने शरीर को जलाकर विष्णु के परम धाम को जाऊँ ॥४०॥ इस प्रकार राम से संभाषण कर वह शबरी अग्नि में प्रविष्ट हो गयी और क्षण मात्र में अविद्याजन्य बन्धन से मुक्त हो श्री राम की प्रसन्नता से परम दुर्लभ मोक्ष पद प्राप्त कर ली ॥४१॥ भला भक्तवत्सल जगन्नाथ राम के प्रसन्न होने पर कौन ऐसी वस्तु है जो दुर्लभ हो। देखो, उनकी प्रसन्नता से ही हीन जाति में उत्पन्न शबरी मुक्त हो गयी ॥४२॥ फिर राम के भक्त पुण्यशील ब्राह्मणों को यदि मुक्ति प्राप्त हो जाय तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है ? श्रीराम की भक्ति ही मुक्ति है इसमें सन्देह नहीं ॥४३॥ हे लोगो ! देखो, भगवान्

भक्तिर्मुक्तिविधायिनी भगवतः श्रीरामचन्द्रस्य हे
लोकाः कामदुघाङ्घ्रिपद्मयुगलं सेवध्वमत्युत्सुकाः ।
नानाज्ञान-विशेषमन्त्र-विततिं त्यक्त्वा सुदूरे भृशं
रामं श्यामतनुं स्मरारिहृदये भान्तं भजध्वं बुधाः ॥४४॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
अरण्यकाण्डे दशमः सर्गः ॥१०॥

*

---

श्री रामचन्द्रजी की भक्ति मुक्ति देने वाली है, इसलिए अत्यन्त उत्सुकता से कामधेनु के समान मनोरथ को पूर्ण करने वाले उनके चरण-युगलों की सेवा करो। हे बुद्धिमानो ! इन अनेक विध के विज्ञान वार्ताओं एवं मन्त्रों के प्रपञ्चों कों दूर से ही त्याग करो। और सदाशिव के हृदय में विराजमान श्याम शरीर श्री राम का भजन करो ॥४४॥

इस प्रकार आचार्य पण्डित शिवदत्त मिश्र शास्त्री कृत 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या सहित अध्यात्मरामायण के उमा-महेश्वर संवाद में अरण्यकाण्ड का दशम सर्ग समाप्त ॥ १० ॥

•

समाप्तमिदमरण्यकाण्डम् ।



# अध्यात्मरामायणम्

## 'रामप्रिया'-हिन्दीव्याख्या-सहितम्

## किष्किन्धाकाण्डम्

•

### १. प्रथमः सर्गः

( सुग्रीव से भेंट )

श्रीमहादेव उवाच

ततः स लक्ष्मणो रामः शनैः पम्पासरस्तटम् ।
आगत्य सरसां श्रेष्ठं दृष्ट्वा विस्मयमाययौ ॥ १ ॥
क्रोशमात्रं सुविस्तीर्णमगाधामलशम्बरम् ।
उत्फुल्लाम्बुज-कह्लार-कुमुदोत्पल-मण्डितम् ॥ २ ॥
हंस-कारण्डवाकीर्णं चक्रवाकादिशोभितम् ।
जलकुक्कुट-कोयष्टि-क्रौञ्च-नादोपनादितम् ॥ ३ ॥
नानापुष्पलताकीर्णं नानाफलसमावृतम् ।
सतां मनः स्वच्छजलं पद्मकिञ्जल्कवासितम् ॥ ४ ॥

---

श्रीमहादेवजी ने कहा—हे पार्वति ! तदनन्तर लक्ष्मण सहित श्रीराम धीरे-धीरे पम्पासर के तट पर पहुँचे। उस सुन्दर सरोवर को देखते ही उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ ॥१॥ वह पम्पासर एक कोस में फैला हुआ था, उसमें स्वच्छ अगाध जल भरा हुआ था। उसमें कमल, कह्लार, कुमुद एवं उत्पल सुशोभित हो रहे थे ॥२॥ वह सरोवर हंस और कारण्डव पक्षियों से व्याप्त था। चक्रवाक आदि पक्षी उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। उसके सन्निकट जल कुक्कुट, कोयष्टि एवं क्रौञ्च पक्षी कलरव कर रहे थे ॥३॥

वह सरोवर अनेक प्रकार के पुष्पों और लताओं से परिपूर्ण था और अनेक प्रकार के फलदार वृक्षों से घिरा हुआ था। कमल केशर से सुवासित

तत्रोपस्पृश्य सलिलं पीत्वा श्रमहरं विभुः ।
सानुजः सरसस्तीरे शीतलेन पथा ययौ ॥ ५ ॥

ऋष्यमूकगिरेः पार्श्वे गच्छन्तौ रामलक्ष्मणौ ।
धनुर्बाणकरौ दान्तौ जटावल्कलमण्डितौ ।
पश्यन्तौ विविधान् वृक्षान् गिरेः शोभां सुविक्रमौ ॥ ६ ॥

सुग्रीवस्तु गिरेर्मूर्ध्नि चतुर्भिः सह वानरैः ।
स्थित्वा ददर्श तौ यान्तावारुरोह गिरेः शिरः ॥ ७ ॥
भयादाह हनूमन्तं कौ तौ वीरवरौ सखे ! ।
गच्छ जानीहि भद्रं ते वटुर्भूत्वा द्विजाकृतिः ॥ ८ ॥
वालिना प्रेषितौ किं वा मां हन्तुं समुपागतौ ।
ताभ्यां सम्भाषणं कृत्वा जानीहि हृदयं तयोः ॥ ९ ॥

---

होने के कारण उसका जल सज्जनों के स्वच्छ मन जैसा प्रतीत हो रहा था ।।४।। वहाँ पर जाकर परमात्मा श्रीराम ने पम्पासर के जल का आचमन किया । और उसका श्रमहारी जल पीया । तथा अपने छोटे भाई के साथ पम्पासर के किनारे-किनारे शीतल छायादार रास्ते से चलने लगे ।।५।।

इस प्रकार ऋष्यमूक पर्वत के बगल से चलते हुए हाथ में धनुष-बाण धारण किये हुए जितेन्द्रिय, जटा-वल्कल से सुशोभित परम पराक्रमी श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी अनेक प्रकार के वृक्षों को तथा पर्वत की शोभा को देखते हुए जा रहे थे ।।६।। उस समय अपने चार मन्त्रियों के साथ पहाड़ के शिखर पर बैठे हुए सुग्रीव ने उनको जाते हुए देखा । फिर वे पहाड़ की सबसे ऊँची चोटी पर गये ।।७।। और उन्होंने भयभीत होकर हनुमान् से कहा—हे मित्र ! तुम ब्राह्मण ब्रह्मचारी का वेष धारण कर वहाँ जाओ और पता लगाओ कि ये दोनों श्रेष्ठ वीर कौन हैं ? ।।८।। तुम्हारा कल्याण हो । क्या वे वाली के द्वारा भेजे हुए मुझे मारने के लिए तो वहीं आ रहे हैं ? हे मित्र ! इनसे बातचीत कर इनके हृदय का अभिप्राय ज्ञात करो ।।९।। यदि दूषित अभिप्राय से यहाँ आ रहे हों तो तुम अपने अँगुली

यदि तौ दुष्टहृदयौ संज्ञां कुरु कराग्रतः ।
विनयावनतो भूत्वा एवं जानीहि निश्चयम् ॥१०॥
तथेति वटुरूपेण हनुमान् समुपागतः ।
विनयावनतो भूत्वा रामं नत्वेदमब्रवीत् ॥११॥
कौ युवां पुरुषव्याघ्रौ युवानौ वीरसम्मतौ ।
द्योतयन्तौ दिशः सर्वाः प्रभया भास्कराविव ॥१२॥
युवां त्रैलोक्यकर्ताराविति भाति मनो मम ।
युवां प्रधानपुरुषौ जगद्धेतू जगन्मयौ ॥१३॥
मायया मानुषाकारौ चरन्ताविव लीलया ।
भूभारहरणार्थाय भक्तानां पालनाय च ॥१४॥
अवतीर्णाविह परौ चरन्तौ क्षत्रियाकृती ।
जगत्-स्थिति-लयौ सर्गं लीलया कर्तुमुद्यतौ ॥१५॥

से मुझे संकेत कर देना। तुम बड़े विनीत भाव से जाकर इनके निश्चय का पता लगाओ ॥ १० ॥ हनुमान्जी ने भी 'तथास्तु' कहा। फिर वटु रूप धारण कर रघुनाथजी के पास आये और बड़ी नम्रता से श्रीराम को नमस्कार करते हुए बोले—॥११॥

हे पुरुषव्याघ्र ! आप दोनों युवक कौन हैं ? देखने में आप लोग महान् वीर ज्ञात हो रहे हैं। आप लोग अपने शरीर की कान्ति से सूर्य के समान दिशाओं को प्रकाशित कर रहे हैं ॥१२॥ मेरे विचार में ऐसा आता है कि आप लोग इस त्रिलोकी के कर्त्ता, संसार के मूल कारण और जगन्मय प्रधान एवं पुरुष हैं ॥१३॥ आप लोग पृथ्वी का भार उतारने के लिए, और अपने भक्तों की रक्षा के लिए लीला से माया मनुष्य का रूप धारण कर विचरण कर रहे हैं। १४। आप दोनों परमात्मा ही क्षत्रिय का रूप धारण कर इस पृथ्वीतल में अवतीर्ण हुए हैं। आप अपनी लीला से ही इस जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा लय करने में तत्पर दीख रहे हैं ॥१५॥ मेरे विचार में ऐसा आता है

स्वतन्त्रौ प्रेरकौ सर्वहृदयस्थाविहेश्वरौ ।
नरनारायणौ लोके चरन्ताविति मे मतिः ॥१६॥
श्रीरामो लक्ष्मणं प्राह पश्यैनं वटुरूपिणम् ।
शब्दशास्त्रमशेषेण श्रुतं नूनमनेकधा ॥१७॥
अनेन भाषितं कृत्स्नं न किञ्चिदपशब्दितम् ।
ततः प्राह हनूमन्तं राघवो ज्ञानविग्रहः ॥१८॥
अहं दाशरथी रामस्त्वयं मे लक्ष्मणोऽनुजः ।
सीतया भार्यया सार्धं पितुर्वचनगौरवात् ॥१९॥
आगतस्तत्र विपिने स्थितोऽहं दण्डके द्विज ! ।
तत्र भार्या हृता सीता रक्षसा केनचिन्मम ।
तामन्वेष्टुमिहायातौ त्वं को वा कस्य वा वद ? ॥२०॥

वटुरुवाच

सुग्रीवो नाम राजा यो वानराणां महामतिः ।
चतुर्भिर्मन्त्रिभिः सार्धं गिरिमूर्धनि तिष्ठति ॥२१॥

---

कि आप लोग सबके हृदय-स्थल में निवास करने वाले, स्वतन्त्र किन्तु सबके प्रेरक नर-नारायण हो, जो इस लोक में विचरण कर रहे हैं ॥१६॥

तब श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा—हे लक्ष्मण ! इस ब्रह्मचारी को देखो, ऐसा मालूम पड़ता है कि इसने सम्पूर्ण शब्दशास्त्र अनेक बार अध्ययन किया है ॥१७॥ इसने इतना भाषण किया पर इसके भाषण में एक भी अशुद्धि नहीं हुई। तदनन्तर साक्षात् ज्ञानस्वरूप श्रीराम ने हनुमान् से कहा—॥१८॥ मैं दशरथ का पुत्र राम हूँ, और यह हमारे छोटे भाई लक्ष्मण हैं। मैं अपने पिता के आज्ञानुसार अपनी भार्या सीता के साथ इस वन में आया था ॥१९॥ और यहाँ दण्डकारण्य में निवास करता था, किन्तु किसी राक्षस ने मेरी भार्या सीता का अपहरण कर लिया है। उन्हें ढूँढ़ने के लिए हम दोनों यहाँ आये हुए हैं। तुम कौन हो ? और किसके ( पुत्र ) हो मुझे बताओ ॥२०॥

तब ब्रह्मचारी ने कहा—जो सुग्रीव महाबुद्धिमान् बानरों के राजा हैं।

भ्राता कनीयान् सुग्रीवो वालिनः पापचेतसः ।
तेन निष्कासितो भार्या हृता तस्येह वालिना ॥२२॥

तद्भयादृष्यमूकाख्यं गिरिमाश्रित्य संस्थितः ।
अहं सुग्रीवसचिवो वायुपुत्रो महामते ! ॥२३॥

हनूमान् नाम विख्यातो ह्यञ्जनीगर्भसम्भवः ।
तेन सख्यं त्वया युक्तं सुग्रीवेण रघूत्तम ! ॥२४॥

भार्यापहारिणं हन्तुं सहायस्ते भविष्यति ।
इदानीमेव गच्छाम आगच्छ यदि रोचते ॥२५॥

श्रीराम उवाच

अहमप्यागतस्तेन सख्यं कर्तुं कपीश्वर ! ।
सख्युस्तस्यापि यत्कार्यं तत्करिष्याम्यसंशयम् ॥२६॥

हनूमान् स्वस्वरूपेण स्थितो राममथाब्रवीत् ।
आरोहतां मम स्कन्धौ गच्छामः पर्वतोपरि ॥२७॥

---

वे अपने चार मन्त्रियों के साथ इसी पहाड़ के शिखर पर निवास करते हैं ॥२१॥ ये सुग्रीव उस पापी वालि के छोटे भाई हैं, जिसने इनकी भार्या को छीनकर इन्हें घर से निकाल दिया है ॥२२॥ अब ये सुग्रीव उसी वालि के भय से ऋष्यमूक पर्वत का सहारा लेकर वहीं पर निवास करते हैं। हे महामते ! मैं उन्हीं सुग्रीव का सचिव वायु का पुत्र हूँ ॥ २३ ॥ मैं अञ्जनी माता के गर्भ से उत्पन्न हुआ हूँ एवं हनुमान् नाम से मैं विख्यात हूँ। हे रघूत्तम ! आपको उस सुग्रीव से मित्रता करना उत्तम होगा ॥२४॥ वह सुग्रीव आपके स्त्री को चुराने वाले के वध में सहायक होगा। यदि आप की इच्छा हो तो आइए हम लोग उसी के पास चलें ॥२५॥

श्रीराम ने कहा—हे कपीश्वर ! हम भी उससे मित्रता करने की इच्छा से यहाँ आये हुए हैं। मेरे उस मित्र का जो भी कार्य होगा मैं उसे निश्चित रूप से करूँगा ॥२६॥ पुनः हनुमान्जी अपने स्वरूप में स्थित हो गये। और राम से कहने लगे—आप दोनों मेरे कन्धे पर चढ़िए, मैं अभी आपको उस पर्वत पर ले चलता हूँ ॥२७॥ जहाँ वाली के भय से सुग्रीव

यत्र तिष्ठति सुग्रीवो मन्त्रिभिर्वालिनो भयात् ।
तथेति तस्यारुरोह स्कन्धं रामोऽथ लक्ष्मणः ॥२८॥

उत्पपात गिरेर्मूर्ध्नि क्षणादेव महाकपिः ।
वृक्षच्छायां समाश्रित्य स्थितौ तौ रामलक्ष्मणौ ॥२९॥

हनूमानपि सुग्रीवमुपगम्य कृताञ्जलिः ।
व्येतु ते भयमायातौ राजन् ! श्रीरामलक्ष्मणौ ॥३०॥

शीघ्रमुत्तिष्ठ रामेण सख्यं ते योजितं मया ।
अग्निं साक्षिणमारोप्य तेन सख्यं द्रुतं कुरु ॥३१॥

ततोऽतिहर्षात् सुग्रीवः समागम्य रघूत्तमम् ।
वृक्षशाखां स्वयं छित्त्वा विष्टराय ददौ मुदा ॥३२॥

हनूमान् लक्ष्मणायादात् सुग्रीवाय च लक्ष्मणः ।
हर्षेण महताविष्टाः सर्व एवावतस्थिरे ॥३३॥

---

अपने मन्त्रियों के साथ निवास करते हैं। फिर 'तथास्तु' कहकर राम और लक्ष्मण उसके कन्धों पर चढ़ गये ॥२८॥

तदनन्तर महाबलवान् हनुमान्जी एक क्षण में कूदकर उस पर्वत के शिखर पर पहुँच गये। फिर राम और लक्ष्मण वृक्ष की छाया में खड़े हो गये ॥२९॥ हनुमान्जी सुग्रीव के पास जाकर हाथ जोड़कर कहने लगे। हे राजन् ! अब अपनी शङ्का दूर करो। देखो, ये राम और लक्ष्मण तुम्हारे पास आये हुए हैं ॥३०॥

हे राजन् ! तुम अति शीघ्र उठो, मैंने राम से तुम्हारे मित्रता का योग लगा दिया है। अब आप अग्नि को साक्षी रूप में रखकर शीघ्र ही उनसे मित्रता कीजिए ॥३१॥ फिर सुग्रीव परम प्रसन्न होकर राम के पास आ गये। और हर्ष से वृक्ष की शाखा तोड़कर उनको बैठने के लिए आसन दिया। ३२॥ इसी प्रकार हनुमान्जी ने लक्ष्मण को तथा लक्ष्मण ने सुग्रीव को आसन दिया। फिर प्रसन्नचित्त हो सभी लोग अपने-अपने आसन पर बैठ गये ॥३३॥ फिर लक्ष्मणजी ने राम के सारे वृत्तान्त कह

लक्ष्मणस्त्वब्रवीत् सर्वं रामवृत्तान्तमादितः ।
वनवासाभिगमनं सीताहरणमेव च ॥३४॥

लक्ष्मणोक्तं वचः श्रुत्वा सुग्रीवो राममब्रवीत् ।
अहं करिष्ये राजेन्द्र ! सीतायाः परिमार्गणम् ॥३५॥

साहाय्यमपि ते राम ! करिष्ये शत्रुघातिनः ।
शृणु राम ! मया दृष्टं किञ्चित्ते कथयाम्यहम् ॥३६॥
एकदा मन्त्रिभिः सार्धं स्थितोऽहं गिरिमूर्धनि ।
विहायसा नीयमानां केनचित् प्रमदोत्तमाम् ॥३७॥
क्रोशन्तीं राम रामेति दृष्ट्वाऽस्मान् पर्वतोपरि ।
आमुच्याभरणान्याशु स्वोत्तरीयेण भामिनी ॥३८॥
निरीक्ष्याऽधः परित्यज्य क्रोशन्ती तेन रक्षसा ।
नीताऽहं भूषणान्याशु गुहायामक्षिपं प्रभो ! ॥३९॥

---

सुनाये। जिस भाँति वे वन को आये तथा जिस प्रकार वन में सीता का अपहरण हुआ ॥३४॥

तब लक्ष्मणजी की बात सुनकर सुग्रीव ने राम से कहा—हे राजेन्द्र ! मैं अवश्य ही सीता का खोज करूँगा ॥३५॥ और शत्रु का वध करते समय आपकी भी सहायता करूँगा। हे राम ! अब मैंने जो देखा है उसे भी सुनिए ॥३६॥

एक समय मैं अपने मन्त्रियों के साथ पहाड़ के शिखर पर बैठा था कि इतने में ( किसी राक्षस द्वारा ) आकाश मार्ग से सीता को ले जाते हुए देखा ॥३७॥ वे 'हा राम, हा राम' ऐसा पुकार रही थीं, जब उन्होंने पहाड़ पर बैठे हुए हम लोगों को देखा तो अपने आभूषणों को उतार कर उसे अपने उत्तरीय में लपेट कर नीचे की ओर हमलोगों को देखती हुई उत्तरीय समेत उन आभूषणों को इस पर्वत पर गिरा दिया। इस प्रकार विलाप करती हुई उस स्त्री को राक्षस ले गया। हे प्रभो ! मैंने भी उन आभूषणों को उठाकर अपनी गुफा में रख दिया ॥३८-३९॥

इदानीमपि पश्य त्वं जानीहि तव वा न वा।
इत्युक्त्वाऽऽनीय रामाय दर्शयामास वानरः ॥४०॥

विमुच्य रामस्तद् दृष्ट्वा हा सीतेति मुहुर्मुहुः।
हृदि निक्षिप्य तत्सर्वं रुरोद प्राकृतो यथा ॥४१॥

आश्वास्य राघवं भ्राता लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत्।
अचिरेणैव ते राम! प्राप्यते जानकी शुभा।
वानरेन्द्रसहायेन हत्वा रावणमाहवे ॥४२॥

सुग्रीवोऽप्याह हे राम! प्रतिज्ञां करवाणि ते।
समरे रावणं हत्वा तव दास्यामि जानकीम् ॥४३॥

ततो हनूमान् प्रज्वाल्य तयोरग्निं समीपतः।
तावुभौ रामसुग्रीवावग्नौ साक्षिणि तिष्ठति ॥४४॥

बाहू प्रसार्य चालिङ्ग्य परस्परमकल्मषौ।
समीपे रघुनाथस्य सुग्रीवः समुपाविशत् ॥४५॥

---

हे राम! वे आभूषण अभी तक रखे हुए हैं, आप उसे देखिए कि वे आपके ही हैं अथवा अन्य के हैं। ऐसा कहकर कपिराज सुग्रीव ने उन आभूषणों को लाकर राम को दिखाया ॥४०॥ राम ने वस्त्र खण्ड में रखे गये उन आभूषणों को खोलकर देखा तो उसे छाती से लगा लिया। और वे 'हा सिते! हा सीते!' ऐसा कहते हुए साधारण पुरुषों की तरह बारम्बार विलाप करने लगे ॥४१॥ तब भाई लक्ष्मण ने उनको ढाँढस बँधाते हुए कहा—हे भाई! आप थोड़े ही दिनों में सुग्रीव की सहायता से रावण को मार कर शुभलक्षणा जानकी को प्राप्त करोगे ॥४२॥

सुग्रीव ने भी कहा—हे राम! मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि मैं युद्ध में रावण को मार कर तुम्हारी जानकी तुम्हें दूँगा ॥४३॥ फिर हनुमान् जी ने दोनों के समीप ( मध्य में ) अग्नि जलाई फिर अग्नि को साक्षी कर निष्पाप भाव से दोनों राम और सुग्रीव हाथ फैलाकर एक दूसरे के गले मिले पुनः सुग्रीव राम के समीप बैठ गये ॥४४-४५॥ और बड़े प्रेम से

स्वोदन्तं कथयामास प्रणयाद्रघुनायके।
सखे! शृणु ममोदन्तं वालिना यत्कृतं पुरा ॥४६॥
मयपुत्रोऽथ मायावी नाम्ना परमदुर्मदः।
किष्किन्धां समुपागत्य वालिनं समुपाह्वयत् ॥४७॥
सिंहनादेन महता वाली तु तदमर्षणः।
निर्ययौ क्रोधताम्राक्षो जघान दृढमुष्टिना ॥४८॥
दुद्राव तेन संविग्नो जगाम स्वगुहां प्रति।
अनुदुद्राव तं वाली मायाविनमहं तथा ॥४९॥
ततः प्रविष्टमालोक्य गुहां मायाविनं रुषा।
वाली मामाह तिष्ठ त्वं बहिर्गच्छाम्यहं गुहाम्।
इत्युक्त्वाऽऽविश्य स गुहां मासमेकं न निर्ययौ ॥५०॥
मासादूर्ध्वं गुहाद्वारान्निर्गतं रुधिरं बहु।
तद् दृष्ट्वा परितप्ताङ्गो मृतो वालीति दुःखितः ॥५१॥

---

श्रीरामचन्द्रजी को अपना वृत्तान्त सुनाने लगे। सुग्रीव ने कहा—हे मित्र! मेरा वृत्तान्त सुनो, मेरे साथ जैसा व्यवहार वाली ने किया है उसे सुनाता हूँ ॥४६॥

एक समय अत्यन्त मदोन्मत्त मय का पुत्र मायावी किष्किन्धा पुरी में वाली को युद्ध के लिए ललकारा ॥४७॥ उसने महान् सिंहनाद किया। वाली को स्वभाव से ही वे सिंहनाद सहन नहीं हुए। अतः क्रोध में भरकर वह किष्किन्धा से बाहर निकला। और एक घूँसा उसे मारा ॥४८॥ उसे घूँसे के लगते ही वह असुर उद्विग्न होकर गुफा की ओर भागा। फिर हम और वाली दोनों ने ही उस राक्षस का पीछा किया ॥४९॥ फिर उस मायाबी को गुफा में प्रविष्ट हुआ देखकर क्रोध से वाली ने मुझसे कहा—तुम यहीं बाहर खड़े रहो, मैं गुफा में प्रवेश करता हूँ। ऐसा कहकर वह गुफा में चला गया। और एक मास तक उस गुफा से बाहर नहीं निकला ॥५०॥

एक महीने के बाद उस गुफा के द्वार से रुधिर की धारा बहने लगी। उसे देखते ही मैंने जान लिया कि वाली मारा गया। इसलिए मैं परितप्त हो बड़ा दुःखी हुआ ॥५१॥ यह सोचकर कि वाली मारा गया। वह राक्षस

गुहाद्वारि शिलामेकां निधाय गृहमागतः ।
ततोऽत्र मृतो वाली गुहायां रक्षसा हतः ॥५२॥

तच्छ्रुत्वा दुःखिताः सर्वे मामनिच्छन्तमप्युत ।
राज्येऽभिषेचनं चक्रुः सर्वे वानरमन्त्रिणः ॥५३॥

शिष्टं तदा मया राज्यं किञ्चित् कालमरिन्दम ! ।
ततः समागतो वाली मामाह परुषं रुषा ॥५४॥

बहुधा भर्त्सयित्वा मां निजघान च मुष्टिभिः ।
ततो निर्गत्य नगराद्धावं परया भिया ॥५५॥

लोकान् सर्वान् परिक्रम्य ऋष्यमूकं समाश्रितः ।
ऋषेः शापभयात् सोऽपि नायातीमं गिरिं प्रभो ! ॥५६॥

तदादि मम भार्यां स स्वयं भुङ्क्ते विमूढधीः ।
अतो दुःखेन सन्तप्तो हृतदारो हृताश्रयः ॥५७॥

---

मुझे भी न मार डाले इसलिए गुफा के द्वार पर एक बहुत बड़ी शिला रखकर मैं घर चला आया। और सबसे कह दिया कि वाली राक्षस के हाथ से गुफा में मार डाला गया ॥५२॥ इसे सुनकर सभी दुःखी हुए। फिर सभी बानर मन्त्रिमण्डल ने इच्छा न रहते हुए भी मुझको राज्य पद पर अभिषिक्त कर दिया ॥५३॥

हे अरिन्दम ! मैंने कुछ ही दिन अभी शासन किया था कि वाली आ गया और मुझे अनेक प्रकार के दुर्वाद कहने लगा ॥५४॥ इस प्रकार उसने अनेक प्रकार से भला-बुरा कह अपने घूँसों से मारना प्रारम्भ किया। फिर अत्यन्त भय से सन्त्रस्त हो मैं नगर से भागा ॥५५॥ वाली के भय से सारे लोकों में भ्रमण कर मैं इस ऋष्यमूक पर्वत पर निवास करता हूँ। हे प्रभो ! इसका कारण यह है कि महर्षि के शाप के भय से वह यहाँ नहीं आता ॥५६॥ वह मूढ़ बुद्धि तभी से मेरी भार्या को रख कर स्वयं उससे संभोग करता है। इस प्रकार स्त्री, राज्य तथा आश्रय के छिन जाने से मैं तभी से दुःख से सन्तप्त हो यहाँ निवास करता हूँ ॥५७॥ अब आप के पाद के

वसाम्यद्य भवत्पादसंस्पर्शात् सुखितोऽस्म्यहम् ।
मित्रदुःखेन सन्तप्तो रामो राजीवलोचनः ॥५८॥
हनिष्यामि तव द्वेष्यं शीघ्रं भार्यापहारिणम् ।
इति प्रतिज्ञामकरोत् सुग्रीवस्य पुरस्तदा ॥५९॥
सुग्रीवोऽप्याह राजेन्द्र ! वाली बलवतां बली ।
कथं हनिष्यति भवान् देवैरपि दुरासदम् ॥६०॥
शृणु ते कथयिष्यामि तद्बलं बलिनां वर ! ।
कदाचिद् दुन्दुभिर्नाम महाकायो महाबलः ॥६१॥
किष्किन्धामगमद्राम महामहिषरूपधृक् ।
युद्धाय वालिनं रात्रौ समाह्वयत भीषणः ॥६२॥
तच्छ्रुत्वा सहमानोऽसौ वाली परमकोपनः ।
महिषं शृङ्गयोर्धृत्वा पातयामास भूतले ॥६३॥

---

स्पर्श हो जाने से मैं कुछ चैन में हूँ। मित्र के दुःख को सुन कर कमल-नयन राम अत्यन्त सन्तप्त हुए ॥५८॥ फिर सुग्रीव के सामने ही उन्होंने प्रतिज्ञा की कि हे सुग्रीव ! मैं तुम्हारी स्त्री को छीनने वाले तुम्हारे शत्रु का वध करूँगा ॥५९॥

तब सुग्रीव ने कहा—हे राजेन्द्र ! वाली महाबलवान् है, वह सम्पूर्ण योद्धाओं में अग्रणी है। देवता लोग भी उसे युद्ध में पराजित नहीं कर सकते। अतः आप उसे किस प्रकार मारेंगे ॥६०॥

हे वीरश्रेष्ठ ! मैं उसके बल का वर्णन करता हूँ, आप उसे सुनें। एक समय महाकाय महाबलवान् दुन्दुभी नाम का राक्षस ॥६१॥ बहुत बड़े भैंसे का रूप धारण कर आया। और वह भयानक असुर रात्रि में वाली को युद्ध के लिए ललकारा ॥ ६२ ॥ महाक्रोधी वाली उस ललकार को सह न सका। उस महामहिष के सींग को पकड़कर पृथ्वी में पछाड़ कर गिरा दिया ॥६३॥

पादेनैकेन तत्कायमाक्रम्यास्य शिरो महत् ।
हस्ताभ्यां भ्रामयंश्छित्त्वा तोलयित्वाऽक्षिपद् भुवि ॥६४॥
पपात तच्छिरो राम ! मातङ्गाश्रमसन्निधौ ।
योजनात् परितं तस्मान् मुनेराश्रममण्डले ॥६५॥
रक्तवृष्टिः पपातोच्चैर्दृष्ट्वा तां क्रोधमूर्च्छितः ।
मातङ्गो वालिनं प्राह यद्यागन्तासि मे गिरिम् ॥६६॥
इतः परं भग्नशिरा मरिष्यसि न संशयः ।
एवं शप्तस्तदारभ्य ऋष्यमूकं न यात्यसौ ॥६७॥
एतज्ज्ञात्वाऽहमप्यत्र वसामि भयवर्जितः ।
राम ! पश्य शिरस्तस्य दुन्दुभेः पर्वतोपमम् ॥६८॥
तत्क्षेपणे यदा शक्तः शक्तस्त्वं वालिनो वधे ।
इत्युक्त्वा दर्शयामास शिरस्तद्गिरिसन्निभम् ॥६९॥
दृष्ट्वा रामः स्मितं कृत्वा पादाङ्गुष्ठेन चाक्षिपत् ।
दशयोजनपर्यन्तं तदद्भुतमिवाभवत् ॥७०॥

---

एक पैर से उसके शरीर को दबाकर उसके शिर को अपने दोनों हाथों से उखाड़ डाला, फिर उसे घुमाकर पृथ्वी पर फेंक दिया ॥६४॥ मुनियों के आश्रम-मण्डल के चारों तरफ एक योजन तक उस शिर के घुमाने से महामहिष का वह शिर मतङ्ग ऋषि के आश्रम के पास जा गिरा ॥६५॥ घनघोर रक्त की वृष्टि हुई देखकर मतङ्ग ऋषि क्रोध से भर गये। फिर उन्होंने वालि को संबोधित करते हुए कहा--हे वाली ! यदि तुम मेरे इस पहाड़ पर आओगे ॥६६॥ तो तुम्हारा शिर छिन्न-भिन्न हो जायेगा और तुम मर जाओगे। इस प्रकार शाप प्राप्त करने से वह इस ऋष्यमूक पर्वत पर नहीं आता ॥६७॥ मैं यही जानकर निर्भय हो इस पर्वत पर निवास करता हूँ। हे राम ! आप उस दुन्दुभि के पर्वताकार विशाल शिर को तो देखिए ॥६८॥ यदि आप उस शिर को फेंक देंगे तभी आप वाली का वध करने में समर्थ होंगे। ऐसा कह कर सुग्रीव ने राम को दुन्दुभी का वह पर्वताकार शिर दिखाया ॥६९॥ उसे देखकर श्रीराम ने हँसते हुए

साधु साध्विति सम्प्राह सुग्रीवो मन्त्रिभिः सह ।
पुनरप्याह सुग्रीवो रामं भक्तपरायणम् ॥७१॥
एते ताला महासाराः सप्त पश्य रघूत्तम ! ।
एकैकं चालयित्वाऽसौ निष्पत्रान् कुरुतेऽञ्जसा ॥७२॥
यदि त्वमेकबाणेन विद्ध्वा छिद्रं करोषि चेत् ।
हतस्त्वया तदा वाली विश्वासो मे प्रजायते ।
तथेति धनुरादाय सायकं यत्र सन्दधे ॥७३॥
बिभेद च तदा रामः सप्तः तालान् महाबलः ।
तालान् सप्त विनिर्भिद्य गिरिं भूमिं च सायकः ॥७४॥
पुनरागत्य रामस्य तूणीरे पूर्ववत् स्थितः ।
ततोऽतिहर्षात् सुग्रीवो राममाहातिविस्मितः ॥७५॥
देव ! त्वं जगतां नाथः परमात्मा न संशयः ।
मत्पूर्वं कृतपुण्यौघैः सङ्गतोऽद्य मया सह ॥७६॥

---

अपने पैर के अँगूठे से दश योजन पर फेंक दिया । वह सबके लिए आश्चर्य की बात हो गयी ॥७०॥

सुग्रीव भी अपने मन्त्रियों के साथ श्रीरामचन्द्रजी की वाहवाही करने लगे । फिर सुग्रीव ने भक्तों के एक मात्र आश्रय श्रीराम से कहा–। ७१॥

हे रघूत्तम ! इन सुदृढ सात ताल के वृक्षों को देखिए । वह इन ताल-वृक्षों में एक-एक को हिलाकर सभी को पत्रहीन बना देता है ॥७२॥ यदि तुम एक ही बाणों से सबको बींध कर उसमें छिद्र कर दो तब मुझे तुम्हारे द्वारा वाली के वध का विश्वास हो जायेगा । इस बात को सुनकर रामचन्द्र ने धनुष लेकर उस पर बाण चढ़ाया ॥७३-७४। और उन सात-तालों को बेंध दिया । फिर वह बाण सात ताल वृक्षों को, पहाड़ को और भूमि को बेंधकर पूर्ववत् राम के तरकस में स्थित हो गया । फिर सुग्रीव आश्चर्य चकित हो अत्यन्त हर्ष से श्री रामचन्द्रजी से कहने लगा–॥७५॥

हे देव ! आप निश्चय ही सम्पूर्ण जगत् के स्वामी साक्षात् परमात्मा हैं । इसमें सन्देह नहीं । हमारे पूर्वजन्म के किये गये पुण्य-समूह के परिपाक से आज आप से मेरा संयोग हुआ है ॥७६॥ हे नाथ ! महात्मा लोग संसार

त्वां भजन्ति महात्मानः संसारविनिवृत्तये ।
त्वां प्राप्य मोक्षसचिवं प्रार्थयेऽहं कथं भवम् ॥७७॥

दाराः पुत्रा धनं राज्यं सर्वं त्वन्मायया कृतम् ।
अतोऽहं देवदेवेश ! नाकाङ्क्षेऽन्यत् प्रसीद मे ॥७८॥

आनन्दानुभवं त्वाद्य प्राप्तोऽहं भाग्यगौरवात् ।
मृदर्थं यतमानेन निधानमिव सत्पते ! ॥७९॥

अनाद्यविद्यासंसिद्धं बन्धनं छिन्नमद्य नः ।
यज्ञ - दान - तपःकर्म-पूर्तेष्टादिभिरप्यसौ ॥८०॥

न जीर्यते पुनर्दार्ढ्यं भजते संसृतिः प्रभो ! ।
त्वत्पाददर्शनात् सद्यो नाशमेति न संशयः ॥८१॥

क्षणार्धमपि यच्चित्तं त्वयि तिष्ठत्यचञ्चलम् ।
तस्याज्ञानमनर्थानां मूलं नश्यति तत्क्षणात् ॥८२॥

---

के बन्धन की निवृत्ति के लिए आप का भजन करते हैं। फिर मैं आप जैसे मोक्षदायक प्रभु को पाकर किस प्रकार सांसारिक पदार्थों ( पुत्र, दार, धन ) की कामना करूँ ।।७७।।

हे देवदेवेश ! स्त्री, पुत्र, धन एवं राज्य यह सब तो आप के माया के कार्य हैं। इसलिए मुझे आप के अतिरिक्त अन्य किसी भी पदार्थ की कामना नहीं है। आप मुझ पर कृपा करें ।।७८।। हे सत्पते ! मिट्टी के लिए जमीन खोजने वाले के हाथ जिस प्रकार भाग्य से खजाना हाथ लग जाय उसी प्रकार मेरे बड़े भाग्य से आनन्द स्वरूप आप का दर्शन मुझे प्राप्त हुआ है ।।७९।। आज अनादि अविद्या के द्वारा प्राप्त हुआ यह संसार का बन्धन कट गया। जो यज्ञ, दान, तप, उपासना तथा इष्टापूर्त आदि कर्मों से भी नहीं टूटता। बल्कि दृढ़ ही होता जाता है। आज वह बन्धन आप के दर्शन मात्र से नष्ट हो गया ।।८०-८१।।

हे राम ! जिसका चित्त आधे क्षण के लिए भी आप में स्थिर हो जाता है, उसके समस्त अनर्थों के मूल अज्ञान का विनाश हो जाता है ।।८२।।

तन्निष्ठतु मनो राम ! त्वयि नान्यत्र मे सदा ॥८३॥

रामरामेति यद्वाणी मधुरं गायति क्षणम् ।
स ब्रह्महा सुरापो वा मुच्यते सर्वपातकैः ॥८४॥

न काङ्क्षे विजयं राम ! न च दारसुखादिकम् ।
भक्तिमेव सदाकाङ्क्षे त्वयि बन्धविमोचनीम् ॥८५॥

त्वन्मायाकृत-संसारस्त्वदंशोऽहं रघूत्तम ! ।
स्वपादभक्तिमादिश्य त्राहि मां भवसङ्कटात् ॥८६॥

पूर्वं मित्रार्युदासीनास्त्वन्मायाऽऽवृतचेतसः ।
आसन्मेऽद्य भवत्पाददर्शनादेव राघव ! ॥८७॥

सर्वं ब्रह्मैव मे भाति क्व मित्रं क्व च मे रिपुः ।
यावत्त्वन्मायया बद्धस्तावद्गुणविशेषता ॥८८॥

---

इसलिए हे प्रभो ! मेरा चित्त आप में ही लगा रहे । आप को छोड़कर अन्यत्र न जाय ॥८३॥ जिसकी वाणी एक क्षण के लिए भी 'राम राम' इस शब्द का गान करती है, चाहे वह ब्रह्महत्यारा हो अथवा मद्यप हो । वह एक ही क्षण में सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥८४॥

हे राम ! अब मुझे विजय की आकांक्षा नहीं है, और न स्त्री की, किं बहुना अब मैं सुख आदि कुछ भी नहीं चाहता किन्तु संसार के बन्धन से मुक्त करने वाली तुममें केवल भक्ति चाहता हूँ ॥८५॥ हे रघूत्तम ! यह सारा संसार तुम्हारी माया से निर्मित है और मैं भी आप का अंश हूँ । अतः अपने चरण-कमलों में भक्ति प्रदान कर संसार के घोर सकट से मेरी रक्षा कीजिए ॥८६॥ पूर्व में जब मुझे आप के दर्शन नहीं हुए थे । तब माया से आवृत्त रहने के कारण मुझे शत्रु, मित्र और उदासीन आदि भेद ज्ञात होते थे, किन्तु हे राघव ! आपके चरण-कमलों के दर्शन होते ही ॥ ८७ ॥ मुझे सभी ब्रह्ममय दिखाई पड़ते हैं । अब मित्र एवं शत्रु का भेद कहाँ ? हे प्रभो । जब तक जीव आपकी माया में बँधा है तभी तक सत्त्व, रज एवं तमोगुण की विशेषता से भेद ज्ञात होता है ॥ ८८ ॥

सा यावदस्ति नानात्वं तावद् भवति नान्यथा ।
यावन्नानात्वमज्ञानात् तावत्कालकृतं भयम् ॥८९॥

अतोऽविद्यामुपास्ते यः सोऽन्धे तमसि मज्जति ।
मायामूलमिदं सर्वं पुत्रदारादिबन्धनम् ।
तदुत्सारय मायां त्वं दासीं तव रघूत्तम ! ॥९०॥

त्वत्पादपद्मार्पित-चित्तवृत्तिस्त्वन्नाम-सङ्गीतकथासु वाणी ।
त्वद्भक्तसेवानिरतौ करौ मे त्वदङ्गसङ्गं लभतां मदङ्गम् ॥९१॥

त्वन्मूर्तिभक्तान् स्वगुरुं च चक्षुः
पश्यन्त्वजस्रं स शृणोतु कर्णः ।
त्वज्जन्मकर्माणि च पादयुग्मं
व्रजत्वजस्रं तव मन्दिराणि ॥९२॥

---

मनुष्य के ऊपर जब तक माया का प्रभाव रहता है तब तक सृष्टि में भेद ज्ञान होता है, अन्यथा माया के हट जाने पर सब ब्रह्ममय ही भासित होता है। इसलिए जब तक भेदभाव है तब तक अज्ञान है और जब तक अज्ञान है तब तक मृत्यु का भय भी बना हुआ है ।।८९।। इसलिए जो अविद्या की उपासना करता है वह घोर अन्धकार में जाता है। पुत्र,दारादि का बन्धन ही इस माया का मूल है। इसलिए हे रघुनन्दन ! अपनी दासी के समान इस माया को मुझसे दूर कीजिए ।।९०।।

हे नाथ ! मेरी चित्तवृत्ति आपके चरण-कमलों में लगी रहे। और मेरी वाणी तुम्हारे नाम संकीर्त्तन में, संगीत में एवं तुम्हारी कथा में लगी रहे। मेरे हाथ आपके भक्तों की सेवा में, और शरीर आपके अङ्गों की सेवा करता रहे ।।९१।। मेरे नेत्र आपकी मूर्ति, आपके भक्त एवं अपने गुरु के दर्शन में संलग्न रहें और कान आपके जन्म-कर्म स्वरूप अवतारों के चरित्र सुनने के लिए उत्सुक रहें तथा मेरे दोनों पैर सर्वदा आपके मन्दिरों की यात्रा करते रहें ।।९२।।

अङ्गानि ते पादरजोविमिश्र-
तीर्थानि बिभर्त्वहिशत्रुकेतो !।
शिरस्त्वदीयं भवपद्मजाद्यै-
र्जुष्टं पदं राम नमत्वजस्रम् ॥९३॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
किष्किन्धाकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥१॥

*

## २. द्वितीयः सर्गः

( बाली का वध एवं उससे भगवान् का वार्त्तालाप )

श्रीमहादेव उवाच

इत्थं स्वात्म-परिष्वङ्ग-निर्धूताशेष-कल्मषम् ।
रामः सुग्रीवमालोक्य सस्मितं वाक्यमब्रवीत् ॥१॥

मायां मोहकरीं तस्मिन् वितन्वन् कार्यसिद्धये ।
सखे ! त्वदुक्तं यत्तन्मां सत्यमेव न संशयः ॥२॥

---

हे गरुड़ध्वज ! मेरा शरीर तुम्हारे चरणों के रज से मिश्रित तीर्थोदक को धारण करता रहे। और मेरा चित्त सर्वदा आपके चरणों में प्रणाम किया करे, जिन चरणों की उपासना शंकर एवं ब्रह्मादिक देवता किया करते हैं ॥९३॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या सहित अध्यात्म-रामायण के उमा-महेश्वर-संवाद में किष्किन्धाकाण्ड का प्रथम सर्ग समाप्त ॥१॥

*

श्री महादेवजी ने कहा—हे पार्वति ! इस प्रकार श्रीराम के अङ्ग के स्पर्श से जिसका सम्पूर्ण पाप नष्ट हो चुका है, उस सुग्रीव की ओर देखते हुए श्रीराम ने मन्द-स्मित से कहा—॥१॥ उस समय उन्होंने अपना कार्य सिद्ध करने के लिए उस पर माया का आवरण डाल दिया। फिर कहने लगे—हे मित्र ! जैसा तुमने कहा है वह सभी बात सत्य है। इसमें सन्देह नहीं ॥२॥

किन्तु लोका वदिष्यन्ति मामेवं रघुनन्दनः।
कृतवान् किं कपीन्द्राय सख्यं कृत्वाऽग्निसाक्षिकम् ॥३॥
इति लोकापवादो मे भविष्यति न संशयः।
तस्मादाह्वय भद्रं ते गत्वा युद्धाय वालिनम् ॥४॥
बाणेनैकेन तं हत्वा राज्ये त्वामभिषेचये।
तथेति गत्वा सुग्रीवः किष्किन्धोपवनं द्रुतम् ॥५॥
कृत्वा शब्दं महानादं तमाह्वयत वालिनम्।
तच्छ्रुत्वा भ्रातृनिनदं रोषताम्रविलोचनः ॥६॥
निर्जगाम गृहाच्छीघ्रं सुग्रीवो यत्र वानरः।
तमापतन्तं सुग्रीवः शीघ्रं वक्षस्यताडयत् ॥७॥
सुग्रीवमपि मुष्टिभ्यां जघान क्रोधमूर्च्छितः।
वाली तमपि सुग्रीव एवं क्रुद्धौ परस्परम् ॥८॥
अयुद्ध्येतामेकरूपौ दृष्ट्वा रामोऽतिविस्मितः।
न मुमोच तदा बाणं सुग्रीव-वधशङ्कया ॥९॥

---

किन्तु लोग मुझे यही कहेंगे कि रघुनन्दन राम ने सुग्रीव से अग्नि की साक्षी देकर मित्रता तो किया, पर उसका उपकार क्या किया ? ॥३॥

हे मित्र ! इस प्रकार का मेरा अपवाद संसार में होने लगेगा। इसलिए तुम वाली के पास जाकर उसे युद्ध के लिए ललकारो, तुम्हारा कल्याण हो ॥४॥ मैं एक ही बाण से उस वाली का वध कर तुम्हें राज्य पर अभिषिक्त करूँगा। सुग्रीव भी 'तथास्तु' कहकर किष्किन्धा के समीप वाले उपवन में गये ॥५॥ पुनः उन्होंने महाघोर शब्द से गरजकर वाली को युद्ध के लिए ललकारा। अपने भाई सुग्रीव की गर्जना को सुनकर वाली के नेत्र लाल हो गये ॥६॥ वह घर से शीघ्र ही निकल कर सुग्रीव के पास आया। उसे आते हुए देखकर सुग्रीव ने बड़ी शीघ्रता से उसके छाती पर घूँसे का प्रहार किया ॥७॥ वाली ने भी सुग्रीव को घूँसे से मारा। इस प्रकार दोनों एक दूसरे से लड़ने लगे ॥८॥ उन दोनों का समान रूप देखकर श्रीरामचन्द्रजी को बड़ा विस्मय हुआ। एक रूप होने के कारण कहीं ऐसा न हो कि सुग्रीव का ही वध हो जाय। इस शंका से उन्होंने बाण नहीं चलाये ॥९॥

ततो दुद्राव सुग्रीवो वमन् रक्तं भयाकुलः ।
वाली स्वभवनं यातः सुग्रीवो राममब्रवीत् ॥१०॥

किं मां घातयसे राम ! शत्रुणा भ्रातृरूपिणा ।
यदि मद्धनने वाञ्छा त्वमेव जहि मां विभो ! ॥११॥

एवं मे प्रत्ययं कृत्वा सत्यवादिन् रघूत्तम ! ।
उपेक्षसे किमर्थं मां शरणागतवत्सल ! ॥१२॥

श्रुत्वा सुग्रीववचनं रामः साश्रुविलोचनः ।
आलिङ्ग्य मां स्म भैषीस्त्वं दृष्ट्वा वामेकरूपिणौ ॥१३॥

मित्रघातित्वमाशङ्क्य मुक्तवान् सायकं न हि ।
इदानीमेव ते चिह्नं करिष्ये भ्रमशान्तये ॥१४॥
गत्वाऽऽह्वय पुनः शत्रुं हतं द्रक्ष्यसि वालिनम् ।
रामोऽहं त्वां शपे भ्रातर्हनिष्यामि रिपुं क्षणात् ॥१५॥

---

अन्त में सुग्रीव भयभीत होकर रक्त का वमन करता हुआ भागा। तब वाली अपने घर चला गया। इधर सुग्रीव राम के पास आकर कहने लगा ॥१०॥
हे राम ! भाईरूपी इस शत्रु वाली से आप मेरा वध क्यों करा रहे हैं, हे प्रभो ! यदि आपकी इच्छा मुझे मार डालने की ही हो तो आप स्वयं मेरा वध कर डालिए ॥११॥ हे रघूत्तम ! आप सत्यप्रतिज्ञ एवं शरणागत-वत्सल हो, फिर मुझे विश्वास देकर मेरी इस प्रकार उपेक्षा क्यों कर रहे हो ? ॥१२॥

सुग्रीव की इस बात को सुनकर श्रीराम के नेत्रों में आँसू भर आये, उन्होंने सुग्रीव को हृदय से लगा लिया और कहा—भाई ! तुम मत डरो। तुम दोनों का एक समान रूप देखकर ॥१३॥ कहीं ऐसा न हो कि मित्र का ही वध हो जाय, इस आशङ्का से मैंने बाण नहीं चलाया। अब मैं अपने उस भ्रम को दूर करने के लिए तुम्हारे शरीर में कोई चिह्न करूँगा ॥१४॥ फिर जाकर अपने शत्रु को ललकारो। अब तुम वाली को मरा हुआ देखोगे। भाई ! मैं राम हूँ, तुम्हारा शपथ खाकर कहता हूँ कि मैं क्षणभर में तुम्हारे शत्रु का वध कर डालूँगा ॥१५॥

इत्याश्वास्य स सुग्रीवं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।
सुग्रीवस्य गले पुष्पमालामामुच्य पुष्पिताम् ॥१६॥

प्रेषयस्व महाभाग ! सुग्रीवं वालिनं प्रति ।
लक्ष्मणस्तु तदा बद्ध्वा गच्छ गच्छेति सादरम् ॥१७॥

प्रेषयामास सुग्रीवं सोऽपि गत्वा तथाऽकरोत् ।
पुनरप्यद्भुतं शब्दं कृत्वा वालिनमाह्वयत् ॥१८॥

तच्छ्रुत्वा विस्मितो वाली क्रोधेन महतावृतः ।
बद्ध्वा परिकरं सम्यग् गमनायोपचक्रमे ॥१९॥

गच्छन्तं वालिनं तारा गृहीत्वा निषिषेध तम् ।
न गन्तव्यं त्वयेदानीं शङ्का मेऽतीव जायते ॥२०॥

इदानीमेव ते भग्नः पुनरायाति सत्वरः ।
सहायो बलवांस्तस्य कश्चिन्नूनं समागतः ॥२१॥

सुग्रीव को इस प्रकार सान्त्वना देकर भगवान् राम ने लक्ष्मण से कहा—लक्ष्मण ! तुम किसी फूले हुए फूल की माला सुग्रीव के गले में पहना दो ॥१६॥ इस महाभाग्यवान् सुग्रीव को वाली से युद्ध करने के लिए भेजो । लक्ष्मणजी ने भी उसके गले में माला पहनाकर बड़े आदर से कहा—'जाओ, जाओ युद्ध करो' ॥१७॥ ऐसा कहकर उसे युद्ध के लिए भेज दिया । सुग्रीव भी युद्ध के लिए चल पड़े । और विचित्र शब्द करते हुए वाली को युद्ध के लिए ललकारा ॥१८॥ सुग्रीव के ललकार को सुनकर वाली आश्चर्य और क्रोध से तमतमा उठा । और अच्छी तरह कमर कस कर युद्ध के लिए उद्यत हो ज्यों ही चलने लगा ॥१९॥ उसी समय तारा ने उसका हाथ पकड़कर युद्ध में जाने से उसे रोका । और कहने लगी —अब इस समय आप युद्ध के लिए मत जाइए । मेरे हृदय में शङ्का उत्पन्न हो गयी है ॥२०॥ अभी-अभी वह आप से मार खाकर भागा था किन्तु शीघ्र ही फिर लड़ने के लिए लौट आया । मालूम होता है कि कोई बलवान् निश्चित रूप से उनकी सहायता के लिए आया हुआ है ॥२१॥

वाली तामाह हे सुभ्रु ! शङ्का ते व्येतु तद्गता ।
प्रिये ! करं परित्यज्य गच्छ गच्छामि तं रिपुम् ॥२२॥
हत्वा शीघ्रं समायास्ये सहायस्तस्य को भवेत् ? ।
सहायो यदि सुग्रीवस्ततो हत्वोभयं क्षणात् ॥२३॥
आयास्ये मा शुचः शूरः कथं तिष्ठेद् गृहे रिपुम् ? ।
ज्ञात्वाऽप्याह्वयमानं हि हत्वा यास्यामि सुन्दरि ! ॥२४॥

तारोवाच

मत्तोऽन्यच्छृणु राजेन्द्र ! श्रुत्वा कुरु यथोचितम् ।
आह मामङ्गदः पुत्रो मृगयायां श्रुतं वचः ॥२५॥
अयोध्याधिपतिः श्रीमान् रामो दाशरथिः किल ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया भार्यया सह ॥२६॥
आगतो दण्डकारण्यं तत्र सीता हृता किल ।
रावणेन सह भ्रात्रा मार्गमाणोऽथ जानकीम् ॥२७॥

---

तब वाली ने कहा—हे सुभ्रू ! सुग्रीव के विषय में तुम कोई शङ्का मत करो, उसे दूर करो। प्रिये ! तुम मेरा हाथ छोड़कर घर जाओ। मैं अपने शत्रु को ॥२२। मारकर शीघ्र ही लौट आऊँगा। उसकी सहायता करने वाला कौन है ? यदि कोई होगा भी तो सुग्रीव समेत उसके सहायक का क्षणभर में वध कर ॥२३॥ शीघ्र ही घर आ जाऊँगा। तुम शोक मत करो। मैं शूर हूँ, शत्रु के ललकार को जान घर किस प्रकार रह सकता हूँ। अब मैं उसे मारकर घर लौटूँगा ॥२४॥

तब तारा ने कहा– हे राजेन्द्र ! मुझसे एक और बात सुन लीजिए, आपको जैसा उचित प्रतीत हो वैसा कीजिए। मुझसे पुत्र अङ्गद ने मृगया के समय सुनी हुई एक बात कही थी ॥२५॥

अयोध्यानरेश दशरथ पुत्र श्रीरामचन्द्रजी अपने छोटे भाई लक्ष्मण एवं भार्या सीता के साथ ॥२६॥ दण्डकारण्य में आये हुए हैं। वहाँ उनकी भार्या सीता को रावण चुरा ले गया। छोटे भाई लक्ष्मण के साथ जानकी को ढूँढ़ते हुए ॥२७॥ श्रीराम ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव से मिले हैं। सुग्रीव

आगतो ऋष्यमूकाद्रिं सुग्रीवेण समागतः।
चकार तेन सुग्रीवः सख्यं चाऽनलसाक्षिकम् ॥२८॥

प्रतिज्ञां कृतवान् रामः सुग्रीवाय सलक्ष्मणः।
वालिनं समरे हत्वा राजानं त्वां करोम्यहम् ॥२९॥

इति निश्चित्य तौ यातौ निश्चितं शृणु मद्वचः।
इदानीमेव ते भग्नः कथं पुनरुपागतः ॥३०॥

अतस्त्वं सर्वथा वैरं त्यक्त्वा सुग्रीवमानय।
यौवराज्येऽभिषिञ्चाशु रामं त्वं शरणं व्रज ॥३१॥

पाहि मामङ्गदं राज्यं कुलं च हरिपुङ्गव!।
इत्युक्त्वाऽश्रुमुखी तारा पादयोः प्रणिपत्य तम् ॥३२॥

हस्ताभ्यां चरणौ धृत्वा रुरोद भयविह्वला।
तामालिङ्ग्य तदा वाली सस्नेहमिदमब्रवीत् ॥३३॥

---

ने अग्नि को साक्षी बनाकर उनसे मित्रता कर ली है ॥२८॥ पुनः श्रीराम ने लक्ष्मण के सहित सुग्रीव के लिए यह प्रतिज्ञा की है कि मैं युद्ध में वाली को मारकर उन्हें राजा बना दूँगा ॥२९॥

इसी प्रकार का निश्चय कर वे दोनों ही सुग्रीव के साथ आये हुए हैं। अब मेरी बात सत्य समझो। अन्यथा अभी-अभी युद्ध में हार कर भागा हुआ यह सुग्रीव पुनः कैसे लौटकर आ गया ॥३०॥ इसलिए आप सुग्रीव से वैरभाव छोड़कर उसे यहाँ ले आइए। उसे युवराज पद पर अभिषिक्त कीजिए। और स्वयं राम की शरण ग्रहण कीजिए ॥३१॥

हे वानरश्रेष्ठ! इस प्रकार तुम अङ्गद, मेरी, राज्य और कुल की रक्षा करो। ऐसा कहती हुई तारा अश्रुपूर्ण मुख से वाली के चरणों पर गिर पड़ी ॥३२॥ और हाथ से उसके चरण पकड़कर भय से विह्वल हो रोने लगी। फिर वाली ने उसे अपने हृदय से लगा लिया और स्नेहपूर्वक बोला—॥३३॥

स्त्रीस्वभावाद् बिभेषि त्वं प्रिये ! नास्ति भयं मम ।
रामो यदि समायातो लक्ष्मणेन समं प्रभुः ॥३४॥

तदा रामेण मे स्नेहो भविष्यति न संशयः ।
रामो नारायणः साक्षादवतीर्णोऽखिलप्रभुः ॥३५॥
भूभारहरणार्थाय श्रुतं पूर्वं मयाऽनघे ! ।
स्वपक्षः परपक्षो वा नास्ति तस्य परात्मनः ॥३६॥
आनेष्यामि गृहं साध्वि ! नत्वा तच्चरणाम्बुजम् ।
भजतोऽनुभजत्येष भक्तिगम्यः सुरेश्वरः ॥३७॥
यदि स्वयं समायाति सुग्रीवो हन्मि तं क्षणात् ।
यदुक्तं यौवराज्याय सुग्रीवस्याऽभिषेचनम् ॥३८॥
कथमाहूयमानोऽहं युद्धाय रिपुणा प्रिये ! ।
शूरोऽहं सर्वलोकानां सम्मतः शुभलक्षणे ! ॥३९॥

---

हे प्रिये ! तुम स्त्री होने के कारण डर रही हो किन्तु मुझे कोई भय नहीं है। यदि प्रभु राम लक्ष्मण के सहित यहाँ आये हैं ॥३४॥ तो इसमें सन्देह नहीं कि राम से मेरा प्रेम हो जायेगा। मैं जानता हूँ कि राम साक्षात् नारायण हैं, और वे प्रभु ॥३५॥ सर्वेश्वर होकर समस्त पृथ्वी का भार उतारने के लिए अवतार लिये हैं, यह बात मैंने बहुत पहले से सुन रखी है। अतः हे अनघे ! उन नारायण के लिए कोई अपना या पराया पक्ष नहीं है ॥३६॥

हे साध्वि ! मैं उनके चरण-कमलों में प्रणाम कर अपने घर ले आऊँगा। वे सुरेश्वर हैं और भक्ति से प्राप्त होते हैं। और भजन करने वाले अपने भक्त का वे भी भजन करते हैं ॥३७॥ यदि सुग्रीव अकेला ही युद्ध करने के लिए आया है, तो तुरन्त उसको एक क्षण में मार डालूँगा। और हे प्रिये ! जो तुम कहती हो कि सुग्रीव को युवराज बना दीजिए ॥३८॥ तो हे प्रिये ! शत्रु के द्वारा युद्ध के लिए ललकारे जाने पर मेरे-जैसा शूर-बीर, जो सभी लोकों में माननीय है ऐसी भय युक्त बात अपने शत्रु से किस

भीतभीतमिदं वाक्यं कथं वाली वदेत् प्रिये ! ।
तस्माच्छोकं परित्यज्य तिष्ठ सुन्दरि ! वेश्मनि ॥४०॥
एवमाश्वास्य तारां तां शोचन्तीमश्रुलोचनाम् ।
गतो वाली समुद्युक्तः सुग्रीवस्य वधाय सः ॥४१॥
दृष्ट्वा वालिनमायान्तं सुग्रीवो भीमविक्रमः ।
उत्पपात गले बद्धपुष्पमालः मतङ्गवत् ॥४२॥
मुष्टिभ्यां ताडयामास वालिनं सोऽपि तं तथा ।
अहन् वाली च सुग्रीवं सुग्रीवो वालिनं तथा ॥४३॥
रामं विलोकयन्नेव सुग्रीवो युयुधे युधि ।
इत्येवं युद्ध्यमानौ तौ दृष्ट्वा रामः प्रतापवान् ॥४४॥
बाणमादाय तूणीरादैन्द्रे धनुषि सन्दधे ।
आकृष्य कर्णपर्यन्तमदृश्यो वृक्षखण्डगः ॥४५॥
निरीक्ष्य वालिनं सम्यग् लक्ष्यं तद्धृदयं हरिः ।
उत्ससर्जाशनिसमं महावेगं महाबलः ॥४६॥

---

प्रकार कह सकता है । इसलिए हे शुभ लक्षणे ! हे सुन्दरि ! तुम शोक छोड़ कर घर लौट जाओ ॥३९-४०॥

इस प्रकार शोक करती हुई रोती तारा को धीरज देकर वाली सुग्रीव को मारने की तैयारी से चला ॥४१॥

इधर महापराक्रमी सुग्रीव ने वाली को आता हुआ देखकर गले में पुष्प-माला पहने हुए हाथी के समान वेग से दौड़ा ॥४२॥ उसने वाली को घूँसे से मारा, तथा वाली ने भी उसे घूँसे से मारा। इस प्रकार कभी वाली सुग्रीव को और कभी सुग्रीव वाली को घूँसे से मारता था । ४३॥ सुग्रीव भी राम की ओर देखता हुआ ही युद्ध करता था । इस प्रकार दोनों को युद्ध करते देख परम प्रतापी श्री रामजी ने ॥४४॥ अपने तरकस से बाण निकाल कर अपने इन्द्र धनुष पर चढ़ाया । और वृक्ष की आड़ में छिप कर कान तक धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ा कर ॥४५॥ वाली की ओर देख उसे ही अपने बाणों का लक्ष्य बना कर वज्र के समान महावेगवान् अपने बाण से उसके हृदय में मारा । वह बाण वाली के हृदय को विदीर्ण कर दिया ॥४६॥

विभेद स शरो वक्षो वालिनः कम्पयन् महीम् ।
उत्पपात महाशब्दं मुञ्चन् स निपपात ह ॥४७॥
तदा मुहूर्त्तं निःसंज्ञो भूत्वा चेतनमाप सः ।
ततो वाली ददर्शाग्रे रामं राजीवलोचनम् ।
धनुरालम्ब्य वामेन हस्तेनान्येन सायकम् ॥४८॥
बिभ्राणं चीरवसनं जटामुकुटधारिणम् ।
विशालवक्षसं भ्राजद् वनमालाविभूषितम् ॥४९॥
पीनचार्वायतभुजं नवदूर्वादलच्छविम् ।
सुग्रीवलक्ष्मणाभ्यां च पार्श्वयोः परिसेवितम् ॥५०॥
विलोक्य शनकैः प्राह वाली रामं विगर्हयन् ।
किं मयाऽपकृतं राम ! तव येन हतोऽस्म्यहम् ॥५१॥
राजधर्ममविज्ञाय गर्हितं कर्म ते कृतम् ।
वृक्षखण्डे तिरो भूत्वा त्यजता मयि सायकम् ॥५२॥

---

तत्पश्चात् वाली महान् शब्द करता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा । जिससे पृथ्वी भी काँपने लगी ॥४७॥ पुनः एक क्षण मूर्च्छित होने के बाद उसे चेतना हुई । उसने अपने आगे राजीव लोचन राम को खड़े देखा । जो बायें हाथ से धनुष का सहारा लिये हुए थे और दाहिने हाथ में बाण लिये हुए थे ॥४८॥ वल्कल वस्त्र और जटा का मुकुट धारण किये हुए थे । उनका विशाल वक्षःस्थल मनोहर वनमाला से विभूषित था ॥४९॥ उनकी भुजाएँ लम्बी एवं मोटी थीं । उनके शरीर से नवीन दूर्वादल के समान आभा निकल रही थी । बगल में खड़े सुग्रीव एवं लक्ष्मण उनकी सेवा कर रहे थे ॥५०॥

इस प्रकार अपने सामने राम को खड़े देख कर वाली उनका तिरस्कार करते हुए धीरे-धीरे कहने लगा—हे राम ! मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था, जो तुम्हारे द्वारा इस प्रकार मारा गया ॥५१॥ ऐसा ज्ञात होता है कि तुम राजधर्म नहीं जानते । जिससे तुमने इतना निन्दनीय कर्म किया है । भला तुम्हीं बताओ कि वृक्ष की आड़ में छिप कर मुझ पर बाण छोड़ते हुए ॥५२॥

यशः किं लप्स्यसे राम ! चोरवत् कृतसङ्गरः ।
यदि क्षत्रियदायादो मनोर्वंशसमुद्भवः ॥५३॥

युद्धं कृत्वा समक्षं मे प्राप्स्यसे तत्फलं तदा ।
सुग्रीवेण कृतं किं ते मया वा न कृतं किमु ? ॥५४॥

रावणेन हृता भार्या तव राम ! महावने ।
सुग्रीवं शरणं यातस्तदर्थमिति शुश्रुम ॥५५॥

बत राम ! न जानीषे मद्बलं लोकविश्रुतम् ।
रावणं सकुलं बद्ध्वा स-सीतं लङ्कया सह ॥५६॥

आनयामि मुहूर्त्तार्द्धाद् यदि चेच्छामि राघव ! ।
धर्मिष्ठ इति लोकेऽस्मिन् कथ्यसे रघुनन्दन ! ॥५७॥

वानरं व्याधवद्धत्वा धर्मं कं लप्स्यसे वद ।
अभक्ष्यं वानरं मांसं हत्वा मां किं करिष्यसि ? ॥५८॥

---

तुम्हें कौन सा यश प्राप्त होगा ? जो तुमने यह युद्ध चोर के समान किया है। भला क्षत्रिय के लड़के होकर इसमें भी मनु के कुल में उत्पन्न होकर ॥५३॥ तुम मेरे सामने खड़े होकर युद्ध करते तो तुम्हें उसका फल भी प्राप्त होता। सुग्रीव ने आप का कौन सा उपकार किया और मैंने आप का क्या बिगाड़ किया था ॥५४॥

मैंने यही सुना है कि दण्डकारण्य जैसे महावन में जब आप निवास कर रहे थे, तो रावण ने आपकी भार्या चुरा ली। इसीलिए आपने अपनी भार्या को प्राप्त करने के लिए सुग्रीव की शरण ली है ॥ ५५ ॥ किन्तु हे राम ! मुझे खेद है कि आप मेरा विश्व-विश्रुत बल नहीं जानते। हे राघव ! यदि मैं चाहूँ तो आधे मुहूर्त्त मात्र में ॥५६। कुल सहित रावण को बाँध कर सीता सहित लङ्का को ले आऊँ। हे रघुनन्दन ! आप तो इस लोक में परम धर्मिष्ठ कहे जाते हो ॥५७॥ फिर बताओ, व्याध के समान मुझे छिप कर मारने से तुम्हें कौन-सा धर्म होगा। मेरा मांस तो अभक्ष्य है, अतः मुझे मार कर आप का कौन सा प्रयोजन सिद्ध होगा ॥५८॥

इत्येवं बहु भाषन्तं वालिनं राघवोऽब्रवीत् ।
धर्मस्य गोप्ता लोकेऽस्मिंश्चरामि सशरासनः ॥५९॥
अधर्मकारिणं हत्वा सद्धर्मं पालयाम्यहम् ।
दुहिता भगिनी भ्रातुर्भार्या चैव तथा स्नुषा ॥६०॥
समा यो रमते तासामेकामपि विमूढधीः ।
पातकी स तु विज्ञेयः स वध्यो राजभिः सदा ॥६१॥
त्वं तु भ्रातुः कनिष्ठस्य भार्यायां रमसे बलात् ।
अतो मया धर्मविदा हतोऽसि वनगोचर ! ॥६२॥
त्वं कपित्वान्न जानीषे महान्तो विचरन्ति यत् ।
लोकं पुनानाः सञ्चारैरतस्तान्नातिभाषयेत् ॥६३॥
तच्छ्रुत्वा भयसन्त्रस्तो ज्ञात्वा रामं रमापतिम् ।
वाली प्रणम्य रभसाद्रामं वचनमब्रवीत् ॥६४॥

---

वाली के इस प्रकार बहुत सी असम्बद्ध बातें कहने के उपरान्त श्रीरामजी ने उससे कहा–मैं धर्म की रक्षा के लिए ही इस लोक में धनुष-बाण धारण कर विचरण कर रहा हूँ ॥५९। मैं अधर्म करने वाले को मार कर सद्धर्म का पालन करता हूँ। कन्या, बहन, छोटे भाई की स्त्री और पुत्रवधू ये ।।६०। चारों समान हैं। जो मूर्ख इनमें से एक के साथ भी रमण करता है वह महापापी है। और राजाओं से वध के योग्य है ॥६१॥

हे वनगोचर! तुम तो अपने छोटे भाई की स्त्री से बलात्कार पूर्वक रमण करते हो। इसलिए मेरे जैसे धर्मज्ञ ने तुम्हारा वध किया ॥६२॥ तुम तो वानर ही हो इसलिए यह नहीं जानते कि महात्मा लोग अपने सदाचार से लोगों को पवित्र करते हुए इस पृथ्वी पर विचरण किया करते हैं। उनसे बहुत बढ़-बढ़कर बातें नहीं करनी चाहिए ॥६३॥ इस बात को सुनते ही वाली उन्हें साक्षात् लक्ष्मीपति नारायण जानकर भयभीत हो उठा। और शीघ्रता से प्रणाम कर कहने लगा ॥६४॥

राम राम ! महाभाग ! जाने त्वां परमेश्वरम् ।
अजानता मया किञ्चिदुक्तं तत् क्षन्तुमर्हसि ॥६५॥

साक्षात्त्वच्छरघातेन विशेषेण तवाग्रतः ।
त्यजाम्यसून् महायोगिदुर्लभं तव दर्शनम् ॥६६॥

यन्नाम विवशो गृह्णन् म्रियमाणः परं पदम् ।
याति साक्षात् स एवाद्य मुमूर्षोर्मे पुरः स्थितः ॥६७॥

देव ! जानामि पुरुषं त्वां श्रियं जानकीं शुभाम् ।
रावणस्य वधार्थाय जातं त्वां ब्रह्मणार्थितम् ॥६८॥

अनुजानीहि मां राम ! यान्तं तत्पदमुत्तमम् ।
मम तुल्यबले बाले अङ्गदे त्वं दयां कुरु ॥६९॥

विशल्यं कुरु मे राम ! हृदयं पाणिना स्पृशन् ।
तथेति बाणमुद्धृत्य रामः पस्पर्श पाणिना ।
त्यक्त्वा तद्वानरं देहममरेन्द्रोऽभवत् क्षणात् ॥७०॥

---

हे राम ! हे राम ! हे महाभाग ! मैंने जान लिया कि आप साक्षात् परमेश्वर हैं। मैंने आप को न जान कर अज्ञान वश कुछ कह दिया, उसे आप क्षमा करें ॥६५॥ हे प्रभो ! आप का दर्शन तो योगियों के लिए भी दुर्लभ है। फिर मेरा तो परम सौभाग्य है कि मैं आपके बाणों से आहत होकर आप का दर्शन करता हुआ आपके आगे अपना प्राण छोड़ रहा हूँ ॥६६॥ मरने के समय जिसका नाम विवशता से ले लेने पर भी पुरुष परम पद को प्राप्त करता है। वह साक्षात् मेरे सामने इस मृत्यु की घड़ी में विराजमान है ॥६७॥

हे देव ! मैं जानता हूँ कि आप साक्षात् परम पुरुष विष्णु हैं और यह जानकी महालक्ष्मी हैं। आपने ब्रह्मा के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर रावण के वध के लिए अवतार लिया है ॥६८॥ अब मैं ब्रह्मलोक को जा रहा हूँ। हे राम ! मुझे आज्ञा दीजिए, यह मेरा बालक अङ्गद मेरे ही समान बलवान् है, अतः आप इस पर दया-दृष्टि रखें ॥६९॥

हे राम ! मुझे अपने हाथों से स्पर्श करते हुए मेरे हृदय में लगे हुए अपने बाण को निकाल दीजिए। फिर राम ने भी 'तथास्तु' कहकर उसका

वाली रघूत्तमशराभिहतो विमृष्टो
रामेण शीतलकरेण सुखाकरेण ।
सद्यो विमुच्य कपिदेहमनन्यलभ्यं
प्राप्तं परं परमहंसगणैर्दुरापम् ॥७१॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
किष्किन्धाकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥२॥

*

## ३. तृतीयः सर्गः

(तारा का विलाप, श्रीरामचन्द्रजी का उसे समझाना एवं
सुग्रीव का राज्याभिषेक )

श्रीमहादेव उवाच

निहते वालिनि रणे रामेण परमात्मना ।
दुद्रुवुर्वानराः सर्वे किष्किन्धां भयविह्वलाः ॥ १ ॥

---

स्पर्श करते हुए बाण को निकाल दिया। फिर वह वाली क्षणभर में अपना वानर शरीर छोड़कर इन्द्र स्वरूप हो गया ॥७०॥

वाली राम के द्वारा उनके बाणों से मारा गया। और उनके सुखकारक परम शीतल करारविन्द का स्पर्श भी प्राप्त किया। इसलिए वानर-शरीर छोड़ कर उस गति को प्राप्त किया, जो दूसरों के लिए सर्वथा दुर्लभ है। बहुत क्या, बड़े-बड़े परम हंसों को भी ऐसी गति प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है ॥७१॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या सहित अध्यात्मरामायण के उमा-महेश्वर संवाद में किष्किन्धाकाण्ड का द्वितीय सर्ग समाप्त ॥२॥

*

श्री महादेवजी ने कहा–हे पार्वति ! परमात्मा राम के द्वारा जब वाली इस प्रकार मारा गया तब सभी वानर भयभीत होकर किष्किन्धा की ओर भागे ॥१॥ और तारा से बोले–हे महाभागे ! वाली युद्ध में मार डाले

ताराम्रूचुर्महाभागे हतो वाली रणाजिरे ।
अङ्गदं परिरक्षाऽद्य मन्त्रिणः परिनोदय ॥ २ ॥
चतुर्द्वारकपाटादीन् बद्ध्वा रक्षामहे पुरीम् ।
वानराणां तु राजानमङ्गदं कुरु भामिनि ! ॥ ३ ॥
निहतं वालिनं श्रुत्वा तारा शोकविमूर्च्छिता ।
अताडयत् स्वपाणिभ्यां शिरो वक्षश्च भूरिशः ॥ ४ ॥
किमङ्गदेन राज्येन नगरेण धनेन वा ? ।
इदानीमेव निधनं यास्यामि पतिना सह ॥ ५ ॥
इत्युक्त्वा त्वरिता तत्र रुदती मुक्तमूर्धजा ।
ययौ तारातिशोकार्ता यत्र भर्तृकलेवरम् ॥ ६ ॥
पतितं वालिनं दृष्ट्वा रक्तैः पांसुभिरावृतम् ।
रुदती नाथनाथेति पतिता तस्य पादयोः ॥ ७ ॥
करुणं विलपन्ती सा ददर्श रघुनन्दनम् ।
राम ! मां जहि बाणेन येन वाली हतस्त्वया ॥ ८ ॥

---

गये । अब अङ्गद की रक्षा कीजिए तथा मन्त्रियों को सावधान कीजिए ॥२॥

हे भामिनि ! हम लोग चारों दरवाजे के किवाड़ों को बन्द कर नगर की रक्षा कर रहे हैं । और तुम अङ्गद को वानरों का राजा बनाओ ॥३॥ वाली के वध का समाचार सुनते ही तारा शोक से मूर्च्छित हो गयी और अपने दोनों हाथों से शिर तथा छाती को बारम्बार पीटने लगी ॥४॥ और कहने लगी—मुझे अङ्गद से, राज्य से, नगर से तथा धन से क्या प्रयोजन है । मैं अभी अपने पति के साथ अपना प्राण त्याग करूंगी ॥५॥ ऐसा कह कर वह तारा शोक से व्याकुल हो अपने बिखरे हुए केशों के साथ वहाँ गयी, जहाँ उसके पति का शरीर पड़ा हुआ था ॥६॥ खून और धूलि से लथपथ वाली को देखते ही हा नाथ ! हा नाथ ! कहती हुई रोने लगी । और उसके पैरों पर गिर पड़ी ॥७॥ इस प्रकार जब वह करुणा से विलाप कर रही थी कि उसकी दृष्टि श्री राम पर पड़ गयी । तब वह कहने लगी—हे राम ! तुम मुझे उसी बाण से मार डालो, जिससे वाली को मारा है ॥८॥ मेरा पति

गच्छामि पतिसालोक्यं पतिर्मामभिकाङ्क्षते ।
स्वर्गेऽपि न सुखं तस्य मां विना रघुनन्दन ! ॥ ९ ॥
पत्नीवियोगजं दुःखमनुभूतं त्वयाऽनघ ! ।
वालिने मां प्रयच्छाशु पत्नीदानफलं भवेत् ॥१०॥

सुग्रीव ! त्वं सुखं राज्यं दापितं वालिघातिना ।
रामेण रुमया सार्धं भुङ्क्ष्व सापत्नवर्जितम् ॥११॥
इत्येवं विलपन्तीं तां तारां रामो महामनाः ।
सान्त्वयामास दयया तत्त्वज्ञानोपदेशतः ॥१२॥

श्रीराम उवाच

किं भीरु ! शोचसि व्यर्थं शोकस्याविषयं पतिम् ।
पतिस्तवायं देहो वा जीवो वा वद तत्त्वतः ॥१३॥

पञ्चात्मको जडो देहस्त्वङ्-मांस-रुधिरास्थिमान् ।
कालकर्मगुणोत्पन्नः सोऽप्यास्तेऽद्यापि ते पुरः ॥१४॥

---

मेरी प्रतीक्षा कर रहा है। इसलिए मैं तुम्हारे बाणों से मारी जाकर पति-लोक जाना चाहती हूँ। हे रघुनन्दन ! मेरे बिना उन्हें स्वर्ग में भी चैन न मिलेगा ॥९॥

हे अनघ ! पत्नी के वियोग का अनुभव तो तुम करते ही हो। इसलिए (जिस प्रकार उसे पत्नी को वियोग न हो ) तुम मुझे वाली के पास पहुँचाओ। तुम्हें पत्नी दान का फल प्राप्त होगा ॥१०॥ हे सुग्रीव ! तुम्हें वाली का वध करने वाले राम ने राज्य दिला दिया है। अतः उस निष्कण्टक राज्य को रुमा के साथ सुखपूर्वक भोगो ॥११॥

इस प्रकार विलाप करती हुई तारा को देख कर महामना राम ने दया पूर्वक तत्त्वज्ञान के उपदेश से, उसे धीरज प्रदान किया ॥१२॥ हे भीरु ! तुम शोक न करने योग्य पति के लिए क्यों शोक करती हो ? अच्छा तुम्हीं विचार कर ठीक-ठीक बताओ कि, तुम्हारा पति कौन है, यह देह है अथवा इसमें रहने वाला जीव ? ॥१३॥ यह शरीर तो पञ्चतत्त्व से बना हुआ है, जड़ है, यह त्वक्, मांस, रुधिर, अस्थि एवं मज्जा से परिपूर्ण है। काल, कर्म

मन्यसे जीवमात्मानं जीवस्तर्हि निरामयः।
न जायते न म्रियते न तिष्ठति न गच्छति ॥१५॥
न स्त्री पुमान् वा षण्ढो वा जीवः सर्वगतोऽव्ययः।
एक एवाद्वितीयोऽयमाकाशवदलेपकः।
नित्यो ज्ञानमयः शुद्धः स कथं शोकमर्हति ॥१६॥

तारोवाच

देहोऽचित्काष्ठवद्राम ! जीवो नित्यश्चिदात्मकः।
सुख-दुःखादि-सम्बन्धः कस्य स्याद्राम ! मे वद ॥१७॥

श्रीराम उवाच

अहङ्कारादिसम्बन्धो यावद् देहेन्द्रियैः सह।
संसारस्तावदेव स्यादात्मनस्त्वविवेकिनः ॥१८॥
मिथ्यारोपितसंसारो न स्वयं विनिवर्तते।
विषयान् ध्यायमानस्य स्वप्ने मिथ्यागमो यथा ॥१९॥

---

और गुण के संयोग से बना हुआ है। जो इस समय भी तुम्हारे आगे पड़ा है ।।१४।।

यदि जीव को अपना पति समझती हो तो उसके लिए तुम्हारा शोक व्यर्थ ही है, वह तो सर्वथा निर्विकार है, वह कभी न तो जन्म लेता है, न मरता है, न चलता है, न स्थित होता है ।।१५।। वह न तो स्त्री है, न तो पुरुष है, और न तो नपुंसक ही है। जीव तो सर्वत्र व्यापक एवं अव्यय है। एक है, अद्वितीय है एवं आकाश के समान निर्लेप है, नित्य है, ज्ञानमय और शुद्ध है, पुनः उसके लिए शोक कैसा ? ।।१६।।

तब तारा ने कहा—हे राम ! यदि शरीर काष्ठ के समान जड़ है और जीव नित्य एवं चेतन है, तो सुख-दुःखादि का सम्बन्ध किससे होता है, आप मुझे बताइए ? ।।१७।

तब श्रीराम ने कहा—जब देह एवं इन्द्रियों के साथ अहङ्कार (अहं, मम) का सम्बन्ध रहता है तब तक जीव को आत्म-अनात्म का ज्ञान न रहने से उसका सम्बन्ध सुख-दुःखादि भोग रूप संसार से बना रहता है ।।१८।। यह संसार इस आत्मा में मिथ्या आरोपित है। और स्वयं यह निवृत्त नहीं होता। जिस प्रकार विषय का ध्यान करने वाले पुरुष को स्वप्न मे

अनाद्यविद्यासम्बन्धात् तत्कार्याहङ्कृतेस्तथा ।
संसारोऽपार्थकोऽपि स्याद्राग-द्वेषादिसङ्कुलः ॥२०॥
मन एव हि संसारो बन्धश्चैव मनः शुभे ! ।
आत्मा मनः समानत्वमेत्य तद्गतबन्धभाक् ॥२१॥
यथा विशुद्धः स्फटिकोऽलक्तकादिसमीपगः ।
तत्तद्वर्णयुगाभाति वस्तुतो नास्ति रञ्जनम् ॥२२॥
बुद्धीन्द्रियादिसामीप्यादात्मनः संसृतिर्बलात् ।
आत्मा स्वलिङ्गं तु मनः परिगृह्य तदुद्भवान् ॥२३॥
कामान् जुषन् गुणैर्बद्धः संसारे वर्ततेऽवशः ।
आदौ मनोगुणान् सृष्ट्वा ततः कर्माण्यनेकधा ॥२४॥
शुक्ल-लोहित-कृष्णानि गतयस्तत्समानतः ।
एवं कर्मवशाज्जीवो भ्रमत्याभूत-सम्प्लवम् ॥२५॥

---

अनेक विषय दिखाई पड़ते हैं किन्तु वे मिथ्या ही है ।१९। अनादि, अविद्या एवं उसके कार्य अहंकार के साथ रहने वाला यह संसार निरर्थक होते हुए भी राग-द्वेष आदि दोषों से परिपूर्ण है ॥२०॥ हे शुभे ! यह मन ही संसार है तथा यह मन ही बन्धन है, आत्मा एवं मन मिल कर जब एक हो जाते हैं तो मन में रहने वाला सुख-दुःख आत्मा में भी भासने लगता है ॥२१॥

जिस प्रकार स्फटिक मणि सर्वथा शुद्ध है, किन्तु समीप में रहने वाले अलक्तक ( महावर ) आदि का प्रतिबिम्ब उसमें पड़ते ही उसी के रंग जैसा प्रतीत होने लगता है। वस्तुतः उसमें वह रंग नहीं होता ॥२२॥ उसी प्रकार बुद्धि एवं इन्द्रिय के समीपस्थ होने के कारण आत्मा में भी बलात् संसार भासने लगता है। आत्मा अपने लिङ्ग ( पहचानने के चिह्न ) को पकड़ कर मन से उत्पन्न हुए विषयों का सेवन करता हुआ राग द्वेषादि गुणों में बँधा हुआ संसार-चक्र में विवश होकर फँस जाता है। पहले वह आत्मा मन के गुणों ( राग-द्वेषादि ) को उत्पन्न करता है, फिर उसी मन के द्वारा शुक्ल ( जप-यज्ञादि ), लोहित ( हिंसा आदि ), कृष्ण ( मद्यपानादि ) आदि विविध प्रकार के कर्मों को कराता है और स्वयं उन कर्मों के अनुसार गति को भी प्राप्त करता है। इस प्रकार यह जीव कर्म के परतन्त्र होकर प्रलय पर्यन्त इस संसार-चक्र में घूमता रहता है ॥२३-२५॥

सर्वोपसंहृतो जीवो वासनाभिः स्वकर्मभिः ।
अनाद्यविद्यावशगस्तिष्ठत्यभिनिवेशतः ॥२६॥

सृष्टिकाले पुनः पूर्ववासनामानसैः सह ।
जायते पुनरप्येवं घटीयन्त्रमिवावशः ॥२७॥

यदा पुण्यविशेषेण लभते सङ्गतिं सताम् ।
मद्भक्तानां सुशान्तानां तदा मद्विषया मतिः ॥२८॥

मत्कथाश्रवणे श्रद्धा दुर्लभा जायते ततः ।
ततः स्वरूपविज्ञानमनायासेन जायते ॥२९॥

तदाचार्यप्रसादेन वाक्यार्थज्ञानतः क्षणात् ।
देहेन्द्रियमनःप्राणाहङ्कृतिभ्यः पृथक्स्थितम् ॥३०॥

स्वात्मानुभवतः सत्यमानन्दात्मानमद्वयम् ।
ज्ञात्वा सद्यो भवेन्मुक्तः सत्यमेव मयोदितम् ॥३१॥

---

प्रलयकाल में सभी भूतों का लय हो जाने पर अनादि अविद्या के वशीभूत हो यह जीव अपनी वासनाओं एवं कर्म के साथ अभिनिवेश (कर्त्तापन, भोक्तापन आदि) से सर्वदा विद्यमान रहता है ॥२६। तथा जब सृष्टि होने लगती है तब यह मन के वासनाओं के साथ विवश होकर घटीयन्त्र के समान पुनः उत्पन्न होता है ॥२७॥ जब उसके विशेष पुण्य का उदय होता है तब यह मेरे भक्त एवं शान्त चित्त महात्माओं की संगति प्राप्त कर अपने चित्त को मुझ में लगाता है ॥२८। और मेरी कथा के श्रवण में उसे श्रद्धा उत्पन्न होती है, जो अत्यन्त दुर्लभ है। मेरी कथा सुनने के उपरान्त उसे अनायास ही मेरे स्वरूप का ज्ञान होने लगता है ॥२९॥ पुनः गुरु की प्रसन्नता तथा 'तत्त्वमसि' आदि वाक्यार्थ के ज्ञान हो जाने पर उसे यह ज्ञान हो जाता है कि आत्मा, देह, इन्द्रिय, मन, प्राण एवं अहङ्कार से सर्वथा भिन्न है ॥३०॥

इस प्रकार अनुभव से सत्य, आनन्द एवं अद्वय आत्मा को जान लेने पर वह क्षण भर में मुक्त हो जाता है ॥३१॥ इस प्रकार मेरे द्वारा कहे गये

एवं मयोदितं सम्यगालोचयति योऽनिशम् ।
तस्य संसारदुःखानि न स्पृशन्ति कदाचन ॥३२॥

त्वमप्येतन्मया प्रोक्तमालोचय विशुद्धधीः ।
न स्पृश्यसे दुःखजालैः कर्मबन्धाद् विमोक्ष्यसे ॥३३॥

पूर्वजन्मनि ते सुभ्रु ! कृता मद्भक्तिरुत्तमा ।
अतस्तव विमोक्षाय रूपं मे दर्शितं शुभे ! ॥३४॥

ध्यात्वा मद्रूपमनिशमालोचय मयोदितम् ।
प्रवाहपतितं कार्यं कुर्वन्त्यपि न लिप्यसे ॥३५॥

श्रीरामेणोदितं सर्वं श्रुत्वा ताराऽतिविस्मिता ।
देहाभिमानजं शोकं त्यक्त्वा नत्वा रघूत्तमम् ॥३६॥

आत्मानुभवसन्तुष्टा जीवन्मुक्ता बभूव ह ।
क्षणसङ्गममात्रेण रामेण परमात्मना ॥३७॥

---

इस तत्त्व ज्ञानोपदेश को जो लोग निरन्तर मनन करते है। उन्हें ससार के दुःख कभी स्पर्श नहीं करते ॥३२॥ इसलिए हे तारे ! तुम भी मेरे द्वारा कहे गये इस तत्त्वोपदेश को शुद्ध-बुद्धि से मनन करो। फिर दुःख-समूह तुम्हें स्पर्श भी न कर सकेंगे और कर्मबन्धन से तुम्हारा छुटकारा भी हो जायेगा ॥३३॥

हे सुभ्रु ! तुमने पूर्वजन्म में मेरी उत्तम भक्ति की थी। इसलिए तुझे मुक्त करने के लिए ही मैंने तुम्हें अपना दर्शन दिया है ॥३४॥ तुम मेरे रूप का ध्यान कर मेरे द्वारा किये गये तत्त्वोपदेश का मनन करो। ऐसा करने से प्रारब्ध के अनुसार कर्म करते रहने पर भी तुम कर्मबन्धन के जाल में नहीं पड़ोगी ॥३५॥

श्रीराम के द्वारा कहे गये तत्त्वोपदेश को सुनकर तारा को महान् आश्चर्य हुआ। उसने उसी समय देहाभिमान जन्य शोक को छोड़कर श्रीरामचन्द्र जी को प्रणाम किया ॥३६॥ तथा आत्मानुभव से सन्तुष्ट होकर वह तत्काल जीवन्मुक्त हो गयी। परमात्मा राम के क्षण भर के

अनादिबन्धं निर्धूय मुक्ता सापि विकल्मषा ।
सुग्रीवोऽपि च तच्छ्रुत्वा रामवक्त्रात् समीरितम् ॥३८॥

जहावज्ञानमखिलं स्वस्थचित्तोऽभवत्तदा ।
ततः सुग्रीवमाहेदं रामो वानरपुङ्गवम् ॥३९॥

भ्रातुर्ज्येष्ठस्य पुत्रेण यद्युक्तं साम्परायिकम् ।
कुरु सर्वं यथान्यायं संस्कारादि ममाज्ञया ॥४०॥

तथेति बलिभिर्मुख्यैर्वानरैः परिगृह्य तम् ।
वालिनं पुष्पके क्षिप्त्वा सर्वराजोपचारकैः ॥४१॥

भेरी-दुन्दुभि-निर्घोषैर्ब्राह्मणैर्मन्त्रिभिः सह ।
यूथपैर्वानरैः पौरैस्तारया चाङ्गदेन च ॥४२॥

गत्वा चकार तत्सर्वं यथाशास्त्रं प्रयत्नतः ।
स्नात्वा जगाम रामस्य समीपं मन्त्रिभिः सह ॥४३॥

---

सङ्कल्प मात्र से अनादि अविद्या के बन्धन को काट कर वह मुक्त हो गयी । सुग्रीव भी राम के मुख से निकले हुए इस तत्त्व ज्ञानोपदेश को सुन कर सम्पूर्ण ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर शान्तचित हो गये । और वानर-श्रेष्ठ सुग्रीव से श्रीरामचन्द्र जी ने कहा—॥३७-३९॥

हे सुग्रीव ! तुम मेरी आज्ञा से अपने जेठे भाई का और्ध्वदेहिक संस्कार उसके बेटे अङ्गद के साथ शास्त्रोक्त रीति से विधिपूर्वक सम्पन्न करो ॥४०। सुग्रीव ने भी 'तथास्तु' कह कर बलवान् वानरों के साथ वाली के शव को पुष्प निर्मित विमान में स्थापित कर ॥४१॥ राजोचित उपचारों से भेरी, दुन्दुभि को बजाते हुए ब्राह्मण, मन्त्रिगण, वानर सेनापति, पुरवासी, तारा एवं अङ्गद के साथ उसे श्मशान में ले जाकर सुग्रीव ने बड़े प्रयत्न से शास्त्रोक्त रीति द्वारा उनका और्ध्वदेहिक संस्कार किया। फिर स्नानादि क्रिया से निवृत्त हो श्री राम के पास गया ॥४२-४३॥

नत्वा रामस्य चरणौ सुग्रीवः प्राह हृष्टधीः ।
राज्यं प्रशाधि राजेन्द्र वानराणां समृद्धिमत् ॥४४॥

दासोऽहं ते पादपद्मं सेवे लक्ष्मणवच्चिरम् ।
इत्युक्तो राघवः प्राह सुग्रीवं सस्मितं वचः ॥४५॥

त्वमेवाहं न सन्देहः शीघ्रं गच्छ ममाज्ञया ।
पुरराज्याधिपत्ये त्वं स्वात्मानमभिषेचय ॥४६॥

नगरं न प्रवेक्ष्यामि चतुर्दश समाः सखे ! ।
आगमिष्यति मे भ्राता लक्ष्मणः पत्तनं तव ॥४७॥

अङ्गदं यौवराज्ये त्वमभिषेचय सादरम् ।
अहं समीपे शिखरे पर्वतस्य सहानुजः ॥४८॥

वत्स्यामि वर्षदिवसांस्ततस्त्वं यत्नवान् भव ।
किञ्चित्कालं पुरे स्थित्वा सीतायाः परिमार्गणे ॥४९॥

---

उसने श्री राम को प्रणाम किया। और प्रसन्न होकर श्री रामचन्द्र जी से कहने लगा—हे राजेन्द्र ! परम ऐश्वर्य युक्त इस वानरों के राज्य का आप स्वयं शासन कीजिए ॥४४॥ हे प्रभो ! मैं भी आप का दास हूँ। अतः लक्ष्मण के समान ही मैं भी आप के चरणों की सेवा करूँगा। सुग्रीव द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर श्री रामचन्द्रजी ने हँसते हुए उससे कहा—॥४५॥ सुग्रीव ! तुम और मैं एक ही हूँ। इसमें सन्देह नहीं है। तुम मेरी आज्ञा से जाओ। और किष्किन्धा के राज्य पर अपना अभिषेक कराओ ॥४६॥

हे भाई ! मैं चौदह वर्ष तक किसी नगर या ग्राम में प्रवेश न करूँगा। तुम्हारा अभिषेक करने के लिए मेरे भाई लक्ष्मण नगर में जायेंगे ॥४७॥ तुम अङ्गद को आदर पूर्वक युवराज पद पर अभिषिक्त करना। मैं तुम्हारे समीप ही इस पर्वत के शिखर पर भाई लक्ष्मण के साथ वर्षा काल पर्यन्त निवास करूँगा। फिर वर्षा बीत जाने के बाद तुम सीता के खोज के लिए यत्न करना। अभी कुछ काल तुम नगर में निवास करो ॥४८-४९॥ फिर

साष्टाङ्गं प्रणिपत्याह सुग्रीवो रामपादयोः ।
यदाज्ञापयसे देव ! तत्तथैव करोम्यहम् ॥५०॥
अनुज्ञातश्च रामेण सुग्रीवस्तु सलक्ष्मणः ।
गत्वा पुरं तथा चक्रे यथा रामेण चोदितः ॥५१॥
सुग्रीवेण यथान्यायं पूजितो लक्ष्मणस्तदा ।
आगत्य राघवं शीघ्रं प्रणिपत्योपतस्थिवान् ॥५२॥
ततो रामो जगामाशु लक्ष्मणेन समन्वितः ।
प्रवर्षणगिरेरूर्ध्वं शिखरं भूरिविस्तरम् ॥५३॥
तत्रैकं गह्वरं दृष्ट्वा स्फाटिकं दीप्तिमच्छुभम् ।
वर्षवातातपसहं फलमूलसमीपगम् ।
वासाय रोचयामास तत्र रामः सलक्ष्मणः ॥५४॥

---

श्री राम के चरणों में साष्टाङ्ग प्रणाम कर सुग्रीव ने कहा—हे देव ! आप की जैसी जिस प्रकार की आज्ञा होगी मैं वैसे उसी प्रकार आज्ञा का पालन करूँगा ॥५०॥

राम की इस प्रकार की आज्ञा पाकर सुग्रीव लक्ष्मण को साथ लेकर नगर में गया। और जैसे-जैसे जिस प्रकार श्री रामचन्द्र जी ने कहा था, वैसे-वैसे उसी प्रकार सब कार्य किया ॥५१॥ उस समय सुग्रीव से यथोचित आदर पूर्वक पूजित हुए लक्ष्मण जी ने भी आकर श्री राम को प्रणाम किया और उनकी सेवा में उपस्थित हो गये। ५२। फिर श्रीराम लक्ष्मण के साथ तत्काल प्रवर्षण गिरि के ऊपर अत्यन्त विस्तीर्ण, ऊँचे शिखर पर चले गये ॥५३॥ वहाँ पर स्फटिक मणि के समान प्रकाश युक्त एक गुफा देखी जो वर्षा, वात एवं आतप को सहने योग्य थी। जिसके समीप में फल, पुष्प समन्वित वृक्ष थे, ऐसे निवास के योग्य स्थान में लक्ष्मण के साथ रहना पसन्द किया ॥५४॥

दिव्यमूल-फलपुष्पसंयुते मौक्तिकोपम-जलौघ-पल्वले ।
चित्रवर्ण-मृग-पक्षिशोभिते पर्वते रघुकुलोत्तमोऽवसत् ॥५५॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे
किष्किन्धाकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

*

---

रघुकुलोत्तम श्री रामचन्द्र जी दिव्य मूल-फल से सम्पन्न, मोती के समान स्वच्छ जलपूर्ण सरोवर से युक्त, अनेक प्रकार के मृग एवं पक्षियों से सुशोभित उस प्रवर्षण पर्वत पर निवास करने लगे ॥५५॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या विभूषित अध्यात्मरामायण के
उमा-महेश्वर संवाद में किष्किन्धाकाण्ड का तृतीय
सर्ग समाप्त ॥ ३ ॥

*

## ४. चतुर्थः सर्गः

(भगवान् राम का लक्ष्मण से क्रियायोग का वर्णन)

श्रीमहादेव उवाच

तत्र वार्षिकदिनानि राघवो लीलया मणिगुहासु सञ्चरन् ।
पक्वमूल-फलभोग-तोषितो लक्ष्मणेन सहितोऽवसत् सुखम् ॥१॥

वातनुन्न-जलपूरितमेघा - नन्तरस्तनित-वैद्युतगर्भान् ।
वीक्ष्य विस्मयमगाद् गजयूथान्यद्वदाहितसुकाञ्चनकक्षान् ॥२॥

नवघासं समास्वाद्य हृष्ट-पुष्ट-मृगद्विजाः ।
धावन्तः परितो रामं वीक्ष्य विस्फारितेक्षणाः ॥३॥

न चलन्ति सदा ध्याननिष्ठा इव मुनीश्वराः ।
रामं मानुषरूपेण गिरिकाननभूमिषु ॥४॥

---

भगवान् राम का लक्ष्मण से क्रिया योग का वर्णन श्री महादेव जी ने पार्वती से कहा—हे पार्वती ! उस पर्वतोत्तम प्रवर्षण पर्वत पर मणि के समान स्वच्छ गुफाओं में लीलापूर्वक विचरण करते हुए एवं पके हुए फल-मूल के भोजन से सन्तुष्ट रह कर श्रीरामचन्द्र जी भाई लक्ष्मण के साथ वर्षा के दिनों में सुख से रहने लगे ॥१॥ उस पर्वत पर वायु से प्रेरित, शब्दायमान एवं भीतर से चमकती हुई बिजलियों से युक्त जलपूर्ण मेघों को सुनहरे झूलों से युक्त हाथियों के झुण्ड के समान देख कर श्री रामचन्द्र जी को महान् आश्चर्य हुआ ॥२॥ उस पर्वत पर नवीन घासें खाकर हृष्ट-पुष्ट हुए मृग एवं पक्षीगण इधर-उधर चारों ओर दौड़ते हुए रामचन्द्र जी को आँखें फाड़ कर देखने लगते और उनकी टकटकी-सी बंध जाती थी। वे ध्याननिष्ठ मुनीश्वरों के समान इधर-उधर जाना भूल कर जहाँ-तहाँ खड़े रह जाते । उस समय परमात्मा राम को मनुष्य रूप धारण कर पहाड़,

चरन्तं परमात्मानं ज्ञात्वा सिद्धगणा भुवि ।
मृगपक्षिगणा भूत्वा राममेवानुसेविरे ॥५॥
सौमित्रिरेकदा राममेकान्ते ध्यानतत्परम् ।
समाधिविरमे भक्त्या प्रणयाद् विनयान्वितः ॥६॥
अब्रवीद् देव ! ते वाक्यात् पूर्वोक्ताद् विगतो मम ।
अनाद्यविद्यासम्भूतः संशयो हृदि संस्थितः ॥७॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि क्रियामार्गेण राघव ! ।
भवदाराधनं लोके यथा कुर्वन्ति योगिनः ॥८॥
इदमेव सदा प्राहुर्योगिनो मुक्तिसाधनम् ।
नारदोऽपि तथा व्यासो ब्रह्मा कमलसम्भवः ॥९॥
ब्रह्मक्षत्रादिवर्णानामाश्रमाणां च मोक्षदम् ।
स्त्रीशूद्राणां च राजेन्द्र ! सुलभं मुक्तिसाधनम् ।
तव भक्ताय मे भ्रात्रे ब्रूहि लोकोपकारकम् ॥१०॥

---

जङ्गल एवं पृथ्वी में विचरते हुए जान कर सिद्ध लोग भी मृग एवं पक्षियों जैसा रूप धारण कर उनकी सेवा में लग गये ॥३-५॥

एक दिन श्री लक्ष्मण जी एकान्त में समाधिस्थ राम के समाधि खुल जाने के अनन्तर प्रेम और भक्ति से युक्त विनम्र शब्दों में कहा—॥६। हे देव ! आपके द्वारा पूर्व में दिये गये उपदेश से मेरे हृदय में रहने वाला अनादि अविद्या जन्य सन्देह तो दूर हो गया ।।७।। किन्तु हे राघव ! योगिजन जिस क्रिया मार्ग ( उपासना प्रकार ) से आपकी उपासना करते हैं, मैं उसे सुनना चाहता हूँ ॥८। आपके इस क्रिया-मार्ग ( उपासना ) को ही योगिजन, देवर्षि नारद तथा व्यास एवं कमल सम्भव ब्रह्मा मुक्ति का साधन कहते हैं।।९॥

हे राजेन्द्र ! ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णों तथा ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य आदि आश्रमों को इसी साधन से मुक्ति प्राप्त होती है । बहुत क्या कहें, स्त्री और शूद्र के मुक्ति के लिए भी यह साधन सुलभ है । मैं आपका भक्त हूँ । दूसरे भाई भी हूँ । अत: लोकोपकारी इस साधन का मुझसे आप वर्णन करें ॥१०॥

श्रीराम उवाच

मम पूजाविधानस्य नान्तोऽस्ति रघुनन्दन !।
तथापि वक्ष्ये मत्संक्षेपाद्यथावदनुपूर्वशः ॥११॥
स्वगृह्योक्तप्रकारेण द्विजत्वं प्राप्य मानवः।
सकाशात् सद्गुरोर्मन्त्रं लब्ध्वा मद्भक्तिसंयुतः ॥१२॥
तेन सन्दर्शितविधिर्मामेवाराधयेत् सुधीः।
हृदये वाऽनले वाऽर्चेत् प्रतिमादौ विभावसौ ॥१३॥
शालग्रामशिलायां वा पूजयेन्मामतन्द्रितः।
प्रातःस्नानं प्रकुर्वीत प्रथमं देहशुद्धये ॥१४॥
वेदतन्त्रोदितैर्मन्त्रैर्मृल्लेपनविधानतः।
सन्ध्यादिकर्म यन्नित्यं तत् कुर्याद् विधिना बुधः ॥१५॥
सङ्कल्पमादौ कुर्वीत सिद्ध्यर्थं कर्मणां सुधीः।
स्वगुरुं पूजयेद् भक्त्या मद्बुद्ध्या पूजको मम ॥१६॥

तब श्री राम बोले—हे रघुनन्दन लक्ष्मण ! मेरे पूजा की विधि अनन्त है फिर भी संक्षेप में यथावत् क्रमशः उसका वर्णन करता हूँ ॥११॥ हे लक्ष्मण ! मेरी भक्ति से युक्त मनुष्य अपने गृह्य सूत्र के अनुसार उपनयन आदि संस्कार से द्विजत्व को प्राप्त कर अच्छे गुरु से मेरे मन्त्र की दीक्षा ले ॥१२॥ पुनः उस बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि वह उस गुरु के द्वारा बताये गये विधान के अनुसार हृदय में, अग्नि में, मेरी प्रतिमा आदि में तथा सूर्य में मेरी अर्चा करे ॥१३॥ अथवा शालग्राम शिला में ही सावधानी से मेरी पूजा करे। सर्वप्रथम मेरे भक्त को चाहिए कि वह शरीर की शुद्धि के लिए प्रातःकाल स्नान करे ॥१४॥

स्नान के पहले वह बुद्धिमान् भक्त वैदिक एवं तान्त्रिक मन्त्रों का उच्चारण करता हुआ शरीर में सविधि मृत्तिका लगावे। फिर स्नान कर नित्य नियमानुसार सन्ध्योपासन करे ॥१५॥ मतिमान् पुरुष अपने कार्य की सिद्धि के लिए संकल्प पढ़े। फिर अपने गुरु की भगवद्-बुद्धि से पूजा करे ॥१६॥

शिलायां स्नपनं कुर्यात् प्रतिमासु प्रमार्जनम् ।
प्रसिद्धैर्गन्ध-पुष्पाद्यैर्मत्पूजा सिद्धिदायिका ॥१७॥

अमायिकोऽनुवृत्त्या मां पूजयेन्नियतव्रतः ।
प्रतिमादिष्वलङ्कारः प्रियो मे कुलनन्दन ! ॥१८॥

अग्नौ यजेत हविषा भास्करे स्थण्डिले यजेत् ।
भक्तेनोपहृतं प्रीत्यै श्रद्धया मम वार्यपि ॥१९॥
किं पुनर्भक्ष्य-भोज्यादि गन्ध-पुष्पा-ऽक्षतादिकम् ।
पूजाद्रव्याणि सर्वाणि सम्पाद्यैवं समारभेत ॥२०॥
चैलाऽजिन-कुशैः सम्यगासनं परिकल्पयेत ।
तत्रोपविश्य देवस्य सम्मुखे शुद्धमानसः ॥२१॥

---

यदि मेरी मूर्त्ति शिला रूप हो तो उसे स्नान करावे और यदि प्रतिमा ( चित्र ) स्वरूप हो तो उसका मात्र मार्जन करे। उत्तमोत्तम गन्ध एवं पुष्पों से मेरी पूजा करने से मनोरथ की सिद्धि शीघ्र ही होती है ॥ १७ ॥ मनुष्य कपट से रहित होकर गुरु के द्वारा उपदिष्ट मार्ग के अनुसार नित्य नियमतः मेरी पूजा करनी चाहिए। हे रघुनन्दन ! प्रतिमा को अलंकार से अलंकृत करने से मैं विशेष प्रसन्न रहता हूँ ॥ १८ ॥ यदि अग्नि में पूजा करनी हो तो अग्नि में आहुति प्रदान करे। यदि सूर्य की पूजा करनी हो तो वेदी में सूर्य की मूर्ति बनाकर मेरी पूजा करे। मेरे भक्त के द्वारा श्रद्धापूर्वक दिया गया जल भी मेरी प्रसन्नता का विशेष कारण होता है ॥ १९ ॥ फिर यदि मेरा भक्त श्रद्धापूर्वक गन्ध, पुष्प, अक्षत, भक्ष्य-भोज्य आदि सभी प्रकार की पूजा-सामग्री मुझे समर्पित करे, तो उसकी बात ही क्या ? इसलिए सर्व-प्रथम मेरी पूजा के लिए पूजा-सामग्री एकत्रित करनी चाहिए ॥ २० ॥

आसन के लिए प्रथम कुशा, फिर मृगचर्म एवं उसके ऊपर वस्त्र रखना चाहिए। फिर प्रसन्न एवं शुद्ध चित्त से अपने इष्टदेव के सामने उस आसन पर बैठना चाहिए ॥ २१ ॥ तदनन्तर बहिर्मातृका एवं

ततो न्यासं प्रकुर्वीत मातृकाबहिरान्तरम् ।
केशवादि ततः कुर्यात्तत्त्वन्यासं ततः परम् ॥२२॥
मन्मूर्तिपञ्जरन्यासं मन्त्रन्यासं ततो न्यसेत् ।
प्रतिमादावपि तथा कुर्यान्नित्यमतन्द्रितः ॥२३॥
कलशं स्वपुरो वामे क्षिपेत् पुष्पादि दक्षिणे ।
अर्घ्यपाद्यप्रदानार्थं मधुपर्कार्थमेव च ॥२४॥
तथैवाचमनार्थं तु न्यसेत् पात्रचतुष्टयम् ।
हृत्पद्मे भानुविमले मत्कलां जीवसंज्ञिताम् ॥२५॥
ध्यायेत् स्वदेहमखिलं तया व्याप्तमरिन्दम ! ।
तामेवावाहयेन्नित्यं प्रतिमादिषु मत्कलाम् ॥२६॥
पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः स्नान-वस्त्र विभूषणैः ।
यावच्छक्योपचारैर्वा त्वर्चयेन्माममायया ॥२७॥

---

अन्तर्मातृका न्यास करे। फिर केशवादि नाम मन्त्रों से तत्त्वन्यास करना चाहिए ॥ २२ ॥ और विष्णुपञ्जर स्तोत्र से मेरी मूर्त्ति में पञ्जर न्यास तथा मन्त्रन्यास करे। मेरी प्रतिमा में भी इसी प्रकार का न्यास आलस्य रहित होकर करना चाहिए ॥ २३ ॥ अपने आगे बायीं ओर कलश स्थापित करे। एवं दाहिनी ओर पुष्प आदि पूजा-सामग्री रखे। और अर्घ्य, पाद्य, मधुपर्क तथा आचमन आदि के लिए चार पात्र भी रखना चाहिए। तदनन्तर हृत्कमल में सूर्य के समान तेजस्वी मेरी जीव नामक कला का ध्यान करे। हे शत्रुदमन ! उस सूर्य के समान तेजस्वी मेरी जीव-कला से अपने शरीर को व्याप्त हुआ ध्यान करे। प्रतिमादिक के पूजन के समय भी उसी प्रकार जीवकला का आवाहन करना चाहिए ॥ २४-२६ ॥

पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र एवं आभूषणों से अथवा जो कुछ भी पूजा-सामग्री प्राप्त हो उसी से निष्कपट भाव हो मेरी पूजा करनी चाहिए ॥ २७ ॥ यदि धन हो तो कपूर, कुंकुम एवं चन्दन और सुगन्धित

विभवे सति कर्पूर-कुङ्कुमा-ऽगरु-चन्दनैः ।
अर्चयेन्मन्त्रवन्नित्यं सुगन्धकुसुमैः शुभैः ॥२८॥
दशावरणपूजां वै ह्यागमोक्तां प्रकारयेत् ।
नीराजनैर्धूप-दीपैर्नैवेद्यैर्बहुविस्तरैः ॥२९॥
श्रद्धयोपहरेन्नित्यं श्रद्धाभुगहमीश्वरः ।
होमं कुर्यात् प्रयत्नेन विधिना मन्त्रकोविदः ॥३०॥
अगस्त्येनोक्तमार्गेण कुण्डेनागमवित्तमः ।
जुहुयान्मूलमन्त्रेण पुंसूक्तेनाथवा बुधः ॥३१॥
अथवौपासनाग्नौ वा चरुणा हविषा तथा ।
तप्तजाम्बूनदप्रख्यं दिव्याभरणभूषितम् ॥३२॥
ध्यायेदनलमध्यस्थं होमकाले सदा बुधः ।
पार्षदेभ्यो बलिं दत्त्वा होमशेषं समापयेत् ॥३३॥

---

पुष्प आदि के द्वारा मन्त्रोच्चारण पूर्वक मेरी पूजा करनी चाहिए ॥२८॥ नीराजन ( पाँच अगरबत्ती की आरती ), धूप, दीप एवं नैवेद्यादि के द्वारा बहुत विस्तार से वेदोक्त मन्त्रों के द्वारा मेरी दशावरण पूजा करे ॥ २९ ॥ समस्त पदार्थ नित्यप्रति श्रद्धा पूर्वक मुझे निवेदन करे। क्योंकि मैं–ईश्वर श्रद्धा का ही भूखा हूँ। मन्त्रज्ञ मेरा भक्त पूजा के अनन्तर प्रयत्न पूर्वक सविधि हवन करे ॥ ३० ॥

वेदज्ञ मेरे भक्त को चाहिए कि वह अगस्त्य मुनि के द्वारा बताये गये मार्ग से कुण्ड निर्माण कर गुरूपदिष्ट मूल मन्त्र से अथवा पुरुष सूक्त से उस कुण्ड में आहुति प्रदान करे ॥ ३१ ॥ अथवा अग्निहोत्र की अग्नि में चरु एवं हवि से हवन करे। बुद्धिमान् को चाहिए कि वह उस अग्नि में तपाये गये सोने के समान कान्ति वाले दिव्य आभरण विभूषित मुझ यज्ञपुरुष का सदा ध्यान करे। फिर मेरे पार्षदों को बलि देकर शेष होम को समाप्त करे ॥ ३२-३३ ॥ फिर भक्ति पूर्वक मुख के सुगन्धित द्रव्य एवं

ततो जपं प्रकुर्वीत ध्यायेन्मां यतवाक् स्मरन् ।
मुखवासं च ताम्बूलं दत्वा प्रीतिसमन्वितः ॥३४॥
मदर्थे नृत्यगीतादि स्तुतिपाठादि कारयेत् ।
प्रणमेद् दण्डवद्भूमौ हृदये मां निधाय च ॥३५॥
शिरस्याधाय मद्दत्तं प्रासादं भावनामयम् ।
पाणिभ्यां मत्पदे मूर्ध्नि गृहीत्वा भक्तिसंयुतः ॥३६॥
रक्ष मां घोरसंसारादित्युक्त्वा प्रणमेत् सुधीः ।
उद्वासयेद्यथापूर्वं प्रत्यग्ज्योतिषि संस्मरन् ॥३७॥
एवमुक्तप्रकारेण पूजयेद् विधिवद्यदि ।
इहाऽमुत्र च संसिद्धिं प्राप्नोति मदनुग्रहात् ॥३८॥
मद्भक्तो यदि मामेवं पूजां चैव दिने दिने ।
करोति मम सारूप्यं प्राप्नोत्येव न संशयः ॥३९॥

---

ताम्बूल देकर मुझे स्मरण करता हुआ मेरा भक्त मेरे मन्त्रों का जप करे ॥ ३४ ॥

मेरे लिए नाचना, गाना और स्तुति तथा पाठ करावे। अनन्तर हृदय में मेरा ध्यान करता हुआ भूमि पर लोटकर मुझे साष्टाङ्ग प्रणाम करे ॥ ३५ ॥ मेरे द्वारा दिये गये प्रसाद को 'भगवत्प्रसाद' है ऐसी भावना करता हुआ उसे सिर पर रखे और दोनों हाथ से भक्ति पूर्वक मेरे पैर को पकड़ कर अपने सिर पर रखे ॥ ३६ ॥ 'हे प्रभो ! इस घोर संसार से मेरी रक्षा करो' ऐसा कह कर बुद्धिमान् भक्त मुझे पुनः प्रणाम करे। फिर प्रतिमामें स्थापित जीव कला को प्रकाश स्वरूप मुझमें लीन हो गयी है ऐसी भावना करता हुआ प्रतिमा में रहने वाली जीव कला का विसर्जन करे ॥ ३७ ॥

यदि मेरा भक्त मेरे इस कथन के अनुसार मेरी पूजा करता है तो वह इस लोक में एवं परलोक में दोनों जगह सिद्धि प्राप्त करता है ॥ ३८ ॥ मेरा भक्त यदि इस प्रकार नित्यप्रति मेरी पूजा करता है तो वह मेरे सारूप्य पद को प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं ॥ ३९ ॥ यह क्रियायोग

इदं रहस्यं परमं च पावनं
मयैव साक्षात् कथितं सनातनम् ।
पठत्यजस्रं यदि वा शृणोति यः
स सर्वपूजाफलभाङ् न संशयः ॥४०॥

एवं परात्मा श्रीरामः क्रियायोगमनुत्तमम् ।
पृष्टः प्राह स्वभक्ताय शेषांशाय महात्मने ॥४१॥

पुनः प्राकृतवद्रामो मायामालम्ब्य दुःखितः ।
हा सीतेति वदन्नैव निद्रां लेभे कथञ्चन ॥४२॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र किष्किन्धायां सुबुद्धिमान् ।
हनूमान् प्राह सुग्रीवमेकान्ते कपिनायकम् ॥४३॥

शृणु राजन् ! प्रवक्ष्यामि तवैव हितमुत्तमम् ।
रामेण ते कृतः पूर्वमुपकारो ह्यनुत्तमः ॥४४॥

---

परम गोपनीय एवं पवित्र तथा सनातन है, इसे मैंने ही अपने मुख से प्रत्यक्ष होकर कहा है, जो निरन्तर इसका पाठ करता एवं सुनता है। वह मेरे सम्पूर्ण पूजाफल को प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ४० ॥

इस प्रकार यह क्रियायोग ( पूजा-पद्धति ) अपने अंशभूत शेषावतार परम भक्त लक्ष्मण जी के पूछने पर परमात्मा श्री रामचन्द्र जी ने उपदेश किया ॥ ४१ ॥

क्रिया योग का उपदेश कर लेने पर श्री रामचन्द्र जी फिर सामान्य मनुष्य की तरह माया का अनुसरण करते हुए 'हा सीते ! हा सीते !' ऐसा कहते हुए जाग कर रात बिता देते, किन्तु उन्हें नींद न आती ॥४२॥ इसी समय महा बुद्धिमान् श्री हनूमान् जी ने बानरराज सुग्रीव से एकान्त में कहा ॥ ४३ ॥

हे राजन् ! मैं तुम्हारे हित की बात कहता हूँ, उसे सुनो। श्रीराम ने पहले आप का कितना बड़ा उपकार किया है ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! मुझे

कृतघ्नवत्त्वया नूनं विस्मृतः प्रतिभाति मे ।
तत्वत्कृते निहतो वाली वीरस्त्रैलोक्यसम्मतः ॥४५॥
राज्ये प्रतिष्ठितोऽसि त्वं तारां प्राप्तोऽसि दुर्लभाम् ।
स रामः पर्वतस्याग्रे भ्रात्रा सह वसन् सुधीः ॥४६॥
त्वदागमनमेकाग्रमीक्षते कार्यगौरवात् ।
त्वं तु वानरभावेन स्त्रीसक्तो नावबुद्ध्यसे ॥४७॥
करोमीति प्रतिज्ञाय सीतायाः परिमार्गणम् ।
न करोषि कृतघ्नस्त्वं हन्यसे वालिवद् द्रुतम् ॥४८॥
हनूमद्वचनं श्रुत्वा सुग्रीवो भयविह्वलः ।
प्रत्युवाच हनूमन्तं सत्यमेव त्वयोदितम् ॥४९॥
शीघ्रं कुरु मदाज्ञां त्वं वानराणां तरस्विनाम् ।
सहस्राणि दशेदानीं प्रेषयाशु दिशो दश ॥५०॥

---

ऐसा मालूम पड़ता है कि तुम कृतघ्न के समान उनके उपकारों को भूल गये हो। उन्होंने तुम्हारे लिए त्रिलोकी में बीर कहे जाने वाले बाली का बध किया ॥ ४५ ॥ उन्हीं की कृपा से तुम इस राज्य पर प्रतिष्ठित हुए हो इतना ही नहीं, परम दुर्लभ तारा को भी तुमने प्राप्त किया। वह बुद्धिमान् श्री राम पर्वत-शिखर पर अपने भाई के साथ निवास करते हुए ॥ ४६ ॥ अपने कार्य की महत्ता का ध्यान करते हुए एकाग्रचित्त से तुम्हारे आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। किन्तु तुम बानर स्वभाव के अनुसार स्त्री में आसक्त होकर उनके कार्य को भूल गये हो ॥ ४७ ॥

आपने 'मैं अवश्य ही सीता की खोज करूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा कर अभी तक सीता के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया, अतः आप कृतघ्न हैं। अवश्य ही आप बाली के समान शीघ्र मारे जायेंगे ॥ ४८ ॥ हनुमान् की बात सुनते ही सुग्रीव भयभीत हो उठा। और उनसे कहने लगा—हनूमान्! तुम ठीक कहते हो ॥ ४९ ॥ अच्छा, तुम मेरी आज्ञा मानो। दश हजार महाबलवान् बानरों को इसी समय दशों दिशाओं में भेजो ॥ ५० ॥

सप्तद्वीपगतान् सर्वान् वानरानानयन्तु ते ।
पक्षमध्ये समायान्तु सर्वे वानरपुङ्गवाः ॥५१॥
ये पक्षमतिवर्तन्ते ते वध्या मे न संशयः ।
इत्याज्ञाप्य हनूमन्तं सुग्रीवो गृहमाविशत् ॥५२॥
सुग्रीवाज्ञां पुरस्कृत्य हनूमान् मन्त्रिसत्तमः ।
तत्क्षणे प्रेषयामास हरीन् दश दिशः सुधीः ॥५३॥
अगणित-गुणसत्त्वान् वायुवेगप्रचारान्
वनचरगणमुख्यान् पर्वताकाररूपान् ।
पवनहितकुमारः प्रेषयामास दूता-
नतिरभसतरात्मा दानमानादितृप्तान् ॥५४॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
किष्किन्धाकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

*

वे सातों द्वीप में रहने वाले सभी बानरों को एक पक्ष के भीतर यहाँ शीघ्र बुला कर ले आवें ॥ ५१ ॥ जो मेरी आज्ञा से एक पक्ष के भीतर न आवेंगे। वे निःसन्देह मेरे द्वारा मारे जायेंगे। हनूमान् को ऐसी आज्ञा दे सुग्रीव अपने घर चला गया ॥ ५२ ॥

परम् बुद्धिमान् श्री हनूमान् जी सुग्रीव की इस प्रकार की आज्ञा पाकर उसी समय बानरों को दशो दिशाओं में भेज दिया ॥ ५३ ॥ पवन के समान सबका हित करने वाले हनूमान् जी ने अत्यन्त उतावला होकर शीघ्र ही उन बानरों को दशो दिशाओं में भेज दिया। जिनके गुणों की एवं पराक्रम की गणना नहीं हो सकती। जो वायु के वेग के समान चलने वाले थे। और पर्वत के समान विशाल काय थे एवं जो हनुमानूजी के द्वारा दान एवं मान से सन्तुष्ट किये गये थे ॥ ५४ ॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या सहित श्री अध्यात्मरामायण
के उमा-महेश्वर संवाद में किष्किन्धाकाण्ड
का चतुर्थ सर्ग समाप्त ॥ ४ ॥

*

## ५. पंचमः सर्गः

( भगवान् राम का शोक एवं लक्ष्मण जी का किष्किन्धा गमन )

श्रीमहादेव उवाच

रामस्तु पर्वतस्याग्रे मणिसानौ निशामुखे ।
सीताविरहजं शोकमसहन्निदमब्रवीत् ॥ १ ॥
पश्य लक्ष्मण ! मे सीता राक्षसेन हृता बलात् ।
मृताऽमृता वा निश्चेतुं न जानेऽद्यापि भामिनीम् ॥ २ ॥
जीवतीति मम ब्रूयात् कश्चिद् वा प्रियकृत् स मे ।
यदि जानामि तां साध्वीं जीवन्तीं यत्र कुत्र वा ॥३॥
हठादेवाहरिष्यामि सुधामिव पयोनिधेः ।
प्रतिज्ञां शृणु मे भ्रातर्येन मे जनकात्मजा ॥ ४ ॥

---

श्री महादेव जी ने कहा—हे पार्वती ! एक समय श्री रामचन्द्र जी सायंकाल पर्वत के मणिमय शिखर पर सीता के विरहजन्य शोक को न सहन करते हुए लक्ष्मण से कहने लगे– ॥ १ ॥ भाई लक्ष्मण ! देखो, मेरी सीता को किसी राक्षस ने बलात् अपहरण कर लिया है, मैं उस परम सुन्दरी के विषय में अभी तक निश्चय करने में असमर्थ हूँ कि वह मर गयी अथवा जीवित है ॥ २ ॥ यदि कोई मुझे बता दे कि 'वह जीवित है' तो वह मेरा बड़ा उपकार कर्ता होगा। यदि मुझे पता लग जाय कि वह साध्वी अभी जीवित है तो मैं वह जहाँ-कहीं भी होगी ॥ ३ ॥ समुद्र में-से अमृत के समान जिस-किसी प्रकार अपने बल से उसे पास ले आऊँगा। और हे भाई ! मेरी एक प्रतिज्ञा सुनो। जिसने सीता का अपहरण किया है, उसे पुत्र, सेना एवं वाहन समेत अवश्य नष्ट करूँगा ॥ ४ ॥ हे चन्द्रमुखि !

नीता तं भस्मसात् कुर्यां सपुत्रबलवाहनम् ।
हे सीते चन्द्रवदने ! वसन्ती राक्षसालये ॥ ५ ॥
दुःखार्त्ता मामपश्यन्ती कथं प्राणान् धरिष्यसि ।
चन्द्रोऽपि भानुवद् भाति मम चन्द्राननां विना ॥ ६ ॥
चन्द्रत्वं जानकीं स्पृष्ट्वा करैर्मां स्पृश शीतलैः ।
सुग्रीवोऽपि दयाहीनो दुःखितं मां न पश्यति ॥ ७ ॥
राज्यं निष्कण्टकं प्राप्य स्त्रीभिः परिवृतो रहः ।
कृतघ्नो दृश्यते व्यक्तं पानासक्तोऽतिकामुकः ॥ ८ ॥
नायाति शरदं पश्यन्नपि मार्गयितुं प्रियाम् ।
पूर्वोपकारिणं दुष्टः कृतघ्नो विस्मृतो हि माम् ॥ ९ ॥
हन्मि सुग्रीवमप्येवं सपुरं सहबान्धवम् ।
वाली यथा हतो मेऽद्य सुग्रीवोऽपि तथा भवेत् ॥१०॥

---

हे सीते ! तुम राक्षस के घर में दुःख पूर्वक निवास करती हुई मुझे न देख किस प्रकार प्राण धारण कर रही होगी ॥ ५ ॥

हाय ! उस चन्द्रमुखी सीता के बिना यह चन्द्रमा भी सूर्य के समान तापकारी हो रहा है ॥६॥ हे चन्द्रमा ! तुम प्रथम जानकी का स्पर्श करो फिर अपनी शीतल किरणों द्वारा मेरा स्पर्श करना। ओह ! वह सुग्रीव भी कितना निर्दयी है, जो मुझ दुखिया की याद नहीं करता ॥७॥

ओह ! वह सुग्रीव भी कितना कृतघ्न निकला कि निष्कण्टक राज्य प्राप्त कर निरन्तर मद्यपान में आसक्त रहकर एकान्त में स्त्रियों से घिरा एवं कामकिङ्कर बना हुआ घर पड़ा है ॥८॥ किन्तु इस शरत्काल को आया हुआ देखकर भी प्रिया की खोज कराने के लिए अभी तक नहीं आया। निश्चय ही वह दुष्ट कृतघ्न मेरे किये गये पूर्व उपकारों को भूल गया है, जो मेरे पास नहीं आया ॥९॥ अब मैं सुग्रीव को नगर सहित बन्धु-बान्धवों के साथ मार डालूँगा। जिस प्रकार बाली का वध मैंने किया, उसी प्रकार आज सुग्रीव का भी वध करूँगा ॥१०॥

इति रुष्टं समालोक्य राघवं लक्ष्मणोऽब्रवीत् ।
इदानीमेव गत्वाऽहं सुग्रीवं दुष्टमानसम् ॥११॥
मामाज्ञापय हत्वा तमायास्ये राम तेऽन्तिकम् ।
इत्युक्त्वा धनुरादाय स्वयं तूणीरमेव च ॥१२॥
गन्तुमभ्युद्यतं वीक्ष्य रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।
न हन्तव्यस्त्वया वत्स ! सुग्रीवो मे प्रियः सखा ॥१३॥
किन्तु भीषय सुग्रीवं वालिवत्त्वं हनिष्यसे ।
इत्युक्त्वा शीघ्रमादाय सुग्रीवप्रतिभाषितम् ॥१४॥
आगत्य पश्चाद्यत्कार्यं तत्करिष्याम्यसंशयम् ।
तथेति लक्ष्मणोऽगच्छत् त्वरितो भीमविक्रमः ॥१५॥
किष्किन्धां प्रति कोपेन निर्दहन्निव वानरान् ।
सर्वज्ञो नित्यलक्ष्मीको विज्ञानात्माऽपि राघवः ॥१६॥

---

इस प्रकार श्रीरामचन्द्र जी को क्रुद्ध हुआ देख लक्ष्मण जी बोले—हे नाथ! आप मुझे आज्ञा दीजिए। मैं अभी जाकर दुष्टचित्त वाले उस सुग्रीव का वध कर आपके पास लौट आता हूँ। ऐसा कह कर लक्ष्मण जी ने धनुष उठा लिया एवं तरकस बाँध लिया ॥११-१२॥ सुग्रीव को मारने के लिए लक्ष्मण जी को उद्यत देखकर श्री रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण से कहा—भाई ! सुग्रीव मेरा प्यारा मित्र है, तुम उसे मारना मत ॥१३॥ किन्तु उसे यह कहकर डरा देना कि तुम भी बाली के समान मारे जाओगे। इस प्रकार डरा देने पर सुग्रीव का जैसा उत्तर हो उसे लेकर मेरे पास आ जाना ॥१४॥ फिर तुम्हारे आ जाने पर जैसा होगा मैं वैसा करूँगा। तदनन्तर महाबलवान् लक्ष्मण जी 'तथास्तु' कहकर शीघ्र ही किष्किन्धा पुरी को चल पड़े ॥१५॥

उस समय क्रोध में श्री लक्ष्मण जी ऐसे उग्र दिखाई पड़ते थे कि मानो वे समस्त वानरों को भस्म कर देंगे। यद्यपि भगवान् सर्वज्ञ एवं ज्ञानस्वरूप हैं, नित्य लक्ष्मी से युक्त हैं ॥१६॥ फिर भी जिस प्रकार साधारण स्त्री के

सीतामनुशुशोचार्त्तः प्राकृतः प्राकृतामिव ।
बुद्ध्यादिसाक्षिणस्तस्य मायाकार्यातिवर्तिनः ॥१७॥
रागादिरहितस्यास्य तत्कार्यं कथमुद्भवेत् ।
ब्रह्मणोक्तमृतं कर्तुं राज्ञो दशरथस्य हि ॥१८॥
तपसः फलदानाय जातो मानुषवेषधृक् ।
मायया मोहिताः सर्वे जना अज्ञानसंयुताः ॥१९॥
कथमेषां भवेन्मोक्ष इति विष्णुर्विचिन्तयन् ।
कथां प्रथयितुं लोके सर्वलोकमलापहाम् ॥२०॥
रामायणाभिधां रामो भूत्वा मानुषचेष्टकः ।
क्रोधं मोहं च कामं च व्यवहारार्थसिद्धये ॥२१॥
तत्तत्कालोचितं गृह्णन् मोहयत्यवशाः प्रजाः ।
अनुरक्त इवाशेषगुणेषु गुणवर्जितः ॥२२॥

---

लिये प्राकृत मनुष्य शोक करता है, उसी प्रकार वे भी सीता के लिए शोक से विह्वल हो रहे हैं। वस्तुतः वे तो बुद्धि आदि के द्रष्टा हैं, माया के कार्य का सर्वथा अतिक्रमण करने वाले हैं ॥१७॥

भला, जो स्वयं राग-द्वेष आदि कारणों से मुक्त हैं, उसे राग-द्वेष जन्य शोकादि विकार किस प्रकार उत्पन्न हो सकते हैं। ब्रह्मा की वाणी सत्य करने के लिए एवं महाराज दशरथ के तपस्या का फल देने के लिए उन्होंने माया से मनुष्यरूप धारण किया है ॥१८॥

जगत् के समस्त लोग माया और अज्ञान से मोहित होकर मोह में पड़े हुए हैं। उनकी मुक्ति किसी प्रकार से हो यह सोचकर भगवान् विष्णु ने समस्त लोक के पाप-ताप को बहा देने वाली अपनी रामायणी कथा का विस्तार करने के लिए राम नाम धारण कर मनुष्य रूप में अवतार धारण किया है। व्यवहार की सिद्धि के लिए वे समयोचित क्रोध, मोह एवं काम का अनुसरण करते हुए कामादि विकारों से वशीभूत प्रजा को अपनी लीला से मोहित कर रहे हैं। इसीलिए वे कामादिविकारों से रहित होते हुए भी अनुरक्त-से दिखाई पड़ रहे हैं ॥१९-२२॥

विज्ञानमूर्तिर्विज्ञानशक्तिः साक्ष्यगुणान्वितः ।
अतः कामादिभिर्नित्यमविलिप्तो यथा नभः ॥२३॥
विन्दन्ति मुनयः केचिज्जानन्ति जनकादयः ।
तद्भक्ता निर्मलात्मानः सम्यग जानन्ति नित्यदा ।
भक्तचित्तानुसारेण जायते भगवानजः ॥२४॥
लक्ष्मणोऽपि तदा गत्वा किष्किन्धानगरान्तिकम् ।
ज्याघोषमकरोत्तीव्रं भीषयन् सर्ववानरान् ॥२५॥
तं दृष्ट्वा प्राकृतास्तत्र वानरा वप्रमूर्धनि ।
चक्रुः किलकिलाशब्दं धृतपाषाणपादपाः ॥२६॥
तान् दृष्ट्वा क्रोधताम्राक्षो वानरान् लक्ष्मणस्तदा ।
निर्मूलान् कर्तुमुद्युक्तो धनुरानम्य वीर्यवान् ॥२७॥
ततः शीघ्रं समाप्लुत्य ज्ञात्वा लक्ष्मणमागतम् ॥२८॥
निवार्य वानरान् सर्वानङ्गदो मन्त्रिसत्तमः ।
गत्वा लक्ष्मणसामीप्यं प्रणनाम स दण्डवत् ॥२९॥

---

वस्तुतः वे विज्ञानरूप और विज्ञान शक्ति से युक्त हैं। इसलिए वे आकाश के समान कामादि विकारों से निर्लिप्त हैं॥२३॥ उनके वास्तविक स्वरूप को कोई-कोई मुनिजन एवं जनक जैसे राजर्षि तथा विशुद्ध चित्त भक्तजन ही जान पाते हैं। वे भगवान् अजन्मा होकर भी भक्त की भावना के अनुसार जन्म ग्रहण करते हैं॥२४॥

इधर लक्ष्मण ने भी किष्किन्धा के समीप जाकर अपने धनुष की प्रत्यञ्चा का बड़ा भयानक टंकार किया, जिससे समस्त वानर डर गये।२५। उन्हें देखकर नगर के चहारदिवारी पर बैठे हुए साधारण वानर पत्थर एवं वृक्ष हाथों में उठाकर किलकारी मारने लगे॥२६॥ उन वानरों को देखकर महाबलवान् लक्ष्मणजी के नेत्र क्रोध से लाल हो गये। फिर वे धनुष पर बाण चढ़ाकर उनको समूल नष्ट करने के लिए तैयार हो गये॥२७॥

इधर मन्त्रि-श्रेष्ठ अङ्गद जी लक्ष्मण को आया हुआ देखकर कूदते हुए वहाँ आ गये। उन्होंने शीघ्र ही समस्त वानरों को रोककर लक्ष्मण के पास जाकर नम्रता से उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया॥२८-२९॥ फिर प्रियवर्धन

ततोऽङ्गदं परिष्वज्य लक्ष्मणः प्रियवर्धनः ।
उवाच वत्स ! गच्छ त्वं पितृव्याय निवेदय ॥३०॥

मामागतं राघवेण चोदितं रौद्रमूर्तिना ।
तथेति त्वरितं गत्वा सुग्रीवाय न्यवेदयत् ॥३१॥

लक्ष्मणः क्रोधताम्राक्षः पुरद्वारि बहिःस्थितः ।
तच्छ्रुत्वातीव सन्त्रस्तः सुग्रीवो वानरेश्वरः ॥३२॥

आहूय मन्त्रिणां श्रेष्ठं हनूमन्तमथाब्रवीत् ।
गच्छ त्वमङ्गदेनाशु लक्ष्मणं विनयान्वितः ॥३३॥

सान्त्वयन् कोपितं वीरं शनैरानय सादरम् ।
प्रेषयित्वा हनूमन्तं तारामाह कपीश्वरः ॥३४॥

त्वं गच्छ सान्त्वयन्ती तं लक्ष्मणं मृदुभाषितैः ।
शान्तमन्तःपुरं नीत्वा पश्चाद् दर्शय मेऽनघे ! ॥३५॥

---

लक्ष्मण ने अंगद का स्पर्श करते हुए कहा—वत्स ! तुम जाओ और मेरे आने की सूचना अपने काका को दो ॥३०॥

उनसे जाकर कहो कि श्री रामचन्द्र जी तुम्हारे ऊपर अत्यन्त क्रुद्ध हैं, और उनकी आज्ञा से मैं यहाँ आया हुआ हूँ । अङ्गद 'तथास्तु' कहकर शीघ्रता से जाकर यह समाचार सुग्रीव से कहा ॥३१॥ उन्होंने कहा कि, महाराज ! लक्ष्मण क्रोध से नेत्रों को लाल कर बाहर नगर के दरवाजे पर खड़े हैं । अङ्गद की बात सुनकर वानरराज सुग्रीव अत्यन्त भयभीत हो गये ॥३२॥ फिर उन्होंने मन्त्रिवर श्री हनुमान् को बुलाया और कहा—हनूमान् ! तुम अङ्गद के साथ जाओ । और कुपित लक्ष्मण जी को विनय से शान्त करते हुए आदर पूर्वक यहाँ ले आओ । इस प्रकार कपीश्वर सुग्रीव हनुमान् जी को भेजकर तारा से कहने लगे ॥३३-३४॥

हे अनघे ! तुम आगे जाओ और अपने मृदु भाषण से लक्ष्मण के क्रोध को शान्त करो । जब वे शान्त हो जायें तो उन्हें अन्तःपुर में ले आकर मुझे उनका दर्शन कराओ ॥३५॥ 'ऐसा ही करूँगी' इस प्रकार कहती हुई

भवत्विति ततस्तारा मध्यकक्षं समाविशत् ।
हनूमानङ्गदेनैव सहितो लक्ष्मणान्तिकम् ॥३६॥

गत्वा ननाम शिरसा भक्त्या स्वागतमब्रवीत् ।
एहि वीर ! महाभाग ! भवद्गृहमशङ्कितम् ॥३७॥

प्रविश्य राजदारादीन् दृष्ट्वा सुग्रीवमेव च ।
यदाज्ञापयसे पश्चात्तत्सर्वं करवाणि भोः ॥३८॥

इत्युक्त्वा लक्ष्मणं भक्त्या करे गृह्य स मारुतिः ।
आनयामास नगरमध्याद्राजगृहं प्रति ॥३९॥

पश्यंस्तत्र महासौधान् यूथपानां समन्ततः ।
जगाम भवनं राज्ञः सुरेन्द्रभवनोपमम् ॥४०॥

मध्यकक्षे गता तत्र तारा ताराधिपानना ।
सर्वाभरणसम्पन्ना मदरक्तान्तलोचना ॥४१॥

---

तारा बीच की ड्योढ़ी पर चली आयी। इधर अङ्गद को साथ लेकर हनुमान् जी लक्ष्मण के पास आ पहुँचे ॥३६॥ उन्होंने भक्ति से लक्ष्मण को प्रणाम किया। और स्वागत करते हुए कहा— हे महाभाग ! हे वीर ! यह आप का घर है, आप निःशङ्क होकर आइए ॥३७॥ आप इस अन्तःपुर में प्रवेश कर रानियों एवं सुग्रीव से मिलिए। पश्चात् आपकी जैसी आज्ञा होगी। हम करने को तैयार हैं ॥३८॥

ऐसा कह कर हनुमान् जी बड़ी भक्ति से उनका हाथ पकड़ कर नगर के बीच वाले मार्ग से उन्हें राजमन्दिर की ओर ले चले ॥३९॥ जहाँ-तहाँ यूथपति वानरों के ऊँचे-ऊँचे महल को देखते हुए वे इन्द्र के भवन के समान अतीव शोभायमान राजभवन में पहुंचे ॥४०॥ जहाँ मध्यकक्ष में चन्द्रवदनी तारा पहले से बैठी हुई थी। वह सम्पूर्ण आभूषणों से अलकृत थी एवं मद्यपान से उसके नेत्र अरुणवर्ण के हो रहे थे ॥४१॥

उवाच लक्ष्मणं नत्वा स्मितपूर्वाभिभाषिणी ।
याहि देवर ! भद्रं ते साधुस्त्वं भक्तवत्सलः ॥४२॥
किमर्थं कोपमाकार्षीर्भक्ते भृत्ये कपीश्वरे ।
बहुकालमनाश्वासं दुःखमेवानुभूतवान् ॥४३॥
इदानीं बहुदुःखौघाद् भवद्भिरभिरक्षितः ।
भवत्प्रसादात् सुग्रीवः प्राप्तसौख्यो महामतिः ॥४४॥
कामासक्तो रघुपतेः सेवार्थं नागतो हरिः ।
आगमिष्यन्ति हरयो नानादेशगताः प्रभो ! ॥४५॥
प्रेषिता दशसाहस्रा हरयो रघुसत्तम ! ।
आनेतुं वानरान् दिग्भ्यो महापर्वतसन्निभान् ॥४६॥
सुग्रीवः स्वयमागत्य सर्ववानरयूथपैः ।
वधयिष्यति दैत्यौघान् रावणं च हनिष्यति ॥४७॥

---

उसने लक्ष्मण को देखकर प्रणाम किया फिर हँसते हुए कहने लगी । हे देवर ! आइए आपका कल्याण हो, आप तो बड़े साधु हैं एवं अपने भक्तों पर कृपा करने वाले हैं ।४२।

कपीश्वर तो आप के भक्त एवं सेवक हैं । पुनः आपने उन पर अकारण क्रोध क्यों किया है । उन्होंने तो बहुत काल पर्यन्त दुःख ही दुःख भोगा है, किसी ने भी उन्हें सहारा नहीं दिया ॥४३॥ अब आप लोगों ने उन्हें इस समय दुःख-समूह से बचाया है और आप की प्रसन्नता से ही उन महामति को यह सुख भी प्राप्त हुआ है ।।४४।। वह वानर है अतः कामासक्त होने के कारण श्रीराम की सेवा में अब तक न जा सका । हे प्रभो ! अब शीघ्र ही अनेकों देशों में रहने वाले वानर आने ही वाले हैं ।।४५।।

हे रघुसत्तम ! उन सुग्रीव ने पर्वत के समान विशालकाय वानरों को प्रत्येक दिशाओं से ले आने के लिए दश हजार वानर भेज दिये हैं ।।४६।। सुग्रीव स्वयं वानर यूथाधिपतियों के साथ जाकर दैत्यसमूहों का वध करेंगे एवं रावण का भी वध करेंगे ।।४७।। वे वानरराज आज ही आप के साथ

त्वयैव सहितोऽद्यैव गन्ता वानरपुङ्गवः ।
पश्याऽन्तर्भवनं तत्र पुत्र-दार-सुहृद्वृतम् ॥४८॥

दृष्ट्वा सुग्रीवमभयं दत्त्वा नय सहैव ते ।
ताराया वचनं श्रुत्वा कृशक्रोधोऽथ लक्ष्मणः ॥४९॥

जगामान्तःपुरं यत्र सुग्रीवो वानरेश्वरः ।
रुमामालिङ्ग्य सुग्रीवः पर्यङ्के पर्यवस्थितः ॥५०॥

दृष्ट्वा लक्ष्मणमत्यर्थमुत्पपाताभिभीतवत् ।
तं दृष्ट्वा लक्ष्मणः क्रुद्धो मदविह्वलितेक्षणम् ॥५१॥

सुग्रीवं प्राह दुर्वृत्त ! विस्मृतोऽसि रघूत्तमम् ।
वाली येन हतो वीरः स बाणोऽद्य प्रतीक्षते ॥५२॥

त्वमेव वालिनो मार्गं गमिष्यसि मया हतः ।
एवमत्यन्तपरुषं वदन्तं लक्ष्मणं तदा ॥५३॥

---

श्री रामचन्द्र जी के पास जायेंगे । आप अन्तःपुर में प्रवेश कीजिए एवं पुत्र, स्त्री एवं मित्रों से घिरे हुए उस सुग्रीव को देखिए ।४८॥ सुग्रीव को देखकर आप उसे अभय दान दीजिए और उसे अपने साथ श्री राम जी के पास ले भी जाइए। तारा के इस प्रकार वचन सुन कर लक्ष्मण का क्रोध कुछ ठंढा हुआ ।४९। वे अन्तःपुर में, जहाँ वानरराज सुग्रीव रुमाका आलिङ्गन कर पर्यङ्क पर पड़े थे, वहाँ गये ।५०॥

सुग्रीव लक्ष्मण को देखते ही अत्यन्त भयभीत होकर पर्यङ्क से खड़े हो गये । तदनन्तर मद से विह्वल नेत्र वाले उस सुग्रीव को देखते ही लक्ष्मण शीघ्र कुपित हो गये । उन्होंने सुग्रीवसे कहा ।५१। दुष्ट, दुराचारी सुग्रीव, तुम श्री रामचन्द्र जी को भूल गये । जिस बाण से बाली मारा गया । वही बाण आज तुम्हारी भी प्रतीक्षा कर रहा है ।।५२।। ऐसा प्रतीत होता है कि तू भी मेरे द्वारा मारा जा कर बाली के मार्ग का अनुसरण करना चाहता है । इस प्रकार क्रोध में भरे हुए लक्ष्मण जी को अत्यन्त कठोर भाषण करते देख कर ।५३॥

उवाच हनुमान् वीरः कथमेवं प्रभाषते ।
त्वत्तोऽधिकतरो रामे भक्तोऽयं वानराधिपः ॥५४॥

रामकार्यार्थमनिशं जागर्ति न तु विस्मृतः ।
आगताः परितः पश्य वानराः कोटिशः प्रभो ! ॥५५॥

गमिष्यन्त्यचिरेणैव सीतायाः परिमार्गणम् ।
साधयिष्यति सुग्रीवो रामकार्यमशेषतः ॥५६॥

श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं सौमित्रिर्लज्जितोऽभवत् ।
सुग्रीवोऽप्यर्घ्यपाद्याद्यैर्लक्ष्मणं समपूजयत् ॥५७॥

आलिङ्ग्य प्राह रामस्य दासोऽहं तेन रक्षितः ।
रामः स्वतेजसा लोकान् क्षणार्द्धेनैव जेष्यति ॥५८॥

सहायमात्रमेवाहं वानरैः सहितः प्रभो ! ।
सौमित्रिरपि सुग्रीवं प्राह किञ्चिन्मयोदितम् ॥५९॥

---

वीर हनुमान् जी कहने लगे—महाराज ! आप इस प्रकार की बातें क्यों कह रहे हैं ? ये वानरराज सुग्रीव आप की अपेक्षा कहीं अधिक श्री रामचन्द्रजी के भक्त हैं ॥५४॥ ये राम के कार्य के लिए निरन्तर रात-दिन जागते रहते हैं, उसे भूले नहीं हैं । प्रभो ! देखिए, चारों तरफ से ये वानर करोड़ों की संख्या में यहाँ एकत्रित हो रहे हैं ॥५५॥ ये शीघ्र ही सीता की खोज के लिए इधर-उधर जाने वाले हैं । इस प्रकार सुग्रीव श्री रामचन्द्र जी का सम्पूर्ण कार्य पूरा करेंगे ॥५६॥ श्री हनुमान् जी की बात सुनकर लक्ष्मण जी लज्जित हो गये । सुग्रीव ने भी अर्घ्य, पाद्यादि से लक्ष्मणजी की पूजा की ॥५७॥ और लक्ष्मणजी का आलिङ्गन करते हुए कहा भाई ! मैं तो श्री राम का दास हूँ । उन्होंने मेरी रक्षा की है । राम यदि चाहें तो आधे क्षण में ही अपने तेज से सारे लोकों को जीत सकते हैं ॥५८ । हे प्रभो ! हम तो वानरों के सहित उनके सहायक मात्र होंगे । तब लक्ष्मण ने सुग्रीव से कहा—भाई ! मैंने प्रणय-कोप से तुम्हें कुछ अनुचित कह दिया है, उसे हे महाभाग ! क्षमा करना । हे सुग्रीव !

तत्क्षमस्व महाभाग ! प्रणयाद् भाषितं मया ।
गच्छामोऽद्यैव सुग्रीव ! रामस्तिष्ठति कानने ॥६०॥
एक एवातिदुःखार्त्तो जानकीविरहात् प्रभुः ।
तथेति रथमारुह्य लक्ष्मणेन समन्वितः ॥६१॥
वानरैः सहितो राजा राममेवान्वपद्यत ॥६२॥
भेरी-मृदङ्गैर्बहुऋक्ष-वानरैः श्वेतातपत्रैर्व्यजनैश्च शोभितः ।
नीलाङ्गदाद्यैर्हनुमत्प्रधानैः समावृतो राघवमभ्यगाद्धरिः ॥६३॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
किष्किन्धाकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ४ ॥

*

---

श्री रामचन्द्र जी अकेले वन में होंगे। अब हम लोगों को वहीं चलना चाहिए ।५९-६०। वे प्रभु जानकी के विरह से व्याकुल हो उस वन में अकेले दुःखी होते होंगे। फिर राजा सुग्रीव भी 'तथास्तु' कह कर लक्ष्मण के साथ रथ पर सवार हो वानरों के साथ श्री राम के पास चले ॥६१-६२। उस समय भेरी, मृदङ्ग आदि बाजे बज रहे थे, बहुत से रीछ एवं वानर उनके साथ थे। श्वेत क्षत्र एवं चँवर से वे शोभा प्राप्त कर रहे थे। नील, अङ्गद एवं हनुमान् आदि प्रधान-प्रधान वानर उनको घेरे हुए थे। इस प्रकार सुग्रीव राम के पास पहुँचे ॥६३॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी टीका सहित अध्यात्मरामायण के उमा-महेश्वर संवाद में किष्किन्धाकाण्ड का पञ्चम सर्ग समाप्त॥ ५ ॥

* *

## ६. षष्ठः सर्गः

( सीतान्वेषण, वानरोंका गुहाप्रवेश एवं स्वयम्प्रभाचरित्र )

श्रीमहादेव उवाच

दृष्ट्वा राम समासीनं गुहाद्वारि शिलातले ।
चैलाजिनधरं श्यामं जटामौलिविराजितम् ॥१॥

विशालनयनं शान्तं स्मितचारुमुखाम्बुजम् ।
सीताविरहसन्तप्तं पश्यन्तं मृगपक्षिणः ॥२॥

रथाद् दूरात् समुत्पत्य वेगात् सुग्रीवलक्ष्मणौ ।
रामस्य पादयोरग्रे पेततुर्भक्तिसंयुतौ ॥३॥

रामः सुग्रीवमालिङ्ग्य पृष्ट्वानामयमन्तिके ।
स्थापयित्वा यथान्यायं पूजयामास धर्मवित् ॥४॥

ततोऽब्रवीद् रघुश्रेष्ठं सुग्रीवो भक्तिनम्रधीः ।
देव ! पश्य समायान्तीं वानराणां महाचमूम् ॥५॥

---

श्री महादेव जी बोले—हे पार्वति ! मृग चर्म एव जटा-मुकुट-मण्डित विशाल नेत्र, परम शान्त, सस्मित मुखारविन्द और श्याम वर्ण वाले भगवान् श्री राम जब सीता जी की विरह व्यथा से सन्तप्त होकर मृग और पक्षियों की ओर निहारते हुए गुफा के द्वार पर शिलाखण्ड पर बैठे हुए थे । उसी समय सुग्रीव और लक्ष्मण दूर से ही उन्हें देख शीघ्रता से रथ से उतर पड़े । फिर उन्होंने भक्ति से विनम्र हो श्री रघुनाथ जी के चरणों में प्रणाम किया । १-३ ॥ धर्मज्ञ श्री रामचन्द्र जी ने सुग्रीव का आलिंगन कर उन्हें अपने सन्निकट बिठा कर कुशल-समाचार पूछा और उनका यथोचित आदर किया ॥ ४ ॥

तदनन्तर भक्ति से विनम्र हुए सुग्रीव ने श्री राम से कहा—हे देव ! यह वानरों की महती सेना आ रही है, इसे देखिए ॥ ५ ॥ पर्वत के समान

कुलाचलाद्रिसम्भूता मेरुमन्दरसन्निभाः ।
नानाद्वीपसरिच्छैलवासिनः पर्वतोपमाः ॥६॥

असङ्ख्याताः समायान्ति हरयः कामरूपिणः ।
सर्वे देवांशसम्भूताः सर्वे युद्धविशारदाः ॥७॥

अत्र केचिद् गजबलाः केचिद् दशगजोपमाः ।
गजायुतबलाः केचिदन्येऽमितबलाः प्रभो ! ॥८॥

केचिदञ्जनकूटाभाः केचित्कनकसन्निभाः ।
केचिद्रक्तान्तवदनाः दीर्घबालास्तथापरे ॥९॥

शुद्ध-स्फटिक-सङ्काशाः केचिद्राक्षससन्निभाः ।
गर्जन्तः परितो यान्ति वानरा युद्धकाङ्क्षिणः ॥१०॥

त्वदाज्ञाकारिणः सर्वे फलमूलाशनाः प्रभो ! ।
ऋक्षाणामधिपो वीरो जाम्बवान्नाम बुद्धिमान् ॥११॥

---

विशालकाय ये बानर भिन्न-भिन्न द्वीपों, नदियों तथा पर्वतों पर निवास करने वाले हैं। हिमालय आदि कुल पर्वतों पर उत्पन्न हुए हैं और ऊँचाई में सुमेरु तथा मन्दराचल की बराबरी करने वाले हैं॥ ६॥ ये अगणित तथा विशाल काय बानर इच्छानुसार रूप धारण करने वाले हैं, युद्ध में अति प्रवीण हैं। तथा सभी देवताओं के अंश से उत्पन्न हुए हैं॥ ७॥

हे प्रभो ! इनमें कोई एक हाथी के समान, कोई दश हाथी के समान, कोई एक हजार हाथी के समान बलवान् हैं तथा किन्हीं के तो बल का थाह ही नहीं है॥८॥ इनमें कोई कज्जल गिरि के समान अत्यन्त काले हैं, कोई सुवर्ण के समान पीतवर्ण हैं, किसी का मुखमण्डल रक्तवर्ण का है और किसी के शरीर पर बड़े-बड़े बाल हैं॥९॥ कोई शुद्ध स्फटिक के समान अत्यन्त धवल वर्ण के हैं, तो कोई राक्षस के समान महाभयङ्कर हैं, ये सभी बानर, युद्ध के लिये उतावले हो कर गर्जना करते हुए इधर-उधर दौड़ रहे हैं॥१०॥

हे प्रभो ! ये सभी बानर आपकी आज्ञा का पालन करने वाले हैं, और फल-मूल से ही अपना निर्वाह करने वाले हैं (इनके भरण-पोषण की चिन्ता भी आप को नहीं करनी पड़ेगी।) देखिए, ये ऋक्षों के अधिपति

एष मे मन्त्रिणां श्रेष्ठः कोटिभल्लूकवृन्दपः ।
हनूमानेष विख्यातो महासत्त्वपराक्रमः ॥१२॥
वायुपुत्रोऽतितेजस्वी मन्त्री बुद्धिमतां वरः ।
नलो नीलश्च गवयो गवाक्षो गन्धमादनः ॥१३॥
शरभो मैन्दवश्चैव गजः पनस एव च ।
बलीमुखो दधिमुखः सुषेणस्तार एव च ॥१४॥
केसरी च महासत्त्वः पिता हनुमतो बली ।
एते ते यूथपा राम ! प्राधान्येन मयोदिताः ॥१५॥
महात्मानो महावीर्याः शक्रतुल्यपराक्रमाः ।
एते प्रत्येकतः कोटिकोटिवानरयूथपाः ॥१६॥
तवाज्ञाकारिणः सर्वे सर्वे देवांशसम्भवाः ।
एष वालिसुतः श्रीमानङ्गदो नाम विश्रुतः ॥१७॥
वालितुल्यबलो वीरो राक्षसानां बलान्तकः ।
एते चान्ये च बहवस्त्वदर्थे त्यक्तजीविताः ॥१८॥

---

जाम्बवान् बड़े बुद्धिमान् तथा पराक्रमी हैं ॥११॥ ये एक करोड़ ऋच्छों के यूथपति तथा मेरे मन्त्रिमण्डल में अग्रगण्य हैं। ये महा बलशाली तथा महापराक्रमी हनुमान् हैं, जो जगत् में विख्यात हैं ॥१२॥ अति तेजस्वी, महा बुद्धिमान् ये वायुपुत्र मेरे प्रमुख मन्त्री हैं। इनके अतिरिक्त नल, नील, गवय, गवाक्ष, गन्धमादन, शरभ, मैन्दव, गज, पनस, बलीमुख, दधिमुख, सुषेण, तार तथा हनुमान् के पिता महाबली परमधीर केशरी मेरे प्रधान-प्रधान यूथपति हैं।हे राम ! मैंने इनका निर्देश आप से कर दिया ॥१३-१५॥ ये सभी बड़े महात्मा बलवान् बानर इन्द्र के समान पराक्रमी हैं तथा इनमें से प्रत्येक करोड़ों बानरों के यूथपति हैं ॥१६॥ देवताओं के अंश से उत्पन्न हुए ये सभी वानर आप की आज्ञा का पालन करने वाले हैं। ये बाली के पुत्र श्री-सम्पन्न परम विख्यात अङ्गद हैं ॥१७॥ जो बाली के समान महावीर तथा राक्षस दल का दलन करने वाले हैं। इस प्रकार ये तथा अन्य बहुत से वानर वीर आप के लिए अपने प्राणों की बाजी लगाने को

योद्धारः पर्वताग्रैश्च निपुणाः शत्रुघातने।
आज्ञापय रघुश्रेष्ठ सर्वे ते वशवर्तिनः ॥१९॥
रामः सुग्रीवमालिङ्ग्य हर्षपूर्णाश्रुलोचनः।
प्राह सुग्रीव! जानासि सर्वं त्वं कार्यगौरवम् ॥२०॥
मार्गणार्थं हि जानक्या नियुज्यन्त्र यदि रोचते।
श्रुत्वा रामस्य वचनं सुग्रीवः प्रीतमानसः ॥२१॥
प्रेषयामास बलिनो वानरान् वानरर्षभः।
दिक्षु सर्वासु विविधान् वानरान् प्रेष्य सत्वरम् ॥२२॥
दक्षिणां दिशमत्यर्थं प्रयत्नेन महाबलान्।
युवराजं जाम्बवन्तं हनूमन्तं महाबलम् ॥२३॥
नलं सुषेणं शरभं मैन्दं द्विविदमेव च।
प्रेषयामास सुग्रीवो वचनं चेदमब्रवीत् ॥२४॥
विचिन्वन्तु प्रयत्नेन भवन्तो जानकीं शुभाम्।
मासादर्वाङ् निवर्तध्वं मच्छासनपुरःसराः ॥२५॥

---

उद्यत हैं ॥१८॥ पर्वत के शिखर से लड़ने वाले ये वानर शत्रुओं का नाश करने में बड़े कुशल हैं। हे रघुश्रेष्ठ! ये सभी आप के वश में रहने वाले है, आप इन्हें यथेच्छ आज्ञा दीजिए ॥१९॥

सुग्रीव की बात सुन कर श्रीराम के नेत्रों में हर्षातिरेक जल भर आया, फिर उन्होंने सुग्रीव को गले से लगाकर कहा—'सुग्रीव! तुम मेरे कार्य की कठिनाई को जानते हो ॥२०॥ यदि तुम उचित समझो, तो इन वानरों को यथायोग्य जानकी की खोज के लिए नियुक्त कर दो।' राम का ऐसा वचन सुनकर वानरश्रेष्ठ सुग्रीव परम प्रसन्न हो उठे ॥२१॥ फिर उन्होंने बहुत से बलवान् वानरों को सीता की खोज के लिए प्रत्येक दिशाओं में बड़ी शीघ्रता से भेज दिया। और दक्षिण दिशा में प्रयत्न पूर्वक महाबलवान् युवराज अङ्गद, जाम्बवान्, हनुमान्, नल, सुषेण, शरभ, मैन्द और द्विविद आदि को भेजा तथा उनसे इसप्रकार कहा ॥२२-२४॥ आप सभी वानर मेरी आज्ञा से प्रयत्न पूर्वक जानकी का खोज करो। और मेरी आज्ञानुसार एक मास के भीतर ही लौट कर चले आओ ॥२५॥ अन्यथा

सीतामदृष्ट्वा यदि वो मासादूर्ध्वं दिनं भवेत् ।
तदा प्राणान्तिकं दण्डं मत्तः प्राप्स्यथ वानराः ॥२६॥
इति प्रस्थाप्य सुग्रीवो वानरान् भीमविक्रमान् ।
रामस्य पार्श्वे श्रीरामं नत्वा चोपविवेश सः ॥२७॥
गच्छन्तं मारुतिं दृष्ट्वा रामो वचनमब्रवीत् ।
अभिज्ञानार्थमेतन्मे ह्यङ्गुलीयकमुत्तमम् ॥२८॥
मन्नामाक्षरसंयुक्तं सीतायै दीयतां रहः ।
अस्मिन् कार्ये प्रमाणं हि त्वमेव कपिसत्तम ! ।
जानामि सत्त्वं ते सर्वं गच्छ पन्थाः शुभस्तव ॥२९॥
एवं कपीनां राज्ञा ते विसृष्टाः परिमार्गणे ।
सीतायां अङ्गदमुखा बभ्रमुस्तत्र तत्र ह ॥३०॥
भ्रमन्तो विन्ध्यगहने ददृशुः पर्वतोपमम् ।
राक्षसं भीषणाकारं भक्षयन्तं मृगान् गजान् ॥३१॥

हे वानरो ! याद रखो, यदि सीता को बिना देखे तुम लोगों को एक मास से एक दिन भी अधिक हुआ तो अवश्य ही मेरे द्वारा दिये गये प्राणान्तक दण्ड का भोग भोगना पड़ेगा ॥२६॥ इस प्रकार जानकी के खोज के लिये महापराक्रमी वीर वानरों को भेज कर सुग्रीव श्री रामचन्द्रजी को प्रणाम कर उनके पास जाकर बैठ गये ॥२७॥

उस समय पवन पुत्र हनुमान् को जाते देख श्रीराम ने उनसे कहा—हे कपिश्रेष्ठ ! तुम परिचय के लिए मेरी इस उत्तम अँगूठी को लेते जाओ ॥२८॥ इस पर मेरे नामाक्षर खुदे हुए हैं, तुम इसे एकान्त में सीता को देना । हे कपिश्रेष्ठ ! इस प्रकार के कार्य में केवल तुम्हीं समर्थ हो; मैं अच्छी तरह तुम्हारे बल तथा बुद्धि को जानता हूँ । अच्छा, अब जाओ, तुम्हारा मार्ग कल्याणमय हो ॥२९॥ इस प्रकार वानर राज सुग्रीव के भेजे हुए वे अङ्गदादि वानर गण सीता की खोज करते हुए पृथ्वी में जहाँ-तहाँ भ्रमण करने लगे ॥३०॥ फिर घूमते हुए उन लोगों ने विन्ध्य के गहन वन में एक पर्वताकार राक्षस देखा, जो जंगली जानवर तथा हाथियों को पकड़-पकड़ कर खा रहा था ॥३१॥ कुछ वानरों ने उसे यही रावण है,

रावणोऽयमिति ज्ञात्वा केचिद् वानरपुङ्गवाः ।
जघ्नुः किलकिलाशब्दं मुञ्चन्तो मुष्टिभिः क्षणात् ॥३२॥

नाऽयं रावण इत्युक्त्वा ययुरन्यन्महद्वनम् ।
तृषार्ताः सलिलं तत्र नाविन्दन् हरिपुङ्गवाः ॥३३॥

विभ्रमन्तो महारण्ये शुष्क-कण्ठोष्ठ-तालुकाः ।
ददृशुर्गह्वरं तत्र तृणगुल्मावृतं महत् ॥३४॥

आर्द्रपक्षान् क्रौञ्चहंसान्निःसृतान् ददृशुस्ततः ।
अत्रास्ते सलिलं नूनं प्रविशामो महागुहाम् ॥३५॥

इत्युक्त्वा हनुमानग्रे प्रविवेश तमन्वयुः ।
सर्वे परस्परं धृत्वा बाहून् बाहुभिरुत्सुकाः ॥३६॥

अन्धकारे महद्दूरं गत्वा पश्यन् कपीश्वराः ।
जलाशयान् मणिनिभतोयान् कल्पद्रुमोपमान् ॥३७॥

---

ऐसा समझ कर किल-किलाते हुए एक क्षण में ही अपने घूँसों से मार डाला ॥३२॥ 'इतनी सरलता से उसे मरा देख वानरों ने विचार किया कि यह रावण नहीं हो सकता ऐसा विचार वे सीता को खोजते हुए दूसरे वन में चले गये, जहाँ उन्हें बहुत प्यास लग गयी किन्तु बहुत खोजने पर भी उन्हें कहीं जल नहीं प्राप्त हुआ ॥३३॥ उस भयकर वन में जल की तलाश में भटकते हुए वानरों के कण्ठ तथा तालु सूख गये। फिर उन्होंने तृण, गुल्म एवं लता आदि से ढंकी हुई एक विशाल गुफा देखी ॥३४॥

तदनन्तर उन्होंने भीगे हुए पङ्खवाले क्रौञ्च तथा हंस पक्षियों को उस गुफा से निकलते हुए देखा। उन्होंने विचार किया कि अवश्य ही इस गुफा में जल होगा। अतः इसमें प्रवेश करना चाहिए ॥३५॥

सर्व-प्रथम हनुमान् जी आगे चले, तदनन्तर उनके पिछे अन्य सभी वानर एक दूसरे की बाँह पकड़े हुए उत्सुकता से गुफा में प्रवेश करने लगे ॥३६॥ दूर तक अन्धकारमें जानेके पश्चात् उन वानरोंने देखा कि वहाँ स्फटिक मणि के समान स्वच्छ जल से पूर्ण कई जलाशय हैं और उनके

वृक्षान् पक्वफलैर्नम्रान् मधुद्रोणसमन्वितान् ।
गृहान् सर्वगुणोपेतान् मणिवस्त्रादिपूरितान् ॥३८॥

दिव्यभक्ष्यान्नसहितान् मानुषैः परिवर्जितान् ।
विस्मितास्तत्र भवने दिव्ये कनकविष्टरे ॥३९॥

प्रभया दीप्यमानां तु ददृशुः स्त्रियमेककाम् ।
ध्यायन्तीं चीरवसनां योगिनीं योगमास्थिताम् ॥४०॥

प्रणेमुस्तां महाभागां भक्त्या भीत्या च वानराः ।
दृष्ट्वा तान् वानरान् देवी प्राह यूयं किमागताः ॥४१॥

कुतो वा कस्य दूता वा मत्स्थानं किं प्रधर्षथ ? ।
तच्छ्रुत्वा हनुमानाह शृणु वक्ष्यामि देवि ! ते ॥४२॥

अयोध्याधिपतिः श्रीमान् राजा दशरथः प्रभुः ।
तस्य पुत्रो महाभागो ज्येष्ठो राम इति श्रुतः ॥४३॥

---

समीप में पके हुए फलों के भार से नम्र शाखा वाले सुन्दर वृक्ष कल्प तरु के समान शोभित हो रहे हैं, जिनमें मधु के छत्ते लगे हुए हैं। और पास में ही नाना प्रकार के मणियों, बहुमूल्य वस्त्रों तथा दिव्य भक्ष्य-भोज्यादि सामग्रियों से परिपूर्ण सर्वगुण सम्पन्न निर्जन भवन भी बने हुए हैं। फिर उन्होंने आश्चर्यचकित हो देखा कि एक दिव्य भवन में सुवर्ण सिंहासन पर कोई रमणी विराज रही है। जो अकेले ही अपने शरीर की प्रभा से दिशाओं को प्रकाशित कर रही थी। वह सुन्दरी योगाभ्यास में तत्पर योगिनी जैसी प्रतीत हो रही थी और वल्कल वस्त्र धारण कर ध्यान में लीन थी ॥३७-४०॥ उन वानरों ने उस महाभागा स्त्री को भय तथा प्रीति से प्रणाम किया, तब उस देवी ने उन्हें देखकर कहा—तुम लोग कौन हो और कहां से आये हो ? तुम किसके दूत हो और मेरे इस स्थान को क्यों तहस-नहस कर रहे हो ? यह सुनकर हनुमान् ने कहा–हे देवि ! तुम हम लोगों का वृत्तान्त सुनो, मैं निवेदन करता हूं ॥४१-४२॥

अयोध्याधिपति, परमैश्वर्य सम्पन्न महाराज दशरथ के सौभाग्य शाली ज्येष्ठपुत्र श्रीराम नाम से इस जगत् में विख्यात हैं ॥४३॥ वे अपने पिता की

पितुराज्ञां पुरस्कृत्य सभार्यः सानुजो वनम् ।
गतस्तत्र हृता भार्या तस्य साध्वी दुरात्मना ॥४४॥

रावणेन ततो रामः सुग्रीवं सानुजो ययौ ।
सुग्रीवो मित्रभावेन रामस्य प्रियवल्लभाम् ॥४५॥

मृगयध्वमिति प्राह ततो वयमुपागताः ।
ततो वनं विचिन्वन्तो जानकीं जलकाङ्क्षिणः ॥४६॥

प्रविष्टा गह्वरं घोरं दैवादत्र समागताः ।
त्वं वा किमर्थमत्रासि का वा त्वं वद नः शुभे ! ॥४७॥

योगिनी च तथा दृष्ट्वा वानरान् प्राह हृष्टधीः ।
यथेष्टं फलमूलानि जग्ध्वा पीत्वा मृतं पयः ॥४८॥

आगच्छत ततो वक्ष्ये मम वृत्तान्तमादितः ।
तथेति भुक्त्वा पीत्वा च हृष्टास्ते सर्ववानराः ॥४९॥

---

आज्ञा मानकर अपनी स्त्री तथा छोटे भाई को साथ लेकर वन में आये हैं। वहाँ उनकी परम साध्वी भार्या को दुरात्मा रावण हर ले गया। तब वे राम अपने छोटे भाई लक्ष्मणके साथ सुग्रीव के पास गये। सुग्रीवने उनसे मित्रता हो जाने पर हम लोगों को आज्ञा दी है कि तुम लोग राम की प्राणप्रिय भार्या की खोज करो। इसी लिए हम लोग यहाँ इस वन में आये हुये हैं, किन्तु जानकी को ढूँढते-ढूँढते हम लोगोंको प्यास लग गयी ॥४४-४६॥ फिर जल खोजते हुए हम लोग इस घोर गुफा में घुस गये और दैव-वश आप के इस आश्रम में चले आये। हे शुभे ! अब तुम बताओ कि तुम कौन हो ? और किस निमित्त यहाँ निवास करती हो ॥४७॥ उन वानरों को देखकर योगिनी बड़ी प्रसन्न हुई और कहने लगी—'पहले तुम लोग यथेष्ट फल-मूल खाकर अमृत के समान इस जल का पान करो, पश्चात् मेरे समीप आना। तब मैं प्रारम्भ से तुम लोगों को अपना सारा वृत्तान्त सुनाऊँगी।' तब वानरों ने 'बहुत अच्छा' कहकर यथेष्ट फल-मूलादि भोजन कर जल-पान किया फिर परम प्रसन्न हो उस देवी के समीप आकर हाथ जोड़े हुए

देव्याः समीपं गत्वा ते बद्धाञ्जलिपुटाः स्थिताः ।
ततः प्राह हनूमन्तं योगिनी दिव्यदर्शना ॥५०॥
हेमा नाम पुरा दिव्यरूपिणी विश्वकर्मणः ।
पुत्री महेशं नृत्येन तोषयामास भामिनी ॥५१॥
तुष्टो महेशः प्रददाविदं दिव्यपुरं महत् ।
अत्र स्थिता सा सुदती वर्षाणामयुतायुतम् ॥५२॥
तस्या अहं सखी विष्णुतत्परा मोक्षकाङ्क्षिणी ।
नाम्ना स्वयम्प्रभा दिव्यगन्धर्वतनया पुरा ॥५३॥
गच्छन्ती ब्रह्मलोकं सा मामाहेदं तपश्चर ।
अत्रैव निवसन्ती त्वं सर्वप्राणिविवर्जिते ॥५४॥
त्रेतायुगे दाशरथिर्भूत्वा नारायणोऽव्ययः ।
भूभारहरणार्थाय विचरिष्यति कानने ॥५५॥

---

खड़े हो गये । तदनन्तर दिव्य दृष्टि-सम्पन्न उस योगिनी ने हनुमान् जी से इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया ॥४८-५०॥

पूर्वकाल में विश्वकर्मा को हेमा नाम की एक परम सुन्दरी पुत्री थी, उसने अपने नृत्य से महादेव जी को प्रसन्न किया ॥५१॥ उसके नृत्य से प्रसन्न हुए महादेव ने उसके निवास के लिए यह परम दिव्य नगर दिया । उस सुन्दरी ने यहाँ निवास करते हुए कई हजार वर्ष बिता दिये ॥५२॥ मैं उसी की सखी हूँ । मेरा नाम स्वयंप्रभा है । मैं भी दिव्य गन्धर्व की कन्या हूँ और मोक्ष की इच्छा से यहाँ विष्णु की उपासना करती हूँ ॥५३॥ जब हेमा ब्रह्मलोक को जाने लगी तब उसने मुझसे कहा कि तुम प्राणि-वर्जित सर्वथा इस एकान्त स्थान में तप करो ॥ ५४ ॥ त्रेतायुग में जब अव्यय नारायण पृथ्वी का भार उतारने के लिए दशरथ के पुत्र रूप में अवतार धारण करेंगे तब इस वन में विचरण करेंगे ॥५५॥ उनकी

मार्गन्तो वानरास्तस्य भार्यामायान्ति ते गुहाम्।
पूजयित्वाऽथ तान् नत्वा रामं स्तुत्वा प्रयत्नतः॥५६॥
यातासि भवनं विष्णोर्योगिगम्यं सनातनम्।
इतोऽहं गन्तुमिच्छामि रामं द्र[illegible] त्वरान्विता॥५७॥
यूयं पिदध्वमक्षीणि गमि[illegible]हिर्गुहाम्।
तथैव चक्रुस्ते वेगाद् गताः पूर्वस्थितं वनम्॥५८॥
साऽपि त्यक्त्वा गुहां शीघ्रं ययौ राघवसन्निधिम्।
तत्र रामं स-सुग्रीवं लक्ष्मणं च ददर्श ह॥५९॥
कृत्वा प्रदक्षिणं रामं प्रणम्य बहुशः सुधीः।
आह गद्गदया वाचा रोमाञ्चिततनूरुहा॥६०॥
दासी तवाऽहं राजेन्द्र! दर्शनार्थमिहागता।
बहुवर्षसहस्राणि तप्तं मे दुश्चरं तपः॥६१॥

---

भार्या को ढूँढ़ते हुए कुछ वानर तुम्हारी गुफा में आयेंगे। फिर तुम उनका यथोचित सम्मान कर श्रीराम के पास जा उनकी वन्दना तथा स्तुति करना; ऐसा करने से तू विष्णु के उस शाश्वत धाम को चली जायेगी, जहाँ केवल योगिजन ही जा पाते हैं। अतः हे वानरो! वह काल उपस्थित हो गया है। अब मैं श्री राम का दर्शन करने के लिए जाना चाहती हूँ॥ ५६-५७॥ तुम लोग अपनी आँख मूँद लो, अभी गुफा के बाहर चले जाओगे, उन्होंने ऐसा ही किया और तुरन्त ही पहले वन में अपने को उपस्थित देखा॥ ५८॥ इधर वह योगिनी भी उस गुफा को छोड़कर बड़ी शीघ्रता से श्रीराम के पास आयी और वहाँ पहुँचते ही उसने सुग्रीव तथा लक्ष्मण सहित श्रीराम का दर्शन किया॥ ५९॥ उस बुद्धिमती ने राम की प्रदक्षिणा कर उन्हें बारम्बार प्रणाम किया और पुलकित हो गद्गद वाणी से इस प्रकार कहने लगी—॥ ६०॥ हे राजराजेश्वर! मैं आपकी दासी हूँ और आपके दर्शन के लिए यहाँ आयी हूँ। मैंने आपके दर्शन के लिए ही इस गुफा में रह कर सहस्रों वर्ष पर्यन्त बड़ी घोर तपस्या की है। आज मेरा

गुहायां दर्शनार्थं ते फलितं मेऽद्य तत्तपः ।
अद्य हि त्वां नमस्यामि मायायाः परतः स्थितम् ॥६२॥

[illegible]चालक्ष्यं बहिरन्तरवस्थितम् ।
योगमायाजवनिकाच्छन्नो मानुषविग्रहः ॥६३॥

न लक्ष्यसेऽज्ञानदृशां शैलूष इव रूपधृक् ।
महाभागवतानां त्वं भक्तियोगविधित्सया ॥६४॥

अवतीर्णोऽसि भगवन्! कथं [illegible]नामि तामसी ।
लोके जानातु यः कश्चित्तव तत्त्वं रघूत्तम! ॥६५॥

ममैतदेव रूपं ते सदा भातु हृदालये ।
राम! ते पादयुगलं दर्शितं मोक्षदर्शनम् ॥६६॥

---

वह तप सफल हो गया। अहो! आज मेरा कैसा अहोभाग्य है, जो मायातीत समस्त भूतों से अलक्षित बाहर तथा भीतर सर्वत्र विराजमान आप परमेश्वर को साक्षात् प्रणाम कर रही हूँ। आप योगमाया से आवृत होकर साक्षात् मनुष्य शरीर से प्रगट हुए हैं। जिस प्रकार माया का रूप धारण करने वाले नट को सामान्य पुरुष नहीं पहचान पाता, उसी प्रकार अज्ञानी लोग भी आपके वास्तविक रूप को नहीं जान पाते। आप महा भागवतों को अपने भक्तियोग का पाठ पढ़ाने के लिए ही अवतार धारण करते हैं ॥ ६१-६४ ॥

हे भगवन्! मैं तो तमोगुण सम्पन्न स्त्री हूँ फिर आप को किस प्रकार जान सकती हूँ। हे रघुश्रेष्ठ! इस लोक में कोई भले ही आपके तत्त्व का ज्ञाता हो जावे किन्तु मेरे हृदय रूपी गृह में आप का यही स्वरूप निवास करे। हे राम! यह मेरा परम सौभाग्य ही है, जो आपके मोक्षदायक चरण-कमलों का दर्शन प्राप्त हुआ ॥ ६५-६६ ॥ आपके चरण-कमलों का

अदर्शनं भवार्णानां सन्मार्गपरिदर्शनम् ।
धन - पुत्र - कलत्रादि - विभूति - परिदर्पितः ।
अकिञ्चनधनं त्वाद्य नाभिधातुं जनोऽर्हति ॥६७॥
निवृत्तगुणमार्गाय निष्किञ्चनधनाय ते ॥६८॥
नमः स्वात्माभिरामाय निर्गुणाय गुणात्मने ।
कालरूपिणमीशानमादि - मध्यान्त - वर्जितम् ॥६९॥
समं चरन्तं सर्वत्र मन्ये त्वां पुरुषं परम् ।
देव ! ते चेष्टितं कश्चिन्न वेद नृविडम्बनम् ॥७०॥
न तेऽस्ति कश्चिद् दयितो द्वेष्यो वापर एव च ।
त्वन्मायापिहितात्मानस्त्वां पश्यन्ति तथाविधम् ॥७१॥
अजस्याकर्तुरीशस्य देव - तिर्यङ् - नरादिषु ।
जन्मकर्मादिकं यद्यत्तदत्यन्तविडम्बनम् ॥७२॥

---

दर्शन करने से संसार-समुद्र का पुनः दर्शन नहीं होता किन्तु सन्मार्ग का दर्शन अवश्य होता है।

हे आदि पुरुष ! जो धन, पुत्र, कलत्र तथा ऐश्वर्य के मद से मत्त है भला वह आपको किस प्रकार प्राप्त कर सकता है, क्योंकि आप तो ( पुत्र-दारादि सर्वस्व का त्याग करने वाले ) अकिञ्चनों के सर्वस्व हैं ॥६७॥ सर्वथा गुणातीत, अकिञ्चनों के सर्वस्व, आत्मस्वरूप में रमण करनेवाले निर्गुण तथा सगुण रूपसे वर्तमान आपको मैं बारम्बार प्रणाम करती हूँ। मैं आपको कालरूप से सबका नियामक ईशान स्वरूप, आदि, मध्य तथा अन्त रहित सर्वत्र समान रूप से व्याप्त परात्पर पुरुष मानती हूँ। इतना ही नहीं, हे देव ! आप मनुष्य रूप धारण कर जो-जो लीलायें करते हैं उसका मर्म कोई भी नहीं जान पाता ॥ ६८-७० ॥ हे प्रभो ! यद्यपि आप का कोई प्रिय अथवा अप्रिय नहीं है किन्तु आपकी माया से आवृत अन्तःकरण वाले लोग आप में अपनी भावना के अनुसार प्रियत्व तथा अप्रियत्व का व्यवहार करते हैं ॥ ७१ ॥ आप अजन्मा हैं, अकर्त्ता हैं और ईश्वर हैं, किन्तु देव, तिर्यक् तथा मनुष्यादि योनियों में जन्म लेकर जो कर्म करते हैं वह भी आप की महान् लीला ही है। ७२ ॥

त्वामाहुरक्षरं जातं कथाश्रवणसिद्धये ।
केचित् कोसलराजस्य तपसः फलसिद्धये ॥७३॥
कौसल्यया प्रार्थ्यमानं जातमाहुः परे जनाः ।
दुष्टराक्षस - भूभार - हरणायार्थितो विभुः ॥७४॥
ब्रह्मणा नररूपेण जातोऽयमिति केचन ।
शृण्वन्ति गायन्ति च ये कथास्ते रघुनन्दन ! ॥७५॥
पश्यन्ति तव पादाब्जं भवार्णवसुतारणम् ।
त्वन्मायागुणबद्धाहं व्यतिरिक्तं गुणाश्रयम् ॥७६॥
कथं त्वां देव ! जानीयां स्तोतुं वा विषयं विभुम् ।
नमस्यामि रघुश्रेष्ठं बाणासनशरान्वितम् ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सुग्रीवादिभिरन्वितम् ॥७७॥
एवं स्तुतो रघुश्रेष्ठः प्रसन्नः प्रणताघहृत् ।
उवाच योगिनीं भक्तां किं ते मनसि काङ्क्षितम् ॥७८॥

---

कोई तो आप अक्षर पुरुष के इस जन्म तथा कर्म को कथा श्रवण सिद्धि ही प्रयोजन मानते हैं तथा कोई यह भी कहते हैं कि कोशलेश महाराज दशरथ की महती तपस्या का फल देने के लिए ही आपका यह जन्म तथा कर्म है ॥७३॥ किन्हीं लोगों का कहना है कि कौसल्या द्वारा प्रार्थना किये जाने पर आप प्रगट हुए हैं, तथा किन्हीं लोगों का ऐसा भी मत है कि भूमि के भारभूत राक्षसों के विनाश के लिए ब्रह्मा के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर सर्वव्यापक होते हुए भी आप मनुष्य शरीर धारण करते हैं

हे रघुनन्दन ! हम बहुत क्या कहें, जो लोग आप की कथा को सुनते हैं अथवा कहते हैं वे अवश्य ही संसार-सागर को पार करनेवाले आपके चरण-कमलों का दर्शन प्राप्त करते हैं। हे देव ! मैं आप की माया के गुणों से सर्वथा बद्ध हूँ फिर मायातीत तथा गुणों के आश्रयभूत आप को किस प्रकार जान सकती हूँ । वाणी से अगोचर होनेके कारण आप सर्व व्यापक की मैं किस प्रकार स्तुति भी कर सकती हूँ। अतः अनुज लक्ष्मण तथा सुग्रीवादि पार्षदों से युक्त धनुष पर बाण चढ़ाये हुए आप रघुश्रेष्ठ को केवल प्रणाम मात्र करती हूँ ॥ ७४-७७ ॥ इस प्रकार स्वयंप्रभा के द्वारा स्तुति किये जाने पर प्रणत पापहारी श्री रघुनाथ जी परम प्रसन्न हो उस अनन्य भक्ता योगिनी से बोले—देवि ! तेरी क्या मानसिक इच्छा है ॥७८॥ तब

सा प्राह राघवं भक्त्या भक्तिं ते भक्तवत्सल ! ।
यत्र कुत्रापि जाताया निश्चलां देहि मे प्रभो ! ॥७९॥
त्वद्भक्तेषु सदा सङ्गो भूयान्मे प्राकृतेषु न ।
जिह्वा मे राम रामेति भक्त्या वदतु सर्वदा ॥८०॥
मानसं श्यामलं रूपं सीतालक्ष्मणसंयुतम् ।
धनुर्बाणधरं पीतवाससं मुकुटोज्ज्वलम् ॥८१॥
अङ्गदैर्नूपुरैर्मुक्ताहारैः कौस्तुभकुण्डलैः ।
भान्तं स्मरतु मे राम ! वरं नाऽन्यं वृणे प्रभो ! ॥८२॥

श्रीराम उवाच

भवत्वेवं महाभागे ! गच्छ त्वं बदरीवनम् ।
अत्रैव मां स्मरन्ती त्वं त्यक्त्वेदं भूतपञ्चकम् ।
मामेव परमात्मानमचिरात् प्रतिपद्यसे ॥८३॥

---

उसने भक्ति युक्त हो श्रीरघुनाथजी से कहा—हे भक्तवत्सल प्रभो ! मैं जहाँ कहीं भी जन्म लूँ वहाँ-वहाँ आप मुझे अपनी भक्ति प्रदान करें ।७९॥ और मेरे प्रत्येक जन्म में आपके भक्तों का साथ होता रहे किन्तु संसारी लोगों से मेरा संग न रहे । और मेरी यह जिह्वा सदा भक्ति से 'राम राम' रटती रहे ॥ ८० ॥

धनुष-बाण धारण किये हुए हैं, पीताम्बर धारी, मुकुट, भुजबन्द, नूपुर, मोतियों की माला, कौस्तुभमणि तथा कुण्डलों से विभूषित सीता तथा लक्ष्मण युक्त आप के इस सांवले तथा सलोने रूप का मेरा मन प्रतिक्षण चिन्तन करता रहे हे प्रभो ! इसके अतिरिक्त मैं और कोई वर नहीं माँगती ॥ ८१-८२ ॥

श्री राम जी बोले—हे महाभागे ! ऐसा ही हो, अब तू बदरिकाश्रम को चली जा, वहाँ तुम मेरा स्मरण करती हुई अपने इस पाञ्चभौतिक शरीर को त्यागकर शीघ्र ही तुम मुझ परमात्माको प्राप्त करोगी ॥८३॥ श्रीरघुनाथ

श्रुत्वा रघूत्तमवचाऽमृतसारकल्पं
गत्वा तदैव बदरीतरुखण्डजुष्टम् ।
तीर्थं तदा रघुपतिं मनसा स्मरन्ती
त्यक्त्वा कलेवरमवाप परं पदं सा ॥८४॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
किष्किन्धाकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

*

## ७. सप्तमः सर्गः

( वानरोंका प्रायोपवेशन तथा सम्पातिसे भेंट )

श्रीमहादेव उवाच

अथ तत्र समासीना वृक्षखण्डेषु वानराः ।
चिन्तयन्तो विमुह्यन्तः सीतामार्गणकर्षिताः ॥१॥
तत्रोवाचाङ्गदः कांश्चिद् वानरान् वानरर्षभः ।
भ्रमतां गह्वरेऽस्माकं मासो नूनं गतोऽभवत् ॥२॥

---

जी के अमृत के समान मधुर वचन सुनकर स्वयंप्रभा उसी समय बदरी वन-मण्डित बदरिकाश्रम तीर्थ में चली गयी, और श्री रघुनाथ जी का स्मरण करती हुई अपने शरीर का त्याग कर परम पद को प्राप्त हो गयी ॥८४॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दीटीका सहित अध्यात्म-रामायण
के उमा-महेश्वर संवाद में किष्किन्धाकाण्ड का
षष्ठ सर्ग समाप्त ।

*

श्री महादेव जी बोले—हे पार्वति ! सीता की खोज में थके हुए वानर गुहा के समीप वाले वृक्ष - समूहों पर बैठ कर मोहित हो विचार करने लगे ॥१॥ उस समय कपिश्रेष्ठ अङ्गद कुछ वानरों से इस प्रकार कर रहे थे। सीता के खोजते हुए हम लोगों की एक मास की अवधि तो इस गुफा में ही निश्चित रूप से पूरी हो गयी ॥२॥ किन्तु सीता का पता अबतक न

सीता नाधिगतास्माभिर्न कृतं राजशासनम् ।
यदि गच्छामः किष्किन्धां सुग्रीवोऽस्मान् हनिष्यति ॥३॥
विशेषतः शत्रुसुतं मां मिषान्निहनिष्यति ।
मयि तस्य कुतः प्रीतिरहं रामेण रक्षितः ॥४॥
इदानीं रामकार्यं मे न कृतं तन्मिषं भवेत् ।
तस्य मद्धनने नूनं सुग्रीवस्य दुरात्मनः ॥५॥
मातृकल्पां भ्रातृभार्यां पापात्मानुभवत्यसौ ।
न गच्छेयमतः पार्श्वं तस्य वानरपुङ्गवाः ॥६॥
त्यक्ष्यामि जीवितं चात्र येन केनापि मृत्युना ।
इत्यश्रुनयनं केचिद् दृष्ट्वा वानरपुङ्गवाः ॥७॥
व्यथिताः साश्रुनयना युवराजमथाब्रुवन् ॥८॥
किमर्थं तव शोकोऽत्र वयं ते प्राणरक्षकाः ।
भवामो निवसामोऽत्र गुहायां भयवर्जिताः ॥९॥

---

लगा। इसलिए राजाज्ञा का पालन न कर सकने के कारण यदि हम लोग किष्किन्धा लौट कर चलें तो सुग्रीव हमें अवश्य मार डालेंगे ॥३॥ विशेष कर मैं तो उसके शत्रु का लड़का हूँ। वह अवश्य ही इसी बहाने मेरा वध कर डालेगा। भला, मुझमें उसकी प्रीति कैसे हो सकती है, मेरी रक्षा तो श्री रामचन्द्र जी ही करते रहे हैं ॥४॥

अब तो मैंने श्री राम का भी कार्य नहीं किया, अतः उस दुरात्मा सुग्रीव को मुझे मारने के लिए एक अच्छा बहाना मिल गया ॥५॥ वह सुग्रीव महा पापात्मा है; जो माता के समान अपने जेठे भाई की स्त्री से संभोग करता है। इसलिए हे वानरो! अब मैं उसके पास कदापि न जाऊँगा ॥६॥ जिस-किसी भी प्रकार से मर कर अपना जीवन समाप्त करूँगा। इस प्रकार से कहते हुए अङ्गद को अश्रुपूर्ण देख कर प्रमुख-प्रमुख वानरों को अत्यन्त क्लेश हुआ। वे भी आँखों में आँसू भर कर अङ्गद से इस प्रकार कहने लगे ॥७-८॥ युवराज अङ्गद! आप इस प्रकार शोक क्यों करते हैं? हम लोग आप के प्राणों की रक्षा करेंगे। और इस गुफा में निर्भय होकर आप के साथ निवास करेंगे ॥९॥

सर्वसौभाग्यसहितं पुरं देवपुरोपमम् ।
शनैः परस्परं वाक्यं वदतां मारुतात्मजः ॥१०॥
श्रुत्वाङ्गदं समालिङ्ग्य प्रोवाच नयकोविदः ।
विचार्यते किमर्थं ते दुर्विचारो न युज्यते ॥११॥
राज्ञोऽत्यन्तप्रियस्त्वं हि तारापुत्रोऽतिवल्लभः ।
रामस्य लक्ष्मणात् प्रीतिस्त्वयि नित्यं वर्धते ॥१२॥
अतो न राघवाद् भीतिस्तव राज्ञो विशेषतः ।
अहं तव हिते सक्तो वत्स ! नाऽयं विचारय ॥१३॥
गुहावासश्च निर्भेद्य इत्युक्तं वानरैस्तु यत् ।
तदेतद्रामबाणानामभेद्यं किं जगत्त्रये ॥१४॥
ये त्वां दुर्बोधयन्त्येते वानरा वानरर्षभ ! ।
पुत्रदारादिकं त्यक्त्वा कथं स्थास्यन्ति ते त्वया ॥१५॥

---

इसमें जो नगर है वह तो सम्पूर्ण सुख की सामग्री से सम्पन्न है और स्वर्ग के समान मनोहर है। इस प्रकार आपस में धीरे-धीरे बात चीत करते हुए वानरों के शब्द हनुमान् जी के कानों में पड़ गये ॥१०॥ इस बात को सुनते ही नीति-निपुण हनुमान् जी अङ्गद को गले लगा कर कहने लगे—अङ्गद ! तुम इस प्रकार का विचार क्यों कर रहे हो, तुम्हें ऐसी दुर्भावना अपने मन में कदापि नहीं लानी चाहिए ॥ ११ ॥ तुम तो सुग्रीव को अत्यन्त प्यारे हो, क्योंकि तारा के अत्यन्त लाड़ले लाल हो। और राम की प्रीति तो तुम में लक्ष्मण से भी बढ़कर है ॥१२॥ इसलिए तुम्हें राम से कोई भय नहीं होना चाहिए, विशेष कर सुग्रीव से। हे वत्स ! फिर मैं तो तुम्हारी भलाई के लिए सतत उद्यत हूँ। फिर तुम अन्य प्रकार का विचार छोड़ दो ॥१३॥

जिन वानरों ने तुम से कहा है कि गुफा का निवास सर्वथा निरापद है; तो इसे समझ लो कि राम के बाणों के लिए इस त्रिलोकी में कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो उनके बाणों के लिए अभेद्य हो ॥१४॥ हे वानरश्रेष्ठ ! जो वानर तुम्हें इस प्रकार की दुर्बुद्धि युक्त सम्मति दे रहे हैं, वे भी अपने पुत्र एवं स्त्री को छोड़ कर सदा तुम्हारे साथ किस प्रकार रह सकेंगे ॥१५॥

अन्यद् गुह्यतमं वक्ष्ये रहस्यं शृणु मे सुत ! ।
रामो न मानुषो देवः साक्षान्नारायणोऽव्ययः ॥१६॥
सीता भगवती माया जनसम्मोहकारिणी ।
लक्ष्मणो भुवनाधारः साक्षाच्छेषः फणीश्वरः ॥१७॥
ब्रह्मणा प्रार्थिताः सर्वे रक्षोगणविनाशने ।
मायामानुषभावेन जाता लोकैकरक्षकाः ॥१८॥
वयं च पार्षदाः सर्वे विष्णोर्वैकुण्ठवासिनः ।
मनुष्यभावमापन्ने स्वेच्छया परमात्मनि ॥१९॥
वयं वानररूपेण जातास्तस्यैव मायया ।
वयं तु तपसा पूर्वमाराध्य जगतां पतिम् ॥२०॥
तेनैवानुगृहीताः स्मः पार्षदत्वमुपागताः ।
इदानीमपि तस्यैव सेवां कृत्वैव मायया ॥२१॥

---

हे पुत्र ! मैं तुम से एक परम गोपनीय रहस्य बताता हूँ तुम उसे सुनो। राम कोई मनुष्य नहीं हैं, वे तो साक्षात् अव्यय नारायण देव हैं ॥१६॥ यह भगवती सीता उनकी माया हैं, जो जगत् को मोहित करने वाली हैं। ये लक्ष्मण चतुर्दश भुवनों के आधार फणीश्वर शेष हैं ॥१७॥ ये सभी ब्रह्मा के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर पृथ्वी का भार उतारने के लिए माया से मनुष्य का रूप धारण कर अवतरित हुए हैं। इनमें एक-एक भी त्रिलोकी की रक्षा करने में समर्थ हैं ॥१८॥ हम लोग उन महा विष्णु के वैकुण्ठ में रहने वाले पार्षद हैं। स्वेच्छा से उस परमात्मा विष्णु के मनुष्यभाव में अवतरित होने पर उन्हीं की माया से वानर रूप धारण कर उत्पन्न हुए हैं। हम लोगों ने पूर्व जन्म में जगत्पति नारायण की आराधना की थी, उन्हीं की कृपा से हम लोग उनके पार्षद हुए। अब इस समय भी उन्हीं की माया से उनकी सेवा कर हम लोग पुनः वैकुण्ठलोक प्राप्त कर सुख से निवास

पुनर्वैकुण्ठमासाद्य सुखं स्थास्यामहे वयम् ।
इत्यङ्गदमथाश्वास्य गता विन्ध्यं महाचलम् ॥२२॥
विचिन्वन्तोऽथ शनकैर्जानकीं दक्षिणाम्बुधेः ।
तीरे महेन्द्राख्यगिरेः पवित्रं पादमाययुः ॥२३॥
दृष्ट्वा समुद्रं दुष्पारमगाधं भयवर्धनम् ।
वानरा भयसन्त्रस्ताः किं कुर्म इति वादिनः ॥२४॥
निषेदुरुदधेस्तीरे सर्वे चिन्तासमन्विताः ।
मन्त्रयामासुरन्योन्यमङ्गदाद्या महाबलाः ॥२५॥
भ्रमतो मे वने मासो गतोऽत्रैव गुहान्तरे ।
न दृष्टो रावणो वाऽद्य सीता वा जनकात्मजा ॥२६॥
सुग्रीवस्तीक्ष्णदण्डोऽस्मान्निहन्त्येव न संशयः ।
सुग्रीववधतोऽस्माकं श्रेयः प्रायोपवेशनम् ॥२७॥

---

करेंगे । इस प्रकार अङ्गद को समझाकर वे लोग विन्ध्याचल के पहाड़ पर गये ॥१९-२२॥ पुनः इसी प्रकार जानकी को खोजते हुए दक्षिण समुद्र के तट पर महेन्द्र पर्वत की तलहटी में पहुँच गये ॥२३॥ वहाँ पर अगाध, दुस्तर एवं भय को बढ़ानेवाले समुद्र को देखकर सभी वानर भय से सन्त्रस्त हो परस्पर कहने लगे कि, अब हम लोगों को क्या करना चाहिए ॥२४॥ महाबलवान् अङ्गदादि प्रमुख वानर गण समुद्र के उत्तरी तट पर चिन्ता में निमग्न हो बैठ गये । और आपस में विचार करने लगे ॥२५॥ सीता को खोजते हुए हम लोगों के एक मास का समय तो उस गुफा में ही बीत गया । किन्तु आज तक न रावण ही दिखाई पड़ा और न तो सीता ही मिलीं ॥२६॥ सुग्रीव दण्ड देने में बड़ा कठोर है । अवश्य ही वह हम लोगों को मार डालेगा । इस लिए यही अच्छा है कि हम लोग सुग्रीव के हाथ से न मर कर प्रायोपवेश (अन्न जल रहित) कर अपना प्राण त्याग करें ॥२७॥ ऐसा

इति निश्चित्य तत्रैव दर्भानास्तीर्य सर्वतः ।
उपाविविशुस्ते सर्वे मरणे कृतनिश्चयाः ॥२८॥

एतस्मिनन्तरे तत्र महेन्द्राद्रिगुहान्तरात् ।
निर्गत्य शनकैरागाद् गृध्रः पर्वतसन्निभः ॥२९॥

दृष्ट्वा प्रायोपवेशेन स्थितान् वानरपुङ्गवान् ।
उवाच शनकैर्गृध्रः प्राप्तो भक्ष्योऽद्य मे बहुः ॥३०॥

एकैकशः क्रमात् सर्वान् भक्षयामि दिने दिने ।
श्रुत्वा तद् गृध्रवचनं वानरा भीतमानसाः ॥३१॥

भक्षयिष्यति नः सर्वानसौ गृध्रो न संशयः ।
रामकार्यं च नास्माभिः कृतं किञ्चिद्धरीश्वराः ॥३२॥

सुग्रीवस्यापि च हितं न कृतं त्वात्मनामपि ।
वृथाऽनेन वधं प्राप्ता गच्छामो यमसादनम् ।।३३॥

---

विचार कर वे सभी जहाँ-तहाँ कुशा बिछा कर अपने प्राण त्याग करने की इच्छा से वहाँ बैठ गये ।।२८।। इसी बीच पर्वत के समान ऊँचा एक विशाल गृध्र महेन्द्राचल की कन्दरा से निकल कर धीरे-धीरे वहाँ आया ।।२९।। और प्रायोपवेश के लिए बैठे हुए उन महान् वानरों को देख कर मन्द स्वर से कहने लगा—आज मुझे एक साथ ही बहुत-सा भोजन प्राप्त हो गया ।।३०।। अब प्रतिदिन एक-एक वानरों को बारी-बारी से खाऊँगा । उस गृध्र के इस बात को सुनते ही सभी वानर अत्यन्त भयभीत हो गये ।।३१।। और आपस में कहने लगे–अहो ! यह गृध्र निश्चय ही हम लोगों को खा जायेगा । हे वानरों ! हम लोगों ने राम का भी कार्य नहीं किया ।।३२।। और न तो राजा सुग्रीव का ही कोई हित किया । अपना भी कोई कार्य न साधा । अब व्यर्थ इस गृध्र के हाथ से मारे जा कर यम लोक जायेंगे ।।३३।। अहा ! धर्मात्मा जटायु धन्य है जिस बुद्धिमान् ने राम

अहो ! जटायुर्धर्मात्मा रामस्यार्थे मृतः सुधीः ।
मोक्षं प्राप दुरावापं योगिनामप्यरिन्दमः ॥३४॥
सम्पातिस्तु तदा वाक्यं श्रुत्वा वानरभाषितम् ।
के वा यूयं मम भ्रातुः कर्णपीयूषसन्निभम् ॥३५॥
जटायुरिति नामाद्य व्याहरन्तः परस्परम् ।
उच्यतां वो भयं मा भून्मत्तः प्लवगसत्तमाः ॥३६॥
तमुवाचाङ्गदः श्रीमानुत्थितो गृध्रसन्निधौ ।
रामो दाशरथिः श्रीमान् लक्ष्मणेन समन्वितः ॥३७॥
सीतया भार्यया सार्धं विचचार महावने ।
तस्य सीता हृता साध्वी रावणेन दुरात्मना ॥३८॥
मृगयां निर्गते रामे लक्ष्मणे च हृता बलात् ।
रामरामेति क्रोशन्ती श्रुत्वा गृध्रः प्रतापवान् ॥३९॥
जटायुर्नाम पक्षीन्द्रो युद्धं कृत्वा सुदारुणम् ।
रावणेन हतो वीरो राघवार्थं महाबलः ॥४०॥

---

के कार्य के लिए अपना प्राण त्याग किया। और उस शत्रु दमन ने ऐसा मोक्ष पद प्राप्त किया जो योगियों के लिए भी दुर्लभ है ॥३४॥ वानरों के द्वारा कहे गये इस वाक्य को सुनकर सम्पाती कहने लगा—आप लोग कौन हैं, जो मेरे कानों के लिए अमृत के समान आपस में बात करते हुए मेरे भाई जटायु का नाम ले रहे हैं। हे वानरो ! आप लोगों को मुझसे कोई भय नहीं है, अतः अपना वृत्तान्त कहिए ॥३५–३६॥ तब अङ्गद जी उठ कर उस गृध्र के पास गये और कहने लगे- दशरथ के लड़के राम, अपने छोटे भाई लक्ष्मण और प्राणप्रिया सीता के साथ दण्डकारण्य में आये हुए थे। उनकी स्त्री सीता को दुरात्मा रावण ने हर लिया ॥३७–३८॥

उस समय राम और लक्ष्मण मृगया के लिए गये हुए थे। रावण जब बलात् सीता को ले जा रहा था तो जानकी 'राम राम' शब्द कह कर रो रही थीं, उनके रोने-बिलखने के शब्द को सुन कर प्रतापी जटायु ने रावण से राम के लिए घनघोर युद्ध किया। अन्त में वह महाबलवान् रावण के हाथों से मारा गया ॥३९–४०॥ फिर तो राम ने स्वयं अपने हाथों से

रामेण दग्धो रामस्य सायुज्यमगमत् क्षणात् ।
रामः सुग्रीवमासाद्य सख्यं कृत्वाऽग्निसाक्षिकम् ॥४१॥
सुग्रीवचोदितो हत्वा वालिनं सुदुरासदम् ।
राज्यं ददौ वानराणां सुग्रीवाय महाबलः ॥४२॥
सुग्रीवः प्रेषयामास सीतायाः परिमार्गणे ।
अस्मान् वानरवृन्दान् वै महासत्त्वान् महाबलः ॥४३॥
मासादर्वाङ् निवर्तध्वं नो चेत् प्राणान् हरामि वः ।
इत्याज्ञया भ्रमन्तोऽस्मिन् वने गह्वरमध्यगाः ॥४४॥
गतो मासो न जानीमः सीतां वा रावणं च वा ।
मर्तुं प्रायोपविष्टाः स्मस्तीरे लवणवारिधेः ॥४५॥
यदि जानासि हे पक्षिन्! सीतां कथय नः शुभाम् ।
अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा सम्पातिर्हृष्टमानसः ॥४६॥

---

उसका दाह संस्कार किया। जिससे वह राम में लीन होकर सायुज्य मोक्ष प्राप्त किया। तदनन्तर श्री राम जी सुग्रीव के पास आये और अग्नि की साक्षी दे कर उससे मित्रता की ॥४१॥ फिर सुग्रीव के कहने से उन्होंने रण में दुरासद (दुर्जय) महाबलवान् बाली का वध किया और वानरों का राज्य सुग्रीव को दिया ॥४२॥ महाबलवान् सुग्रीव ने सीता को खोजने के लिये हमारे जैसे अनेकों महाबलवान् वानरों को भेजा है ॥४३॥ और आज्ञा दिया है कि एक महीने के पहले सीता का पता लगा कर तुम लोग लौट आना। अन्यथा तुम लोगों का प्राण ले लूँगा। उनकी इस आज्ञा से घूमते हुए हम लोग वन की एक गुफा में चले गये। वहाँ एक मास का दिन समाप्त हो गया। किन्तु न सीता का पता लगा सके और न तो रावण का, अतः हम लोग अब इस खारे समुद्र के सन्निकट प्रायोपवेश से मरने के लिए बैठे हैं ॥४४–४५॥ हे पक्षिन्! यदि तुम कल्याणी सीता का पता जानते हो तो हमें बताओ। अङ्गद की इस बात को सुन कर सम्पाती बड़ा प्रसन्न हुआ ॥४६॥

उवाच मत्प्रियो भ्राता जटायुः प्लवगेश्वराः ।
बहुवर्षसहस्रान्ते भ्रातृवार्ता श्रुता मया ॥४७॥
वाक्साहाय्यं करिष्येऽहं भवतां प्लवगेश्वराः ।
भ्रातुः सलिलदानाय नयध्वं मां जलान्तिकम् ॥४८॥
पश्चात् सर्वं शुभं वक्ष्ये भवतां कार्यसिद्धये ।
तथेति निन्युस्ते तीरं समुद्रस्य विहङ्गमम् ॥४९॥
सोऽपि तत्सलिले स्नात्वा भ्रातुर्दत्त्वा जलाञ्जलिम् ।
पुनः स्वस्थानमासाद्य स्थितो नीतो हरीश्वरैः ।
सम्पातिः कथयामास वानरान् परिहर्षयन् ॥५०॥
लङ्कानाम नगर्यास्ते त्रिकूटगिरिमूर्धनि ।
तत्राशोकवने सीता राक्षसीभिः सुरक्षिता ॥५१॥
समुद्रमध्ये सा लङ्का शतयोजनदूरतः ।
दृश्यते मे न सन्देहः सीता च परिदृश्यते ॥५२॥

---

और कहने लगा—हे वानरो ! जटायु मेरा बहुत प्यारा भाई था, आज सहस्रों वर्ष के बाद उसका समाचार सुनने को मिला ॥४७॥ हे वानरो ! और तो नहीं, किन्तु वाणी मात्र से मैं तुम लोगों की कुछ सहायता करूँगा । पहले भाई को जल दान देने के लिए मुझे जल के समीप ले चलो ॥४८॥ फिर आप लोगों के कार्य-सिद्धि के लिए जो कल्याण कारक उपाय होगा उसे बतलाऊँगा । उन वानरों ने 'तथास्तु' कह कर उसे समुद्र तट पर पहुँचा दिया ॥४९॥ उस सम्पाती ने जल में स्नान कर भाई को जलाञ्जलि दिया । तदनन्तर वानरों ने उसे पुनः अपने स्थान पर पहुँचा दिया । तब सम्पाती वानरों को हर्षित करता हुआ कहने लगा ॥५०॥ हे वानरो ! त्रिकूट पर्वत पर लङ्का नाम की नगरी है, वहाँ पर अशोक वन में राक्षसियों के देख-रेख में सीता सुरक्षित हैं ॥५१॥ वह लङ्का यहाँ से सौ योजन दूर समुद्र के मध्य में बसी हुई है जिसे मैं देख रहा हूँ । विशेष कर सीता तो मुझे अच्छी तरह दिखाई पड़ती हैं । इसमें सन्देह नहीं है ॥५२॥ आप लोग इसमें भी सन्देह न करें, क्योंकि गृध्र होने के कारण

गृध्रत्वाद् दूरदृष्टिर्मे नाऽत्र संशयितुं क्षमम् ।
शतयोजनविस्तीर्णं समुद्रं यस्तु लङ्घयेत् ॥५३॥

स एव जानकीं दृष्ट्वा पुनरायास्यति ध्रुवम् ।
अहमेव दुरात्मानं रावणं हन्तुमुत्सहे ।
भ्रातुर्हन्तारमेकाकी किन्तु पक्षविवर्जितः ॥५४॥

यतध्वमतियत्नेन लङ्घितुं सरितां पतिम् ।
ततो हन्ता रघुश्रेष्ठो रावणं राक्षसाधिपम् ॥५५॥

उल्लङ्घ्य सिन्धुं शतयोजनायतं
लङ्कां प्रविश्याऽथ विदेहकन्यकाम् ।
दृष्ट्वा समाभाष्य च वारिधिं पुन-
स्ततुं समर्थः कतमो विचार्यताम् ॥५६॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे
किष्किन्धाकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥७॥

मेरी दृष्टि दूर तक जाती है। अतः जो सौ योजन इस समुद्र को लाँघने में समर्थ हो ॥५३॥ वह जानकी को देख कर निश्चय आ सकेगा। अकेले केवल हम्हीं उस दुरात्मा रावण को, जिसने मेरे भाई का वध किया है, मारने में समर्थ हूं। किन्तु क्या करूँ ? मुझे पंख ही नहीं है ॥५४॥ आप लोग इस समुद्र को लाँघने का प्रयत्न कीजिए। फिर राक्षसराज रावण को तो स्वयं रामचन्द्र जी मार डालेंगे ॥५५॥ आप लोग इस बात का विचार करें कि आप के दल में ऐसा कौन है जो सौ योजन लम्बे समुद्र को लाँघ कर लंका में जाये और जानकी को देख कर उनके साथ सम्भाषण कर पुनः समुद्र के इस पार लौट आवे ॥५६॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या सहित अध्यात्मरामायण के उमा-महेश्वर संवाद में किष्किन्धाकाण्ड का सप्तम सर्ग समाप्त ॥ ७ ॥

## ८. अष्टमः सर्गः

(सम्पातिकी आत्मकथा)

श्रीमहादेव उवाच

अथ ते कौतुकाविष्टाः सम्पातिं सर्ववानराः ।
पप्रच्छुर्भगवन् ! ब्रूहि स्ववृत्तान्तं त्वमादितः ॥१॥

सम्पातिः कथयामास स्ववृत्तान्तं पुरा कृतम् ।
अहं पुरा जटायुश्च भ्रातरौ रूढयौवनौ ॥२॥

बलेन दर्पितावावां बलजिज्ञासया खगौ ।
सूर्यमण्डलपर्यन्तं गन्तुमुत्पतितौ मदात् ॥३॥

बहुयोजनसाहस्रं गतौ तत्र प्रतापितः ।
जटायुस्तं परित्रातुं पक्षैराच्छाद्य मोहतः ॥४॥

स्थितोऽहं रश्मिभिर्दग्धपक्षोऽस्मिन् विन्ध्यमूर्धनि ।
पतितो दूरपतनान् मूर्च्छितोऽहं कपीश्वराः ॥५॥

---

श्री महादेव जी ने कहा–हे पार्वति ! इसके बाद सभी वानर कुतूहल में भर कर सम्पाती से पूछने लगे । हे भगवन् ! तुम अपना सारा वृत्तान्त आरम्भ से सुनाओ ॥१॥ तब सम्पाती अपना किया हुआ सारा वृत्तान्त कहने लगा–हे वानरो ! हम और जटायु दोनों भाई थे, जब हम लोगों की पूर्ण युवावस्था थी ॥२॥ तो हम लोग जवानी के घमण्ड में अपने बल की परीक्षा के लिए बड़े अहङ्कार से सूर्यमण्डल पर जाने के लिए उड़े ॥ ३ ॥ इस प्रकार बहुत सहस्र योजन की ऊँचाई तक जब हम लोग ऊँचे उड़ते-उड़ते चले गये, तो जटायु सूर्य-रश्मि से जलने लगा । मैंने उसकी रक्षा के लिए उसे अपने पखों से मोहवश ढक कर उड़ना प्रारम्भ किया ॥४॥ किन्तु मैं भी सूर्य-रश्मि से अपने पखों के जल जाने के कारण शीघ्र ही विन्ध्य पर्वत पर गिर पड़ा । और ऊँचे से गिरने के कारण मैं वहीं मूर्च्छित होकर पड़ा रहा ॥५॥

दिनत्रयात् पुनः प्राणसहितो दग्धपक्षकः ।
देशं वा गिरिकूटान् वा न जाने भ्रान्तमानसः ॥६॥

शनैरुन्मील्य नयने दृष्ट्वा तत्राश्रमं शुभम् ।
शनैः शनैराश्रमस्य समीपं गतवानहम् ॥७॥

चन्द्रमा नाम मुनिराड् दृष्ट्वा मां विस्मितोऽवदत् ।
सम्पाते ! किमिदं तेऽद्य विरूपं केन वा कृतम् ? ॥८॥

जानामि त्वामहं पूर्वमत्यन्तं बलवानसि ।
दग्धौ किमर्थं ते पक्षौ कथ्यतां यदि मन्यसे ? ॥९॥

ततः स्वचेष्टितं सर्वं कथयित्वाऽतिदुःखितः ।
अब्रवं मुनिशार्दूलं दग्धोऽहं दाववह्निना ॥१०॥

कथं धारयितुं शक्तो विपक्षो जीवितं प्रभो ! ।
इत्युक्तोऽथ मुनिर्वीक्ष्य मां दयार्द्रं विलोचनः ॥११॥

---

इस प्रकार तीन दिन तक मूर्च्छित रहने के बाद मुझमें प्राण का संचार हुआ। किन्तु पंखों के जल जाने के कारण मैं भ्रम में पड़ गया। मुझे यह ज्ञान नहीं हुआ कि मैं किस देश में और किस पर्वत पर गिरा हुआ हूँ ॥६॥ धीरे-धीरे आँख खुल जाने पर मैंने एक मनोहर आश्रम देखा। और धीरे-धीरे आश्रम के समीप चला गया ॥७॥ वहाँ पर चन्द्रमा नाम के मुनिराज मुझे देख कर विस्मित हो गये और कहने लगे। सम्पाते ! यह क्या ? तुम्हें इस प्रकार विकृत रूप किसने किया ? ॥८॥ मैं तुम्हें बहुत पहले से जानता हूँ कि तुम बड़े बलवान् हो। तुम्हारे ये पंख किस कारण से जल गये। यदि तुम्हें उचित जान पड़े तो सब वृत्तान्त कहो ॥९॥ फिर मैंने अपना सारी की हुई करतूत मुनिराज को सुना दिया। और दुःखी होकर कहने लगा—हे मुनिशार्दूल ! मैं दावाग्नि से जलकर मर जाऊँगा ॥१०॥ हे प्रभो ! भला बिना पंख के मैं किस प्रकार जीवित रहूँगा। मेरे द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर मुनि मेरी ओर देख कर दया से नेत्रों में जल भर कर कहने लगे ॥११॥ हे वत्स ! तुम मेरी बात सुनो। इसे सुन

शृणु वत्स ! वचो मेऽद्य श्रुत्वा कुरु यथेप्सितम् ।
देहमूलमिदं दुःखं देहः कर्मसमुद्भवः ॥१२॥
कर्म प्रवर्तते देहेऽहं बुद्ध्या पुरुषस्य हि ।
अहङ्कारस्त्वनादिः स्यादविद्यासम्भवो जडः ॥१३॥
चिच्छायया सदा युक्तस्तप्तायःपिण्डवत् सदा ।
तेन देहस्य तादात्म्याद् देहश्चेतनवान् भवेत् ॥१४॥
देहोऽहमिति बुद्धिः स्यादात्मनोऽहङ्कृतेर्बलात् ।
तन्मूल एष संसारः सुख-दुःखादिसाधकः ॥१५॥
आत्मनो निर्विकारस्य मिथ्या तादात्म्यतः सदा ।
देहोऽहं कर्मकर्त्ताऽहमिति सङ्कल्प्य सर्वदा ॥१६॥
जीवः करोति कर्माणि तत्फलैर्बद्ध्यतेऽवशः ।
ऊर्ध्वाधो भ्रमते नित्यं पाप-पुण्यात्मकः स्वयम् ॥१७॥

---

कर तुम्हारी जैसी इच्छा हो वैसा करना। इन सारे दुःखों का कारण देह ही है। और देह कर्म से प्राप्त होता है ॥१२॥ और जब पुरुष देह में अहंकार की भावना करता है तो कर्म में प्रवृत्त होता है। यह अहंकार अनादि एवं जड है तथा अविद्या से उत्पन्न होता है ॥१३॥ चित्-शक्ति के आश्रय से अग्नि में सन्तप्त लोहपिण्ड के समान यह चेतन जैसा जान पड़ता है। और चेतनाभास विशिष्ट अहङ्कार का देह से तादात्म्य होने के कारण देह चेतन-जैसा प्रतीत होता है ॥१४॥

इस प्रकार अहङ्कार के कारण आत्मा को 'मैं देह हूँ' ऐसी बुद्धि होती है। इसलिए देह में आत्मा के तादात्म्य से आत्मबुद्धि होने के कारण सुख-दुःखादि का देने वाला यह जन्म-मरण रूप संसार है ॥१५॥ निर्विकार आत्मा का देह के साथ मिथ्या तादात्म्य होने के कारण यह जीव 'मैं देह हूँ' 'मैं कर्म करने वाला हूँ' इस प्रकार का संकल्प कर नाना प्रकार के कर्म करता है। और विवश होकर उन कर्मों के फलों के फन्दे में बँध जाता है। तदनन्तर पाप-पुण्यात्मक अपना किया गया कर्म फल भोगने के लिए नीच एवं उच्च योनियों में भटकता रहता है ॥१६-१७॥ वह जीव इस

कृतं मयाऽधिकं पुण्यं यज्ञ-दानादि निश्चितम् ।
स्वर्गं गत्वा सुखं भोक्ष्य इति सङ्कल्पवान् भवेत् ॥१८॥
तथैवाध्यासतस्तत्र चिरं भुक्त्वा सुखं महत् ।
क्षीणपुण्यः पतत्यर्वागनिच्छन् कर्मचोदितः ॥१९॥
पतित्वा मण्डले चेन्दोस्ततो नीहारसंयुतः ।
भूमौ पतित्वा व्रीह्यादौ तत्र स्थित्वा चिरं पुनः ॥२०॥
भूत्वा चतुर्विधं भोज्यं पुरुषैर्भुज्यते ततः ।
रेतो भूत्वा पुनस्तेन ऋतौ स्त्रीयोनिसिञ्चितः ॥२१॥
योनिरक्तेन संयुक्तं जरायुपरिवेष्टितम् ।
दिनेनैकेन कललं भूत्वा रूढत्वमाप्नुयात् ॥२२॥
तत्पुनः पञ्चरात्रेण बुद्बुदाकारतामियात् ।
सप्तरात्रेण तदपि मांसपेशित्वमाप्नुयात् ॥२३॥

---

प्रकार का संकल्प करता है कि मैंने अनेक यज्ञ एवं दान आदि बहुत से पुण्य कर्म किये हैं अतः निश्चय ही स्वर्ग में जा कर सुख भोगूँगा ॥१८॥

इस प्रकार के अध्यास से वहाँ जाकर चिर काल पर्यन्त सुख भोगता है, फिर जब उसके पुण्य का फल क्षीण हो जाता है, तो वह प्रारब्ध कर्म की प्रेरणा से इच्छा न रहते हुए भी नीचे गिर जाता है ॥१९॥

सर्वप्रथम चन्द्रमण्डल पर गिर कर नीहार के रूप में पृथ्वी पर आता है फिर व्रीहि आदि धान्यों में चिर काल निवास कर ॥२०॥ भक्ष्य-भोज्यादि चार प्रकार के अन्न के रूप में परिणत होता है। और पुरुषों के द्वारा खाया जाता है। फिर वीर्य बन कर ऋतुकाल में स्त्री की योनि में डाला जाता है ॥२१॥ फिर योनि में स्थित रज से संयुक्त होकर झिल्ली में लिपट कर एक ही दिन में कलल का रूप धारण कर कुछ कठिन हो जाता है ॥२२॥ तदनन्तर पाँच रात्रि में बुद्बुदाकार हो जाता है और सात रात बीत जाने पर मांसपेशी के समान हो जाता है ॥ २३॥

पक्षमात्रेण सा पेशी रुधिरेण परिप्लुता ।
तस्य एवाङ्कुरोत्पत्तिः पञ्चविंशतिरात्रिषु ॥२४॥
ग्रीवा शिरश्च स्कन्धश्च पृष्ठवंशस्तथोदरम् ।
पञ्चधाङ्गानि चैकैकं जायन्ते मासतः क्रमात् ॥२५॥
पाणिपादौ तथा पार्श्वः कटिर्जानु तथैव च ।
मासद्वयात् प्रजायन्ते क्रमेणैव न चान्यथा ॥२६॥
त्रिभिर्मासैः प्रजायन्ते अङ्गानां सन्धयः क्रमात् ।
सर्वाङ्गुल्यः प्रजायन्ते क्रमान्मासचतुष्टये ॥२७॥
नासा कर्णौ च नेत्रे च जायन्ते पञ्चमासतः ।
दन्तपङ्क्तिर्नखा गुह्यं पञ्चमे जायते तथा ॥२८॥
अर्वाक् षण्मासतश्छिद्रं कर्णयोर्भवति स्फुटम् ।
पायुर्मेढ्रमुपस्थं च नाभिश्चापि भवेन्नृणाम् ॥२९॥
सप्तमे मासि रोमाणि शिरः केशास्तथैव च ।
विभक्तावयवत्वं च सर्वं सम्पद्यतेऽष्टमे ॥३०॥

---

पन्द्रह दिन में वह मांसपेशी रुधिर से भर जाती है। फिर पचीस दिन में उसी में अंकुर जैसा उत्पन्न होने लगता है ॥२४॥ इस प्रकार एक-एक के क्रम से ग्रीवा, शिर, कन्धा, रीढ की हड्डी एवं पेट ये पाँच अङ्ग धीरे-धीरे एक मास में उत्पन्न होते हैं ॥ २५ ॥ फिर दो महीने में हाथ, पैर, पसलियाँ, कमर एवं घुटने बन जाते हैं। इस क्रम में कभी अन्तर नहीं होता ॥ २६ ॥ तीन महीने में क्रमशः अङ्गों के जोड़ उत्पन्न हो जाते हैं। फिर चार महीने में समस्त अँगुलियाँ उत्पन्न हो जाती हैं ॥ २७ ॥ पाँच महीने में नासिका, कान और नेत्र बन जाते हैं। तथा उसी पाँचवें मास में मसूड़े, नख एवं गुह्य स्थान भी प्रगट हो जाते हैं ॥ २८ ॥ छह महीने के पहले ही कान के छिद्र उत्पन्न हो जाते हैं। तदनन्तर उसी मास में गुदा, लिंग अथवा योनि एवं नाभि की उत्पत्ति हो जाती है ॥२९॥ सातवें महीने में रोमराशि और शिर के केश प्रगट हो जाते हैं और आठवें महीने में सभी शरीर के अवयव स्पष्ट रूप से अलग-अलग दिखाई पड़ने लगते हैं ॥३०॥

जठरे वर्धते गर्भः स्त्रिया एवं विहङ्गम ! ।
पञ्चमे मासि चैतन्यं जीवः प्राप्नोति सर्वशः ॥३१॥

नाभिसूत्राल्परन्ध्रेण मातृभुक्तान्नसारतः ।
वर्धते गर्भगः पिण्डो न म्रियेत स्वकर्मतः ॥३२॥

स्मृत्वा सर्वाणि जन्मानि पूर्वकर्माणि सर्वशः ।
जठरानलतप्तोऽयमिदं वचनमब्रवीत् ॥३३॥

नानायोनिसहस्रेषु जायमानोऽनुभूतवान् ।
पुत्रदारादि सम्बन्धं कोटिशः पशुबान्धवान् ॥३४॥

कुटुम्बभरणासक्त्या न्यायान्यायैर्धनार्जनम् ।
कृतं न करवं विष्णुचिन्तां स्वप्नेऽपि दुर्भगः ॥३५॥

इदानीं तत्फलं भुञ्जे गर्भदुःखं महत्तरम् ।
अशाश्वते शाश्वतवद् देहे तृष्णासमन्वितः ॥३६॥

---

चन्द्र मुनि ने सम्पाती से कहा—हे पक्षिन् ! इस प्रकार स्त्री के उदर में गर्भ बढ़ने लगता है। चेतना तो उस जीव को पांचवें महीने से ही होने लगती है ॥ ३१ ॥ गर्भ में रहने वाला वह पिण्ड माता के खाये हुए अन्न के रस से नाभि में लगे हुए नाल के छोटे से छिद्र द्वारा धीरे-धीरे बढ़ता रहता है और प्रारब्ध कर्मवश मृत्यु को नहीं प्राप्त होता ॥३२॥

तदनन्तर गर्भगत वह जीव माता के जठराग्नि से सन्तप्त हो कर अपने सम्पूर्ण जन्म एवं कर्मों का स्मरण करता हुआ ऐसा कहता है-। ३३। अहा ! मैंने अनेक योनियों में जन्म लेकर करोड़ों पुत्र, स्त्री, बन्धु-बान्धव तथा पशुओं के सम्बन्ध का अनुभव किया है ॥३४॥ और उन-उन जन्मों के कुटुम्ब के भरण एवं पोषण में दिन-रात आसक्त रह कर धन कमाने की चिन्ता में लगा रहा। किन्तु कभी-कभी स्वप्न में भी विष्णु का स्मरण नहीं किया। अतः मैं कितना अभागा हूँ ॥३५॥ अब उसी दुष्कर्म का यह फल है कि गर्भ के इस महान् दुख को भोग रहा हूँ। और इस अनित्य शरीर को नित्य समझकर उसकी तृष्णा में फँसा हुआ हूँ ॥३६॥ मैंने

अकार्यण्येव कृतवान् न कृतं हितमात्मनः।
इत्येवं बहुधा दुःखमनुभूय स्वकर्मतः ॥३७॥
कदा निष्क्रमणं मे स्याद् गर्भान्निरयसन्निभात्।
इत ऊर्ध्वं नित्यमहं विष्णुमेवानुपूजये ॥३८॥
इत्यादि चिन्तयञ्जीवो योनियन्त्रप्रपीडितः।
जायमानोऽतिदुःखेन नरकात् पातकी यथा ॥३९॥
पूतिव्रणान्निपतितः कृमिरेष इवाऽपरः।
ततो बाल्यादिदुःखानि सर्व एवं विभुञ्जते ॥४०॥
त्वया चैवानुभूतानि सर्वत्र विदितानि च।
न वर्णितानि मे गृध्र! यौवनादिषु सर्वतः ॥४१॥
एवं देहोऽहमित्यस्माद्भ्यासान्निरयादिकम्।
गर्भवासादिदुःखानि भवन्त्यभिनिवेशतः ॥४२॥

---

अपने उन-उन जन्मों में सदा अकार्य ही किया। किन्तु कभी अपना हित-साधन नहीं किया। अपने किये गये कर्म के फल स्वरूप इसी प्रकार निरन्तर दुःख ही भोगता रहा ॥३७॥ अब इस नरक के समान गर्भ से मैं कब निकलूँगा। यहाँ से निकलने के बाद अब मैं नित्य विष्णु की आराधना करूँगा ॥३८॥

इस प्रकार की चिन्ता करता हुआ जीव, योनियन्त्र से पीडित हो कर बड़े कष्ट से जन्म लेता है, जैसे नरक से किसी पापी का छुटकारा होता है ॥३९॥ वह जीव उस समय दुर्गन्ध युक्त व्रण से गिरे हुए कीड़े के जैसा मालूम पड़ता है। तत्पश्चात् बाल्यावस्था में अनेक प्रकार के दुःखों का भोग करता रहता है। इस प्रकार का कष्ट सभी जीवों को उठाना पड़ता है ॥४०॥ हे गृध्र! तूने स्वयं युवावस्था आदि में होने वाले इन दुःखों को भोगा है, और लोग भी इसे जानते ही हैं। इस लिए यौवन आदि अवस्थाओं का दुःख मैंने वर्णन नहीं किया ॥४१॥ 'मैं देह हूँ' इस प्रकार के अध्यास से उत्पन्न हुए अहङ्कार के कारण जीव को नरकादि की यातना एवं गर्भ-वासादि दुःख निरन्तर भोगना पड़ता है ॥४२॥ इसलिए मनुष्य को चाहिए

तस्माद् देहद्वयादन्यमात्मानं प्रकृतेः परम् ।
ज्ञात्वा देहादिममतां त्यक्त्वात्मज्ञानवान् भवेत् ॥४३॥

जाग्रदादिविनिर्मुक्तं सत्यज्ञानादिलक्षणम् ।
शुद्धं बुद्धं सदा शान्तमात्मानमवधारयेत् ॥४४॥
चिदात्मनि परिज्ञाते नष्टे मोहेऽज्ञसम्भवे ।
देहः पततु वारब्धकर्मवेगेन तिष्ठतु ॥४५॥

योगिनो न हि दुःखं वा सुखं वाऽज्ञानसम्भवम् ।
तस्माद् देहेन सहितो यावत् प्रारब्धसङ्क्षयः ॥४६॥

तावत्तिष्ठ सुखेन त्वं धृतकञ्चुकसर्पवत् ।
अन्यद् वक्ष्यामि ते पक्षिन् ! शृणु मे परमं हितम् ॥४७॥
त्रेतायुगे दाशरथिर्भूत्वा नारायणोऽव्ययः ।
रावणस्य वधार्थाय दण्डकानागमिष्यति ॥४८॥

सीतया भार्यया सार्धं लक्ष्मणेन समन्वितः ।
तत्राश्रमे जनकजां भ्रातृभ्यां रहिते वने ॥४९॥

---

कि वह अपने को प्रकृति से परे तथा स्थूल एवं सूक्ष्म देह से अलग जान कर देहादि की ममता का त्याग कर आत्मज्ञान-सम्पन्न हो ॥४३॥ और अपने को जाग्रत् आदि अवस्थाओं से परे शुद्ध-बुद्ध तथा शान्त स्वरूप समझे ॥४४॥ चेतन आत्मा का ज्ञान हो जाने पर जब अज्ञान जनित मोह नष्ट हो जाता है तो प्रारब्ध के वेग से यह शरीर रहे अथवा नष्ट हो जाय ॥४५॥ इस प्रकार का अज्ञान जन्य सुख-दुःख योगी को नहीं होता। इसलिए हे गृध्र ! जब तक तुम्हारे प्रारब्ध कर्म का नाश नहीं होता तब तक इस शरीर को धारण करो ॥४६॥ जिस प्रकार साँप केंचुली सहित अपने शरीर को आनन्द से धारण करता है। इसके अतिरिक्त हे पक्षिराज ! मैं तुम्हारे हित की एक बात कहता हूँ तू सावधान होकर सुन ॥४७॥ निर्विकार नारायण देव जब त्रेतायुग में दशरथ के पुत्र बनकर अवतार लेंगे, और रावण का वध करने के लिए जब लक्ष्मण एवं सीता के साथ दण्डक वन में आयेंगे।

रावणश्चौरवन्नीत्वा लङ्कायां स्थापयिष्यति ।
तस्याः सुग्रीवनिर्देशाद् वानराः परिमार्गणे ॥५०॥
आगमिष्यन्ति जलधेस्तीरं तत्र समागमः ।
त्वया तैः कारणवशाद् भविष्यति न संशयः ॥५१॥
तदा सीतास्थितिं तेभ्यः कथयस्व यथार्थतः ।
तदैव तव पक्षौ द्वावुत्पत्स्येते पुनर्नवौ ॥५२॥

सम्पातिरुवाच

बोधयामास मां चन्द्रनामा मुनिकुलेश्वरः ।
पश्यन्तु पक्षौ मे जातौ नूतनावतिकोमलौ ॥५३॥
स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि सीतां द्रक्ष्यथ निश्चयम् ।
यत्नं कुरुध्वं दुर्लङ्घ्य समुद्रस्य विलङ्घने ॥५४॥
यन्नामस्मृतिमात्रतोऽपरिमितं संसारवारांनिधिं
तीर्त्वा गच्छति दुर्जनोऽपि परमं विष्णोः पदं शाश्वतम् ।

---

फिर वहाँ दोनों भाइयों के आश्रम से दूर चले जाने पर रावण चोर के समान सीता को ले जाकर लङ्का में रखेगा। तदनन्तर सुग्रीव की आज्ञा से उन्हें खोजते हुए वानर गण समुद्र के किनारे आवेंगे। तब उनसे किसी विशेष कारण वश तुम्हारी भेंट होगी ॥४८-५१॥ तब तू ठीक-ठीक उन लोगों से सीता के रहने का स्थान बता देना। उस समय हे पक्षिन्! तुम्हारे दोनों तरफ के नवीन पङ्ख उत्पन्न हो जायेंगे ॥५२॥

तब सम्पाती ने कहा—हे वानरगण! मुझे इस प्रकार उस चन्द्रमा नाम के मुनि ने समझाया। अब तुम लोग देखो, मेरे अत्यन्त कोमल नवीन पंख निकल आये हैं ॥५३॥ तुम लोगों का कल्याण हो, अब मैं जाना चाहता हूँ। निश्चय ही तुम लोग सीता को देखोगे। इसमें सन्देह नहीं। अब इस दुर्लंघ्य समुद्र को लाँघने के लिए प्रयत्न करो ॥५४॥ जिसके नाम का स्मरण कर दुर्जन मनुष्य भी इस अपार संसार को लाँघ कर विष्णु के सनातन पद (ब्रह्मलोक) को प्राप्त करता है फिर हे

तस्यैव स्थितिकारिणस्त्रिजगतां रामस्य भक्ताः प्रिया।
यूयं किं न समुद्रमात्रतरणे शक्ताः कथं वानराः ॥५६॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
किष्किन्धाकाण्डेऽष्टमः सर्गः ॥८॥

*

## ९. नवमः सर्गः

( समुद्र-लंघन की मन्त्रणा )

श्रीमहादेव उवाच

गते विहायसा गृध्रराजे वानरपुङ्गवाः।
हर्षेण महताविष्टाः सीतादर्शनलालसाः ॥१॥

ऊचुः समुद्रं पश्यन्तो नक्रचक्रभयङ्करम्।
तरङ्गादिभिरुन्नद्धमाकाशमिव दुर्ग्रहम् ॥२॥

---

वानरगण ! आप लोग इस त्रिलोकी को धारण करने वाले उन्हीं भगवान् के परम प्रिय भक्त हैं। अतः इस क्षुद्र समुद्र को पार करने में आप लोग क्यों न समर्थ होंगे ॥५५॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या सहित अध्यात्मरामायण
के उमा-महेश्वर संवाद में किष्किन्धा काण्ड का
अष्टम सर्ग समाप्त ॥८॥

*

श्री महादेवजी ने कहा—हे पार्वती ! ऐसा कहकर सम्पाती के आकाश मार्ग से चले जाने के बाद सभी वानर गण सीता को देखने की तीव्र उत्कण्ठा से अत्यन्त हर्षित हो गये ॥१॥ वे नाकों एवं भँवरों से भयानक और तरङ्ग-मालाओं से ऊपर की ओर उठते हुए समुद्र को, दुष्ट ग्रहों से युक्त आकाश के समान दुर्लंध्य जान कर ॥ २ ॥ आपस में कहने लगे कि, हम लोग इसे

परस्परमवोचन् वै कथमेनं तरामहे ।
उवाच चाऽङ्गदस्तत्र शृणुध्वं वानरोत्तमाः ॥३॥
भवन्तोऽत्यन्तबलिनः शूराश्च कृतविक्रमाः ।
को वाऽत्र वारिधिं तीर्त्वा राज्यकार्यं करिष्यति ॥४॥
एतेषां वानराणां स प्राणदाता न संशयः ।
तदुत्तिष्ठतु मे शीघ्रं पुरतो यो महाबलः ॥५॥
वानराणां च सर्वेषां रामसुग्रीवयोरपि ।
स एव पालको भूयान्नात्र कार्या विचारणा ॥६॥
इत्युक्ते युवराजेन तूष्णीं वानरसैनिकाः ।
आसन्नोचुः किञ्चिदपि परस्परविलोकिनः ॥७॥

अङ्गद उवाच

उच्यतां वै बलं सर्वैः प्रत्येकं कार्यसिद्धये ।
केन वा साध्यते कार्यं जानीमस्तदनन्तरम् ॥८॥

---

किस प्रकार पार कर सकेंगे। तब अङ्गदजी ने कहा—हे वानरश्रेष्ठ गण ! सुनिए ॥ ३ ॥ आप लोग अत्यन्त बलवान् शूरवीर एवं प्रख्यात पौरुष वाले हैं। अतः आप लोगों में कौन ऐसा समर्थ है, जो इस समुद्र को पार कर राज्य कार्य कर सकेगा ॥ ४ ॥ निःसन्देह वही वानर हम सभी वानरों को प्राणदान करने वाला होगा। इसलिए जो ऐसा बलवान् हो वह हमारे सामने आकर खड़ा हो जाय ॥ ५ ॥ ऐसा वानर न केवल सभी वानरों का; अपितु राम एवं सुग्रीव के भी प्राणों का रक्षक होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ६ ॥

युवराज अङ्गद के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर सभी वानर चुपचाप रह कर एक दूसरे का मुँह देखने लगे। किसी के मुख से एक शब्द भी न निकला ॥७॥ तब पुनः अङ्गद बोले-अच्छा, अब इस कार्य को पूर्ण करने के लिए आप लोग अपनी शक्ति का वर्णन कीजिए। फिर इसके बाद हम लोग विचार कर लेंगे कि किसके द्वारा यह कार्य पूरा होने वाला है ॥ ८ ॥

अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा प्रोचुर्वीरा बलं पृथक् ।
योजनानां दशारभ्य दशोत्तरगुणं जगुः ॥९॥
शतादर्वाग् जाम्बवांस्तु प्राह मध्ये वनौकसाम् ।
पुरा त्रिविक्रमे देवे पादं भूमानलक्षणम् ॥१०॥
त्रिःसप्तकृत्वोऽहमगां प्रदक्षिणविधानतः ।
इदानीं वार्धकग्रस्तो न शक्नोमि विलङ्घितुम् ॥११॥
अङ्गदोऽप्याह मे गन्तुं शक्यं पारं महोदधेः ।
पुनर्लङ्घनसामर्थ्यं न जानाम्यस्ति वा न वा ॥१२॥
तमाह जाम्बवान् वीरस्त्वं राजा नो नियामकः ।
न युक्तं त्वां नियोक्तुं मे त्वं समर्थोऽसि यद्यपि ॥१३॥

अङ्गद उवाच

एवं चेत् पूर्ववत् सर्वे स्वप्स्यामो दर्भविष्टरे ।
केनापि न कृतं कार्यं जीवितुं च न शक्यते ॥१४॥

---

अङ्गदजी की इस बात को सुन कर सभी वानर वीर पृथक्-पृथक् अपना बल बखान करने लगे। उन लोगों में से एक-एक ने दश योजन से लेकर क्रमशः दश-दश योजन से अधिक जाने की अपनी सामर्थ्य व्यक्त की ॥ ९ ॥ फिर जाम्बवान् ने सभी वानरों के बीच खड़े होकर सौ योजन से कुछ कम जाने की अपनी शक्ति बतलायी। और कहने लगे कि, पूर्वकाल में त्रिविक्रम वामन के विराट् रूप धारण करते समय उनका पैर जब पृथ्वी के बराबर परिमाण का था, तो मैंने उसके चारों ओर इक्कीस प्रदक्षिणा की थी। किन्तु अब बुढ़ाई से ग्रस्त हो गया हूँ। इसलिए समुद्र पार जाने में असमर्थ हूँ ॥ १०-११ ॥

तदनन्तर अङ्गदजी ने कहा—मैं इस महा समुद्रके पार तो जा सकता हूँ। किन्तु मुझमें पुनः लौटकर आ सकने की सामर्थ्य है अथवा नहीं, यह नहीं बता सकता ॥ १२ ॥ तब वीर जाम्बवान् ने कहा—यद्यपि आप इस कार्य को करने में सर्वथा समर्थ हैं। किन्तु आपको इस कार्य में नियुक्त करना उचित नहीं जान पड़ता। क्योंकि आप हमारे राजा और नियामक हैं ॥ १३ ॥

अङ्गदजी बोले-यदि ऐसी बात है तो हम लोगों को पूर्ववत् कुशासन पर ही प्रायोपवेश कर पड़ जाना चाहिए, क्योंकि कोई भी इस कार्य को करने में समर्थ नहीं है। फिर जीवन धारण करना उचित नहीं है ॥ १४ ॥ तब पुनः

तमाह जाम्बवान् वीरो दर्शयिष्यामि ते सुत ! ।
येनाऽस्माकं कार्यसिद्धिर्भविष्यत्यचिरेण च ॥१५॥
इत्युक्त्वा जाम्बवान् प्राह हनूमन्तमवस्थितम् ।
हनुमन् ! किं रहस्तूष्णीं स्थीयते कार्यगौरवे ॥१६॥
प्राप्तेऽङ्गनेव सामर्थ्यं दर्शयाऽद्य महाबल ! ।
त्वं साक्षाद् वायुतनयो वायुतुल्यपराक्रमः ॥१७॥
रामकार्यार्थमेव त्वं जनितोऽसि महात्मना ।
जातमात्रेण ते पूर्वं दृष्ट्वोद्यन्तं विभावसुम् ॥१८॥
पक्वं फलं जिघृक्षामीत्युत्प्लुतं बालचेष्टया ।
योजनानां पञ्चशतं पतितोऽसि ततो भुवि ॥१९॥
अतस्त्वद्बलमाहात्म्यं को वा शक्नोति वर्णितुम् ।
उत्तिष्ठ कुरु रामस्य कार्यं नः पाहि सुव्रत ! ॥२०॥

---

जाम्बवान् ने कहा—हे पुत्र ! जिसके द्वारा यह कार्य शीघ्र पूरा होने वाला है मैं उस वीर को तुम्हे दिखा रहा हूँ ॥ १५ ॥ ऐसा कहकर जाम्बवान् ने वहाँ बैठे हुए हनुमान्जी से कहा—हे हनुमान्जी ! इतना बड़ा कार्य उपस्थित होने पर आप इस प्रकार अनजान से होकर चुप-चाप क्यों एकान्त में बैठे हैं ॥ १६ ॥

हे महाबल ! आप वायु के पुत्र हैं और आप का पराक्रम भी वायु के समान है । अतः आज अपनी सामर्थ्य दिखलाइए ॥ १७ ॥ महात्मा वायु ने तुम्हें राम-कार्य के लिए ही पैदा किया है । जिस समय आप उत्पन्न हुए थे उसी समय आपने उदय होते हुए सूर्य को पके हुए लाल फल के समान जान उसे पकड़ने के लिए बाल लीला में ही पाँच सौ योजन ऊँचे उछल कर पृथ्वी पर गिरे थे । १८-१९ ॥ इसलिए तुम्हारे बल की महिमा का वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है । अतः हे सुव्रत ! उठो और राम के कार्य को पूरा करो । और हम लोगों की रक्षा करो ॥ २० ॥ जाम्बवान् की बात को

श्रुत्वा जाम्बवतो वाक्यं हनुमानतिहर्षितः ।
चकार नादं सिंहस्य ब्रह्माण्डं स्फोटयन्निव ॥२१॥
बभूव पर्वताकारस्त्रिविक्रम इवापरः ।
लङ्घयित्वा जलनिधिं कृत्वा लङ्कां च भस्मसात् ॥२२॥
रावणं सकुलं हत्वा नेष्ये जनकनन्दिनीम् ।
यद्वा बद्ध्वा गले रज्ज्वा रावणं वामपाणिना ॥२३॥
लङ्कां सपर्वतां धृत्वा रामस्याऽग्रे क्षिपाम्यहम् ।
यद्वा दृष्ट्वैव यास्यामि जानकीं शुभलक्षणाम् ॥२४॥
श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं जाम्बवानिदमब्रवीत् ।
दृष्ट्वैवागच्छ भद्रं ते जीवन्तीं जानकीं शुभाम् ॥२५॥
पश्चाद्रामेण सहितो दर्शयिष्यसि पौरुषम् ।
कल्याणं भवताद् भद्र ! गच्छतस्ते विहायसा ॥२६॥
गच्छन्तं रामकार्यार्थं वायुस्त्वामनुगच्छतु ।
इत्याशीभिः समामन्त्र्य विसृष्टः प्लवगाधिपैः ॥२७॥

---

सुनकर हनुमान् जी अत्यन्त हर्षित हो उठे । और उन्होंने ब्रह्माण्ड को फोड़ देने वाला महा भयंकर सिंहनाद किया ॥ २१ ॥ उन्होंने दूसरे त्रिविक्रम वामन के समान पर्वताकार महा विशाल रूप धारण किया और कहने लगे—हे वानरो ! मैं समुद्र को लाँघ कर लङ्का को भस्म कर डालूँगा ॥ २२ ॥ एवं कुल समेत रावण का वध कर जनक-नन्दिनी सीता को ले आऊँगा । अथवा रावण के गले में रस्सी बाँधकर बायें हाथ से पर्वत समेत लङ्का को उठाकर राम के आगे ले जाकर डाल दूँ । अथवा शुभ लक्षणा जानकी को देखकर ही चला आऊँ ॥ २३–२४ ॥

तब हनुमान् जी की बात सुन कर जाम्बवान् ने कहा—हे तात ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम केवल जीती हुई जानकीको देखकर ही चले आओ ॥२५॥ फिर राम के साथ जाकर अपना पराक्रम दिखाना । हे भद्र ! आकाश मार्ग से जाते हुए तुम्हारा कल्याण हो ॥ २६ ॥ राम-कार्य के लिए जाते हुए तुम्हारा वायु अनुगमन करें । इस प्रकार का आशीर्वाद देकर अभिनन्दन

**महेन्द्राद्रिशिरो गत्वा बभूवाऽद्भुतदर्शनः ॥ २८ ॥**

**महानगेन्द्रप्रतिमो महात्मा सुवर्ण-वर्णोऽरुण-चारुवक्त्रः ।**

**महाफणीन्द्राभ-सुदीर्घबाहु-र्वातात्मजोऽदृश्यत सर्वभूतैः ॥ २९ ॥**

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
किष्किन्धाकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

समाप्तमिदं किष्किन्धाकाण्डम् ।



---

करते हुए श्रेष्ठ वानरों ने हनुमान् जी को विदा किया ॥ २७ ॥ पुनः हनुमान् जी महेन्द्र पर्वतके सबसे ऊँचे शिखर पर जा कर अपना अद्भुत रूप धारण किया ॥ २८ ॥ उस समय वायुपुत्र महात्मा हनुमान् जी समस्त प्राणियों को पर्वत-राज के समान विशाल काय, सुवर्ण वर्ण, लाल सूर्य के समान मनोहर मुख वाले, शेषनाग के समान दीर्घ भुजा वाले दिखाई पड़ रहे थे ॥ २९ ॥

इस प्रकार पण्डित सन्तशरण मिश्रात्मज आचार्य पण्डित शिवदत्त मिश्र शास्त्री कृत 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या सहित अध्यात्म-रामायण के उमा-महेश्वर संवाद में किष्किन्धाकाण्ड का नवम सर्ग समाप्त ॥९॥



# अध्यात्मरामायणम्

## 'रामप्रिया'-हिन्दीव्याख्या-सहितम्

## सुन्दरकाण्डम्

□

### १. प्रथमः सर्गः

( हनुमान्‌जीका समुद्रोल्लङ्घन एवं लंका-प्रवेश )

श्रीमहादेव उवाच

शतयोजनविस्तीर्णं समुद्रं मकरालयम् ।
लिलङ्घयिषुरानन्दसन्दोहो मारुतात्मजः ॥ १ ॥
ध्यात्वा रामं परात्मानमिदं वचनमब्रवीत् ।
पश्यन्तु वानराः सर्वे गच्छन्तं मां विहायसा ॥ २ ॥
अमोघं रामनिर्मुक्तं महाबाणमिवाऽखिलाः ।
पश्याम्यद्यैव रामस्य पत्नीं जनकनन्दिनीम् ॥ ३ ॥
कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहं पुनः पश्यामि राघवम् ।
प्राणप्रयाणसमये यस्य नाम सकृत् स्मरन् ॥ ४ ॥

---

श्री महादेवजीने कहा—हे पार्वती ! आनन्द-सन्दोह मारुतात्मज हनुमान् जी सौ योजन तक फैले हुए मकरादि जल-जन्तुओं से पूर्ण विशाल समुद्र को लाँघने की इच्छा से ॥ १ ॥ परमात्मा राम का ध्यान करते हुए इस प्रकार बोले—हे वानरो ! आप लोग राम के द्वारा छोड़े गये अमोघ बाण के समान आकाश मार्ग से जाते हुए मेरी ओर देखो, मैं आज ही जनक-नन्दिनी राम की प्राणप्रिया भार्या सीता को देखूँगा ॥ २—३ ॥ इस प्रकार सीता को देख

नरस्तीर्त्वा भवाम्भोधिमपारं याति तत्पदम् ।
किं पुनस्तस्य दूतोऽहं तदङ्गाङ्गुलिमुद्रिकः ॥ ५ ॥
तमेव हृदये ध्यात्वा लङ्घयाम्यल्पवारिधिम् ।
इत्युक्त्वा हनुमान् बाहू प्रसार्यायतवालधिः ॥ ६ ॥
ऋजुग्रीवोर्ध्वदृष्टिः सन्नाकुञ्चितपदद्वयः ।
दक्षिणाभिमुखस्तूर्णं पुप्लुवेऽनिलविक्रमः ॥ ७ ॥
आकाशात् त्वरितं देवैर्वीक्ष्यमाणो जगाम सः ।
दृष्ट्वाऽनिलसुतं देवा गच्छन्तं वायुवेगतः ॥ ८ ॥
परीक्षणार्थं तत्त्वस्य वानरस्येदमब्रुवन् ।
गच्छत्येष महासत्त्वो वानरो वायुविक्रमः ॥ ९ ॥
लङ्कां प्रवेष्टुं शक्तो वा न वा जानीमहे बलम् ।
एवं विचार्य नागानां मातरं सुरसाभिधाम् ॥ १० ॥

---

कर मैं कृतकार्य एवं कृतार्थ होकर पुनः रामका दर्शन करूँगा। प्राण-प्रयाण काल में जिसके नाम को एक बार भी स्मरण कर मनुष्य इस अपार संसार-समुद्र को पार कर ब्रह्मस्वरूप हो जाता है फिर मैं तो उन्हीं का दूत हूँ। और उनके अङ्गके अवयवभूत अँगुली में धारण की गयी अँगूठी लिये हुए हूँ ॥ ४–५ ॥ उन्हीं का ध्यान कर मैं इस छोटे से समुद्र को अवश्य लाँघ जाऊँगा। ऐसा कह कर उन्होंने अपनी भुजाओं को फैला दिया। एवं पूँछ सीधी कर ली ॥ ६ ॥ फिर गरदन को सीधाकर ऊपर की ओर देखते हुए अपने दोनों पैरों को संकुचित कर लिया। फिर अपना मुख दक्षिण की ओर कर वायुके समान ( आकाश-मण्डल में ) उड़े ॥ ७ ॥

उस समय देवताओं के देखते-देखते वे आकाश मार्ग से तीव्र वेग से जा रहे थे। इस प्रकार वायु के वेग से जाते हुए हनुमान् जी को देखकर देवता लोग ॥ ८ ॥ उनके सत्त्व की परीक्षा के लिये आपस में इस प्रकार कहने लगे—यह महाबलवान् वानर वायु के वेग के समान तीव्र गति से जा रहा है ॥ ९ ॥ यह लङ्कामें प्रवेश करनेकी सामर्थ्य रखता है अथवा नहीं इस लिए इसके बल की परीक्षा करनी चाहिए। इस प्रकार आपस में विचार कर

अब्रवीद् देवतावृन्दः कौतूहलसमन्वितः ।
गच्छ त्वं वानरेन्द्रस्य किञ्चिद् विघ्नं समाचर ॥ ११ ॥
ज्ञात्वा तस्य बलं बुद्धिं पुनरेहि त्वरान्विता ।
इत्युक्ता सा ययौ शीघ्रं हनुमद्-विघ्नकारणात् ॥ १२ ॥
आवृत्य मार्गं पुरतः स्थित्वा वानरमब्रवीत् ।
एहि मे वदनं शीघ्रं प्रविशस्व महामते ! ॥ १३ ॥
देवैस्त्वं कल्पितो भक्ष्यः क्षुधासम्पीडितात्मनः ।
तामाह हनुमान् मातरहं रामस्य शासनात् ॥ १४ ॥
गच्छामि जानकीं द्रष्टुं पुनरागम्य सत्वरः ।
रामाय कुशलं तस्याः कथयित्वा त्वदाननम् ॥ १५ ॥
निवेक्ष्ये देहि मे मार्गं सुरसायै नमोऽस्तु ते ।
इत्युक्त्वा पुनरेवाऽऽह सुरसा क्षुधितास्म्यहम् ॥ १६ ॥
प्रविश्य गच्छ मे वक्त्रं नो चेत्त्वां भक्षयाम्यहम् ।
इत्युक्तो हनुमानाह मुखं शीघ्रं विदारय ॥ १७ ॥

---

उन्होंने कुतूहलवश नाग माता सुरसा से कहा—॥ १० ॥ हे सुरसे ! तुम जाओ और इस वानरेन्द्र के मार्ग में कुछ विघ्न उत्पन्न करो ॥ ११ ॥ फिर इसके बल एवं बुद्धि का पता लगाकर शीघ्रता से यहाँ चली आओ । देवताओं के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर सुरसा हनुमान्जी के मार्ग में विघ्न उपस्थित करने के लिए गयी ॥ १२ ॥ वह उनके मार्ग को रोक कर सामने खड़ी होकर कहने लगी—हे महामते ! आओ और शीघ्र ही मेरे मुख में प्रवेश करो ॥ १३ ॥ मैं बहुत दिनों से भूख से व्याकुल हो रही थी, देवताओं ने तुम्हें मेरा भक्ष्य बना कर भेजा है ।

तब हनुमान्जी ने उससे कहा—हे माता ! मैं श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञा से ॥ १४ ॥ जानकी का पता लगाने के लिए जा रहा हूँ । वहाँ से शीघ्र लौटकर श्रीरामचन्द्रजी को जानकी का समाचार सुनाकर फिर तुम्हारे मुख में प्रवेश करूँगा ॥ १५ ॥ हे सुरसे ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ । तुम मेरा मार्ग छोड़ दो । इसपर सुरसा पुनः कहने लगी—मैं बहुत भूखी हूँ ॥ १६ ॥ तुम मेरे मुख में प्रवेश कर फिर चले जाना ।

प्रविश्य वदनं तेऽद्य गच्छामि त्वरयान्वितः ।
इत्युक्त्वा योजनायामदेहो भूत्वा पुरः स्थितः ॥ १८ ॥
दृष्ट्वा हनुमतो रूपं सुरसा पञ्चयोजनम् ।
मुखं चकार हनुमान् द्विगुणं रूपमादधत् ॥ १९ ॥
ततश्चकार सुरसा योजनानां च विंशतिम् ।
वक्त्रं चकार हनुमांस्त्रिंशद्योजनसम्मितम् ॥ २० ॥
ततश्चकार सुरसा पञ्चाशद्योजनायतम् ।
वक्त्रं तदा हनूमांस्तु बभूवाऽङ्गुष्ठसन्निभः ॥ २१ ॥
प्रविश्य वदनं तस्याः पुनरेत्य पुरः स्थितः ।
प्रविष्टो निर्गतोऽहं ते वदनं देवि ! ते नमः ॥ २२ ॥
एवं वदन्तं दृष्ट्वा सा हनूमन्तमथाऽब्रवीत् ।
गच्छ साधय रामस्य कार्यं बुद्धिमतां वर ! ॥ २३ ॥
देवैः सम्प्रेषिताऽहं ते बलं जिज्ञासुभिः कपे ! ।
दृष्ट्वा सीतां पुनर्गत्वा रामं द्रक्ष्यसि गच्छ भोः ॥ २४ ॥

---

अन्यथा मैं तुम्हें खा जाऊँगी। इस प्रकार कहे जाने पर हनुमान्‌जी ने कहा--अच्छा, तुम शीघ्र ही अपना मुँह फैलाओ ॥१७॥ तदनन्तर तुम्हारे मुख में मैं प्रवेश कर पुनः शीघ्रता से चला जाऊँगा। ऐसा कहकर हनुमान्‌जी अपना शरीर एक योजन लम्बा बनाकर उसके आगे खड़े हो गये ॥ १८ ॥

इस प्रकार हनुमान् के रूपको देखकर सुरसा ने अपना मुँह पाँच योजन का फैला दिया। फिर हनुमान्‌जी ने उसका भी दूना रूप धारण कर लिया ॥ १९ ॥ फिर सुरसा ने अपना मुँह बीस योजन का बना लिया। तब हनुमान्‌जी ने अपना देह तीस योजन कर लिया ॥ २० ॥ तब सुरसा ने अपना मुँह पचास योजन फैलाया। तब हनुमान्‌जी अँगूठे के समान अत्यन्त छोटे हो गये ॥ २१ ॥ और शीघ्रता से उसके मुख में प्रवेश कर पुनः बाहर निकलकर उसके सामने खड़े होकर कहने लगे--हे देवि ! मैं तुम्हारे मुख में प्रवेश कर निकल आया हूँ, तुम्हें नमस्कार है ॥ २२ ॥

हनुमानजी को इस प्रकार कहते देखकर सुरसा बोली--हे बुद्धिमानों में अग्रगण्य ! जाओ और राम के कार्य को सिद्ध करो ॥ २३ ॥ हे कपे !

इत्युक्त्वा सा ययौ देवलोकं वायुसुतः पुनः ।
जगाम वायुमार्गेण गरुत्मानिव पक्षिराट् ॥ २५ ॥
समुद्रोऽप्याह मैनाकं मणिकाञ्चनपर्वतम् ।
गच्छत्येष महासत्त्वो हनुमान् मारुतात्मजः ॥ २६ ॥
रामस्य कार्यसिद्ध्यर्थं तस्य त्वं सचिवो भव ।
सागरैर्वर्द्धितो यस्मात् पुराऽहं सागरोऽभवम् ॥ २७ ॥
तस्याऽन्वये बभूवाऽसौ रामो दाशरथिः प्रभुः ।
तस्य कार्यार्थसिद्ध्यर्थं गच्छत्येष महाकपिः ॥ २८ ॥
त्वमुत्तिष्ठ जलात्तूर्णं त्वयि विश्रम्य गच्छतु ।
स तथेति प्रादुरभूज्जलमध्यान्महोन्नतः ॥ २९ ॥
नानामणिमयैः शृङ्गैस्तस्योपरि नराकृतिः ।
प्राह यान्तं हनूमन्तं मैनाकोऽहं महाकपे ! ॥ ३० ॥

---

देवताओं ने मुझे तुम्हारे बल जानने की इच्छा से तुम्हारे पास भेजा था। तुम अवश्य ही सीता का पता लगाकर रामचन्द्रजी से मिलोगे। अब तुम जाओ ॥ २४ ॥ ऐसा कहकर वह सुरसा देवलोक चली गई। इधर हनुमान्जी भी आकाश में गरुड़ के समान वेग से चलने लगे ॥ २५ ॥

इसी समय समुद्र ने भी मणिकाञ्चनमय मैनाक पर्वत से कहा--देखो, ये महाशक्तिमान् मारुतात्मज हनुमान्जी राम के कार्य की सिद्धि के लिए जा रहे हैं ॥ २६ ॥ इस कार्य में तुम उनके सहायक बनो, सगर के पुत्रों ने मुझे बढ़ाया है इसलिए मैं सागर कहा जाता हूँ ॥ २७ ॥ उन्हीं के वंश में भगवान् राम दशरथनन्दन होकर उत्पन्न हुए हैं। उन्हीं के कार्य को सिद्ध करने के लिए ये कपिराज जा रहे हैं ॥२८॥ इसलिए तुम शीघ्रता से जल के ऊपर चले आओ। जिससे ये कुछ देर तुम्हारे ऊपर विश्राम कर पुनः आगे को जाँय। वह मैनाक भी 'तथास्तु' कहकर जल के भीतर से बहुत उँचे निकल आया ॥२९॥ और अनेक प्रकार के मणिमय शिखरों के ऊपर मनुष्य रूप धारण कर उसने जाते हुए हनुमान्जी से कहा--हे महाकपे !

समुद्रेण समादिष्टस्त्वद् विश्रामाय मारुते ! ।
आगच्छामृतकल्पानि जग्ध्वा पक्वफलानि मे ॥ ३१ ॥

विश्रम्यात्र क्षणं पश्चाद् गमिष्यसि यथासुखम् ।
एवमुक्तोऽथ तं प्राह हनूमान् मारुतात्मजः ॥ ३२ ॥

गच्छतो रामकार्यार्थं भक्षणं मे कथं भवेत् ? ।
विश्रामो वा कथं मे स्याद् गन्तव्यं त्वरितं मया ॥ ३३ ॥

इत्युक्त्वा स्पृष्टशिखरः कराग्रेण ययौ कपिः ।
किञ्चिद् दूरं गतस्यास्य छायां छायाग्रहोऽग्रहीत् ॥ ३४ ॥

सिंहिका नाम सा घोरा जलमध्ये स्थिता सदा ।
आकाशगामिनां छायामाक्रम्याऽऽकृष्य भक्षयेत् ॥ ३५ ॥

तथा गृहीतो हनुमांश्चिन्तयामास वीर्यवान् ।
केनेदं मे कृतं वेगरोधनं विघ्नकारिणा ॥ ३६ ॥

---

मैं मैनाक हूँ ॥ ३० ॥ हे मारुते ! समुद्र ने मुझे आज्ञा दी है कि तुम हनुमान् जी को विश्राम कराओ । अत: आप आवें और अमृत के समान पके हुए फल को खाकर ॥३१॥ थोड़ी देर विश्राम कर फिर यथेच्छ चले जाइए । इस प्रकार मैनाक के द्वारा कहे जानेपर मारुतात्मज हनुमान् ने उससे कहा ॥ ३२ ॥ मैं इस समय राम के कार्य के लिए जा रहा हूँ । मैं भला भोजन किस प्रकार कर सकता हूँ । और विश्राम भी कैसे कर सकता हूँ । मुझे शीघ्र जाना भी है । भोजन एवं विश्राम के लिए अवकाश कहाँ ? ॥ ३३ ॥ ऐसा कहकर महाकपि हनुमान् ने मैनाक के शिखर का स्पर्श किया । और ज्योंही कुछ दूर आगे बढ़े कि इनकी छाया को एक छायाग्रह ने पकड़ लिया ॥ ३४ ॥ वह सदैव जल में निवास करने वाली महा भयानक सिंहिका नाम की राक्षसी थी, जो आकाश मार्ग से जाने वाले जीवों की छाया पकड़कर उन्हें अपनी ओर खींच कर खा जाया करती थी ॥३५॥ इसी प्रकार जब उसने हनुमान्जी की छाया पकड़ी तो पराक्रमशाली हनुमान् अपने मन में विचार करने लगे । किस विघ्नकारी जीव ने मेरे इस वेग को रोक दिया ॥ ३६ ॥

दृश्यते नैव कोऽप्यत्र विस्मयो मे प्रजायते ।
एवं विचिन्त्य हनुमानधो दृष्टिं प्रसारयत् ॥ ३७ ॥
तत्र दृष्ट्वा महाकायां सिंहिकां घोररूपिणीम् ।
पपात सलिले तूर्णं पद्भ्यामेवाहनद्रुषा ॥ ३८ ॥
पुनरुत्प्लुत्य हनुमान् दक्षिणाभिमुखो ययौ ।
ततो दक्षिणमासाद्य कूलं नानाफलद्रुमम् ॥ ३९ ॥
नानापक्षिमृगाकीर्णं नानापुष्पलतावृतम् ।
ततो ददर्श नगरं त्रिकूटाचलमूर्धनि ॥ ४० ॥
प्रकारैर्बहुभिर्युक्तं परिखाभिश्च सर्वतः ।
प्रवेक्ष्यामि कथं लङ्कामिति चिन्तापरोऽभवत् ॥ ४१ ॥
रात्रौ वेक्ष्यामि सूक्ष्मोऽहं लङ्कां रावणपालिताम् ।
एवं विचिन्त्य तत्रैव स्थित्वा लङ्कां जगाम सः ॥ ४२ ॥
धृत्वा सूक्ष्मं वपुर्द्वारं प्रविवेश प्रतापवान् ।
तत्र लङ्कापुरी साक्षाद् राक्षसीवेषधारिणी ॥ ४३ ॥

---

यहाँ तो कोई ऐसा जीव दिखाई भी नहीं देता। इससे मुझे महान् विस्मय हो रहा है। ऐसा सोचते-सोचते जब उन्होंने नीचे की ओर दृष्टि की ॥ ३७ ॥ तब उन्होंने महा विकराल और विशाल कायवाली सिंहिका को देखा। फिर तो वे जल में कूद पड़े। और पैर से ही उसे मार डाला ॥ ३८ ॥ पुनः ऊपर कूद कर हनुमान् जी दक्षिण दिशा की ओर चले। और समुद्र के दक्षिणी किनारे पर पहुँच कर अनेक प्रकार के फल एवं वृक्षों से समन्वित नगर को देखा ॥ ३९ ॥ वह नगर अनेक प्रकार के पक्षियों एवं मृगों से आकीर्ण तथा नाना प्रकार के पुष्पों एवं लताओं से घिरा हुआ था। और त्रिकूट पर्वत के शिखर पर बसा हुआ था ॥ ४० ॥ वह नगर अनेक प्रकार के परकोटों एवं खाइयों से घिरा हुआ था। उसे देखते ही वे मन में विचार करने लगे कि, किस प्रकार इस लङ्का नगर में प्रवेश करूँ ॥ ४१ ॥ मैं सूक्ष्म रूप धारण कर रावण-पालित इस लङ्का में रात्रि के समय प्रवेश करूँगा। ऐसा विचार कर वे वहाँ ठहर कर रात्रि के समय में लङ्का में जाने लगे ॥ ४२ ॥ ज्यों ही सूक्ष्म रूप धारण कर वे

प्रविशन्तं हनूमन्तं दृष्ट्वा लङ्का व्यतर्जयत् ।
कस्त्वं वानररूपेण मामनादृत्य लङ्किनीम् ॥ ४४ ॥

प्रविश्य चोरवद्रात्रौ किं भवान् कर्तुमिच्छति ।
इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षी पादेनाभिजघान तम् ॥ ४५ ॥

हनुमानपि तां वाममुष्टिनावज्ञयाऽहनत् ।
तदैव पतिता भूमौ रक्तमुद्वमती भृशम् ॥ ४६ ॥

उत्थाय प्राह सा लङ्का हनुमन्तं महाबलम् ।
हनूमन् ! गच्छ भद्रं ते जिता लङ्का त्वयाऽनघ ! ॥ ४७ ॥

पुराऽहं ब्रह्मणा प्रोक्ता ह्यष्टाविंशतिपर्यये ।
त्रेतायुगे दाशरथी रामो नारायणोऽव्ययः ॥ ४८ ॥

जनिष्यते योगमाया सीता जनकवेश्मनि ।
भूभारहरणार्थाय प्रार्थितोऽयं मया क्वचित् ॥ ४९ ॥

---

लङ्का में प्रवेश कर रहे थे कि साक्षात् लङ्कापुरी राक्षसी का वेष बनाकर उन्हें द्वार पर खड़ी मिली ॥ ४३ ॥ उसने लङ्का में प्रवेश करते हुए हनुमान् को देखकर डाँटते हुए कहा--तुम कौन हो ? जो वानर का रूप धारण कर मुझ लंकिनी का अनादर कर ॥ ४४ ॥ चोर के समान रात्रि में लङ्का में प्रवेश कर रहे हो । और यहाँ क्या करना चाहते हो, ऐसा कहकर क्रोधाविष्ट हो उसने हनुमान् जी को लात से मार दिया ॥ ४५ ॥ फिर हनुमान् जी ने उसकी अवज्ञा कर बायें हाथ की मुष्टिका से उसे ऐसा मारा कि वह रुधिर का वमन करती हुई उसी समय पृथ्वी पर जा गिरी ॥ ४६ ॥

तदनन्तर कुछ देर के बाद लङ्किनी उठ कर महाबलवान् हनुमान् जी से कहने लगी । हे हनुमान् ! तुम जाओ । तुम्हारा कल्याण हो । हे अनघ ! अब तुमने लङ्का जीत ली ॥ ४७ ॥ ब्रह्मा ने मुझसे पहले ही कह दिया था कि अट्ठाइसवें त्रेतायुग में साक्षात् अव्यय नारायण दशरथ के पुत्र राम के रूप में अवतार धारण करेंगे ॥ ४८ ॥ और साक्षात् योगमाया, जनकपुत्री जानकी के रूप में प्रगट होंगी । इसका कारण यह है कि मैंने कभी उनसे

सभार्यो राघवो भ्रात्रा गमिष्यति महावनम् ।
तत्र सीतां महामायां रावणोऽपहरिष्यति ॥ ५० ॥
पश्चाद्रामेण साचिव्यं सुग्रीवस्य भविष्यति ।
सुग्रीवो जानकीं द्रष्टुं वानरान् प्रेषयिष्यति ॥ ५१ ॥
तत्रैको वानरो रात्रावागमिष्यति तेऽन्तिकम् ।
त्वया च भर्त्सितः सोऽपि त्वां हनिष्यति मुष्टिना ॥ ५२ ॥
तेनाहता त्वं व्यथिता भविष्यसि यदाऽनघे ।
तदैव रावणस्यान्तो भविष्यति न संशयः ॥ ५३ ॥
तस्मात्त्वया जिता लङ्का जितं सर्वं त्वयाऽनघ ! ।
रावणान्तःपुरवरे क्रीडाकाननमुत्तमम् ॥ ५४ ॥
तन्मध्येऽशोकवनिका दिव्यपादपसङ्कुला ।
अस्ति तस्यां महावृक्षः शिंशपानाम मध्यगः ॥ ५५ ॥
तत्रास्ते जानकी घोरराक्षसीभिः सुरक्षिता ।
दृष्ट्वैव गच्छ त्वरितं राघवाय निवेदय ॥ ५६ ॥

---

पृथ्वी का भार उतारने के लिए प्रार्थना की थी ॥ ४९ ॥ जब श्री राम जी अपने भाई एवं भार्या के साथ महा वन को जायेंगे तो महामाया स्वरूपा सीता को रावण हर ले जायेगा ॥ ५० ॥ इसके अनन्तर राम के साथ सुग्रीव की मित्रता होगी । और सुग्रीव सीता का पता लगाने के लिये चारों ओर वानरों को भेजेगा ॥ ५१ ॥ उसमें से एक वानर सीता का खोज करता हुआ तुम्हारे पास रात्रिकाल में आयेगा । जब तुम उसका तिरस्कार करोगी तो वह तुम्हें मुक्के से मारेगा ॥ ५२ ॥ हे अनघे ! उस मुक्का के आघात से जब तू व्याकुल हो जायेगी उसी समय रावण का भी अन्त हो जायेगा । इसमें सन्देह नहीं ॥ ५३ ॥ अतः हे हनुमान् ! जब तुमने लङ्का जीत ली तो सब कुछ जीत लिया । रावण के अन्तःपुर में एक अत्युत्तम क्रीडावन है ॥ ५४ ॥ उसमें दिव्य वृक्षों से सम्पन्न एक अशोक वाटिका है । उस अशोक वाटिका के मध्य में बहुत बड़ा एक शिंशपा ( सीसम ) का वृक्ष है ॥ ५५ ॥ वहाँ अत्यन्त भयानक राक्षसियों के पहरे में जानकी रह रही हैं । तुम उन्हें देखकर शीघ्रता से श्री रामचन्द्र जी

**धन्याहमप्यद्य चिराय राघव,-स्मृतिर्ममासीद् भव पाशमोचिनी ।**
**तद्भक्तसङ्गोऽप्यतिदुर्लभो मम, प्रसीदतां दाशरथिः सदा हृदि ॥५७॥**

**उल्लङ्घितेऽब्धौ पवनात्मजेन, धरासुतायाश्च दशाननस्य ।**
**पुस्फोर वामाक्षि भुजश्च तीव्रं, रामस्य दक्षाङ्गमतीन्द्रियस्य ॥५८॥**

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
सुन्दरकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥



## २. द्वितीयः सर्गः

(हनुमान्‌जीका वाटिकामें जाना एवं रावणका सीताजीको भय दिखलाना)

श्रीमहादेव उवाच

**ततो जगाम हनुमान् लङ्कां परमशोभनाम् ।**
**रात्रौ सूक्ष्मतनुर्भूत्वा बभ्राम परितः पुरीम् ॥ १ ॥**

---

को यह समाचार सुनाओ ॥ ५६ ॥ मैं भी आज धन्य हो गयी। जो संसार के बन्धनों से मुक्त करने वाली श्री रामचन्द्र जी की स्मृति हुई। और उनके भक्तों का अत्यन्त दुर्लभ संग भी मुझे आज ही प्राप्त हुआ। मेरे हृदय में विराजमान दशरथ-नन्दन श्री राम मुझपर पसन्न रहें ॥५७॥

श्री हनुमान् जी के समुद्र लाँघते ही सीता जी एवं रावण की बायीं भुजा और बायें नेत्र तथा इन्द्रियातीत श्री राम के दायें अङ्ग जोर-जोर से फड़कने लगे ॥ ५८ ॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या विभूषित अध्यात्म-रामायण के उमा-महेश्वर संवाद में सुन्दरकाण्ड का प्रथम सर्ग समाप्त ॥ १ ॥



महादेव जी ने कहा—हे पार्वती ! तदनन्तर हनुमान् जो सूक्ष्म शरीर धारण कर रात्रि में परम शोभिता लङ्कापुरी में गये। और सब ओर

सीतान्वेषणकार्यार्थी प्रविवेश नृपालयम् ।
तत्र सर्वप्रदेशेषु विविच्य हनुमान् कपिः ॥ २ ॥
नाऽपश्यज्जानकीं स्मृत्वा ततो लङ्काभिभाषितम् ।
जगाम हनुमान् शीघ्रमशोकवनिकां शुभाम् ॥ ३ ॥
सुरपादपसम्बाधां रत्नसोपानवापिकाम् ।
नानापक्षिमृगाकीर्णां स्वर्ण-प्रासाद-शोभिताम् ॥ ४ ॥
फलैरानम्रशाखाग्रपादपैः परिवारिताम् ।
विचिन्वन् जानकीं तत्र प्रतिवृक्षं मरुत्सुतः ॥ ५ ॥
ददर्शाभ्रं लिहं तत्र चैत्यप्रासादमुत्तमम् ।
दृष्ट्वा विस्मयमापन्नो मणिस्तम्भशतान्वितम् ॥ ६ ॥
समतीत्य पुनर्गत्वा किञ्चिद् दूरं स मारुतिः ।
ददर्श शिंशपावृक्षमत्यन्तनिबिडच्छदम् ॥ ७ ॥
अदृष्टातपमाकीर्णं स्वर्णवर्णविहङ्गमम् ।
तन्मूले राक्षसीमध्ये स्थितां जनकनन्दिनीम् ॥ ८ ॥

---

घूमने लगे ॥ १ ॥ फिर जब वे सीता का पता लगाते हुए राजगृह में गये, तो वहाँ भी उन्हें बहुत खोज करने पर जानकी का पता न लगा। तब उन्हें लङ्किनी की बात याद आयी। और परम मनोहर अशोक वाटिका में गये ॥ २–३ ॥

वह अशोक वाटिका कल्प वृक्षों से परिपूर्ण थी और उसके वापियों में रत्नजटित सोपान लगे हुए थे। वहाँ अनेक प्रकार के मृग एवं पक्षिगण विचरण कर रहे थे। तथा सुवर्ण निर्मित ऊँचे-ऊँचे गृहों से वह सुशोभित थी ॥ ४ ॥ फलों के भार से झुकी हुई शाखाओं से युक्त पेड़ लगे हुए थे। उस वाटिका के प्रत्येक वृक्ष के नीचे जानकी का पता लगाते हुए हनुमान् जी ने ॥ ५ ॥ आकाश को चूमने वाला एक ऊँचा देवालय देखा। उसमें सैकड़ों मणियों के खम्भे लगे हुए थे। इस प्रकार के देवालय को देखकर वे आश्चर्य-चकित हो गये ॥६॥ उस देवालय कोदेखने के बाद जब वे कुछ दूर आगे बढ़े तो उन्हें घने पत्तों से युक्त एक शीशम का वृक्ष दिखाई पड़ा ॥७॥

ददर्श हनुमान् वीरो देवतामिव भूतले ।
एकवेणीं कृशां दीनां मलिनाम्बरधारिणीम् ॥ ९ ॥
भूमौ शयानां शोचन्तीं रामरामेतिभाषिणीम् ।
त्रातारं नाऽधिगच्छन्तीमुपवासकृशां शुभाम् ॥१०॥
शाखान्तच्छदमध्यस्थो ददर्श कपिकुञ्जरः ।
कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहं दृष्ट्वा जनकनन्दिनीम् ॥११॥
मयैव साधितं कार्यं रामस्य परमात्मनः ।
ततः किलकिलाशब्दो बभूवान्तःपुराद् बहिः ॥१२॥
किमेतदिति सल्लीनो वृक्षपत्रेषु मारुतिः ।
आयान्तं रावणं तत्र स्त्रीजनैः परिवारितम् ॥१३॥
दशास्यं विंशतिभुजं नीलाञ्जनचयोपमम् ।
दृष्ट्वा विस्मयमापन्नः पत्रखण्डेष्वलीयत ॥१४॥

---

उसके नीचे घाम कभी नहीं जाता था। सुवर्ण वर्ण के पक्षियों से वह वृक्ष व्याप्त था। उसके नीचे राक्षसियों से घिरी हुई जानकी जी बैठी हुई थीं ॥ ८ ॥

वीर हनुमान् ने पृथ्वी पर पड़ी हुई देवता के समान उन्हें देखा। वे एकवेणी से युक्त अत्यन्त दुर्बल तथा दीन अवस्था में पड़ी हुई थीं। तथा मैले-कुचैले वस्त्र धारण किये हुए बैठी थीं ॥ ९ ॥ पृथ्वी पर पड़ी हुई शोक से परिपूर्ण हो 'राम-राम' शब्द कह रही थीं। उन्हें वहाँ पर कोई अपना रक्षक दिखाई नहीं दे रहा था। वे निरन्तर उपवास करने के कारण बहुत दुर्बल दिखाई पड़ती थीं ॥ १० ॥ हनुमान् जी शाखा के घने पत्तों के बीच से छिप कर उन्हें देखने लगे और मन में कहने लगे कि, आज जानकी को देख कर मैं कृतार्थ हो गया ॥ ११ ॥ यह मेरा सौभाग्य है कि, परमात्मा राम का कार्य मेरे द्वारा सिद्ध हुआ। इसी समय अन्तःपुर से बाहर उन्हें बड़ा कोलाहल सुनाई पड़ा ॥ १२ ॥ वृक्ष के पत्तों में छिपे हुए वे यह विचार ही कर रहे थे कि यह क्या है? कि इतने में स्त्री-जनों से घिरे हुए रावण को उन्होंने देखा ॥ १३ ॥ दश मुख, बीस भुजा एवं काले पहाड़ के समान शरीर वाले उस रावण को देखते ही हनुमान् जी

रावणो राघवेणाशु मरणं मे कथं भवेत् ? ।
सीतार्थमपि नायाति रामः किं कारणं भवेत् ? ॥ १५ ॥

इत्येवं चिन्तयन्नित्यं राममेव सदा हृदि ।
तस्मिन् दिनेऽपररात्रौ रावणो राक्षसाधिपः ॥ १६ ॥

स्वप्ने रामेण सन्दिष्टः कश्चिदागत्य वानरः ।
कामरूपधरः सूक्ष्मो वृक्षाग्रस्थोऽनुपश्यति ॥ १७ ॥

इति दृष्ट्वाऽद्भुतं स्वप्नं स्वात्मन्येवानुचिन्त्य सः ।
स्वप्नः कदाचित् सत्यः स्यादेवं तत्र करोम्यहम् ॥ १८ ॥

जानकीं वाक्शरैर्विद्ध्वा दुःखितां नितरामहम् ।
जानकीं वाक्शरैर्विद्ध्वा दुःखितां नितरामहम् ।
करोमि दृष्ट्वा रामाय निवेदयतु वानरः ॥ १९ ॥
इत्येवं चिन्तयन् सीतासमीपमगमद् द्रुतम् ।
नूपुराणां किङ्किणीनां श्रुत्वा शिञ्जितमङ्गना ॥ २० ॥

---

आश्चर्य में पड़ गये। और वे पुनः पत्तों की आड़ में छिप गये ॥ १४ ॥ रावण भी अपने मन में यह विचार कर रहा था कि राम के हाथों से शीघ्र मेरी मृत्यु किस प्रकार होगी ? पता नहीं कि वे सीता के लिए अभी तक क्यों नहीं आये ? ॥ १५ ॥

इस प्रकार अपने हृदय में निरन्तर राम को चिन्ता करता हुआ वह राक्षस-राज उस दिन रात्रि के शेषभाग में ॥ १६ ॥ स्वप्न देखा कि राम का सन्देश लेकर स्वेच्छा रूप धारी कोई वानर सूक्ष्म शरीर धारण कर वृक्षाग्रभाग पर बैठा हुआ देख रहा है ॥ १७ ॥ इस प्रकार का अद्भुत स्वप्न देख कर रावण ने अपने मन में विचार किया कि कदाचित् यह स्वप्न ठीक ही हो, इस लिए मुझे ऐसा काम करना चाहिए ॥ १८ ॥ जानकी तो पहले से दुःखी हैं ही मुझे अपने वाग्बाणों से उन्हें और दुःखी करना चाहिए। जिसे देख कर वह वानर जा कर रामचन्द्र को सुनावे ॥ १९ ॥ ऐसा सोच कर वह अशोक वन में सीता के पास आया। उसके साथ में आने वाली स्त्रियों के नूपुर एवं करधनी के शब्द को सुन

सीता भीता लीयमाना स्वात्मन्येव सुमध्यमा ।
अधोमुख्यश्रुनयना स्थिता रामार्पितान्तरा ॥ २१ ॥
रावणोऽपि तदा सीतामालोक्याऽऽह सुमध्यमे ! ।
मां दृष्ट्वा किं वृथा सुभ्रु स्वात्मन्येव विलीयसे ॥ २२ ॥
रामो वनचराणां हि मध्ये तिष्ठति सानुजः ।
कदाचिद् दृश्यते कैश्चित् कदाचिन्नैव दृश्यते ॥ २३ ॥
मया तु बहुधा लोकाः प्रेषितास्तस्य दर्शने ।
न पश्यन्ति प्रयत्नेन वीक्षमाणाः समन्ततः ॥ २४ ॥
किं करिष्यसि रामेण निःस्पृहेण सदा त्वयि ।
त्वया सदाऽऽलिङ्गितोऽपि समीपस्थोऽपि सर्वदा ॥ २५ ॥
हृदयेऽस्य न च स्नेहस्त्वयि रामस्य जायते ।
त्वत्कृतान् सर्वभोगांश्च त्वद्गुणानपि राघव ! ॥ २६ ॥
भुञ्जानोऽपि न जानाति कृतघ्नो निर्गुणोऽधमः ।
त्वमानीता मया साध्वी दुःखशोकसमाकुला ॥ २७ ॥

---

कर मनोहर कटिवाली सीता अत्यन्त भयभीत हो उठीं। उन्होंने अपने अङ्गों को संकुचित कर नीचे की ओर मुख कर लिया। और नेत्रों में जल भर कर हृदय से राम का स्मरण करती हुई बैठ गयीं ॥ २०–२१ ॥

तब रावण सीता जी की ओर देखकर कहने लगा—हे सुमध्यमे, हे सुभ्रु ! तुम मुझे देखकर क्यों अपने अंगों को संकुचित कर रही हो ॥ २२ ॥ अब राम अपने भाई के सहित वनचरों के साथ रहता है। वह किसी से कभी दिखाई देता है और कभी दिखाई नहीं देता ॥ २३ ॥ मैंने उसे देखने के लिए कितने लोगों को भेजा। किन्तु पयत्न पूर्वक चारों ओर देखने पर भी वह कहीं दिखाई नहीं पड़ता ॥ २४ ॥ भला, उस राम को लेकर तुम क्या करोगी। वह तो अब सदैव तुमसे निःस्पृह हो गया है। इतने दिनों तक सदैव तुम्हारे पास रहते हुए, एवं तुमसे आलिङ्गित होते हुए भी ॥ २५ ॥ अभीतक उस राम के हृदय में तुम्हारे प्रति स्नेह का संचार तक न हुआ। वह रघुकुल में उत्पन्न होकर भी तुम्हारे द्वारा प्राप्त भोगों को एवं तुम्हारे गुणों को ॥ २६ ॥ भोगता हुआ भी सब

इदानीमपि नायाति भक्तिहीनः कथं व्रजेत् ? ।
निःसत्त्वो निर्ममो मानी मूढः पण्डितमानवान् ॥ २८ ॥
नराधमं त्वद्-विमुखं किं करिष्यसि भामिनि ! ।
त्वय्यतीव समासक्तं मां भजस्वासुरोत्तमम् ॥ २९ ॥
देव-गन्धर्व-नागानां यक्ष-किन्नर-योषिताम् ।
भविष्यसि नियोक्त्री त्वं यदि मां प्रतिपद्यसे ॥ ३० ॥
रावणस्य वचः श्रुत्वा सीतामर्षसमन्विता ।
उवाचाऽधोमुखी भूत्वा निधाय तृणमन्तरे ॥ ३१ ॥
राघवाद् विभ्यता नूनं भिक्षुरूपं त्वया धृतम् ।
रहिते राघवाभ्यां त्वं शुनीव हविरध्वरे ॥ ३२ ॥

---

कुछ भूल गया है। अतः वह कितना कृतघ्न, निर्गुण एवं अधम है। देखो, तुम उसकी सुशीला पत्नी हो, इस समय मैं तुम्हें हर भी लाया हूँ जिससे तुम दुःख और शोक से व्याकुल हो रही हो किन्तु तुम्हें देखने के लिए वह अभी तक नहीं आया। वह आता भी तो कैसे ? तुम्हारे प्रति उसका स्नेह जो नहीं है। वह अत्यन्त निर्बल, ममता रहित, अहङ्कारी, मूर्ख एवं अपने को बहुत बड़ा पण्डित मानता है ॥ २७-२८ ॥

हे भामिनि ! तुम अपने को न चाहने वाले उस नराधम को लेकर क्या करोगी ? मैं असुरों का राजा हूँ और तुमसे प्रेम भी करता हूँ। अतः तुम मुझे अङ्गीकार करो ॥ २९ ॥ यदि तुम मुझे अङ्गीकार कर मेरी पत्नी हो जाओगी तो, देव, गन्धर्व, किन्नर, नाग, यक्ष एवं किन्नरों की स्त्रियों पर शासन करोगी ॥ ३० ॥

रावण की बातों को सुनते ही सीता को बड़ा अमर्ष ( क्रोध ) उत्पन्न हो गया। वे नीचे की ओर मुख कर बीच में तृण रख कर रावण से कहने लगीं ॥ ३१ ॥ हे नीच ! तुमने निश्चय ही राम के डर से भिक्षु का रूप धारण किया था। और जिस प्रकार कुत्ता यज्ञ में पुरोडाश को चुपके से चुरा लेता है, उसी प्रकार तूने भी उन दोनों रघुश्रेष्ठों की अनुपस्थिति

हतवानसि मां नीच ! तत्फलं प्राप्स्यसेऽचिरात् ।
यदा रामशराघात-विदारित-वपुर्भवान् ॥ ३३ ॥
ज्ञास्यसेऽमानुषं रामं गमिष्यसि यमान्तिकम् ।
समुद्रं शोषयित्वा वा शरैर्बद्ध्वाऽथ वारिधिम् ॥ ३४ ॥
हन्तुं त्वां समरे रामो लक्ष्मणेन समन्वितः ।
आगमिष्यत्यसन्देहो द्रक्ष्यसे राक्षसाधम ! ॥ ३५ ॥
त्वां सपुत्रं सहबलं हत्वा नेष्यति मां पुरम् ।
श्रुत्वा रक्षःपतिः क्रुद्धो जानक्याः परुषाक्षरम् ॥ ३६ ॥
वाक्यं क्रोधसमाविष्टः खड्गमुद्यम्य सत्वरः ।
हन्तुं जनकराजस्य तनयां ताम्रलोचनः ॥ ३७ ॥
न्दोदरी निवार्याह पतिं पतिहिते रता ।
जैनां मानुषीं दीनां दुःखितां कृपणां कृशाम् ॥ ३८ ॥
देव-गन्धर्व-नागानां बह्व्यः सन्ति वराङ्गनाः ।
त्वामेव वरयन्त्युच्चैर्मदमत्तविलोचनाः ॥ ३९ ॥

---

में मेरा हरण किया है ॥ ३२ ॥ अतः शीघ्र ही इसका फल तुझे प्राप्त होगा। जिस समय राम के बाणों से तुम्हारा शरीर विदीर्ण हो जायेगा ॥ ३३ ॥ और तुम यमलोक को जाओगे तब उस समय तू राम को परमात्मा समझेगा। हे राक्षसाधम ! जब समुद्र को बाणों से सुखा कर अथवा बाणों से उस पर पुल बाँध कर ॥ ३४ ॥ राम अपने भाई के साथ, तुम्हें मारने के लिए इस लङ्का में निश्चय रूप से आवेंगे तब तू उन्हें शीघ्र देखेगा ॥ ३५ ॥ कि वे पुत्र एवं सेना सहित तुम्हारा वध कर मुझे अयोध्यापुरी को ले जायेंगे। राक्षसराज रावण जानकी के द्वारा कहे गये इस कठोर वचन को सुनकर ॥ ३६ ॥ अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा। और आँखें लाल-लाल कर शीघ्रता से तलवार निकाल कर जानकी को मारने के लिए तैयार हो गया ॥ ३७ ॥

तब पति का हित चाहने वाली मन्दोदरी ने रावण को रोकते हुए कहा—महाराज ! इस दीन अवस्था में पड़ी हुई दुःखिनी, कातर एवं क्षीण इस मानुषी को छोड़ दीजिए ॥ ३८ ॥ देव, गन्धर्व और नागों की

ततोऽब्रवीद् दशग्रीवो राक्षसीर्विकृताननाः ।
यथा मे वशगा सीता भविष्यति सकामना ।
तथा यतध्वं त्वरितं तर्जनादरणादिभिः ॥ ४० ॥

द्विमासाभ्यन्तरे सीता यदि मे वशगा भवेत् ।
तदा सर्वसुखोपेता राज्यं भोक्ष्यति सा मया ॥ ४१ ॥

यदि मासद्वयादूर्ध्वं मच्छय्यां नाऽभिनन्दति ।
तदा मे प्रातराशाय हत्वा कुरुत मानुषीम् ॥ ४२ ॥

इत्युक्त्वा प्रययौ स्त्रीभी रावणोऽन्तःपुरालयम् ।
राक्षस्यो जानकीमेत्य भीषयन्त्यः स्वतर्जनैः ॥ ४३ ॥

तत्रैका जानकीमाह यौवनं ते वृथा गतम् ।
रावणेन समासाद्य सफलं तु भविष्यति ॥ ४४ ॥

अपरा चाह कोपेन किं विलम्बेन जानकि ! ।
इदानीं छेद्यतामङ्गं विभज्य च पृथक पृथक् ॥ ४५ ॥

---

ऐसी अनेक मदमत्त विलोचना अनेक श्रेष्ठ स्त्रियाँ हैं, जो बड़ी उत्कण्ठा से आप का वरण करना चाहती हैं ॥ ३९ ॥ तब रावण विकराल मुख वाली उन राक्षसियों से कहा—हे राक्षसियों ! चाहे जिस-किसी भी उपाय से, भय से अथवा सम्मान से यह सीता सकामा होकर मेरे अधीन हो जाय वैसा उपाय करो ॥ ४० ॥ यदि यह सीता दो महीने के भीतर मेरे वश में हो जायेगी तो निश्चय ही मेरे साथ सम्पूर्ण सुखों से सम्पन्न होकर राज्य का भोग करेगी ॥ ४१ ॥ यदि दो महीने के भीतर इसने मेरी शय्या पर आना स्वीकार नहीं किया तो दो महीने के बाद इस मानवी को मार कर मेरा प्रातःकाल का कलेवा बना देना ॥४२॥ ऐसा कह कर वह रावण स्त्रियों के साथ अन्तःपुर ( रनिवास ) में चला गया । इधर राक्षसियाँ भी सीता के पास आकर अपने-अपने उपायों से उनको डराने लगीं ॥ ४३ ॥ उनमें-से एक ने जानकी से कहा—तुम्हारी जवानी व्यर्थ हो गयी । वह सफल तभी हो सकती है जब रावण के साथ सहवास करो ॥ ४४ ॥ फिर दूसरी ने कहा—जानकी ! तू विलम्ब क्यों

अन्या तु खड्गमुद्यम्य जानकीं हन्तुमुद्यता ।
अन्या करालवदना विदार्यास्यमभीषयत् ॥ ४६ ॥
एवं तां भीषयन्तीस्ता राक्षसीर्विकृताननाः ।
निवार्य त्रिजटा वृद्धा राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ॥ ४७ ॥
शृणुध्वं दुष्टराक्षस्यो मद्वाक्यं वो हितं भवेत् ॥ ४८ ॥
न भीषयध्वं रुदतीं नमस्कुरुत जानकीम् ।
इदानीमेव मे स्वप्ने रामः कमललोचनः ॥ ४९ ॥
आरुह्यैरावतं शुभ्रं लक्ष्मणेन समागतः ।
दग्ध्वा लङ्कापुरीं सर्वां हत्वा रावणमाहवे ॥ ५० ॥
आरोप्य जानकीं स्वाङ्के स्थितो दृष्टोऽगमूर्धनि ।
रावणो गोमयह्रदे तैलाभ्यक्तो दिगम्बरः ॥ ५१ ॥

---

करती है ? हमारी बात मान ले । अन्यथा हम लोग तुम्हारे अङ्गों को पृथक्-पृथक् रूप से बाँट कर एक-एक कर काट डालूँगी ॥ ४५ ॥ कोई तो तलवार उठाकर जानकी को मारने के लिए तैयार भी हो गई। और किसी ने अपना भयानक मुख फाड़ कर उन्हें बहुत डराया भी ॥४६॥

इस प्रकार भयानक मुख वाली उन राक्षसियों द्वारा सीता को डराते हुए देख कर वयोवृद्ध त्रिजटा नाम की राक्षसी ने उन्हें रोक कर कहा ॥४७॥ हे दुष्ट राक्षसियों ! मेरी बात सुनो, इसी में तुम्हारी भलाई है ॥ ४८ ॥ तुम लोग रोती-कलपती इस जानकी को मत डराओ। किन्तु इन्हें प्रणाम करो । अभी-अभी मैंने स्वप्न में देखा है कि कमल-नयन श्रीराम ॥ ४९ ॥ लक्ष्मण के साथ श्वेत ऐरावत पर चढ़ कर लङ्का में आये हैं। और लङ्का जलाकर एवं युद्ध में रावण को मार कर ॥ ५० ॥ जानकी को अपने गोद में लिये हुए पर्वत के अत्युच्च शिखर पर बैठे हैं। रावण मुण्डमाला धारण कर शरीर में तेल का अभ्यङ्ग कर एवं

अगाहत् पुत्र-पौत्रैश्च कृत्वा वदनमालिकाम् ।
विभीषणस्तु रामस्य सन्निधौ हृष्टमानसः ॥ ५२ ॥
सेवां करोति रामस्य पादयोर्भक्तिसंयुतः ।
सर्वथा रावणं रामो हत्वा सकुलमञ्जसा ॥ ५३ ॥
विभीषणायाधिपत्यं दत्त्वा सीतां शुभाननाम् ।
अङ्के निधाय स्वपुरीं गमिष्यति न संशयः ॥ ५४ ॥
त्रिजटाया वचः श्रुत्वा भीतास्ता राक्षसस्त्रियः ।
तूष्णीमासंस्तत्र तत्र निद्रावशमुपागताः ॥ ५५ ॥
तर्जिता राक्षसीभिः सा सीता भीतातिविह्वला ।
त्रातारं नाऽधिगच्छन्ती दुःखेन परिमूर्च्छिता ॥ ५६ ॥
अश्रुभिः पूर्णनयना चिन्तयन्तीदमब्रवीत् ।
प्रभाते भक्षयिष्यन्ति राक्षस्यो मां न संशयः ।
इदानीमेव मरणं केनोपायेन मे भवेत् ॥ ५७ ॥

---

नंगा होकर अपने पुत्र-पौत्रों के साथ गोबर के तालाब में डुबकी लगा रहा है। और विभीषण प्रसन्न चित्त होकर राम के सन्निधान में बैठकर भक्ति युक्त हो उनके चरणों की सेवा कर रहा है। अतः इस प्रकार के स्वप्न से ऐसा जान पड़ता है कि राम अनायास कुल सहित रावण को मारकर विभीषण को लङ्का का राज्य देकर कल्याणी सीता को अपने गोद में बैठा कर निःसन्देह अयोध्या को चले जायेंगे ॥ ५१–५४ ॥

त्रिजटा की बात सुनते ही राक्षसियाँ भयभीत हो उठीं। और वे चुपचाप जहाँ-की-तहाँ बैठ गयीं। और कुछ काल के अनन्तर उन्हें नींद भी आ गयी ॥ ५५ ॥ उस समय राक्षसियों से डराये जाने के कारण सीता भयभीत होकर अत्यन्त उद्विग्न हो गयीं। तथा अपना कोई रक्षक न देखकर वे दुःख से मूर्च्छित हो गयीं ॥ ५६ ॥ और आँखों में आँसू भर कर चिन्तित हो इस प्रकार कहने लगीं। अब इसमें सन्देह नहीं कि प्रातःकाल होते ही राक्षसियाँ मुझे खा जायेंगी। अतः ऐसा कौन सा

**एवं सुदुःखेन परिप्लुता सा, विमुक्तकण्ठं रुदती चिराय ।**
**आलम्ब्य शाखां कृतनिश्चया मृतौ, न जानती कञ्चिदुपायमङ्गना ॥५८॥**

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
सुन्दरकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥



# तृतीयः सर्गः

( जानकीजीसे भेंट, वाटिका-विध्वंस तथा ब्रह्मपाश-बन्धन )

श्रीमहादेव उवाच

**उद्बन्धनेन वा मोक्ष्ये शरीरं राघवं विना ।**
**जीवितेन फलं किं स्यान्मम रक्षोऽधिमध्यतः ॥ १ ॥**

---

उपाय है जिससे मुझे अभी मृत्यु प्राप्त हो जाये ॥ ५७ ॥ इस प्रकार दुःख के आवेग से परिपूर्ण होकर सीता मरने का निश्चय कर किन्तु उसका कोई साधन न प्राप्त कर वृक्ष की शाखा पकड़े हुए बहुत देर तक फूट-फूट कर रोती रहीं ॥ ५८ ॥

इस प्रकार पण्डित सन्तशरण मिश्रात्मज आचार्य पण्डित शिवदत्त मिश्र शास्त्री कृत 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या सहित अध्यात्म-रामायण के उमा-महेश्वर संवाद में सुन्दरकाण्ड का द्वितीय सर्ग समाप्त ॥२॥



श्री महादेव जी ने कहा—हे पार्वती ! सीता जी विचार करने लगीं कि मैं रामचन्द्र के बिना अब फाँसी लगाकर मर जाऊँगी । भला इन

दीर्घा वेणी ममात्यर्थमुद्बन्धाय भविष्यति ।
एवं निश्चितबुद्धिं तां मरणायाथ जानकीम् ॥ २ ॥
विलोक्य हनुमान् किञ्चिद् विचार्यैतदभाषत ।
शनैः शनैः सूक्ष्मरूपो जानक्याः श्रोत्रगं वचः ॥ ३ ॥
इक्ष्वाकुवंशसम्भूतो राजा दशरथो महान् ।
अयोध्याधिपतिस्तस्य चत्वारो लोकविश्रुताः ॥ ४ ॥
पुत्रा देवसमाः सर्वे लक्षणैरुपलक्षिताः ।
रामश्च लक्ष्मणश्चैव भरतश्चैव शत्रुहा ॥ ५ ॥
ज्येष्ठो रामः पितुर्वाक्याद् दण्डकारण्यमागतः ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया भार्यया सह ॥ ६ ॥
उवास गौतमीतीरे पञ्चवट्यां महामनाः ।
तत्र नीता महाभागा सीता जनकनन्दिनी ॥ ७ ॥
रहिते रामचन्द्रेण रावणेन दुरात्मना ।
ततो रामोऽतिदुःखार्तो मार्गमाणोऽथ जानकीम् ॥ ८ ॥

---

राक्षसियों के बीच जी कर भी मैं क्या करूँगी ॥१॥ यह मेरी लम्बी वेणी फाँसी लगाने के लिए पर्याप्त होगी। इस प्रकार जानकी को मरने के लिए निश्चय करती देख सूक्ष्म रूप धारी हनुमान् जी कुछ विचार कर जानकी को सुनाई पड़ने योग्य मन्द-मन्द स्वरों से धीरे-धीरे इस प्रकार कहने लगे ॥ २–३ ॥

इक्ष्वाकु के वंश में उत्पन्न अयोध्याधिपति महाराज दशरथ बड़े प्रतापी राजा थे। उनके सभी लक्षणों से युक्त देवता के समान राम, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न नाम के चार पुत्र हुए, जो त्रिलोकी में प्रसिद्ध हैं ॥४–५॥ उनमें सबसे जेठे राम भ्राता लक्ष्मण एवं भार्या सीता के साथ पिता की आज्ञा मान कर दण्डकारण्य में आये ॥ ६ ॥ और वे महामना गोदावरी के तट पर पञ्चवटी में आश्रम बनाकर रहने लगे। उस समय जब राम लक्ष्मण कुटी में नहीं थे, तो दुरात्मा रावण महामाया जनकनन्दिनी सीता को चुरा ले गया। फिर राम दुःख से सन्तप्त हो जानकी को खोजने लगे।

जटायुषं पक्षिराजमपश्यत् पतितं भुवि ।
तस्मै दत्त्वा दिवं शीघ्रमृष्यमूकमुपागमत् ॥ ९ ॥
सुग्रीवेण कृता मैत्री रामस्य विदितात्मनः ।
तद्भार्याहारिणं हत्वा वालिनं रघुनन्दनः ॥ १० ॥
राज्येऽभिषिच्य सुग्रीवं मित्रकार्यं चकार सः ।
सुग्रीवस्तु समानाय्य वानरान् वानरप्रभुः ॥ ११ ॥
प्रेषयामास परितो वानरान् परिमार्गणे ।
सीतायास्तत्र चैकोऽहं सुग्रीवसचिवो हरिः ॥ १२ ॥
सम्पातिवचनाच्छीघ्रमुल्लङ्घ्य शतयोजनम् ।
समुद्रं नगरीं लङ्कां विचिन्वन्जानकीं शुभाम् ॥ १३ ॥
शनैरशोकवनिकां विचिन्वन् शिंशपातरुम् ।
अद्राक्षं जानकीमत्र शोचन्तीं दुःखसम्प्लुताम् ॥ १४ ॥
रामस्य महिषीं देवीं कृतकृत्योऽहमागतः ।
इत्युक्त्वोपरराामाथ मारुतिर्बुद्धिमत्तरः ॥ १५ ॥

---

तदनन्तर उन्होंने पक्षिराज जटायु को पृथ्वी पर पड़े हुए देखा । उसे स्वर्ग देकर वे ऋष्य मूक पर्वत पर चले आये ॥ ८–९ ॥ फिर सुग्रीव ने आत्मदर्शी भगवान् राम से मैत्री कर ली । राम ने सुग्रीव की भार्या चुराने वाले वाली का वध किया ॥ १० ॥ और सुग्रीव को राज्य पद पर अभिषिक्त कर मित्र का सम्पूर्ण कार्य पूरा किया । फिर वानरराज सुग्रीव ने भी सभी दिशाओं से वानरों को बुलाकर ॥ ११ ॥ जानकी को खोजने के लिए चारों ओर वानरों को भेजा । उन वानरों में मैं भी सुग्रीव का सचिव एक वानर हूँ ॥ १२ ॥ सम्पाती के कथनानुसार मैंने सौ योजन लम्बे समुद्र को पार कर लङ्का में परम कल्याणी जानकी का पता लगाने लगा ॥ १३ ॥ फिर धीरे-धीरे जानकी का पता लगाते हुए मैंने इस अशोक वाटिका के बीच यह शिंशपाका वृक्ष देखा । और यहीं पर शोक करती हुई जानकी को अत्यन्त क्लेश पूर्ण अवस्था में पाया ॥ १४ ॥

आज राम की परम प्रिय पट्टरानी सीता को देखकर मैं धन्य हो गया । ऐसा कह कर परम बुद्धिमान् हनुमान् जी मौन हो गये ॥ १५ ॥

सीता क्रमेण तत्सर्वं श्रुत्वा विस्मयमाययौ ।
किमिदं मे श्रुतं व्योम्नि वायुना समुदीरितम् ॥ १६ ॥
स्वप्नो वा मे मनोभ्रान्तिर्यदि वा सत्यमेव तत् ।
निद्रा मे नास्ति दुःखेन जानाम्येतत् कुतो भ्रमः ॥ १७ ॥
येन मे कर्णपीयूषं वचनं समुदीरितम् ।
स दृश्यतां महाभागः प्रियवादी ममाग्रतः ॥ १८ ॥
श्रुत्वा तज्जानकीवाक्यं हनुमान् पत्रखण्डतः ।
अवतीर्य शनैः सीतापुरतः समवस्थितः ॥ १९ ॥
कलविङ्कप्रमाणाङ्गो रक्तास्यः पीतवानरः ।
ननाम शनकैः सीतां प्राञ्जलिः पुरतः स्थितः ॥ २० ॥
दृष्ट्वा तं जानकी भीता रावणोऽयमुपागतः ।
मां मोहयितुमायातो मायया वानराकृतिः ॥ २१ ॥

---

इधर सीता भी क्रमशः इन बातों को सुनकर आश्चर्य में पड़ गईं। और विचार करने लगीं कि, क्या मैंने आकाश में वायु के द्वारा उच्चारण किये गये इन शब्दों को सुना है ॥ १६ ॥ क्या यह स्वप्न है अथवा मेरे मन का भ्रम है, अथवा यह सब सत्य ही है? मुझे दुःख के कारण निद्रा तो नहीं आती, अतः यह स्वप्न नहीं हो सकता। प्रत्यक्ष सुन रही हूँ, इसलिए भ्रम की चर्चा भी व्यर्थ है ॥ १७ ॥ इसलिए मेरे द्वारा सुनी गयी सभी बातें यथार्थ ही हैं, ऐसा विचार कर सीता जी कहने लगीं—जिसने मेरे कानों को अमृत के समान सुख देने वाली ये बातें कही हैं, वह प्रियवद महाभाग मेरे सामने आ कर प्रगट हो जायें ॥ १८ ॥

श्री सीता के द्वारा कहे वचनों को सुनकर हनुमान् पत्तों के बीच से धीरे धीरे उतर कर सीता के सम्मुख खड़े हो गये ॥ १९ ॥ उस समय चटक के समान वे लघुकाय थे, उनके शरीर का वर्ण पीला एवं मुख लाल वर्ण का था। इस प्रकार हाथ जोड़कर प्रणाम कर वे सीता के सामने खड़े हो गये ॥ २० ॥ जानकी सीता भी हनुमान् के इस रूप को देख कर यह रावण ही है जो मुझे फँसाने के लिए माया से वानर का रूप धारण कर यहाँ आया है ऐसा समझ कर भयभीत हो गयीं ॥ २१ ॥

इत्येवं चिन्तयित्वा सा तूष्णीमासीदधोमुखी ।
पुनरप्याह तां सीतां देवि ! यत्त्वं विशङ्कसे ॥ २२ ॥
नाऽहं तथाविधो मातस्त्यज शङ्कां मयि स्थिताम् ।
दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्य परमात्मनः ॥ २३ ॥
सचिवोऽहं हरीन्द्रस्य सुग्रीवस्य शुभप्रदे ! ।
वायोः पुत्रोऽहमखिल-प्राणभूतस्य शोभने ! ॥ २४ ॥
तच्छ्रुत्वा जानकी प्राह हनूमन्तं कृताञ्जलिम् ।
वानराणां मनुष्याणां सङ्गतिर्घटते कथम् ? ॥ २५ ॥
यथा त्वं रामचन्द्रस्य दासोऽहमिति भाषसे ।
तामाह मारुतिः प्रीतो जानकीं पुरतः स्थितः ॥ २६ ॥
ऋष्यमूकमगाद्रामः शबर्या नोदितः सुधीः ।
सुग्रीवो ऋष्यमूकस्थो दृष्टवान् रामलक्ष्मणौ ॥ २७ ॥
भीतो मां प्रेषयामास ज्ञातुं रामस्य हृद्गतम् ।
ब्रह्मचारिवपुर्धृत्वा गतोऽहं रामसन्निधिम् ॥ २८ ॥

---

ऐसा विचार कर वे नीचे की ओर मुख कर चुपचाप बैठी रहीं। तब हनुमान् जी सीता से कहने लगे-देवि ! आप को जिस प्रकार की आशङ्का है मैं वैसा नहीं हूँ ॥ २२। मेरे विषय में तुम जिस प्रकार शङ्कित हो रही हो, उस शङ्का को त्याग दो। हे मातः ! मैं कोसलेन्द्र परमात्मा राम का दास हूँ ॥२३॥ हे कल्याणी ! मैं वानरेन्द्र सुग्रीव का सचीव हूँ। हे शोभने ! मैं सारे संसार के प्राण भूत वायु का पुत्र हूँ ॥ २४ ॥

इस प्रकार हाथ जोड़े हुए हनुमान् के वाक्य को सुन कर जानकी कहने लगीं—'तुम जो कहते हो मैं राम का दास हूँ' सो तुम्हीं बताओ कि मनुष्य और वानरों की मित्रता किस प्रकार सम्भव है ?' तब सम्मुख खड़े हुए हनुमान् जी ने जानकी जी से कहा—॥ २५-२६ ॥

'शबरी के कहने पर जब बुद्धिमान् श्रीरामचन्द्र जी ऋष्यमूक पर्वत पर गये, तो ऋष्यमूक पर्वत पर रहने वाले सुग्रीव ने उन राम और लक्ष्मण को देखा ॥ २७ ॥ तदनन्तर राम का अभिप्राय ज्ञात करने के लिए

ज्ञात्वा रामस्य सद्भावं स्कन्धोपरि निधाय तौ।
नीत्वा सुग्रीवसामीप्यं सख्यं चाकरवं तयोः ॥ २९ ॥

सुग्रीवस्य हृता भार्या वालिना तं रघूत्तमः।
जघानैकेन बाणेन ततो राज्येऽभ्यषेचयत् ॥ ३० ॥

सुग्रीवं वानराणां स प्रेषयामास वानरान्।
दिग्भ्यो महाबलान् वीरान् भवत्याः परिमार्गणे ॥ ३१ ॥

गच्छन्तं राघवो दृष्ट्वा मामभाषत सादरम् ॥ ३२ ॥

त्वयि कार्यमशेषं मे स्थितं मारुतनन्दन !।
ब्रूहि मे कुशलं सर्वं सीतायै लक्ष्मणस्य च ॥ ३३ ॥

अङ्गुलीयकमेतन्मे परिज्ञानार्थमुत्तमम्।
सीतायै दीयतां साधु मन्नामाक्षरमुद्रितम् ॥ ३४ ॥

इत्युक्त्वा प्रददौ मह्यं कराग्रादङ्गुलीयकम्।
प्रयत्नेन मयाऽऽनीतं देवि ! पश्याङ्गुलीयकम् ॥ ३५ ॥

---

भयभीत सुग्रीव ने मुझे राम के पास भेजा। फिर मैं भी ब्रह्मचारी का रूप बनाकर श्रीराम के पास गया ॥ २८ ॥ और राम का शुद्ध भाव ज्ञात कर उन्हें अपने कन्धे पर चढ़ाकर सुग्रीव के पास पहुँचा दिया। और दोनों में मित्रता भी करा दी ॥ २९ ॥ बाली ने सुग्रीव के स्त्री को रख लिया था। राम ने उसे एक ही बाण से मारकर सुग्रीव को वानरों के राज्य पर अभिषिक्त किया ॥ ३० ॥ पुनः सुग्रीव ने भी आप को खोजने के लिए प्रत्येक दिशाओं से आये हुए महाबलवान् वानरों को भेजा ॥ ३१ ॥ उस समय जब मैं भी आप को खोजने के लिए जा रहा था, तब राम ने मुझे देख कर बुलाया और आदर से कहा——॥ ३२ ॥

हे मारुतनन्दन ! मेरा सम्पूर्ण कार्य तुम्हारे ऊपर ही निर्भर है। तुम मेरा और लक्ष्मण का कुशल जानकी से कहना ॥ ३३ ॥ और सीता के विश्वाश के लिए यह मेरी अँगूठी, जिस पर मेरे नाम के अक्षर खुदे हुए हैं, बड़ी सावधानी से दे देना ॥३४॥ ऐसा कह कर उन्होंने अपनी यह अँगूठी

इत्युक्त्वा प्रददौ देव्यै मुद्रिकां मारुतात्मजः ।
नमस्कृत्य स्थितो दूराद् बद्धाञ्जलिपुटो हरिः ॥ ३६ ॥
दृष्ट्वा सीता प्रमुदिता रामनामाङ्कितां तदा ।
मुद्रिकां शिरसा धृत्वा स्रवदानन्दनेत्रजा ॥ ३७ ॥
कपे ! मे प्राणदाता त्वं बुद्धिमानसि राघवे ।
भक्तोऽसि प्रियकारी त्वं विश्वासोऽस्ति तवैव हि ॥ ३८ ॥
नो चेन्मत्सन्निधिं चान्यं पुरुषं प्रेषयेत् कथम् ? ।
हनूमन् ! दृष्टमखिलं मम दुःखादिकं त्वया ॥ ३९ ॥
सर्वं कथय रामाय यथा मे जायते दया ।
मासद्वयावधि प्राणाः स्थास्यन्ति मम सत्तम ! ॥ ४० ॥
नागमिष्यति चेद्रामो भक्षयिष्यति मां खलः ।
अतः शीघ्रं कपीन्द्रेण सुग्रीवेण समन्वितः ॥ ४१ ॥
वानरानीकपैः सार्धं हत्वा रावणमाहवे ।
सपुत्रं सबलं रामो यदि मां मोचयेत् प्रभुः ॥ ४२ ॥

---

हाथ से उतार कर मुझे दी । हे देवि ! मैं बड़े प्रयत्न से इस अँगूठी को लाया हूँ । इसे आप देखिए ॥ ३५ ॥ ऐसा कह कर हनुमान् जी ने वह अँगूठी जानकी को दे दी । और दूर से नमस्कार कर हाथ जोड़े हुए सामने खड़े हो गये ॥ ३६ ॥ उस अँगूठी को देखते ही जानकी प्रसन्न हो गयीं । उन्होंने राम नामाङ्कित उस मुद्रिका को प्रणाम किया । और शिर पर धर कर आनन्दाश्रु बहाने लगीं ॥३७ ॥ फिर कहने लगीं—हे कपे ! तुम मेरे प्राणों के दाता हो, तुम अत्यन्त बुद्धिमान् तथा राम के प्रियकारक भक्त हो । मुझे ऐसा निश्चय है कि उन्हें भी तुम्हारा पूर्ण विश्वास है ॥ ३८ ॥ यदि ऐसा नहीं होता तो मेरे समीप अन्य पुरुष को किस प्रकार भेजते ? हे हनुमान् ! मेरी सारी विपदाएँ तो तुमने देख ली ॥ ३९ ॥ तुम मेरी इन सारी विपत्तियों को राम से जा कर कह देना । जिससे उनको मेरे ऊपर दया आवे । हे कपिसत्तम ! मेरे जोवन की अवधि दो मास मात्र है ॥४०॥ यदि इस अवधि के भीतर रामचन्द्र न आये तो यह दुष्ट मुझे खा डालेगा । अतः श्रीराम सुग्रीव के सहित ॥ ४१ ॥ और वानर-यूथपों के साथ शीघ्र

तत्तस्य सदृशं वीर्यं वीर ! वर्णय वर्णितम् ।
यथा मां तारयेद्रामो हत्वा शीघ्रं दशाननम् ॥ ४३ ॥
तथा यतस्व हनुमन् ! वाचा धर्ममवाप्नुहि ।
हनूमानपि तामाह देवि ! दृष्टो यथा मया ॥ ४४ ॥
रामः सलक्ष्मणः शीघ्रमागमिष्यति सायुधः ।
सुग्रीवेण स-सैन्येन हत्वा दशमुखं बलात् ॥ ४५ ॥
समानेष्यति देवि ! त्वामयोध्यां नाऽत्र संशयः ।
तमाह जानकी रामः कथं वारिधिमाततम् ॥ ४६ ॥
तीर्त्वा यास्यत्यमेयात्मा वानरानीकपैः सह ।
हनूमानाह मे स्कन्धावारुह्य पुरुषर्षभौ ॥ ४७ ॥
आयास्यतः ससैन्यश्च सुग्रीवो वानरेश्वरः ।
विहायसा क्षणेनैव तीर्त्वा वारिधिमाततम् ॥ ४८ ॥

---

आकर पुत्र और सेना सहित रावण को युद्ध में मारकर यदि मुझे छुड़ा लेंगे तो यह कार्य उनके पुरुषार्थ के सदृश होगा। तुमने जिस प्रकार उनके पुरुषार्थों का वर्णन किया है, उसे इस प्रकार वर्णन करना कि वे रावण को मारकर मेरा शीघ्र उद्धार करें ॥ ४२-४३ ॥

इस प्रकार यत्न से तुम भी वाचिक पुण्य प्राप्त करो। तदनन्तर हनुमान् जी ने कहा—हे देवि ! मैंने जिस प्रकार देखा है ॥ ४४ ॥ उससे ज्ञात होता है कि लक्ष्मण सहित राम अपने अस्त्र-शस्त्रों को लेकर सेना सहित सुग्रीव के साथ शीघ्र ही लङ्कापुरी में आकर दशमुख रावण का बध करेंगे ॥ ४५ ॥ फिर तुम्हें अयोध्या ले जायेंगे। इसमें संशय नहीं है। तब जानकी ने कहा—श्री राम यद्यपि अमेयात्मा ( अपरिच्छिन्न शरीर वाले ) हैं किन्तु इतने बड़े विशाल समुद्र को ॥ ४६ ॥ वानर-यूथपों के साथ किस प्रकार पार कर यहाँ आयेंगे ? तब हनुमान् जी ने कहा— वे दोनों पुरुष-श्रेष्ठ मेरे कन्धों पर चढ़कर यहाँ चले आवेंगे ॥ ४७ ॥ और सैन्य-सहित सुग्रीव आकाशमार्ग से क्षणमात्र में विशाल समुद्र को पार कर ॥ ४८ ॥

निर्दहिष्यति रक्षौघांस्त्वत्कृते नाऽत्र संशयः।
अनुज्ञां देहि मे देवि! गच्छामि त्वरयान्वितः॥ ४६॥
द्रष्टुं रामं सह भ्रात्रा त्वरयामि तवान्तिकम्।
देवि! किञ्चिदभिज्ञानं देहि मे येन राघवः॥ ५०॥
विश्वसेन्मां प्रयत्नेन ततो गन्ता समुत्सुकः।
ततः किञ्चिद् विचार्याथ सीता कमललोचना॥ ५१॥
विमुच्य केशपाशान्ते स्थितं चूडामणिं ददौ।
अनेन विश्वसेद्रामस्त्वां कपीन्द्र! सलक्ष्मणः॥ ५२॥
अभिज्ञानार्थमन्यच्च वदामि तव सुव्रत!।
चित्रकूटगिरौ पूर्वमेकदा रहसि स्थितः।
मदङ्के शिर आधाय निद्राति रघुनन्दनः॥ ५३॥
ऐन्द्रः काकस्तदागत्य नखैस्तुण्डेन चासकृत्।
मत्पादाङ्गुष्ठमारक्तं विददारामिषाशया॥ ५४॥

---

तुम्हारे लिए समस्त राक्षस-समूह को भस्म कर देंगे। इसमें संदेह नहीं है। हे देवि! मुझे आज्ञा दो, जिससे मैं शीघ्रता पूर्वक जाऊँ ॥ ४६॥ और भाई सहित श्रीराम का दर्शन कर तुम्हारे पास शीघ्र लाने के लिए प्रयत्न करूँ। हे देवि! मुझे कोई ऐसा चिह्न दो जिससे श्रीराम का विश्वास मुझ पर हो॥ ५०॥ और जिसे लेकर बड़ी सावधानी से उत्साहपूर्वक जाऊँ। तब कमलनयना जानकी ने थोड़ी देर कुछ विचार कर ॥ ५१॥ अपने केश-पाश में स्थित चूड़ामणि को निकाल कर हनुमान् जी को दिया। और कहा—हे कपीन्द्र! लक्ष्मण सहित श्री राम इस चूडामणि से तुम्हारा विश्वास करेंगे॥ ५२॥ और हे सुव्रत! तुम्हारे ऊपर उनके विश्वास के लिए मैं एक दूसरा अभिज्ञान बता रही हूँ। किसी समय चित्रकूट पर्वत पर श्री राम जी एकान्त में बैठे हुए मेरी गोद में सिर रख कर सो रहे थे ॥५३॥ उसी समय इन्द्र का लड़का काक का स्वरूप धारण कर मांस की इच्छा से मेरे पैर के लाल अँगूठे को मांस समझ कर अपने

ततो रामः प्रबुद्ध्याथ दृष्ट्वा पादं कृतव्रणम् ।
केन भद्रे ! कृतं चैतद् विप्रियं मे दुरात्मना ॥ ५५ ॥

इत्युक्त्वा पुरतोऽपश्यद् वायसं मां पुनः पुनः ।
अभिद्रवन्तं रक्ताक्तनखतुण्डं चुकोप ह ॥ ५६ ॥

तृणमेकमुपादाय दिव्यास्त्रेणाभियोज्य तत् ।
चिक्षेप लीलया रामो वायसोपरि तज्ज्वलत् ॥ ५७ ॥

अभ्यद्रवद् वायसश्च भीतो लोकान् भ्रमन् पुनः ।
इन्द्रब्रह्मादिभिश्चापि न शक्यो रक्षितुं तदा ॥ ५८ ॥

रामस्य पादयोरग्रेऽपतद् भीत्या दयानिधेः ।
शरणागतमालोक्य रामस्तमिदमब्रवीत् ॥ ५९ ॥

अमोघमेतदस्त्रं मे दत्त्वैकाक्षमितो व्रज ।
सव्यं दत्त्वा गतः काक एवं पौरुषवानपि ॥ ६० ॥

---

नख एवं चोंचों से बारम्बार विदीर्ण करने लगा ॥ ५४ ॥ फिर श्रीराम सो कर उठने के पश्चात् मेरे पैर में घाव हुआ देख मुझसे कहने लगे—हे भद्रे ! बताओ किस दुरात्मा ने मेरा ऐसा अप्रिय कार्य किया है ? ॥ ५५ ॥

इतना कहने के बाद ही उन्होंने अपने सामने उस कौवे को बारम्बार मेरी ओर आते हुए देखा। तथा उसके लहू से पूर्ण चरण तथा चोंच को देखते ही उन्हें बड़ा क्रोध हुआ ॥ ५६ ॥ और एक तृण उठाकर दिव्यास्त्र का प्रयोग कर प्रज्वलित हुए उस महास्त्र को लीला से कौए के ऊपर फेंक दिया ॥ ५७ ॥ वह कौआ भयभीत होकर भागने लगा। इस प्रकार वह त्रिलोकी में भटकता हुआ इन्द्र एवं ब्रह्मा के शरण में गया। किन्तु सभी उसकी रक्षा करने में असमर्थ हो गये ॥ ५८ ॥ तब वह अत्यन्त भयभीत होकर दयानिधि श्री राम के चरणों पर गिर पड़ा। उसे शरणागत देख श्रीराम ने उससे कहा—॥ ५९ ॥

मेरा यह अस्त्र अमोघ है, कभी भी व्यर्थ नहीं जाता। एक आँख देकर तू यहाँ से चला जा। फिर वह कौआ अपनी बायीं आँख देकर चला

उपेक्षते किमर्थं मामिदानीं सोऽपि राघवः ।
हनूमानपि तामाह श्रुत्वा सीतानुभाषितम् ॥ ६१ ॥
देवि ! त्वां यदि जानाति स्थितामत्र रघूत्तमः ।
करिष्यति क्षणाद् भस्म लङ्कां राक्षसमण्डिताम् ॥ ६२ ॥
जानकी प्राह तं वत्स ! कथं त्वं योत्स्यसेऽसुरैः ।
अतिसूक्ष्मवपुः सर्वे वानराश्च भवादृशाः ॥ ६३ ॥
श्रुत्वा तद्वचनं देव्यै पूर्वरूपमदर्शयत् ।
मेरुमन्दरसङ्काशं रक्षोगणविभीषणम् ॥ ६४ ॥
दृष्ट्वा सीता हनूमन्तं महापर्वतसन्निभम् ।
हर्षेण महताविष्टा प्राह तं कपिकुञ्जरम् ॥ ६५ ॥
समर्थोऽसि महासत्त्व ! द्रक्ष्यन्ति त्वां महाबलम् ।
राक्षस्यस्ते शुभः पन्था गच्छ रामान्तिकं द्रुतम् ॥ ६६ ॥

---

गया ॥ ६० ॥ इस प्रकार के पराक्रमी होकर भी वे श्री रामचन्द्रजी इस समय मेरी क्यों उपेक्षा कर रहे हैं। तब सीता के कथन को सुनकर हनुमान्‌जी ने कहा—॥ ६१ ॥

हे देवि ! यदि श्री राम को तुम्हारे यहाँ रहने का पता लगा होता तो वे क्षण भर में इस राक्षस-समूहों से परिपूर्ण लंका को भस्म कर देते ॥६२॥

तब जानकी जी कहने लगीं—हे वत्स ! तुम्हारा शरीर तो अत्यन्त छोटा है और सभी वानर भी तुम्हारे समान ही होंगे। फिर किस प्रकार महाबलवान् राक्षसों से युद्ध करोगे ? ॥ ६३ ॥ देवी के कहे गये इस वचन को सुनते ही हनुमान् जी ने उन्हें अपना पूर्व रूप दिखाया और उनका वह रूप मेरु मन्दर के समान महाविशाल और राक्षसों को महा भय उत्पन्न करने वाला था ॥६४॥ सीता, महापर्वत के समान हनुमान् जी के उस रूप को देखकर बहुत प्रसन्न हुई। और कपिश्रेष्ठ हनुमान् जी से कहने लगीं—॥ ६५ ॥ तुम सामर्थ्यवान् हो, कहीं ऐसा न हो कि, ये राक्षसियाँ तुम्हें देखलें। अब तुम शीघ्रता से राम के पास जाओ। तुम्हारा

बुभुक्षितः कपिः प्राह दर्शनात् पारणं मम।
भविष्यति फलैः सर्वैस्तव दृष्टौ स्थितैर्हि मे ॥ ६७ ॥
तथेत्युक्तः स जानक्या भक्षयित्वा फलं कपिः।
ततः प्रस्थापितोऽगच्छज्जानकीं प्रणिपत्य सः।
किञ्चिद् दूरमथो गत्वा स्वात्मन्येवान्वचिन्तयत् ॥ ६८ ॥
कार्यार्थमागतो दूतः स्वामिकार्याविरोधतः।
अन्यत् किञ्चिदसम्पाद्य गच्छत्यधम एव सः ॥ ६९ ॥
अतोऽहं किञ्चिदन्यच्च कृत्वा दृष्ट्वाऽथ रावणम्।
सम्भाष्य च ततो रामदर्शनार्थं व्रजाम्यहम् ॥ ७० ॥
इति निश्चित्य मनसा वृक्षखण्डान् महाबलः।
उत्पाट्याऽशोकवनिकां निर्वृक्षामकरोत् क्षणात् ॥ ७१ ॥
सीताश्रयनगं त्यक्त्वा वनशून्यं चकार सः।
उत्पाटयन्तं विपिनं दृष्ट्वा राक्षसयोषितः ॥ ७२ ॥

---

कल्याण हो ॥ ६६ ॥ हनुमान् जी उस समय भूखे थे, उन्होंने कहा—माँ, मैं दर्शन कर चुका अब सामने लगे हुए फलों से पारण करना चाहता हूँ ॥ ६७ ॥ फिर जानकी द्वारा 'तथास्तु' कहे जाने पर हनुमान् जी ने फल खाया और जानकी से विदा होकर उन्हें प्रणाम कर चलने लगे। फिर कुछ दूर जाने पर उन्होंने अपने मन में विचार किया ॥ ६८ ॥

स्वामी के कार्य से आया हुआ दूत स्वामी के कार्य को सहायता पहुँचाने वाला अन्य कार्य किये विना ही यदि चला जाता है, तो वह अधम दूत कहा जाता है ॥ ६९ ॥ इसलिए मैं और भी कार्य करूँगा। पुनः रावण को देखकर उससे बात चीत कर पश्चात् राम के दर्शन के लिए जाऊँगा ॥ ७० ॥

ऐसा अपने मन में विचार कर महापराक्रमी हनुमान् ने वक्षों को क्षण भर में उखाड़कर अशोक वाटिका को वृक्षहीन बना दिया ॥ ७१ ॥ उन्होंने जिसके नीचे सीता बैठी थीं उस वृक्ष को छोड़ कर सारी अशोक वाटिका वृक्षों से शून्य कर दी। इस प्रकार उन्हें वृक्ष को उखाड़ते देख

अपृच्छन् जानकीं कोऽसौ वानराकृतिरुद्भटः ॥ ७३ ॥

जानक्युवाच

भवत्य एव जानन्ति मायां राक्षसनिर्मिताम् ।
नाऽहमेनं विजानामि दुःखशोकसमाकुला ॥ ७४ ॥
इत्युक्तास्त्वरितं गत्वा राक्षस्यो भयपीडिताः ।
हनूमता कृतं सर्वं रावणाय न्यवेदयन् ॥ ७५ ॥
देव ! कश्चिन्महासत्त्वो वानराकृतिदेहभृत् ।
सीतया सह सम्भाष्य ह्यशोकवनिकां क्षणात् ।
उत्पाट्य चैत्यप्रासादं बभञ्जामितविक्रमः ॥ ७६ ॥
प्रासादरक्षिणः सर्वान् हत्वा तत्रैव तस्थिवान् ।
तच्छ्रुत्वा तूर्णमुत्थाय वनभङ्गं महाप्रियम् ॥ ७७ ॥
किङ्करान् प्रेषयामास नियुतं राक्षसाधिपः ।
निर्भग्न-चैत्यप्रासाद-प्रथमान्तरसंस्थितः ॥ ७८ ॥

---

राक्षसियों ने जानकी से पूछा ॥ ७२ ॥ यह वानराकार महाबली उद्भट वीर कौन है ? ॥ ७३ ॥

जानकी ने कहा—राक्षसों के द्वारा निर्मित माया आप लोग ही जान सकतीं हैं। मैं तो अपने दुःख एवं शोक से उद्विग्न हूँ। मैं क्या जानूँ ॥ ७४ ॥ जानकी के द्वारा इस प्रकार कहने पर वे राक्षसियाँ भय से संत्रस्त होकर रावण के पास गयीं। और हनुमान् की सारी करतूत कह कर सुना दिया ॥ ७५ ॥

राक्षसियों ने रावण से कहा—हे देव ! वानर के आकार का शरीर धारण किये हुए किसी महाबलवान् ने सीता से सम्भाषण कर एक क्षण में ही सारे वृक्षों को उखाड़कर अशोक वाटिका उजाड़ दी है। इतना ही नहीं, उस महावीर ने चैत्य-प्रासाद को तहस-नहस कर दिया ॥ ७६ ॥ और उसने सभी राक्षसों को मार कर इस समय भी वह वहीं बैठा है। वनभङ्ग के इस महान् अप्रिय समाचार को सुन कर रावण शीघ्र उठा ॥ ७७ ॥ और अपने दस हजार सेवकों को भेजा। इधर हनुमान् जी भी उस चैत्य प्रासाद के प्रथम भाग

हनूमान् पर्वताकारो लोहस्तम्भकृतायुधः ।
किञ्चिल्लाङ्गूलचलनो रक्तास्यो भीषणाकृतिः ॥ ७९ ॥
आपतन्तं महासङ्घं राक्षसानां ददर्श सः ।
चकार सिंहनादं च श्रुत्वा ते मुमुहुर्भृशम् ॥ ८० ॥
हनूमन्तमथो दृष्ट्वा राक्षसा भीषणाकृतिम् ।
निर्जघ्नुर्विविधास्त्रौघैः सर्वराक्षसघातिनम् ॥ ८१ ॥
तत उत्थाय हनुमान् मुद्गरेण समन्ततः ।
निष्पिपेष क्षणादेव मशकानिव यूथपः ॥ ८२ ॥
निहतान् किङ्करान् श्रुत्वा रावणः क्रोधमूर्च्छितः ।
पञ्चसेनापतींस्तत्र प्रेषयामास दुर्मदान् ॥ ८३ ॥
हनूमानपि तान् सर्वान लोहस्तम्भेन चाऽहनत् ।
ततः क्रुद्धो मन्त्रिसुतान् प्रेषयामास सप्त सः ॥ ८४ ॥
आगतानपि तान् सर्वान् पूर्ववद्वानरेश्वरः ।
क्षणान्निःशेषतो हत्वा लोहस्तम्भेन मारुतिः ॥ ८५ ॥

---

में बैठे हुए थे ॥ ७८ ॥ उनका शरीर पर्वताकार था, वे लोहे के खम्भे के आयुध लिये हुए थे। मुख लाल तथा आकृति बड़ी भयानक थी, उनकी पूँछ तो कुछ-कुछ हिल रही थी ॥ ७९ ॥ उन्होंने आते हुए राक्षसों के समूह को जब देखा। तब इतना भीषण सिंह नाद कर गर्जना करने लगे कि समस्त राक्षस उसके सुनते हो मूर्च्छित हो गये ॥ ८० ॥

इधर राक्षसों ने भी राक्षसों को मारने वाले महाभयानक हनुमान् जी को जब देखा तो वे उनके ऊपर नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र छोड़ने लगे ॥८१॥ फिर हनुमान् जी ने उठकर अपने मुद्गर से क्षण मात्र में सारे राक्षसों को इस प्रकार मसल दिया जैसे गजराज मशक-समूहों को मसल देता है ॥८२॥ अपने किंकरों को मरा हुआ सुन कर रावण क्रोध से मूर्च्छित हो उठा। फिर उसने मदमत्त अपने पाँच सेनापतियों को सेना सहित भेजा ॥ ८३ ॥ हनुमान् जी ने उन्हें भी लोहे के खम्भे से तुरन्त मार डाला। तब उसने क्रुद्ध होकर अपने सात मन्त्रिपुत्रों को भेजा ॥ ८४ ॥

हनुमान् जी ने आये हुए उन सात मन्त्रिपुत्रों को भी पूर्ववत् क्षण भर

पूर्वस्थानमुपाश्रित्य प्रतीक्षन् राक्षसान् स्थितः ।
ततो जगाम बलवान् कुमारोऽक्षः प्रतापवान् ॥ ८६ ॥

तमुत्पपात हनुमान् दृष्ट्वाऽऽकाशे समुद्गरः ।
गगनात्त्वरितो मूर्ध्नि मुद्गरेण व्यताडयत् ॥ ८७ ॥

हत्वा तमक्षं निःशेषं बलं सर्वं चकार सः ॥ ८८ ॥
ततः श्रुत्वा कुमारस्य वधं राक्षसपुङ्गवः ।
क्रोधेन महताविष्ट इन्द्रजेतारमब्रवीत् ॥ ८९ ॥

पुत्र ! गच्छाम्यहं तत्र यत्रास्ते पुत्रहा रिपुः ।
हत्वा तमथवा बद्ध्वा आनयिष्यामि तेऽन्तिकम् ॥ ९० ॥

इन्द्रजित्पितरं प्राह त्यज शोकं महामते ! ।
मयि स्थिते किमर्थं त्वं भाषसे दुःखितं वचः ॥ ९१ ॥

बद्ध्वानेष्ये द्रुतं तात ! वानरं ब्रह्मपाशतः ।
इत्युक्त्वा रथमारुह्य राक्षसैर्बहुभिर्वृतः ॥ ९२ ॥

---

में उस लोहे के खम्भे से मार डाला ॥ ८५ ॥ फिर वे अपने पहले के स्थान पर राक्षसों के आने की बाट जोहते हुए बैठ गये। तब प्रतापी अक्षय कुमार उनसे लड़ने के लिए आया ॥ ८६ ॥ उसे देखते ही हनुमान् मुद्गर लिये हुए आकाश में उछल पड़े। और ऊपर से ही उन्होंने अक्षय कुमार के शिर पर मुद्गर द्वारा बड़े वेग से प्रहार कर मार डाला ॥ ८७ ॥ इस प्रकार अक्षय कुमार को मार कर उसकी सारी सेना का भी नाम-निशान मिटा दिया ॥ ८८ ॥

राक्षसराज रावण कुमार अक्षय के वध का समाचार सुन कर क्रोध से तिलमिला उठा। और मेघनाद से कहने लगा— ॥ ८९ ॥ बेटा ! मैं वहाँ जा रहा हूँ, जहाँ मेरे पुत्र को मारने वाला मेरा शत्रु है। उसे मार कर अथवा बाँध कर मैं तेरे पास अभी ले आता हूँ ॥ ९० ॥

तब मेघनाद ने कहा—हे महामते ! शोक दूर कीजिए। मेरे जीते जी आप इस प्रकार की दुःख भरी बातें क्यों कहते हैं ? ॥ ९१ ॥ मैं उस वानर को शीघ्र ही ब्रह्मपाश में बाँधकर ले आता हूँ। ऐसा कह कर वह महा-

जगाम वायुपुत्रस्य समीपं वीरविक्रमः ।
ततोऽतिगर्जितं श्रुत्वा स्तम्भमुद्यम्य वीर्यवान् ॥ ९३ ॥
उत्पपात नभोदेशं गरुत्मानिव मारुतिः ।
ततो भ्रमन्तं नभसि हनूमन्तं शिलीमुखैः ॥ ९४ ॥
विद्ध्वा तस्य शिरोभागमिषुभिश्चाऽष्टभिः पुनः ।
हृदयं पादयुगलं षड्भिरेकेन बालधिम् ॥ ९५ ॥
भेदयित्वा ततो घोरं सिंहनादमथाकरोत् ।
ततोऽतिहर्षाद्धनुमान् स्तम्भमुद्यम्य वीर्यवान् ॥ ९६ ॥
जघान सारथिं साश्वं रथं चाऽचूर्णयत् क्षणात् ।
ततोऽन्यं रथमादाय मेघनादो महाबलः ॥ ९७ ॥
शीघ्रं ब्रह्मास्त्रमादाय बद्ध्वा वानरपुङ्गवम् ।
निनाय निकटं राज्ञो रावणस्य महाबलः ॥ ९८ ॥
यस्य नाम सततं जपन्ति येऽज्ञानकर्मकृतबन्धनं क्षणात् ।
सद्य एव परिमुच्य तत्पदं यान्ति कोटिरविभासुरं शिवम् ॥९९॥

---

पराक्रमी रथ में सवार होकर अनेक राक्षसों के साथ ॥ ९२ ॥ जहाँ वायु-पुत्र हनुमान् जी थे वहाँ गया। फिर उसकी भयानक गर्जना सुन कर बलवान् हनुमान् जी अपने हाथों में मुद्गर लेकर ॥ ९३ ॥ गरुड़ के समान बड़े वेग से आकाश में उड़ गये। इस प्रकार आकाश में उड़ते हुए हनुमान् जी को देख मेघनाद ने आठ बाणों से उनके शिरों पर प्रहार किया ॥९४॥ छह बाणों से हृदय एवं दोनों पैरों में तथा एक बाण से उनकी पूँछ पर प्रहार कर ॥ ९५ ॥ घोर सिंहनाद किया। तदनन्तर महाबलवान् हनुमान् जी ने हर्ष में भर कर उसी लोहे के खम्भे को उठाकर ॥९६॥ एक क्षण में ही उसके सारथी को मार डाला, और घोड़े सहित रथ को चूर-चूर कर दिया। तब महाबलवान् मेघनाद दूसरे रथ पर सवार हो कर ॥ ९७ ॥ शीघ्र ही ब्रह्मास्त्र ले कर उसी से हनुमान् को बाँध लिया। और उन्हें राक्षसराज रावण के समीप ले गया ॥ ९८ ॥

जिसके नाम का जप करने वाले भक्त जन अज्ञान के बन्धन को क्षण भर में ही तोड़कर तत्काल करोड़ों सूर्य के समान देदीप्यमान कल्याणकारी

**तस्यैव रामस्य पदाम्बुजं सदा, हृत्पद्ममध्ये सुनिधाय मारुतिः ।**
**सदैव निर्मुक्तसमस्तबन्धनः, किं तस्य पाशैरितरैश्च बन्धनैः ॥१००॥**

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
सुन्दरकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥



## चतुर्थः सर्गः

( हनुमान् एवं रावणका संवाद और लङ्कादहन )

श्रीमहादेव उवाच

**यान्तं कपीन्द्रं धृतपाशबन्धनं, विलोकयन्तं नगरं विभीतवत् ।**
**अताडयन् मुष्टितलैः सुकोपनाः, पौराः समन्तादनुयान्त ईक्षितुम् ॥१॥**

ब्रह्म पद को प्राप्त कर लेते हैं ॥ ९९ ॥ उन्हीं राम के चरण-कमलों को अपने हृदय-प्रदेश में धारण कर हनुमान् जी समस्त बन्धनों से छूटे हुए हैं, फिर ब्रह्मपाश अथवा इतर बन्धन उनका क्या बिगाड़ सकते हैं ॥१०० ॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या विभूषित अध्यात्म-रामायण के
उमा-महेश्वर संवाद में सुन्दरकाण्ड का तृतीयसर्ग समाप्त ॥ १ ॥



श्री महादेवजी ने कहा—हे पार्वती ! पाश के बन्धन से जकड़े हुए श्री हनुमान् जी जब डरे हुए के समान नगर देखते हुए रावण के पास ले जाये जा रहे थे, तो उन्हें देखने के लिए आये इधर-उधर से इकट्ठे हुए पुरवासी उनके पीछे पीछे चलते हुए क्रोध में भर कर घूँसों से प्रहार

ब्रह्मास्त्रमेनं　क्षणमात्रसङ्गमं
　　कृत्वा गतं ब्रह्मवरेण सत्वरम् ।
ज्ञात्वा हनूमानपि फल्गुरज्जुभि-
　　र्धृतो ययौ कार्यविशेषगौरवात् ॥ २ ॥
सभान्तरस्थस्य च रावणस्य तं
　　पुरो निधायाह बलारिजित्तदा ।
बद्धो मया ब्रह्मवरेण वानरः
　　समागतोऽनेन हता महासुराः ॥ ३ ॥
यद्युक्तमत्रार्य विचार्य मन्त्रिभि-
　　र्विधीयतामेष न लौकिको हरिः ।
ततो विलोक्याह स राक्षसेश्वरः
　　प्रहस्तमग्रे स्थितमञ्जनाद्रिभम् ॥ ४ ॥
प्रहस्त ! पृच्छैनमसौ किमागतः
　　किमत्र कार्यं कुत एव वानरः ।
वनं किमर्थं सकलं विनाशितं
　　हताः किमर्थं मम राक्षसा बलात् ॥ ५ ॥

---

करने लगे ॥ १ ॥ ब्रह्मास्त्र तो एक क्षण इनके शरीर का स्पर्श मात्र कर ब्रह्मा के वरदान से ब्रह्मलोक चला गया। इस बात को जानकर भी हनुमान् जी छोटी रस्सियों में बँधकर कुछ विशेष कार्य सम्पादन हेतु रावण के पास गये ॥ २ ॥ उस समय मेघनाद सभा के बीच में बैठे हुए रावण के सामने हनुमान् जी को ले गया। और कहने लगा, मैं इस वानर को ब्रह्मा के वरदान से ब्रह्मपाश में बाँध लाया हूँ। इसने महाबली अनेक राक्षस मार डाले हैं ॥ ३ ॥

हे आर्य ! अब आप मन्त्रियों के साथ विचार कर जैसा उचित हो वैसा विधान करें। यह साधारण वानर नहीं है, तब राक्षस-राज रावण कज्जलगिरि के समान कृष्ण वर्ण प्रहस्त को आगे बैठे देख बोला——॥ ४ ॥ प्रहस्त ! इस वानर से पूछो—यह यहाँ क्यों आया ? इसका क्या काम है ? यह कहाँ से आया है ? और इसने सारा का सारा वन क्यों उजाड़ा

ततः प्रहस्तो हनुमन्तमादरात्
पप्रच्छ केन प्रहितोऽसि वानर ! ।
भयं च ते माऽस्तु विमोक्ष्यसे मया
सत्यं वदस्वाऽखिलराजसन्निधौ ॥ ६ ॥

ततोऽतिहर्षात् पवनात्मजो रिपुं
निरीक्ष्य लोकत्रयकण्टकासुरम् ।
वक्तुं प्रचक्रे रघुनाथसत्कथां
क्रमेण रामं मनसा स्मरन् मुहुः ॥ ७ ॥

शृणु स्फुटं देवगणाद्यमित्र ! हे
रामस्य दूतोऽहमशेषहृत्स्थितेः ।
यस्याऽखिलेशस्य हृताऽधुना त्वया
भार्या स्वनाशाय शुनेव सद्धविः ॥ ८ ॥

स राघवोऽभ्येत्य मतङ्गपर्वतं
सुग्रीवमैत्रीमनलस्य सन्निधौ ।
कृत्वैकबाणेन निहत्य वालिनं
सुग्रीवमेवाऽधिपतिं चकार तम् ॥ ९ ॥

---

तथा मेरे राक्षस वीरों का बलात्कार इसने वध क्यों किया ? ॥ ५ ॥ तब प्रहस्त ने हनुमान् जी से आदरपूर्वक पूछा—हे वानर ! तुमको किसने भेजा है ? तुम डरो मत । राजराजेश्वर के सामने सच-सच बोलो—तुम्हें हम छोड़ देंगे ॥ ६ ॥ तब हनुमान् जी ने त्रिलोकी के कण्टकस्वरूप अपने शत्रु राक्षसराज रावण की ओर देखते हुए रघुनाथ का स्मरण कर प्रसन्न मन से श्री रघुनाथ जी की सत्कथा कहना प्रारम्भ किया ॥ ७ ॥ हे देवगणों एवं सारे जगत् के शत्रु रावण ! तुम स्पष्ट रूप से मेरी बात सुनो । यज्ञ की हवि चुराकर भागने वाले कुत्ते के समान जिस अखिलेश्वर भगवान् राम की पत्नी को अपने विनाश के लिए तुमने चुरा लिया है । मैं समस्त प्राणियों के अन्तरात्मा में स्थित उसी राम का दूत हूँ ॥ ८ ॥ उन रामचन्द्र ने मतङ्ग पर्वत पर आकर अग्नि के सामने

स वानराणामधिपो महाबली
महाबलैर्वानरयूथकोटिभिः ।
रामेण सार्धं सह लक्ष्मणेन भोः
प्रवर्षणेऽमर्षयुतोऽवतिष्ठते ॥ १० ॥

सञ्चोदितास्तेन महाहरीश्वरा
धरासुतां मार्गयितुं दिशो दश ।
तत्राऽहमेकः पवनात्मजः कपिः
सीतां विचिन्वन् शनकैः समागतः ॥ ११ ॥

दृष्ट्वा मया पद्मपलाशलोचना
सीता कपित्वाद् विपिनं विनाशितम् ।
दृष्ट्वा ततोऽहं रभसा समागतान्
मां हन्तुकामान् धृतचापसायकान् ॥ १२ ॥

मया हतास्ते परिरक्षितं वपुः
प्रियो हि देहोऽखिलदेहिनां प्रभो ! ।
ब्रह्मास्त्रपाशेन निबध्य मां ततः
समागमन्मेघनिनादनामकः ॥ १३ ॥

---

सुग्रीव से मित्रता कर और एक ही बाण से वाली को मार कर सुग्रीव को वानरों का राजा बना दिया है ॥ ९ ॥

वह महाबलवान् वानर-राज सुग्रीव करोड़ों महाबलवान् वानरों के साथ राम एवं लक्ष्मण सहित प्रवर्षण पर्वत पर अत्यन्त क्रुद्ध होकर सीतान्वेषण की प्रतीक्षा कर रहा है ॥ १० ॥ उसी ने जानकी को ढूँढ़ने के लिए महाबलवान् वानरों को दशों दिशाओं में भेजा है। उन वानरों में वायु का पुत्र मैं अकेला ही धीरे-धीरे जानकी को ढूँढ़ते हुए यहाँ आया ॥ ११ ॥ यहाँ कमल-लोचना जानकी सीता को देखकर वानर स्वभाव से मैंने वन को उजाड़ दिया। फिर अपने मारने केलिए धनुषबाण धारण किये अनेक राक्षसों को आया देख ॥ १२ ॥ उन्हें मारा और अपने शरीर की रक्षा की। क्योंकि हे प्रभो ! यह शरीर सभी देह धारियों

स्पृष्ट्वैव मां ब्रह्मवरप्रभावत-
स्त्यक्त्वा गतं सर्वमवैमि रावण ! ।
तथाऽप्यहं बद्ध इवागतो हितं
प्रवक्तुकामः करुणारसार्द्रधीः ॥ १४ ॥

विचार्य लोकस्य विवेकतो गतिं
न राक्षसीं बुद्धिमुपैहि रावण ! ।
दैवीं गतिं संसृतिमोक्षहैतुकीं
समाश्रयाऽत्यन्तहिताय देहिनः ॥ १५ ॥

त्वं ब्रह्मणो ह्युत्तमवंशसम्भवः
पौलस्त्यपुत्रोऽसि कुबेरबान्धवः ।
देहात्मबुद्ध्यापि च पश्य राक्षसो
नास्यात्मबुद्ध्या किमु राक्षसो न हि ॥ १६ ॥

शरीर-बुद्धीन्द्रिय-दुःख-सन्तति-
र्न ते न च त्वं तव निर्विकारतः ।

---

को परम प्रिय है। तदनन्तर यह मेघनाद नामक राक्षस ब्रह्मास्त्र के पाश से मुझे बाँध कर यहाँ लाया है ॥ १३ ॥ यद्यपि मैं यह बात अच्छी तरह जानता हूँ कि वह ब्रह्मास्त्र मुझे ब्रह्मा के वरदान से केवल स्पर्श कर चला गया है। तथापि हे रावण ! करुणा वश मैं तुम्हारे हित की बात कहने के लिये यहाँ चला आया हूँ ॥ १४ ॥

हे रावण ! तुम लोक की गति का विवेक पूर्वक विचार करो। राक्षसी-बुद्धि का आश्रय मत लो। किन्तु संसार से मुक्त करने वाली दैवी गति का आश्रय लो, जो प्राणीमात्र के लिए अत्यन्त हितकारी है ॥ १५ ॥ तुम ब्रह्मा के वंश में उत्पन्न हुए हो, पुलस्त्य पुत्र महामुनि विश्रवा के पुत्र एवं कुबेर के भाई हो। इस प्रकार तुम देहात्मबुद्धि से राक्षस नहीं हो फिर आत्मबुद्धि से भी तुम्हें राक्षस किस प्रकार कहा जा सकता है ॥१६॥ तुम सर्वथा निर्विकार हो। अतः शरीर, बुद्धि, इन्द्रियाँ तथा दुःखादि ये

अज्ञानहेतोश्च तथैव सन्तते-
रसत्त्वमस्याः स्वपतो हि दृश्यवत् ॥ १७ ॥
इदं तु सत्यं तव नास्ति विक्रिया
विकारहेतुर्न च तेऽद्वयत्वतः ।
यथा नभः सर्वगतं न लिप्यते
तथा भवान् देहगतोऽपि सूक्ष्मकः ।
देहेन्द्रिय-प्राण-शरीरसङ्गत-
स्त्वात्मेति बुद्ध्वाऽखिलबन्धभाग् भवेत् ॥ १८ ॥
चिन्मात्रमेवाऽहमजोऽहमक्षरो
ह्यानन्दभावोऽहमिति प्रमुच्यते ।
देहोऽप्यनात्मा पृथिवीविकारजो
न प्राण आत्मानिल एष एव सः ॥ १९ ॥

---

सब तुम्हारे नहीं हैं। और न तो तुम एतत्स्वरूप हो। इनकी परम्परा तो अज्ञान मूलक ही है। और स्वप्न में दिखाई पड़ने वाले दृश्य के समान असत् है ।। १७ ।।

यह बात तो सच है कि तुम विकार रहित हो। अद्वितीय होने के कारण तुम इन विकारों के हेतु भी नहीं हो। जिस प्रकार आकाश सर्वगत होने पर भी निर्लेप बना रहता है, उसी प्रकार तुम देह में रहते हुए भी सूक्ष्म रूप होने से सर्वथा सुख-दुःखादि विचारों से निर्लिप्त हो। यह आत्मा देह, इन्द्रिय, प्राण एवं शरीर से मिला हुआ है ऐसी बुद्धि ही सारे बन्धनों का कारण हो जाती है ।। १८ ।।

जब 'मैं चिन्मात्र स्वरूप अजन्मा अक्षर और आनन्द स्वरूप हूँ।' इस प्रकार की बुद्धि होती है, तो मनुष्य मुक्त हो जाता है। यह शरीर इस आत्मा से भिन्न है और पृथ्वी आदि के विकारों से उत्पन्न हुआ है, प्राण भी वायु का स्वरूप है अतः वह भी आत्मा नहीं है ।। १९ ।।

मनोऽप्यहङ्कारविकार एव नो
न चापि बुद्धिः प्रकृतेर्विकारजा ।
आत्मा चिदानन्दमयोऽविकारवान्
देहादि सङ्घाद् व्यतिरिक्त ईश्वरः ॥ २० ॥

निरञ्जनो मुक्त उपाधितः सदा
ज्ञात्वैवमात्मानमितो विमुच्यते ।
अतोऽहमात्यन्तिक-मोक्षसाधनं
वक्ष्ये शृणुष्वावहितो महामते ! ॥ २१ ॥

विष्णोर्हि भक्तिः सुविशोधनं धिय-
स्ततो भवेज् ज्ञानमतीव निर्मलम् ।
विशुद्धतत्त्वानुभवो भवेत् ततः
सम्यग् विदित्वा परमं पदं व्रजेत् ॥ २२ ॥

अतो भजस्वाद्य हरिं रमापतिं
रामं पुराणं प्रकृतेः पदं विभुम् ।
विसृज्य मौर्ख्यं हृदि शत्रुभावनां
भजस्व रामं शरणागतप्रियम् ।

---

मन भी अहङ्कार का एक विकार है इसलिए वह भी आत्मा नहीं है, प्रकृति का विकार होने से बुद्धि भी किस प्रकार आत्मा कही जा सकती है। आत्मा ज्ञानस्वरूप, आनन्दमय एवं अविकारी है, और देह, मन, प्राण, बुद्धि और इन्द्रियों के संघात से भिन्न है तथा देहादि का ईश्वर भी है ॥ २० ॥ यह निरञ्जन है, उपाधि से मुक्त है, इस प्रकार आत्मा के स्वरूप को जानकर मनुष्य मुक्त हो जाता है। इसलिए हे महामते ! मैं तुम्हें आत्यन्तिक मोक्ष का साधन बता रहा हूँ, तुम सावधानी से सुनो ॥ २१ ॥ विष्णु की भक्ति बुद्धि को अच्छी प्रकार शुद्ध करने वाली है, शुद्ध होने से निर्मल ज्ञान उत्पन्न होता है। निर्मल ज्ञान से विशुद्ध तत्त्व का अनुभव होने लगता है, इसी विशुद्ध तत्त्व के दृढ अनुभव से मनुष्य परम पद को प्राप्त करता है ॥ २२ ॥ इसीलिए तुम अभी से

सीतां पुरस्कृत्य सपुत्रबान्धवो
रामं नमस्कृत्य विमुच्यसे भयात् ॥ २३ ॥
रामं परात्मानमभावयञ्जनो
भक्त्या हृदिस्थं सुखरूपमद्वयम् ।
कथं परं तीरमवाप्नुयाज्जनो
भवाम्बुधेर्दुःखतरङ्गमालिनः ॥ २४ ॥
नो चेत्त्वमज्ञानमयेन वह्निना
ज्वलन्तमात्मानमरक्षितारिवत् ।
नयस्यधोऽधः स्वकृतैश्च पातकै-
र्विमोक्षशङ्का न च ते भविष्यति ॥ २५ ॥
श्रुत्वाऽमृतास्वाद-समान-भाषितं
तद्वायुसूनोर्दशकन्धरोऽसुरः ।
अमृष्यमाणोऽतिरुषा कपीश्वरं
जगाद रक्तान्तविलोचनो ज्वलन् ॥ २६ ॥

---

हरि रमापति व्यापक पुराण पुरुष प्रकृति से परे राम का भजन करो और अपने हृदय में रहने वाली राम से शत्रु पूर्ण भावना को छोड़ दो तथा शरणागत से प्रेम करने वाले राम का भजन करो। और सीता को आगे रख कर पुत्र-बान्धवों सहित रामकी शरण जाकर उनको नमस्कार करो, इस प्रकार तुम भय से मुक्त हो जाओगे ॥ २३ ॥

जो मनुष्य अपने हृदय में स्थित आनन्द मय अद्वितीय परमात्मा राम का भक्ति पूर्वक स्मरण नहीं करता वह अनेक दुःख रूपी तरङ्गों से पूर्ण इस संसार-समुद्र का पार किस प्रकार पा सकता है ॥ २४ ॥ यदि तुम भगवान् राम को न भजोगे तो अज्ञानरूपी शत्रु सदृश अग्नि से जलते हुए अपनी आत्मा की रक्षा न कर सकोगे। और उत्तरोत्तर अपने किये गये पापों से इसे निरन्तर नीचे की ओर ले जाओगे। फिर तुम्हें अपने मुक्ति की संभावना भी न होगी ॥ २५ ॥

हनुमान् जी के अमृत के समान स्वादिष्ट मधुर भाषण को सुनकर राक्षसराज रावण उसे सहन न कर सका। और अत्यन्त क्रोध से नेत्रों को लाल-लाल कर जलता हुआ इस प्रकार हनुमान् जी से बोला—॥ २६ ॥

कथं ममाऽग्रे विलपस्यभीतवत्
प्लवङ्गमानामधमोऽसि दुष्टधीः।
क एष रामः कतमो वनेचरो
निहन्मि सुग्रीवयुतं नराधमम् ॥ २७ ॥
त्वां चाऽद्य हत्वा जनकात्मजां ततो
निहन्मि रामं सहलक्ष्मणं ततः।
सुग्रीवमग्रे बलिनं कपीश्वरं
सवानरं हन्म्यचिरेण वानर!।
श्रुत्वा दशग्रीववचः स मारुति-
र्विवृद्धकोपेन दहन्निवाऽसुरम् ॥ २८ ॥
न मे समा रावणकोटयोऽधम!
रामस्य दासोऽहमपारविक्रमः।
श्रुत्वाऽतिकोपेन हनूमतो वचो
दशाननो राक्षसमेवमब्रवीत् ॥ २९ ॥

---

हे दुष्ट बुद्धे ! तुम समस्त वानरों में अधम हो। मेरे सामने इस प्रकार निर्भय होकर क्यों प्रलाप करते हो ? मेरे सामने राम एवं वनेचर वानर की क्या हस्ती है। मैं सुग्रीव सहित उस नराधम राम को तो मार ही डालूँगा ॥ २७ ॥ सर्वप्रथम आज तुम्हारा वध करूँगा। फिर जानकी का वध करूँगा। तदनन्तर लक्ष्मण सहित राम का वध करूँगा। हे वानर ! इससे भी पहले समस्त वानर-सेना के साथ महाबली कपीश्वर सुग्रीव को थोड़ी ही देर में मार डालूँगा। रावण के इन बातों को सुन कर अपने महाक्रोध से रावण को जलाते हुए हनुमान् जी बोले—॥ २८ ॥ हे अधम ! मेरे सामने तो करोड़ों रावण भी न होंगे, मैं राम का दास हूँ। मेरे परा-क्रम का तो कोई थाह भी नहीं है। हनुमान जी की इस बात को सुन कर क्रोध में भरे हुए रावण ने अपने बगल में खड़े हुए राक्षस से

पार्श्वे स्थितं मारय खण्डशः कपिं
पश्यन्तु सर्वेऽसुर-मित्र-बान्धवाः।
निवारयामास ततो विभीषणो
महासुरं सायुधमुद्यतं वधे।
राजन्! वधार्हो न भवेत् कथञ्चन
प्रतापयुक्तैः परराजवानरः ॥ ३० ॥

हतेऽस्मिन् वानरे दूते वार्ता को वा निवेदयेत्।
रामाय त्वं यमुद्दिश्य वधाय समुपस्थितः ॥ ३१ ॥
अतो वधसमं किञ्चिदन्यच्चिन्तय वानरे।
सचिह्नो गच्छतु हरिर्यं दृष्ट्वाऽऽयास्यति द्रुतम् ॥ ३२ ॥
रामः सुग्रीवसहितस्ततो युद्धं भवेत्तव।
विभीषणवचः श्रुत्वा रावणोऽप्येतदब्रवीत् ॥ ३३ ॥
वानराणां हि लाङ्गूले महामानो भवेत् किल।
अतो वस्त्रादिभिः पुच्छं वेष्टयित्वा प्रयत्नतः ॥ ३४ ॥

---

कहा—॥ २९ ॥ अरे इस वानर को अभी टुकड़े-टुकड़े कर मार डालो। इस दृश्य को राक्षस मेरे मित्र एवं बन्धुगण देखें। तब शस्त्र लेकर वध के लिए उद्यत हुए उस राक्षस को विभीषण ने बीच में ही रोक दिया। और कहा—हे राजन्! प्रतापी लोगों को दूसरे राज्य के दूत का वध नहीं करना चाहिए॥ ३० ॥ और एक बात यह भी है कि यदि आप इस वानर को मार डालेंगे तो कौन ऐसा है जो उस राम से, जिसके वध के लिए आप उद्यत हैं, यह समाचार सुनावेगा॥ ३१ ॥ इस लिए हे राजन्! इस वानरके विषय में वधके अतिरिक्त वध-सदृश कोई अन्य दण्ड सोचिए। जिस चिह्न को लेकर यह वानर जाय। और उस चिह्न को देखकर सुग्रीव सहित राम शीघ्रता से यहाँ आवें। और उनसे आप का युद्ध हो। विभीषण की इस बात को सुन कर रावण भी यों बोला॥ ३२-३३ ॥ वानरों को अपनी पूँछ में बड़ी ममता एवं अभिमान होता है, इसलिए इसकी पूँछ में

वह्निना योजयित्वैनं भ्रामयित्वा पुरेऽभितः ।
विसर्जयत पश्यन्तु सर्वे वानरयूथपाः ॥ ३५ ॥
तथेति शणपट्टैश्च वस्त्रैरन्यैरनेकशः ।
तैलाक्तैर्वेष्टयामासुर्लाङ्गूलं मारुतेर्दृढम् ॥ ३६ ॥
पुच्छाग्रे किञ्चिदनलं दीपयित्वाऽथ राक्षसाः ।
रज्जुभिः सुदृढं बद्ध्वा धृत्वा तं बलिनोऽसुराः ॥ ३७ ॥
समन्ताद् भ्रामयामासुश्चोरोऽयमिति वादिनः ।
तूर्यघोषैर्घोषयन्तस्ताडयन्तो मुहुर्मुहुः ॥ ३८ ॥
हनूमतापि तत्सर्वं सोढं किञ्चिच्चिकीर्षुणा ।
गत्वा तु पश्चिमद्वारसमीपं तत्र मारुतिः ॥ ३९ ॥
सूक्ष्मो बभूव बन्धेभ्यो निःसृतः पुनरप्यसौ ।
बभूव पर्वताकारस्तत उत्प्लुत्य गोपुरम् ॥ ४० ॥

---

भली प्रकार वस्त्रादि लपेट कर उसमें आग लगा कर नगर के चारों ओर घुमाकर इसे छोड़ दो । इस प्रकार इसकी यह दुर्दशा सभी वानर यूथाधिपति देखेंगे ॥ ३४–३५ ॥

तब राक्षसों ने 'तथास्तु' कह कर कुछ ने हनुमान् जी की पूँछ में सन के पट्टों से और कुछ ने तेल में डुबाये गयेव स्त्र-खण्डों से अच्छी प्रकार लपेट दी ॥ ३६ ॥ पुनः वे बलवान् राक्षस पूँछ के अग्रभाग मे आग लगा कर उन्हें दृढ़ रस्सों में जकड़ कर तुरही बजाते हुए 'यह चोर है यह चार है' ऐसा चिल्लाते हुए और बारम्बार उन्हें मारते हुए नगर के चारों ओर घुमाने लगे ॥। ३७–३८ ॥

हनुमान् जी भी कुछ करने की इच्छा से राक्षसों के द्वारा किये गये इस अत्याचार को चुप-चाप सहन कर रहे थे। फिर जब वे पश्चिम द्वार पर पहुँचे तो सूक्ष्म रूप धारण कर बन्धन से मुक्त हो पुनः पर्वताकार रूप धारण कर लिया और कूद कर द्वार के कँगूरे पर चढ़ गये ॥ ३९-४० ॥

तत्रैकं स्तम्भमादाय हत्वा तान् रक्षिणः क्षणात् ।
विचार्य कार्यशेषं स प्रासादाग्राद् गृहाद् गृहम् ॥ ४१ ॥
उत्प्लुत्योत्प्लुत्य सन्दीप्तपुच्छेन महता कपिः ।
ददाह लङ्कामखिलां साट्टप्रासादतोरणाम् ॥ ४२ ॥
हा तात ! पुत्र ! नाथेति क्रन्दमानाः समन्ततः ।
व्याप्ताः प्रासादशिखरेऽप्यारूढा दैत्ययोषितः ॥ ४३ ॥
देवता इव दृश्यन्ते पतन्त्यः पावकेऽखिलाः ।
विभीषणगृहं त्यक्त्वा सर्वं भस्मीकृतं पुरम् ॥ ४४ ॥
तत उत्प्लुत्य जलधौ हनूमान् मारुतात्मजः ।
लाङ्गूलं मज्जयित्वान्तः स्वस्थचित्तो बभूव सः ॥ ४५ ॥
वायोः प्रियसखित्वाच्च सीतया प्रार्थितोऽनिलः ।
न ददाह हरेः पुच्छं बभूवाऽत्यन्तशीतलः ॥ ४६ ॥

---

वहाँसे उन्होंने एक खम्भा उखाड़ कर क्षण मात्र में सभी राक्षसों को मार डाला। और अपने शेष कार्य को ध्यान में रख कर प्रासाद के अग्र भाग से एक गृह से दूसरे गृह पर छलांग मार कर कूदते हुए अपनी जलती हुई लम्बी पूँछ की आग प्रासाद एवं तोरण युक्त सारी लङ्का में लगा दी ॥ ४१–४२ ॥ हा पुत्र ! हा तात ! हा नाथ ! कह कर विलाप करती हुई दैत्य-स्त्रियाँ चारों ओर घर छोड़ कर भागने लगीं। और कुछ प्रासाद के ऊपर चढ़ गयीं। उस समय अग्नि में गिरती हुई वे दैत्य-स्त्रियाँ देवताओं के समान जान पड़ती थीं।

इस प्रकार हनुमान् जी ने विभीषण के घर को छोड़ कर सारी लङ्कापुरी भस्म कर दी ॥ ४३–४४ ॥ फिर मारुतात्मज हनुमान् ने समुद्र में कूद कर अपनी पूँछ को बुझा दी और स्वस्थ चित्त हो गये ॥ ४५ ॥

वायु का प्रिय मित्र होने से तथा सीता की प्रार्थना से हनुमान् जी की पूँछ अग्नि ने नहीं जलायी। वल्कि उनके लिए वह अत्यन्त शीतल हो

यन्नामसंस्मरण-धूत-समस्तपापा-
स्तापत्रयानलमपीह तरन्ति सद्यः ।
तस्यैव किं रघुवरस्य विशिष्टदूतः
सन्तप्यते कथममौ प्रकृतानलेन ॥ ४७ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे
सुन्दरकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

□

## ५. पञ्चमः सर्गः

( हनुमान्‌जीका सीता से विदा होकर श्रीरामचन्द्रजी से
उनका समाचार सुनाना )

श्रीमहादेव उवाच

ततः सीतां नमस्कृत्य हनुमानब्रवीद् वचः ।
आज्ञापयतु मां देवि ! भवती रामसन्निधिम् ॥ १ ॥
गच्छामि रामस्त्वां द्रष्टुमागमिष्यति सानुजः ।
इत्युक्त्वा त्रिः परिक्रम्य जानकीं मारुतात्मजः ॥ २ ॥

---

गयी ॥ ४६ ॥ जिनके नाम मात्र के स्मरण से मनुष्य अपने समस्त पापों से छुटकारा पा कर ताप दायक तीनों अग्नियों को तुरन्त ही पार कर जाते हैं। पुनः उन्हीं श्री रामचन्द्रजी के विशिष्ट दूत हनुमान् जी को यह साधारण अग्नि किस प्रकार ताप पहुँचा सकती है ? ॥ ४७ ॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या विभूषित अध्यात्म-रामायण के
उमा-महेश्वर-संवाद में सुन्दरकाण्ड का चतुर्थ सर्ग समाप्त ॥ ४ ॥

□

श्री महादेवजी ने कहा--हे पार्वती ! श्री हनुमान् जी सीता के समीप जाकर और उन्हें नमस्कार कर इस प्रकार कहने लगे ।–हे देवि ! अब आप रामचन्द्रजी के पास जाने की मुझे आज्ञा दीजिए ॥ १ ॥ मैं जा रहा हूँ। अब राम तुम्हें देखने के लिए लक्ष्मण के साथ शीघ्र ही यहाँ आवेंगे। ऐसा कह कर उन्होंने तीन बार जानकी की परिक्रमा की ॥ २ ॥

प्रणम्य प्रस्थितो गन्तुमिदं वचनमब्रवीत् ।
देवि ! गच्छामि भद्रं ते तूर्णं द्रक्ष्यसि राघवम् ॥ ३ ॥
लक्ष्मणं च स-सुग्रीवं वानरायुतकोटिभिः ।
ततः प्राह हनूमन्तं जानकी दुःखकर्शिता ॥ ४ ॥
त्वां दृष्ट्वा विस्मृतं दुःखमिदानीं त्वं गमिष्यसि ।
इतः परं कथं वर्ते रामवार्ताश्रुतिं विना ॥ ५ ॥

मारुतिरुवाच

यद्येवं देवि ! मे स्कन्धमारोह क्षणमात्रतः ।
रामेण योजयिष्यामि मन्यसे यदि जानकि ! ॥ ६ ॥

सीतोवाच

रामः सागरमाशोष्य बद्ध्वा वा शरपञ्जरैः ।
आगत्य वानरैः सार्धं हत्वा रावणमाहवे ॥ ७ ॥
मां नयेद् यदि रामस्य कीर्तिर्भवति शाश्वती ।
अतो गच्छ कथं चापि प्राणान् सन्धारयाम्यहम् ॥ ८ ॥

---

पुनः प्रणाम कर जाने के लिए तैयार हो गये । और कहने लगे---हे देवि ! तुम्हारा कल्याण हो, मैं जा रहा हूँ । तुम शीघ्र ही लक्ष्मण, सुग्रीव एवं करोड़ों वानरों से युक्त श्रीराम को यहाँ देखोगी । तब शोक से कर्शित हुई जानकी ने हनुमान् से कहा---॥ ३-४ ॥ मैं तुम्हें देख कर अब तक अपना दुःख भूली हुई थी, किन्तु तुम भी जा रहे हो । राम का कुशल-समाचार सुने बिना मैं किस प्रकार रहूँगी ? ॥ ५ ॥

हनुमान् जी ने कहा–हे देवि ! यदि ऐसी बात है और आप स्वीकार करें तो मेरे कन्धे पर बैठिए मैं तुम्हें क्षण मात्र में राम के पास पहुँचा दूँगा ॥ ६ ॥

सीता ने कहा---राम समुद्र को सुखा कर या अपने बाण समूहों से समुद्र पर पुल बाँध कर समस्त वानरों के साथ लङ्का आवें । एवं युद्ध में रावण को मारकर मुझे ले चलें तो इससे उनकी कीर्त्ति अमर होगी । इसलिए तुम जाओ । मैं जैसे-तैसे तबतक प्राण धारण करूँगो ॥ ७-८ ॥

इति प्रस्थापितो वीरः सीतया प्रणिपत्य ताम् ।
जगाम पर्वतस्याग्रे गन्तुं पारं महोदधेः ॥ ९ ॥

तत्र गत्वा महासत्त्वः पादाभ्यां पीडयन् गिरिम् ।
जगाम वायुवेगेन पर्वतश्च महीतलम् ॥ १० ॥

गतो महीसमानत्वं त्रिंशद्योजनमुच्छ्रितः ।
मारुतिर्गगनान्तःस्थो महाशब्दं चकार सः ॥ ११ ॥

तं श्रुत्वा वानराः सर्वे ज्ञात्वा मारुतिमागतम् ।
हर्षेण महताविष्टाः शब्दं चक्रुर्महास्वनम् ॥ १२ ॥

शब्देनैव विजानीमः कृतकार्यः समागतः ।
हनूमानेव पश्यध्वं वानरा वानरर्षभम् ॥ १३ ॥

एवं ब्रुवत्सु वीरेषु वानरेषु स मारुतिः ।
अवतीर्य गिरेर्मूर्ध्नि वानरानिदमब्रवीत् ॥ १४ ॥

---

सीता से इस प्रकार बिदा हो हनुमान्‌जी ने उन्हें प्रणाम किया । और समुद्र के पार जाने के लिए पर्वत-शिखर पर चढ़ गये ॥ ९ ॥ पहाड़ पर चढ़कर महाबलवान् हनुमान्‌जी अपने पैरों से पर्वत को दबा कर वायु के समान वेग से उड़े । और वह तीस योजन ऊँचा पर्वत उनके पैरों के दबाने से पृथ्वीमें घुस कर समतल हो गया । इस प्रकार आकाश में जाते हुए उन्होंने महा घनघोर शब्द किया ॥ १०-११ ॥ उनके इन शब्दों को सुन कर वानरों ने समझ लिया कि हनुमान जी आ रहे हैं, अतः वे सभी महान् आनन्द से भर कर घनघोर शब्द करने लगे ॥ १२ ॥

( वे वानर आपस में कहने लगे ) इस सिंहनाद से मालूम पड़ता है कि हनुमान्‌जी कार्य सिद्ध कर लौट रहे हैं । हे वानरों ! देखो, ये वानर-श्रेष्ठ हनुमान्‌जी ही तो हैं ॥ १३ ॥

अभी महावीर वानर गण इस प्रकार की आपस में बातें कर ही रहे थे कि हनुमान्‌जी पर्वतः शिखर पर उतर कर उनसे इस प्रकार कहने लगे—॥१४॥

दृष्टा सीता मया लङ्का धर्षिता च सकानना ।
सम्भाषितो दशग्रीवस्ततोऽहं पुनरागतः ॥ १५ ॥
इदानीमेव गच्छामो राम-सुग्रीवसन्निधिम् ।
इत्युक्त्वा वानराः सर्वे हर्षेणालिङ्ग्य मारुतिम् ॥ १६ ॥
केचिच्चुचुम्बुर्लाङ्गूलं ननृतुः केचिदुत्सुकाः ।
हनूमता समेतास्ते जग्मुः प्रस्रवणं गिरिम् ॥ १७ ॥
गच्छन्तो ददृशुर्वीरा वनं सुग्रीवरक्षितम् ।
मधुसंज्ञं तदा प्राहुरङ्गदं वानरर्षभाः ॥ १८ ॥
क्षुधिताः स्मो वयं वीर ! देह्यनुज्ञां महामते ! ।
भक्षयामः फलान्यद्य पिबामोऽमृतवन्मधु ॥ १९ ॥
सन्तुष्टा राघवं द्रष्टुं गच्छामोऽद्यैव सानुजम् ॥ २० ॥

---

हे वानरो ! मैंने सीता को देखा । और अशोक वाटिका सहित सारी लङ्का विध्वंस कर दिया । रावण से बात चीत भी की । तदनन्तर यहाँ आया हूँ ॥ १५ ॥

अब इसी समय शीघ्र ही हम लोगों को राम एवं सुग्रीव के पास चलना चाहिए । इस प्रकार हनुमान्जी के कहने पर सभी वानरों ने हनुमान्जी को बड़े हर्ष से अपने गले लगाया ॥ १६ ॥ कुछ ने उनकी पूँछ चूमी और कुछ प्रसन्न होकर नाचने लगे । इस प्रकार हर्षित हो वे सभी हनुमान्जी के साथ प्रस्रवण पर्वत पर गये ॥ १७ ॥ जाते हुए उन वानरों ने सुग्रीव द्वारा सुरक्षित मधुवन को देखा । तब वे श्रेष्ठ वानर गण अङ्गद से कहने लगे ॥ १८ ॥

हे वीर ! हम लोग बहुत भूखे हैं । हे महामते ! हम लोगों को आज्ञा दीजिए जिससे अमृत के समान इस मधुवन के फल को खावें । तथा अमृत के समान इसके मधु का पान करें ॥ १९ ॥ तत्पश्चात् सन्तुष्ट होकर हम लोग लक्ष्मण सहित श्रीरघुनाथजी का दर्शन करेंगे ॥ २० ॥

अङ्गद उवाच

हनूमान् कृतकार्योऽयं पिबतैतत् प्रसादतः ।
जक्षध्वं फलमूलानि त्वरितं हरिसत्तमाः ॥ २१ ॥
ततः प्रविश्य हरयः पातुमारेभिरे मधु ।
रक्षिणस्ताननादृत्य दधिवक्त्रेण नोदितान् ॥ २२ ॥
पिबतस्ताडयामासुर्वानरान् वानरर्षभाः ।
ततस्तान् मुष्टिभिः पादैश्चूर्णयित्वा पपुर्मधु ॥ २३ ॥
ततो दधिमुखः क्रुद्धः सुग्रीवस्य स मातुलः ।
जगाम रक्षिभिः सार्धं यत्र राजा कपीश्वरः ॥ २४ ॥
गत्वा तमब्रवीदेव चिरकालाभिरक्षितम् ।
नष्टं मधुवनं तेऽद्य कुमारेण हनूमता ॥ २५ ॥
श्रुत्वा दधिमुखेनोक्तं सुग्रीवो हृष्टमानसः ।
दृष्ट्वाऽऽगतो न सन्देहः सीतां पवननन्दनः ॥ २६ ॥
नो चेन्मधुवनं द्रष्टुं समर्थः को भवेन्मम ।
तत्रापि वायुपुत्रेण कृतं कार्यं न संशयः ॥ २७ ॥

---

अङ्गदजी ने कहा—हनुमान् जी ने कार्य सिद्ध किया है अतः हे वानर-गण ! इनकी कृपा से तुम लोग शीघ्रता से फल-मूल खाओ। और मधुपान करो ॥ २१ ॥ इस प्रकार अङ्गद की आज्ञा पा कर वे सभी वानर दधि-मुख के द्वारा नियुक्त रक्षकों की उपेक्षा कर वन में घुस कर मधु पीने लगे ॥ २२ ॥ जब वन-रक्षक वानरों ने मधु पान करते हुए उन वानरों को मारना प्रारम्भ किया, तो वे भी मुक्के और लात से कुचल कर मधु पीते रहे ॥ २३ ॥ तब सुग्रीव का मामा दधिमुख क्रुद्ध हो कर अपने रक्षकों को साथ लेकर कपिराज सुग्रीव जहाँ थे, वहाँ गया ॥२४॥ और जा कर कहने लगा—हे देव ! बहुत दिनों से जिस मधुवन की आप रक्षा करते थे, उसे आज युवराज अङ्गद एवं हनुमान् ने उजाड़ डाला ॥ २५ ॥

दधिमुख के कहे हुए वचन को सुनकर सुग्रीव बहुत प्रसन्न हुए। और कहने लगे—इसमें सन्देह नहीं कि सीता को हनुमान् जी देख कर आ गये हैं ॥२६॥ अन्यथा हमारे मधुवन की ओर देखने की किसकी सामर्थ्य थी? ।

श्रुत्वा सुग्रीववचनं हृष्टो रामस्तमब्रवीत् ।
किमुच्यते त्वया राजन् ! वचः सीताकथान्वितम् ॥ २८ ॥
सुग्रीवस्त्वब्रवीद् वाक्यं देव ! दृष्टावनीसुता ।
हनूमत्प्रमुखाः सर्वे प्रविष्टा मधुकाननम् ॥ २९ ॥
भक्षयन्ति स्म सकलं ताडयन्ति स्म रक्षिणः ।
अकृत्वा देवकार्यं ते द्रुष्टं मधुवनं मम ॥ ३० ॥ ३० ॥
न समर्थास्ततो देवी दृष्टा सीतेति निश्चितम् ।
रक्षिणो वो भयं मास्तु गत्वा ब्रूत ममाज्ञया ॥ ३१ ॥
वानरानङ्गदमुखानानयध्वं ममान्तिकम् ।
श्रुत्वा सुग्रीववचनं गत्वा ते वायुवेगतः ॥ ३२ ॥
हनूमत्प्रमुखानूचुर्गच्छतेश्वरशासनात् ।
द्रष्टुमिच्छति सुग्रीवः स रामो लक्ष्मणान्वित ॥ ३३ ॥
युष्मानतीव हृष्टास्ते त्वरयन्ति महाबलाः ।
तथेत्यम्बरमासाद्य ययुस्ते वानरोत्तमाः ॥ ३४ ॥

---

इसमें सन्देह नहीं कि यह कार्य हनुमान् जी ने किया है ॥ २७ ॥ सुग्रीव की बात सुनते ही रामचन्द्र प्रसन्न हो कर कहने लगे—हे राजन् ! तुम सीता-सम्बन्धी क्या बात कर रहे हो ? ॥ २८ ॥ श्री रामचन्द्रजी की बात सुन कर सुग्रीव कहने लगे—हे देव ! ज्ञात होता है कि जानकी जी का पता लग गया है। क्योंकि हनुमान् आदि सभी प्रमुख वानर मधुवन में प्रविष्ट होकर ॥२९॥ उसका फल खा रहे हैं और सभी वन रक्षकों को मारते हैं। हे देव ! बिना आप का कार्य किये हमारे मधुवन की ओर उनके देखने की भी सामर्थ्य नहीं है। इससे मालूम होता है कि उन लोगों ने सीता का पता लगा लिया है। हे रक्षकों ! अब तुम लोग भय मत करो और मेरी आज्ञा से जा कर अङ्गद आदि वानरों से कहो कि वे वानरों को तुरन्त साथ लेकर मेरे पास चले आवें। सुग्रीव की बात सुनते ही वे वायु के वेग से चले ॥ ३०-३२ ॥ और जाकर हनुमान् आदि प्रमुख वानरों से बोले। महाराज की आज्ञा है कि आप लोग शीघ्र उनके पास जाइए। राम-लक्ष्मण सहित सुग्रीव आप लोगों को शीघ्र देखना चाहते हैं ॥ ३३ ॥ हे वीरों ! वे आप लोगों पर बहुत

हनूमन्तं पुरस्कृत्य युवराजं तथाङ्गदम् ।
रामसुग्रीवयोरग्रे निपेतुर्भुवि सत्वरम् ॥ ३५ ॥
हनूमान् राघवं प्राह दृष्टा सीता निरामया ।
साष्टाङ्गं प्रणिपत्याग्रे रामं पश्चाद्धरीश्वरम् ॥ ३६ ॥
कुशलं प्राह राजेन्द्र ! जानकी त्वां शुचान्विता ।
अशोकवनिकामध्ये शिंशपामूलमाश्रिता ॥ ३७ ॥
राक्षसीभिः परिवृता निराहारा कृशा प्रभो ! ।
हा राम ! राम रामेति शोचन्ती मलिनाम्बरा ॥ ३८ ॥
एकवेणी मया दृष्टा शनैराश्वासिता शुभा ।
वृक्षशाखान्तरे स्थित्वा सूक्ष्मरूपेण ते कथाम् ॥ ३९ ॥
जन्मारभ्य तवात्यर्थं दण्डकागमनं तथा ।
दशाननेन हरणं जानक्या रहिते त्वयि ॥ ४० ॥

---

प्रसन्न हैं और शीघ्र बुला रहे हैं। तब वे वानर भी 'बहुत अच्छा' कह कर आकाश मार्ग से चले ॥ ३४ ॥

सभी वानर हनुमान् जी तथा अङ्गद को आगे कर आकाश मार्ग से चले और राम एवं सुग्रीव के आगे पृथ्वी पर उतर आये ॥ ३५ ॥ फिर हनुमान् जी ने पहले श्री रामजी को तदनन्तर सुग्रीव को साष्टाङ्ग प्रणाम कर श्री रामचन्द्रजी से कहा—मैं सीता को सकुशल देख आया हूँ ॥ ३६ ॥

हे राजेन्द्र ! शोक में पड़ी हुई जानकी आप से अपना कुशल-समाचार इस प्रकार कहने को कहा है। वे अशोक वाटिका के मध्य में शिंशपा वृक्ष के नीचे बैठी हैं ॥ ३७ ॥ उन्हें राक्षसियाँ चारों ओर से घेरे हुए हैं। हे प्रभो ! भोजन न करने से वे अत्यन्त दुर्बल हो गयी हैं। वे शोक से विकल होकर हा राम ! हा राम ! हा राम ! इस प्रकार पुकार रही हैं। उनके वस्त्र मलीन हो गये हैं ॥ ३८ ॥ तथा बालों के संस्कार न होने से सब बाल मिल कर एक वेणी के रूप में हो गये हैं। मैंने इस प्रकार जानकी को देखा, और धीरे-धीरे उन्हें धीरज भी दिया। फिर सूक्ष्म रूप धारण कर वृक्ष के नीचे पत्तों में छिप कर मैंने आप की सारी कथा संक्षेप में सुना दी ॥ ३९ ॥ सर्व-प्रथम मैंने आप के जन्म से लेकर दण्डक वन में आने तक की कथा सुनाई। तब आप के आश्रम में न

सुग्रीवेण यथा मैत्री कृत्वा वालिनिबर्हणम् ।
मार्गणार्थं च वैदेह्याः सुग्रीवेण विसर्जिताः ॥ ४१ ॥

महाबला महासत्त्वा हरयो जितकाशिनः ।
गताः सर्वत्र सर्वे वै तत्रैकोऽहमिहागतः ॥ ४२ ॥

अहं सुग्रीवसचिवो दासोऽहं राघवस्य हि ।
दृष्ट्वा यज्जानकी भाग्यात् प्रयासः फलितोऽद्य मे ॥ ४३ ॥

इत्युदीरितमाकर्ण्य सीता विस्फारितेक्षणा ।
केन वा कर्णपीयूषं श्रावितं मे शुभाक्षरम् ॥ ४४ ॥

यदि सत्यं तदायातु मद्दर्शनपथं तु सः ।
ततोऽहं वानराकारः सूक्ष्मरूपेण जानकीम् ॥ ४५ ॥

प्रणम्य प्राञ्जलिर्भूत्वा दूरादेव स्थितः प्रभो ! ।
पृष्टोऽहं सीतया कस्त्वमित्यादि बहुविस्तरम् ॥ ४६ ॥

---

रहने पर जिस प्रकार जानकी का हरण हुआ ॥ ४० ॥ फिर जिस तरह आपने सुग्रीव से मित्रता कर वाली का वध किया। इन सब कथाओं के कहने के बाद जिस प्रकार सुग्रीव के द्वारा ॥ ४१ ॥ महाबलवान्, महापराक्रमी और विजयी वानर गण सभी दिशाओं में सर्वत्र भेजे गये। उनमें मैं अकेला सुग्रीव का मन्त्री और राम का दास हूँ। सो आज भाग्यवश मैंने जानकी को यहाँ देखा। और मेरा सारा प्रयास सफल हो गया। आदि बातें जानकी से कह सुनायी ॥ ४२–४३ ॥

मेरे द्वारा कहे गये इन वचनों को सुन कर सीता आँखें फाड़-फाड़ कर चारों ओर देखने लगीं। और बोलीं—मुझे कर्णामृत के समान कल्याण कारक ये वचन किसने सुनाया है ? ॥ ४४ ॥

यदि यह सब बातें सत्य हैं तो वह मेरी दृष्टि के सामने ( संवाद सुनाने वाला ) प्रगट हो जाय। हे प्रभो ! तब मैं बड़े सूक्ष्म रूप से बन्दर के समान आकार धारण किये हुए उनके सामने प्रगट हो गया ॥४५॥ और दूर से उन्हें प्रणाम कर हाथ जोड़ खड़ा हो गया। फिर सीता जी ने तुम कौन हो ? इत्यादि बहुतसी बातें विस्तार से पूछीं ॥ ४६ ॥

मया सर्वक्रमेणैव विज्ञापितमरिन्दम ! ।
पश्चान्मयाऽर्पितं देव्यै भवद्दत्ताङ्गुलीयकम् ॥ ४७ ॥
तेन मामतिविश्वस्ता वचनं चेदमब्रवीत् ।
तथा दृष्टाऽस्मि हनुमन् ! पीड्यमाना दिवानिशम् ॥ ४८ ॥
राक्षसीनां तर्जनैस्तत्सर्वं कथय राघवे ।
मयोक्तं देवि ! रामोऽपि त्वच्चिन्तापरिनिष्ठितः ॥ ४९ ॥
परिशोचत्यहोरात्रं त्वद्वार्तां नाधिगम्य सः ।
इदानीमेव गत्वाऽहं स्थितिं रामाय ते ब्रुवे ॥ ५० ॥
रामः श्रवणमात्रेण सुग्रीवेण सलक्ष्मणः ।
वानरानीकपैः सार्धमागमिष्यति तेऽन्तिकम् ॥ ५१ ॥
रावणं सकुलं हत्वा नेष्यति त्वां स्वकं पुरम् ।
अभिज्ञां देहि मे देवि ! यथा मां विश्वसेद् विभुः ॥ ५२ ॥
इत्युक्ता सा शिरोरत्नं चूडापाशे स्थितं प्रियम् ।
दत्त्वा काकेन यद्वृत्तं चित्रकूटगिरौ पुरा ॥ ५३ ॥

---

फिर हे अरिन्दम ! मैंने भी धीरे-धीरे उनसे सारी बातें कह दीं। और आप के द्वारा दी गयी अँगूठी भी मैंने दे दी ॥ ४७ ॥ इससे उन्होंने मुझ पर पूर्ण विश्वास कर लिया। और इस प्रकार कहने लगीं—हे हनुमन् ! जिस प्रकार मैं इन राक्षसियों के द्वारा दिन रात पीड़ित हूँ। वह सब तो तुमने देख ही लिया ॥ ४८ ॥ और जिस प्रकार ये राक्षसियाँ मुझे डरा एवं धमका रही हैं यह सब यथावत् श्रीरामचन्द्र जी से कहना। तब मैंने भी कहा—हे देवि ! श्रीराम भी तुम्हारी चिन्ता में तल्लीन रहते हैं ॥ ४९ ॥

वे तुम्हारा समाचार न मिलने से दिन-रात दुःखी रहते हैं। मैं अभी जाकर तुम्हारी स्थिति रामचन्द्र जी को सुनाऊँगा ॥५०॥ तुम्हारा समाचार सुनते ही श्रीराम, लक्ष्मण, सुग्रीव एवं समस्त वानर सेनापतियों के साथ तुम्हारे पास आवेंगे ॥ ५१ ॥ और सकुटुम्ब रावण का वध कर तुम्हें अयोध्या ले जायेंगे। हे देवि ! मुझे अब कोई ऐसा चिह्न दो जिससे राम मेरे ऊपर विश्वास करें ॥ ५२ ॥ मेरे इस प्रकार कहने

तदप्याहाऽश्रुपूर्णाक्षी कुशलं ब्रूहि राघवम् ।
लक्ष्मणं ब्रूहि मे किञ्चिद् दुरुक्तं भाषितं पुरा ॥ ५४ ॥

तत्क्षमस्वाज्ञभावेन भाषितं कुलनन्दन ! ।
तारयेन्मां यथा रामस्तथा कुरु कृपान्वितः ॥ ५५ ॥

इत्युक्त्वा रुदती सीता दुःखेन महतावृता ।
मयाप्याश्वासिता राम ! वदता सर्वमेव ते ॥ ५६ ॥

ततः प्रस्थापितो राम ! त्वत्समीपमिहागतः ।
तदागमनवेलायामशोकवनिकां प्रियाम् ॥ ५७ ॥

उत्पाट्य राक्षसांस्तत्र बहून् हत्वा क्षणादहम् ।
रावणस्य सुतं हत्वा रावणेनाभिभाष्य च ॥ ५८ ॥

---

पर सीता ने अपने केशपाश में स्थित चूड़ामणि को दे दिया। और पहले चित्रकूट पर्वत पर काक के साथ हुई घटना भी सुनाई ॥ ५३ ॥

पुनः उन्होंने आँखों में आँसू भर कर कहा—श्री रघुनाथ जी से मेरा सब समाचार कहना। और लक्ष्मण से कहना कि हे कुलनन्दन ! मैंने पहले तुमसे जो कुछ भी कठोर वचन कहे थे ॥ ५४ ॥ उन अज्ञान पूर्वक कहे गये मेरे वचनों को क्षमा करें। इसके अतिरिक्त श्रीरघुनाथजी से कहना कि वे जिस प्रकार से हो कृपा कर मेरा उद्धार करें। और तुम भी ऐसी चेष्टा करना ॥ ५५ ॥ इस प्रकार कह कर सीता महान् दुःख से भर गयीं और रोने लगीं। तब मैंने भी हे राम ! आपका सब वृत्तान्त सुना कर उन्हें धीरज दिया ॥ ५६ ॥ फिर सीता से विदा हो कर मैं यहाँ के लिए चल पड़ा। आते समय मैंने रावण की अत्यन्त प्रिय अशोक वाटिका ॥ ५७ ॥ उखाड़ कर फेंक दिया। और क्षण भर में बहुतेरे राक्षसों को एवं रावण के पुत्र अक्षकुमार को मार डाला।

लङ्कामशेषतो दग्ध्वा पुनरप्यगमं क्षणात् ।
श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं रामोऽत्यन्तप्रहृष्टधीः ॥ ५९ ॥
हनूमंस्ते कृतं कार्यं देवैरपि सुदुष्करम् ।
उपकारं न पश्यामि तव प्रत्युपकारिणः ॥ ६० ॥
इदानीं ते प्रयच्छामि सर्वस्वं मम मारुते ! ।
इत्यालिङ्ग्य समाकृष्य गाढं वानरपुङ्गवम् ॥ ६१ ॥
सार्द्रनेत्रो रघुश्रेष्ठः परां प्रीतिमवाप सः ।
हनूमन्तमुवाचेदं राघवो भक्तवत्सलः ॥ ६२ ॥
परिरम्भो हि मे लोके दुर्लभः परमात्मनः ।
अतस्त्वं मम भक्तोऽसि प्रियोऽसि हरिपुङ्गव ! ॥ ६३ ॥

---

और रावण से बात-चीत कर ॥ ५८ ॥ समस्त लङ्का जला दी। फिर क्षण भर में यहाँ चला आया। श्री हनुमान् की इस बात को सुन कर रामचन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ ५९ ॥

और कहने लगे—हे हनुमान् ! तुमने जो कार्य किया है वह देवताओं से भी दुष्कर है। तुम्हारे किये गये मेरी समझ में नहीं आता कि इन उपकारों के बदले मैं कौन सा तुम्हारा उपकार करूँ ॥ ६० ॥ अब हे मारुते ! तुम्हारे इन उपकारों के बदले मैं अपना सर्वस्वभूत शरीर ही तुम्हें सौंप देता हूँ। ऐसा कह कर उन्होंने वानर-श्रेष्ठ हनुमान् जी को खींच कर गाढ आलिङ्गन किया ॥ ६१ ॥ और उस समय उनके नेत्रों में आँसू आ गये। और अत्यन्त प्रीति उमड़ पड़ी। फिर भक्तवत्सल श्रीरामचन्द्र जी हनुमान् जी से कहने लगे—॥ ६२ ॥

हे हनुमान् ! मुझ परमात्मा का यह आलिङ्गन संसार में बड़ा दुर्लभ है। इसलिए हे वानरश्रेष्ठ ! तुम मेरे परम प्रिय एवं भक्त हो ॥ ६३ ॥

यत्पादपद्मयुगलं तुलसीदलाद्यैः
सम्पूज्य विष्णुपदवीमतुलां प्रयान्ति ।
तेनैव किं पुनरसौ परिरब्धमूर्ती
रामेण वायुतनयः कृतपुण्यपुञ्जः ॥ ६४ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
सुन्दरकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

समाप्तमिदं सुन्दरकाण्डम् ।

□

---

मनुष्य जिनके चरण-कमलों को तुलसी दल आदि से पूज कर परम पद को प्राप्त करते हैं, उन्हीं श्रीराम जी ने स्वयं जिसके शरीर का आलिङ्गन किया । उन महापुण्यकर्मा हनुमान् जी के विषय में क्या कहा जाय ? ॥ ६४ ॥

इस प्रकार आचार्य पण्डित श्री शिवदत्त मिश्र शास्त्रीकृत 'रामप्रिया'
हिन्दी व्याख्याविभूषित अध्यातम-रामायण के उमा-महेश्वर
संवाद में सुन्दरकाण्ड का पाँचवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५ ॥

□

# अध्यात्मरामायणम्

## 'रामप्रिया'-हिन्दीव्याख्या-सहितम्

## युद्धकाण्डम्

□

### १. प्रथमः सर्गः

( वानरी सेनाका प्रस्थान )

महादेव उवाच

यथावद् भाषितं वाक्यं श्रुत्वा रामो हनूमतः ।
उवाचानन्तरं वाक्यं हर्षेण महताबृतः ॥ १ ॥
कार्यं कृतं हनुमता देवैरपि सुदुष्करम् ।
मनसापि यदन्येन स्मर्तुं शक्यं न भूतले ॥ २ ॥
शतयोजनविस्तीर्णं लङ्घयेत् कः पयोनिधिम् ।
लङ्कां च राक्षसैर्गुप्तां को वा धर्षयितुं क्षमः ॥ ३ ॥
भृत्यकार्यं हनुमता कृतं सर्वमशेषतः ।
सुग्रीवस्येदृशो लोके न भूतो न भविष्यति ॥ ४ ॥

---

श्रीमहादेवजी ने कहा–हे पार्वती ! हनुमान् जी के द्वारा कहे गये यथार्थ वचनों को सुन कर श्रीरामचन्द्र जी हर्ष से पूर्ण हो कर कहने लगे–॥ १ ॥ हनुमान् जी ने जो कार्य किया है, वह देवताओं के लिए भी अत्यन्त दुष्कर है। और लोग तो उनके किये गये इन कार्यों का मन से स्मरण भी नहीं कर सकते ॥ २ ॥ भला इस जगत् में ऐसा कौन है, जो सौ योजन समुद्र को लाँघ सके। और राक्षसों से सुरक्षित लङ्कापुरी को नष्ट कर सके ॥ ३ ॥ इन हनुमान् जी ने सुग्रीव की समग्र आज्ञा का पालन पूर्ण रूप से किया। इस प्रकार का आज्ञाकारी इस संसार में कोई न हुआ और न कोई आगे होगा ॥ ४ ॥

अहं च रघुवंशश्च लक्ष्मणश्च कपीश्वरः।
जानक्या दर्शनेनाद्य रक्षिताः स्मो हनूमता ॥ ५ ॥
सर्वथा सुकृतं कार्यं जानक्याः परिमार्गणम्।
समुद्रं मनसा स्मृत्वा सीदतीव मनो मम ॥ ६ ॥
कथं नक्रझषाकीर्णं समुद्रं शतयोजनम्।
लङ्घयित्वा रिपुं हन्यां कथं द्रक्ष्यामि जानकीम् ॥ ७ ॥
श्रुत्वा तु रामवचनं सुग्रीवः प्राह राघवम्।
समुद्रं लङ्घयिष्यामो महानक्रझषाकुलम् ॥ ८ ॥
लङ्कां च विधयिष्यामो हनिष्यामोऽद्य रावणम्।
चिन्तां त्यज रघुश्रेष्ठ! चिन्ता कार्यविनाशिनी ॥ ९ ॥
एतान् पश्य महासत्त्वान् शूरान् वानरपुङ्गवान्।
त्वत्प्रियार्थं समुद्युक्तान् प्रवेष्टुमपि पावकम् ॥ १० ॥
समुद्रतरणे बुद्धिं कुरुष्व प्रथमं ततः।
दृष्ट्वा लङ्कां दशग्रीवो हत इत्येव मन्महे ॥ ११ ॥

---

आज इन हनुमान् जी ने मेरी, रघुवंशमात्र की, लक्ष्मण और सुग्रीव की रक्षा जानकी का पता लगा कर की है ॥ ५ ॥ यद्यपि जानकी का पता लग जाने से यह कार्य अच्छी तरह सम्पन्न हो गया किन्तु दुर्धर्ष समुद्र की याद आने पर मेरा मन सर्वथा हताश हो रहा है ॥ ६ ॥ मैं किस प्रकार घड़ियाल एवं मकरादि भयानक जन्तुओं से पूर्ण एवं सौ योजन लम्बे समुद्र को लाँघ कर शत्रु का वध करूँगा और किस प्रकार जानकी को देख पाऊँगा ॥ ७ ॥

राम की इन बातों को सुन कर सुग्रीव उनसे कहने लगे—हे रघुश्रेष्ठ! हम महानक्र एवं मकरादि से पूर्ण इस समुद्र को लाँघ जायेंगे तथा रावण को मार कर लङ्का को तहस-नहस कर डालेंगे। आप चिन्ता का परित्याग कीजिए। क्योंकि चिन्ता से कार्य नष्ट हो जाता है ॥ ८-९ ॥ आप परम ओजस्वी इन शूर-वीर बानरों की ओर देखिए। ये लोग आप के प्रिय कार्य करने के लिए अग्नि में भी प्रवेश करने को तैयार हैं ॥ १० ॥ हे राघवेन्द्र! सर्वप्रथम समुद्र को पार करने का यत्न कीजिए। फिर लङ्का पहुँच जाने

नहि पश्याम्यहं किञ्चित् त्रिषु लोकेषु राघव ! ।
गृहीतधनुषो यस्ते तिष्ठेदभिमुखो रणे ॥ १२ ॥
सर्वथा नो जयो राम ! भविष्यति न संशयः ।
निमित्तानि च पश्यामि तथा भूतानि सर्वशः ॥ १३ ॥
सुग्रीववचनं श्रुत्वा भक्तिवीर्यसमन्वितम् ।
अङ्गीकृत्याब्रवीद्रामो हनूमन्तं पुरःस्थितम् ॥ १४ ॥
येन केन प्रकारेण लङ्घयामो महार्णवम् ।
लङ्कास्वरूपं मे ब्रूहि दुःसाध्यं देवदानवैः ॥ १५ ॥
ज्ञात्वा तस्य प्रतीकारं करिष्यामि कपीश्वर ! ।
श्रुत्वा रामस्य वचनं हनूमान् विनयान्वितः ॥ १६ ॥
उवाच प्राञ्जलिर्देव ! यथा दृष्टं ब्रवीमि ते ।
लङ्का दिव्यापुरी देव ! त्रिकूटशिखरे स्थिता ॥ १७ ॥

पर हम लोग रावण को मरा हुआ ही समझते हैं ॥ ११ ॥ हे राघव ! मुझे तो इस त्रिलोकी में भी कोई ऐसा नहीं दिखाई देता। जो आप के धनुष धारण कर लेने पर युद्ध में सामने टिक सके ॥१२॥ हे राम ! सब प्रकार से हम लोगों की विजय होगी। आप इसे निश्चित समझें, क्योंकि इस समय विजय के लक्षण चारों ओर से दिखाई पड़ रहे हैं ॥ १३ ॥

इस प्रकार भक्ति एवं शौर्य पूर्ण सुग्रीव के वचन को सुन कर श्री राम ने उसका अनुमोदन किया। फिर वे सामने खड़े हनुमान् जी से कहने लगे ॥ १४ ॥ हनुमन् ! समुद्र तो हम जैसे-तैसे पार ही कर लेंगे। अब तुम देव-दानवों से सर्वथा अजेय लङ्का का स्वरूप बताओ ॥१५॥ हे कपीश्वर ! हम लङ्का का स्वरूप जान कर विजय करने का कोई उपाय सोचेंगे। राम की बात सुन कर हनुमान् जी बड़े विनय से बोले ॥ १६ ॥

हनुमान् जी ने हाथ जोड़ कर कहा—मैंने जिस प्रकार की लङ्का देखी है वैसा आप से बताता हूँ। हे देव ! वह दिव्य पुरी लङ्का त्रिकूट पर्वत पर

स्वर्णप्राकारसहिता स्वर्णाट्टालकसंयुता ।
परिखाभिः परिवृता पूर्णाभिर्निर्मलोदकैः ॥ १८ ॥
नानोपवनशोभाढ्या दिव्यवापीभिरावृता ।
गृहैर्विचित्रशोभाढ्यैर्मणिस्तम्भमयैः शुभैः ॥ १९ ॥
पश्चिमद्वारमासाद्य गजवाहाः सहस्रशः ।
उत्तरे द्वारि तिष्ठन्ति साश्ववाहाः सपत्तयः ॥ २० ॥
तिष्ठन्त्यर्बुदसङ्ख्याकाः प्राच्यामपि तथैव च ।
रक्षिणो राक्षसा वीरा द्वारं दक्षिणमाश्रिताः ॥ २१ ॥
मध्यकक्षेऽप्यसङ्ख्याता गजाऽश्व-रथ-पत्तयः ।
रक्षयन्ति सदा लङ्कां नानास्त्रकुशलाः प्रभो ! ॥ २२ ॥
सङ्क्रमैर्विविधैर्लङ्का शतघ्नीभिश्च संयुता ।
एवं स्थितेऽपि देवेश ! शृणु मे तत्र चेष्टितम् ॥ २३ ॥
दशाननबलौघस्य चतुर्थांशो मया हतः ।
दग्ध्वा लङ्कां पुरीं स्वर्णप्रासादो धर्षितो मया ॥२४ ॥

---

बसी हुई है ॥ १७ ॥ उस लङ्का के परकोटे सोने के बने हुए हैं, वह सोने की अटारी से युक्त है। निर्मल जल से भरी हुई खाइयों से चारों ओर घिरी हुई है ॥ १८ ॥ अनेक प्रकार के उपवनों से वह सुशोभित है। तथा दिव्य वापियों से परिपूर्ण है एवं मणिमय खम्भों से युक्त मनोहर शोभासम्पन्न विचित्र गृहों से विराजित है ॥ १९ ॥ उसके पश्चिम द्वार पर सहस्रों गजारोही और उत्तर द्वार पर हजारों पैदल सेना सहित बहुतसे घुड़सवार समुद्यत रहते हैं ॥ २० ॥ उसी प्रकार पूर्वद्वार पर अरबों महावीर तथा दक्षिण द्वार पर भी इतने ही संख्या वाले राक्षस नगर के रक्षक के रूप में अवस्थित हैं ॥ २१ ॥

हे प्रभो ! नगर के मध्यभाग में असंख्य हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल चतुरङ्गिणी सेना स्थित होकर सावधानी से लङ्का की रक्षा करती है। यह सेना अस्त्र-शस्त्र चलाने में बहुत कुशल है ॥२२॥ इसमें आने-जाने के लिए अनेक सुरङ्ग बने हुए हैं तथा बहुत सी तोपें लगी हुई हैं। हे देवेश ! इतनी सुरक्षा करते हुए भी मैंने जो किया है उसे सुनें ॥ २३ ॥ मैंने रावण

शतघ्न्यः सङ्क्रमाश्चैव नाशिता मे रघूत्तम ! ।
देव ! त्वद्दर्शनादेव लङ्का भस्मीकृता भवेत् ॥ २५ ॥
प्रस्थानं कुरु देवेश ! गच्छामो लवणाम्बुधेः ।
तीरं सह महावीरैर्वानरौघैः समन्ततः ॥ २६ ॥
श्रुत्वा हनूमतो वाक्यमुवाच रघुनन्दनः ।
सुग्रीव ! सैनिकान् सर्वान् प्रस्थानायाभिनोदय ॥ २७ ॥
इदानीमेव विजयो मुहूर्तः परिवर्तते ।
अस्मिन् मुहूर्ते गत्वाऽहं लङ्कां राक्षससङ्कुलाम् ॥ २८ ॥
सप्राकारां सुदुर्धर्षां नाशयामि सरावणाम् ।
आनेष्यामि च सीतां मे दक्षिणाक्षि स्फुरत्यधः ॥ २९ ॥
प्रयातु वाहिनी सर्वा वानराणां तरस्विनाम् ।
रक्षन्तु यूथपाः सेनामग्रे पृष्ठे च पार्श्वयोः ॥ ३० ॥

---

की सेना का चतुर्थांश नष्ट कर दिया। सारी लङ्का जला डाली और सोने के महल विध्वस्त कर दिये ॥ २४ ॥ इतना ही नहीं, हे रघूत्तम ! मैंने सुरङ्ग एवं तोपें भी स्वाहा कर दिये। अब तो वह लङ्का आपके दृष्टि मात्र से नष्ट हो जायेगी ॥ २५ ॥

हे देवेश ! अब आप लङ्का के लिए प्रस्थान कीजिए। हम लोग भी महावीर वानरी सेना के साथ आप के चारों ओर खारे समुद्र के तट पर चलेंगे ॥ २६ ॥

हनुमान् जी की बात सुन कर श्री रामचन्द्र जी ने सुग्रीव से कहा— हे सुग्रीव ! इसी समय सभी सैनिकों को कूच करने की आज्ञा दो ॥२७॥ क्योंकि इस समय विजय नामक मुहूर्त्त वर्त्तमान है। इस मुहूर्त्त में हमें राक्षसों से परिपूर्ण लङ्का में जा कर ॥ २८ ॥ स्वर्ण परकोटे से घिरी हुई, सर्वथा अजेय, रावण सहित उस लङ्का को नष्ट करूँगा, तथा सीता को ले आऊँगा। क्योंकि इस समय मेरी दाहिनी आँख के नीचे का भाग फड़क रहा है ॥ २९ ॥

महाबलवान् वानरों की सेना इसी समय कूच करे। तथा यूथपति लोग

हनूमन्तमथारुह्य गच्छाम्यग्रेऽङ्गदं ततः ।
आरुह्य लक्ष्मणो यातु सुग्रीव ! त्वं मया सह ॥ ३१ ॥
गजो गवाक्षो गवयो मैन्दो द्विविद एव च ।
नलो नीलः सुषेणश्च जाम्बवांश्च तथाऽपरे ॥ ३२ ॥
सर्वे गच्छन्तु सर्वत्र सेनायाः शत्रुघातिनः ।
इत्याज्ञाप्य हरीन् रामः प्रतस्थे सहलक्ष्मणः ॥ ३३ ॥
सुग्रीवसहितो हर्षात् सेनामध्यगतो विभुः ।
वारणेन्द्रनिभाः सर्वे वानराः कामरूपिणः ॥ ३४ ॥
क्ष्वेलन्तः परिगर्जन्तो जग्मुस्ते दक्षिणां दिशम् ।
भक्षयन्तो ययुः सर्वे फलानि च मधूनि च ॥ ३५ ॥
ब्रुवन्तो राघवस्याऽग्रे हनिष्यामोऽद्य रावणम् ।
एवं ते वानरश्रेष्ठा गच्छन्त्यतुलविक्रमाः ॥ ३६ ॥

---

अपनी सेना के आगे-पीछे तथा बगल से चलते हुए उसकी रक्षा करें ॥ ३० ॥ हनुमान् के कन्धे पर चढ़ कर आगे-आगे मैं चलता हूँ । फिर अङ्गद के कन्धे पर चढ़ कर लक्ष्मण जो मेरे पीछे चलें । और हे सुग्रीव ! तुम मेरे साथ चलो ॥ ३१ ॥ गज, गवाक्ष, गवय, मैन्द, द्विविद, नल, नील, सुषेण तथा जाम्बवान् एवं शत्रुओं का नाश करने वाले अन्य महावीर सेना के चारों ओर से देखभाल करते हुए चलें । वानरों को इस प्रकार आज्ञा देकर श्री रामचन्द्रजी ने लक्ष्मण के साथ प्रस्थान किया ॥३२-३३॥ उस सेना के मध्य में भगवान् राम सुग्रीव के साथ बड़े हर्ष से जा रहे थे । सभी वानर गजराज के समान ऊँचे डील वाले और इच्छानुसार रूप धारण करने वाले थे ॥ ३४ ॥

इस प्रकार वे सभी वानरगण मस्ती से उछलते-कूदते, गर्जना करते हुए फल खाते तथा मधुपान करते हुए दक्षिण दिशा को चले ॥ ३५ ॥ इस भाँति महापराक्रमी वे वानर-श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी के आगे 'हम आज ही रावण का वध करेंगे' ऐसा कहते हुए जा रहे थे ॥ ३६ ॥

हरिभ्यामुह्यमानौ तौ शुशुभाते रघूत्तमौ ।
नक्षत्रैः सेवितौ यद्वच्चन्द्रसूर्याविवाम्बरे ॥ ३७ ॥

आवृत्य पृथिवीं कृत्स्नां जगाम महती चमूः ।
प्रस्फोटयन्तः पुच्छाग्रानुद्वहन्तश्च पादपान् ॥ ३८ ॥
शैलानारोहयन्तश्च जग्मुर्मारुतवेगतः ।
असङ्ख्याताश्च सर्वत्र वानराः परिपूरिताः ॥ ३९ ॥
हृष्टास्ते जग्मुरत्यर्थं रामेण परिपालिताः ।
गता चमूर्दिवारात्रं क्वचिन्नासज्जत क्षणम् ॥ ४० ॥
काननानि विचित्राणि पश्यन् मलयसह्ययोः ।
ते सह्यं समतिक्रम्य मलयं च तथा गिरीन् ॥ ४१ ॥
आययुश्चानुपूर्व्येण समुद्रं भीमनिःस्वनम् ।
अवतीर्य हनूमन्तं रामः सुग्रीवसंयुतः ॥ ४२ ॥
सलिलाभ्याशमासाद्य रामो वचनमब्रवीत् ।
आगता स्मो वयं सर्वे समुद्रं मकरालयम् ॥ ४३ ॥

---

अङ्गद और हनुमान् जी के द्वारा कन्धों पर ले जाये जाते हुए वे दोनों रघुश्रेष्ठ, आकाशमण्डल में नक्षत्रों से सुशोभित सूर्य तथा चन्द्रमा—जैसे शोभायमान हो रहे थे ॥३७॥ वह सेना उस समय पृथ्वी को ढक कर चल रही थी। वे वानर पूँछ फटकारते हुए तथा वृक्षों को उखाड़ते हुए ॥ ३८ ॥ एवं पर्वतों पर उछल-कूद करते हुए वायु के वेग से चल रहे थे। उस समय चारों ओर असंख्य वानर भरे हुए दिखाई दे रहे थे ॥ ३९ ॥ राम से सुरक्षित होकर वे वानर रात-दिन बड़े वेग से चल रहे थे। एक क्षण के लिए भी उन्होंने कहीं विश्राम नहीं किया ॥ ४० ॥

उन लोगों ने मलय एवं सह्य पर्वत के विचित्र वन-विभागों को देखते हुए क्रमशः सह्य तथा मलय पर्वत पार कर लिया। फिर वे भयानक गर्जना करते हुए समुद्र के तट पर आ पहुँचे। तब हनुमान् के कन्धे से उतर कर श्रीराम जो सुग्रीव के साथ समुद्र तट पर आये और वानरों से बोले—अब हम लोग मकरादि परिपूर्ण इस समुद्र तट

इतो गन्तुमशक्यं नो निरुपायेन वानराः ।
तत्र सेनानिवेशोऽस्तु मन्त्रयामोऽस्य तारणे ॥ ४४ ॥
श्रुत्वा रामस्य वचनं सुग्रीवः सागरान्तिके ।
सेनां न्यवेशयत् क्षिप्रं रक्षितां कपिकुञ्जरैः ॥ ४५ ॥
ते पश्यन्तो विषेदुस्तं सागरं भीमदर्शनम् ।
महोन्नततरङ्गाढ्यं भीमनक्रभयङ्करम् ॥ ४६ ॥
अगाधं गगनाकारं सागरं वीक्ष्य दुःखिताः ।
तरिष्यामः कथं घोरं सागरं वरुणालयम् ॥ ४७ ॥
हन्तव्योऽस्माभिरद्यैव रावणो राक्षसाधमः ।
इति चिन्ताकुलाः सर्वे रामपार्श्वे व्यवस्थिताः ॥ ४८ ॥
रामः सीतामनुस्मृत्य दुःखेन महतावृतः ।
विलप्य जानकीं सीतां बहुधा कार्यमानुषः ॥ ४९ ॥
अद्वितीयश्चिदात्मकः परमात्मा सनातनः ।
यस्तु जानाति रामस्य स्वरूपं तत्त्वतो जनः ॥ ५० ॥

पर पहुँच गये ॥ ४१-४३ ॥ किन्तु अब आगे बिना कोई उपाय किये जाना असम्भव है । अब यहीं सेना की छावनी डाल दी जाय, फिर समुद्र पार करने के लिए परामर्श करेंगे ॥ ४४ ॥

राम की इस बात को सुनकर सुग्रीव ने वहीं समुद्र तट पर सेना का निवेश स्थापित कर दिया । तथा प्रधान-प्रधान वीरों के द्वारा उसकी रक्षा की व्यवस्था भी कर दी ॥ ४५ ॥ वे महाभयानक नक्रादिजीवों एवं उत्ताल तरङ्गों से परिपूर्ण उस समुद्र को देख कर हताश हो गये ॥ ४६ ॥ आकाश के समान अगाध समुद्र को देख कर वे बड़े दुःखी हुए। और विचार करने लगे कि इतने बड़े दुस्तर समुद्र को हम किस प्रकार पार कर सकेंगे ॥ ४७ ॥ हम तो आज ही राक्षसराज रावण को मार सकते थे ( पर अब करें तो क्या ? ) इस चिन्ता से व्यग्र होकर सब राम के पास बैठ गये ॥ ४८ ॥ इधर राम भी सीता का स्मरण कर महादुःखी हुए । यद्यपि वे अद्वय, आनन्द स्वरूप, सनातन परमात्मा थे तथापि कार्य वश मनुष्य शरीर धारण कर वे जानकी के लिए समुद्र तट पर विलाप

तं न स्पृशति दुःखादि किमुतानन्दमव्ययम् ।
दुःख-हर्ष-भय-क्रोध-लोभ-मोह-मदादयः ॥ ५१ ॥
अज्ञानलिङ्गान्येतानि कुतः सन्ति चिदात्मनि ।
देहाभिमानिनो दुःखं न देहस्य चिदात्मनः ॥ ५२ ॥
सम्प्रसादे द्वयाभावात् सुखमात्रं हि दृश्यते ।
बुद्ध्याद्यभावात् संशुद्धे दुःखं तत्र न दृश्यते ।
अतो दुःखादिकं सर्वं बुद्धेरेव न संशयः ॥ ५३ ॥
रामः परमात्मा पुरुषः पुराणो नित्योदितो नित्यसुखो निरीहः ।
तथापि मायागुणसङ्गतोऽसौ सुखीव दुःखीव विभाव्यतेऽबुधैः ॥५४॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
युद्धकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥



---

करने लगे। जो पुरुष परमात्मा राम के यथार्थ रूप को जानता है, जब उसे भी दुःखादि स्पर्श नहीं कर सकते फिर तो आनन्द स्वरूप अविनाशी परमात्मा की बात ही क्या है? दुःख, हर्ष, भय, क्रोध एवं अहङ्कार तो अज्ञान के चिह्न हैं। वे ज्ञान स्वरूप उस परमात्मा में हो भी कैसे सकते हैं? दुःख तो उसे होता है, जो देहादि में आसक्ति रखता है। चेतन आत्मा को दुःख किस प्रकार हो सकता है॥ ४९–५२ ॥ आत्मा के प्रत्यक्ष हो जाने पर द्वैत के अभाव के कारण केवल सुख का ही अनुभव होता है। वहाँ तो बुद्धि आदि का अभाव हो जाता है। संशुद्ध आत्मा में दुःख का लेश भी नहीं रहता। इस लिए दुःखादि बुद्धि के धर्म हैं, इसमें सन्देह नहीं॥ ५३ ॥

वे श्री राम परमात्मा, पुराण पुरुष, प्रकाशस्वरूप, नित्य सुख स्वरूप तथा निरीह हैं। किन्तु अज्ञानी पुरुष को माया के गुण के सम्बन्ध से सुखी तथा दुःखी–जैसे प्रतीत होते हैं॥ ५४ ॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या विभूषित अध्यात्म-रामायण के उमा-महेश्वर संवाद में युद्धकाण्ड का प्रथम सर्ग समाप्त॥ १ ॥



# द्वितीयः सर्गः

( रावण द्वारा विभीषण का तिरस्कार )

श्रीमहादेव उवाच

लङ्कायां रावणो दृष्ट्वा कृतं कर्म हनूमता ।
दुष्करं दैवतैर्वापि ह्रिया किञ्चिदवाङ्मुखः ॥ १ ॥
आहूय मन्त्रिणः सर्वानिदं वचनमब्रवीत् ।
हनूमता कृतं कर्म भवद्भिर्दृष्टमेव तत् ॥ २ ॥
प्रविश्य लङ्कां दुर्धर्षां दृष्ट्वा सीतां दुरासदाम् ।
हत्वा च राक्षसान् वीरानक्षं मन्दोदरीसुतम् ॥ ३ ॥
दग्ध्वा लङ्कामशेषेण लङ्घयित्वा च सागरम् ।
युष्मान् सर्वानतिक्रम्य स्वस्थोऽगात् पुनरेव सः ॥ ४ ॥
किं कर्तव्यमितोऽस्माभिर्यूयं मन्त्रविशारदाः ।
मन्त्रयध्वं प्रयत्नेन यत्कृतं मे हितं भवेत् ॥ ५ ॥

---

श्री महादेवजी ने कहा—हे पार्वती ! इधर रावण ने हनुमान् जी के द्वारा लङ्का में किये गये देवताओं से भी असाध्य कार्य को देख कर अपना सिर नीचे झुका लिया ॥ १ ॥ पुनः उसने मन्त्रिगणों को बुला कर कहा—हनुमान् ने जैसा कार्य किया है उसे तो आप लोगों ने प्रत्यक्ष देखा ही है ॥ २ ॥ उसने शत्रुओं से सर्वथा दुष्प्रवेश्य लङ्का में घुस कर दुष्प्राप्य सीता को देखा । फिर महाबलवान् राक्षसों एवं मन्दोदरी-पुत्र अक्षय कुमार का वध किया ॥ ३ ॥ तदनन्तर सम्पूर्ण लङ्कापुरी जला कर आप लोगों को अपमानित कर और सागर को सकुशल लाँघ कर लौट गया ॥ ४ ॥ आप सभी राजनीति में बहुत निपुण हैं । अतः अब हमें क्या करना चाहिए । और क्या करने से हमारा हित होगा । इस बात का प्रयत्न पूर्वक विचार कीजिए ॥ ५ ॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा राक्षसास्तमथाब्रुवन् ।
देव ! शङ्का कुतो रामात्तव लोकजितो रणे ॥ ६ ॥
इन्द्रस्तु बद्ध्वा निक्षिप्तः पुत्रेण तव पत्तने ।
जित्वा कुबेरमानीय पुष्पकं भुज्यते त्वया ॥ ७ ॥
यमो जितः कालदण्डाद् भयं नाऽभूत्तव प्रभो ! ।
वरुणो हुङ्कृतेनैव जितः सर्वेऽपि राक्षसाः ॥ ८ ॥
मयो महासुरो भीत्या कन्यां दत्त्वा स्वयं तव ।
त्वद्वशे वर्ततेऽद्यापि किमुतान्ये महासुराः ॥ ९ ॥
हनूमद्धर्षणं यत्तु तदवज्ञाकृतं च नः ।
वानरोऽयं किमस्माकमस्मिन् पौरुषदर्शने ॥ १० ॥
इत्युपेक्षितमस्माभिर्धर्षणं तेन किं भवेत् ? ।
वयं प्रमत्ताः किं तेन वञ्चिताः स्मो हनूमता ॥ ११ ॥

---

रावण की बात को सुन कर राक्षसों ने उससे कहा--हे देव ! आप ने तो युद्ध में त्रिलोकी को भी जीत लिया है। अतः इस राम से आप क्यों सशङ्कित हो रहे हैं ॥ ६ ॥ आपके पुत्र मेघनाद ने इन्द्र को भी बाँध कर लङ्कापुरी में डाल दिया था। आप ने युद्ध में कुबेर को जीत कर उसके पुष्पक विमान को छीन लिया। जिसका स्वयं आप ही उपभोग भी करते हैं ॥ ७ ॥ आपने यमराज को जीत लिया है। उस समय उसके कालदण्ड का भी आप को भय नहीं हुआ। इतना ही नहीं, आप अपने हुङ्कार मात्र से वरुण एवं समस्त राक्षसों को भी जीत लिया है ॥ ८ ॥ मय नामक राक्षस ने आप के भय से अपनी कन्या आप को दे दी। और वह स्वयं अभी तक आपके वश में रहता है। फिर और राक्षसों की बात ही क्या है ? ॥ ९ ॥

हनुमान् के द्वारा हम लोगों का जो अपमान हुआ है। वह तो हमारी उपेक्षा के कारण ही हुआ है। हम लोगों ने उस समय ऐसा सोचा था कि यह वानर है, इसमें पुरुषार्थ दिखाना व्यर्थ है ॥ १० ॥ हम लोगों की असावधानी से यदि उसने तिरस्कार कर दिया तो उससे क्या हुआ ? अवश्य ही उसके द्वारा इस प्रकार धोखा दिये जाने में हमारी असावधानी

जानीमो यदि तं सर्वे कथं जीवन् गमिष्यति।
आज्ञापय जगत्कृत्स्नमवानरममानुषम् ॥ १२ ॥
कृत्वा यास्यामहे सर्वे प्रत्येकं वा नियोजय।
कुम्भकर्णस्तदा प्राह रावणं राक्षसेश्वरम् ॥ १३ ॥
आरब्धं यत्त्वया कर्म स्वात्मनाशाय केवलम्।
न दृष्टोऽसि तदा भाग्यात्त्वं रामेण महात्मना ॥ १४ ॥
यदि पश्यति रामस्त्वां जीवन्नायासि रावण!
रामो न मानुषो देवः साक्षान्नारायणोऽव्ययः ॥ १५ ॥
सीता भगवती लक्ष्मी रामपत्नी यशस्विनी।
राक्षसानां विनाशाय त्वयानीता सुमध्यमा ॥ १६ ॥
विषपिण्डमिवागीर्य महामीनो यथा तथा।
आनीता जानकी पश्चात्त्वया किं वा भविष्यति ॥ १७ ॥

---

कारण है ॥ ११ ॥ यदि हम लोग उसे ऐसा समझते तो क्या वह जीवित लौट सकता था। आप हमें आज्ञा दें, हम लोग अभी इस पृथ्वी को वानर एवं मनुष्यों से रहित कर देंगे ॥ १२ ॥ अथवा हम लोगों में से एक-एक को इस कार्य के लिए नियुक्त कीजिए। उसी समय कुम्भकर्ण राक्षस-राज रावण से बोला—॥ १३ ॥

आपने जिस कार्य का आरम्भ किया है, वह केवल आत्म विनाश के लिए ही किया है। यह तो तुम्हारा महान् सौभाग्य ही है कि सीता के अपहरण काल में महात्मा राम ने तुम्हें नहीं देखा ॥ १४ ॥ हे रावण! यदि उस समय राम तुम्हें देख लेते तो तुम जीते जी लौट नहीं सकते थे। राम न तो मनुष्य हैं और न तो देवता ही हैं। वे तो साक्षात् अव्यय नारायण हैं ॥ १५ ॥ और यशस्विनी परम सुन्दरी रामपत्नी सीता साक्षात् महालक्ष्मी हैं। निश्चय ही तुम समस्त राक्षसों के विनाश के लिए सीता को ले आये हो ॥ १६ ॥

जैसे महामत्स्य विष-पिण्ड को निगल जाता है परिणाम नहीं सोचता। उसी प्रकार तुम भी आत्म-विनाश के लिए सीता को ले आये हो। अभी

यद्यप्यनुचितं कर्म त्वया कृतमजानता।
सर्वं समं करिष्यामि स्वस्थचित्तो भव प्रभो !॥ १८॥
कुम्भकर्णवचः श्रुत्वा वाक्यमिन्द्रजिदब्रवीत्।
देहि देव ! ममानुज्ञां हत्वा रामं सलक्ष्मणम्।
सुग्रीवं वानरांश्चैव पुनर्यास्यामि तेऽन्तिकम्॥ १९॥
तत्रागतो भागवतप्रधानो विभीषणो बुद्धिमतां वरिष्ठः।
श्रीरामपादद्वय एकतानः प्रणम्य देवारिमुपोपविष्टः॥२०॥
विलोक्य कुम्भश्रवणादिदैत्यान् मत्तप्रमत्तानतिविस्मयेन।
विलोक्य कामातुरमप्रमत्तो दशाननं प्राह विशुद्धबुद्धिः॥२१॥
न कुम्भकर्णेन्द्रजितौ च राजंस्तथा महापार्श्वमहोदरौ तौ।
निकुम्भकुम्भौ च तथाऽतिकायः स्थातुं न शक्ता युधि राघवस्य॥२२॥

---

आगे क्या होगा ? समझ में नहीं आता॥ १७॥ यद्यपि आपने अनजान में यह सब अनुचित कार्य किया है। फिर भी आप शान्त रहें। मैं सब कुछ ठीक किये देता हूँ॥ १८॥

कुम्भकर्ण की बात सुन कर मेघनाद ने कहा—हे देव ! मुझे आज्ञा दीजिए। मैं राम, लक्ष्मण, सुग्रीव एवं समस्त वानर गणों को मार कर अभी आप के पास आ जाता हूँ॥ १९॥ उसी समय भगवद्-भक्तों में प्रधान, महाबुद्धिमान् विभीषण जी वहाँ आये। श्री रामचन्द्र के चरण-युगलों में उनका मन एकाग्रता पूर्वक लगा हुआ था। फिर वे देवारि रावण को प्रणाम कर उसके सन्निकट बैठ गये॥ २०॥ सर्व-प्रथम उन्होंने वहाँ मदोन्मत्त कुम्भकर्णादि दैत्यों को बड़े आश्चर्य से देखा। पुनः कामातुर रावण से वे निर्मल बुद्धि वाले विभीषण सावधानी के साथ कहने लगे॥२१॥

हे राजन् ! राम के सामने युद्ध में कुम्भकर्ण, मेघनाद, महापार्श्व, महोदर, निकुम्भ, कुम्भ एवं अतिकाय आदि कोई भी राक्षस टिक नहीं

सीताभिधानेन महाग्रहेण ग्रस्तोऽसि राजन् ! न च ते विमोक्षः ।
तामेव सत्कृत्य महाधनेन दत्त्वाऽभिरामाय सुखी भव त्वम् ॥२३॥
यावन्न रामस्य शिताः शिलीमुखा लङ्कामभिव्याप्य शिरांसि रक्षसाम् ।
छिन्दन्ति तावद्रघुनायकस्य भो ! तां जानकीं त्वं प्रतिदातुमर्हसि ॥२४॥
यावन्नगाभाः कपयो महाबला हरीन्द्रतुल्या नखदंष्ट्रयोधिनः ।
लङ्कां समाक्रम्य विनाशयन्ति ते तावद् द्रुतं देहि रघूत्तमाय ताम् ॥२५॥
जीवन्न रामेण विमोक्ष्यसे त्वं गुप्तः सुरेन्द्रैरपि शङ्करेण ।
न देवराजाङ्कगतो न मृत्योः पाताललोकानपि सम्प्रविष्टः ॥२६॥
शुभं हितं पवित्रं च विभीषणवचः खलः ।
प्रतिजग्राह नैवाऽसौ म्रियमाण इवौषधम् ॥ २७ ॥

---

सकते ॥ २२ ॥ हे राजन् ! तुम इस समय सीता नामक महाग्रह से ग्रस लिये गये हो । जिससे तुम्हारा छुटकारा पाना असम्भव है । यदि आप अपना छुटकारा पाकर सुखी रहना चाहते हैं तो आप बहुत धन के साथ उस सीता को राम के पास लौटा दीजिए ॥ २३ ॥ हे रावण ! राम के तीक्ष्ण बाण जब तक लङ्का में व्याप्त होकर राक्षसों का सिर नहीं काटते, तब तक उचित यही है कि आप उन्हें जानकी लौटा दें ॥ २४ ॥ जब तक हाथी के समान डील डौल वाले ऊँचे-ऊँचे सिंह के समान महा-बलवान् वानर अपने तीक्ष्ण नख एवं दाँतों से लङ्का में पहुँच कर उसको नष्ट-भ्रष्ट नहीं करते तब तक आप सीता जी को जल्द से जल्द राम के पास लौटा दीजिए ॥ २५ ॥

विष्णु और शङ्कर भी यदि आप की रक्षा करें अथवा इन्द्र एवं मृत्यु भी अपनी गोद में लेकर आप को बचाना चाहे या आप पाताल लोक में ही क्यों न प्रविष्ट हो जायँ किन्तु आप राम से जीवित बच नहीं सकते ॥ २६ ॥

इस प्रकार विभीषण द्वारा कहे गये शुभ, हितकारी एवं पवित्र वचन सुन कर वह दुष्ट रावण उसे इसी प्रकार ग्रहण नहीं कर सका जैसे मरने वाला पुरुष औषध ग्रहण नहीं करता ॥ २७ ॥

कालेन नोदितो दैत्यो विभीषणमथाऽब्रवीत् ।
मद्दत्तभोगैः पुष्टाङ्गो मत्समीपे वसन्नपि ॥ २८ ॥
प्रतीपमाचरत्येष ममैव हितकारिणः ।
मित्रभावेन शत्रुर्मे जातो नास्त्यत्र संशयः ॥ २९ ॥
अनार्येण कृतघ्नेन सङ्गतिर्मे न युज्यते ।
विनाशमभिकाङ्क्षन्ति ज्ञातीनां ज्ञातयः सदा ॥ ३० ॥
योऽन्यस्त्वेवंविधं ब्रूयाद् वाक्यमेकं निशाचरः ।
हन्मि तस्मिन क्षणे एव धिक् त्वां रक्षःकुलाधमम् ॥ ३१ ॥
रावणेनैवमुक्तः सन् परुषं स विभीषणः ।
उत्पपात सभामध्याद् गदापाणिर्महाबलः ॥ ३२ ॥
चतुर्भिर्मन्त्रिभिः सार्धं गगनस्थोऽब्रवीद् वचः ।
क्रोधेन महताविष्टो रावणं दशकन्धरम् ।
मा विनाशमुपैहि त्वं प्रियवादिनमेव माम् ॥ ३३ ॥

---

किन्तु काल से प्रेरित वह दैत्य रावण विभीषण से इस प्रकार कहने लगा—भला देखो तो सही, हमारे सन्निधान में रहता हुआ और हमारे ही कौरों पर पला हुआ ॥ २८ ॥ यह मुझ हितकारी के विरुद्ध आचरण करता है। अवश्य ही यह मित्र रूप से मेरा शत्रु उत्पन्न हुआ है, इसमें सन्देह नहीं ॥ २९ ॥ अतः इस अनार्य एवं कृतघ्न के साथ मुझे रहना अच्छा नहीं जान पड़ता। प्रायः देखने में यही आता है कि कुटुम्बी जन अपने कुटुम्बी के नाश की इच्छा किया करते हैं ॥ ३० ॥ यदि कोई अन्य राक्षस मेरे विरुद्ध इस प्रकार का एक वाक्य भी कहता तो मैं उसे उसी क्षण मार डालता। अतः राक्षस कुलाधम तुम्हारे-जैसे नीच को धिक्कार है ॥ ३१ ॥

रावण के द्वारा इस प्रकार कठोर वचन कहे जाने पर महाबली विभीषण अपने हाथ में गदा लिये हुए सभा के मध्य से आकाश में उड़ गये ॥ ३२ ॥ और अपने चार मन्त्रियों के साथ आकाश में स्थित होकर बड़े क्रोध से दशकन्धर रावण से इस प्रकार कहने लगे—हे रावण ! तुम्हारा

धिक् करोषि तथापि त्वं ज्येष्ठो भ्राता पितुः समः ।
कालो राघवरूपेण जातो दशरथालये ॥ ३४ ॥
काली सीताभिधानेन जाता जनकनन्दिनी ।
तावुभावागतावत्र भूमेर्भारापनुत्तये ॥ ३५ ॥
तेनैव प्रेरितस्त्वं तु न शृणोषि हितं मम ।
श्रीरामः प्रकृतेः साक्षात् परस्तात् सर्वदा स्थितः ॥ ३६ ॥
बहिरन्तश्च भूतानां समः सर्वत्र संस्थितः ।
नामरूपादिभेदेन तत्तन्मय इवामलः ॥ ३७ ॥
यथा नानाप्रकारेषु वृक्षेष्वेको महानलः ।
तत्तदाकृतिभेदेन भिद्यतेऽज्ञानचक्षुषाम् ॥ ३८ ॥
पञ्चकोशादिभेदेन तत्तन्मय इवाबभौ ।
नीलपीतादियोगेन निर्मलः स्फटिको यथा ॥ ३९ ॥

---

नाश न हो इस विचार से मैंने तुम्हारे हित की बात कही ॥ ३३ ॥ किन्तु तुम मुझे ही धिक्कारते हो, अस्तु चाहे जो भी कहो क्योंकि तुम जेठे भाई हो और मेरे पिता के समान हो। पर इतना जान लो कि तुम्हारा काल राम के रूप से दशरथ के घर जन्म ले चुका है ॥ ३४ ॥ और महाकाली भी शक्ति रूप से जनक की कन्या के रूप में अवतरित हो चुकी हैं। ये दोनों पृथ्वी का भार उतारने के लिए ही इस पृथ्वी तल पर अवतीर्ण हुए हैं ॥ ३५ ॥ उन्हीं महाकाल एवं महाकाली की प्रेरणा से तुम हमारी हित की बात नहीं सुनते। भगवान् राम सर्वथा प्रकृति से परे हैं ॥ ३६ ॥ वे प्राणी मात्र के भीतर और बाहर सर्वदा समान रूप से स्थित हैं। और निर्मल हैं। वे केवल नाम रूप के भेद से भिन्न जैसे भासते हैं ॥ ३७ ॥

जिस प्रकार अनेक प्रकार के वृक्षों में एक ही महान् अग्नि भासित होती है। अथवा जिस प्रकार एक ही शुद्ध स्फटिक मणि नील पीतादि रंगों के सन्निधि मात्र से नील पीत रंग की भासती है। उसी प्रकार अज्ञानियों के लिए यह शुद्ध अद्वय आत्मा भी आकृति भेद से और पञ्च कोश ( अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय ) भेद से नाना प्रकार का भासता है ॥ ३८-३९ ॥

स एव नित्यमुक्तोऽपि स्वमायागुणबिम्बितः ।
कालः प्रधानं पुरुषोऽव्यक्तं चेति चतुर्विधः ॥ ४० ॥
प्रधानपुरुषाभ्यां स जगत्कृत्स्नं सृजत्यजः ।
कालरूपेण कलनां जगतः कुरुतेऽव्ययः ॥ ४१ ॥
कालरूपी स भगवान् रामरूपेण मायया ॥ ४२ ॥
ब्रह्मणा प्रार्थितो देवस्त्वद्वधार्थमिहागतः ।
तदन्यथा कथं कुर्यात् सत्यसङ्कल्प ईश्वरः ॥ ४३ ॥
हनिष्यति त्वां रामस्तु सपुत्रबलवाहनम् ।
हन्यमानं न शक्नोमि द्रष्टुं रामेण रावण ! ॥ ४४ ॥
त्वां राक्षसकुलं कृत्स्नं ततो गच्छामि राघवम् ।
मयि याते सुखी भूत्वा रमस्व भवने चिरम् ॥ ४५ ॥

---

यद्यपि वह आत्मा नित्य मुक्त है तथापि अपने माया के गुणों से प्रतिबिम्बित होकर काल, प्रधान, पुरुष एवं अव्यक्त रूप से चार प्रकार का कहा गया है ॥ ४० ॥

ब्रह्मा, प्रधान एवं पुरुष रूप से इस सारे जगत् की सृष्टि करते हैं। और वही अव्यय कालरूप से इस जगत् का संहार करते हैं ॥ ४१ ॥ वे ही काल रूपी भगवान् ब्रह्मा के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर तुम्हारे वध के लिए माया से राम के रूप में यहाँ आये हुए हैं। ईश्वर सत्य संकल्प है। भला वह अपनी प्रतिज्ञा अन्यथा किस प्रकार कर सकता है ॥ ४२-४३ ॥

राम निश्चय ही पुत्र, सेना एवं वाहन सहित तुम्हारा सर्वनाश करेंगे। और हे रावण ! मैं राम के द्वारा सम्पूर्ण राक्षस वंश का इस प्रकार संहार होते हुए देख नहीं सकता ॥ ४४ ॥ अतः मैं अब रामके पास जा रहा हूँ। आप मेरे चले जाने पर आनन्द से अपने भवन में रह कर चिरकाल पर्यन्त भोग भोगिए ॥ ४५ ॥

**विभीषणो रावणवाक्यतः क्षणाद् विसृज्य सर्वं सपरिच्छदं गृहम् ।**
**जगाम रामस्य पदारविन्दयोः सेवाभिकाङ्क्षी परिपूर्णमानसः ॥४६॥**

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
युद्धकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥



# तृतीयः सर्गः

( विभीषण की शरणागति, समुद्र का भयभीत होना तथा सेतु-बन्धन )

श्रीमहादेव उवाच

**विभीषणो महाभागश्चतुर्भिर्मन्त्रिभिः सह ।**
**आगत्य गगने रामसम्मुखे समवस्थितः ॥ १ ॥**
**उच्चैरुवाच भो स्वामिन् ! राम ! राजीवलोचन ! ।**
**रावणस्याऽनुजोऽहं ते दारहर्तुर्विभीषणः ॥ २ ॥**
**नाम्ना भ्रात्रा निरस्तोऽहं त्वामेव शरणं गतः ।**
**हितमुक्तं मया देव ! तस्य चाविदितात्मनः ॥ ३ ॥**

---

इस प्रकार सन्तुष्ट चित्त विभीषण रावण के कठोर वचनों से एक क्षण में ही समस्त ऐश्वर्य पूर्ण अपने घर को छोड़ कर राम के चरणारविन्द की सेवा की इच्छा से उनके पास चले गये ॥ ४६ ॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या विभूषित अध्यात्म-रामायण के उमा-महेश्वर संवाद में युद्धकाण्ड का द्वितीय सर्ग समाप्त ॥ २ ॥



श्री महादेवजी ने कहा—हे पार्वति ! इस प्रकार महाभाग विभीषण अपने चार मन्त्रियों के साथ आकर आकाश में राम के सामने उपस्थित हो गये ॥१॥ और ऊँचे स्वर से कहने लगे—हे स्वामिन् ! हे राम ! हे कमल-नयन ! मैं आपके भार्यापहारी रावण का छोटा भाई हूँ। मेरा नाम विभीषण है ॥ २ ॥ हे प्रभो ! मेरे भाई ने मुझे निकाल दिया है। अतः मैं

सीतां रामाय वैदेहीं प्रेषयेति पुनः पुनः ।
उक्तोऽपि न शृणोत्येव कालपाशवशं गतः ॥ ४ ॥

हन्तुं मां खड्गमादाय प्राद्रवद्राक्षसाधमः ।
ततोऽचिरेण सचिवैश्चतुर्भिः सहितो भयात् ॥ ५ ॥

त्वामेव भवमोक्षाय मुमुक्षुः शरणं गतः ।
विभीषणवचः श्रुत्वा सुग्रीवो वाक्यमब्रवीत् ॥ ६ ॥

विश्वासार्हो न ते राम ! मायावी राक्षसाधमः ।
सीताहर्तुर्विशेषेण रावणस्याऽनुजो बली ॥ ७ ॥

मन्त्रिभिः सायुधैरस्मान् विवरे निहनिष्यति ।
तदाज्ञापय मे देव ! वानरैर्हन्यतामयम् ॥ ८ ॥

ममैवं भाति ते राम ! बुद्ध्या किं निश्चितं वद ? ।
श्रुत्वा सुग्रीववचनं रामः सस्मितमब्रवीत् ॥ ९ ॥

---

आपकी शरण आया हूँ। हे देव ! मैंने उस मूर्ख के हित की बात कही थी ॥ ३ ॥ हे नाथ ! मैंने उससे यही बात बारम्बार कही थी कि तुम सीता को राम के पास लौटा दो किन्तु वह दुरात्मा काल के वशीभूत होने से मेरी बात नहीं सुनता ॥ ४ ॥ जब वह मुझे मारने के लिए तलवार लेकर दौड़ा तो मैं भयभीत होकर बड़ी शीघ्रता से अपने चार मन्त्रियों के साथ ॥ ५ ॥ संसाररूपी पाश से मुक्त होने के लिए मुमुक्षु होकर आपकी शरण आया हूँ। विभीषण की इस बात को सुनकर सुग्रीव ने कहा——॥६॥

हे राम ! इस मायावी राक्षसाधम का विश्वास नहीं करना चाहिए, विशेष कर सीता का हरण करने वाले राक्षराज रावण के इस बलवान् छोटे भाई का तो कथमपि विश्वास नहीं करना चाहिये ॥ ७ ॥ यह कभी भी अवसर पाकर अपने सशस्त्र मन्त्रियों के साथ हम लोगों का वध भी कर सकता है, इसलिए हे देव ! इसके वध के लिए हमें आप आज्ञा दें। मैं अभी इसे वानरों से मरवा डालूँ ॥ ८ ॥ हे राम ! मुझे तो यही ठीक जँचता है। आप ने इस विषय में क्या सोचा है, मुझे बताइए। सुग्रीव की बात सुन कर राम ने मन्द-मन्द मुस्कराते हुए कहा——॥ ९ ॥

यदीच्छामि कपिश्रेष्ठ ! लोकान् सर्वान् सहेश्वरान् ।
निमिषार्धेन संहन्यां सृजामि निमिषार्धतः ॥ १० ॥
अतो मयाभयं दत्तं शीघ्रमानय राक्षसम् ॥ ११ ॥
सकृदेव प्रपन्नाय तवाऽस्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥ १२ ॥
रामस्य वचनं श्रुत्वा सुग्रीवो हृष्टमानसः ।
विभीषणमथानाय्य दर्शयामास राघवम् ॥ १३ ॥
विभीषणस्तु साष्टाङ्गं प्रणिपत्य रघूत्तमम् ।
हर्षगद्गदया वाचा भक्त्या च परयान्वितः ॥ १४ ॥
रामं श्यामं विशालाक्षं प्रसन्नमुखपङ्कजम् ।
धनुर्बाणधरं शान्तं लक्ष्मणेन समन्वितम् ॥ १५ ॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा स्तोतुं समुपचक्रमे ॥ १६ ॥

---

हे कपिश्रेष्ठ ! यदि मैं चाहूँ तो आधे निमेष में ही लोकपालों सहित सारे लोक को नष्ट कर दूँ । और आधे निमेष में इसकी रचना भी कर दूँ । अतः तुम कोई चिन्ता मत करो ॥ १० ॥ मैं इस राक्षस को अभय दान देता हूँ । तुम शीघ्र ही इसे हमारे पास लाओ ॥ ११ ॥ हे सुग्रीव ! मेरा यह व्रत है कि जो एक बार भी मेरी शरण में आकर 'मैं तुम्हारा हूँ' ऐसा कह कर मुझसे अभयदान माँगता है, उसे मैं समस्त प्राणियों से निर्भय कर देता हूँ ॥ १२ ॥

राम क वचन को सुनकर सुग्रीव अत्यन्त प्रसन्न हो गये । और उन्होंने विभीषण को लाकर राम के सामने खड़ा कर दिया ॥ १३ ॥ विभीषण ने भी राम को साष्टाङ्ग प्रणाम कर परम भक्ति से युक्त हो हर्ष से गद्गद वाणी द्वारा हाथ जोड़कर परम शान्त, प्रसन्नवदनारविन्द, विशालनेत्र, धनुषबाणधारी श्यामसुन्दर लक्ष्मण जो सहित भगवान् राम की स्तुति आरम्भ कर दी ॥ १४-१६ ॥

विभीषण उवाच

नमस्ते राम राजेन्द्र ! नमः सीतामनोरम ! ।
नमस्ते चण्डकोदण्ड ! नमस्ते भक्तवत्सल ! ॥ १७ ॥
नमोऽनन्ताय शान्ताय रामायाऽमिततेजसे ।
सुग्रीवमित्राय च ते रघूणां पतये नमः ॥ १८ ॥
जगदुत्पत्तिनाशानां कारणाय महात्मने ।
त्रैलोक्यगुरवेऽनादिगृहस्थाय नमो नमः ॥ १९ ॥
त्वमादिर्जगतां राम ! त्वमेव स्थितिकारणम् ।
त्वमन्ते निधनस्थानं स्वेच्छाचारस्त्वमेव हि ॥ २० ॥
चराऽचराणां भूतानां बहिरन्तश्च राघव ! ।
व्याप्य-व्यापकरूपेण भवान् भाति जगन्मयः ॥ २१ ॥
त्वन्मायया हृतज्ञाना नष्टात्मानो विचेतसः ।
गतागतं प्रपद्यन्ते पाप-पुण्यवशात् सदा ॥ २२ ॥
तावत् सत्यं जगद्भाति शुक्तिकारजतं यथा ।
यावन्न ज्ञायते ज्ञानं चेतसानन्यगामिना ॥ २३ ॥

---

विभीषण ने कहा—राजराजेश्वर राम तुम्हें नमस्कार है, सीता के मन में रमण करने वाले प्रभो ! आपको नमस्कार है, प्रचण्ड धनुष धारण करने वाले, आपको नमस्कार है ! भक्तवत्सल प्रभो ! आपको नमस्कार है ॥ १७ ॥ अनन्त, शान्त स्वरूप, अमित तेजस्वी, सुग्रीव के परमसखा तथा रघुकुल के नायक आपको नमस्कार है ॥ १८ ॥ इस जगत् की उत्पत्ति तथा नाश के कारणभूत आप महात्मा को नमस्कार है, त्रैलोक्य-गुरु एवं अनादि गृहस्थ स्वरूप आपको नमस्कार है ॥ १९ ॥ हे राम ! आप इस जगत् के आदि हैं, आप ही इसके स्थिति के कारण हैं तथा इस जगत् के लय स्थान भी आप हो हैं। एवं आप अपनी इच्छानुसार रमण करने वाले हैं ॥ २० ॥ हे राघव ! आप चराचर प्राणियों के भीतर तथा बाहर व्याप्य-व्यापक रूप से संसार रूप से ही भासित हो रहे हैं ॥ २१ ॥ आपकी माया ने जिनका विवेक नष्ट कर दिया है, ऐसे अज्ञानी मूर्ख पुरुष अपने पाप एवं पुण्य के प्रभाव से इस जगत् में बारम्बार आते और जाते रहते हैं ॥ २२ ॥ जब तक पुरुष एकाग्रचित्त से आपके ज्ञान स्वरूप

त्वदज्ञानात् सदा युक्ताः पुत्र-दार-गृहादिषु ।
रमन्ते विषयान् सर्वांनन्ते दुःखप्रदान् विभो ! ॥ २४ ॥
त्वमिन्द्रोऽग्निर्यमो रक्षो वरुणश्च तथाऽनिलः ।
कुबेरश्च तथा रुद्रस्त्वमेव पुरुषोत्तम ! ॥ २५ ॥
त्वमणोरप्यणीयांश्च स्थूलात् स्थूलतरः प्रभो ! ।
त्वं पिता सर्वलोकानां माता धाता त्वमेव हि ॥ २६ ॥
आदिमध्यान्तरहितः परिपूर्णोऽच्युतोऽव्ययः ।
त्वं पाणिपादरहितश्चक्षुः श्रोत्रविवर्जितः ॥ २७ ॥
श्रोता द्रष्टा ग्रहीता च जवनस्त्वं खरान्तक ! ।
कोशेभ्यो व्यतिरिक्तस्त्वं निर्गुणो निरुपाश्रयः ॥ २८ ॥
निर्विकल्पो निर्विकारो निराकारो निरीश्वरः ।
षड्भावरहितोऽनादिः पुरुषः प्रकृतेः परः ॥ २९ ॥

---

को नहीं जानता तब तक उसे यह संसार, शुक्ति में रजत भ्रम के समान, सत्य प्रतीत होता है ॥ २३ ॥ हे प्रभो ! आपको न जानने के कारण ही लोग पुत्र, स्त्री एवं गृहादि की आसक्ति में फँसकर परिणाम में दुःखदायी विषयों को ही सुख मानते हैं ॥ २४ ॥

हे पुरुषोत्तम ! तुम्हीं इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, अग्नि, कुबेर तथा रुद्र स्वरूप हो ॥२५॥ हे प्रभो ! आप अणु से भी अणुतम हैं तथा महान् से भी महत्तर हैं। आप ही समस्त जगत् के माता, पिता तथा धाता ( पोषण करने वाले ) हैं ॥२६॥ आप आदि, मध्य एवं अन्त से रहित हैं, परितः पूर्ण हैं, अच्युत एवं अव्यय हैं। आप पाणि-पाद-चक्षु तथा श्रोत्र से रहित हैं ॥२७॥ किन्तु हे खरान्तक ! आप सब कुछ देखने वाले, सब कुछ सुनने वाले तथा सब कुछ ग्रहण करने वाले एवं सब-कुछ जानने वाले हैं, आप अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय एवं आनन्दमय कोशों से रहित निर्गुण एवं निराश्रय हैं ॥ २८ ॥ आप निर्विकल्प, निर्विकार, निराकार तथा निरीश्वर हैं, आप उत्पत्ति, स्थित्यादि, छह भावों से रहित हैं तथा

**मायया गृह्यमाणस्त्वं मनुष्य इव भाव्यसे ।**
**ज्ञात्वा त्वां निर्गुणमजं वैष्णवा मोक्षगामिनः ॥ ३० ॥**

**अहं त्वत्पादसद्भक्तिनिःश्रेणीं प्राप्य राघव ! ।**
**इच्छामि ज्ञानयोगाख्यं सौधमारोढुमीश्वर ! ॥ ३१ ॥**

**नमः सीतापते ! राम नमः कारुणिकोत्तम ! ।**
**रावणारे ! नमस्तुभ्यं त्राहि मां भवसागरात् ॥ ३२ ॥**

**ततः प्रसन्नः प्रोवाच श्रीरामो भक्तवत्सलः ।**
**वरं वृणीष्व भद्रं ते वाञ्छितं वरदोऽस्म्यहम् ॥ ३३ ॥**

विभीषण उवाच

**धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि कृतकार्योऽस्मि राघव ! ।**
**त्वत्पाददर्शनादेव विमुक्तोऽस्मि न संशयः ॥ ३४ ॥**

**नास्ति मत्सदृशो धन्यो नास्ति मत्सदृशः शुचिः ।**
**नास्ति मत्सदृशो लोके राम ! त्वन्मूर्तिदर्शनात् ॥ ३५ ॥**

---

प्रकृति से परे अनादि पुरुष हैं ॥ २९ ॥ आप माया के वशीभूत होने के कारण मनुष्य-जैसा प्रतीत होते हैं। वैष्णव लोग आपको निर्गुण तथा अजन्मा समझकर मुक्त हो जाते हैं ॥ ३० ॥

हे राघव ! हे प्रभो ! मैं आपके चरण-कमलों की भक्ति रूपी सीढ़ी प्राप्त कर ज्ञान योग रूपी महाप्रासाद के ऊपर चढ़ना चाहता हूँ ॥ ३१ ॥ हे सीतापते राम ! आपको नमस्कार है, हे कारुणिकोत्तम ! आपको नमस्कार है, हे रावणारे ! आपको नमस्कार है। आप इस संसार-सागर से मेरी रक्षा करें ॥ ३२ ॥

विभीषण के द्वारा की गयी इस प्रकार स्तुति सुनकर भक्तवत्सल राम प्रसन्न होकर बोले—विभीषण ! तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुम्हें वर देना चाहता हूँ। अतः तुम्हारी जो इच्छा हो वह वर मुझसे माँग लो ॥३३॥ तब विभीषण ने कहा—हे राघव ! मैं आपके चरणों का दर्शन पाकर धन्य एवं कृतकृत्य हो गया। मेरा सब काम पूर्ण हो गया। अब मैं निःसन्देह मुक्त हो जाऊँगा ॥३४॥ हे राम ! आज मेरे समान न तो कोई धन्य है और न

कर्मबन्धविनाशाय त्वज्ज्ञानं भक्तिलक्षणम् ।
त्वद्ध्यानं परमार्थं च देहि मे रघुनन्दन ! ॥ ३६ ॥

न याचे राम राजेन्द्र ! सुखं विषयसम्भवम् ।
त्वत्पादकमले सक्ता भक्तिरेव सदाऽस्तु मे ॥ ३७ ॥

ओमित्युक्त्वा पुनः प्रीतो रामः प्रोवाच राक्षसम् ।
शृणु वक्ष्यामि ते भद्र ! रहस्यं मम निश्चितम् ॥ ३८ ॥

मद्भक्तानां प्रशान्तानां योगिनां वीतरागिणाम् ।
हृदये सीतया नित्यं वसाम्यत्र न संशयः ॥ ३९ ॥

तस्मात्त्वं सर्वदा शान्तः सर्वकल्मषवर्जितः ।
मां ध्यात्वा मोक्ष्यसे नित्यं घोर-संसार-सागरात् ॥ ४० ॥

स्तोत्रमेतत् पठेद्यस्तु लिखेद्यः शृणुयादपि ।
मत्प्रीतये ममाऽभीष्टं सारूप्यं समवाप्नुयात् ॥ ४१ ॥

---

तो कोई पवित्र ही है। और मेरी समानता करने वाला भी कोई नहीं है। क्योंकि, मैंने आपका दर्शन प्राप्त कर लिया ॥ ३५ ॥ हे रघुनन्दन ! अब आप मुझे कर्मरूपी ग्रन्थि को नष्ट करने के लिये भक्ति से प्राप्त होने वाला ज्ञान तथा परमार्थ का साक्षात् कराने वाला अपना ध्यान दीजिए ॥ ३६ ॥ हे राजराजेश्वर ! अब मैं आपसे विषयजन्य सुख नहीं माँगता, किन्तु आपके चरण-कमलों में निरन्तर निवास करने वाली भक्ति ही चाहता हूँ ॥ ३७ ॥

तब रामचन्द्र जी ने प्रसन्न होकर 'तथास्तु' कहा। पुनः विभीषण से वे इस प्रकार कहने लगे—हे भद्र ! सुनो, मैं अपना निश्चित रहस्य तुमसे कहता हूँ ॥ ३८ ॥ मैं सीता के सहित, प्रशान्त स्वभाव, योगनिष्ठ एवं विरक्त अपने भक्तों के हृदय में निवास करता हूँ। इसमें सन्देह नहीं ॥ ३९ ॥ इसलिए तुम सर्वदा शान्त एवं निष्पाप होकर मेरा ध्यान करो। ऐसा करने से घोर संसार-सागर से पार हो जाओगे ॥ ४० ॥ जो लोग मुझे प्रसन्न करने के लिए तुम्हारे द्वारा किये गये इस स्तोत्र का पाठ करेंगे, लिखेंगे अथवा श्रवण करेंगे वे मेरा अभीष्ट सारूप्य पद प्राप्त करेंगे ॥४१॥

इत्युक्त्वा लक्ष्मणं प्राह श्रीरामो भक्तभक्तिमान् ।
पश्यत्विदानीमेवैष मम सन्दर्शने फलम् ॥ ४२ ॥
लङ्काराज्येऽभिषेक्ष्यामि जलमानय सागरात् ।
यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावत्तिष्ठति मेदिनी ॥ ४३ ॥
यावन्मम कथा लोके तावद्राज्यं करोत्वसौ ।
इत्युक्त्वा लक्ष्मणेनाम्बु ह्यानाय्य कलशेन तम् ॥ ४४ ॥
लङ्काराज्याधिपत्यार्थमभिषेकं रमापतिः ।
कारयामास सचिवैर्लक्ष्मणेन विशेषतः ॥ ४५ ॥
साधु साध्विति ते सर्वे वानरास्तुष्टुवुर्भृशम् ।
सुग्रीवोऽपि परिष्वज्य विभीषणमथाब्रवीत् ॥ ४६ ॥
विभीषण ! वयं सर्वे रामस्य परमात्मनः ।
किङ्करास्तत्र मुख्यस्त्वं भक्त्या रामपरिग्रहात् ।
रावणस्य विनाशे त्वं साहाय्यं कर्तुमर्हसि ॥ ४७ ॥

---

भक्तों को भक्ति करने वाले श्री राम ने विभीषण से ऐसा कहा। तदनन्तर वे लक्ष्मण जी से बोले–हे लक्ष्मण ! यह अभी मेरे दर्शन का फल प्राप्त करे ॥ ४२ ॥ तुम समुद्र से जल लाओ, मैं अभी लङ्का के राज्य पर इसका अभिषेक करूँगा । जब तक सूर्य, चन्द्रमा एवं पृथ्वी की स्थिति है ॥ ४३ ॥ और जब तक लोक में मेरी कथा रहेगी, तब तक यह लङ्का का राज्य करेगा । ऐसा कहकर श्री राम ने लक्ष्मण द्वारा समुद्र का जल कलश में मँगवाया ॥ ४४ ॥ फिर रमापति राम ने मन्त्रियों एवं विशेष कर लक्ष्मण जी के साथ लङ्का के राज्य का स्वामी बनाने के लिये उसका अभिषेक किया ॥ ४५ ॥

इधर सभी वानर भी प्रसन्न मन से 'धन्य हैं धन्य हैं' ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्र जी की स्तुति करने लगे । तथा सुग्रीव ने विभीषण को गले लगा कर कहा–॥४६॥ हे विभीषण ! ऐसे तो हम सभी परमात्मा राम के दास होने से समान हैं किन्तु तुम सबसे श्रेष्ठ हो, क्योंकि तुमने केवल भक्ति से राम की शरण पकड़ी है । अच्छा, अब तुम्हें रावण के वध में हम लोगों की सहायता करनी चाहिए ॥ ४७ ॥

विभीषण उवाच

अहं क्रियान् सहायत्वे रामस्य परमात्मनः ।
किं तु दास्यं करिष्येऽहं भक्त्या शक्त्या ह्यमायया ॥ ४८ ॥
दशग्रीवेण सन्दिष्टः शुको नाम महासुरः ।
संस्थितो ह्यम्बरे वाक्यं सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ ४९ ॥
त्वामाह रावणो राजा भ्रातरं राक्षसाधिप ! ।
महाकुलप्रसूतस्त्वं राजासि वनचारिणाम् ॥ ५० ॥
मम भ्रातृसमानस्त्वं तव नास्त्यर्थविप्लवः ।
अहं यदि हरं भार्यां राजपुत्रस्य किं तव ॥ ५१ ॥
किष्किन्धां याहि हरिभिर्लङ्का शक्या न दैवतैः ।
प्राप्तुं किं मानवैरल्पसत्त्वैर्वानरयूथपैः ॥ ५२ ॥
तं प्रापयन्तं वचनं तूर्णमुत्प्लुत्य वानराः ।
प्रापद्यन्त तदा क्षिप्रं निहन्तुं दृढमुष्टिभिः ॥ ५३ ॥

---

तब विभीषण ने कहा—सर्व-समर्थ परमात्मा राम की मैं कौन सी सहायता करने योग्य हूँ किन्तु निष्कपट रूप से भक्ति और शक्ति पूर्वक इनकी सेवा मैं अवश्य करूँगा ॥ ४८ ॥ इसी समय रावण का भेजा हुआ शुक नामक राक्षस आकाश में स्थित होकर सुग्रीव से रावण का सन्देश इस प्रकार कहने लगा——॥ ४९ ॥

हे सुग्रीव ! राक्षसराज रावण ने तुम्हें अपना भाई समझ कर कहा है कि तुम उत्तम कुल में उत्पन्न हुए हो और वानरों के राजा हो ॥ ५० ॥ तुम मेरे भाई के समान हो, मैंने तुम्हारे किसी स्वार्थ की हानि भी नहीं पहुँचायी है। यदि मैंने किसी राजपुत्र की भार्या का अपहरण कर लिया है, तो तुम्हारा उससे क्या नुकसान है ॥ ५१ ॥ अतः अच्छा यही होगा कि तुम वानरों के साथ किष्किन्धा लौट जाओ। इस लङ्का को देवता भी जीत नहीं सकते। फिर अल्प शक्ति-सम्पन्न मनुष्य और वानर यूथपों की बात ही क्या है ॥ ५२ ॥

शुक इस प्रकार सन्देश सुना ही रहा था कि वानरों ने अपने सुदृढ़ मुक्कों से उसे मारने के लिये आकाश में उछल कर उसे पकड़ लिया ॥ ५३ ॥

वानरैर्हन्यमानस्तु शुको राममथाब्रवीत् ।
न दूतान् घ्नन्ति राजेन्द्र ! वानरान् वारय प्रभो ! ॥ ५४ ॥
रामः श्रुत्वा तदा वाक्यं शुकस्य परिदेवितम् ।
मा वधिष्टेति रामस्तान् वारयामास वानरान् ॥ ५५ ॥
पुनरम्बरमासाद्य शुकः सुग्रीवमब्रवीत् ।
ब्रूहि राजन् ! दशग्रीवं किं वक्ष्यामि व्रजाम्यहम् ॥ ५६ ॥

विभीषण उवाच

यथा वाली मम भ्राता तथा त्वं राक्षसाधम !
हन्तव्यस्त्वं मया यत्नात् सपुत्रबलवाहनः ॥ ५७ ॥
ब्रूहि मे रामचन्द्रस्य भार्यां हृत्वा क्व यास्यसि ? ।
ततो रामाज्ञया धृत्वा शुकं बद्ध्वाऽन्वरक्षयत् ॥ ५८ ॥
शार्दूलोऽपि ततः पूर्वं दृष्ट्वा कपिबलं महत् ।
यथावत् कथयामास रावणाय स राक्षसः ॥ ५९ ॥

---

वानरों के द्वारा इस प्रकार मारे जाने पर शुक रामचन्द्र जी की दुहाई देता हुआ बोला—हे राजराजेश्वर ! विद्वान् लोग दूतों को नहीं मारा करते । अतः हे प्रभो ! आप इन वानरों को रोकिए ॥ ५४ ॥

शुक के द्वारा करुणापूर्वक कहे गये वचन को सुनकर श्री रामचन्द्र जी ने 'इसे मत मारो' ऐसा कहकर वानरों को रोक दिया ॥ ५५ ॥ फिर शुक आकाश में उड़कर सुग्रीव से बोला—हे राजन् ! मैं अब जा रहा हूँ। तुम बताओ कि मैं रावण को क्या उत्तर दूँगा॥ ५६ ॥

तब सुग्रीव ने कहा—राक्षसराज रावण से जाकर कहना कि जिस प्रकार मेरा भाई बाली शत्रु होने के कारण मारा गया, उसी प्रकार तुम भी शत्रु होने के कारण पुत्र, सेना एवं वाहन सहित मेरे प्रयत्न से मारे जाओगे ॥ ५७ ॥ और उससे यह भी कहना कि तुम रामचन्द्र जी की भार्या का हरण कर कहाँ भाग सकोगे । पुनः राम की आज्ञा से उसे बाँध-कर वानरों की रक्षा में छोड़ दिया ॥ ५८ ॥ इससे पहले शार्दूल नामक राक्षस ने वानरों की बहुत बड़ी सेना देखकर रावण से उसका यथावत्

दीर्घचिन्तापरो भूत्वा निःश्वसन्नास मन्दिरे ।
ततः समुद्रमावेक्ष्य रामो रक्तान्तलोचनः ।। ६० ।।
पश्य लक्ष्मण ! दुष्टोऽसौ वारिधिर्मामुपागतम् ।
नाभिनन्दति दुष्टात्मा दर्शनार्थं ममानघ ! ।। ६१ ।।
जानाति मानुषोऽयं मे किं करिष्यति वानरैः ।
अद्य पश्य महाबाहो ! शोषयिष्यामि वारिधिम् ।। ६२ ।।
पादेनैव गमिष्यन्ति वानरा विगतज्वराः ।
इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्ष आरोपितधनुर्धरः ।। ६३ ।।
तूणीराद् बाणमादाय कालाग्निसदृशप्रभम् ।
सन्धाय चापमाकृष्य रामो वाक्यमथाब्रवीत् ।। ६४ ।।
पश्यन्तु सर्वभूतानि रामस्य शरविक्रमम् ।
इदानीं भस्मसात् कुर्यां समुद्रं सरितां पतिम् ।। ६५ ।।

---

बर्णन कर दिया था ।। ५९ ।। जिसे सुनकर रावण चिन्ता में निमग्न हो गया और अपने महल में दीर्घ निःश्वास छोड़ता हुआ चुपचाप नीचे मुख किये बैठ गया । इसी समय भगवान् राम ने भी समुद्र की ओर देखकर क्रोध से आँखें लाल-लाल कर कहा—।। ६० ।।

हे लक्ष्मण ! देखो, यह समुद्र कितना दुष्ट है कि मैं इसके तट पर आया हुआ हूँ । किन्तु यह दर्शन मात्र से भी मेरा सत्कार नहीं करना चाहता ।। ६१ ।। यह समझ रहा है कि राम एक मनुष्य ही तो हैं, यह इन वानरों के साथ मिलकर भी हमारा क्या कर सकता है । अतः हे महाबाहो ! तुम देखो, मैं इसे अभी सुखा देता हूँ ।। ६२ ।। अब वानर निश्चिन्त होकर पैदल ही इसके पार हो जायेंगे । ऐसा कहकर उन्होंने क्रोध से आँखें लाल-लालकर अपना धनुष चढ़ाया । और तरकस से कालाग्नि के समान जलते हुए बाण को निकालकर उसे धनुष पर रख कर खींचते हुए कहा—।। ६३—६४ ।। समस्त प्राणी राम के बाण का पराक्रम देखें । मैं इस नदीपति समुद्र को अभी भस्म किये देता हूँ ।। ६५ ।।

एवं ब्रुवति रामे तु सशैलवनकानना ।
चचाल वसुधा द्यौश्च दिशश्च तमसावृताः ॥ ६६ ॥
चुक्षुभे सागरो वेलां भयाद्योजनमत्यगात् ।
तिमि-नक्र-झषा मीनाः प्रतप्ताः परितत्रसुः ॥ ६७ ॥
एतस्मिन्नन्तरे साक्षात् सागरो दिव्यरूपधृक् ।
दिव्याभरणसम्पन्नः स्वभासा भासयन् दिशः ॥ ६८ ॥
स्वान्तःस्थदिव्यरत्नानि कराभ्यां परिगृह्य सः ।
पादयोः पुरतः क्षिप्त्वा रामस्योपायनं बहु ॥ ६९ ॥
दण्डवत् प्रणिपत्याह रामं रक्तान्तलोचनम् ।
त्राहि त्राहि जगन्नाथ राम ! त्रैलोक्यरक्षक ! ॥७०॥
जडोऽहं राम ! ते सृष्टः सृजता निखिलं जगत् ।
स्वभावमन्यथा कर्तुं कः शक्तो देवनिर्मितम् ॥ ७१ ॥
स्थूलानि पञ्चभूतानि जडान्येव स्वभावतः ।
सृष्टानि भवतैतानि त्वदाज्ञां लङ्घयन्ति न ॥ ७२ ॥

---

राम के ऐसा कहते ही पर्वत और वनों समेत सारी पृथ्वी हिलने लगी। एवं आकाश तथा दिशाओं में अन्धकार छा गया ॥ ६६ ॥ समुद्र क्षुब्ध हो गया, वह भय से संत्रस्त होकर अपने तट से एक योजन आगे बढ़ आया। और उसमें रहने वाले अनेक जल-जन्तु, तिमि, नक्र, मकर एवं मछलियाँ सन्तप्त होकर भयभीत हो गयीं ॥ ६७ ॥

उसी समय समुद्र दिव्य आभूषण पहने हुए दिव्यमूर्ति से अपने भीतर के रहने वाले दिव्य रत्नों को दोनों हाथों में लिये हुए श्री राम के समीप उपस्थित हुआ। और उनके चरणों के सामने अनेक प्रकार की भेंट सामग्री रखकर दण्डवत् प्रणाम कर क्रोध से लाल नेत्र किये हुए श्री रामचन्द्र जी से बोला—हे त्रैलोक्यरक्षक जगन्नाथ राम ! हमारी रक्षा करो ॥६८–७०॥ हे प्रभो ! आपने सारे ब्रह्माण्ड की रचना करते समय हमको जड़ ही बनाया था। फिर देव-निर्मित स्वभाव को कोई किस प्रकार बदल सकता है ॥ ७१ ॥ हे प्रभो ! आपने पञ्चभूतों को स्वभाव से जड़

तामसादहमो राम! भूतानि प्रभवन्ति हि।
कारणानुगमशेषां जडत्वं तामसं स्वतः ॥ ७३ ॥
निर्गुणस्त्वं निराकारो यदा मायागुणान् प्रभो!।
लीलयाऽङ्गीकरोषि त्वं तदा वैराजनामवान् ॥ ७४ ॥
गणात्मनो विराजश्च सत्त्वाद् देवा बभूविरे।
रजोगुणात् प्रजेशाद्या मन्योर्भूतपतिस्तव ॥ ७५ ॥
त्वामहं मायया छन्नं लीलया मानुषाकृतिम् ॥ ७६ ॥
जडबुद्धिर्जडो मूर्खः कथं जानामि निर्गुणम्।
दण्ड एव हि मूर्खाणां सन्मार्गप्रापकः प्रभो! ॥ ७७ ॥
भूतानाममरश्रेष्ठ! पशूनां लगुडो यथा।
शरणं ते व्रजामीश! शरण्यं भक्तवत्सल!।
अभयं देहि मे राम! लङ्कामार्गं ददामि ते ॥ ७८ ॥

---

ही बनाया है। इसीलिए वे लोग आप की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकते ॥ ७२ ॥ हे राम! ये पञ्च महाभूत, तामस, अहङ्कार से उत्पन्न हुए हैं, अतः कारणगत गुणधर्म कार्य में आने के कारण इन भूतों में भी तमो रूप जडत्व स्वयं सिद्ध है ॥ ७३ ॥ हे प्रभो! जब निर्गुण एवं निराकार स्वरूप आप माया के गुणों को अङ्गीकार करते हैं, तो आप 'वैराज' नाम से कहे जाते हैं ॥ ७४ ॥ फिर उस गुणमय विराट् के सात्त्विक अंश से देवताओं की उत्पत्ति होती है। और उसके रजोगुण से प्रजापतिगुणों की तथा तामसांश से रुद्रकी उत्पत्ति होती है ॥ ७५ ॥

हे नाथ! लीलावश माया से आच्छन्न, मनुष्य रूप धारण किये हुए आप निर्गुण परमात्मा को मैं जड़बुद्धि जड़मूर्ख किस प्रकार जान सकता हूँ। हे प्रभो! मूर्ख जीवों को तो दण्ड ही उत्तम मार्ग पर लाने वाला होता है ॥ ७६-७७ ॥ जिस प्रकार पशुओं को लाठी ठीक-ठीक मार्ग पर चलाती है। हे भक्तवत्सल, हे ईश, हे राम! मैं आप की शरण हूँ। मुझे आप अभय दान दीजिए, मैं आपको लङ्का जाने के लिए मार्ग दूँगा ॥७८॥

श्रीराम उवाच

अमोघोऽयं महाबाणः कस्मिन् देशे निपात्यताम् ।
लक्ष्यं दर्शय मे शीघ्रं बाणस्यामोघपातिनः ॥ ७९ ॥
रामस्य वचनं श्रुत्वा करे दृष्ट्वा महाशरम् ।
महोदधिर्महातेजा राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥ ८० ॥
रामोत्तरप्रदेशे तु द्रुमकुल्य इति श्रुतः ।
प्रदेशस्तत्र बहवः पापात्मानो दिवानिशम् ॥ ८१ ॥
बाधन्ते मां रघुश्रेष्ठ ! तत्र ते पात्यतां शरः ।
रामेण सृष्टो बाणस्तु क्षणादाभीरमण्डलम् ॥ ८२ ॥
हत्वा पुनः समागत्य तूणीरे पूर्ववत् स्थितः ।
ततोऽब्रवीद्रघुश्रेष्ठं सागरो विनयान्वितः ॥ ८३ ॥
नलः सेतुं करोत्वस्मिन् जले मे विश्वकर्मणः ।
सुतो धीमान् समर्थोऽस्मिन् कार्ये लब्धवरो हरिः ॥ ८४ ॥

---

तब श्री राम ने कहा—मेरा यह बाण कभी व्यर्थ नहीं जाता। इस अमोघ बाण को छोड़ने के लिए मुझे शीघ्र कोई लक्ष्य बताओ, जहाँ इसे चलावें ॥ ७९ ॥

राम की बात सुनकर एवं उनके हाथ में उस महाबाण को देखकर महा तेजस्वी समुद्र रघुनाथ जो से बोला—॥ ८० ॥ हे राम ! मेरे उत्तर तट पर 'द्रुमकुल्य' नामक एक स्थान है। उस प्रदेश में बहुत से पापी निवास करते हैं, जो मुझे दिन-रात पीडित करते रहते हैं। हे रघुश्रेष्ठ ! आप अपना बाण उनके लिए उधर ही छोड़िए। इस प्रकार राम के द्वारा छोड़ा हुआ वह बाण क्षण भर में उन आभीर मण्डलों का वध कर पुनः तरकस में पूर्ववत् लौट आया। तब समुद्र ने बड़े विनय से श्री राम से कहा—॥ ८१–८३ ॥

हे नाथ ! विश्वकर्मा का महाबुद्धिमान् पुत्र नल मेरे इस जल पर पुलका निर्माण करें। वह वानर वर के प्रभाव से इस कार्य को करने में

कीर्तिं जानन्तु ते लोकाः सर्वलोकमलापहाम् ।
इत्युक्त्वा राघवं नत्वा ययौ सिन्धुरदृश्यताम् ॥ ८५ ॥
ततो रामस्तु सुग्रीवलक्ष्मणाभ्यां समन्वितः ।
नलमाज्ञापयच्छीघ्रं वानरैः सेतुबन्धने ॥ ८६ ॥
ततोऽतिहृष्टः प्लवगेन्द्रयूथपैर्महानगेन्द्रप्रतिमैर्युतो नलः ।
बबन्ध सेतुं शतयोजनायतं सुविस्तृतं पर्वतपादपैर्दृढम् ॥ ८७ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
सुन्दरकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

□

## चतुर्थः सर्गः

( समुद्र-तरण, लङ्का-निरीक्षण तथा रावण-शुक-संवाद )

श्रीमहादेव उवाच

सेतुमारभमाणस्तु तत्र रामेश्वरं शिवम् ।
संस्थाप्य पूजयित्वाऽऽह रामो लोकहिताय च ॥ १ ॥

---

सर्वथा समर्थ हैं ॥ ८४ ॥ इस कार्य से सभी लोग आप की संसार मलापहारिणी कीर्त्ति जान जायेंगे । समुद्र श्री राम से ऐसा कह उन्हें प्रणाम कर अन्तर्धान हो गया ॥ ८५ ॥

पुनः लक्ष्मण एवं सुग्रीव सहित श्री राम ने नल को वानरों की सहायता से पुल बाँधने के लिए शीघ्रता से आदेश दिया ॥८६॥ तदनन्तर नल ने प्रसन्नता पूर्वक, हाथी के समान ऊँचे डीलडौल वाले यूथपति वानरों की सहायता से पर्वत एवं वृक्षों के द्वारा एक सौ योजन लम्बा महाविस्तृत एवं सुदृढ़ पुल बनाया ॥ ८७ ॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दीव्याख्या विभूषित अध्यात्म-रामायण के उमा-महेश्वर-संवाद में युद्धकाण्ड का तृतीय सर्ग समाप्त ॥ ४ ॥

□

श्रीमहादेव जी ने कहा—हे पार्वती ! श्रीरामचन्द्र जी ने सेतु के

प्रणमेत् सेतुबन्धं यो दृष्ट्वा रामेश्वरं शिवम् ।
ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते मदनुग्रहात् ॥ २ ॥
सेतुबन्धे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा रामेश्वरं हरम् ।
सङ्कल्पनियतो भूत्वा गत्वा वाराणसीं नरः ॥ ३ ॥
आनीय गङ्गासलिलं रामेशमभिषिच्य च ।
समुद्रे क्षिप्ततद्भारो ब्रह्म प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ ४ ॥
कृतानि प्रथमेनाह्ना योजनानि चतुर्दश ।
द्वितीयेन तथा चाह्ना योजनानि तु विंशतिः ॥ ५ ॥
तृतीयेन तथा चाह्ना योजनान्येकविंशतिः ।
चतुर्थेन तथा चाह्ना द्वाविंशतिरिति श्रुतम् ॥ ६ ॥
पञ्चमेन त्रयोविंशद्योजनानि समन्ततः ।
बबन्ध सागरे सेतुं नलो वानरसत्तमः ॥ ७ ॥
तेनैव जग्मुः कपयो योजनानां शतं द्रुतम् ।
असङ्ख्याताः सुबेलाद्रिं रुरुधुः प्लवगोत्तमाः ॥ ८ ॥

---

निर्माण के प्रारम्भ में वहाँ पर सर्वप्रथम रामेश्वर महादेव को स्थापित किया और उनकी स-विधि पूजा कर लोकहित के लिए इस प्रकार बोले--॥१॥

जो लोग इन रामेश्वर का दर्शन करेंगे तथा इनको प्रणाम करेंगे वे मेरे अनुग्रह से ब्रह्महत्या-जैसे महापापों से छुटकारा पा जायेंगे ॥ २ ॥ जो लोग सेतुबन्ध में स्नान कर रामेश्वर शिव का दर्शन करेंगे। फिर संकल्प पूवक नियम धारण कर वाराणसी जा कर वहाँ से गङ्गाजल लाकर उस जल से रामेश्वर महादेव का अभिषेक करेंगे। एवं उस अभिषिक्त जल को समुद्र में डाल देंगे। वे उस पुण्य के प्रभाव से निश्चित ही ब्रह्म को प्राप्त कर लेंगे ॥ ३-४ ॥ वानरश्रेष्ठ नल ने प्रथम दिन चौदह योजन, दूसरे दिन बीस योजन पुलका निर्माण किया ॥ ५ ॥ तीसरे दिन इक्कीस योजन, चौथे दिन बाइस योजन पुलका निर्माण किया, ऐसा सुना जाता है ॥ ६ ॥ पाँचवें दिन तेइस योजन पुलका निर्माण कर समस्त समुद्र पर पुलके निर्माण कार्य को पूरा किया ॥ ७ ॥ फिर उसी पुल से सभी वानर

आरुह्य मारुतिं रामो लक्ष्मणोऽप्यङ्गदं तथा।
दिदृक्षू राघवो लङ्कामारुरोहाचलं महत् ॥ ९ ॥

दृष्ट्वा लङ्कां सुविस्तीर्णां नानाचित्रध्वजाकुलाम्।
चित्रप्रसादसम्बाधां स्वर्णप्राकारतोरणाम् ॥ १० ॥
परिखाभिः शतघ्नीभिः सङ्क्रमैश्च विराजिताम्।
प्रासादोपरि विस्तीर्णप्रदेशे दशकन्धरः ॥ ११ ॥
मन्त्रिभिः सहितो वीरैः किरीट-दशकोज्ज्वलः।
नीलाद्रिशिखराकारः कालमेघसमप्रभः ॥ १२ ॥
रत्नदण्डैः सितच्छत्रैरनेकैः परिशोभितः।
एतस्मिन्नन्तरे बद्धो मुक्तो रामेण वै शुकः ॥ १३ ॥
वानरैस्ताडितः सम्यग् दशाननमुपागतः।
प्रहसन् रावणः प्राह पीडितः किं परैः शुक ! ॥ १४ ॥

---

सौ योजन समुद्र पार कर गये। और असंख्य वानरों ने सुबेल पहाड़ को चारों ओर से घेर लिया ॥ ८ ॥ लङ्का को देखने की इच्छा से श्री राम हनुमान् के कन्धे पर एवं लक्ष्मण अङ्गद के कन्धे पर बैठकर उस महान् पर्वत पर चढ़ गये ॥ ९ ॥

उन्होंने देखा कि लङ्कापुरी अत्यन्त विस्तृत है, अनेक प्रकार के विचित्र-ध्वजाओं, प्रासादों एवं सुवर्ण के प्राकारों तथा सुवर्ण के तोरणों से सुशोभित है ॥ १० ॥ वह लङ्कापुरी खाइयों, तोपों एवं सुरंगों से सुसज्जित है। वहाँ पर एक राज-भवन के ऊपर अत्यन्त विस्तृत भूप्रदेश में अपने मन्त्रियों सहित रावण अपने शिरों पर दश मुकुट धारण किये हुए बैठा है। वह नीलाचल पर्वत के समान आकार वाला है। एवं उसके शरीर की आभा काले मेघ के समान दिखाई पड़ रही है ॥ ११–१२ ॥ वह अनेक रत्न दण्डों से युक्त श्वेत छत्रों से सुशोभित हो रहा है। इसी बीच सुग्रीव के द्वारा बाँधा गया, किन्तु राम की आज्ञा से छोड़ा गया वह शुक, जिसे वानरों ने बहुत मार मारा था, रावण के पास पहुँचा। उसे देखते ही रावण ने हँसते हुए उससे पूछा—हे शुक ! क्या तुम्हें शत्रुओं ने कुछ कष्ट दिया है ॥ १३–१४ ॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा शुको वचनमब्रवीत् ।
सागरस्योत्तरे तीरेऽब्रवं ते वचनं यथा ।
तत उत्प्लुत्य कपयो गृहीत्वा मां क्षणात्ततः ॥ १५ ॥

मुष्टिभिर्नखदन्तैश्च हन्तुं लोप्तुं प्रचक्रमुः ।
ततो मां राम ! रक्षेति क्रोशन्तं रघुपुङ्गवः ॥ १६ ॥

विसृज्यतामिति प्राह विसृष्टोऽहं कपीश्वरैः ।
ततोऽहमागतो भीत्या दृष्ट्वा तद् वानरं बलम् ॥ १७ ॥

राक्षसानां बलौघस्य वानरेन्द्रबलस्य च ।
नैतयोर्विद्यते सन्धिर्देवदानवयोरिव ॥ १८ ॥

पुरप्राकारमायान्ति क्षिप्रमेकतरं कुरु ।
सीतां वाऽस्मै प्रयच्छाशु युद्धं वा दीयतां प्रभो ! ॥ १९ ॥

मामाह रामस्त्वं ब्रूहि रावणं मद्वचः शुक ! ।
यद्बलं च समाश्रित्य सीतां मे हृतवानसि ॥ २० ॥

---

रावण की बात सुन कर शुक ने कहा—सागर के उत्तरी तट पर जाकर ज्यों ही मैं आपका सन्देश सुनाने लगा । उसी क्षण वानरों ने उछल कर हमें पकड़ लिया ॥ १५ ॥ और मुक्के, नख एवं दाँतों से मुझे मारने तथा लोप करने का प्रयत्न करने लगे । तदनन्तर मैं बड़े जोर से 'हे राम ! मेरी रक्षा करो' ऐसा कह कर पुकारने लगा ॥१६॥ तब रामचन्द्र ने मेरे ऊपर दया करते हुए कहा कि, 'इसे मत मारो छोड़ दो' इससे उन वानरों ने मुझे छोड़ दिया । तदनन्तर मैं वानरों की उस बड़ी सेना को देख कर भय से सन्त्रस्त हो यहाँ आया हूँ ॥१७॥ मेरे विचार से राक्षसों की सेना तथा वानरों की सेना में उसी प्रकार मेल असम्भव है जिस प्रकार देवता तथा दानवों का मेल असम्भव है ॥१८॥ वह वानरी सेना आप के परकोटेपर अब आने वाली है, अतः आप शीघ्रता से दो में एक कार्य अवश्य कीजिए या तो सीता राम को दे दीजिए या उनसे युद्ध कोजिए ॥१९॥ और राम ने मुझ से कहा कि, हे शुक ! तुम जाकर मेरी ओर से रावण से कहना कि जिस बल का भरोसा रख कर तुमने मेरी जानकी को अपहरण

तद्दर्शय यथाकामं स-सैन्यः सहबान्धवः ।
श्वःकाले नगरीं लङ्कां सप्रकारां सतोरणाम् ॥ २१ ॥
राक्षसं च बलं पश्य शरैर्विध्वंसितं मया ।
घोररोषमहं मोक्ष्ये बलं धारय रावण ! ॥ २२ ॥
इत्युक्त्वोपरराताथ रामः कमललोचनः ।
एकस्थानगता यत्र चत्वारः पुरुषर्षभाः ॥ २३ ॥
श्रीरामो लक्ष्मणश्चैव सुग्रीवश्च विभीषणः ।
एत एव समर्थास्ते लङ्कां नाशयितुं प्रभो ! ॥ २४ ॥
उत्पाटय भस्मीकरणे सर्वे तिष्ठन्तु वानराः ।
तस्य यादृग् बलं दृष्टं रूपं प्रहरणानि च ॥ २५ ॥
वधिष्यति पुरं सर्वमेकस्तिष्ठन्तु ते त्रयः ।
पश्य वानरसेनां तामसङ्ख्यातां प्रपूरिताम् ॥ २६ ॥

---

किया है ॥ २० ॥ अब तुम अच्छी प्रकार अपनी सेना तथा बन्धु वर्गों के साथ उस बल को मुझे दिखलाना । तू कल ही प्राकार एवं तोरण सहित समस्त लङ्का को एवं समस्त राक्षसी-सेना को मेरे बाणों से विध्वस्त हुई देखोगे ॥ २१ ॥ हे रावण ! जिस समय मैं अपना घनघोर रोष प्रगट करूँगा, उस समय तुम अपने पराक्रम को स्थिर रखना ॥ २२ ॥ कमलनेत्र श्री राम इतना कहकर चुप हो गये । हे प्रभो ! जिस एक स्थान पर श्रीराम, लक्ष्मण, सुग्रीव एवं विभीषण मिले हों तो वे ही चारों श्रेष्ठ पुरुष लङ्का को उखाड़ कर भस्म एवं नष्ट करने में समर्थ हैं । और वानरों की तो बात ही दूर रही । मैंने केवल राम के जिस प्रकार बल, रूप एवं अस्त्र-शस्त्र देखे हैं उससे तो यही जान पड़ता है कि वे अकेले ही लङ्का को नष्ट करने में समर्थ हैं । उन तीनों, लक्ष्मण, सुग्रीव तथा विभीषण की बात दूर है । अब हे रावण ! वानरों की असंख्य सेना, जिससे लङ्का भर गयी है, उसे देखो ॥ २३–२६ ॥

गर्जन्ति वानरास्तत्र पश्य पर्वतसन्निभाः ।
न शक्यास्ते गणयितुं प्राधान्येन ब्रवीमि ते ॥ २७ ॥
एष योऽभिमुखो लङ्कां नर्दंस्तिष्ठति वानरः ।
यूथपानां सहस्राणां शतेन परिवारितः ॥ २८ ॥
सुग्रीवसेनाधिपतिर्नीलो नामाग्निनन्दनः ।
एष पर्वतशृङ्गाभः पद्मकिञ्जल्कसन्निभः ॥ २९ ॥
स्फोटयत्यभिसंरब्धो लाङ्गूलं च पुनः पुनः ।
युवराजोऽङ्गदो नाम वालिपुत्रोऽतिवीर्यवान् ॥ ३० ॥
येन दृष्टा जनकजा रामस्याऽतीव-वल्लभा ।
हनूमानेष विख्यातो हतो येन तवात्मजः ॥ ३१ ॥
श्वेतो रजतसङ्काशो महाबुद्धिपराक्रमः ।
तूर्णं सुग्रीवमागम्य पुनर्गच्छति वानरः ॥ ३२ ॥

---

ये पहाड़ के समान ऊँचे-ऊँचे वानर गरज रहे हैं। इन्हें देखो, यद्यपि इन्हें गिना नहीं जा सकता। किन्तु मैं इनमें प्रधान-प्रधान वानरों का निर्देश आप से कर रहा हूँ ॥ २७ ॥

यह वानर जो लङ्का की ओर देखता हुआ गरज रहा है और एक लाख सेनापतियों से घिरा हुआ है ॥ २८ ॥ यह सुग्रीव का सेनापति अग्निनन्दन नील नाम का वानर है, जो कमल केसर के समान वर्ण वाला तथा पर्वत-शिखर के समान विशाल काय है ॥ २९ ॥ तथा जो क्रोध में भरकर बारम्बार अपनी पूँछ पटक रहा है, यह अत्यन्त वीर्यवान् वालि-पुत्र अङ्गद है ॥ ३० ॥ जिसने राम की प्राण-वल्लभा जनकनन्दिनी जानकी का पता लगाया है तथा जिसने तुम्हारे पुत्र अक्ष का वध किया है, यह वही विख्यात वीर हनुमान् है ॥३१॥ यह जो चाँदी के समान श्वेतवर्ण वाला है एवं जो अत्यन्त बुद्धिमान् तथा पराक्रमशील है और जो बड़ी शीघ्रता से सुग्रीव के पास आकर पुनः लौट जाता है ॥ ३२ ॥

यस्त्वेष सिंहसङ्काशः पश्यत्यतुलविक्रमः।
रम्भो नाम महासत्त्वो लङ्कां नाशयितुं क्षमः॥ ३३॥

एष पश्यति वै लङ्कां दिधक्षन्निव वानरः।
शरभो नाम राजेन्द्र! कोटियूथपनायकः॥ ३४॥

पनसश्च महावीर्यो मैन्दश्च द्विविदस्तथा।
नलश्च सेतुकर्तासौ विश्वकर्मसुतो बली॥ ३५॥

वानराणां वर्णने वा सङ्ख्याने वा क ईश्वरः।
शूराः सर्वे महाकायाः सर्वे युद्धाभिकाङ्क्षिणः॥ ३६॥

शक्ताः सर्वे चूर्णयितुं लङ्कां रक्षोगणैः सह।
एतेषां बलसङ्ख्यानं प्रत्येकं वच्मि ते शृणु॥ ३७॥

एषां कोटिसहस्राणि नव पञ्च च सप्त च।
तथा शङ्खसहस्राणि तथाऽर्बुदशतानि च॥ ३८॥

---

तथा जो अतुल पराक्रमी एवं सिंह के समान पुरुषार्थी है एवं जो इस लङ्का की ओर देख रहा है, यह रम्भ नाम का वानर है। आपको लङ्का नष्ट करने के लिए यह अकेला ही समर्थ है॥ ३३॥

हे राजेन्द्र! यह वानर जो लङ्का को इस प्रकार देख रहा है, मानो जला डालेगा, इसका नाम शरभ है यह एक करोड़ वानर यूथपतियों का स्वामी है॥ ३४॥ इसके अतिरिक्त महाबलवान पनस, मैन्द तथा द्विविद एवं सेतु बाँधने वाला विश्वकर्मा का पुत्र महाबलवान् नल आदि प्रधान-प्रधान योद्धा हैं॥ ३५॥

हे रावण! वानरों के वर्णन करने एवं उनकी गणना करने में कौन समर्थ हो सकता है। सभी वानर शूर, विशालकाय एवं युद्ध के लिए निरन्तर उत्सुक रहने वाले हैं॥ ३६॥ राक्षसों सहित सारी लङ्का को चूर्ण-चूर्ण करने में ये सभी समर्थ हैं। अब मैं इनमें से प्रत्येक की सेना-संख्या बतला रहा हूँ, तुम उसे सुनो॥ ३७॥ इनमें प्रत्येक के आधीन एक हजार शंख, सौ अरब इक्कीस हजार करोड़ सेना हैं॥ ३८॥

सुग्रीवसचिवानां ते बलमेतत् प्रकीर्तितम् ।
अन्येषां तु बलं नाऽहं वक्तुं शक्तोऽस्मि रावण ! ॥ ३६ ॥

रामो न मानुषः साक्षादादिनारायणः परः ।
सीता साक्षाज्जगद्धेतुश्चिच्छक्तिजगदात्मिका ॥ ४० ॥

ताभ्यामेव समुत्पन्नं जगत्-स्थावर-जङ्गमम् ।
तस्माद् रामश्च सीता च जगतस्तस्थुषश्च तौ ॥ ४१ ॥

पितरौ पृथिवीपाल ! तयोर्वैरी कथं भवेत् ? ।
अजानता त्वयाऽऽनीता जगन्मातैव जानकी ॥ ४२ ॥
क्षणनाशिनि संसारे शरीरे क्षणभङ्गुरे ।
पञ्चभूतात्मके राजंश्चतुर्विंशतितत्त्वके ॥ ४३ ॥
मल-मांसा-ऽस्थि-दुर्गन्ध-भूयिष्ठेऽहङ्कृतालये ।
कैवास्था व्यतिरिक्तस्य काये तव जडात्मके ॥ ४४ ॥

---

जो केवल सुग्रीव के सचिवों की सेना की संख्या है। इनके अतिरिक्त और वानरों की सेना-संख्या तो गिनने में मैं सर्वथा असमर्थ हूँ ॥ ३६ ॥

हे रावण ! राम मनुष्य नहीं हैं, वे तो साक्षात् आदि नारायण हैं और यह सीता जगत् की कारणभूता जगन्मयी चिच्छक्ति हैं ॥ ४० ॥ यह स्थावर-जङ्गमात्मक सारा जगत् उन्हीं से उत्पन्न हुआ है, अतः ये राम तथा सीता स्थावर जङ्गमात्मक जगत् के माता एवं पिता हैं ॥ ४१ ॥ हे पृथ्वीपाल ! उनका वैरी किस प्रकार कोई हो सकता है। आप ने अनजान में जिस जानकी का हरण किया है वे तो साक्षात् जगन्माता ही हैं ॥ ४२ ॥ प्रतिक्षण नष्ट होने वाले क्षणभङ्गुर, पञ्चभूतों से बने हुए चौबीस तत्त्वों से युक्त मल, मांस एवं अस्थि आदि के दुर्गन्धों से युक्त एवं अहङ्कार के आश्रय स्वरूप इस जड़ शरीर में जो आत्मा से पृथक् है,

यत्कृते ब्रह्महत्यादि-पातकानि कृतानि ते।
भोगभोक्ता तु यो देहः स देहोऽत्र पतिष्यति ॥ ४५ ॥
पुण्यपापे समायातो जीवेन सुख-दुःखयोः।
कारणे देहयोगादिनाऽऽत्मनः कुरुतोऽनिशम् ॥ ४६ ॥
यावद् देहोऽस्मि कर्तास्मीत्यात्माहं कुरुतेऽवशः।
अध्यासमात्तावदेव स्याज्जन्म-नाशादिसम्भवः ॥ ४७ ॥
तस्मात्त्वं त्यज देहादावभिमानं महामते !।
आत्मातिनिर्मलः शुद्धो विज्ञानात्माचलोऽव्ययः ॥ ४८ ॥
स्वाज्ञानवशतो बन्धं प्रतिपद्य विमुह्यति।
तस्मात्त्वं शुद्धभावेन ज्ञात्वाऽऽत्मानं सदा स्मर ॥ ४९ ॥
विरतिं भज सर्वत्र पुत्र-दार-गृहादिषु।
निरयेष्वपि भोगः स्याच्छ्‌व-शूकर-तनावपि ॥ ५० ॥

---

उसमें आप इतनी आस्था क्यों करते हैं ॥ ४३-४४ ॥ इतना ही नहीं, जिस जड़ शरीर के लिए आप ब्रह्महत्या जैसे–जघन्य पाप करते रहते हैं, तथा जो सम्पूर्ण भोगों का भोक्ता है, वह शरीर तो यहीं पड़ा रह जायेगा ॥ ४५ ॥ इस जीव के साथ सुख-दुःख के हेतु भूत पुण्य और पाप ही जाते हैं, और वे ही देह आदि के सम्बन्ध के द्वारा जीव को निरन्तर सुख-दुःख की प्राप्ति कराते रहदे हैं ॥ ४६ ॥ जब तक आत्मा अज्ञान के वशीभूत होकर 'मैं देह हूँ' 'मैं कर्त्ता हूँ' इस प्रकार का अभिमान करता है, तब तक उसे विवश होकर जन्म-मृत्यु आदि का दुःख भोगना पड़ता है ॥ ४७ ॥ इसलिए हे महामते ! आप देहादि का अभिमान छोड़ दीजिए। आत्मा तो अत्यन्त निर्मल, शुद्ध, विज्ञानात्मा, अविचल एवं अविकारी है ॥ ४८ ॥ वह अपने अज्ञान के कारण बन्धन में पड़कर मोह को प्राप्त करता है। अतः आप विशुद्ध भाव से आत्मा को जानकर उसका स्मरण कीजिए ॥ ४९ ॥ और पुत्र, स्त्री तथा गृह आदि सभी से विरक्त हो जाइए। क्योंकि, भोग तो कुत्ता तथा शूकर को शरीर में तथा नरकादिकों में भी प्राप्त होते रहते हैं ॥ ५० ॥

देहं लब्ध्वा विवेकाढ्यं द्विजत्वं च विशेषतः ।
तत्रापि भारते वर्षे कर्मभूमौ सुदुर्लभम् ॥ ५१ ॥
को विद्वानात्मसात् कृत्वा देहं भोगानुगो भवेत् ।
अतस्त्वं ब्राह्मणो भूत्वा पौलस्त्य-तनयश्च सन् ॥ ५२ ॥
अज्ञानीव सदा भोगाननुधावसि किं मुधा ।
इतः परं वा त्यक्त्वा त्वं सर्वसङ्गं समाश्रय ॥ ५३ ॥
राममेव परात्मानं भक्तिभावेन सर्वदा ।
सीतां समर्प्य रामाय तत्पादानुचरो भव ॥ ५४ ॥
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं प्रयास्यसि ।
नो चेद् गमिष्यसेऽधोऽधः पुनरावृत्तिवर्जितः ।
अङ्गीकुरुष्व मद्वाक्यं हितमेव वदामि ते ॥ ५५ ॥

---

इस परम दुर्लभ कर्म-भूमि भारतवर्ष में नित्यानित्य विवेक युक्त पूर्ण मानव शरीर उसमें भी ब्राह्मण शरीर पाकर ॥ ५१ ॥ ऐसा कौन बुद्धिमान् होगा जो शरीर में आत्मबुद्धि कर इस आत्मा को भोग में प्रवृत्त करेगा। आप तो ब्राह्मण हैं, उसमें भी पुलस्त्यपुत्र विश्रवा महर्षि के पुत्र हैं ॥ ५२ ॥ फिर अज्ञानी पुरुष के समान इन भोगों के पीछे व्यर्थ क्यों दौड़ते हैं ? अब आप सर्वथा सर्वसङ्ग विनिर्मुक्त होकर परमात्मा राम का भक्तिभाव से आश्रय लीजिए। एवं सीता जी को भगवान् राम के लिये समर्पण कर उनके चरण-कमलों का दास बन जाइए ॥ ५३-५४ ॥ यदि आप ऐसा करेंगे तो सभी पापों से मुक्त होकर विणुष्लोक प्राप्त करेंगे। अन्यथा ब्रह्मलोक से वञ्चित रहकर आप नीचे के लोकों में उत्तरोत्तर जाते रहेंगे, जहाँ जन्म-मरण का निरन्तर चक्र चलता रहता है ॥ ५५ ॥

सत्सङ्गतिं कुरु भजस्व हरिं शरण्यं
श्रीराघवं मरकतोपलकान्तिकान्तम् ।
सीतासमेतमनिशं धृतचापबाणं
सुग्रीव-लक्ष्मण-विभीषण-सेविताङ्घ्रिम् ॥ ५६ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे
चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

□

## ५. पञ्चमः सर्गः

( शुकका पूर्वचरित्र, माल्यवान्का रावणको समझाना तथा
वानर-राक्षस-संग्राम )

श्रीमहादेव उवाच

श्रुत्वा शुकमुखोद्गीतं वाक्यमज्ञाननाशनम् ।
रावणः क्रोधताम्राक्षो दहन्निव तमब्रवीत् ॥ १ ॥

---

अतः मेरा यही कहना है कि आप सत्सङ्ग कीजिए । सबको शरण देने वाले उन परमात्मा राम का भजन कीजिए, जिनके शरीर की कान्ति मरकतमणि के समान है, जो निरन्तर सीता के साथ रहते हैं । और धनुष बाण धारण किये हुए हैं । तथा सुग्रीव, लक्ष्मण एवं विभीषण जिनके चरण-कमलों की निरन्तर सेवा करते हैं ॥ ५६ ॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या सहित अध्यात्म-रामायण के
उमा-महेश्वर-संवाद में युद्धकाण्ड का चतुर्थ सर्ग समाप्त ॥ ४ ॥

□

श्री महादेव जी ने कहा--हे पार्वती ! शुक के मुख से निकले हुए इन अज्ञान नाशक वचनों को सुनकर रावण क्रोध से तिलमिला उठा और

अनुजीव्य सुदुर्बुद्धे गुरुवद् भाषसे कथम् ? ।
शासिताऽहं त्रिजगतां त्वं मां शिक्षन्न लज्जसे ॥ २ ॥
इदानीमेव हन्मि त्वां किन्तु पूर्वकृतं तव ।
स्मरामि तेन रक्षामि त्वां यद्यपि वधोचितम् ॥ ३ ॥
इतो गच्छ विमूढ ! त्वमेवं श्रोतुं न मे क्षमम् ।
महाप्रसाद इत्युक्त्वा वेपमानो गृहं ययौ ॥ ४ ॥
शुकोऽपि ब्राह्मणः पूर्वं ब्रह्मिष्ठो ब्रह्मवित्तमः ।
वानप्रस्थविधानेन वने तिष्ठन् स्वकर्मकृत् ॥ ५ ॥
देवानामभिवृद्धयर्थं विनाशाय सुरद्विषाम् ।
चकार यज्ञविततिमविच्छिन्नां महामतिः ॥ ६ ॥
राक्षसानां विरोधोऽभूच्छुको देवहितोद्यतः ।
वज्रदंष्ट्र इति ख्यातस्तत्रैको राक्षसो महान् ॥ ७ ॥

---

नेत्र लाल-लाल कर उससे बोला—॥ १ ॥ हे दुर्बुद्धे ! मेरे ही टुकड़ों से पला हुआ तू इस प्रकार गुरु की भाँति वाक्य कैसे बोल रहा है । तीनों लोकों पर शासन करने वाला तो मैं हूँ । फिर मुझे इस प्रकार की शिक्षा देते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती ।। २ ॥ अतः तू वध के योग्य है, तुझे अभी मैं मार डालता, किन्तु तुम्हारे पूर्व कृत्यों को याद कर मैं तुम्हें छोड़ देता हूँ ॥ ३ ॥

हे मूर्ख ! अब तू इसी क्षण यहाँ से चला जा । मैं इस प्रकार की बात सहन नहीं कर सकता, फिर शुक भी 'महाराज की बड़ी कृपा हुई' ऐसा कह कर काँपता हुआ घर चला गया ॥ ४ ॥ शुक पूर्व जन्म में ब्रह्मवेत्ता एवं वेदज्ञ ब्राह्मण था । यह वानप्रस्थ की विधि से अपने धर्म-कर्म में तत्पर रह कर वन में निवास करता था ॥ ५ ॥ महामति शुक ने देवताओं की अभिवृद्धि तथा असुरों के नाश के लिए निरन्तर अविच्छिन्न बड़े-बड़े यज्ञ किये ॥ ६ ॥ इस प्रकार निरन्तर देवताओं के हित में लगे रहने के कारण शुक का राक्षसों से विरोध हो गया । उस समय वज्रदंष्ट्र नामक

अन्तरं प्रेप्सुरातिष्ठच्छुकापकरणोद्यतः ।
कदाचिदागतोऽगस्त्यस्तस्याश्रमपदं मुनेः ॥ ८ ॥
तेन सम्पूजितोऽगस्त्यो भोजनार्थं निमन्त्रितः ।
गते स्नातुं मुनौ कुम्भसम्भवे प्राप्य चान्तरम् ॥ ९ ॥
अगस्त्यरूपधृक् सोऽपि राक्षसः शुकमब्रवीत् ।
यदि दास्यसि मे ब्रह्मन् ! भोजनं देहि सामिषम् ॥ १० ॥
बहुकालं न भुक्तं मे मांसं छागाङ्गसम्भवम् ।
तथेति कारयामास मांसभोज्यं सविस्तरम् ॥ ११ ॥
उपविष्टे मुनौ भोक्तुं राक्षसोऽतीव सुन्दरम् ।
शुकभार्यावपुर्धृत्वा तां चान्तर्मोहयन् खलः ॥ १२ ॥
नरमांसं ददौ तस्मै सुपक्वं बहुविस्तरम् ।
दत्त्वैवान्तर्दधे रक्षस्ततो दृष्ट्वा चुकोप सः ॥ १३ ॥

---

एक महान् राक्षस ॥ ७ ॥ शुक का अपकार करने के लिए उतारू होकर अवसर की प्रतीक्षा करने लगा। एक दिन की बात है कि उस मुनिवर शुक के आश्रम में महर्षि अगस्त्य पधारे ॥ ८ ॥ फिर शुक ने अगस्त्य की पूजा की और उन्हें भोजन के लिए आमन्त्रित किया। जब महर्षि अगस्त्य स्नान के लिए चले गये तो उस राक्षस को मौका मिल गया ॥९॥ उसने अगस्त्य का रूप बना कर मुनिवर शुक से कहा—हे ब्राह्मण ! यदि तुम मुझे भोजन कराना चाहते हो तो मांस युक्त अन्न का भोजन कराओ ॥१०॥ 'मैंने बहुत दिनों से बकरे का मांस नहीं खाया है' तब शुक ने 'तथास्तु' कह कर बड़े विधान के साथ मांस भोजन बनवाया ॥ ११ ॥

जिस समय महामुनि अगस्त्य भोजन के लिए बैठे उस समय वह दुष्ट राक्षस शुक की पत्नी का परम सुन्दर रूप धारण किया और उनकी स्त्री को उस पाकालय में मूर्च्छित कर मुनिवर को नाना प्रकार से बनाये गये उस नरमांस को परोस दिया। और परोसने के पश्चात् वह अन्तर्धान हो गया। मुनिवर अगस्त्य अपने आगे परोसे गये नरमांस को देखकर क्रोध से जल उठे ॥ १२-१३ ॥

अमेध्यं मानुषं मांसमगस्त्यः शुकमब्रवीत् ।
अभक्ष्यं मानुषं मांसं दत्तवानसि दुर्मते ! ॥ १४ ॥
मद्यं त्वं राक्षसो भूत्वा तिष्ठ त्वं मानुषाशनः ।
इति शप्तः शुको भीत्या प्राहागस्त्यं मुने ! त्वया ॥ १५ ॥
इदानीं भाषितं मेऽद्य मांसं देहीति विस्तरम् ।
तथैव दत्तं भो देव ! किं मे शापं प्रदास्यसि ? ॥ १६ ॥
श्रुत्वा शुकस्य वचनं मुहूर्तं ध्यानमास्थितः ।
ज्ञात्वा रक्षःकृतं सर्वं ततः प्राह शुकं सुधीः ॥ १७ ॥
तवापकारिणा सर्वं राक्षसेन कृतं त्विदम् ।
अविचार्यैव मे दत्तः शापस्ते मुनि सत्तम ! ॥ १८ ॥
तथापि मे वचोऽमोघमेवमेव भविष्यति ।
राक्षसं वपुरास्थाय रावणस्य सहायकृत् ॥ १९ ॥

---

पुनः शुक से बोले—हे दुर्मते ! तुमने महा अपवित्र अभक्ष्य नरमांस भोजन के लिए दिया है ।। १४ ।। अतः तुम मनुष्यभोजी राक्षस बनकर निवास करो। तब अगस्त्य के द्वारा इस प्रकार शप्त हुआ वह शुक ब्राह्मण डरते-डरते अगस्त्य से कहा—।। १५ ।। हे महामुने ! आपने तो अभी-अभी कहा था कि मुझे नाना प्रकार के मांस का भोजन कराओ। अतः हे देव ! मैंने आप के आज्ञानुसार उसी प्रकार का मांस भोजन दिया है। फिर आप मुझे शाप क्यों देते हैं ? ।। १६ ।। शुक की इस बात को सुनकर महा बुद्धिमान् महर्षि अगस्त्य ने एक मुहूर्त्त ध्यानस्थ होकर राक्षस की सारी करतूत जान ली। तब वे शुक से बोले—।। १७ ।।

हे महामुने ! यह सारी करतूत तुम्हारे अपकार करने वाले उस राक्षस की है। हे मुनिसत्तम ! मैंने तुम्हें बिना विचारे ही शाप दे दिया ।। १८ ।। तथा मेरा वचन कभी व्यर्थ होने वाला नहीं है, इसलिए होगा ऐसा ही। तुम राक्षस का शरीर धारण कर रावण की तब तक सहायता करते

तिष्ठ तावद्यदा रामो दशाननवधाय हि।
आगमिष्यति लङ्कायाः समीपं वानरैः सह॥ २०॥
प्रेषितो रावणेन त्वं चारो भूत्वा रघूत्तमम्।
दृष्ट्वा शापा विनिर्मुक्तो बोधयित्वा च रावणम्॥ २१॥
तत्त्वज्ञानं ततो मुक्तः परं पदमवाप्स्यसि।
इत्युक्तोऽगस्त्यमुनिना शुको ब्राह्मणसत्तमः॥ २२॥
बभूव राक्षसः सद्यो रावणं प्राप्य संस्थितः।
इदानीं चाररूपेण दृष्ट्वा रामं सहानुजम्॥ २३॥
रावणं तत्त्वविज्ञानं बोधयित्वा पुनर्द्रुतम्।
पूर्ववद् ब्राह्मणो भूत्वा स्थितो वैखानसैः सह॥ २४॥
ततः समागमद् वृद्धो माल्यवान् राक्षसो महान्।
बुद्धिमान्नीतिनिपुणो राज्ञो मातुः प्रियः पिता॥ २५॥

---

रहो॥ १९॥ जब तक उसका विनाश करने के लिए श्रीरामचन्द्र जी लङ्का में वानरों के सहित न आ जायें॥ २०॥ पुनः तुम रावण का दूत बनकर उसके द्वारा भेजे जाने पर श्रीराम के पास जाओगे। और राम का दर्शन कर मेरे शाप से मुक्त हो जाओगे। फिर रावण को तत्त्वज्ञान का उपदेश कर॥ २१॥ मुक्त होकर परम पद को प्राप्त करोगे। अगस्त्य मुनि के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर वह ब्राह्मण-श्रेष्ठ शुक॥ २२॥ तुरन्त ही राक्षस हो गया। और रावण के पास जाकर रहने लगा। इस समय रावण का दूत बन कर लक्ष्मण सहित श्रीराम का दर्शन कर॥ २३॥ रावण को तत्त्वज्ञान का उपदेश दे वे पुनः पूर्ववत् उस ब्राह्मण शरीर से वानप्रस्थों के साथ निवास करने लगे॥ २४॥

इस प्रकार शुक के चले जाने पर रावण की माता का प्रिय पिता, महाबुद्धिमान् नीति निपुण तथा वृद्ध माल्यवान् नामक राक्षस वहाँ

प्राह तं राक्षसं वीरं प्रशान्तेनान्तरात्मना ।
शृणु राजन् ! वचो मेऽद्य श्रुत्वा कुरु यथेप्सितम् ॥ २६ ॥
यदा प्रविष्टा नगरीं जानकी रामवल्लभा ।
तदादि पुर्यां दृश्यन्ते निमित्तानि दशानन ! ॥ २७ ॥
घोराणि नाशहेतूनि तानि मे वदतः शृणु ।
खरस्तनितनिर्घोषा मेघा अतिभयङ्कराः ॥ २८ ॥
शोणितेनाभिवर्षन्ति लङ्कामुष्णेन सर्वदा ।
रुदन्ति देवलिङ्गानि स्विद्यन्ति प्रचलन्ति च ॥ २९ ॥
कालिका पाण्डुरैर्दन्तैः प्रहसन्त्यग्रतः स्थिता ।
खरा गोषु प्रजायन्ते मूषका नकुलैः सह ॥ ३० ॥
मार्जारेण तु युध्यन्ति पन्नगा गरुडेन तु ।
करालो विकटो मुण्डः पुरुषः कृष्णपिङ्गलः ॥ ३१ ॥

---

आया ॥ २५ ॥ फिर वह शान्तचित्त हो उस रासक्ष वीर रावण से कहा—हे राजन् ! मेरी प्रार्थना सुनिए पश्चात् आप की जैसी इच्छा हो वैसा करना ॥ २६ ॥

हे दशानन ! जब से जनक-नन्दिनी जानकी इस लङ्कापुरी में आयी हुई हैं। उसी समय से अनेक प्रकार के अपशकुन इस लङ्का में दिखाई पड़ रहे हैं॥ २७ ॥ उन महाभयंकर एवं नाशकारी अपशकुनों को मैं आपके सामने निवेदन करता हूँ। उन्हें सुनिए, अत्यन्त भयंकर मेघ तीक्ष्ण कड़क के साथ गर्जना करते हैं ॥ २८ ॥ और लङ्का के ऊपर गर्म-गर्म रक्त की धारा के साथ गर्जना करते हैं। देवताओं की मूर्त्तियाँ रोती हैं, उनके शरीर से पसीना बहता है तथा वे अपने स्थान से विचलित हो जाती हैं ॥ २९ ॥ कालिका अपने पीले-पीले दाँतों को निकाल कर राक्षसों के आगे हँसती हैं, गायों से गदहे उत्पन्न हो रहे हैं। और चूहे, नेवले ॥ ३० ॥ एवं बिल्लियों के साथ तथा सर्प गरुड़ के साथ युद्ध करते हैं। महा भयानक, विकट एवं मुण्डित शिर काले तथा पीले रङ्ग का

कालो गृहाणि सर्वेषां काले-काले त्ववेक्षते ।
एतान्यन्यानि दृश्यन्ते निमित्तान्युद्भवन्ति च ॥ ३२ ॥
अतः कुलस्य रक्षार्थं शान्ति कुरु दशानन ! ।
सीतां सत्कृत्य सधनां रामायाशु प्रयच्छ भोः ॥ ३३ ॥
रामं नारायणं विद्धि विद्वेषं त्यज राघवे ।
तत्पादपोतमाश्रित्य ज्ञानिनो भवसागरम् ॥ ३४ ॥
तरन्ति भक्तिपूतान्तास्ततो रामो न मानुषः ।
भजस्व भक्तिभावेन रामं सर्वहृदालयम् ॥ ३५ ॥
यद्यपि त्वं दुराचारो भक्त्या पूजो भविष्यसि ।
मद्वाक्यं कुरु राजेन्द्र ! कुलकौशलहेतवे ॥ ३६ ॥
तत्तु माल्यवतो वाक्यं हितमुक्तं दशाननः ।
न मर्षयति दुष्टात्मा कालस्य वशमागतः ॥ ३७ ॥

---

काल पुरुष ॥ ३१ ॥ समय-समय पर राक्षसों के घर को घूमता हुआ देखता है । इस प्रकार के ये अपशकुन तथा अन्य प्रकार के भी अपशकुन लङ्का में उत्पन्न होते तथा दिखाई पड़ते हैं ॥ ३२ ॥ इसलिए हे दशानन ! आप अपने कुल की रक्षा हेतु शान्ति का उपाय कीजिए। और शीघ्र ही सीता को सत्कार पूर्वक बहुत से धन के साथ रघुनाथ जी को दे दीजिए ॥ ३३ ॥

राम को आप साक्षात् महाविष्णु समझिए। और श्रीराम से द्वेष-बुद्धि को त्याग दीजिए। ज्ञानी लोग उनके चरण-कमल रूपी नौका का सहारा लेकर उनकी भक्ति से अपने अन्तःकरण को पवित्र कर संसार रूपी समुद्र को पार कर जाते हैं। अतः ये राम मनुष्य नहीं हैं, ये सब के अन्तःकरण में विराजमान हैं। इसलिए भक्तिपूर्वक उन श्रीराम का भजन कीजिए ॥ ३४-३५ ॥ यद्यपि आप का आचरण ठीक नहीं है किन्तु उनकी भक्ति से आप अवश्य पवित्र हो जायेंगे। हे राजेन्द्र ! अपने कुल की कुशलता के लिए मेरी बात मान लीजिए ॥ ३६ ॥

इस प्रकार माल्यवान् के द्वारा कहे गये हितकारी बातों को दुष्ट रावण सहन न कर सका। क्योंकि वह काल के वशीभूत हो गया

मानवं कृपणं राममेकं शाखामृगाश्रयम् ।
समर्थं मन्यसे केन हीनं पित्रा मुनिप्रियम् ॥ ३८ ॥
रामेण प्रेषितो नूनं भाषसे त्वमनर्गलम् ।
गच्छ वृद्धोऽसि बन्धुस्त्वं सोढं सर्वं त्वयोदितम् ॥ ३९ ॥
इतो मत्कर्णपदवीं दहत्येतद्वचस्तव ।
इत्युक्त्वा सर्वसचिवैः सहितः प्रस्थितस्तदा ॥ ४० ॥
प्रासादाग्रे समासीनः पश्यन् वानरसैनिकान् ।
युद्धायायोजयत् सर्वराक्षसान् समुपस्थितान् ॥ ४१ ॥
रामोऽपि धनुरादाय लक्ष्मणेन समाहृतम् ।
दृष्ट्वा रावणमासीनं कोपेन कलुषीकृतः ॥ ४२ ॥
किरीटिनं समासीनं मन्त्रिभिः परिवेष्टितम् ।
शशाङ्कार्धनिभेनैव बाणेनैकेन राघवः ॥ ४३ ॥

---

था ॥ ३७ ॥ फिर वह रावण कहने लगा—अत्यन्त दीन तुच्छ मानव राम को जिसका कोई सहायक नहीं है, एवं जो वानरों की सहायता का भरोसा किये हुए है, इतना ही नहीं, जिसे उसके पिता ने भी निकाल दिया है, तुम उस राम को किस बात में मुझसे समर्थ समझते हो ॥ ३८ ॥ अवश्य ही तुम्हें राम ने भेजा है जिससे इस प्रकार की बेतुकी बातें करते हो। अच्छा, अब शीघ्र ही यहाँ से चले जाओ। तुम बूढ़े तथा सगे-सम्बन्धी हो इस लिए तुम्हारी बातें मैंने सहन कर ली हैं ॥ ३९ ॥ अब इसके बाद तुम्हारे ये वचन मेरे कानों में पहुँच कर मुझे जला रहे हैं। ऐसा कह कर वह रावण अपने समस्त मन्त्रियों सहित सभा से उठकर चला गया ॥ ४० ॥ और अपने प्रासाद के सर्वोच्च शिखर पर बैठ कर वानर-सैनिकों की ओर देखते हुए अपने अगल-बगल बैठे हुए सभी उपस्थित राक्षसों को युद्ध के लिए नियुक्त करने लगा ॥ ४१ ॥

इधर राम ने भी शिर पर मुकुट धारण किये हुए एवं मन्त्रियों से घिरे हुए रावण को बैठे देख क्रोध से आग बबूला हो लक्ष्मण के द्वारा लाये गये धनुष को उठाया और उन राघव ने अपने अर्ध चन्द्राकार

श्वेतच्छत्रसहस्राणि किरीटदशकं तथा ।
चिच्छेद निमिषार्धेन तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ४४ ॥
लज्जितो रावणस्तूर्णं विवेश भवनं स्वकम् ।
आहूय राक्षसान सर्वान् प्रहस्तप्रमुखान् खलः ॥ ४५ ॥
वानरैः सह युद्धाय नोदयामास सत्वरः ।
ततो भेरीमृदङ्गाद्यैः पणवानकगोमुखैः ॥ ४६ ॥
महिषोष्ट्रैः खरैः सिंहैर्द्वीपिभिः कृतवाहनाः ।
खड्ग-शूल-धनुः-पाश-यष्टि-तोमर-शक्तिभिः ॥ ४७ ॥
लक्षिताः सर्वतो लङ्का प्रतिद्वारमुपाययुः ।
तत्पूर्वमेव रामेण नोदिता वानरर्षभाः ॥ ४८ ॥
उद्यम्य गिरिशृङ्गाणि शिखराणि महान्ति च ।
तरूंश्चोत्पाट्य विविधान् युद्धाय हरियूथपाः ॥ ४९ ॥
प्रेक्षमाणा रावणस्य तान्यनीकानि भागशः ।
राघवप्रियकामार्थं लङ्कामारुरुहुस्तदा ॥ ५० ॥

---

अपने एक बाण से आधे निमेष में ही उसके हजारों श्वेत छत्र एवं दशों मुकुट काट डाले । जो एक बड़ा आश्चर्य-सा हो गया ॥ ४२-४४ ॥ राम के इस कार्य से लज्जित हुआ रावण बड़ी शीघ्रता से अपने घर में घुस गया । फिर उस दुष्ट ने प्रहस्त आदि मुख्य-मुख्य राक्षसों को बुला कर ॥ ४५ ॥ वानरों के साथ युद्ध करने की आज्ञा दी । तब राक्षस लोग भेरी, मृदङ्ग, पणव, आनक एवं गोमुख आदि बाजे बजाते ॥ ४६ ॥ भैंसे, ऊँट, गदहे, सिंह एवं बाघ आदि विविध जन्तुओं पर सवार होकर खड्ग, शूल, धनुष, पाश, डण्डा, तोमर एवं शक्ति आदि ॥ ४७ ॥ शस्त्रों को लेकर लङ्का के प्रत्येक द्वार पर युद्ध के लिए चले आये । भगवान् राम ने इससे पूर्व ही वानर वीरों को लड़ने की आज्ञा दे रखी थी ॥४८॥ वे भी पहाड़ों के चट्टानों एवं बड़े-बड़े शिखरों को तथा नाना प्रकार के वृक्ष उखाड़ कर युद्ध के लिए चल पड़े ॥ ४९ ॥ तथा रावण की सेना को पृथक्-पृथक् भागों में बँटी हुई देखकर वे राम का प्रिय कार्य करने के लिए

ते द्रुमैः पर्वताग्रैश्च मुष्टिभिश्च प्लवङ्गमाः ।
ततः सहस्रयूथाश्च कोटियूथाश्च यूथपाः ॥ ५१ ॥
कोटीशतयुताश्चाऽन्ये रुरुधुर्नगरं भृशम् ।
आप्लवन्तः प्लवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवङ्गमाः ॥ ५२ ॥
रामो जयत्यतिबलो लक्ष्मणश्च महाबलः ।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणानुपालितः ॥ ५३ ॥
इत्येवं घोषयन्तश्च समं युयुधिरेऽरिभिः ।
हनूमानङ्गदश्चैव कुमुदो नील एव च ॥ ५४ ॥
नलश्च शरभश्चैव मैन्दो द्विविद एव च ।
जाम्बवान् दधिवक्त्रश्च केशरी तार एव च ॥ ५५ ॥
अन्ये च बलिनः सर्वे यूथपाश्च प्लवङ्गमाः ।
द्वाराण्युत्प्लुत्य लङ्कायाः सर्वतो रुरुधुर्भृशम् ।
तदा वृक्षैर्महाकायाः पर्वताग्रैश्च वानराः ॥ ५६ ॥
निजघ्नुस्तानि रक्षांसि नखैर्दन्तैश्च वेगिताः ।
राक्षसाश्च तदा भीमा द्वारेभ्यः सर्वतो रुषा ॥ ५७ ॥

---

लङ्का के ऊपर चढ़ गये ॥५०॥ उनमें कोई सहस्र यूथों के एवं कोई करोड़ यूथों के तथा शतकोटि यूथों के यूथपति थे। इस प्रकार के वे वानर वृक्षों, पर्वत-शिखरों तथा मुक्के तान कर उछलते-कूदते तथा गर्जना करते हुए लङ्का को घेर लिये ॥ ५१-५२ ॥ अतिमहाबली राम की जय हो, महाबली लक्ष्मण की जय हो तथा श्रीरघुनाथ जी से सुरक्षित राजा सुग्रीव की जय हो ॥ ५३ ॥ इस प्रकार का शब्द करते हुए वे शत्रुओं से लड़ने लगे। हनुमान्, अङ्गद, कुमुद, नील, ॥ ५४ ॥ नल, शरभ, मैन्द, द्विविद, जाम्बवान्, दधिमुख, केशरी, तार ॥५५॥ और भी अनेक यूथपति महाबलवान् वानरों ने उछल कर लङ्का के दरवाजों को चारों ओर से घेर लिया। और वे विशाल वानर वृक्षों से पर्वत शिखरों से, ॥५६॥ नखों एवं दाँतों से बड़े वेग से राक्षसों को मारने लगे। इधर महाबलवान्

निर्गत्य भिन्दिपालैश्च खड्गैः शूलैः परश्वधैः ।
निजघ्नुर्वानरानीकं महाकाया महाबलाः ॥ ५८ ॥
राक्षसांश्च तथा जघ्नुर्वानरा जितकाशिनः ।
तदा बभूव समरो मांस-शोणित-कर्दमः ॥ ५६ ॥
रक्षसां वानराणां च सम्बभूवाऽद्भुतोपमः ।
ते हयैश्च गजैश्चैव रथैः काञ्चनसन्निभैः ॥ ६० ॥
रक्षोव्याघ्रा युयुधिरे नादयन्तो दिशो दश ।
राक्षसाश्च कपीन्द्राश्च परस्परजयैषिणः ॥ ६१ ॥
राक्षसान् वानरा जघ्नुर्वानरांश्चैव राक्षसाः ।
रामेण विष्णुना दृष्टा हरयो दिविजांशजाः ॥ ६२ ॥
बभूवुर्बलिनो हृष्टास्तदा पीतामृता इव ।
सीताभिमर्शपापेन रावणेनाभिपालितान् ॥ ६३ ॥
हतश्रीकान् हतबलान् राक्षसान् जघ्नुरोजसा ।
चतुर्थांशावशेषेण निहतं राक्षसं बलम् ॥ ६४ ॥

---

राक्षस भी क्रोध में भर कर लङ्का के दरवाजों से बाहर होकर वानरो सेना पर टूट पड़े ॥ ५८ ॥ इसी प्रकार विजयी वानर भी राक्षसों को मारने लगे। उन राक्षसों तथा वानरों में ऐसा विचित्र युद्ध होने लगा कि रण-भूमि में मांस और रक्त का कीचड़ हो गया। वे राक्षस, व्याघ्र, हाथी, घोड़े तथा सुवर्णमय रथों पर सवार होकर दशों दिशाओं को शब्दायमान करते हुए वानरों से लड़ रहे थे। इस प्रकार राक्षस एवं वानर एकदूसरे को जीतने की इच्छा से युद्ध कर रहे थे ॥ ५९-६१ ॥

राक्षस वानरों को एवं वानर राक्षसों को मार रहे थे। देवताओं के अंश से उत्पन्न हुए वानर विष्णुस्वरूप श्रीराम की दृष्टि पड़ते ही अमृत पान से अमर हुए देवताओं के समान बली तथा हृष्ट-पुष्ट हो गये। और वे अत्यन्त हर्ष से सीता के स्पर्श के कारण महापापी रावण से पालित श्रीहीन राक्षसों को उत्साह पूर्ण हो मारने लगे। इस प्रकार उन्होंने रावण की सेना का तीन भाग नष्ट कर दिया। उसकी सेना चतुर्थांश

स्वसैन्यं निहतं दृष्ट्वा मेघनादोऽथ दुष्टधीः ।
ब्रह्मदत्तवरः श्रीमानन्तर्धानं गतोऽसुरः ॥ ६५ ॥
सर्वास्त्रकुशलो व्योम्नि ब्रह्मास्त्रेण समन्ततः ।
नानाविधानि शस्त्राणि वानरानीकमर्दयन् ॥ ६६ ॥
ववर्ष शरजालानि तदद्भुतमिवाऽभवत् ।
रामोऽपि मानयन् ब्राह्ममस्त्रमस्त्रविदां वरः ॥ ६७ ॥
क्षणं तूष्णीमुवासाथ ददर्श पतितं बलम् ।
वानराणां रघुश्रेष्ठश्चुकोपानलसन्निभः ॥ ६८ ॥
चापमानय सौमित्रे ! ब्रह्मास्त्रेणाऽसुरं क्षणात् ।
भस्मीकरोमि मे पश्य बलमद्य रघूत्तम ! ॥ ६९ ॥
मेघनादोऽपि तच्छ्रुत्वा रामवाक्यमतन्द्रितः ।
तूर्णं जगाम नगरं मायया मायिकोऽसुरः ॥ ७० ॥

---

ही शेष रह गयी ॥ ६२-६४ ॥ अपनी सेना को इस प्रकार नष्ट हुई देख ब्रह्मा के वरदान से श्रीसम्पन्न हुआ दुष्ट मेघनाद अन्तर्धान हो गया ॥ ६५ ॥ वह सभी प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों के चलाने में कुशल था । अतः आकाश में स्थित होकर ब्रह्मास्त्र द्वारा वानरी सेना का विनाश करता हुआ अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करने लगा ॥ ६६ ॥

इस प्रकार की बाण-वर्षा को देखते ही सब आश्चर्य में पड़ गये । अस्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ श्रीराम भी ब्रह्मास्त्र का सम्मान करते हुए ॥६७॥ एक क्षण तक वानरी-सेना का पतन चुपचाप देखते रहे । और फिर वे रघुश्रेष्ठ अग्नि के समान क्रोध से प्रज्वलित हो उठे ॥ ६८ ॥ और बोले—लक्ष्मण ! धनुष लाओ, मैं इस असुर को क्षणभर में अपने ब्रह्मास्त्र से भस्म किये देता हूँ । हे रघूत्तम ! तुम आज मेरा पराक्रम देखो ॥६९॥ मेघनाद भी बहुत सावधान था, जब उसने इस प्रकार राम के वाक्यों को सुना, तो वह मायावी असुर अपनी माया से शीघ्र ही लङ्का चला

पतितं वानरानीकं दृष्ट्वा रामोऽतिदुःखितः।
उवाच मारुतिं शीघ्रं गत्वा क्षीरमहोदधिम् ॥ ७१ ॥
तत्र द्रोणगिरिर्नाम दिव्यौषधिसमुद्भवः।
तमानय द्रुतं गत्वा सञ्जीवय महामते! ॥ ७२ ॥
वानरौघान् महासत्त्वान् कीर्तिस्ते सुस्थिरा भवेत्।
आज्ञाप्रमाणमित्युक्त्वा जगामाऽनिलनन्दनः ॥ ७३ ॥
आनीय च गिरिं सर्वान् वानरान् वानरर्षभः।
जीवयित्वा पुनस्तत्र स्थापयित्वा ययौ द्रुतम् ॥ ७४ ॥
पूर्ववद् भैरवं नादं वानराणां बलौघतः।
श्रुत्वा विस्मयमापन्नो रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥ ७५ ॥
राघवो मे महान् शत्रुः प्राप्तो देवविनिर्मितः।
हन्तुं तं समरे शीघ्रं गच्छन्तु मम यूथपाः ॥ ७६ ॥
मन्त्रिणो बान्धवाः शूरा ये च मत्प्रियकाङ्क्षिणः।
सर्वे गच्छन्तु युद्धाय त्वरितं मम शासनात् ॥ ७७ ॥

---

गया ॥ ७० ॥ अपनी वानरी सेना को इस प्रकार नष्ट हुई देख राम को बड़ा दुःख हुआ। और हनुमान् जी से कहे––हनूमन्! तुम क्षीर-सागर चले जाओ ॥ ७१ ॥ वहाँ पर द्रोणगिरि नाम का पर्वत है, जहाँ अनेक दिव्य औषधियाँ उत्पन्न होती हैं। तुम शीघ्र जाकर उस पर्वत को ले आओ। और हे महामते! तुम महापराक्रमी इन वानरगणों को जीवित करो ॥ ७२ ॥ इससे तुम्हारी कीर्ति इस जगत् में स्थायी हो जायेगी। यह सुनकर पवन कुमार 'जो आज्ञा' कह कर चल पड़े ॥ ७३ ॥ और तुरन्त पर्वत लाकर सभी वानरों को उससे जीवित कर उसे पुनः वहीं स्थापित कर पुनः लौट आये ॥ ७४ ॥

तब वानरी-सेना का पूर्ववत् महाभयानक शब्द सुन रावण आश्चर्य में पड़ गया और कहने लगा––॥ ७५ ॥ अरे! यह राम तो देवताओं द्वारा प्रगट किया गया मेरा महान् शत्रु बन कर आया है। उसे मारने के लिए मेरे सेनापति, मन्त्री, बन्धु-बान्धव तथा अन्य शूर-वीर जो

ये न गच्छन्ति युद्धाय भीरवः प्राणविप्लवात् ।
तान् हनिष्याम्यहं सर्वान् मच्छासनपराङ्मुखान् ॥ ७८ ॥
तच्छ्रुत्वा भयसन्त्रस्ता निर्जग्मू रणकोविदाः ।
अतिकायः प्रहस्तश्च महानादमहोदरौ ॥ ७९ ॥
देवशत्रुर्निकुम्भश्च देवान्तकनरान्तकौ ।
अपरे बलिनः सर्वे ययुर्युद्धाय वानरैः ॥ ८० ॥
एते चान्ये च बहवः शूराः शतसहस्रशः ।
प्रविश्य वानरं सैन्यं ममन्थुर्बलदर्पिताः ॥ ८१ ॥
भुशुण्डी-भिन्दिपालैश्च बाणैः खड्गैः परश्वधैः ।
अन्यैश्च विविधैरस्त्रैर्निजघ्नुर्हरियूथपान् ॥ ८२ ॥
ते पादपैः पर्वताग्रैर्नखदंष्ट्रैश्च मुष्टिभिः ।
प्राणैर्विमोचयामासुः सर्वराक्षसयूथपान ॥ ८३ ॥
रामेण निहताः केचित् सुग्रीवेण तथापरे ।
हनूमता चाङ्गदेन लक्ष्मणेन महात्मना ।
यूथपैर्वानराणां ते निहताः सर्वराक्षसाः ॥ ८४ ॥

---

मेरा हित चाहते हों—मेरी आज्ञा से शीघ्रता से जावें ॥ ७६-७७ ॥ जो डरपोंक अपने प्राणों के भय से युद्ध करने के लिए नहीं जायेंगे, अपनी आज्ञा का उल्लङ्घन करने वाले उन सभी को मैं मार डालूँगा ॥ ७८ ॥

रावण की इस आज्ञा को सुनकर अतिकाय प्रहस्त, महानाद, महोदर, देवशत्रु, निकुम्भ, देवान्तक, नारान्तक और भी अनेक शूरवीर जो रण में विशारद थे। भयभीत होकर वानरों के साथ युद्ध करने के लिए चल पड़े ॥ ७९-८० ॥ ये तथा और भी बहुत से सैकड़ों, हजारों वीर अपने-अपने बलके गर्व से उन्मत्त होकर वानरी सेना में घुस कर उन्हें मन्थन करने लगे ॥ ८१ ॥ वे भुशुण्डि, भिन्दिपाल, बाण, खड्ग, परशु एवं अन्य भी नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से वानर यूथपतियों पर प्रहार करने लगे ॥ ८२ ॥ इधर वानर भी वृक्षों, शिखरों, नखों, दाँतों तथा मुक्कों से राक्षस सेनापतियों का प्राण लेने लगे ॥ ८३ ॥ उन राक्षसों

रामतेजः समाविश्य वानरा बलिनोऽभवन् ।
रामशक्तिविहीनानामेवं शक्तिः कुतो भवेत् ? ॥८५॥
सर्वेश्वरः सर्वमयो विधाता मायामनुष्यत्वविडम्बनेन ।
सदा चिदानन्दमयोऽपि रामो युद्धादिलीलां वितनोति मायाम् ॥८६॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वर-संवादे युद्धकाण्डे
पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

□

---

में कुछ तो राम के द्वारा, कुछ सुग्रीव के द्वारा, कुछ हनुमान् के द्वारा, कुछ अङ्गद तथा कुछ महात्मा लक्ष्मण जी के द्वारा तथा कुछ अन्यान्य वानर-यूथपों के द्वारा मारे गये। इस प्रकार उन सभी राक्षसों का अन्त हो गया ।। ८४ ।।

राम के तेज के समावेश हो जाने के कारण वानरगण इतने प्रबल हो रहे थे। भला राम शक्ति से शून्य होने पर इतनी सामर्थ्य इनमें कैसे हो सकती थी ।। ८५ ।। भगवान् राम, सर्वेश्वर, सर्वमय, सर्वनियन्ता एवं सर्वदा सच्चिदानन्द हैं। वे माया से मानव चरित्र का नाटक करते हुए युद्धादि लीला का विस्तार करते हैं ।। ८६ ।।

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या विभूषित अध्यात्म-रामायण के
उमा-महेश्वर संवाद में युद्धकाण्ड का पञ्चम सर्ग समाप्त ।। ५ ।।

□

## षष्ठः सर्गः

( लक्ष्मण-मूर्च्छा, राम-रावण-संग्राम, हनुमान्‌जीका ओषधि लेने के लिए जाना तथा रावण-कालनेमि-संवाद )

श्रीमहादेव उवाच

श्रुत्वा युद्धे बलं नष्टमतिकायमुखं महत् ।
रावणो दुःखसन्तप्तः क्रोधेन महताऽऽवृतः ॥ १ ॥
निधायेन्द्रजितं लङ्कारक्षणार्थं महाद्युतिः ।
स्वयं जगाम युद्धाय रामेण सह राक्षसः ॥ २ ॥
दिव्यं स्यन्दनमारुह्य सर्वशस्त्रास्त्रसंयुतम् ।
राममेवाऽभिदुद्राव राक्षसेन्द्रो महाबलः ॥ ३ ॥
वानरान् बहुशो हत्वा बाणैराशीविषोपमैः ।
पातयामास सुग्रीवप्रमुखान् यूथनायकान् ॥ ४ ॥
गदापाणिं महासत्त्वं तत्र दृष्ट्वा विभीषणम् ।
उत्ससर्ज महाशक्तिं मयदत्तां विभीषणे ॥ ५ ॥

---

श्रीमहादेव जी ने कहा—हे पार्वती ! युद्ध में अतिकाय आदि प्रमुख राक्षसों को तथा अपनी समस्त सेना को नष्ट हुई सुन रावण महान् दुःखी हो क्रोध से भर गया ॥ १ ॥ उस महातेजस्वी राक्षस ने लङ्का की रक्षा के लिए मेघनाद को नियुक्त कर रघुनाथ जी से लड़ने के लिए स्वयं प्रस्थान किया ॥ २ ॥ वह महाबलवान् राक्षसेन्द्र रावण सभी प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित एक दिव्य रथ पर सवार होकर रामचन्द्र जी की ओर ही दौड़ा ॥ ३ ॥ और सर्प के समान महाविषैले अपने बाणों से बहुत से वानरों को मारकर सुग्रीव आदि यूथपतियों को भी पृथ्वी पर गिरा दिया ॥४॥ पुनः उसने हाथ में गदा लिये हुए महाबलवान् विभीषण को वहाँ खड़ा देखकर उसे मारने के लिए मयदानव द्वारा दी गयी

तामापतन्तीमालोक्य विभीषण-विघातिनीम् ।
दत्ताभयोऽयं रामेण वधार्हो नाऽयमासुरः ॥ ६ ॥
इत्युक्त्वा लक्ष्मणो भीमं चापमादाय वीर्यवान् ।
विभीषणस्य पुरतः स्थितोऽकम्प इवाचलः ॥ ७ ॥
सा शक्तिर्लक्ष्मणतनुं विवेशामोघशक्तितः ।
यावन्त्यः शक्तयो लोके मायायाः सम्भवन्ति हि ॥ ८ ॥
तासामाधारभूतस्य लक्ष्मणस्य महात्मनः ।
मायाशक्त्या भवेत् किं वा शेषांशस्य हरेस्तनोः ॥ ९ ॥
तथाऽपि मानुषं भावमापन्नस्तदनुव्रतः ।
मूर्च्छितः पतितो भूमौ तमादातुं दशाननः ॥ १० ॥
हस्तैस्तोलयितुं शक्तो न बभूवातिविस्मितः ।
सर्वस्य जगतः सारं विराजं परमेश्वरम् ॥ ११ ॥

---

महान् शक्ति छोड़ी ॥ ५ ॥ इस प्रकार विभीषण को मारने के लिए रावण द्वारा छोड़ी गयी शक्ति को आती हुई देख कर लक्ष्मण ने कहा कि 'राम ने विभीषण को अभयदान दिया है, अतः यह असुर वध के योग्य नहीं है' ॥६॥ ऐसा कह कर महावीर्यवान् लक्ष्मण जी अपना प्रचण्ड धनुष लेकर विभीषण के आगे पर्वत के समान अडिग होकर खड़े हो गये ॥ ७ ॥ फिर कभी भी व्यर्थ न होने वाली वह रावण के द्वारा छोड़ी गई शक्ति लक्ष्मण के शरीर में घुस गयी। माया से जितनी भी शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं ॥ ८ ॥ महात्मा लक्ष्मण जी उन समस्त शक्तियों के आधार हैं। अतः विष्णुस्वरूप शेष के अंशावतार उन लक्ष्मणजी का उस शक्ति से क्या बिगड़ सकता है ॥ ९ ॥ किन्तु मनुष्य भाव होने के कारण वे इस लीला का अनुसरण करते हुए मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े। तब रावण उन्हें लङ्का ले जाने के लिए अपने हाथों से उठाने लगा किन्तु उन्हें उठाने में असमर्थ ही रहा। इसलिए उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। भला जो इतने बड़े जगत् का कारणभूत विराट् परमेश्वर हैं और निखिल लोक

कथं लोकाश्रयं विष्णुं तोलयेल्लघुराक्षसः ।
ग्रहीतुकामं सौमित्रिं रावणं वीक्ष्य मारुतिः ॥ १२ ॥
आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रकल्पेन मुष्टिना ।
तेन मुष्टिप्रहारेण जानुभ्यामपतद् भुवि ॥ १३ ॥
आस्यैश्च नेत्रश्रवणैरुद्वमन् रुधिरं बहु ।
विघूर्णमाननयनो रथोपस्थ उपाविशत् ॥ १४ ॥
अथ लक्ष्मणमादाय हनूमान् रावणार्दितम् ।
आनयद्रामसामीप्यं बाहुभ्यां परिगृह्य तम् ॥ १५ ॥
हनूमतः सुहृत्त्वेन भक्त्या च परमेश्वरः ।
लघुत्वमगमद् देवो गुरूणां गुरुरप्यजः ॥ १६ ॥
सा शक्तिरपि तं त्यक्त्वा ज्ञात्वा नारायणांशजम् ।
रावणस्य रथं प्रागाद्रावणोऽपि शनैस्ततः ॥ १७ ॥

---

का आश्रय विष्णु हैं, उन्हें एक क्षुद्र राक्षस किस प्रकार उठा सकता है। जब हनुमान् जी ने देखा कि रावण, लक्ष्मण जी को उठा कर लङ्का ले जाना चाहता है तो उन्होंने क्रोध से भरकर अपने वज्र के समान मुक्के से रावण की छाती में मारा। उस घूँसे के लगते ही रावण घुटने टेक कर पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ १०-१३ ॥ फिर घूँसे की चोट से रावण मुख, नेत्र तथा कानों से रुधिर का वमन करता हुआ चक्कर खा कर रथ के पिछले भाग में बैठ गया ॥ १४ ॥

तदनन्तर रावण के द्वारा आहत लक्ष्मण को हनुमान् जी अपनी भुजाओं से उठाकर श्रीरामचन्द्र जी के पास ले आये ॥ १५ ॥ यद्यपि लक्ष्मण जी अजन्मा, प्रकाश स्वरूप एवं भारी से भी भारी हैं किन्तु हनुमान्‌जी के सौहार्द तथा भक्तिभाव से वे देव उनके लिए हल्के से हल्के ( अत्यन्त लघु ) हो गये ॥ १६ ॥ वह शक्ति भी लक्ष्मण जी को नारायण का अंश जान कर उन्हें छोड़कर रावण के रथ पर चली गयी। इधर

संज्ञामवाप्य जग्राह बाणासनमथो रुषा ।
राममेवाभिदुद्राव दृष्ट्वा रामोऽपि तं क्रुधा ॥ १८ ॥
आरुह्य जगतीं नाथो हनूमन्तं महाबलम् ।
रथस्थं रावणं दृष्ट्वा अभिदुद्राव राघवः ॥ १९ ॥
ज्याशब्दमकरोत्तीव्रं वज्रनिष्पेष-निष्ठुरम् ।
रामो गम्भीरया वाचा राक्षसेन्द्रमुवाच ह ॥ २० ॥
राक्षसाधम ! तिष्ठाऽद्य क्व गमिष्यसि मे पुरः ? ।
कृत्वाऽपराधमेवं मे सर्वत्र समदर्शिनः ॥ २१ ॥
येन बाणेन निहता राक्षसास्ते जनालये ।
तेनैव त्वां हनिष्यामि तिष्ठाऽद्य मम गोचरे ॥ २२ ॥
श्रीरामस्य वचः श्रुत्वा रावणो मारुतात्मजम् ।
वहन्तं राघवं सङ्ख्ये शरैस्तीक्ष्णैरताडयत् ॥ २३ ॥

---

रावण को भी धीरे-धीरे कुछ चेतना हुई ॥ १७ ॥ तो उसने पुनः क्रोध से अपना धनुष उठाया । और रामचन्द्रजी की ओर दौड़ा । उसे अपनी ओर वेग से आते देख बड़े क्रोध से ॥ १८ ॥ जगत्पति श्रीराम भी महाबलवान् हनुमान् जी के कन्धों पर चढ़े । और रावण को रथ पर बैठा देख उसकी ओर दौड़े ॥ १९ ॥ उन्होंने अपने धनुष का ऐसा कठोर शब्द किया जो मानो वज्र को भी चूर्ण करने वाला था । फिर वे अत्यन्त गम्भीर वाणी से राक्षस-राज रावण से बोले—॥ २० ॥

हे राक्षसाधम रावण ! मुझ समदर्शी का इस प्रकार का अपराध कर अब तुम मेरे आगे से कहाँ भागोगे । अतः थोड़ी देर ठहरो ॥ २१ ॥ तुम आज मेरे सामने खड़े रहो, मैंने जिस बाण से जन-स्थान में तुम्हारे राक्षसों का वध किया था उसी से तुम्हारा भी वध करूँगा ॥ २२ ॥ राम की बातों को सुनकर रावणने युद्ध में उन्हें वहन करने वाले मारुतात्मज

हतस्यापि शरैस्तीक्ष्णैर्वायुसूनोः स्वतेजसा ।
व्यवर्धत पुनस्तेजो ननर्द च महाकपिः ॥ २४ ॥
ततो दृष्ट्वा हनूमन्तं सव्रणं रघुसत्तमः ।
क्रोधमाहारयामास कालरुद्र इवापरः ॥ २५ ॥
साश्वं रथं ध्वजं सूतं शस्त्रौघं धनुरञ्जसा ।
छत्रं पताकां तरसा चिच्छेद शितसायकैः ॥ २६ ॥
ततो महाशरेणाशु रावणं रघुसत्तमः ।
विव्याध वज्रकल्पेन पाकारिरिव पर्वतम् ॥ २७ ॥
रामबाणहतो वीरश्चचाल च मुमोह च ।
हस्तान्निपतितश्चापस्तं समीक्ष्य रघूत्तमः ॥ २८ ॥
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद तत्किरीटं रविप्रभम् ।
अनुजानामि गच्छ त्वमिदानीं बाणपीडितः ॥ २९ ॥

---

हनुमान् को बड़े तीक्ष्ण बाण मारा ॥ २३ ॥ उन तीक्ष्ण बाणों के लगने पर भी हनुमान्‌जी का तेज, उनके पराक्रम से उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। और वे बड़े जोर से गर्जना करने लगे ॥ २४ ॥

श्रीराम ने रावण के बाणों से आहत हुए हनुमान् जी को क्षत-विक्षत देख कर कालरूप के समान महाभयानक क्रोध किया ॥ २५ ॥ और अपने तीक्ष्ण बाणों से घोड़े सहित रथ, ध्वजा, सारथी, शस्त्र समूह, धनुष, छत्र और पताका आदि काट डाले ॥ २६ ॥ फिर रघुसत्तम श्रीराम ने वज्र के समान कठोर अपने बाणों से रावण को इस प्रकार छिन्न-भिन्न कर दिया, जिस प्रकार इन्द्र पर्वतों को नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं ॥ २७ ॥

राम के बाणों के लगते ही वह रावण विचलित हो गया और उसे मूर्छा आ गयी। और उसके हाथ से धनुष छुट गया। उसकी इस प्रकार की दशा देखकर श्रीरघुनाथ जी ने पुनः ॥ २८ ॥ अपने अर्धचन्द्राकार बाणों से सूर्य के समान चमकता हुआ उसका मुकुट काट दिया। और कहा—तुम इस समय बाण से पीडित हो अतः जाओ। मैं तुम्हें जाने की

प्रविश्य लङ्कामाश्वास्य श्वः पश्यसि बलं मम ।
रामबाणेन संविद्धो हतदर्पोऽथ रावणः ॥ ३० ॥
महत्या लज्जया युक्तो लङ्कां प्राविशदातुरः ।
रामोऽपि लक्ष्मणं दृष्ट्वा मूर्च्छितं पतितं भुवि ॥ ३१ ॥
मानुषत्वमुपाश्रित्य लीलयानुशुशोच ह ।
ततः प्राह हनूमन्तं वत्स ! जीवय लक्ष्मणम् ॥ ३२ ॥
महौषधीः समानीय पूर्ववद् वानरानपि ।
तथेति राघवेणोक्तो जगामाशु महाकपिः ॥ ३३ ॥
हनूमान् वायुवेगेन क्षणात्तीर्त्वा महोदधिम् ।
एतस्मिन्नन्तरे चारा रावणाय न्यवेदयन् ॥ ३४ ॥
रामेण प्रेषितो देव ! हनूमान् क्षीरसागरम् ।
गतो नेतुं लक्ष्मणस्य जीवनार्थं महौषधीः ॥ ३५ ॥

---

अनुमति देता हूँ ॥ २९ ॥ आज तुम लङ्का में विश्राम करो, कल मेरा पराक्रम देखना। इस प्रकार राम के बाणों से आहत हुए उस रावण का सारा घमण्ड चूर-चूर हो गया ॥ ३० ॥ वह दुःखी होकर महान् लज्जा से लङ्का में प्रवेश किया। फिर राम भी लक्ष्मण को पृथ्वी पर मूर्च्छित पड़ा हुआ देख कर ॥ ३१ ॥ मनुष्य भाव का अनुसरण करते हुए लीलासे लक्ष्मण के लिए शोक करने लगे। फिर हनुमान्जी से बोले—हे वत्स ! तुम पहले की तरह ओषधि लाकर लक्ष्मण को तथा इन सभी वानरों को जीवित करो। राम के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर हनुमान्जी 'तथास्तु' कह कर ओषधि लाने के लिये चले ॥ ३२-३३ ॥

हनुमान् जी वायु के वेग से जब समुद्र पारकर ओषधि लाने के लिए जा रहे थे तो उसी समय रावण के गुप्तचरों ने रावण से निवेदन किया ॥३४॥ हे देव ! राम ने लक्ष्मण को जिलाने के लिए महोषधि लाने हेतु हनुमान्

श्रुत्वा तच्चारवचनं राजा चिन्तापरोऽभवत् ।
जगाम रात्रावेकाकी कालनेमिगृहं क्षणात् ॥ ३६ ॥
गृहागतं समालोक्य रावणं विस्मयान्वितः ।
कालनेमिरुवाचेदं प्राञ्जलिर्भयविह्वलः ।
अर्घ्यादिकं ततः कृत्वा रावणस्याग्रतः स्थितः ॥ ३७ ॥
किं ते करोमि राजेन्द्र ! किमागमनकारणम् ? ।
कालनेमिमुवाचेदं रावणो दुःखपीडितः ॥ ३८ ॥
ममापि कालवशतः कष्टमेतदुपस्थितम् ।
मया शक्त्या हतो वीरो लक्ष्मणः पतितो भुवि ॥ ३९ ॥
तं जीवयितुमानेतुमोषधीर्हनुमान् गतः ।
यथा तस्य भवेद् विघ्नं तथा कुरु महामते ! ॥ ४० ॥
मायया मुनिवेषेण मोहयस्व महाकपिम् ।
कालात्ययो यथा भूयात्तथा कृत्वैहि मन्दिरे ॥ ४१ ॥

---

को क्षीर-सागरके पार भेजा है ॥ ३५ ॥ गुप्त चरों के द्वारा इस बात को सुनते ही रावण चिन्तातुर हो उठा । फिर वह अकेले ही एक क्षण में कालनेमि के घर गया ॥ ३६ ॥

रावण को अकेले ही अपने घर पर आया देख कालनेमि आश्चर्य में पड़ गया । और अर्घ्य आदि निवेदन कर उसके सामने खड़ा हो गया । तब कालनेमि भयभीत हो हाथ जोड़कर रावण से बोला ॥ ३७ ॥ हे राजराजेश्वर ! आपके यहाँ आने का क्या कारण है । कहिए, मैं आप की कौन सी सेवा करूँ । तब रावण अत्यन्त दुःखित होकर कालनेमि से कहा ॥ ३८ ॥ मुझे काल वश इस प्रकार का संकट उपस्थित हो गया है, मेरी शक्ति से आहत हुए वीरवर लक्ष्मण पृथ्वी पर मूर्च्छित पड़े हुए हैं ॥ ३९ ॥ उन्हें जीवित करने के लिए हनुमान् महौषधि लेने के लिए जा रहे हैं । अतः हे महामते ! उनके इस कार्य में जिस प्रकार विघ्न खड़ा हो जाय वैसा उपाय करो ॥ ४० ॥ तुम माया से मुनि का वेष बनाकर हनुमान् को मोहित करो कि जिससे ओषधि प्रयोग की वेला समाप्त हो जाय । फिर तुम अपने घर लौट आना ॥ ४१ ॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा कालनेमिरुवाच तम् ।
रावणेश ! वचो मेऽद्य शृणु धारय तत्त्वतः ॥ ४२ ॥
प्रियं ते करवाण्येव न प्राणान् धारयाम्यहम् ।
मारीचस्य यथाऽरण्ये पुराऽभून् मृगरूपिणः ॥ ४३ ॥
तथैव मे न सन्देहो भविष्यति दशानन ! ।
हताः पुत्राश्च पौत्राश्च बान्धवा राक्षसाश्च ते ॥ ४४ ॥
घातयित्वाऽसुरकुलं जीवितेनापि किं तव ।
राज्येन वा सीतया वा किं देहेन जडात्मना ॥ ४५ ॥
सीतां प्रयच्छ रामाय राज्यं देहि विभीषणे ।
वनं याहि महाबाहो ! रम्यं मुनिगणाश्रयम् ॥ ४६ ॥
स्नात्वा प्रातः शुभजले कृत्वा सन्ध्यादिकाः क्रियाः ।
तत एकान्तमाश्रित्य सुखासनपरिग्रहः ॥ ४७ ॥
विसृज्य सर्वतः सङ्गमितरान् विषयान् बहिः ।
बहिःप्रवृत्ताक्षगणं शनैः प्रत्यक् प्रवाहय ॥ ४८ ॥

---

रावण की बात सुनकर कालनेमिने उससे कहा—हे महाराज ! इस समय मेरी बात सुनिए फिर उसे यथार्थ समझ कर धारण कीजिए ।।४२।। मैं अपने प्राणों की परवाह न कर आप के प्रिय कार्य का सम्पादन अवश्य करूँगा। इसमें सन्देह नहीं कि दण्डकारण्य में जो गति मारीच की हुई वही गति मेरी भी होगी। देखिए, आपके पुत्र-पौत्र, बान्धव एवं राक्षस मारे जा चुके हैं ॥ ४३-४४ ॥

इस प्रकार समस्त राक्षस कुल का नाश करा कर आप को अपने जीवन से, राज्य से, सीता से एवं जड़ देह से भी क्या लाभ है ? ॥ ४५ ॥ हे महाबाहो ! आप सीता, रामचन्द्र को तथा राज्य विभीषण को देकर मुनिगण सेवित परम सुरम्य तपोवन में जाइए ॥ ४६ ॥ प्रातःकाल पवित्र जल में स्नान कर सन्ध्योपासनादि कर्मों से निवृत्त हो किसी एकान्त देश में सुखासन से बैठ जाइए ॥ ४७ ॥ और सब प्रकार से असङ्ग होकर बाहरी विषयोंकी ओर दौड़ते हुए समस्त इन्द्रियों को बाहर से नियन्त्रित

प्रकृतेर्भिन्नमात्मानं विचारय सदानघ ! ।
चराऽचरं जगत्कृत्स्नं देहबुद्धीन्द्रियादिकम् ॥ ४९ ॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं दृश्यते श्रूयते च यत् ।
सैषा प्रकृतिरित्युक्ता सैव मायेति कीर्तिता ॥ ५० ॥
सर्ग-स्थिति-विनाशानां जगद्वृक्षस्य कारणम् ।
लोहित-श्वेत-कृष्णादिप्रजाः सृजति सर्वदा ॥ ५१ ॥
काम-क्रोधादि-पुत्राद्यान् हिंसा-तृष्णादि-कन्यकाः ।
मोहयन्त्यनिशं देवमात्मानं स्वैर्गुणैर्विभुम् ॥ ५२ ॥
कर्तृत्व-भोक्तृत्व-मुखान् स्वगुणानात्मनीश्वरे ।
आरोप्य स्ववशं कृत्वा तेन क्रीडति सर्वदा ॥ ५३ ॥
शुद्धोऽप्यात्मा यया युक्तः पश्यतीव सदा बहिः ।
विस्मृत्य च स्वमात्मानं मायागुणविमोहितः ॥ ५४ ॥

---

कर अन्तर्मुख कीजिए ॥ ४८ ॥ फिर हे अनघ ! अपने को 'मैं प्रकृति से सर्वथा भिन्न हूँ' ऐसा विचार कीजिए। देह, बुद्धि, इन्द्रियों से युक्त यह सारा चराचर जगत् एवं ब्रह्म से लेकर कीट पर्यन्त जो कुछ दिखाई अथवा सुनाई पड़ता है वह सब प्रकृति है, उसे माया भी कहते हैं ॥ ४९-५० ॥

वह इस जगत् रूपी वृक्ष के सृष्टि, स्थिति तथा विनाश का कारण है। और वही लोहित ( रजोगुण ), श्वेत ( सतोगुण ) तथा कृष्ण ( तमोगुण ) वर्ण वाली प्रजा की सृष्टि करती है ॥ ५१ ॥ उस माया के काम, क्रोध आदि पुत्र हैं तथा हिंसा एवं तृष्णा आदि कन्यायें हैं। यह माया ही अपने त्रिगुण स्वभाव से सर्वव्यापक आत्मदेव को मोहित करती रहती है ॥ ५२ ॥ कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि अपने में रहने वाले गुणों को अपने प्रभु आत्मा में आरोपित कर उसे अपने वशीभूत कर सर्वदा उससे खेलती रहती है ॥ ५३ ॥

जिस माया से युक्त होने पर उसके गुणों से मोहित हुआ यह आत्मा, स्वयं अपने स्वरूप को भूल जाता है। तथा शुद्ध होता हुआ भी सदा

यदा सद्गुरुणा युक्तो बोध्यते बोधरूपिणा ।
निवृत्तदृष्टिरात्मानं पश्यत्येव सदा स्फुटम् ॥ ५५ ॥
जीवन्मुक्तः सदा देही मुच्यते प्राकृतैर्गुणैः ।
त्वमप्येवं सदात्मानं विचार्य नियतेन्द्रियः ॥ ५६ ॥
प्रकृतेरन्यमात्मानं ज्ञात्वा मुक्तो भविष्यसि ।
ध्यातुं यद्यसमर्थोऽसि सगुणं देवमाश्रय ॥ ५७ ॥
हृत्पद्मकर्णिके स्वर्णपीठे मणिगणान्विते ।
मृदुश्लक्ष्णतरे तत्र जानक्या सह संस्थितम् ॥ ५८ ॥
वीरासनं विशालाक्षं विद्युत्पुञ्जनिभाम्बरम् ।
किरीट-हार-केयूर-कौस्तुभादिभिरन्वितम् ॥ ५९ ॥
नूपुरैः कटकैर्भान्तं तथैव वनमालया ।
लक्ष्मणेन धनुर्द्वन्द्वकरेण परिसेवितम् ॥ ६० ॥

---

बाह्य-विषयों का सेवन करता रहता है ॥ ५४ ॥ जब ज्ञान स्वरूप सद्गुरु का साक्षात्कार होने पर बोध होता है तो वह बाह्य विषयों से हट कर स्वयं अपने स्वरूप को स्पष्ट रूपसे देखता है और पुनः वह प्राकृत गुणों से छुटकारा पाकर जीवन्मुक्त हो जाता है ॥ ५५ ॥ अतः हे रावण ! आप संयतेन्द्रिय होकर इसी प्रकार अपने स्वरूप का चिन्तन कीजिए ॥ ५६ ॥ इससे आत्मा को प्रकृति से भिन्न जान कर आप मुक्त हो जायेंगे। यदि इस प्रकार का आत्म-चिन्तन करने में आप अपने को असमर्थ पाते हैं तो सगुण भगवान् का सहारा लीजिए ॥ ५७ ॥

हृदय-कमल की कर्णिका में मणिगण-जटित मृदुल और स्वच्छ स्वण सिंहासन पर जो प्रभु जानकी सहित वीरासन से विराजमान हैं, जिनके नेत्र विशाल तथा वस्त्र विद्युल्लता के समान तेजोमय हैं तथा जो किरीट, हार, केयूर और कौस्तुभमणि आदि आभूषणों से सुशोभित हैं, नूपुर, कटक और वनमाला आदि से जिनकी अपूर्व शोभा हो रही है। एवं श्री लक्ष्मण जी अपने हाथ में दो धनुष धारण कर जिनकी सेवा कर रहे हैं ॥ ५८-६० ॥

एवं ध्यात्वा सदात्मानं रामं सर्वहृदि स्थितम् ।
भक्त्या परमया युक्तो मुच्यते नात्र संशयः ॥ ६१ ॥
शृणु वै चरितं तस्य भक्तैर्नित्यमनन्यधीः ।
एवं चेत् कृतपूर्वाणि पापानि च महान्त्यपि ।
क्षणादेव विनश्यन्ति यथाग्नेस्तूलराशयः ॥ ६२ ॥
भजस्व रामं परिपूर्णमेकं विहाय वैरं निजभक्तियुक्तः ।
हृदा सदा भावितभावरूपमनामरूपं पुरुषं पुराणम् ॥ ६३ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
युद्धकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥



---

इस प्रकार सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में विराजमान आत्म-स्वरूप राम का अत्यन्त भक्ति पूर्वक ध्यान करने से मनुष्य मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ६१ ॥ अतः हे रावण ! तुम अनन्य बुद्धि होकर भक्तों के द्वारा उनके चरित्र का श्रवण करो। ऐसा करने से आप के द्वारा पूर्व में किये गये महान् से महान् पाप एक क्षण में इस प्रकार भस्म हो जायेंगे, जिस प्रकार अग्नि की एक चिनगारी से रूई का ढेर भस्म हो जाता है ॥ ६२ ॥

जो अद्वय तथा परिपूर्ण हैं, उन भगवान् राम को बैर त्याग कर आप भजन कीजिए। यद्यपि वे नाम रूप से रहित हैं, पुराण पुरुष हैं फिर भी भक्तों की भावना के अनुसार सगुण रूप धारण करते हैं ॥ ६३ ॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या सहित अध्यात्म-रामायण के
उमा-महेश्वर-संवाद में युद्धकाण्ड का षष्ठ सर्ग समाप्त ॥ ६ ॥



## सप्तमः सर्गः

( कालनेमिका कपट, हनुमान्जी द्वारा उसका वध, लक्ष्मण का सचेत होना और रावण का कुम्भकर्ण को जगाना )

श्रीमहादेव उवाच

कालनेमिवचः श्रुत्वा रावणोऽमृतसन्निभम् ।
जज्वाल क्रोधताम्राक्षः सर्पिरद्भिरिवाग्निभत् ॥ १ ॥
निहन्मि त्वां दुरात्मानं मच्छासनपराङ्मुखम् ।
परैः किञ्चिद् गृहीत्वा त्वं भाषसे रामकिङ्करः ॥ २ ॥
कालनेमिरुवाचेदं रावणं देव ! किं क्रुधा ? ।
न रोचते मे वचनं यदि गत्वा करोमि तत् ॥ ३ ॥
इत्युक्त्वा प्रययौ शीघ्रं कालनेमिर्महासुरः ।
नोदितो रावणेनैव हनूमद्-विघ्नकारणात् ॥ ४ ॥

---

परिणाम में अमृत के समान कालनेमि के वचन को सुनकर रावण इस प्रकार जल उठा, जिस प्रकार अग्नि-सन्तप्त घी जल से छनछुनाने लगता है। फिर क्रोध से आँखें लाल किये हुए वह बोला—॥ १ ॥ अरे ! मालूम पड़ता है कि तू शत्रु से कुछ लेकर राम के दास की भाँति इस प्रकार बातें बनाकर कहता है। मैं अभी आज्ञा का उल्लंघन करने वाले तुम्हारे जैसे दुष्ट को मार डालूँगा ॥ २ ॥

तब कालनेमि ने रावण से कहा—देव ! क्रोध करने की क्या बात है ? यदि मेरा बात आपको अच्छी नहीं लगती तो जैसा आप कहते हैं, मैं अभी जाकर वही करता हूँ ॥ ३ ॥ ऐसा कहकर वह कालनेमि राक्षस रावण की प्रेरणा से हनुमान् के कार्य में विघ्न डालने के लिए बहुत शीघ्रता पूर्वक वहाँ से चल पड़ा ॥ ४ ॥

स गत्वा हिमवत्पार्श्वं तपोवनमकल्पयत् ।
तत्र शिष्यैः परिवृतो मुनिवेषधरः खलः ॥ ५ ॥
गच्छतो मार्गमासाद्य वायुसूनोर्महात्मनः ।
ततो गत्वा ददर्शाथ हनूमानाश्रमं शुभम् ॥ ६ ॥
चिन्तयामास मनसा श्रीमान् पवननन्दनः ।
पुरा न दृष्टमेतन्मे मुनिमण्डलमुत्तमम् ॥ ७ ॥
मार्गो विभ्रंशितो वा मे भ्रमो वा चित्तसम्भवः ।
यद्वाविश्याश्रमपदं दृष्ट्वा मुनिमशेषतः ॥ ८ ॥
पीत्वा जलं ततो यामि द्रोणाचलमनुत्तमम् ।
इत्युक्त्वा प्रविवेशाथ सर्वतो योजनायतम् ॥ ९ ॥
आश्रमं कदली-शाल-खर्जूर-पनसादिभिः ।
समावृतं पक्वफलैर्नम्रशाखैश्च पादपैः ॥१०॥
वैरभावविनिर्मुक्तं शुद्धं निर्मललक्षणम् ।
तस्मिन् महाश्रमे रम्ये कालनेमिः स राक्षसः ॥११॥

---

हिमालय पहाड़ की तराई में पहुँचकर उसने वायुपुत्र महात्मा हनुमान् के जाने वाले मार्ग में एक तपोवन का निर्माण किया । और वह दुष्ट स्वयं मुनि का वेष बनाकर शिष्य-वर्गों से घिरा हुआ वहीं स्थित हो गया । इधर हनुमान् जी ने जाते हुए उस आश्रम को देखा ॥ ५-६ ॥

तत्पश्चात् पवननन्दन हनुमान् ने मन-ही-मन सोचा—मैंने पहले इस मुनि-मण्डल को कभी नहीं देखा था ॥ ७ ॥ क्या मैं मार्ग भूल गया हूँ ? अथवा मेरे चित्त में किसी प्रकार का भ्रम उत्पन्न हो गया है । अस्तु, जो भी हो इस आश्रम में चलकर इन मुनीश्वरों का दर्शन करुँ ? ॥८॥ यहाँ जल पीकर पश्चात् द्रोणाचल पर्वत पर चलूँगा । ऐसा सोचकर वे एक योजन पर्यन्त घिरे हुए उस आश्रम में गये ॥ ९ ॥ उस आश्रम में केले, शाल, खजूर और कटहल आदि के वृक्ष थे, जिनको शाखायें पके हुए फलों से लदे होने के कारण नीचे की ओर झुकी हुई थीं ॥ १० ॥ वह परम पवित्र आश्रम वैरभाव से सर्वथा रहित था । उस अति सुरम्य आश्रम में

इन्द्रयोगं समास्थाय चकार शिवपूजनम् ।
हनूमानभिवाद्याह गौरवेण महासुरम् ॥१२॥
भगवन् ! रामदूतोऽहं हनूमान्नाम नामतः ।
रामकार्येण महता क्षीराब्धिं गन्तुमुद्यतः ॥१३॥
तृषा मां बाधते ब्रह्मन्नुदकं कुत्र विद्यते ? ।
यथेच्छं पातुमिच्छामि कथ्यतां मे मुनीश्वर ! ॥१४॥
तच्छ्रुत्वा मारुतेर्वाक्यं कालनेमिस्तमब्रवीत् ।
कमण्डलुगतं तोयं मम त्वं पातुमर्हसि ॥१५॥
भुङ्क्ष्व चेमानि पक्वानि फलानि तदनन्तरम् ।
निवसस्व सुखेनात्र निद्रामेहि त्वरास्तु मा ॥१६॥
भूतं भव्यं भविष्यं च जानामि तपसा स्वयम् ।
उत्थितो लक्ष्मणः सर्वे वानरा रामवीक्षिताः ॥१७॥
तच्छ्रुत्वा हनुमानाह कमण्डलुजलेन मे ।
न शाम्यत्यधिका तृष्णा ततो दर्शय मे जलम् ॥१८॥

---

वह कालनेमि राक्षस, ॥११॥ इन्द्रजाल विद्या का आश्रय लेकर शिवपूजन करने लगा। हनुमान् जी ने उसे श्रेष्ठ समझकर नमस्कार किया। पुनः बोले—॥ १२ ॥

भगवन् ! मैं राम का दूत हूँ। मेरा नाम हनुमान् है। मैं राम के एक विशेष कार्य से क्षीर-समुद्र को जा रहा हूँ ॥ १३ ॥ हे ब्रह्मन् ! में प्यास से व्याकुल हो रहा हूँ। अतः पर्याप्त जल पीना चाहता हूँ। इस आश्रम में आप बताइए कि जल कहाँ पर है ? ॥ १४ ॥ हनुमान् जी की बात सुनकर कालनेमि उनसे बोला—मेरे कमण्डलु का जल तुम पी सकते हो ॥ १५ ॥ जल पीने के बाद ये पके फल यहाँ मौजूद हैं, इन्हें खा लो। फिर थोड़ी देर यहाँ विश्राम कर सुख से सो लो। जल्दी बाजी मत करो ॥ १६ ॥

मैं अपनी तपस्या के प्रभाव से भूत, वर्त्तमान तथा भविष्य जानता हूँ। इस समय राम के देखने मात्र से लक्ष्मण तथा सभी वानर सचेत हो गये हैं ॥ १७ ॥ तब हनुमान् जी ने उससे कहा—इस कमण्डलु में जल

तथेत्याज्ञापयामास वटुं मायाविकल्पितम् ।
बटो ! दर्शय विस्तीर्णं वायुसूनोर्जलाशयम् ॥१९॥
निमील्य चाक्षिणी तोयं पीत्वाऽऽगच्छ ममाऽन्तिकम् ।
उपदेक्ष्यामि ते मन्त्रं येन द्रक्ष्यसि चौषधीः ॥२०॥
तथेति दर्शितं शीघ्रं बटुना सलिलाशयम् ।
प्रविश्य हनुमांस्तोयमपिबन् मीलितेक्षणः ॥२१॥
ततश्चागत्य मकरी महामाया महाकपिम् ।
अग्रसत्तं महावेगान् मारुतिं घोररूपिणी ॥२२॥
ततो ददर्श हनुमान् ग्रसन्तीं मकरीं रुषा ।
दारयामास हस्ताभ्यां वदनं सा ममार ह ॥२३॥
ततोऽन्तरिक्षे ददृशे दिव्यरूपधराङ्गना ।
धान्यमालीति विख्याता हनूमन्तमथाऽब्रवीत् ॥२४॥

---

तो थोड़ा है, मुझे प्यास अधिक लगी है, अतः इस जल से मेरी प्यास शान्त नहीं होगी। कृपा कर मुझे जलाशय ही दिखा दीजिए ॥ १८ ॥ तब उसने 'तथास्तु' कह कर माया से बने हुए एक ब्रह्मचारी को आज्ञा दी। ब्रह्मचारिन् ! इन हनुमान् को विस्तृत जलाशय दिखा दो ॥ १९ ॥

वह हनुमान् जी से बोला—देखो, तुम नेत्र बन्दकर जलाशय के जल को पीना। फिर जल पीने के पश्चात् मेरे पास चले आना, मैं तुम्हें मन्त्र का उपदेश करूँगा जिससे तुम्हें वह औषधि दिखाई देगी ॥ २० ॥ ब्रह्मचारी ने भी 'तथाऽस्तु' कहकर हनुमान् जी को जलाशय दिखा दिया। उसमें हनुमान् जी घुसकर अपने नेत्रों को बन्दकर जल पीने लगे ॥ २१ ॥ उसी समय महामायाविनी घोररूपिणी मकरी आकर शीघ्रता से हनुमान् जी को निगलने लगी ॥ २२ ॥ हनुमान् जी ने उस मकरी द्वारा अपने को निगलते देख अत्यन्त क्रुद्ध हो अपने हाथों से उसका मुँह फाड़ दिया। जिससे वह तत्काल मर गयी ॥ २३ ॥ इसी समय उन्हें दिव्य रूप धारण किये हुए एक स्त्री आकाश में दिखाई दी। जिसका नाम 'धान्यमाली' था, उसने हनुमान् जी से कहा—॥ २४ ॥

त्वत्प्रसादादहं शापाद् विमुक्ताऽस्मि कपीश्वर ! ।
शप्ताऽहं मुनिना पूर्वमप्सरा कारणान्तरे ॥२५॥
आश्रमे यस्तु ते दृष्टः कालनेमिर्महासुरः ।
रावणप्रहितो मार्गे विघ्नं कर्तुं तवाऽनघ ! ॥२६॥
मुनिवेषधरो नासौ मुनिर्विप्रविहिंसकः ।
जहि दुष्टं गच्छ शीघ्रं द्रोणाचलमनुत्तमम् ॥२७॥
गच्छाम्यहं ब्रह्मलोकं त्वत्स्पर्शाद्धतकल्मषा ।
इत्युक्त्वा सा ययौ स्वर्गं हनूमानप्ययाश्रमम् ॥२८॥
आगतं तं समालोक्य कालनेमिरभाषत ।
किं विलम्बेन महता तव वानरसत्तम ! ॥२९॥
गृहाण मत्तो मन्त्रांस्त्वं देहि मे गुरुदक्षिणाम् ।
इत्युक्तो हनुमान् मुष्टिं दृढं बद्ध्वाऽऽह राक्षसम् ॥३०॥

---

हे कपीश्वर ! मैं तुम्हारी कृपा से आज शाप से मुक्त हो गयी । पहले मैं अप्सरा थी । किसी कारण वश एक मुनि ने मुझे शाप दिया था ॥ २५ ॥ जिस पुरुष को तुमने उस आश्रम में देखा है, वह तो कालनेमि नामक महा राक्षस है । हे अनघ ! हनुमान् जी ! उसे रावण ने तुम्हारे मार्ग में विघ्न डालने के लिए भेजा है ॥ २६ ॥ वस्तुतः मुनि का वेष धारण किये हुए वह कोई मुनि नहीं है, वह तो ब्रह्म हत्यारा राक्षस है । तुम शीघ्र ही उस दुष्ट का वध करो । फिर पर्वत-श्रेष्ठ द्रोणाचल को जाइए ॥ २७ ॥ हे हनुमान् ! मैं तुम्हारे स्पर्श से निष्पाप होकर ब्रह्मलोक जा रही हूँ । ऐसा कहकर वह तो स्वर्गलोक चली गयी । और हनुमान् जी आश्रम की ओर चले ॥ २८ ॥

हनुमान् जी को आये देख कालनेमि ने कहा—हे वानरश्रेष्ठ ! अब विशेष विलम्ब करने से क्या लाभ है ? ॥ २९ ॥ प्रथम तुम मुझसे मन्त्र ग्रहण करो । पश्चात् मुझे गुरु-दक्षिणा दो । कालनेमि के इस प्रकार कहने पर हनुमान् जी ने अपनी मुट्ठी कसकर बाँध ली । फिर कालनेमि से

तथेत्याज्ञापयामास बटुं मायाविकल्पितम् ।
बटो ! दर्शय विस्तीर्णं वायुसूनोर्जलाशयम् ॥१९॥

निमील्य चाक्षिणी तोयं पीत्वाऽऽगच्छ ममाऽन्तिकम् ।
उपदेक्ष्यामि ते मन्त्रं येन द्रक्ष्यसि चौषधीः ॥२०॥

तथेति दर्शितं शीघ्रं बटुना सलिलाशयम् ।
प्रविश्य हनुमांस्तोयमपिबन् मीलितेक्षणः ॥२१॥

ततश्चागत्य मकरी महामाया महाकपिम् ।
अग्रसत्तं महावेगान् मारुतिं घोररूपिणी ॥२२॥

ततो ददर्श हनुमान् ग्रसन्तीं मकरीं रुषा ।
दारयामास हस्ताभ्यां वदनं सा ममार ह ॥२३॥

ततोऽन्तरिक्षे ददृशे दिव्यरूपधराङ्गना ।
धान्यमालीति विख्याता हनूमन्तमथाऽब्रवीत् ॥२४॥

---

तो थोड़ा है, मुझे प्यास अधिक लगी है, अतः इस जल से मेरी प्यास शान्त नहीं होगी। कृपा कर मुझे जलाशय ही दिखा दीजिए ॥ १८ ॥ तब उसने 'तथास्तु' कह कर माया से बने हुए एक ब्रह्मचारी को आज्ञा दी। ब्रह्मचारिन् ! इन हनुमान् को विस्तृत जलाशय दिखा दो ॥ १९ ॥

वह हनुमान् जी से बोला—देखो, तुम नेत्र बन्दकर जलाशय के जल को पीना। फिर जल पीने के पश्चात् मेरे पास चले आना, मैं तुम्हें मन्त्र का उपदेश करूँगा जिससे तुम्हें वह औषधि दिखाई देगी ॥ २० ॥ ब्रह्मचारी ने भी 'तथाऽस्तु' कहकर हनुमान् जी को जलाशय दिखा दिया। उसमें हनुमान् जी घुसकर अपने नेत्रों को बन्दकर जल पीने लगे ॥ २१ ॥ उसी समय महामायाविनी घोररूपिणी मकरी आकर शीघ्रता से हनुमान् जी को निगलने लगी ॥ २२ ॥ हनुमान् जी ने उस मकरी द्वारा अपने को निगलते देख अत्यन्त क्रुद्ध हो अपने हाथों से उसका मुँह फाड़ दिया। जिससे वह तत्काल मर गयी ॥ २३ ॥ इसी समय उन्हें दिव्य रूप धारण किये हुए एक स्त्री आकाश में दिखाई दी। जिसका नाम 'धान्यमाली' था, उसने हनुमान् जी से कहा—॥ २४ ॥

त्वत्प्रसादादहं शापाद् विमुक्ताऽस्मि कपीश्वर ! ।
शप्ताऽहं मुनिना पूर्वमप्सरा कारणान्तरे ॥२५॥
आश्रमे यस्तु ते दृष्टः कालनेमिर्महासुरः ।
रावणप्रहितो मार्गे विघ्नं कर्तुं तवाऽनघ ! ॥२६॥

मुनिवेषधरो नासौ मुनिर्विप्रविहिंसकः ।
जहि दुष्टं गच्छ शीघ्रं द्रोणाचलमनुत्तमम् ॥२७॥
गच्छाम्यहं ब्रह्मलोकं त्वत्स्पर्शाद्धतकल्मषा ।
इत्युक्त्वा सा ययौ स्वर्गं हनूमानप्ययाश्रमम् ॥२८॥

आगतं तं समालोक्य कालनेमिरभाषत ।
किं विलम्बेन महता तव वानरसत्तम ! ॥२९॥
गृहाण मत्तो मन्त्रांस्त्वं देहि मे गुरुदक्षिणाम् ।
इत्युक्तो हनुमान् मुष्टिं दृढं बद्ध्वाऽऽह राक्षसम् ॥३०॥

---

हे कपीश्वर ! मैं तुम्हारी कृपा से आज शाप से मुक्त हो गयी । पहले मैं अप्सरा थी । किसी कारण वश एक मुनि ने मुझे शाप दिया था ॥ २५ ॥ जिस पुरुष को तुमने उस आश्रम में देखा है, वह तो कालनेमि नामक महा राक्षस है । हे अनघ ! हनुमान् जी ! उसे रावण ने तुम्हारे मार्ग में विघ्न डालने के लिए भेजा है ॥ २६ ॥ वस्तुतः मुनि का वेष धारण किये हुए वह कोई मुनि नहीं है, वह तो ब्रह्म हत्यारा राक्षस है । तुम शीघ्र ही उस दुष्ट का वध करो । फिर पर्वत-श्रेष्ठ द्रोणाचल को जाइए ॥ २७ ॥ हे हनुमान् ! मैं तुम्हारे स्पर्श से निष्पाप होकर ब्रह्मलोक जा रही हूँ । ऐसा कहकर वह तो स्वर्गलोक चली गयी । और हनुमान् जी आश्रम की ओर चले ॥ २८ ॥

हनुमान् जी को आये देख कालनेमि ने कहा—हे वानरश्रेष्ठ ! अब विशेष विलम्ब करने से क्या लाभ है ? ॥ २९ ॥ प्रथम तुम मुझसे मन्त्र ग्रहण करो । पश्चात् मुझे गुरु-दक्षिणा दो । कालनेमि के इस प्रकार कहने पर हनुमान् जी ने अपनी मुट्ठी कसकर बाँध ली । फिर कालनेमि से

गृहाण दक्षिणामेतामित्युक्त्वा निजघान तम् ।
विसृज्य मुनिवेषं स कालनेमिर्महासुरः ॥३१॥
युयुधे वायुपुत्रेण नानामायाविधानतः ।
महामायिकदूतोऽसौ हनूमान् मायिनां रिपुः ॥३२॥
जघान मुष्टिना शीर्ष्णि भग्नमूर्धा ममार सः ।
ततः क्षीरनिधिं गत्वा दृष्ट्वा द्रोणं महागिरिम् ॥३३॥
अदृष्ट्वा चौषधीस्तत्र गिरिमुत्पाट्य सत्वरः ।
गृहीत्वा वायुवेगेन गत्वा रामस्य सन्निधिम् ॥३४॥
उवाच हनुमान् राममानीतोऽयं महागिरिः ।
यद्युक्तं कुरु देवेश ! विलम्बो नाऽत्र युज्यते ॥३५॥
श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं रामः सन्तुष्टमानसः ।
गृहीत्वा चौषधीः शीघ्रं सुषेणेन महामतिः ॥३६॥
चिकित्सां कारयामास लक्ष्मणाय महात्मने ।
ततः सुप्तोत्थित इव बुद्ध्वा प्रोवाच लक्ष्मणः ॥३७॥

---

कहा ॥ ३० ॥ 'प्रथम तुम मुझसे गुरु-दक्षिणा लो' ऐसा कहते हुए एक मुक्का मारा । उस मुक्के के लगते ही उसने मुनिवेष त्याग दिया ॥३१॥ और नाना प्रकार की माया रचकर हनुमान् जी से लड़ने लगा । किन्तु हनुमान् जी तो महामायावी श्रीराम के दूत थे और इन मायावी राक्षसों के शत्रु थे ॥३२॥ उन्होंने कालनेमि के सिर पर एक घूँसा तानकर ऐसा मारा कि उसका सिर फट गया । जिससे वह शीघ्र ही मर गया । पुनः वे क्षीर-समुद्र के समीप गये । और द्रोणाचल पर्वत को देखने लगे ॥३३॥ किन्तु कहीं भी उन्हें उस औषधि का पता न लगा । तब उन्होंने बड़ी शीघ्रता से उस पर्वत को उखाड़ कर वायु-वेग से रामचन्द्र जी के पास लाकर कहा— हे देवेश्वर ! मैं इस समूचे पर्वत को ही उखाड़ कर लाया हूँ । आप जो उचित समझें वैसा शीघ्र करें । इस कार्य में विलम्ब करना उचित नहीं है ॥ ३४–३५ ॥ हनुमान् की बात सुनकर राम बहुत प्रसन्न हुए । महा बुद्धिमान् श्रीराम ने औषधि लेकर सुषेण से महात्मा लक्ष्मण की

तिष्ठ तिष्ठ क्व गन्तासि हन्मीदानीं दशानन ! ।
इति ब्रुवन्तमालोक्य मूर्ध्न्यवघ्राय राघवः ॥३८॥
मारुतिं प्राह वत्साद्य त्वत्प्रसादान्महाकपे ! ।
निरामयं प्रपश्यामि लक्ष्मणं भ्रातरं मम ॥३९॥
इत्युक्त्वा वानरैः सार्धं सुग्रीवेण समन्वितः ।
विभीषणमतेनैव युद्धाय समवस्थितः ॥४०॥
पाषाणैः पादपैश्चैव पर्वताग्रैश्च वानराः ।
युद्धायाभिमुखा भूत्वा ययुः सर्वे युयुत्सवः ॥४१॥
रावणो विंपथे रामबाणैर्विद्धो महासुरः ।
मातङ्ग इव सिंहेन गरुडेनेव पन्नगः ॥४२॥
अभिभूतोऽगमद् राजा राघवेण महात्मना ।
सिंहासने समाविश्य राक्षसानिदमब्रवीत् ॥४३॥

---

चिकित्सा करवायी। तदनन्तर सो कर उठे हुए की भाँति लक्ष्मण जी ने सचेत होकर कहा—॥ ३६–३७ ॥

हे दशानन ! ठहरो-ठहरो कहाँ भागकर जाओगे। मैं तुम्हें अभी मारता हूँ। इस प्रकार कहते हुए लक्ष्मण जी का सिर सूँघकर हनुमान् जी से कहा—हे वत्स, हे महाकपे ! तुम्हारी कृपा से मैं अपने भाई लक्ष्मण को जीता-जागता सकुशल देख रहा हूँ ॥ ३८-३९ ॥ हनुमान् जी से इस प्रकार कहकर श्रीरामचन्द्र जी विभीषण की सम्मति ले वानरों के साथ युद्ध के लिए तैयार हो गये ॥ ४० ॥ युद्ध के लिए उत्साह में भरे हुए वानर भी पाषाण, वृक्ष तथा पर्वत-शिखरों को लेकर रणभूमि में शत्रुओं के सामने आये ॥ ४१ ॥ इधर राम के बाणों से विद्ध हुआ रावण इस प्रकार कराह रहा था जैसे सिंह से आक्रान्त हाथी एवं गरुड़ से घायल किया गया साँप कराह रहा हो ॥ ४२ ॥

महात्मा श्रीरामचन्द्र जी से परास्त हुआ वह रावण लङ्कापुरी में जाकर सिंहासन पर बैठ कर राक्षसों से इस प्रकार कहने लगा—॥ ४३ ॥

मानुषेभ्यश्च मे मृत्युमाह पूर्वं पितामहः ।
मानुषो हि न मां हन्तुं शक्तोऽस्ति भुवि कश्चन ॥४४॥
ततो नारायणः साक्षान् मानुषोऽभून्न संशयः ।
रामो दाशरथिर्भूत्वा मां हन्तुं समुपस्थितः ॥४५॥
अनरण्येन यत्पूर्वं शप्तोऽहं राक्षसेश्वर ! ।
उत्पत्स्यते च मद्वंशे परमात्मा सनातनः ॥४६॥
तेन त्वं पुत्र-पौत्रश्च बान्धवैश्च समन्वितः ।
हनिष्यसे न सन्देह इत्युक्त्वा मां दिवं गतः ॥४७॥
स एव रामः संजातो मदर्थे मां हनिष्यति ।
कुम्भकर्णस्तु मूढात्मा सदा निद्रावशं गतः ॥४८॥
तं विबोध्य महासत्त्वमानयन्तु ममाऽन्तिकम् ।
इत्युक्तास्ते महाकायास्तूर्णं गत्वा तु यत्नतः ॥४९॥

---

पूर्वकाल में पितामह ब्रह्मा ने मुझसे कहा था कि तुम्हारी मृत्यु मनुष्य से होगी। किन्तु इस संसार में कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं है, जो मुझे मार सके ॥ ४४ ॥ इसलिए ज्ञात होता है कि साक्षात् नारायण ने ही मनुष्य के रूप में अवतार धारण किया है और वे दशरथ-नन्दन राम बनकर मुझे मारने के लिए यहाँ आये हैं। इसमें सन्देह नहीं । ४५ ॥ पूर्वकाल में मुझे अनरण्य ने भी शाप दिया था कि हे राक्षसेश्वर रावण ! मेरे कुल में सनातन परमात्मा मनुष्य बनकर अवतार लेंगे ॥ ४६ ॥ वे ही उत्पन्न होकर, पुत्र, पौत्र एवं बन्धुओं समेत तुम्हारा निश्चित रूप से वध करेंगे। ऐसा कहकर वे स्वर्ग चले गये ॥ ४७ ॥ वही राम मुझे मारने के लिए अवतार धारण कर यहाँ आये हुए हैं। और वे अवश्य ही मेरा बध करेंगे। हमारा भाई कुम्भकर्ण, जो बड़ा मूर्ख है। और सदा निद्रा के वशीभूत हो सोता रहता है ॥ ४८ ॥

हे राक्षसो ! तुम लोग उस महावीर को जगा कर मेरे पास लाओ । रावण-द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर राक्षस शीघ्रता से जाकर प्रयत्न

विबोध्य कुम्भश्रवणं निन्यू रावणसन्निधिम्।
नमस्कृत्य स राजानमासनोपरि संस्थितः ॥५०॥
तमाह रावणो राजा भ्रातरं दीनया गिरा।
कुम्भकर्ण! निबोध त्वं महत्कष्टमुपस्थितम् ॥५१॥
रामेण निहताः शूराः पुत्राः पौत्राश्च बान्धवाः।
किं कर्तव्यमिदानीं मे मृत्युकाल उपस्थिते ॥५२॥
एष दाशरथी रामः सुग्रीवसहितो बली।
समुद्रं सबलस्तीर्त्वा मूलं नः परिकृन्तति ॥५३॥
ये राक्षसा मुख्यतमास्ते हता वानरैर्युधि।
वानराणां क्षयं युद्धे न पश्यामि कदाचन ॥५४॥
नाशयस्व महाबाहो! यदर्थं परिबोधितः।
भ्रातुरर्थे महासत्त्व! कुरु कर्म सुदुष्करम् ॥५५॥

---

पूर्वक कुम्भकर्ण को जगा कर रावण के समीप उसे ले आये। वहाँ पहुँच कर उसने भी राजा को प्रणाम किया। और आसन पर बैठ गया ॥ ४९-५० ॥ फिर राजा रावण ने बड़ी दीन वाणी से भाई कुम्भकर्ण से कहा—भाई कुम्भकर्ण! इस समय मेरे ऊपर घोर संकट आया हुआ है, सो तुम सुनो ॥ ५१ ॥ राम ने हमारे समस्त शूर-वीर, पुत्र, पौत्र तथा बान्धवों को मार डाला है। हे भाई! अब मेरे मृत्यु का समय उपस्थित हो गया है, अतः अब मुझे क्या करना चाहिए? ॥ ५२ ॥ यह महाबली दशरथ-नन्दन राम सुग्रीव के साथ दल-बल सहित समुद्र को पार कर हम लोगों की जड़ काट रहा है ॥ ५३ ॥ हमारे प्रधान-प्रधान राक्षस युद्ध में वानरों के द्वारा मार डाले गये। किन्तु इन वानरों का क्षय होता हुआ मुझे कभी दिखाई नहीं देता ॥ ५४ ॥

हे महाबाहो! मैंने तुम्हें इसी लिए जगाया है कि तुम इनका नाश करो। हे महावीर! तुम भाई के लिए इस प्रकार का दुष्कर कार्य

श्रुत्वा तद्रावणेन्द्रस्य वचनं परिदेवितम् ।
कुम्भकर्णो जहासोच्चैर्वचनं चेदमब्रवीत् ॥५६॥
पुरा मन्त्रविचारे ते गदितं यन्मया नृप !
तदद्य त्वामुपगतं फलं पापस्य कर्मणः ॥५७॥
पूर्वमेव मया प्रोक्तो रामो नारायणः परः ।
सीता च योगमायेति बोधितोऽपि न बुध्यसे ॥५८॥
एकदाऽहं वने सानौ विशालायां स्थितो निशि ।
दृष्टो मया मुनिः साक्षान्नारदो दिव्यदर्शनः ॥५९॥
तमब्रवं महाभाग ! कुतो गन्ताऽसि मे वद ? ।
इत्युक्तो नारदः प्राह देवानां मन्त्रणे स्थितः ॥६०॥
तत्रोत्पन्नमुदन्तं ते वक्ष्यामि शृणु तत्त्वतः ।
युवाभ्यां पीडिता देवाः सर्वे विष्णुमुपागताः ॥६१॥
ऊचुस्ते देवदेवेशं स्तुत्वा भक्त्या समाहिताः ।
जहि रावणमक्षोभ्यं देव ! त्रैलोक्यकण्टकम् ॥६२॥

---

करो ॥ ५५ ॥ राजा रावण के इस प्रकार करुणापूर्ण वचन को सुन कर कुम्भकर्ण ठठा कर हँसा । और इस प्रकार कहने लगा—॥ ५६ ॥ हे राजन् ! पूर्वकाल में मन्त्रणा करते समय मैंने जैसा कहा था, तुम्हारे पापों के फलस्वरूप वही बात आज सामने आ गयी ॥ ५७ ॥ मैंने पूर्व काल में आप से कहा था कि, राम साक्षात् परात्मा नारायण हैं । और यह सीता उनकी योगमाया हैं, किन्तु आप तो समझाने पर भी नहीं मानते ॥ ५८ ॥

एक दिन रात में मैं एक विशाल शिला पर वन में बैठा था कि मुझे दिव्य मूर्ति साक्षात् देवर्षि नारद दिखाई पड़े ॥ ५९ ॥ उन्हें देखकर मैंने उनसे पूछा कि हे महाभाग ! आप कहाँ से आ रहे हैं ? मेरे ऐसा पूछने पर उन्होंने कहा—मैं अभी तक देवताओं की एक गोष्ठी में था ॥ ६० ॥ वहाँ जिस प्रकार की घटना घटी, उसे ज्यों-की-त्यों तुम्हें सुनाता हूँ । तुम दोनों भाइयों से अत्यन्त पीडित हुए देवगण विष्णु भगवान् के पास गये ॥ ६१ ॥ और उन देवदेवेश की बड़ी एकाग्रता तथा भक्ति के साथ

मानुषेण मृतिस्तस्य कल्पिता ब्राह्मणा पुरा ।
अतस्त्वं मानुषो भूत्वा जहि रावणकण्टकम् ॥६३॥
तथेत्याह महाविष्णुः सत्यसङ्कल्प ईश्वरः ।
जातो रघुकुले देवो राम इत्यभिविश्रुतः ॥६४॥
स हनिष्यति वः सर्वानित्युक्त्वा प्रययौ मुनिः ।
अतो जानीहि रामं त्वं परं ब्रह्म सनातनम् ॥६५॥
त्यज वैरं भजस्वाऽद्य मायामानुषविग्रहम् ।
भजतो भक्तिभावेन प्रसीदति रघूत्तमः ॥६६॥
भक्तिर्जनित्री ज्ञानस्य भक्तिर्मोक्षप्रदायिनी ।
भक्तिहीनेन यत् किञ्चित् कृतं सर्वमसत्समम् ॥६७॥
अवताराः सुबहवो विष्णोर्लीलानुकारिणः ।
तेषां सहस्रसदृशो रामो ज्ञानमयः शिवः ॥६८॥

---

स्तुति कर कहने लगे—। हे देव ! त्रैलोक्य के कण्टक स्वरूप इस दुराधर्ष रावण को शीघ्र मारिए ॥ ६२ ॥ पूर्वकाल में ब्रह्माने उसकी मृत्यु मनुष्य के हाथ से होने को लिखा है। अतः आप मनुष्य रूप से अवतार लेकर रावण रूप कण्टक को नष्ट कीजिए ॥ ६३ ॥ तब सत्य-संकल्प भगवान् विष्णु ने 'बहुत अच्छा' कहा। इस समय वे ही रघुकुल में उत्पन्न होकर राम के नाम से विख्यात हुए हैं ॥ ६४ ॥ वे तुम सभी को मारेंगे। ऐसा कह कर देवर्षि नारद चल गये। अतः हे भाई ! आप राम को सनातन ब्रह्म जानिए ॥ ६५ ॥ उनसे वैर-भावना परित्याग कीजिए और माया मानव स्वरूप भगवान् का भजन कीजिए। भक्ति-भाव से भजन करने वालों के ऊपर वे राम अवश्य प्रसन्न होते हैं ॥ ६६ ॥ भक्ति ज्ञान की जननी है, भक्ति मोक्ष को देने वाली है। भक्ति से हीन पुरुष जो कुछ करता है वह न किये के बराबर ही है ॥ ६७ ॥ ऐसे तो विष्णु के स्वरूपानुसार लीला करने वाले असंख्य अवतार हैं किन्तु परम कल्याणकारी ज्ञानस्वरूप राम का यह अवतार उन अवतारों की अपेक्षा सहस्र गुना

रामं भजन्ति निपुणा मनसा वचसानिशम् ।
अनायासेन संसारं तीर्त्वा यान्ति हरेः पदम् ॥६९॥
ये राममेव सततं भुवि शुद्धसत्त्वा
ध्यायन्ति तस्य चरितानि पठन्ति सन्तः ।
मुक्तास्त एव भवभोगमहाहिपाशैः
सीतापतेः पदमनन्तसुखं प्रयान्ति ॥७०॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
युद्धकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥



## अष्टमः सर्गः

( कुम्भकर्ण-वध )

श्रीमहादेव उवाच

कुम्भकर्णवचः श्रुत्वा भ्रुकुटीविकटाननः ।
दशग्रीवो जगादेदमासनादुत्पतन्निव ॥ १ ॥

---

बड़ा है ॥ ६८ ॥ इसी लिए चतुर लोग मन और वाणी से रात-दिन भगवान् राम का भजन करते हैं। और विना प्रयास के संसार को पार कर श्री हरि के परम धाम में लीन हो जाते हैं ॥ ६९ ॥

इस संसार में विशुद्ध अन्तःकरण वाले जो सज्जन निरन्तर केवल राम का ही ध्यान करते हैं। तथा उनके चरित्र का पाठ करते हैं, वे सांसारिक विषय रूप नाग-पाश से छूटकर श्रीसीतापति के अनन्त सुखमय चरण-कमलों को प्राप्त करते हैं ॥ ७० ॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दीव्याख्या विभूषित अध्यात्म-रामायण के उमा-महेश्वर संवाद में युद्धकाण्ड का सातवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७ ॥



श्री महादेव जी ने कहा—हे पार्वती ! कुम्भ-कर्ण की बात सुनकर रावण के मुख भ्रुकुटी के टेढ़ी हो जाने से महा भयानक हो गये और

त्वमानीतो न मे ज्ञानबोधनाय सुबुद्धिमान् ।
मया कृतं समीकृत्य युध्यस्व यदि रोचते ॥ २ ॥
नो चेद् गच्छ सुषुप्त्यर्थं निद्रा त्वां बाधतेऽधुना ।
रावणस्य वचः श्रुत्वा कुम्भकर्णो महाबलः ॥ ३ ॥
रुष्टोऽयमिति विज्ञाय तूर्णं युद्धाय निर्ययौ ।
स लङ्घयित्वा प्राकारं महापर्वतसन्निभः ॥ ४ ॥
निर्ययौ नगरात्तूर्णं भीषयन् हरिसैनिकान् ।
स ननाद महानादं समुद्रमभिनादयन् ॥ ५ ॥
वानरान् कालयामास बाहुभ्यां भक्षयन् रुषा ।
कुम्भकर्णं तदा दृष्ट्वा सपक्षमिव पर्वतम् ॥ ६ ॥
दुद्रुवुर्वानराः सर्वे कालान्तकमिवाऽखिलाः ।
भ्रमन्तं हरिवाहिन्यां मुद्गरेण महाबलम् ॥ ७ ॥

---

वह अपने राज-सिंहासन से उछलते हुए के समान इस प्रकार कहने लगा—॥ १ ॥ मैं जानता कि तुम बड़े बुद्धिमान् हो किन्तु मैंने तुम्हें इस समय ज्ञानोपदेश करने के लिए नहीं जगाया है । तुम्हें यदि उचित जान पड़े तो मेरे कार्य को ठीक-ठीक समझ कर युद्ध करो ॥ २ ॥ नहीं तो तुम अभी सोने के लिए चले जाओ । तुम्हें नींद आ रही होगी । रावण की बात सुनकर महाबलवान् कुम्भकर्ण ॥ ३ ॥ यह जान कर कि 'रावण रुष्ट हो गया है' इसलिए वह तुरन्त युद्ध के लिए चल पड़ा । महान् पर्वत के समान वह विशाल काय कुम्भकर्ण परकोटे को लाँघ कर युद्ध के लिए नगर से बाहर आया । उस समय उसने इतनी घनघोर गर्जना की कि समस्त वानर सैनिक भयभीत हो गये । एवं उसकी प्रतिध्वनि से समुद्र भी गूँज उठा ॥४–५॥ फिर वह क्रोध से अपनी भुजाओं द्वारा वानरों को निगल-निगल कर नष्ट करने लगा । तदनन्तर वे सभी वानर सपक्ष पर्वत के समान उस विशालकाय कुम्भकर्ण को देखते ही इस प्रकार भागने लगे, जैसे सभी लोग यमराज को देखकर भागते हैं ।

इसी समय महाबली कुम्भकर्ण को मुद्गर धारण कर वानर सेना में घूमते स्थान-स्थान पर वानरों को मारते तथा वेग से उन्हें भक्षण करते

कालयन्तं हरीन् वेगाद् भक्षयन्तं समन्ततः ।
चूर्णयन्तं मुद्गरेण पाणिपादैरनेकधा ॥ ८ ॥
कुम्भकर्णं तदा दृष्ट्वा गदापाणिर्विभीषणः ।
ननाम चरणं तस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य बुद्धिमान् ॥ ९ ॥
विभीषणोऽहं भ्रातुर्मे दयां कुरु महामते ! ।
रावणस्तु मया भ्रातर्बहुधा परिबोधितः ॥१०॥
सीतां देहीति रामाय रामः साक्षाज्जनार्दनः ।
न शृणोति च मां हन्तुं खड्गमुद्यम्य चोक्तवान् ॥११॥
धिक् त्वां गच्छेति मां हत्वा पदा पापिभिरावृतः ।
चतुर्भिर्मन्त्रिभिः सार्धं रामं शरणमागतम् ॥१२॥
तच्छ्रुत्वा कुम्भकर्णोऽपि ज्ञात्वा भ्रातरमागतम् ।
समालिङ्ग्य च वत्स ! त्वं जीव रामपदाश्रयात् ॥१३॥
कुलसंरक्षणार्थाय राक्षसानां हिताय च ।
महाभागवतोऽसि त्वं पुरा मे नारदाच्छ्रुतम् ॥१४॥

---

एवं मुद्गर तथा लात-घूसों से एवं अन्य प्रकार से भी वानरों को चकनाचूर करते देख गदा धारण किये परम बुद्धिमान् विभीषण ने उस अपने जेठे भाई के चरणों में प्रणाम किया ॥ ८–९ ॥ फिर वह कहने लगा—हे महामते ! मैं आपका भाई विभीषण हूँ। अतः आप मेरे ऊपर दया कीजिए। हे भाई ! मैंने रावण को अनेक बार समझाया ॥ १० ॥ कि राम साक्षात् नारायण विष्ण हैं, तुम उन्हें सीता को सौंप दो। किन्तु उसने मेरी बात नहीं सुनी और मुझे मारने के लिए तलवार खींच कर कहा ॥ ११ ॥ तुझे धिक्कार है, तू यहाँ से 'अभी चला जा' पापी मन्त्रियों से घिरे हुए उस रावण ने ऐसा कहकर मुझे लात मारा। तब मैं अपने चार मन्त्रियों के साथ राम की शरण चला आया ॥ १२ ॥

विभीषण के ऐसा कहने पर कुम्भकर्ण ने भी अपने भाई को आया हुआ जान उसे हृदय से लगा लिया। और कहा—हे वत्स ! तुम राम के

गच्छ तात! ममेदानीं दृश्यते न च किञ्चन।
मदीयो वा परो वाऽपि मदमत्त-विलोचनः ॥१५॥
इत्युक्तोऽश्रुमुखो भ्रातुश्चरणावभिवन्द्य सः।
रामपार्श्वमुपागत्य चिन्तापर उपस्थितः ॥१६॥
कुम्भकर्णोऽपि हस्ताभ्यां पदाभ्यां पेषयन् हरीन्।
चचार वानरीं सेनां कालयन् गन्धहस्तिवत् ॥१७॥
दृष्ट्वा तं राघवः क्रुद्धो वायव्यं शस्त्रमादरात्।
चिक्षेप कुम्भकर्णाय तेन चिच्छेद रक्षसः ॥१८॥
समुद्गरं दक्षहस्तं तेन घोरं ननाद सः।
स हस्तः पतितो भूमावनेकानर्दयन् कपीन् ॥१९॥
पर्यन्तमाश्रिताः सर्वे वानरा भयवेपिताः।
रामराक्षसयोर्युद्धं पश्यन्तः पर्यवस्थिताः ॥२०॥

---

चरण का आश्रय प्राप्त कर अपने कुल के संरक्षण के लिए तथा राक्षसों के हित के चिरञ्जीवी रहो। पूर्व काल में मैंने नारद से सुना था कि तुम बड़े भगवद्-भक्त हो ॥ १३–१४ ॥ हे तात! इस समय मेरी आँखें मद्य से मतवाली हो रही हैं, मुझे अपना-पराया कुछ भी नहीं सूझ रहा है। अतः तुम शीघ्र चले जाओ ॥ १५ ॥ भाई कुम्भकर्ण के इस प्रकार कहने पर विभीषण ने रोते हुए उसके चरणों में प्रणाम किया। फिर चिन्तित होकर राम के पास उपस्थित हो गये ॥ १६ ॥

वह कुम्भकर्ण भी अपने हाथों तथा पैरों से मदमत्त गजराज के समान वानरी सेना को रौंदता हुआ युद्ध में घूमने लगा ॥ १७ ॥ कुम्भकर्ण को देख श्री रामचन्द्र जी ने क्रुद्ध हो बड़ी सावधानी से उस पर वायव्य अस्त्र का प्रयोग किया। जिससे उस राक्षस का मुद्गर सहित दाहिना हाथ कट गया ॥ १८ ॥ हाथ के कट जाने से वह मदमत्त निशाचर गर्जना करने लगा तथा उसका वह कटा हुआ हाथ गिरते समय अनेक वानरों को कुचल कर पृथ्वी पर गिरा ॥ १९ ॥ फिर भय से सन्त्रस्त

कुम्भकर्णश्छिन्नहस्तः शालमुद्यम्य वेगतः ।
समरे राघवं हन्तुं दुद्राव तमथोऽच्छिनत् ॥२१॥
शालेन सहितं वामहस्तमैन्द्रेण राघवः ।
छिन्नबाहुमथायान्तं नर्दन्तं वीक्ष्य राघवः ॥२२॥
द्वावर्धचन्द्रौ निशितावादायास्य पदद्वयम् ।
चिच्छेद पतितौ पादौ लङ्काद्वारि महास्वनौ ॥२३॥
निकृत्तपाणिपादोऽपि कुम्भकर्णोऽतिभीषणः ।
बडवामुखवद् वक्त्रं व्यादाय रघुनन्दनम् ॥२४॥
अभिदुद्राव निनदन् राहुश्चन्द्रमसं यथा ।
अपूरयच्छिताग्रैश्च सायकैस्तद्रघूत्तमः ॥२५॥
शरपूरितवक्त्रोऽसौ चुक्रोशातिभयङ्करः ।
अथ सूर्यप्रतीकाशमैन्द्रं शरमनुत्तमम् ॥२६॥

---

हुए वानर इधर-उधर खड़े हो गये । और चारों ओर से घेर कर राम एवं राक्षस कुम्भकर्ण का महाभयानक युद्ध देखने लगे ॥ २० ॥

कुम्भकर्ण भी अपने हाथ के कट जाने पर दूसरे हाथ से शाल वृक्ष उठा कर बड़े वेग से राम को मारने के लिए दौड़ा । पुनः राम ने ऐन्द्र अस्त्र से उसका शाल समेत दूसरा बायाँ हाथ भी काट डाला । इस प्रकार दोनों भुजाओं के कट जाने पर भी गर्ज-गर्ज कर अपनी ओर आते हुए देख कर श्री रामचन्द्रजी ने पुनः अपने तीक्ष्ण एवं अर्ध-चन्द्राकार बाणों को चढ़ाकर उसके दोनों पैर काट डाले । इस प्रकार उसके दोनों चरण भी महान् शब्द करते हुए लङ्का के दरवाजे पर गिर गये ॥२१-२३॥

चरण एवं हाथों के कट जाने पर वह भयानक कुम्भकर्ण बड़वानल के समान अपने भयानक मुख को फाड़ कर रामचन्द्रजी को निगलने के लिए बड़े वेग से इस प्रकार दौड़ा, जैसे चन्द्रमा को ग्रसने के लिए राहु दौड़ता है । फिर राम ने अपने तीक्ष्ण बाण चलाकर उसका मुख बाणों से भर दिया ॥ २४–२५ ॥ बाणों से मुख भर दिये जाने पर वह भयानक राक्षस बड़े ऊँचे स्वर से चिल्लाने लगा । तब रामचन्द्रजी ने वज्र के समान कठोर एवं सूर्य के समान देदीप्यमान् दिव्य ऐन्द्रास्त्र का सन्धान कर उसे

वज्राशनिसमं रामश्चिक्षेपासुरमृत्यवे ।
स तत्पर्वतसङ्काशं स्फुरत्कुण्डलदंष्ट्रकम् ॥ २७ ॥
चकर्त रक्षोऽधिपतेः शिरो वृत्रमिवाशनिः ।
तच्छिरः पतितं लङ्काद्वारि कायो महोदधौ ॥ २८ ॥
शिरोऽस्य रोधयद् द्वारं कायो नक्राद्यचूर्णयत् ।
ततो देवाः स-ऋषयो गन्धर्वाः पन्नगाः खगाः ॥ २९ ॥
सिद्धा यक्षा गुह्यकाश्च अप्सरोभिश्च राघवम् ।
ईडिरे कुसुमासारैर्वर्षन्तश्चाऽभिनन्दिताः ॥ ३० ॥
आजगाम तदा रामं द्रष्टुं देवमुनीश्वरः ।
नारदो गगनात्तूर्णं स्वभासा भासयन् दिशः ॥ ३१ ॥
राममिन्दीवरश्याममुदाराङ्गं धनुर्धरम् ।
ईषत्ताम्र विशालाक्षमैन्द्रास्त्राश्चित-बाहुकम् ॥ ३२ ॥

---

मारने के लिए छोड़ा । उस बाण ने कुम्भकर्ण के पर्वत समान शिर को, जिसमें कुण्डल तथा दाँत चमक रहे थे, उसे इस प्रकार काट डाला जिस प्रकार इन्द्र ने अपने वज्र से वृत्रासुर का शिर काटा था ।

इस प्रकार कुम्भकर्ण का शिर लङ्का के द्वार पर एवं धड़ समुद्र में जाकर गिरा ॥२१–२८॥ उसके शिर ने लङ्का के दरवाजे को रोक दिया तथा धड़ ने बहुत से नक्र (घड़ियाल) आदि जल-जन्तुओं को कुचल दिया। इस प्रकार कुम्भकर्ण के मारे जाने पर ऋषियों सहित देवता गण एवं अप्सराओं सहित गन्धर्व, नाग, पक्षी, सिद्ध, यक्ष और गुह्यक आदि अति प्रसन्न हो रामचन्द्र जी पर पुष्पों की वर्षा करते हुए उनकी स्तुति करने लगे ॥ २९–३० ॥

इसी समय अपने तेज से दिशाओं को प्रकाशित करते हुए देवर्षि नारद भगवान् राम के दर्शन के लिए आकाश मार्ग से आये ॥ ३१ ॥ नील कमल के समान श्याम वर्ण अत्यन्त मनोहर, धनुष धारण किये हुए, कुछ लाल वर्ण एवं विशाल, नेत्रों से युक्त भुजाओं में ऐन्द्रास्त्र धारण

दयार्द्रदृष्ट्या पश्यन्तं वानरांञ्छरपीडितान् ।
दृष्ट्वा गद्गदया वाचा भक्त्या स्तोतुं प्रचक्रमे ॥ ३३ ॥

नारद उवाच

देवदेव ! जगन्नाथ ! परमात्मन् ! सनातन ! ।
नारायणाऽखिलाधार विश्वसाक्षिन् ! नमोऽस्तु ते ॥ ३४ ॥
विशुद्धज्ञानरूपोऽपि त्वं लोकानतिवञ्चयन् ।
मायया मनुजाकारः सुख-दुःखादिमानिव ॥ ३५ ॥
त्वं मायया गुह्यमानः सर्वेषां हृदि संस्थितः ।
स्वयंज्योतिः स्वभावस्त्वं व्यक्त एवामलात्मनाम् ॥ ३६ ॥
उन्मीलयन् सृजस्येतन्नेत्रं राम ! जगत्त्रयम् ।
उपसंह्रियते सर्वं त्वया चक्षुर्निमीलनात् ॥ ३७ ॥
यस्मिन् सर्वमिदं भाति यतश्चैतच्चराऽचरम् ।
यस्मान्न किञ्चिल्लोकेऽस्मिंस्तस्मै ते ब्रह्मणे नमः ॥ ३८ ॥

---

किये हुए और शरपीडित वानरों की करुणा भरी दृष्टि से देखते हुए श्रीराम को देख कर नारद जी गद्गद कण्ठ हो उनकी स्तुति करने लगे ॥ ३२–३३ ॥

नारद ने कहा—हे देवदेव, हे जगत्स्वामिन् ! हे परमात्मन् ! हे सनातन-पुरुष, हे नारायण, हे सर्वाधार, हे विश्वसाक्षिन् ! आप को नमस्कार है ॥३४॥ यद्यपि आप विशुद्ध विज्ञान स्वरूप हैं तथापि माया से मनुष्य रूप धारण कर सुखी तथा दुःखी जैसे प्रतीत हुए संसारी पुरुषों को ठगते रहते हैं ॥ ३५ ॥

आप माया के आवरण से आच्छादित होकर भी सर्वान्तर्यामि रूप से सबके हृदय में निवास करते हैं। आप स्वयं प्रकाश स्वरूप हैं एवं निर्मल चित्त वाले लोगों को ही आपका साक्षात्कार होता है ॥ ३६ ॥ आप अपने नेत्र को खोलते ही समस्त त्रिलोकी की रचना करते हैं। तथा नेत्र बन्द करते ही इस जगत् का संहार कर देते हैं ॥ ३७ ॥ यह सारा जगत् जिसमें भासित होता है, तथा जिससे इस जगत् की उत्पत्ति हुई है एवं जिसके अतिरिक्त संसार में और कुछ भी नहीं है, उस ब्रह्म स्वरूप आप को नमस्कार है ॥ ३८ ॥

प्रकृतिं पुरुषं कालं व्यक्ताऽव्यक्तस्वरूपिणम् ।
यं जानन्ति मुनिश्रेष्ठास्तस्मै रामाय ते नमः ॥ ३६ ॥
विकाररहितं शुद्धं ज्ञानरूपं श्रुतिर्जगौ ।
त्वां सर्वजगदाकारमूर्तिं चाप्याह सा श्रुतिः ॥ ४० ॥
विरोधो दृश्यते देव ! वैदिको वेदवादिनाम् ।
निश्चयं नाऽधिगच्छन्ति त्वत्प्रसादं विना बुधाः ॥ ४१ ॥
मायया क्रीडतो देव ! न विरोधो मनागपि ।
रश्मिजालं रवेर्यद्वद् दृश्यते जलवद् भ्रमात् ॥ ४२ ॥
भ्रान्तिज्ञानात्तथा राम ! त्वयि सर्वं प्रकल्प्यते ।
मनसोऽविषयो देव ! रूपं ते निर्गुणं परम् ॥ ४३ ॥
कथं दृश्यं भवेद् देव ! दृश्याभावे भजेत् कथम् ? ।
अतस्तवावतारेषु रूपाणि निपुणा बुधि ॥ ४४ ॥

---

श्रेष्ठ मुनिगण जिन्हें प्रकृति, पुरुष, काल एवं व्यक्त तथा अव्यक्त स्वरूप से जानते हैं, उन श्रीराम स्वरूप आप को नमस्कार है ॥ ३६ ॥ जिसे श्रुति, अव्यय, शुद्ध तथा ज्ञान स्वरूप कहकर वर्णन करती है एवं वही श्रुति जिसे जगदाकार रूप में वर्णन करती है ॥ ४० ॥

हे देव ! यद्यपि वेदबादियों का इस प्रकार वैदिक विरोध दिखाई पड़ता है, किन्तु आपकी कृपा के बिना विज्ञ-जन भी किसी निश्चय पर नहीं पहुँचते ॥ ४१ ॥ आप माया से ही क्रीडा कर रहे हैं, इस लिए इन वचनों में किञ्चित् मात्र भी विरोध नहीं है, जिस प्रकार सूर्य की किरणें भ्रम से जल के समान मालूम पड़ती हैं, उसी प्रकार यह सारा जगत् आप में अज्ञान के कारण परिकल्पित है। ऐसे तो आपका निर्गुण स्वरूप मन से भी अगोचर है ॥४२-४३॥ इसलिए आपका वह निर्गुण स्वरूप किस प्रकार किसी को दिखाई नहीं पड़ सकता है ? और उसके दिखाई न पड़ने पर उसका भजन भी किस प्रकार हो सकता है। अतः निपुण तथा बुद्धिमान् लोग आपके अवतारों में होने वाले सगुण रूप का चिन्तन किया करते हैं।

भजन्ति बुद्धिसम्पन्नास्तरन्त्येव भवार्णवम् ।
कामक्रोधादयस्तत्र बहवः परिपन्थिनः ॥ ४५ ॥
भीषयन्ति सदा चेतो मार्जारा मूषकं यथा ।
त्वन्नाम स्मरतां नित्यं त्वद्रूपमपि मानसे ॥ ४६ ॥
त्वत्पूजानिरतानां ते कथामृतपरात्मनाम् ।
त्वद्भक्तसङ्गिनां राम ! संसारो गोष्पदायते ॥ ४७ ॥
अतस्ते सगुणं रूपं ध्यात्वाऽहं सर्वदा हृदि ।
मुक्तश्चरामि लोकेषु पूज्योऽहं सर्वदैवतैः ॥ ४८ ॥
राम ! त्वया महत्कार्यं कृतं देवहितेच्छया ।
कुम्भकर्णवधेनाद्य भूभारोऽयं गतः प्रभो ! ॥ ४९ ॥
श्वो हनिष्यति सौमित्रिरिन्द्रजेतारमाहवे ।
हनिष्यसेऽथ राम ! त्वं परश्वो दशकन्धरम् ॥ ५० ॥

---

और ज्ञान प्राप्त कर संसार-समुद्र को पार कर जाते हैं। किन्तु इसमें भी काम-क्रोध आदि नाना प्रकार के विघ्न होते हैं ॥ ४४-४५ ॥ और जिस प्रकार बिल्ली चूहे को डराती है, उसी प्रकार वे भी चित्त को सदा भयभीत करते रहते हैं। हे प्रभो ! जो लोग आपके नाम का स्मरण करते हैं, चित्त में आपके स्वरूप का ध्यान करते हैं, आपकी पूजा में संलग्न रहते हैं आपके कथामृत का पान करते हैं एवं आपके भक्तों का सत्सङ्ग करते हैं उनके लिए दुस्तर संसार गोखुर के समान तुच्छ हो जाता है ॥ ४६-४७ ॥

इसी लिए मैं आपके सगुण स्वरूप का हृदय में ध्यान करता हुआ जीवन्मुक्त हो सभी लोकों में विचरता हूँ, तथा देवताओं से भी पूजा प्राप्त करता हूँ ॥ ४८ ॥

हे राम ! आपने देवताओं के हित की कामना से यह बहुत बड़ा काम किया है। हे प्रभो ! आज इस कुम्भकर्ण के बध से पृथ्वी का भार उतर गया है ॥४९॥ अब कल सुमित्रानन्दन लक्ष्मण युद्ध में मेघाद का वध करेंगे। और हे राम ! इसके बाद परसों आप रावण का वध करेंगे ॥५०॥

पश्यामि सर्वं देवेश ! सिद्धैः सह नभोगतः ।
अनुगृह्णीष्व मां देव ! गमिष्यामि सुरालयम् ॥ ५१ ॥
इत्युक्त्वा राममामन्त्र्य नारदो भगवानृषिः ।
ययौ देवैः पूज्यमानो ब्रह्मलोकमकल्मषम् ॥ ५२ ॥
भ्रातरं निहतं श्रुत्वा कुम्भकर्णं महाबलम् ।
रावणः शोकसन्तप्तो रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ ५३ ॥
मूर्च्छितः पतितो भूम्यावुत्थाय विललाप ह ।
पितृव्यं निहतं श्रुत्वा पितरं चाऽतिविह्वलम् ॥ ५४ ॥
इन्द्रजित् प्राह शोकार्तं त्यज शोकं महामते ! ।
मयि जीवति राजेन्द्र ! मेघनादे महाबले ॥ ५५ ॥
दुःखस्याऽवसरः कुत्र देवान्तक महामते ! ।
व्येतु ते दुःखमखिलं स्वस्थो भव महीपते ! ॥ ५६ ॥
सर्वं समीकरिष्यामि हनिष्यामि च वै रिपून् ।
गत्वा निकुम्भिलां सद्यस्तर्पयित्वा हुताशनम् ॥ ५७ ॥

---

हे देव ! मैं आकाश में स्थित होकर सिद्धों के साथ आप के इस चरित्र को देखूँगा। मुझ पर अनुग्रह कीजिए। मैं स्वर्गलोक को जा रहा हूँ ॥५१॥

इस प्रकार देवर्षि भगवान् नारद श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञा लेकर देवताओं से पूजित हो परम पवित्र ब्रह्मलोक चले गये ॥५२॥ इधर अक्लिष्ट कर्म करने वाले श्रीराम के द्वारा महाबलवान् भाई कुम्भकर्ण के बध का समाचार सुनकर रावण मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा। पुनः उठ कर शोक-सन्तप्त हो विलाप करने लगा। तब इन्द्रजित् ने अपने चाचा को मारा गया तथा उसके शोक से पिता को अत्यन्त विह्वल सुन, शोकार्त्त पिता से कहा—हे महामते ! शोक को दूर कीजिए। हे राजेन्द्र ! मुझ महाबली मेघनाद के जीते हुए आप को दुःखी होने का कारण ही कहाँ है। हे देवताओं के कालस्वरूप, महाबुद्धिमान् महीपाल ! आप अपना समस्त दुःख छोड़ कर शान्त होइए ॥५३-५६॥ मैं अभी सब ठीक किये

लब्ध्वा रथादिकं तस्मादजेयोऽहं भवाम्यरेः ।
इत्युक्त्वा त्वरितं गत्वा निर्दिष्टं हवनस्थलम् ॥ ५८ ॥
रक्तमाल्याम्बरधरो रक्तगन्धानुलेपनः ।
निकुम्भिलास्थले मौनी हवनायोपचक्रमे ॥ ५९ ॥
विभीषणोऽथ तच्छ्रुत्वा मेघनादस्य चेष्टितम् ।
प्राह रामाय सकलं होमारम्भं दुरात्मनः ॥ ६० ॥
समाप्यते चेद्धोमोऽयं मेघनादस्य दुर्मते ! ।
तदाजेयो भवेद्राम ! मेघनादः सुराऽसुरैः ॥ ६१ ॥
अतः शीघ्रं लक्ष्मणेन घातयिष्यामि रावणिम् ।
आज्ञापय मया सार्धं लक्ष्मणं बलिनां वरम् ।
हनिष्यति न सन्देहो मेघनादं तवाऽनुजः ॥ ६२ ॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

अहमेवागमिष्यामि हन्तुमिन्द्रजितं रिपुम् ।
आग्नेयेन महास्त्रेण सर्वराक्षसघातिना ॥ ६३ ॥

---

देता हूँ, मैं आप के इन शत्रुओं का वध अवश्य करूँगा। इस समय मैं निकुम्भिला के स्थान पर जा रहा हूँ। वहाँ अग्नि को तृप्त कर ॥५७॥ रथ आदि प्राप्त कर शत्रुओं से अजेय हो जाऊँगा। ऐसा कह कर वह निर्दिष्ट यज्ञशाला में गया ॥५७-५८॥ और उस निकुम्भिला स्थल में जा कर उसने, रक्त वस्त्र, रक्त वर्ण की माला एवं रक्त चन्दन का लेप धारण कर हवन करने लगा ॥५९॥

मेघनाद के द्वारा किये जाने वाले इस अभिचार का पता जब विभीषण को लगा, तो उसने रामचन्द्र से उस दुरात्मा के होमारम्भ का सारा समाचार सुनाया ॥६०॥ और कहा—हे राम ! यदि इस दुरात्मा मेघनाद का यह हवन निर्विघ्न समाप्त हुआ तो वह देवता अथवा असुर किसी से भी नहीं जीता जा सकेगा ॥६१॥ इसलिए मैं शीघ्रता से लक्ष्मण द्वारा उस रावण-पुत्र का बध करा दूँगा। आप बलवानों में श्रेष्ठ श्रीलक्ष्मण जी को मेरे साथ जाने की आज्ञा दीजिए। आप के छोटे भाई लक्ष्मण मेघनाद का बध अवश्य करेंगे, इसमें सन्देह नहीं ॥ ६२ ॥

श्रीराम ने कहा—विभीषण ! सम्पूर्ण राक्षसों को मारने वाले इस

विभीषणोऽपि तं प्राह नासावन्यैर्निहन्यते ।
यस्तु द्वादश वर्षाणि निद्राहारविवर्जितः ॥ ६४ ॥
तेनैव मृत्युर्निर्दिष्टो ब्रह्मणाऽस्य दुरात्मनः ।
लक्ष्मणस्तु अयोध्याया निर्गम्यायात् त्वया सह ॥ ६५ ॥
तदादि निद्राहारादीन् न जानाति रघूत्तम ! ।
सेवार्थं तव राजेन्द्र ! ज्ञातं सर्वमिदं मया ॥ ६६ ॥
तदाज्ञापय देवेश ! लक्ष्मणं त्वरया मया ।
हनिष्यति न सन्देहः शेषः साक्षाद्धराधरः ॥ ६७ ॥
त्वमेव साक्षाज्जगतामधीशो नारायणो लक्ष्मण एव शेषः ।
युवां धराभारनिवारणार्थं जातौ जगन्नाटकसूत्रधारौ ॥६८॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
युद्धकाण्डेऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥



---

आग्नेयास्त्र से स्वयं ही अपने उस इन्द्रजित् शत्रु का बध करने के लिए आ रहा हूँ ॥६३॥

तब विभीषण ने कहा—यह राक्षस किसी और के द्वारा नहीं मारा जा सकता। जो बारह वर्ष पर्यन्त निद्रा तथा भोजन को छोड़ दिया हो, उसी के द्वारा इस दुरात्मा की मृत्यु ब्रह्मा जी ने निश्चित की है। हे रघुनाथ जी ! लक्ष्मण जी जब से अयोध्या से निकल कर आप के साथ आये हैं तभी से ये निद्रा एवं आहार का नाम तक नहीं जानते। हे राजेन्द्र ! केवल आप की सेवा में लगे रहते हैं। मैं यह सभी बातें जानता हूँ ॥६४-६६॥ इस लिए हे देवेश ! आप शीघ्रता से लक्ष्मण को मेरे साथ जाने की आज्ञा दें। ये साक्षात् पृथ्वी को धारण करने वाले शेष हैं। अतः उस राक्षस को अवश्य मार डालेंगे, इसमें सन्देह नहीं ॥६७॥

आप ही साक्षात् जगत्पति नारायण हैं, और यह लक्ष्मण शेष हैं। आप दोनों इस जगत्-रूपी नाटक के सूत्रधार हैं तथा पृथ्वी का भार उतारने के लिए ही आप दोनों ने अवतार धारण किया है ॥६८॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या-विभूषित अध्यात्म-रामायण के
उमा-महेश्वर संवाद में युद्धकाण्ड का अष्टम सर्ग समाप्त ॥८॥



## नवमः सर्गः

( मेघनाद-वध )

श्रीमहादेव उवाच

विभीषणवचः श्रुत्वा रामो वाक्यमथाऽब्रवीत् ।
जानामि तस्य रौद्रस्य मायां कृत्स्नां विभीषण ! ॥ १ ॥

स हि ब्रह्मास्त्रविच्छूरो मायावी च महाबलः ।
जानामि लक्ष्मणस्यापि स्वरूपं मम सेवनम् ॥ २ ॥

ज्ञात्वैवासमहं तूष्णीं भविष्यत् कार्यगौरवात् ।
इत्युक्त्वा लक्ष्मणं प्राह रामो ज्ञानवतां वरः ॥ ३ ॥

गच्छ लक्ष्मण ! सैन्येन महता जहि रावणिम् ।
हनूमत्प्रमुखैः सर्वैर्यूथपैः सह लक्ष्मण ! ॥ ४ ॥

जाम्बवानृक्षराजोऽयं सह सैन्येन संवृतः ।
विभीषणश्च सचिवैः सह त्वामभियास्यति ॥ ५ ॥

---

श्री महादेव जी ने कहा—हे पार्वती ! इसके अनन्तर विभीषण की बात सुनकर श्री राम ने कहा—हे विभीषण ! मैं उस महाक्रूर दैत्य की सारी माया जानता हूँ ॥१॥ वह महाबलवान् शूर, ब्रह्मास्त्रवेत्ता एवं मायावी है, इसके साथ ही मैं लक्ष्मण के स्वरूप को भी जानता हूँ, जिन्होंने आहार एवं निद्रा का परित्याग कर मेरी सेवा का व्रत ले रखा है ॥२॥ मैं भविष्य में होने वाले कार्य की कठिनता का विचार कर ही अब तक चुप-चाप हूँ। विभीषण से ऐसा कहकर ज्ञानियों में श्रेष्ठ श्री रामचन्द्रजी ने लक्ष्मण से कहा—॥३॥

भाई लक्ष्मण ! तुम इस बहुत बड़ी सेना के साथ एवं हनुमान् आदि सभी प्रधान सेनापतियों के साथ लङ्का जाकर मेघनाद का बध करो ॥४॥ और हे लक्ष्मण ! ये ऋक्षराज बृद्ध जाम्बवान् भी अपनी सेना के साथ तथा विभीषण अपने सचिवों के सहित तुम्हारे साथ जायेंगे ॥ ५ ॥

अभिज्ञस्तस्य देहस्य जानाति विवराणि सः ।
रामस्य वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणः स-विभीषणः ।। ६ ।।
जग्राह कार्मुकं श्रेष्ठमन्यद् भीमपराक्रमः ।
रामपादाम्बुजं स्पृष्ट्वा हृष्टः सौमित्रिरब्रवीत् ।। ७ ।।
अद्य मत्कार्मुकान् मुक्ताः शरा निर्भिद्य रावणिम् ।
गमिष्यन्ति हि पातालं स्नातुं भोगवतीजले ।। ८ ।।
एवमुक्त्वा स सौमित्रिः परिक्रम्य प्रणम्य तम् ।
इन्द्रजिन्निधनाकाङ्क्षी ययौ त्वरितविक्रमः ।। ९ ।।
वानरैर्बहुसाहस्रैर्हनूमान् पृष्ठतोऽन्वगात् ।
विभीषणश्च सहितो मन्त्रिभिस्त्वरितं ययौ ।।१०।।
जाम्बवत्प्रमुखा ऋक्षाः सौमित्रिं त्वरयान्वयुः ।
गत्वा निकुम्भिलादेशं लक्ष्मणो वानरैः सह ।।११।।
अपश्यद् बलसङ्घातं दूराद् राक्षससङ्कुलम् ।
धनुरायम्य सौमित्रिर्यत्तोऽभूद् भूरिविक्रमः ।।१२।।

---

ये विभीषण उसका सब कुछ जानते हैं एवं उनके शरीर के सारे दोषों को भी जानते हैं। राम के वचनों को सुनकर महापराक्रमी श्री लक्ष्मण जी ने विभीषण को साथ ले एक अतिश्रेष्ठ उत्तम दूसरा धनुष हाथ में लिया और प्रसन्नता से राम के चरणों का स्पर्श कर कहा—।। ६—७।। आज मेरे धनुष से छूटे हुए बाण, रावणपुत्र मेघनाद का बध कर पाताल लोक में भोगवती गङ्गा में स्नान करने के लिए जायेंगे ।। ८ ।। ऐसा कह कर उन्होंने राम की परिक्रमा की फिर प्रणाम कर मेघनाद को मारने के लिए बड़ी शीघ्रता से चले ।। ९ ।। बहुत से वानरों के साथ हनुमान् जी उनके पीछे-पीछे चले । और विभीषण भी अपने मन्त्रियों के साथ शीघ्रता से उनके साथ चले । इसी प्रकार जाम्बवान् आदि ऋक्ष भी बड़ी शीघ्रता से उनके पीछे चले । जिस समय लक्ष्मण जी बानरों के साथ निकुम्भिला स्थल पर पहुँचे ।। १०—११ ।। उस समय उन्होंने दूर से ही राक्षसों की बहुत बड़ी सेना एकत्रित देखी । फिर महाबलवान् लक्ष्मण जी भी धनुष

अङ्गदेन च वीरेण जाम्बवान् राक्षसाधिपः ।
तदा विभीषणः प्राह सौमित्रिं पश्य राक्षसान् ॥१३॥
यदेतद्राक्षसानीकं मेघश्यामं विलोक्यते ।
अस्यानीकस्य महतो भेदने यत्नवान् भव ॥१४॥
राक्षसेन्द्रसुतोऽप्यस्मिन् भिन्ने दृश्यो भविष्यति ।
अभिद्रवाशु यावद् वै नैतत्कर्म समाप्यते ॥१५॥
जहि वीर ! दुरात्मानं हिंसापरमधार्मिकम् ।
विभीषणवचः श्रुत्वा लक्ष्मणः शुभलक्षणः ॥१६॥
ववर्ष शरवर्षाणि राक्षसेन्द्रसुतं प्रति ।
पाषाणैः पर्वताग्रैश्च वृक्षैश्च हरियूथपाः ॥१७॥
निर्जघ्नुः सर्वतो दैत्यांस्तेऽपि वानरयूथपान् ।
परश्वधैः शितैर्बाणैरसिभिर्यष्टितोमरैः ॥१८॥

---

चढ़ाकर युद्ध के लिए उद्यत हो गये ॥ १२ ॥ इसी प्रकार वीरवर अङ्गद के सहित ऋक्षराज जाम्बवान् भी सावधान हो गये। तदनन्तर विभीषण ने लक्ष्मण से कहा—लक्ष्मण जी ! आप इन राक्षसों को देखिए ॥ १३ ॥ यह जो मेघ के समान श्याम वर्ण वाली राक्षसी सेना दिखाई पड़ती है, आप सर्व-प्रथम इसी को नष्ट करने का प्रयत्न कीजिए ॥ १४ ॥ जब आप इस राक्षसी सेना का विनाश कर लेंगे तो रावण का पुत्र इन्द्रजित् भी दिखाई देने लगेगा। जब तक इसका हवन-कर्म समाप्त न हो उसके पहले ही इस पर धावा बोल दीजिए ॥ १५ ॥

हे वीर ! हिंसा करने वाले इस पापी शत्रु का आप शीघ्र ही बध कीजिए। विभीषण की बात सुनकर शुभ लक्षण लक्ष्मण ने भी ॥ १६ ॥ राक्षसराज रावण के पुत्र पर बाणों की वर्षा प्रारम्भ कर दी। एवं वानर-यूथपों ने भी चारों ओर से पत्थरों, शिखरों तथा वृक्षों से दैत्यों पर प्रहार करना प्रारम्भ किया ॥ १७ ॥ इसी प्रकार उन राक्षसों ने भी वानर-यूथपतियों पर एवं वानरी-सेना पर, परशु, तीक्ष्णबाण, खड्ग,

निर्जघ्नुर्वानरानीकं तदा शब्दो महानभूत् ।
स सम्प्रहारस्तुमुलः संजज्ञे हरिरक्षसाम् ॥१९॥
इन्द्रजित् स्वबलं सर्वमर्द्यमानं विलोक्य सः ।
निकुम्भिलां च होमं च त्यक्त्वा शीघ्रं विनिर्गतः ॥२०॥
रथमारुह्य सधनुः क्रोधेन महतागमत् ।
समाह्वयन् स सौमित्रिं युद्धाय रणमूर्धनि ॥२१॥
सौमित्रे ! मेघनादोऽहं मया जीवन्न मोक्ष्यसे ।
तत्र दृष्ट्वा पितृव्यं स प्राह निष्ठुरभाषणम् ॥२२॥
इहैव जातः संवृद्धः साक्षाद् भ्राता पितुर्मम ।
यस्त्वं स्वजनमुत्सृज्य परभृत्यत्वमागतः ॥२३॥
कथं द्रुह्यसि पुत्राय पापीयानसि दुर्मतिः ।
इत्युक्त्वा लक्ष्मणं दृष्ट्वा हनूमत्पृष्ठतः स्थितम् ॥२४॥

---

यष्टि एवं तोमरादि शस्त्रों से प्रहार किया। जिससे रणभूमि में महान् कोलाहल होने लगा। और राक्षसों तथा वानरों में घनघोर युद्ध छिड़ गया ॥ १८–१९ ॥ वानरों के द्वारा अपनी सेना को इस प्रकार नष्ट होते देख इन्द्रजित् निकुम्भिला तथा होम को छोड़कर बाहर निकला ॥ २० ॥ वह रथ पर सवार हो हाथ में धनुष लेकर अत्यन्त क्रोध से भरा हुआ युद्ध के मैदान में सामने आया। और लक्ष्मण जी को युद्ध के लिए ललकारते हुए बोला—॥ २१ ॥

सौमित्रे ! मैं मेघनाद हूँ। मेरे सामने से अब तुम जीवित नहीं बच सकते। फिर वहीं अपने चाचा विभीषण को भी उपस्थित देखकर बड़े कठोर शब्दों में बोला—॥ २२ ॥ आप लङ्का में उत्पन्न हुए हैं, और इसी में रहकर इतने बड़े भी हुए हैं, मेरे पिता के सगे भाई भी हैं, मुझे दुःख है कि इतना होने पर भी आप ने अपने बन्धुवर्गों को छोड़कर शत्रुओं की दासता अङ्गीकार की है ॥ २३ ॥ अवश्य ही तुम बड़े पापी तथा दुरात्मा हो, जो अपने पुत्र-सरीखे मुझ से भी द्वेष करते हो। विभीषण से ऐसा कह कर उसने हनुमान् जी की पीठ पर बैठे हुए लक्ष्मण की ओर देखा ॥ २४ ॥

उद्यदायुधनिस्त्रिंशे रथे महति संस्थितः ।
महाप्रमाणमुद्यम्य घोरं विस्फारयन् धनुः ॥२५॥
अद्य वो मामका बाणाः प्राणान् पास्यन्ति वानराः ।
ततः शरं दाशरथिः सन्धायामित्रकर्षणः ॥२६॥
ससर्ज राक्षसेन्द्राय क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् ।
इन्द्रजिद्रक्तनयनो लक्ष्मणं समुदैक्षत ॥२७॥
शक्राशनि-समस्पर्शैर्लक्ष्मणेनाहतः शरैः ।
मुहूर्तमभवन् मूढः पुनः प्रत्याहृतेन्द्रियः ॥२८॥
ददर्शावस्थितं वीरं वीरो दशरथात्मजम् ।
सोऽभिचक्राम सौमित्रिं क्रोधसंरक्तलोचनः ॥२९॥
शरान् धनुषि सन्धाय लक्ष्मणं चेदमब्रवीत् ।
यदि ते प्रथमे युद्धे न दृष्टो मे पराक्रमः ॥३०॥
अद्य त्वां दर्शयिष्यामि तिष्ठेदानीं व्यवस्थितः ।
इत्युक्त्वा सप्तभिर्बाणैरभिविव्याध लक्ष्मणम् ॥३१॥

---

पुनः नाना प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्रों से सुसज्जित रथ पर सवार हो कर एक बहुत विशाल धनुष उठा कर उससे भयानक टङ्कार किया ॥ २५ ॥ और कहने लगा—हे वानरों ! आज हमारे बाण तुम लोगों के प्राणों का पान करेंगे । तब शत्रुओं का नाश करने वाले क्रोध से साँप के समान फुफकारते हुए दशरथ-नन्दन लक्ष्मण ने धनुष पर एक बाण चढ़ाकर मेघनाद पर छोड़ दिया । इधर मेघनाद ने भी नेत्रों को लाल-लाल कर लक्ष्मण की ओर देखा ॥ २६–२७ ॥ बज्र के समान आघात करने वाले लक्ष्मण के बाणों से विद्ध हुआ वह मेघनाद क्षण भर के लिए अचेत हो उठा । फिर चेतना लौट आने पर उस वीर ने अपने सामने वीरवर दशरथ-नन्दन लक्ष्मण को देखा । और नेत्रों को लाल-लाल कर बड़े वेग से लक्ष्मण पर आक्रमण किया ॥ २८–२९ ॥ उसने अपने बाणों को धनुष पर चढ़ाकर लक्ष्मण से कहा—यदि प्रथम युद्ध में तुमने हमारा पराक्रम नहीं देखा है, तो आज मैं तुम्हें अपना पराक्रम दिखाऊँगा । इस समय

दशभिश्च हनूमन्तं तीक्ष्णधारैः शरोत्तमैः ।
ततः शरशतेनैव सम्प्रयुक्तेन वीर्यवान् ॥३२॥
क्रोधद्विगुणसंरब्धो निर्बिभेद विभीषणम् ।
लक्ष्मणोऽपि तथा शत्रुं शरवर्षैरवाकिरत् ॥३३॥
तस्य बाणैः सुसंविद्धं कवचं काञ्चनप्रभम् ।
व्यशीर्यत रथोपस्थे तिलशः पतितं भुवि ॥३४॥
ततः शरसहस्रेण सङ्क्रुद्धो रावणात्मजः ।
बिभेद समरे वीरं लक्ष्मणं भीमविक्रमम् ॥३५॥
व्यशीर्यताऽपतद् दिव्यं कवचं लक्ष्मणस्य च ।
कृतप्रतिकृतान्योन्यं बभूवतुरभिद्रुतौ ॥३६॥
अभीक्ष्णं निःश्वसन्तौ तौ युध्येतां तुमुलं पुनः ।
शरसंवृतसर्वाङ्गौ सर्वतो रुधिरोक्षितौ ॥३७॥
सुदीर्घकालं तौ वीरावन्योन्यं निशितैः शरैः ।
अयुध्येतां महासत्त्वौ जयाऽजयविवर्जितौ ॥३८॥

---

तुम दृढ़ता से खड़े रहो। ऐसा कहकर उस महावीर ने सात बाणों से लक्ष्मण जी को, अत्यन्त तीक्ष्ण धार वाले दश बाणों से हनुमान् को एवं क्रोध से द्विगुण उत्साह में भर सौ बाणों से विभीषण को वेध दिया। इधर लक्ष्मण जी भी शत्रुओं पर बाणों की वर्षा करने लगे ॥ ३०—३४ ॥ उनके बाणों से सुवर्ण के समान चमकीला मेघनाद का कवच तिल-तिल कटकर रथ के पिछले भाग में छिन्न-भिन्न हो गया। और वहाँ से पृथ्वी पर जा गिरा ॥ ३५ ॥ मेघनाद ने भी क्रुद्ध होकर महापराक्रमी लक्ष्मण जी को एक हजार बाणों से विद्ध कर दिया। जिससे लक्ष्मण जी का दिव्य कवच छिन्न-भिन्न होकर गिर पड़ा। इस प्रकार वे दोनों बड़ी शीघ्रता से एक-दूसरे का प्रतीकार करते हुए लड़ने लगे ॥ ३६ ॥

वे दोनों ही बारम्बार महाभयानक निःश्वास छोड़ते हुए घोर युद्ध करने लगे। जिससे अङ्ग-प्रत्यङ्ग छिन्न-भिन्न होकर रुधिर से लथपथ हो गये ॥ ३७ ॥ दोनों महापराक्रमी वीर बड़ी देर तक एक-दूसरे पर तीखे

एतस्मिन्नन्तरे वीरो लक्ष्मणः पञ्चभिः शरैः ।
रावणेः सारथिं साश्वं रथं च समचूर्णयत् ॥३९॥
चिच्छेद कार्मुकं तस्य दर्शयन् हस्तलाघवम् ।
सोऽन्यत्तु कार्मुकं भद्रं सज्यं चक्रे त्वरान्वितः ॥४०॥
तच्चापमपि चिच्छेद लक्ष्मणस्त्रिभिराशुगैः ।
तमेव छिन्नधन्वानं विव्याधाऽनेकसायकैः ॥४१॥
पुनरन्यत् समादाय कार्मुकं भीमविक्रमः ।
इन्द्रजिल्लक्ष्मणं बाणैः शितैरादित्यसन्निभैः ॥४२॥
बिभेद वानरान् सर्वान् बाणैरापूरयन् दिशः ।
तत ऐन्द्रं समादाय लक्ष्मणो रावणिं प्रति ॥४३॥
सन्धायाकृष्य कर्णान्तं कार्मुकं दृढनिष्ठुरम् ।
उवाच लक्ष्मणो वीरः स्मरन् रामपदाम्बुजम् ॥४४॥
धर्मात्मा सत्यसन्धश्च रामो दाशरथिर्यदि ।
त्रिलोक्यामप्रतिद्वन्द्वस्तदेनं जहि रावणिम् ॥४५॥

---

बाणों का प्रयोग करते हुए लड़ते रहे। उन दोनों में किसी का जय एवं पराजय होता हुआ दिखाई नहीं पड़ता था ॥ ३८ ॥ इसी बीच वीर लक्ष्मण ने पाँच बाणों से मेघनाद के अश्व सहित रथ और सारथी को चूर्ण कर दिया ॥ ३९ ॥ फिर अपने हाथ की सफाई दिखाते हुए उन्होंने उसका धनुष भी काट डाला। तदनन्तर मेघनाद ने शीघ्रता से एक और उत्तम धनुष चढ़ाया ॥ ४० ॥ लक्ष्मण जी ने अपने तीखे तीन बाणों से धनुष को भी काट दिया। फिर धनुष हीन हुए उस राक्षस को अनेक बाणों से विद्ध कर दिया ॥ ४१ ॥

तदनन्तर भीम विक्रम इन्द्रजित् ने एक और धनुष लेकर सूर्य के समान देदीप्यमान तीखे बाणों से, दिशाओं को व्याप्त करते हुए समस्त वानरों को तथा लक्ष्मण को वेध डाला। पुनः लक्ष्मण जी ने ऐन्द्रबाण निकालकर मेघनाद को लक्ष्य कर उसे धनुष पर चढ़ाया। और उसे कान तक खींच कर हृदय में भगवान राम के चरण-कमलों का स्मरण करते हुए बोले—॥ ४२-४४ ॥ यदि दशरथनन्दन राम, धर्मात्मा, सत्यप्रतिज्ञ एवं

इत्युक्त्वा बाणमाकर्णाद् विकृष्य तमजिह्मगम् ।
लक्ष्मणः समरे वीरः ससर्जेन्द्रजितं प्रति ॥४६॥
सशरः सशिरस्त्राणं श्रीमज्ज्वलितकुण्डलम् ।
प्रमथ्येन्द्रजितः कायात् पातयामास भूतले ॥४७॥
ततः प्रमुदिता देवा कीर्तयन्तो रघूत्तमम् ।
ववर्षुः पुष्पवर्षाणि स्तुवन्तश्च मुहुर्मुहुः ॥४८॥
जहर्ष शक्रो भगवान् सह देवैर्महर्षिभिः ।
आकाशेऽपि च देवानां शुश्रुवे दुन्दुभिस्वनः ॥४९॥
विमलं गगनं चासीत् स्थिराभूद् विश्वधारिणी ।
निहतं रावणिं दृष्ट्वा जयजल्पसमन्वितः ॥५०॥
गतश्रमः स सौमित्रिः शङ्खमापूरयद्रणे ।
सिंहनादं ततः कृत्वा ज्याशब्दमकरोद् विभुः ॥५१॥
तेन नादेन संहृष्टा वानराश्च गतश्रमाः ।
वानरेन्द्रैश्च सहितः स्तुवद्भिर्हृष्टमानसैः ॥५२॥

---

इस त्रिलोकी में उनका कोई मुकाबला करने वाला न हो, तो हे बाण ! तुम इस मेघनाद का वध करो ॥ ४५ ॥ वीरवर लक्ष्मण जी ने रणभूमि में ऐसा कह कर उस सीधे जाने वाले बाण को कान तक खींचकर मेघनाद पर छोड़ दिया ॥ ४६ ॥ उस बाण ने शिरस्त्राण के सहित इन्द्रजित् के उज्ज्वल कुण्डलों से मण्डित मस्तक को काट कर धड़ से पृथक् कर पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ ४७ ॥ इस प्रकार मेघनाद के मारे जाने पर देवगण परम प्रसन्न हो लक्ष्मण की बारम्बार प्रशंसा करते हुए एवं उनके गुणों का गान करते हुए फूलों की वृष्टि करने लगे ॥४८॥ देवगणों एवं महर्षियों के साथ इन्द्र भी अतीव प्रसन्न हुए। उस समय आकाश-मण्डल में भी देवताओं के नगाड़े का शब्द सुनाई पड़ने लगा ॥४९॥ रावण-पुत्र मेघनाद के मर जाने से सर्वत्र जय-जयकार शब्द व्याप्त हो गया। आकाश स्वच्छ तथा जगद्धात्री पृथ्वी स्थिर हो गयी ॥५०॥

लक्ष्मण जी भी जब श्रमरहित हो गये, तो उन्होंने युद्धभूमि में अपना शङ्ख बजाया ॥ ५१ ॥ उस प्रभु ने फिर सिंहनाद कर धनुष का टंकार

लक्ष्मणः परितुष्टात्मा ददर्शाभ्येत्य राघवम् ।
हनूमद्राक्षसाभ्यां च सहितो विनयान्वितः ॥५३॥
ववन्दे भ्रातरं रामं ज्येष्टं नारायणं विभुम् ।
त्वत्प्रसादाद्रघुश्रेष्ठ ! हतो रावणिराहवे ॥५४॥
श्रुत्वा तल्लक्ष्मणाद् भक्त्या तमालिङ्ग्य रघूत्तमः ।
मूर्ध्न्यवघ्राय मुदितः सस्नेहमिदमब्रवीत् ॥५५॥
साधु लक्ष्मण ! तुष्टोऽस्मि कर्म ते दुष्करं कृतम् ।
मेघनादस्य निधने जितं सर्वमरिन्दम ! ॥५६॥
अहोरात्रैस्त्रिभिर्वीरः कथञ्चिद् विनिपातितः ।
निःसपत्नः कृतोऽस्म्यद्य निर्यास्यति हि रावणः ॥५७॥
पुत्रशोकान् मया योद्धुं तं हनिष्यामि रावणम् ॥५८॥

---

किया। उस शब्द से वानरगण परम आनन्दित हो श्रमहीन हो गये। फिर प्रसन्न मन हुए उन वानरों से प्रशंसित होते हुए श्री लक्ष्मण जी बड़ी प्रसन्नता से उन सभी के साथ रघुनाथ जी के पास आये। और उनका दर्शन किया। श्रीलक्ष्मणजीने हनुमान् एवं विभीषण के सहित अति विनय से अपने जेठे भाई साक्षात् नारायण स्वरूप भगवान् श्रीराम को प्रणाम कर कहा—हे रघुवंश ! आप की कृपा से मेघनाद युद्ध में मारा गया ॥ ५२-५४ ॥

लक्ष्मण जी के द्वारा विनयपूर्वक कहे गये वचन को सुनकर श्रीरघुनाथ जी ने बड़ी प्रसन्नता से गले लगाकर प्रेमपूर्वक मस्तक सूँघकर स्नेह में भर कर कहा—॥ ५५ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम धन्य हो, मैं तुम्हारे ऊपर अतीव प्रसन्न हूँ, तुमने आज बड़ा कठिन कार्य किया है। हे शत्रुमर्दन ! मेघनाद के मारे जाने से अब हमने सब कुछ जीत लिया ॥ ५६ ॥ तुमने तीन दिन एवं तीन रात तक निरन्तर घोर संग्राम कर किसी प्रकार उस महान् योद्धा का वध कर ही डाला। इसलिए तुमने आज हमें शत्रु-रहित कर दिया। अब पुत्र-शोक से व्याकुल हुआ रावण मुझसे लड़ने के लिए आयेगा, तो मैं उसे मार डालूँगा ॥ ५७-५८ ॥

मेघनादं हतं श्रुत्वा लक्ष्मणेन महाबलम् ।
रावणः पतितो भूमौ मूर्च्छितः पुनरुत्थितः ।
विललापातिदीनात्मा पुत्रशोकेन रावणः ॥५९॥
पुत्रस्य गुणकर्माणि संस्मरन् पर्यदेवयन् ।
अद्य देवगणाः सर्वे लोकपाला महर्षयः ॥६०॥
हतमिन्द्रजितं ज्ञात्वा सुखं स्वप्स्यन्ति निर्भयाः ।
इत्यादि बहुशः पुत्रलालसो विललाप ह ॥६१॥
ततः परमसंक्रुद्धो रावणो राक्षसाधिपः ।
उवाच राक्षसान् सर्वान् निनाशयिषुराहवे ॥६२॥
स पुत्रवधसन्तप्तः शूरः क्रोधवशं गतः ।
संवीक्ष्य रावणो बुद्ध्या हन्तुं सीतां प्रदुद्रुवे ॥६३॥
खड्गपाणिमथायान्तं क्रुद्धं दृष्ट्वा दशाननम् ।
राक्षसीमध्यगा सीता भयशोकाकुलाऽभवत् ॥६४॥

---

इधर महाबली मेघनाद को लक्ष्मण द्वारा मारा गया सुनकर रावण मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। फिर संसार को रुलाने वाला वह रावण पुत्र-शोक से अत्यन्त दीन होकर विलाप करने लगा ॥५९॥ वह पुत्र के गुण एवं कर्मों का स्मरण करता हुआ अत्यन्त शोक करने लगा—आज समस्त देवता, सभी लोकपाल एवं सभी महर्षि इन्द्रजित् को मारा गया सुनकर निर्भय हो सुख की नींद सोवेंगे। इस प्रकार वह पुत्र के अनुराग से नाना प्रकार का असंबद्ध विलाप करने लगा॥ ६०-६१ ॥ पुनः राक्षस-राज रावण अत्यन्त क्रुद्ध हो तथा सीता के विनाश की इच्छा से राक्षसों से बात-चीत करने लगा॥ ६२ ॥ वह शूर-वीर पुत्र के वध से सन्तप्त तो था ही, फिर बुद्धि से विचार कर क्रोध में सीता को मारने के लिए चला॥ ६३ ॥ हाथ में खड्ग लिये हुए तथा क्रोध से भरे हुए उस रावण को अपनी ओर आता देखकर राक्षसियों की बीच में बैठी हुई सीता

एतस्मिन्नन्तरे तस्य सचिवो बुद्धिमान् शुचिः ।
सुपार्श्वो नाम मेधावी रावणं वाक्यमब्रवीत ॥६५॥
ननु नाम दशग्रीव ! साक्षाद् वै श्रवणानुजः ।
वेदविद्याव्रतस्नातः स्वकर्मपरिनिष्ठितः ॥६६॥
अनेकगुणसम्पन्नः कथं स्त्रीवधमिच्छसि ।
अस्माभिः सहितो युद्धे हत्वा रामं च लक्ष्मणम् ।
प्राप्स्यसे जानकीं शीघ्रमित्युक्तः सन्यवर्तत ॥६७॥
ततो दुरात्मा सुहृदा निवेदितं वचः सुधर्म्यं प्रतिगृह्य रावणः ।
गृहं जगामाशु शुचा विमूढधीः, पुनः सभां च प्रययौ सुहृद्वृतः ॥६८॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
युद्धकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥



---

अत्यन्त भयभीत हो उठीं ॥ ६४ ॥ इसी बीच रावण का अत्यन्त बुद्धिमान् शुद्ध हृदय एवं विचारशील सुपार्श्व नामक सचिव रावण से कहा—॥ ६५ ॥

हे दशानन ! आप तो विश्रवा के पुत्र कुबेर के साक्षात् छोटे भाई हैं, वेद-विद्या में निपुण तथा यज्ञान्त में स्नान करने वाले हैं। और अपने धर्म में आस्था रखने वाले हैं ॥ ६६ ॥ आप अनेक गुणों से सम्पन्न हैं, अतः यह जघन्य स्त्री-वध जैसा पाप क्यों करना चाहते हैं। हम सबको साथ लेकर आप राम तथा लक्ष्मण को युद्ध में मारकर शीघ्र ही सीता को प्राप्त करेंगे। सुपार्श्व के द्वारा इस प्रकार समझाने पर रावण लौट आया ॥ ६७ ॥

पुनः वह दुरात्मा रावण अपने सुहृद् सुपार्श्व के धर्मानुकूल बात को मानकर शोक से मोहित हो अपने घर चला गया। फिर दूसरे दिन अपने बन्धु-बान्धवों के साथ सभा में आया ॥ ६८ ॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या सहित अध्यात्म-रामायण के
उमा-महेश्वर-संवाद में युद्धकाण्ड का नवम सर्ग समाप्त ॥ ९ ॥



## दशमः सर्गः

( रावणका यज्ञ-विध्वंस एवं उसे मन्दोदरीको समझाना )

श्रीमहादेव उवाच

स विचार्य सभामध्ये राक्षसैः सह मन्त्रिभिः ।
निर्ययौ येऽवशिष्टास्तै राक्षसैः सह राघवम् ॥ १ ॥
शलभः शलभैर्युक्तः प्रज्वलन्तमिवानलम् ।
ततो रामेण निहता सर्वे ते राक्षसा युधि ॥ २ ॥
स्वयं रामेण निहतस्तीक्ष्णबाणेन वक्षसि ।
व्यथितस्त्वरितं लङ्कां प्रविवेश दशाननः ॥ ३ ॥
दृष्ट्वा रामस्य बहुशः पौरुषं चाप्यमानुषम् ।
रावणो मारुतेश्चैव शीघ्रं शुक्रान्तिकं ययौ ॥ ४ ॥
नमस्कृत्य दशग्रीवः शुक्रं प्राञ्जलिरब्रवीत् ।
भगवन् ! राघवेणैवं लङ्का राक्षसयूथपैः ॥ ५ ॥
विनाशिता महादैत्या निहताः पुत्रबान्धवाः ।
कथं मे दुःखसन्दोहस्त्वयि तिष्ठति सद्गुरौ ॥ ६ ॥

---

श्रीमहादेव जी ने कहा—हे पार्वती ! तदनन्तर रावण सभा में अपने राक्षस-मन्त्रियों के साथ परामर्श कर, पतङ्ग जिस प्रकार अन्य पतङ्गों के साथ प्रज्वलित अग्नि में गिरता है, उसी प्रकार बचे-खुचे राक्षसों को साथ लेकर युद्ध के लिए राम के सामने आया। राम ने सभी राक्षसों का उस युद्ध में संहार कर दिया ॥ १-२ ॥ और स्वयं भी राम के तीक्ष्ण बाणों से हृदय-स्थल में आहत होने से व्याकुल हो गया और लङ्का लौट आया ॥ ३ ॥ भगवान् राम के तथा हनुमान् के अतिमानुष पौरुष को देखकर रावण बड़ी शीघ्रता से शुक्राचार्य के पास गया ॥ ४ ॥

रावण ने शुक्राचार्य को नमस्कार पूर्वक हाथ जोड़ कर कहा—भगवन् ! अकेले राम ने समस्त राक्षस-यूथपों के साथ सारी लङ्का तहस-नहस कर दी, बड़-बड़े दैत्य तथा मेरे समस्त बन्धु-बान्धव मार डाले गये।

इति विज्ञापितो दैत्यगुरुः प्राह दशाननम् ।
होमं कुरु प्रयत्नेन रहसि त्वं दशानन ! ॥ ७ ॥
यदि विघ्नो न चेद्धोमे तर्हि होमानलोत्थितः ॥ ८ ॥
महान् रथश्च वाहाश्च चाप-तूणीर-सायकाः ।
सम्भविष्यन्ति तैर्युक्तस्त्वमजेयो भविष्यसि ॥ ९ ॥
गृहाण मन्त्रान् मद्दत्तान् गच्छ होमं कुरु द्रुतम् ।
इत्युक्तस्त्वरितं गत्वा रावणो राक्षसाधिपः ॥१०॥
गुहां पातालसदृशीं मन्दिरे स्वे चकार ह ।
लङ्काद्वारकपाटादि बद्ध्वा सर्वत्र यत्नतः ॥११॥
होमद्रव्याणि सम्पाद्य यान्युक्तान्याभिचारिके ।
गुहां प्रविश्य चैकान्ते मौनी होमं प्रचक्रमे ॥१२॥
उत्थितं धूममालोक्य महान्तं रावणानुजः ।
रामाय दर्शयामास होमधूमं भयाकुलः ॥१३॥

---

आप-जैसे सद्गुरु के रहते हुए मुझे इस प्रकार का महान् दुःख क्यों झेलना पड़ रहा है ॥ ५-६ ॥

रावण के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर शुक्राचार्य ने उससे कहा—हे रावण ! तुम प्रयत्न पूर्वक किसी एकान्त स्थान में होम करो ॥ ७ ॥ यदि इस प्रकार किये गये होम में कोई विघ्न न हुआ तो होम की अग्नि से बहुत बड़ा रथ, घोड़ा, धनुष, तरकस और बाण उत्पन्न होंगे । उन्हें प्राप्त कर तुम अजेय हो जाओगे ॥ ८-९ ॥ तुम मेरे द्वारा दिये गये मन्त्रों को ग्रहण करो, और शीघ्रता से जाकर होम करो । शुक्राचार्य के इस प्रकार कहने पर राक्षसाधिप रावण शीघ्रता से जाकर अपने महल के भीतर पाताल के समान गहरी गुफा तैयार करवायी । एवं बड़ी सावधानी से लङ्का के दरवाजों के सभी फाटक बन्द करवा दिया ॥ १०-११ ॥ पुनः अभिचार कर्मों के लिए आवश्यक सभी सामग्री एकत्र कर गुफा में घुस कर एकान्त में मौनावलम्बन कर होम प्रारम्भ कर दिया ॥ १२ ॥

गुफा से उठे हुए बहुत बड़े पैमाने वाले धुएँ को देखकर रावण का छोटा भाई विभीषण भयभीत हो उठा । और उसने वह धुआँ रामचन्द्र

पश्य राम ! दशग्रीवो होमं कर्तुं समारभत् ।
यदि होमः समाप्तः स्यात्तदाऽजेयो भविष्यति ॥१४॥
अतो विघ्नाय होमस्य शेषयाशु हरीश्वरान् ।
तथेति रामः सुग्रीवसम्मतेनाऽङ्गदं कपिम् ॥१५॥
हनूमत्प्रमुखान् वीरानादिदेश महाबलान् ।
प्राकारं लङ्घयित्वा ते गत्वा रावणमन्दिरम् ॥१६॥
दशकोट्यः प्लवङ्गानां गत्वा मन्दिर-रक्षकान् ।
चूर्णयामासुरश्वांश्च गजांश्च न्यहनन् क्षणात् ॥१७॥
ततश्च सरमा नाम प्रभाते हस्तसंज्ञया ।
विभीषणस्य भार्या सा होमास्थानमसूचयत् ॥१८॥
गुहापिधानपाषाणमङ्गदः पादघट्टनैः ।
चूर्णयित्वा महासत्त्वः प्रविवेशः महागुहाम् ॥१९॥
दृष्ट्वा दशाननं तत्र मीलिताक्षं दृढासनम् ।
ततोऽङ्गदाज्ञया सर्वे वानरा विविशुर्द्रुतम् ॥२०॥

---

जी को दिखाया ॥ १३ ॥ और उनसे कहने लगा—हे राम ! देखिए, रावण ने होम प्रारम्भ कर दिया है, यदि उसका यह होम निर्विघ्न समाप्त हो गया, तो वह अजेय हो जायेगा ॥ १४ ॥ इसलिए उसके होम में विघ्न डालने हेतु शीघ्र ही वानर-सेनापतियों को भेजिए। तब रघुनाथ जी ने 'तथास्तु' कह कर सुग्रीव की सम्मति ले अङ्गद और हनुमान् आदि महाभट वानरों को आज्ञा दी। फिर वे लोग लङ्का के परकोटे को पार कर रावण के महल में पहुँच गये ॥ १५-१६ ॥ दश करोड़ वानरों ने वहाँ पहुँच कर सभी महल के रक्षकों को चूर्ण चूर्ण कर दिया। और एक क्षण में ही बहुत से घोड़े तथा हाथियों का भी संहार कर दिया ॥१७॥

प्रातःकाल होने पर विभीषण की भार्या सरमा ने हाथ के सङ्केत से उन वानरों को होम-स्थान बतला दिया ॥ १८ ॥ फिर तो महाबली अङ्गद अपने पैर के धक्के से गुफा के दरवाजे पर बन्द किये गये पत्थर के ढक्कन को चूर-चूर कर उसमें प्रविष्ट हो गये ॥ १९ ॥ उन्होंने उस

तत्र कोलाहलं चक्रुस्ताडयन्तश्च सेवकान् ।
सम्भारांश्चिक्षिपुस्तस्य होमकुण्डे समन्ततः ॥२१॥
स्रुवमाच्छिद्य हस्ताच्च रावणस्य बलाद्रुषा ।
तेनैव सञ्जघानाशु हनूमान् प्लवगाग्रणीः ॥२२॥
घ्नन्ति दन्तैश्च काष्ठैश्च वानरास्तमितस्ततः ।
न जहौ रावणो ध्यानं हतोऽपि विजिगीषया ॥२३॥
प्रविश्याऽन्तःपुरे वेश्मन्यङ्गदो वेगवत्तरः ।
समानयत् केशबन्धे धृत्वा मन्दोदरीं शुभाम् ॥२४॥
रावणस्यैव पुरतो विलपन्तीमनाथवत् ।
विददाराङ्गदस्तस्याः कञ्चुकं रत्नभूषितम् ॥२५॥
मुक्ता विमुक्ताः पतिताः समन्ताद्रत्नसञ्चयैः ।
श्रोणिसूत्रं निपतितं त्रुटितं रत्नचित्रितम् ॥२६॥

---

गुफा में नेत्र बन्द किये एवं दृढ आसन लगाये हुए उस रावण को देखा। फिर तो अङ्गद की आज्ञा से सभी वानर उस गुफा में घुस गये ॥ २० ॥ उन्होंने रावण के सेवकों को पीटते हुए बड़ा भारी कोलाहल किया। और वहाँ रखी गयी समस्त होम-सामग्री को हवन-कुण्डमें फेंक दिया ॥२१॥

वानराग्रगण्य हनुमान् जी ने क्रोध में भरकर बलात् रावण के हाथ से स्रुवा छीन कर उसी से उस पर बड़े जोर का आघात किया ॥ २२ ॥ वानर भी दाँतों एवं लकड़ियों से रावण के शरीर पर इधर-उधर से प्रहार करने लगे। इस प्रकार रावण मारे जाने पर भी विजय की इच्छा से अपना ध्यान जब नहीं छोड़ा ॥ २३ ॥ तब अत्यन्त वेग से अङ्गद अन्तःपुर के घर में जाकर शुभ लक्षणा मन्दोदरी की चोटी पकड़ कर घसीटते हुए वहाँ ले आये ॥ २४ ॥ और रावण के सामने ही उन्होंने अनाथ के समान विलाप करती हुई मन्दोदरी की रत्नजटित कञ्चुकी फाड़ डाली ॥ २५ ॥ जिससे रत्न-समूहों के साथ मोती टूट-टूट कर चारों ओर बिखर गये। इसी प्रकार मन्दोदरी की रत्न-चित्रित ( जटित )

कटिप्रदेशाद् विस्रंस्ता नीवी तस्यैव पश्यतः ।
भूषणानि च सर्वाणि पतितानि समन्ततः ॥२७॥

देव-गन्धर्वकन्याश्च नीता हृष्टैः प्लवङ्गमैः ।
मन्दोदरी रुरोदाऽथ रावणस्याऽग्रतो भृशम् ॥२८॥

क्रोशन्ती करुणं दीना जगाद दशकन्धरम् ।
निर्लज्जोऽसि परैरेवं केशपाशे विकृष्यते ॥२९॥

भार्या तवैव पुरतः किं जुहोषि न लज्जसे ? ।
हन्यते पश्यतो यस्य भार्या पापैश्च शत्रुभिः ॥३०॥

मर्तव्यं तेन तत्रव जीवितान् मरणं वरम् ।
हा मेघनाद ! ते माता क्लिश्यते बत वानरैः ॥३१॥

त्वयि जीवति मे दुःखमीदृशं च कथं भवेत् ? ।
भार्या लज्जा च सन्त्यक्ता भर्त्रा मे जीविताशया ॥३२॥

---

करधनी भी टूट कर पृथ्वी पर गिर गयी ॥ २६ ॥ 'इतना ही नहीं, रावण के देखते-देखते उसकी नीवी भी शिथिल हो कर कटि-प्रदेश से खिसक गयी। और समस्त आभूषण जहाँ-के-तहाँ बिखर कर गिर गये ॥ २७ ॥ इसी प्रकार और वानरों ने कौतुक से रावण की अन्यान्य पत्नियाँ, जो देव एवं गन्धर्वों की कन्यायें थीं, उन्हें भी पकड़ कर घसीटना प्रारम्भ किया। फिर मन्दोदरी रावण के आगे जोर-जोर से रोने लगी ॥२८॥

वह अत्यन्त दीन होकर करुणा भरे शब्दों में रावण से कहने लगी—ओः तुम बड़े निर्लज्ज हो, तुम्हारे सामने ही ये शत्रुगण तुम्हारे स्त्रियों की चोटी पकड़ कर घसीट रहे हैं। फिर भी तुम होम कर ही रहे हो। क्या तुम्हें लज्जा नहीं आती, शत्रुगण जिसकी भार्या को उसी के सामने पीट रहे हों। उसे तो वहीं मर जाना चाहिए। उसके जीने से उसका मरना ही अच्छा है। हाय मेघनाद ! तुम कहाँ हो, तुम्हारी माता वानरों के हाथ में पड़ कर क्लेश पा रही है ॥ २९–३१ ॥

हा पुत्र ! यदि आज तुम जीते होते तो मुझे इस प्रकार का दुःख क्यों देखना पड़ता ? इस समय मेरे पति ने तो अपने जीवन को बचाने के लिए

श्रुत्वा-तद् देवितं राजा मन्दोदर्या दशाननः ।
उत्तस्थौ खड्गमादाय त्यज देवीमिति ब्रुवन् ॥३३॥
जघानाऽङ्गदमव्यग्रः कटिदेशे दशाननः ।
तदोत्सृज्य ययुः सर्वे विध्वंस्य हवनं महत् ॥३४॥
रामपार्श्वमुपागम्य तस्थुः सर्वे प्रहर्षिताः ।
रावणस्तु ततो भार्यामुवाच परिसान्त्वयन् ॥३५॥
दैवाधीनमिदं भद्रे ! जीवता किं न दृश्यते ? ।
त्यज शोकं विशालाक्षि ! ज्ञानमालम्ब्य निश्चितम् ॥३६॥
अज्ञानप्रभवः शोकः शोको ज्ञानविनाशकृत् ।
अज्ञानप्रभवाहंधीः शरीरादिष्वनात्मसु ॥३७॥
तन्मूलः पुत्रदारादिसम्बन्धः संसृतिस्ततः ।
हर्ष-शोक-भय-क्रोध-लोभ-मोह-स्पृहादयः ॥३८॥

---

लज्जा तथा स्त्री दोनों से अपना मुँह मोड़ लिया है ॥ ३२ ॥ राक्षसराज रावण मन्दोदरी के इस विलाप को सुन कर हाथ में तलवार लेकर 'देवी को छोड़ो' ऐसा कहते हुए होम से उठ खड़े हुए ॥ ३३ ॥ फिर उन्होंने अङ्गद के कटि-प्रदेश पर उस खड्ग से प्रहार किया । इस प्रकार उसका यज्ञ विध्वंस कर सभी वानर वहाँ से चल पड़े ॥ ३४ ॥ और प्रसन्न मन से राम के पास जाकर खड़े हो गये । तदनन्तर रावण अपनी भार्या मन्दोदरी को धीरज देता हुआ बोला—॥ ३५ ॥

हे कल्याणि, यह सब कुछ दैवाधीन है । अतः दैवाधीन प्राणी अपने जीते जी क्या नहीं देखता । हे विशाल नेत्रे ! इस निश्चित ज्ञान का आश्रय लेकर तुम शोक छोड़ो ॥ ३६ ॥ शोक अज्ञान से होता है, जो ज्ञान को नष्ट करता है । और अनात्म शरीरादि पदार्थों में 'अहं' यह बुद्धि अज्ञान से होती है ॥ ३७ ॥ पुत्र एवं स्त्री का सम्बन्ध अज्ञान के कारण ही होता है । इस अज्ञान से ही संसार तथा उसी से हर्ष, शोक, भय, क्रोध, लोभ, मोह एवं इच्छा आदि उत्पन्न होते रहत हैं ॥ ३८ ॥

अज्ञानप्रभवा ह्येते जन्म-मृत्यु-जरादयः ।
आत्मा तु केवलं शुद्धो व्यतिरिक्तो ह्यलेपकः ॥३९॥
आनन्दरूपो ज्ञानात्मा सर्वभावविवर्जितः ।
न संयोगो वियोगो वा विद्यते केनचित् सतः ॥४०॥
एवं ज्ञात्वा स्वमात्मानं त्यज शोकमनिन्दिते ! ।
इदानीमेव गच्छामि हत्वा रामं स-लक्ष्मणम् ॥४१॥
आगमिष्यामि नो चेन्मां दारयिष्यति सायकैः ।
श्रीरामो वज्र कल्पैश्च ततो गच्छामि तत्पदम् ॥४२॥
तदा त्वया मे कर्तव्या क्रिया मच्छासनात् प्रिये ! ।
सीतां हत्वा मया सार्धं त्वं प्रवेक्ष्यसि पावकम् ॥४३॥
एवं श्रुत्वा वचस्तस्य रावणस्याऽतिदुःखिता ।
उवाच नाथ ! मे वाक्यं शृणु सत्यं तथा कुरु ॥४४॥
शक्यो न राघवो जेतुं त्वया चाऽन्यैः कदाचन ।
रामो देववरः साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरः ॥४५॥

---

जन्म, मृत्यु तथा वार्धक्य आदि अवस्थाएँ भी अज्ञान से होती हैं। आत्मा तो सर्वथा शुद्ध तथा सबसे पृथक् और असंग है॥ ३९ ॥ वह आनन्द स्वरूप है, ज्ञानमय तथा उत्पत्ति, विनाशादि भावों से रहित है। उस सत् पदार्थ का किसी से न संयोग होता है और न किसी से वियोग ही होता है॥ ४० ॥

हे अनिन्दिते ! अपने आत्मा के स्वरूप को जानकर तुम व्यर्थ का शोक छोड़ दो। मैं अभी जा रहा हूँ, और या तो लक्ष्मण सहित राम को मारकर आऊँगा या श्रीराम वज्र के समान अपने बाणों से मुझे नष्ट-भ्रष्ट कर देंगे। तब मैं उनके पद को प्राप्त कर लूँगा॥ ४१-४२ ॥ तब हे प्रिये ! तुम मेरी आज्ञा से एक काम यह करना कि सीता को मार डालना। पुनः मेरे शव के साथ अग्नि में प्रवेश कर जाना॥ ४३ ॥

रावण की बात सुनते ही मन्दोदरी ने अत्यन्त दुःखित होकर कहा—हे नाथ ! मैं आपसे ठीक-ठीक कह रही हूँ। मेरी बात सुनकर आप उसी प्रकार कीजिए॥ ४४ ॥ राम तुमसे अथवा अन्य किसी से नहीं जीते जा

मत्स्यो भूत्वा पुरा कल्पे मनुं वैवस्वतं प्रभुः ।
ररक्ष सकलापद्भ्यो राघवो भक्तवत्सलः ॥४६॥
रामः कूर्मोऽभवत् पूर्वं लक्षयोजनविस्तृतः ।
समुद्रमथने पृष्ठे दधार कनकाचलम् ॥४७॥
हिरण्याक्षोऽतिदुर्वृत्तो हतोऽनेन महात्मना ।
क्रोडरूपेण वपुषा क्षोणीमुद्धरता क्वचित् ॥४८॥
त्रिलोककण्टकं दैत्यं हिरण्यकशिपुं पुरा ।
हतवान नरसिंहेन वपुषा रघुनन्दनः ॥४९॥
विक्रमैस्त्रिभिरेवासौ बलिं बद्ध्वा जगत्त्रयम् ।
आक्रम्यादात् सुरेन्द्राय भृत्याय रघुसत्तमः ॥५०॥
राक्षसाः क्षत्रियाकारा जाता भूमेर्भारावहाः ।
तान् हत्वा बहुशो रामो भुवं जित्वा ह्यदान्मुनेः ॥५१॥

---

सकते । राम साक्षात् विष्णु हैं, और वही प्रकृति तथा पुरुष के ईश्वर हैं ॥ ४५ ॥ इन्हीं प्रभु ने पहले कल्प में मत्स्य रूप धारण कर वैवस्वत मनु की समस्त आपत्तियों से रक्षा की थी ॥ ४६ ॥ फिर इन्हीं राम ने पूर्वकाल में एक लाख योजन विस्तार वाले कच्छप का रूप धारण कर समुद्र-मन्थन के समय अपनी पीठ पर सोने के सुमेरु पर्वत को धारण किया था ॥ ४७ ॥

किसी समय इन्हीं महात्मा राम ने वाराह रूप धारण कर पृथ्वी का उद्धार करते हुए अत्यन्त दुराचारी हिरण्याक्ष दैत्य को मारा था ॥ ४८ ॥ फिर इन्हीं रघुनन्दन राम ने ही नरसिंह रूप धारण कर त्रिलोकी के कण्टक स्वरूप हिरण्यकशिपु दैत्य का वध किया था ॥ ४९ ॥ इन्हीं रघुश्रेष्ठ श्रीराम ने त्रिविक्रम वामन का रूप धारण कर इस त्रिलोकी को तीन पदों से नापकर तथा बलि को बाँधकर अपने भृत्य इन्द्र को सारी त्रिलोकी दे दी थी ॥ ५० ॥

जिस समय समस्त राक्षस क्षत्रिय रूप से उत्पन्न होकर पृथ्वी के भार हो रहे थे। उस समय इन्होंने परशुराम का रूप धारण कर उन्हें कई बार संग्राम में मारकर उनसे सारी पृथ्वी जीत ली, फिर उसे कश्यप

स एव साम्प्रतं जातो रघुवंशे परात्परः ।
भवदर्थे रघुश्रेष्ठो मानुषत्वमुपागतः ॥५२॥
तस्य भार्या किमर्थं वा हृता सीता वनाद् बलात् ।
मम पुत्रविनाशार्थं स्वस्यापि निधनाय च ॥५३॥
इतः परं वा वैदेहीं प्रेषयस्व रघूत्तमे ।
विभीषणाय राज्यं तु दत्त्वा गच्छामहे वनम् ॥५४॥
मन्दोदरीवचः श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रवीत् ।
कथं भद्रे ! रणे पुत्रान् भ्रातॄन् राक्षसमण्डलम् ॥५५॥
घातयित्वा राघवेण जीवामि वनगोचरः ।
रामेण सह योत्स्यामि रामबाणैः सुशीघ्रगैः ॥५६॥
विदार्यमाणो यास्यामि तद्विष्णोः परमं पदम् ।
जानामि राघवं विष्णुं लक्ष्मीं जानामि जानकीम् ॥५७॥

---

मुनि को दे दिया ॥५१॥ वही परात्पर प्रभु इस समय रघुवंश में अवतार लेकर आपको मारने के लिए रामरूप से मनुष्य हुए हैं ॥ ५२ ॥ आपने उनकी भार्या सीता को तपोवन से बलात्कार कर क्यों चुरा ली। निश्चय ही मेरे पुत्र का वध कराने हेतु तथा अपनी मौत बुलाने के लिए आपने यह सब कार्य किया है ॥ ५३ ॥ अब जो हुआ सो हुआ इसके बाद अब भी आप सीता को रघुनाथ जी के पास भेज दीजिए। और यह लङ्का का राज्य विभीषण को दे दीजिए। तदनन्तर हम सभी वन को चले चलेंगे ॥ ५४ ॥

मन्दोदरी के वचन को सुनकर रावण बोला—हे भद्रे ! भला, तुम्हीं बताओ, युद्ध में पुत्र, भाई तथा सभी राक्षसों का राम से इस प्रकार वध कराकर मैं वनवासी—जैसा जीवन किस प्रकार बिता सकता हूँ। मैं अब राम के साथ युद्ध करूँगा। तथा क्षिप्रकारी बाणों से विद्ध होकर विष्णु के परम धाम को प्राप्त करूँगा। मैं जानता हूँ कि राम, विष्णु हैं और जानकी महालक्ष्मी हैं ॥ ५५–५७ ॥

ज्ञात्वैव जानकी सीता मयाऽऽनीता वनाद् बलात् ।
रामेण निधनं प्राप्य यास्यामीति परं पदम् ॥५८॥
विमुच्य त्वां तु संसाराद् गमिष्यामि सह प्रिये ! ।
परानन्दमयी शुद्धा सेव्यते या मुमुक्षुभिः ॥५९॥
तां गतिं तु गमिष्यामि हतो रामेण संयुगे ।
प्रक्षाल्य कल्मषाणीह मुक्तिं यास्यामि दुर्लभाम् ॥६०॥

क्लेशादि-पञ्चक-तरङ्गयुतं भ्रमाढ्यं
दारात्मजाप्त-धन-बन्धु-झषाभियुक्तम् ।
और्वानलाभ-निजरोषमनङ्ग-जालं
संसार-सागरमतीत्य हरिं व्रजामि ॥६१॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
युद्धकाण्डे दशमः सर्गः ॥ १० ॥

□

---

यह सब जानकर ही मैंने बलात् तपोवन से जानकी का अपहरण किया है। अब मैं तुम्हें छोड़कर अपने अन्यान्य राक्षसों के साथ संसार से प्रस्थान करूँगा ॥ ५८ ॥ मुमुक्षु गण जिस परमानन्दमयी विशुद्ध गति का सेवन करते हैं। संग्राम में भगवान् राम के हाथों मरकर मैं भी उसी गति को प्राप्त करूँगा ॥ और अपने समस्त पापों को इस प्रकार धोकर दुर्लभ मोक्ष पद प्राप्त करूँगा ॥ ५९-६० ॥

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेश आदि पाँच क्लेश रूपी तरङ्गों से युक्त, भ्रमरूपी भँवर एवं स्त्री, पुत्र, सुहृद्, विभव एवं बन्धुरूपी मत्स्यों से पूर्ण तथा अपने क्रोधरूपी वडवानल एवं काम रूपी जालों से युक्त इस संसार-सागर को पारकर मैं अब श्रीहरि के निकट जाऊँगा ॥ ६१ ॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दीव्याख्या विभूषित अध्यात्म-रामायण के उमा-महेश्वर संवाद में युद्धकाण्ड का दशम सर्ग समाप्त ॥ १० ॥

□

# एकादशः सर्गः

( राम-रावण-संग्राम और रावणका वध )

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्त्वा वचनं प्रेम्णा राज्ञीं मन्दोदरीं तदा ।
रावणः प्रययौ योद्धुं रामेण सह संयुगे ॥१॥

दृढं स्यन्दनमास्थाय वृतो घोरैर्निशाचरैः ।
चक्रैः षोडशभिर्युक्तं सवरूथं सकूबरम् ॥२॥
पिशाचवदनैर्घोरैः खरैर्युक्तं भयावहम् ।
सर्वास्त्र-शस्त्रसहितं सर्वोपस्करसंयुतम् ॥३॥
निश्चक्रामाथ सहसा रावणो भीषणाकृतिः ।
आयान्तं रावणं दृष्ट्वा भीषणं रणकर्कशम् ॥४॥
सन्त्रस्ताऽभूत्तदा सेना वानरी रामपालिता ॥५॥

---

महादेव जी ने कहा—हे पार्वती ! मन्दोदरी को इस प्रकार प्रेम से समझाकर रावण राम के साथ युद्ध करने के लिए रणभूमि में चला ॥ १ ॥

वह महा भयंकर राक्षसों से घिरा हुआ एक दृढ़ स्यन्दन (रथ) पर सवार हुआ। उस रथ में सोलह पहिए लगे हुये थे तथा वह बरूथ (अर्थात् रथ की रक्षा हेतु बना हुआ लोहे आदि का आवरण) एवं कूबर (रथ का वह भाग, जिस पर जूआ बाँधा जाता है) से युक्त था ॥ २ ॥

उसका वह रथ पिशाचमुख गधों से युक्त रहने के कारण अत्यन्त भयंकर था, और सभी अस्त्र-शस्त्रों से सम्पन्न तथा युद्ध की समस्त सामग्री से परिपूर्ण था ॥ ३ ॥

इस के अनन्तर महाभयानक रूप वाला वह रावण युद्ध के लिए सहसा लङ्का से बाहर निकला। युद्ध में अत्यन्त क्रूर तथा रणकर्कश रावण को आता देख सारी वानरी-सेना राम से रक्षित होते हुए भी भय-सन्त्रस्त

हनूमानथ चोत्प्लुत्य रावणं योद्धुमाययौ ।
आगत्य हनुमान् रक्षोवक्षस्यतुलविक्रमः ॥६॥
मुष्टिबन्धं दृढं बद्ध्वा ताडयामास वेगतः ।
तेन मुष्टिप्रहारेण जानुभ्यामपतद्रथे ॥७॥
मूर्च्छितोऽथ मुहूर्तेन रावणः पुनरुत्थितः ।
उवाच च हनूमन्तं शूरोऽसि मम सम्मतः ॥८॥
हनूमानाह तं धिङ् मां यस्त्वं जीवसि रावण ! ।
त्वं तावन् मुष्टिना वक्षो मम ताडय रावण ! ॥९॥
पश्चान् मया हतः प्राणान् मोक्ष्यसे नाऽत्र संशयः ।
तथेति मुष्टिना वक्षो रावणेनापि ताडितः ॥१०॥
निघूर्णमाननयनः किञ्चित् कश्मलमाययौ ।
संज्ञामवाप्य कपिराड् रावणं हन्तुमुद्यतः ॥११॥
ततोऽन्यत्र गतो भीत्या रावणो राक्षसाधिपः ।
हनूमानङ्गदश्चैव नलो नीलस्तथैव च ॥१२॥

---

हो उठी ॥ ४-५ ॥ सर्व-प्रथम हनुमान् जी रावण से युद्ध करने के लिए उछल कर उसके सामने आये। महापराक्रमी हनुमान् जी ने आते ही दृढ़ता से मुक्का बाँधकर रावण के हृदय में बड़े वेग से प्रहार किया। उस मुक्के के लगते ही रावण अपने दोनों घुटनों के बल गिर गया ॥ ६-७ ॥ पुनः एक मुहूर्त मूर्च्छित रहने के अनन्तर रावण सचेत होकर उठ बैठा। और हनुमान् जी से कहा—तुम शूर हो, यह मैं मानता हूँ ॥ ८ ॥

तब हनुमान् जी ने कहा—हे रावण ! मुझे धिक्कार है, जो मेरा घूँसा लगने पर भी तुम जीवित उठ गये। अच्छा, हे रावण ! अब तुम अपने मुक्के से मेरी छाती में प्रहार करो ॥ ९ ॥ इसके बाद अब यदि मेरा मुक्का तुम्हें लगा, तो निश्चय ही तुम मर जाओगे। रावण ने भी तथास्तु कहकर हनुमान् जी की छाती में घूँसा से मारा ॥ १० ॥ उस मुक्के के लगने से हनुमान् जी के नेत्र घूमने लगे। तथा वे चक्कर खाते हुए मूर्च्छित हो गये। फिर चेत होने पर कपिराज हनुमान् जी रावण को मारने के लिए तैयार हो गये ॥ ११ ॥ तब राक्षसराज उस मुक्के से डरता हुआ

चत्वारः समवेताऽग्रे दृष्ट्वा राक्षसपुङ्गवान् ।
अग्निवर्णं तथा सर्परोमाणं खड्गरोमकम् ॥१३॥
तथा वृश्चिकरोमाणं निर्जघ्नुः क्रमशोऽसुरान् ।
चत्वारश्चतुरो हत्वा राक्षसान् भीमविक्रमान् ।
सिंहनादं पृथक कृत्वा रामपार्श्वमुपागताः ॥१४॥
ततः क्रुद्धो दशग्रीवः सन्दश्य दशनच्छदम् ॥१५॥
विवृत्य नयने क्रूरो राममेवान्वधावत ।
दशग्रीवो रथस्थस्तु रामं वज्रोपमैः शरैः ॥१६॥
आजघान महाघोरैर्धाराभिरिव तोयदः ।
रामस्य पुरतः सर्वान् वानरानपि विव्यथे ॥१७॥
ततः पावक-सङ्काशैः शरैः काञ्चनभूषणैः ।
अभ्यवर्षद्द् रणे रामो दशग्रीवं समाहितः ॥१८॥

---

दूसरी ओर चला गया। फिर अङ्गद, हनुमान्, नल एवं नील, चारों ने एकत्र होकर अग्निवर्ण, सर्परोमा, खड्गरोम एवं वृश्चिकरोमा नामक राक्षस-पुङ्गवों को देखा। पुनः उन चारों ने क्रमशः महापराक्रमी उन राक्षसों को मार डाला। फिर सिंहनाद करते हुए राम के पास आ खड़े हुए ॥ १२-१४ ॥

तदनन्तर अत्यन्त क्रूर रावण क्रोध से होठों को चबाता हुआ तथा अपने नेत्रों को फाड़ कर देखता हुआ रामचन्द्र की ओर बड़े वेग से दौड़ा। और अपने रथ पर चढ़े हुए श्रीरामचन्द्र जी पर वज्रोपम बाणों से प्रहार करने लगा ॥ १५-१६ ॥ जिस प्रकार मेघ महा घनघोर जलधारा की वर्षा करता है, उसी प्रकार से बाणों की वर्षा करता हुआ रावण, राम के सामने ही सभी बानरों को एवं स्वयं राम को भी व्यथित कर दिया ॥ १७ ॥ पुनः श्रीरामचन्द्र जी भी समाहित मन से रणभूमि में रावण पर अग्नि के समान तेजस्वी एवं सुवर्णभूषित बाणों की वर्षा करने लगे ॥ १८ ॥

रथस्थं रावणं दृष्ट्वा भूमिष्ठं रघुनन्दनम् ।
आहूय मातलिं शक्रो वचनं चेदमब्रवीत् ॥१९॥
रथेन मम भूमिष्ठं शीघ्रं याहि रघूत्तमम् ।
त्वरितं भूतलं गत्वा कुरु कार्यं ममाऽनघ ! ॥२०॥
एवमुक्तोऽथ तं नत्वा मातलिर्देवसारथिः ।
ततो हयैश्च संयोज्य हरितैः स्यन्दनोत्तमम् ॥२१॥
स्वर्गाज्जयार्थं रामस्य ह्युपचक्राम मातलिः ।
प्राञ्जलिर्देवराजेन प्रेषितोऽस्मि रघूत्तम ! ॥२२॥
रथोऽयं देवराजस्य विजयाय तव प्रभो ! ।
प्रेषितश्च महाराज ! धनुरैन्द्रं च भूषितम् ॥२३॥
अभेद्यं कवचं खड्गं दिव्यतूणीयुगं तथा ।
आरुह्य च रथं राम ! रावणं जहि राक्षसम् ॥२४॥
मया सारथिना देववृत्रं देवपतिर्यथा ।
इत्युक्तस्तं परिक्रम्य नमस्कृत्य रथोत्तमम् ॥२५॥

---

रावण को रथ पर चढ़े देख एवं श्रीरामचन्द्र जी को पृथ्वी पर खड़े देख इन्द्र ने मातलि को बुलाकर इस प्रकार का वचन कहा—॥ १९ ॥ हे अनघ ! तुम तुरन्त मेरा रथ लेकर भूलोक में, जहाँ रामचन्द्र पृथ्वी पर खड़े हैं, उनके पास ले जाओ और मेरा कार्य करो ॥ २० ॥ इन्द्र के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर देवसारथि मातलि ने उन्हें नमस्कार किया। फिर हरित वर्ण वाले घोड़ों को उस उत्तम रथ में जोत कर ॥ २१ ॥ राम की विजय के लिए स्वर्ग से उतर कर उनके पास उपस्थित हुआ। और हाथ जोड़कर बोला—हे देव ! मैं देवराज इन्द्र के द्वारा आप के पास भेजा गया हूँ ॥ २२ ॥ हे प्रभो ! यह देवराज इन्द्र का रथ है, उन्होंने आप की विजय के लिए यह रथ भेजा है, जिस पर ऐन्द्रधनुष, अभेद्यकवच, खड्ग तथा दो दिव्य तरकस रखे हुए हैं ॥ २३-२४ ॥

हे देव ! जिस प्रकार देवराज इन्द्र ने मुझ सारथी को साथ लेकर वृत्रासुर का वध किया था, उसी प्रकार आप भी इस रावण का वध कीजिए। मातलि के द्वारा इस प्रकार कहने पर श्रीरामचन्द्र जी ने उस

आरुरोह रथं रामो लोकाँल्लक्ष्म्या नियोजयन् ।
ततोऽभवन् महायुद्धं भैरवं रोमहर्षणम् ॥२६॥
महात्मनो राघवस्य रावणस्य च धीमतः ।
आग्नेयेन च आग्नेयं दैवं दैवेन राघवः ॥२७॥
अस्त्रं राक्षसराजस्य जघान परमास्त्रवित् ।
ततस्तु ससृजे घोरं राक्षसं चास्त्रमस्त्रवित् ।
क्रोधेन महताविष्टो रामस्योपरि रावणः ॥२८॥
रावणस्य धनुर्मुक्ताः सर्पा भूत्वा महाविषाः ।
शराः काञ्चनपुङ्खाभा राघवं परितोऽपतन् ॥२९॥
तैः शरैः सर्पवदनैर्वमद्भिरनलं मुखैः ।
दिशश्च विदिशश्चैव व्याप्तास्तत्र तदाऽभवन् ॥३०॥
रामः सर्पास्ततो दृष्टवा समन्तात् परिपूरितान् ।
सौपर्णमस्त्रं तद् घोरं पुरः प्रावर्तयद्रणे ॥३१॥

---

रथ की प्रदक्षिणा कर उसे नमस्कार किया ॥ २३-२५ ॥ और सम्पूर्ण लोकों को लक्ष्मी-सम्पन्न करते हुए उस पर सवार हुए। तथा महात्मा राम एवं बुद्धिमान् रावण का महाभयङ्कर, रोमाञ्चकारी घोर युद्ध होने लगा। परमास्त्रवेत्ता श्रीरामचन्द्र जी ने रावण के आग्नेयास्त्र को आग्नेयास्त्र से तथा देवास्त्र को देवास्त्र से काट डाला। फिर अस्त्रवेत्ता रावण ने भी क्रोध में भरकर श्रीरामचन्द्र जी पर महाघोर राक्षसास्त्र छोड़ा ॥ २६-२८ ॥

रावण के धनुष से छूटे हुए बाण जिनमें सुवर्ण के पङ्ख लगे हुए थे। महाविषधर साँप बनकर रामचन्द्र जी के चारों ओर गिरने लगे ॥ २९ ॥ रावण के द्वारा छोड़े गये सर्प सदृश मुख वाले उन बाणों से, जो अग्नि की ज्वाला उगल रहे थे, सारी दिशाएँ एवं विदिशाएँ व्याप्त हो गयीं ॥ ३० ॥ पुनः राम ने चारों ओर जब रणभूमि को सर्पों से व्याप्त देखा तो महाभयंकर गारुडास्त्र छोड़ा ॥ ३१ ॥

रामेण मुक्तास्ते बाणा भूत्वा गरुडरूपिणः ।
चिच्छिदुः सर्पबाणांस्तान् समन्तात् सर्पशत्रवः ॥३२॥
अस्त्रे प्रतिहते युद्धे रामेण दशकन्धरः ।
अभ्यवर्षत ततो रामं घोराभिः शरवृष्टिभिः ॥३३॥
ततः पुनः शरानीकै राममक्लिष्टकारिणम् ।
अर्दयित्वा तु घोरेण मातलिं प्रत्यविध्यत ॥३४॥
पातयित्वा रथोपस्थे रथकेतुं च काञ्चनम् ।
ऐन्द्रानश्वानभ्यहनद्रावणः क्रोधमूर्च्छितः ॥३५॥
विषेदुर्देव-गन्धर्वाश्चारणाः पितरस्तथा ।
आर्त्ताकारं हरिं दृष्ट्वा व्यथिताश्च महर्षयः ॥३६॥
व्यथिता वानरेन्द्राश्च बभूवुः स-विभीषणाः ।
दशास्यो विंशतिभुजः प्रगृहीतशरासनः ॥३७॥
ददृशे रावणस्तत्र मैनाक इव पर्वतः ।
रामस्तु भ्रुकुटिं बद्ध्वा क्रोधसंसरक्तलोचनः ॥३८॥

---

श्रीराम के द्वारा छोड़े गये वे बाण सर्प-शत्रु गरुड़ का रूप धारण कर जहाँ-तहाँ उन सर्परूप बाणों को काटने लगे ॥ ३२ ॥ उस युद्ध में जब रावण ने देखा कि राम मेरे सभी शस्त्रों को काट रहे हैं, तो उसने राम पर भयंकर बाणों की वर्षा पुनः प्रारम्भ कर दी ॥ ३३ ॥ इस प्रकार वह अक्लिष्ट कर्मा राम को बाण-समूहों से पीडित कर पुनः मातलि को भी घोर बाण से आहत कर दिया ॥ ३४ ॥ क्रोध में उन्मत्त हुआ रावण ने इन्द्र के उस रथ की सुवर्णमयी ध्वजा काटकर, उसे रथ के पिछले भाग में गिरा दी और इन्द्र के घोड़ों को भी आहत कर दिया ॥३५॥ भगवान् राम को इस प्रकार विपद्ग्रस्त देख, देवता, गन्धर्व, चारण तथा पितर विषाद से पूर्ण हो गये। एवं महर्षिगण मन में व्यथित हो उठे ॥ ३६ ॥

विभीषण समेत सभी वानर सेनापति भी शोक-सन्तप्त हो उठे। उस समय दशमुख एवं बीस भुजा वाला वह रावण हाथ में धनुष धारण किये हुए मैनाक पर्वत के समान मालूम पड़ता था। इधर भगवान् राम

कोपं चकार सदृशं निर्दहन्निव राक्षसम् ।
धनुरादाय देवेन्द्रधनुराकारमद्भुतम् ॥३९॥
गृहीत्वा पाणिना बाणं कालानलसमप्रभम् ।
निर्दहन्निव चक्षुर्भ्यां ददृशे रिपुमन्तिके ॥४०॥
पराक्रमं दर्शयितुं तेजसा प्रज्वलन्निव ।
प्रचक्रमे कालरूपी सर्वलोकस्य पश्यतः ॥४१॥
विकृष्य चापं रामस्तु रावणं प्रतिविध्य च ।
हर्षयन् वानरानीकं कालान्तक इवाबभौ ॥४२॥
क्रुद्धं रामस्य वदनं दृष्ट्वा शत्रुं प्रधावतः ।
तत्रसुः सर्वभूतानि चचाल च वसुन्धरा ॥४३॥
रामं दृष्ट्वा महारौद्रमुत्पातांश्च सुदारुणान् ।
त्रस्तानि सर्वभूतानि रावणं चाविशद् भयम् ॥४४॥

---

के नेत्र लाल हो गये और उनकी त्यौरी चढ़ गयी ॥ ३७-३८ ॥ उस समय उन्होंने ऐसा क्रोध किया मानो रावण को जला देंगे। फिर तो उन्होंने इन्द्रधनुष के समान एक विचित्र धनुष उठाया ॥ ३९ ॥ हाथ में कालाग्नि के समान परम तेजोमय बाण लेकर अपने समीपवर्ती शत्रु को नेत्रों से देखा, मानो अभी भस्म कर देंगे ॥ ४० ॥ उन कालरूपी भगवान् श्रीराम ने अपने तेज से जलते हुए समस्त संसार के सामने अपना पराक्रम दिखाना प्रारम्भ किया ॥ ४१ ॥ उन्होंने अपना धनुष खींच कर रावण को घायल कर दिया। उस समय वे वानर-गणों को आनन्दित करते हुए संसार का प्रलय करने वाले काल के समान प्रतीत हो रहे थे ॥ ४२ ॥

शत्रु पर आक्रमण करते हुए राम के सक्रोध मुख को देखकर समस्त प्राणी भयभीत हो उठे और पृथ्वी थरथराने लगी ॥ ४३ ॥ उस समय राम का अतिरौद्र रूप तथा भयानक उत्पातों को देखकर संसार के सभी प्राणी त्रस्त हो उठे। और रावण पर आतङ्क सा छा गया ॥ ४४ ॥

विमानस्थाः सुरगणाः सिद्ध-गन्धर्व-किन्नराः ।
ददृशुः सुमहायुद्धं लोकसंवर्तकोपमम् ।
ऐन्द्रमस्त्रं समादाय रावणस्य शिरोऽच्छिनत् ॥४५॥
मूर्धानो रावणस्याऽथ बहवो रुधिरोक्षिताः ।
गगनात् प्रपतन्ति स्म तालादिव फलानि हि ॥४६॥
न दिनं न च वै रात्रिर्न सन्ध्या न दिशोऽपि वा ।
प्रकाशन्ते न तद्रूपं दृश्यते तत्र सङ्गरे ॥४७॥
ततो रामो बभूवाऽथ विस्मयाविष्टमानसः ।
शतमेकोत्तरं छिन्नं शिरसां चैकवर्चसाम् ॥४८॥
न चैव रावणः शान्तो दृश्यते जीवितक्षयात् ।
ततः सर्वास्त्रविद्वीरः कौशल्यानन्दवर्धनः ॥४९॥
अस्त्रैश्च बहुभिर्युक्तश्चिन्तयामास राघवः ।
यैर्यैर्बाणैर्हता दैत्या महासत्त्वपराक्रमाः ॥५०॥

---

विमान पर चढ़े हुए देवगण, सिद्ध, गन्धर्व एवं किन्नर लोक प्रलयान्तकारी राम-रावण के इस घोर युद्ध को देख रहे थे, इसी समय राम ने ऐन्द्रास्त्र का प्रयोग कर रावण के शिर काट दिये ॥ ४५ ॥

रावण के रुधिर से लथपथ बहुत से शिर आकाश-मण्डल से पृथ्वी पर इस प्रकार गिर रहे थे, मानो ताड़ के वृक्ष से उसके फल गिर रहे हों ॥ ४६ ॥ युद्ध में उस समय न तो दिन दिखाई पड़ता था न रात्रि न सन्ध्या और न तो दिशाएँ ही जान पड़ती थीं। और न तो रावण का रूप ही दिखाई पड़ता था, केवल चारों ओर शिर ही शिर दिखाई पड़ते थे ॥ ४७ ॥

रामचन्द्रजी भी आश्चर्य में पड़ गये। उन्होंने विचार किया कि मैंने एक समान तेज वाले एक सौ एक सिर काट डाले ॥ ४८ ॥ इस प्रकार जीवन-शक्ति के नाश होने पर भी रावण शान्त होता दिखाई नहीं देता। तब सर्वास्त्र-विशारद, वीर एवं सभी अस्त्रों से युक्त कौशल्यानन्दन राम ने विचार किया कि जिन-जिन बाणों से मैंने बड़े-बड़े बलवान् दैत्यों को

त एते निष्फलं याता रावणस्य निपातने।
इति चिन्ताकुले रामे समीपस्थो विभीषणः ॥५१॥
उवाच राघवं वाक्यं ब्रह्मदत्तवरो ह्यसौ।
विच्छिन्ना बाहवोऽप्यस्य विच्छिन्नानि शिरांसि च ॥५२॥
उत्पत्स्यन्ति पुनः शीघ्रमित्याह भगवानजः।
नाभिदेशेऽमृतं तस्य कुण्डलाकारसंस्थितम् ॥५३॥
तच्छोषयानलास्त्रेण तस्य मृत्युस्ततो भवेत्।
विभीषणवचः श्रुत्वा रामः शीघ्रपराक्रमः ॥५४॥
पावकास्त्रेण संयोज्य नाभिं विव्याध रक्षसः।
अनन्तरं च चिच्छेद शिरांसि च महाबलः ॥५५॥
बाहूनपि च संरब्धो रावणस्य रघूत्तमः।
ततो घोरां महाशक्तिमादाय दशकन्धरः ॥५६॥
विभीषणवधार्थाय चिक्षेप क्रोधविह्वलः।
चिच्छेद राघवो बाणैस्तां शितैर्हेमभूषितैः ॥५७॥

---

मारा था वे सभी बाण रावण का वध करने में निष्फल हो गये। भगवान् राम को इस प्रकार चिन्तित देख उनके समीप में खड़े हुए ॥ ४९-५१ ॥

विभीषण ने कहा—हे भगवन् ! ब्रह्मा के द्वारा इसने वरदान प्राप्त किया है, उन्होंने कहा था कि इसकी भुजाएँ और शिर बारम्बार काट दिये जाने पर भी पुनः शीघ्र ही उत्पन्न हो जायेंगे। इसके नाभि-देश में कुण्डलाकार रूप से अमृत संस्थित है ॥ ५२-५३ ॥ जब आप उसे आग्नेयास्त्र से सुखा देंगे तब इसकी मृत्यु हो जायेगी। विभीषण की बात सुनकर पराक्रमी राम ने शीघ्र अपने धनुष पर आग्नेयास्त्र को चढ़ाकर उसकी नाभि में प्रहार किया। इसके अनन्तर उन्होंने पुनः उस राक्षस के शिर एवं भुजाएँ काट डालीं। फिर क्रोध से विह्वल रावण ने अपनी घोर शक्ति लेकर विभीषण को मारने के लिए छोड़ी। किन्तु रघुनाथ जी ने सुवर्ण-मण्डित अपने तीक्ष्ण बाणों से उस शक्ति को बीच में ही काट दिया ॥ ५४-५७ ॥

दशग्रीवशिरश्छेदात्तदा तेजो विनिर्गतम् ।
म्लानरूपो बभूवाथ छिन्नैः शीर्षैर्भयङ्करैः ॥५८॥
एकेन मुख्यशिरसा बाहुभ्यां रावणो बभौ ।
रावणस्तु पुनः क्रुद्धो नानाशस्त्रास्त्रवृष्टिभिः ॥५९॥
ववर्ष रामं तं रामस्तथा बाणैर्ववर्ष च ।
ततो युद्धमभूद् घोरं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥६०॥
अथ संस्मारयामास मातली राघवं तदा ।
विसृज्यास्त्रं वधायास्य ब्राह्मं शीघ्रं रघूत्तम ! ॥६१॥
विनाशकालः प्रथितो यः सुरैः सोऽद्य वर्तते ।
उत्तमाङ्गं न चैतस्य छेत्तव्यं राघव ! त्वया ॥६२॥
नैव शीर्ष्णि प्रभो ! वध्यो वध्य एव हि मर्मणि ।
ततः संस्मारितो रामस्तेन वाक्येन मातलेः ॥६३॥
जग्राह सशरं दीप्तं निःश्वसन्तमिवोरगम् ।
यस्य पार्श्वे तु पवनः फले भास्करपावकौ ॥६४॥

---

अब बारम्बार शिर काट जाने के कारण रावण निस्तेज हो रहा था। तथा उन भयंकर शिरों के कट जाने से वह बड़ा मलीन रूप दिखाई पड़ता था ॥ ५८ ॥ अब रावण की एक शिर तथा दो भुजाएँ ही शेष रह गयी थीं। तब भी वह रावण क्रुद्ध होकर श्रीराम पर अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों की वर्षा करने लगा। इसी प्रकार राम भी रावण पर भयंकर बाण-वर्षा करने लगे। इस प्रकार वहाँ फिर रोमाञ्चकारी एवं घमासान युद्ध छिड़ गया ॥ ५९-६० ॥ तब मातलि ने राम को स्मरण दिलाया कि हे रघूत्तम ! इसका वध करने के लिए शीघ्रातिशीघ्र ब्रह्मास्त्र छोड़िए ॥ ६१ ॥ देवताओं ने इसकी मृत्यु के लिए जो समय निश्चित किया था वह अब उपस्थित हो गया है। हे राघव ! अब आप इसके शिर का छेदन मत कीजिएगा ॥ ६२ ॥

हे प्रभो ! अब यह शिर काटने से नहीं मरेगा, किन्तु मर्मस्थान पर बाण लगने से इसकी मृत्यु होगी। मातलि के द्वारा इस प्रकार स्मरण दिलाये जाने पर ॥ ६३ ॥ श्रीराम ने साँप के समान फुफकारते हुए एक

शरीरमाकाशमयं गौरवे मेरुमन्दरौ ।
पर्वस्त्वपि च विन्यस्ता लोकपाला महौजसः ॥६५॥
जाज्वल्यमानं वपुषा भातं भास्करवर्चसा ।
तमुग्रमस्त्रं लोकानां भयनाशनमद्भुतम् ॥६६॥
अभिमन्त्र्य ततो रामस्तं महेषुं महाभुजः ।
वेदप्रोक्तेन विधिना सन्दधे कार्मुके बली ॥६७॥
तस्मिन् सन्धीयमाने तु राघवेण शरोत्तमे ।
सर्वभूतानि वित्रेसुश्चचाल च वसुन्धरा ॥६८॥
स रावणाय संक्रुद्धो भृशमानम्य कार्मुकम् ।
चिक्षेप परमायत्तस्तमस्त्रं मर्मघातिनम् ॥६९॥
स वज्र इव दुर्धर्षो वज्रपाणिविसर्जितः ।
कृतान्त इव घोरास्यो न्यपतद् रावणोरसि ॥७०॥
स निमग्नो महाघोरः शरीरान्तकरः परः ।
बिभेद हृदयं तूर्णं रावणस्य महात्मनः ॥७१॥

---

परम तेजस्वी बाण निकाला। जिसके पार्श्व में पवन, और अग्रभाग में सूर्य एवं अग्नि ॥ ६४ ॥ गुरुता में मेरु तथा मन्दर और गाँठ में महा तेजस्वी लोकपालों की स्थापना की गई थी, उस बाण का शरीर आकाशमय था ॥ ६५ ॥ अपने स्वरूप को कान्ति से वह सूर्य के समान देदीप्यमान था। महाबाहु राम ने समस्त लोक के भय को नाश करने वाले उस उग्र एवं अद्भुत अस्त्र को धनुर्वेदोक्त रीति से अभिमन्त्रित कर अपने धनुष पर चढ़ाया ॥ ६६-६७ ॥

भगवान् राम द्वारा उस श्रेष्ठ बाण के धनुष पर चढ़ाते ही संसार के सम्पूर्ण प्राणी भयभीत हो उठे, और पृथ्वी डगमगाने लगी ॥ ६८ ॥ फिर उन्होंने क्रुद्ध होकर धनुष को बड़ी सावधानी से भलो प्रकार खींच कर उस मर्मान्तिक बाण को रावण के वध के लिए छोड़ दिया ॥ ६९ ॥ वज्रपाणि इन्द्र के द्वारा छोड़े गये वज्र के समान, भयंकर मुख वाले, काल के समान वह असह्य बाण छूटते ही रावण के वक्षःस्थल में लग गया ॥ ७० ॥

वह शरीरान्तकारी महाभयानक बाण महात्मा रावण के हृदय को

रावणस्याहरत् प्राणान् विवेश धरणीतले ।
स शरो रावणं हत्वा रामतूणीरमाविशत् ॥७२॥
तस्य हस्तान्न पपाताशु सशरं कार्मुकं महत् ।
गतासुर्भ्रमिवेगेन राक्षसेन्द्रोऽपतद् भुवि ॥७३॥
तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ हतशेषाश्च राक्षसाः ।
हतनाथा भयत्रस्ता दुद्रुवुः सर्वतोदिशम् ॥७४॥
दशग्रीवस्य निधनं विजयं राघवस्य च ।
ततो विनेदुः संहृष्टा वानरा जितकाशिनः ॥७५॥
वदन्तो रामविजयं रावणस्य च तद्वधम् ।
अथान्तरिक्षे व्यनदत् सौम्यस्त्रिदशदुन्दुभिः ॥७६॥
पपात पुष्पवृष्टिश्च समन्ताद् राघवोपरि ।
तुष्टुवुर्मुनयः सिद्धाश्चारणाश्च दिवौकसः ॥७७॥

---

विदीर्ण करता हुआ उसके शरीर में शीघ्रता से घुस गया ॥ ७१ ॥ फिर तो उस बाण ने रावण का प्राण ले लिया, और स्वयं पृथ्वीतल में घुस गया। इस प्रकार रावण का वध करने के उपरान्त वह बाण राम के तरकस में पुनः चला आया ॥ ७२ ॥ बाण के लगते ही उसके हाथ से भारी धनुष बाण-सहित पृथ्वी पर गिर गया। और वह राक्षस चक्कर काटता हुआ प्राण रहित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ ७३ ॥ उसे इस प्रकार पृथ्वी पर गिरा देख बचे हुए राक्षस, अपने स्वामी के मर जाने पर भयभीत हो दशो दिशाओं में भाग गये ॥ ७४ ॥ पुनः रण में विजयी वानर, रावण को मरा हुआ एवं राम को विजयी देख प्रसन्नता से कोलाहल करने लगे ॥ ७५ ॥

उस समय वे 'राम की जय' तथा 'रावण का क्षय' का उद्घोष कर रहे थे। तदनन्तर आकाश-मण्डल में देवताओं के नगाड़े का शब्द होने लगा ॥७६॥ और रामचन्द्रजी के ऊपर चारों ओर से पुष्पवर्षा होने लगी। तथा मुनिगण, सिद्ध, चारण एवं देवता उनकी स्तुति करने लगे ॥ ७७ ॥

अथाऽन्तरिक्षे ननृतुः सर्वतोऽप्सरसो मुदा।
रावणस्य च देहोत्थं ज्योतिरादित्यवत् स्फुरत् ॥७८॥
प्रविवेश रघुश्रेष्ठं देवानां पश्यतां सताम्।
देवा ऊचुरहो! भाग्यं रावणस्य महात्मनः ॥७९॥
वयं तु सात्त्विका देवा विष्णोः कारुण्यभाजनाः।
भयदुःखादिभिर्व्याप्ताः संसारे परिवर्तिनः ॥ ८० ॥
अयं तु राक्षसः क्रूरो ब्रह्महातीव तामसः।
परदाररतो विष्णुद्वेषी तापसहिंसकः ॥ ८१ ॥
पश्यत्सु सर्वभूतेषु राममेव प्रविष्टवान्।
एवं ब्रुवत्सु देवेषु नारदः प्राह सुस्मितः ॥ ८२ ॥
शृणुताऽत्र सुरा यूयं धर्मतत्त्वविचक्षणाः।
रावणो राघवद्वेषादनिशं हृदि भावयन् ॥ ८३ ॥
भृत्यैः सह सदा रामचरितं द्वेषसंयुतः।
श्रुत्वा रामात् स्वनिधनं भयात् सर्वत्र राघवम् ॥ ८४ ॥

---

उस समय सभी अप्सराएँ आकाश में प्रसन्नता से नाचने लगीं। रावण के शरीर से सूर्य के समान तेजस्वी जो ज्योति निकली। वह ज्योति देवताओं के देखते-देखते श्रीराम में प्रविष्ट हो गयी, ऐसा देखकर देवगण कहने लगे—अहो! महात्मा रावण का भाग्य कितना सराहनीय है।॥७८-७९॥ हम लोग सात्त्विक हैं, उसमें भी देवता हैं, इतना ही नहीं, विष्णु के करुणा पात्र भी हैं फिर भी भय तथा दुःखादि से व्याप्त होकर संसार-सागर में आवागमन के चक्कर में फँसे हुए हैं ॥ ८० ॥ एक तो यह क्रूर, उसमें भी राक्षस, फिर भी ब्रह्मघाती, अत्यन्त तमोगुणी, परस्त्री-परायण, भगवद्-विरोधी एवं तपस्वियों का हत्यारा है ॥ ८१ ॥ फिर भी, सभी प्राणियों के देखते-देखते राम में लीन हो गया इस प्रकार आश्चर्य में देवताओं के द्वारा कहे जाने पर देवर्षि नारद ने कहा—॥ ८२ ॥

हे देवताओ! यद्यपि आप लोग तो धर्मतत्त्व के महान् विचक्षण हैं। फिर भी मेरी बात सुनिए। यह रावण राम के द्वेष से सदैव अपने हृदय में उन्हीं का ध्यान करता था ॥ ८३ ॥ और द्वेष के कारण ही अपने

पश्यन्ननुदिनं स्वप्ने राममेवाऽनुपश्यति ।
क्रोधोऽपि रावणस्याशु गुरुबोधाधिकोऽभवत् ॥ ८५ ॥
रामेण निहतश्चाऽन्ते निर्धूताऽशेषकल्मषः ।
रामसायुज्यमेवाप रावणो मुक्तबन्धनः ॥ ८६ ॥
पापिष्ठो वा दुरात्मा परधनपरदारेषु सक्तो यदि स्या-
न्नित्यंस्नेहाद् भयाद् वा रघुकुलतिलकं भावयन् सम्परेतः ।
भूत्वा शुद्धान्तरङ्गो भवशतजनितानेकदोषैर्विमुक्तः
सद्यो रामस्य विष्णोः सुरवरविनुतं याति वैकुण्ठमाद्यम् ॥८७॥
हत्वा युद्धे दशास्यं त्रिभुवनविषमं वामहस्तेन चापं
भूमौ विष्टभ्य तिष्ठन्नितरकरधृतं भ्रामयन् बाणमेकम् ।
आरक्तोपान्तनेत्रः शरदलितवपुः सूर्यकोटिप्रकाशो
वीरश्रीबन्धुराङ्गस्त्रिदशपतिनुतः पातु मां वीररामः ॥८८॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
युद्धकाण्डे एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥



---

सेवकों से सर्वदा राम के चरित्र को सुनता था, और राम के द्वारा अपना वध जानकर भय से सर्वत्र राममय देखता था ॥ ८४ ॥ भय से स्मरण, श्रवण, कीर्त्तन एवं मनन के प्रभाव से वह स्वप्न में भी राम को ही देखता था। इस प्रकार रावण का वह क्रोध भी गुरु के उपदेश से अधिक उपयोगी एवं हितकारी सिद्ध हुआ ॥ ८५ ॥ अन्त में भगवान राम के हाथ से मारे जाने के कारण उसका समस्त पाप नष्ट हो गया। और समस्त बन्धनों से मुक्त होकर वह राम में सायुज्य मोक्ष प्राप्त किया ॥८६॥ यद्यपि कोई पुरुष, पापात्मा, दुरात्मा, परधन एवं परदार में आसक्त भी हो तथापि यदि नित्य-प्रति स्नेह से अथवा भय से श्रीरामचन्द्र का चिन्तन करते हुए प्राण त्याग करता है, तो वह शुद्ध चित्त होकर सैकड़ों जन्मार्जित नाना प्रकार के पापों से छुटकारा पाकर विष्णु स्वरूप भगवान् राम के देवेन्द्र-वन्दित आदि स्थान वैकुण्ठ लोक को चला जाता है ॥ ८७ ॥

जो त्रिलोकी के कण्टक स्वरूप रावण को युद्ध में मार कर अपने बायें हाथ से धनुष को पृथ्वी पर टेक कर खड़े हुए हैं एवं दूसरे हाथ में धारण

## द्वादशः सर्गः

( विभीषणका राज्याभिषेक और सीताजीकी अग्नि-परीक्षा )

श्रीमहादेव उवाच

रामो विभीषणं दृष्ट्वा हनूमन्तं तथाऽङ्गदम् ।
लक्ष्मणं कपिराजं च जाम्बवन्तं तथा परान् ॥ १ ॥
परितुष्टेन मनसा सर्वानेवाऽब्रवीद् वचः ।
भवतां बाहुवीर्येण निहतो रावणो मया ॥ २ ॥
कीर्तिः स्थास्यति वः पुण्या यावच्चन्द्र-दिवाकरौ ।
कीर्तयिष्यन्ति भवतां कथां त्रैलोक्यपावनीम् ॥ ३ ॥
मयोपेतां कलिहरां यास्यन्ति परमां गतिम् ।
एतस्मिन्नन्तरे दृष्ट्वा रावणं पतितं भुवि ॥ ४ ॥

---

किये गये एक बाण को घुमा रहे हैं। जिनके नेत्रों के उपान्त भाग ईषद् रक्त हैं एवं बाणों से विद्ध होने के कारण जिनका शरीर करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशित हो रहा है। जिनका समुन्नत शरीर वीरता की श्री से सुशोभित है, इस प्रकार देवराज-वन्दित वीरवर श्रीराम हमारी रक्षा करें ॥ ८८ ॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या विभूषित अध्यात्म-रामायण के उमा-महेश्वर संवाद में युद्धकाण्ड का इग्यारहवाँ सर्ग समाप्त ॥ ११ ॥



श्रीमहादेव जी ने कहा—हे पार्वती ! श्रीरामचन्द्रजी ने विभीषण, हनुमान्, अङ्गद, जाम्बवान्, सुग्रीव एवं लक्ष्मण तथा अन्यान्य वीरवर वानरों को देख बड़ी प्रसन्नता से उनसे कहा—आप लोगों के बाहुबल की सहायता से मैंने रावण को मार दिया ॥ १-२ ॥

जब तक चन्द्रमा और सूर्य रहेंगे तब तक आप लोगों की यह पवित्र कीर्ति स्थिर रहेगी। और जो लोग मेरे सहित आप लोगों की कलि-कलमषनाशिनी त्रिलोकपावनी पवित्र कथा का कीर्त्तन करेंगे वे परम पद

मन्दोदरीमुखाः सर्वाः स्त्रियो रावणपालिताः ।
पतिता रावणस्याऽग्रे शोचन्त्यः पर्यदेवयन् ॥ ५ ॥
विभिषणः शुशोचार्तः शोकेन महतावृतः ।
पतितो रावणस्याग्रे बहुधा पर्यदेवयत् ॥ ६ ॥
रामस्तु लक्ष्मणं प्राह बोधयस्व विभीषणम् ।
करोतु भ्रातृसंस्कारं किं विलम्बेन मानद ! ॥ ७ ॥
स्त्रियो मन्दोदरीमुख्याः पतिता विलपन्ति च ।
निवारयतु ताः सर्वा राक्षसी रावणप्रियाः ॥ ८ ॥
एवमुक्तोऽथ रामेण लक्ष्मणोऽगाद् विभीषणम् ।
उवाच मृतकोपान्ते पतितं मृतकोपमम् ॥ ९ ॥
शोकेन महताविष्टं सौमित्रिरिदमब्रवीत् ।
यं शोचसि त्वं दुःखेन कोऽयं तव विभीषण ! ॥ १० ॥

---

को प्राप्त होंगे । इसी समय रावण को पृथ्वी पर पड़ा देख रावण द्वारा सुरक्षित मन्दोदरी आदि प्रमुख स्त्रियाँ उसके समीप शोक करती हुईं पृथ्वी पर गिर पड़ीं । और विलाप करने लगीं ॥ ३-५ ॥ विभीषण भी महाशोकाकुल हो आर्त्त होकर चिन्ताग्रस्त हो गये और रावण के आगे गिरकर नाना प्रकार का विलाप करने लगे ॥ ६ ॥

पुनः राम ने लक्ष्मण से कहा—हे मानद ! तुम विभीषण से जाकर कहो कि वह भाई का संस्कार करे। अब विलम्ब करने से क्या लाभ ?॥७॥ ये जो रावण की प्रमुख पटरानियाँ मन्दोदरी आदि स्त्रियाँ पछाड़ खा कर विलाप कर रही हैं। उन रावण की परम प्रयसी स्त्रियों को ऐसा करने से रोकें ॥ ८ ॥

राम के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर लक्ष्मण जी मरे हुए रावण के समीप, मरे हुए के समान पड़े हुए विभीषण के पास आये । और शोक से ग्रस्त उस विभीषण से सुमित्रानन्दन लक्ष्मण इस प्रकार बोले—हे विभीषण ! जिसे तुम दुःखी होकर शोच रहे हो, वह तुम्हारा कौन है ॥ ९-१० ॥

त्वं चास्य कतमः सृष्टेः पुरेदानीमतः परम् ।
यद्वत्तोयौघपतिताः सिकता यान्ति तद्वशाः ॥ ११ ॥
संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते तथा कालेन देहिनः ।
यथा धानासु वै धाना भवन्ति न भवन्ति च ॥ १२ ॥
एवं भूतेषु भूतानि प्रेरितानीशमायया ।
त्वं चेमे वयमन्ये च तुल्याः कालवशोद्भवाः ॥ १३ ॥
जन्म-मृत्यू यदा यस्मात्तदा तस्माद् भविष्यतः ।
ईश्वरः सर्वभूतानि भूतैः सृजति हन्त्यजः ॥ १४ ॥
आत्मसृष्टैरस्वतन्त्रैर्निरपेक्षोऽपि बालवत् ।
देहेन देहिनो जीवा देहाद् देहोऽभिजायते ॥ १५ ॥
बीजादेव यथा बीजं देहान्य इव शाश्वतः ।
देहि देहविभागोऽयमविवेककृतः पुरा ॥ १६ ॥

---

और तुम इसके कौन हो ? सृष्टि के पहले वर्त्तमान तथा सृष्टि के बाद भी कर्मचक्र के प्रवाह में पड़े हुए प्राणी काल के वशीभूत हो एक-दूसरे से संयोग एवं वियोग को प्राप्त होते रहते हैं, जिस प्रकार जलप्रवाह में पड़ी हुई बालू उसके अधोन हो आती-जाती रहती है । तथा जिस प्रकार बोजों से बीज उत्पन्न होते तथा नष्ट भी होते हैं; उसी प्रकार ईश्वर की माया से प्रेरित समस्त प्राणी भी अन्य प्राणियों से उत्पन्न होते और मरते रहते हैं। तुम, हम, ये और अन्य प्राणी भी समान भाव से काल के वशीभूत हो उत्पन्न हुए हैं और इन प्राणियों का जन्म एवं मरण जिससे जिस प्रकार होने वाला है, ॥ ११–१३ ॥ वह उससे उसी प्रकार का होकर रहेगा। वही अजन्मा ईश्वर व बालक के समान विनोदार्थ अस्वतन्त्र प्राणियों की रचना कर फिर उन्हीं प्राणियों से प्राणियों की सृष्टि करता है, और उसी से उसको नष्ट भी करा देता है। देह से सम्बन्ध होने के कारण यह जीव देही कहा जाता है और यह देह भी अन्य देह से उत्पन्न होता रहता है। जिस प्रकार एक बीज से दूसरा बीज उत्पन्न होता है। यह सनातन आत्मा तो देह से पृथक् ही है। वास्तव में देह और देही का विभाग पहले से अविवेक कल्पित है ॥ १४–१६ ॥

नानात्वं जन्म नाशश्च क्षयो वृद्धिः क्रियाफलम् ।
द्रष्टुराभान्त्यतद्धर्मा यथाऽग्नेर्दारुविक्रियाः ॥ १७ ॥
त इमे देहसंयोगादात्मना भान्त्यसद्ग्रहात् ।
यथा यथा तथा चाऽन्यद्ध्यायतोऽसत् सदाग्रहात् ॥ १८ ॥
प्रसुप्तस्यानहम्भावात्तदा भाति न संसृतिः ।
जीवतोऽपि तथा तद्वद्-विमुक्तस्यानहङ्कृतेः ॥ १९ ॥
तस्मान् मायामनोधर्मं जह्यहं ममताभ्रमम् ।
रामभद्रे भगवति मनो धेह्यात्मनीश्वरे ॥ २० ॥
सर्वभूतात्मनि परे मायामानुषरूपिणि ।
बाह्येन्द्रियार्थसम्बन्धात् त्याजयित्वा मनः शनैः ॥ २१ ॥
तत्र दोषान् दर्शयित्वा रामानन्दे नियोजय ।
देहबुद्ध्या भवेद् भ्राता पिता माता सुहृत्प्रियः ॥ २२ ॥

---

जिस प्रकार अग्नि में दारु के विकार से धूमादि दिखाई पड़ते हैं, जो अग्नि के वस्तुतः धर्म नहीं हैं, उसी प्रकार साक्षी आत्मा में नानात्व, जन्म, नाश, क्षय, वृद्धि, कर्म, कर्म का फल आदि केवल भासित होते हैं, जो वस्तुतः आत्मा के धर्म नहीं हैं ॥ १७ ॥ मिथ्या भ्रान्ति के कारण देह से आत्मा का संयोग मानने पर जिस प्रकार ये सभी धर्म सत्यवत् भासते हैं, वैसे ही सत्य का निश्चय कर उसी निर्मल आत्मा का ध्यान करते रहने से ये सभी गुण धर्म भी असत्य प्रतीत होने लगते हैं ॥ १८ ॥

जिस प्रकार प्रगाढ निद्रा में सोये हुए पुरुष को अहंभाव न होने के कारण प्रपञ्च की प्रतीति नहीं होती, उसी प्रकार अहङ्कार हीन जीवन्मुक्त, पुरुष को जीते हुए भी प्रपञ्च का भान नहीं होता ॥ १९ ॥ अतः तुम अहंता, ममता एवं भ्रम रूप मायामय मनो धर्मों को त्यागो और इन्द्रियों के बाह्य विषयों से मन को धीरे-धीरे हटा कर सर्वान्तर्यामी, आत्मस्वरूप, माया-मानवरूप परमेश्वर राम में मन को स्थिर करो ॥ २०–२१ ॥ बाह्य विषयों में दोष दिखाकर इस मन को उससे अलग कर रामानन्द में लगाओ। ये माता, पिता, भाई, सुहृद् (मित्र) और स्नेही जन देह-बुद्धि से ही होते हैं, आत्म बुद्धि से नहीं ॥ २२ ॥

विलक्षणं यदा देहाज्ज्ञानात्यात्मानमात्मना ।
तदा कः कस्य वा बन्धुर्भ्राता माता पिता सुहृत् ॥ २३ ॥
मिथ्याज्ञानवशाज्जाता दारागारादयः सदा ।
शब्दादयश्च विषया विविधाश्चैव सम्पदः ॥ २४ ॥
बलं कोशो भृत्यवर्गो राज्यं भूमिः सुतादयः ।
अज्ञानजत्वात् सर्वे ते क्षणसङ्गभङ्गुराः ॥ २५ ॥
अथोत्तिष्ठ हृदा रामं भावयन् भक्ति-भावितम् ।
अनुवर्तस्व राज्यादि भुञ्जन् प्रारब्धमन्वहम् ॥ २६ ॥
भूतं भविष्यदभजन् वर्तमानमथाचरन् ।
विहरस्व यथान्यायं भवदोषैर्न लिप्यते ॥ २७ ॥
आज्ञापयति रामस्त्वां यद्भ्रातुः साम्परायिकम् ।
तत्कुरुष्व यथाशास्त्रं रुदतीश्चापि योषितः ॥ २८ ॥
निवारय महाबुद्धे ! लङ्कां गच्छन्तु मा चिरम् ।
श्रुत्वा यथावद् वचनं लक्ष्मणस्य विभीषणः ॥ २९ ॥

---

जब मनुष्य अपने अन्तःकरण से इस आत्मा को शरीर से पृथक् जान लेता है, तब कौन माता, पिता, भाई, बन्धु अथवा सुहृद् है ? ॥ २३ ॥ स्त्री, गृह आदि, शब्दादि विषय, अनेक प्रकार की सम्पत्ति, सेना, कोश, भृत्यवर्ग, राज्य, भूमि एवं पुत्रादि ये सभी वस्तुएँ मिथ्या ज्ञान से ही उत्पन्न होती हैं, तथा अज्ञान-जन्य होने के कारण क्षणभङ्गुर भी हैं ॥ २४–२५ ॥ अतः तुम उठो और हृदय से, भक्ति द्वारा प्रगट रोने वाले भगवान् राम को स्मरण करते हुए एवं निरन्तर प्रारब्ध के अनुसार प्राप्त राज्यादि का भोग करते हुए उसका पालन करो ॥ २६ ॥ और भूत एवं भविष्य की चिन्ता न करते हुए केवल प्राप्त वर्त्तमान के अनुसार आचरण करते हुए न्यायानुसार विहार करो । ऐसा करने से तुम संसार के दोषों से लिप्त न होगे ॥ २७ ॥

भगवान् राम ने तुम्हें आज्ञा दी है कि अपने भाई का जो कुछ और्ध्व-देहिक कर्म हो, उसे शास्त्रानुसार सम्पादन करो और हे महाबुद्ध ! इन रोता-कलपती स्त्रियों को मना करो । और कहो कि, ये शीघ्र लङ्का में चली जायें । इसमें विलम्ब न हो । लक्ष्मण जी के यथार्थ वचन को

त्यक्त्वा शोकं च मोहं च रामपार्श्वमुपागमत् ।
विमृश्य बुद्ध्या धर्मज्ञो धर्मार्थसहितं वचः ॥ ३० ॥
रामस्यैवाऽनुवृत्त्यर्थमुत्तरं पर्यभाषत ।
नृशंसमनृतं क्रूरं त्यक्तधर्मव्रतं प्रभो ! ॥ ३१ ॥
नार्होऽस्मि देव ! संस्कर्तुं परदाराभिमर्शिनम् ।
श्रुत्वा तद्वचनं प्रीतो रामो वचनमब्रवीत् ॥ ३२ ॥
मरणान्तानि वैराणि निवृत्तं नः प्रयोजनम् ।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव ॥ ३३ ॥
रामाज्ञां शिरसा धृत्वा शीघ्रमेव विभीषणः ।
सान्त्ववाक्यैर्महाबुद्धिं राज्ञीं मन्दोदरीं तथा ॥ ३४ ॥
सान्त्वयामास धर्मात्मा धर्मबुद्धिर्विभीषणः ।
त्वरयामास धर्मज्ञः संस्कारार्थं स्वबान्धवान् ॥ ३५ ॥
चित्यां निवेश्य विधिवत् पितृमेध-विधानतः ।
आहिताग्नेर्यथा कार्यं रावणस्य विभीषण ॥ ३६ ॥

---

सुनकर विभीषण शोक, मोह छोड़ कर राम के पास आये। फिर धर्मज्ञ विभीषण ने बुद्धि से विचार कर धर्म एवं अर्थ सहित इस प्रकार का वचन कहा ॥ २८-३० ॥ उस समय राम की चित्तवृत्ति का अनुसरण करते हुए विभीषण ने यों उत्तर दिया—हे देव ! नृशंस, मिथ्यावादी, क्रूर एवं धर्म तथा व्रत से हीन एवं परस्त्री गामी आदि अनेक दोषों से दूषित इस रावण का संस्कार करने में मैं असमर्थ हूँ। विभीषण के वचनों को सुनकर श्रीरामचन्द्र जी ने प्रसन्न होकर कहा—भाई ! वैर तो मरने तक ही होता है, सो अब हमारा काम पूरा हो गया। अब यह जैसे तुम्हारा है वैसे मेरा भी है, अतः इसका संस्कार करो ॥ ३१-३३ ॥

पुनः विभीषण राम की आज्ञा को शिर पर धारण कर तुरन्त ही अपने शान्त वचनों से महाबुद्धिमती मन्दोदरी को सान्त्वना दिया। तदनन्तर धर्मबुद्धि, धर्मात्मा एवं परमधर्मज्ञ विभीषण ने बन्धु-बान्धवों से संस्कार के लिए शीघ्रता करने को कहा ॥३४-३५॥ विभीषण ने पितृमेध-विधि से शव को विधि पूर्वक चिता पर रख कर अग्निहोत्रियों को जिस

तथैव सर्वमकरोद् बन्धुभिः सह मन्त्रिभिः ।
ददौ च पावकं तस्य विधियुक्तं विभीषणः ॥३७॥
स्नात्वा चैवार्द्रवस्त्रेण तिलान् दर्भाभिमिश्रितान् ।
उदकेन च सम्मिश्रान् प्रदाय विधिपूर्वकम् ॥३८॥
प्रदाय चोदकं तस्मै मूर्ध्ना चैनं प्रणम्य च ।
ताः स्त्रियोऽनुनयामास सान्त्वमुक्त्वा पुनः पुनः ॥३९॥
गम्यतामिति ताः सर्वा विविशुर्नगरं तदा ।
प्रविष्टासु च सर्वासु राक्षसीषु विभीषणः ॥४०॥
रामपार्श्वमुपागत्य तदाऽतिष्ठद् विनीतवत् ।
रामोऽपि सह सैन्येन स-सुग्रीवः स-लक्ष्मणः ॥४१॥
हर्षं लेभे रिपून् हत्वा यथा वृत्रं शतक्रतुः ।
मातलिश्च तदा रामं परिक्रम्याऽभिवन्द्य च ॥४२॥
अनुज्ञातश्च रामेण ययौ स्वर्गं विहायसा ।
ततो हृष्टमना रामो लक्ष्मणं चेदमब्रवीत् ॥४३॥

---

प्रकार होना चाहिए उसी प्रकार अपने बन्धु-बान्धवों से एवं मन्त्रियों के साथ मिलकर रावण का समस्त अन्त्येष्टि कार्य किया। पुनः उन्होंने विधिपूर्वक रावण के चिता में अग्नि दान किया ॥ ३६-३७ ॥ फिर स्नान कर आर्द्रवस्त्र से कुशमिश्रित तिलों से रावण को जलाञ्जलि भी दी ॥ ३८ ॥ इस प्रकार उदकदान देकर पृथ्वी पर माथा टेक, उसे प्रणाम किया। और उन स्त्रियों को बारम्बार सान्त्वना के वचन कह कर धीरज बँधाया ॥ ३९ ॥ पुनः कहा कि, 'तुम लोग जाओ' तब वे स्त्रियाँ नगर की ओर चली गयीं। इस प्रकार सभी राक्षसियों के लङ्का नगर में चले जाने पर विभीषण ॥ ४० ॥ श्रीरामचन्द्र जी के पास आकर विनीत भाव से खड़े हो गये। इधर भगवान् राम भी सेना, सुग्रीव एवं लक्ष्मण के सहित ॥ ४१ ॥ शत्रु का वध कर इस प्रकार आनन्दित हुए जिस प्रकार वृत्र का वध कर इन्द्र प्रसन्न हुए थे। फिर मातलि ने श्रीरामचन्द्र की प्रदक्षिणा की और उन्हें प्रणाम कर ॥ ४२ ॥ उनको आज्ञा ले

विभीषणाय मे लङ्काराज्यं दत्तं पुरैव हि ।
इदानीमपि गत्वा त्वं लङ्कामध्ये विभीषणम् ॥४४॥
अभिषेचय विप्रैश्च मन्त्रवद् विधिपूर्वकम् ।
इत्युक्तो लक्ष्मणस्तूर्णं जगाम सह वानरैः ॥४५॥
लङ्कां सुवर्णकलशैः समुद्रजलसंयुतैः ।
अभिषेकं शुभं चक्रे राक्षसेन्द्रस्य धीमतः ॥४६॥
ततः पौरजनैः सार्धं नानोपायन-पाणिभिः ।
विभीषणः स-सौमित्रिरुपायन-पुरस्कृतः ॥४७॥
दण्डप्रणाममकरोद् रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
रामो विभीषणं दृष्ट्वा प्राप्तराज्यं मुदान्वितः ॥४८॥
कृतकृत्यमिवात्मानममन्यत सहाऽनुजः ।
सुग्रीवं च समालिङ्ग्य रामो वाक्यमथाऽब्रवीत् ॥४९॥

---

आकाश मार्ग से स्वर्ग चला गया। तदनन्तर श्रीरघुनाथ जी परम प्रसन्न हो लक्ष्मण से इस प्रकार बोले—॥ ४३ ॥

लक्ष्मण! ऐसे तो मैंने पूर्व में ही विभीषण को लङ्का का राज्य दिया है किन्तु इस समय तुम लङ्का में जाकर ब्राह्मणों के साथ मन्त्र-पाठ पूर्वक स-विधि इस विभीषण को लङ्का के राज्य पर अभिषिक्त करो। राम के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर लक्ष्मण जी वानरों के साथ तुरन्त ही लङ्कापुरी गये ॥ ४४-४५ ॥ तथा समुद्र के जल से भरे हुए सुवर्ण-कलशों से परम बुद्धिमान् राक्षसराज विभीषण का माङ्गलिक अभिषेक किया ॥ ४६ ॥ विभीषण भी पुरवासियों के साथ हाथों में अनेक प्रकार की उपहार वस्तुओं को लेकर लक्ष्मण जी के सहित पुण्य-कर्मा श्री राम के आगे रखा। और उन्हें विधि पूर्वक प्रणाम किया। उस समय विभीषण को राज्य प्राप्त हुआ देख वे बड़े प्रसन्न हुए ॥ ४७-४८ ॥ तथा लक्ष्मण सहित अपने को कृतकृत्य जैसा मानने लगे। तत्पश्चात् उन्होंने सुग्रीव को हृदय से लगाते हुए कहा—॥ ४९ ॥

सहायेन त्वया वीर ! जितो मे रावणो महान् ।
विभीषणोऽपि लङ्कायामभिषिक्तो मयाऽनघ ! ॥५०॥
ततः प्राह हनूमन्तं पार्श्वस्थं विनयान्वितम् ।
विभीषणस्याऽनुमतेर्गच्छ त्वं रावणालयम् ॥५१॥
जानक्यै सर्वमाख्याहि रावणस्य वधादिकम् ।
जानक्याः प्रतिवाक्यं मे शीघ्रमेव निवेदय ॥५२॥
एवमाज्ञापितो धीमान् रामेण पवनात्मजः ।
प्रविवेश पुरीं लङ्कां पूज्यमानो निशाचरैः ॥५३॥
प्रविश्य रावणगृहं शिंशपामूलमाश्रिताम् ।
ददर्श जानकीं तत्र कृशां दीनामनिन्दिताम् ॥५४॥
राक्षसीभिः परिवृतां ध्यायन्तीं राममेव हि ।
विनयावनतो भूत्वा प्रणम्य पवनात्मजः ॥५५॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रह्वो भक्त्याग्रतः स्थितः ।
तं दृष्ट्वा जानकी तूष्णीं स्थित्वा पूर्वस्मृतिं ययौ ॥५६॥

---

हे वीर ! मैंने तुम्हारी सहायता से रावण जैसे महान् शत्रु पर विजय प्राप्त किया। इतना ही नहीं, हे अनघ ! तुम्हारी सहायता से विभीषण को लङ्का के राज्य पर अभिषिक्त भी किया है ॥ ५० ॥ पुनः पास में अत्यन्त विनीत भाव से खड़े हुए हनुमान् जी से बोले—हनुमान् ! तुम विभीषण की अनुमति से रावण के महल में जाओ ॥ ५१ ॥ और जानकी को रावण के वध आदि समस्त वृत्तान्त को सुनाओ। इसके बाद जानकी जो उत्तर दें वह मुझे बताओ ॥ ५२ ॥ श्रीरघुनाथ जी के द्वारा श्रीमान् महावीर हनुमान् ने निशाचरों से पूजित हो लङ्कापुरी में प्रवेश किया ॥ ५३ ॥ रावण के महल में जाकर शिंशपा वृक्ष के नीचे बैठी हुई क्षीण, दैन्ययुक्त पतिव्रता सीता को देखा ॥ ५४ ॥ वे राक्षसियों से घिरी हुई थीं और राम का ही ध्यान कर रही थीं ! पवन-कुमार हनुमान् जी ने बड़े विनय से उन्हें प्रणाम किया ॥ ५५ ॥ और बड़ी नम्रता से भक्तिभाव पूर्वक हाथ जोड़ कर उनके सामने खड़े हो गये।

ज्ञात्वा तं रामदूतं सा हर्षात् सौम्यमुखी बभौ ।
स तां सौम्यमुखीं दृष्ट्वा तस्यै पवननन्दनः ।
रामस्य भाषितं सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥५७॥
देवि ! रामः ससुग्रीवो विभीषणसहायवान् ।
कुशली वानराणां च सैन्यैश्च सहलक्ष्मणः ॥५८॥
रावणं स-सुतं हत्वा सबलं सह मन्त्रिभिः ।
त्वामाह कुशलं रामो राज्ये कृत्वा विभीषणम् ॥५९॥
श्रुत्वा भर्तुः प्रियं वाक्यं हर्षगद्गदया गिरा ।
किं ते प्रियं करोम्यद्यन पश्यामि जगत्त्रये ॥६०॥
समं ते प्रियवाक्यस्य रत्नान्याभरणानि च ।
एवमुक्तस्तु वैदेह्या प्रत्युवाच प्लवङ्गमः ॥६१॥
रत्नौघाद् विविधाद् वापि देवराज्याद् विशिष्यते ।
हतशत्रुं विजयिनं रामं पश्यामि सुस्थिरम् ॥६२॥

---

जानकी जी उन्हें देखकर पहले तो चुप रहीं। फिर उन्हें पूर्व काल का स्मरण हो आया ॥ ५६ ॥ राम का दूत जानकर प्रसन्नता से उनका मुख-कमल विकसित हो गया। तथा उन्हें प्रसन्न जानकर हनुमान् जी ने राम का कहा हुआ सन्देश कहना प्रारम्भ किया ॥ ५७ ॥

हे देवि ! सुग्रीव के सहित श्रीराम जी, जिनके सहायक विभीषण हैं, अपनी वानरी सेना एवं लक्ष्मण जी के साथ कुशल पूर्वक हैं ॥ ५८ ॥ उन्होंने पुत्र, सेना एवं मन्त्रियों के साथ रावण को मारकर और लङ्का का राज्य विभीषण को देकर तुमसे अपना कुशल कहा है ॥५९॥

श्रीरामचन्द्र जी के सन्देश को सुन जानकी सहर्ष गद्गद वाणी से बोलीं—हे हनुमान् ! मैं तुम्हारा क्या प्रिय करूँ ? मुझे इस त्रिलोकी में ॥ ६० ॥ तुम्हारे वाक्यों के समान कोई रत्न, आभूषणादि दिखाई नहीं पड़ता, जिसे देकर मैं तुमसे उऋण होऊँ। जानकी जी से इस प्रकार कहे जाने पर हनुमान् जी ने कहा—॥ ६१ ॥ मातः ! मैं शत्रुओं का वध कर लेने के पश्चात् परम शान्त एवं स्वस्थ हुए श्रीराम का दर्शन कर रहा हूँ। क्या यह मेरे लिए कम सौभाग्य है ? यह तो मेरे लिए नाना

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मैथिली प्राह मारुतिम् ।
सर्वे सौम्या गुणाः सौम्य ! त्वय्येव परिनिष्ठिताः ॥६३॥
रामं द्रक्ष्यामि शीघ्रं मामाज्ञापयतु राघवः ।
तथेति तां नमस्कृत्य ययौ द्रष्टुं रघूत्तमम् ॥६४॥
जानक्या भाषितं सर्वं रामस्याऽग्रे न्यवेदयत् ।
यन्निमित्तोऽयमारम्भः कर्मणां च फलोदयः ॥६५॥
तां देवीं शोकसन्तप्तां द्रष्टुमर्हसि मैथिलीम् ।
एवमुक्तो हनुमता रामो ज्ञानवतां वरः ॥६६॥
मायासीतां परित्यक्तुं जानकीमनले स्थिताम् ।
आदातुं मनसा ध्यात्वा रामः प्राह विभीषणम् ॥६७॥
गच्छ राजन् ! जनकजामानयाशु ममाऽन्तिकम् ।
स्नातां विरजवस्त्राढ्यां सर्वाभरणभूषिताम् ॥६८॥

---

प्रकार की रत्न-राशि एवं देवराज्यों से भी बढ़ कर है ॥ ६२ ॥ उनके वचन सुनकर मिथिलेश कुमारी जानकी ने कहा–'हे सौम्य ! जितने भी उत्तम गुण हैं, वे सभी गुण तुम्हीं में वर्त्तमान हैं ॥ ६३ ॥ 'अब मैं शीघ्र ही राम का दर्शन करूँगी, वे शीघ्र मुझ आज्ञा दें।' तब हनुमान् जी 'तथास्तु' कहकर राम के दर्शनार्थ चले ॥ ६४ ॥ उन्होंने जाकर जानकी की सारी बात श्रीरामचन्द्र जी को सुना दिया और बोले–'हे नाथ ! जिस उद्देश्य के लिए यह सब युद्धादि का कार्य प्रारम्भ किया गया। एवं जो इस आरम्भ किये गये युद्धादि कार्य की फलस्वरूपा हैं ॥ ६५ ॥ उन शोकसन्तप्त मिथिलेश कुमारी को अब आप देखिए।' हनुमान् जी के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर ज्ञानियों में श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी ॥ ६६ ॥ माया सीता को त्यागने के लिए एवं अग्निस्थिता सीता को ग्रहण करने हेतु मन में विचार कर विभीषण से बोले–॥ ६७ ॥

हे राजन् ! तुम जाओ और सीता को स्नान करा कर शुद्ध निर्मल वस्त्र पहना, सभी आभूषणों से सुसज्जित कर मेरे पास लाओ ॥ ६८ ॥

विभीषणोऽपि तच्छ्रुत्वा जगाम सहमारुतिः ।
राक्षसीभिः सुवृद्धाभिः स्नापयित्वा तु मैथिलीम् ॥६९॥
सर्वाभरण-सम्पन्नामारोप्य शिबिकोत्तमे ।
याष्टीकैर्बहुभिर्गुप्तां कञ्चुकोष्णीषिभिः शुभाम् ॥७०॥
तां द्रष्टुमागताः सर्वे वानरा जनकात्मजाम् ।
तान् वारयन्तो बहवः सर्वतो वेत्रपाणयः ॥७१॥
कोलाहलं प्रकुर्वन्तो रामपार्श्वमुपाययुः ।
दृष्ट्वा तां शिबिकारूढां दूरादथ रघूत्तमः ॥७२॥
विभीषण ! किमर्थं ते वानरान् वारयन्ति हि ।
पश्यन्तु वानराः सर्वे मैथिलीं मातरं यथा ॥७३॥
पादचारेण साऽऽयातु जानकी मम सन्निधिम् ।
श्रुत्वा तद्रामवचनं शिबिकादवरुह्य सा ॥७४॥
पादचारेण शनकैरागता रामसन्निधिम् ।
रामोऽपि दृष्ट्वा तां मायासीतां कार्यार्थनिर्मिताम् ॥७५॥

---

यह सुन कर विभीषण हनुमान् जी को साथ लेकर शीघ्रता से लंका गये । और बड़ी बूढ़ी राक्षसियों के द्वारा सीता जी को स्नान करवा कर ॥६९॥ उन्हे सभी प्रकार के आभूषणों से सुशोभित हो जाने पर एक सुन्दर पालकी पर बैठाया । फिर उन्हें जामा तथा पगड़ी पहने हुए बहुत से छड़ीदारों से सुरक्षित कर श्रीराम के पास ले चले ॥ ७० ॥ उस समय कल्याणमयी जानकी को देखने के लिए सभी वानर दौड़कर वहाँ आये । कञ्चुकी लोग हाथ में बेंत लेकर उन वानरों को चारों ओर दूर से रोकते हुए ॥ ७१ ॥ और कोलाहल करते हुए श्रीरामचन्द्रजी के पास जानकी को ले आये । तब शिविका के ऊपर बैठकर आती हुई जानकी को दूर से देखकर श्रीरामचन्द्र जी ने कहा—॥ ७२ ॥ विभीषण ! ये छड़ीदार वानरों को क्यों रोकते हैं । सभी वानर माता के समान जानकी का दर्शन करें ॥ ७३ ॥ इसलिए जानकी जी मेरे पास पैदल चल कर आवें । राम के इस बात को सुनकर जानकी जी पालकी से उतर पड़ीं ॥ ७४ ॥ और धीरे-धीरे पैदल चलकर राम के पास पहुँच गयीं ।

अवाच्यवादान् बहुशः प्राह तां रघुनन्दनः ।
अमृष्यमाणा सा सीता वचनं राघवोदितम् ॥७६॥
लक्ष्मणं प्राह मे शीघ्रं प्रज्वालय हुताशनम् ।
विश्वासार्थं हि रामस्य लोकानां प्रत्ययाय च ॥७७॥
राघवस्य मतं ज्ञात्वा लक्ष्मणोऽपि तदैव हि ।
महाकाष्ठचयं कृत्वा ज्वालयित्वा हुताशनम् ॥७८॥
रामपार्श्वमुपागम्य तस्थौ तूष्णीमरिन्दमः ।
ततः सीता परिक्रम्य राघवं भक्तिसंयुता ॥७९॥
पश्यतां सर्वलोकानां देवराक्षसयोषिताम् ।
प्रणम्य देवताभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यश्च मैथिली ॥८०॥
बद्धाञ्जलिपुटा चेदमुवाचाऽग्निसमीपगा ।
यथा मे हृदयं नित्यं नाऽपसर्पति राघवात् ॥८१॥
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ।
एवमुक्त्वा तदा सीता परिक्रम्य हुताशनम् ॥८२॥

---

राम ने भी कार्य के लिए बनायी गयी सीता को देखकर ॥ ७५ ॥ उन्हें बहुत से सन्देह युक्त अवाच्य वचन कहा। तब सीता रघुनाथ जी के द्वारा कहे गये उस अवाच्य वचन को सहन न कर सकीं ॥ ७६ ॥ उन्होंने लक्ष्मण से कहा—'हे लक्ष्मण ! तुम शीघ्र ही राम के विश्वास के लिए तथा लोगों के निश्चय के लिए अग्नि प्रज्वलित करो' ॥ ७७ ॥ श्रीरामचन्द्र जी की भी सम्मति समझ कर शत्रुदमन लक्ष्मण ने उसी समय बहुत-सा काष्ठ-समूह एकत्रित कर उसको अग्नि से प्रज्वलित कर ॥७८॥ मौन हो राम जी के पास आकर खड़े हो गये। तब सीता जी ने भक्ति-युक्त होकर श्रीराम की परिक्रमा की ॥ ७९ ॥ पुनः मिथिलेश कुमारी सीता ने सब लोगों के एवं देव-स्त्रियों तथा राक्षस-स्त्रियों के देखते-देखते देवताओं और ब्राह्मणों को नमस्कार किया ॥ ८० ॥ और अग्नि के पास जा हाथ जोड़ कर कहने लगीं। 'यदि मेरा हृदय रामचन्द्र जी को छोड़कर कभी अन्यत्र न जाता हो ॥ ८१ ॥ तो हे समस्त लोकों के साक्षी

**विवेश ज्वलनं दीप्तं निर्भयेन हृदा सती ॥८३॥**
**दृष्ट्वा ततो भूतगणाः स-सिद्धाः**
**सीतां महावह्निगता भृशार्ताः ।**
**परस्परं प्राहुरहो स सीतां**
**रामः श्रियं स्वां कथमत्यजज्ज्ञः ॥८४॥**

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
युद्धकाण्डे द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥



## त्रयोदशः सर्गः

(देवताओंद्वारा श्रीराम-स्तुति, सीतासहित अग्निदेवका प्रादुर्भाव
और श्रीराम का अयोध्या के लिए प्रस्थान)

श्रीमहादेव उवाच

**ततः शक्रः सहस्राक्षो यमश्च वरुणस्तथा ।**
**कुबेरश्च महातेजाः पिनाकी वृषवाहनः ॥१॥**

---

अग्निदेव ! आप मेरी सब ओर से सब प्रकार रक्षा करें।' ऐसा कहकर सीता अग्नि की परिक्रमा कर ॥ ८२ ॥ हृदय से निर्भय हो, अग्नि में प्रविष्ट हो गयीं ॥ ८३ ॥ उस समय सिद्धों के सहित समस्त भूत गण सीता को प्रचण्ड अग्नि में प्रविष्ट हुई देख अत्यन्त व्याकुल हो उठे। और परस्पर कहने लगे—'अहो ! सब कुछ जानते हुए भी श्रीरामचन्द्र जी अपनी लक्ष्मी सीता को कैसे छोड़ दिया' ॥ ८४ ॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दीव्याख्या विभूषित अध्यात्म-रामायण के
उमा-महेश्वर संवाद में युद्धकाण्ड का बारहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १२ ॥



महादेव जी ने कहा—हे पार्वति ! इसी समय सहस्राक्ष इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, महातेजस्वी वृषवाहन महादेव जी, सिद्ध और चारणों

ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो मुनिभिः सिद्ध-चारणैः ।
पितरो ऋषयः साध्या गन्धर्वाऽप्सरसोरगाः ॥२॥

एते चाऽन्ये विमानाग्र्यै राजग्मुर्यत्र राघवः ।
अब्रुवन परमात्मानं रामं प्राञ्जलयश्च ते ॥३॥

कर्ता त्वं सर्वलोकानां साक्षी विज्ञानविग्रहः ।
वसूनामष्टमोऽसि त्वं रुद्राणां शङ्करो भवान ॥४॥

आदिकर्ताऽसि लोकानां ब्रह्मा त्वं चतुराननः ।
अश्विनौ घ्राणभूतौ ते चक्षुषी चन्द्र-भास्करौ ॥५॥

लोकानामादिरन्तोऽसि नित्य एकः सदोदितः ।
सदा शुद्धः सदा बुद्धः सदा मुक्तोऽगुणोऽद्वयः ॥६॥

त्वन्मायासंवृतानां त्वं भासि मानुषविग्रहः ।
त्वन्नाम स्मरतां राम सदा भासि चिदात्मकः ॥७॥

---

सहित ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ ब्रह्मा जी, पितृगण, ऋषि, साध्य, गन्धर्व, अप्सराएँ एवं नागगण ये सब तथा अन्यान्य देवगण श्रेष्ठ विमानों पर चढ़कर जहाँ श्रीरामचन्द्रजी थे, वहाँ आये । और हाथ जोड़ कर परमात्मा श्रीराम से कहने लगे–॥ १–३ ॥

हे नाथ ! आप सभी लोकों के कर्त्ता एवं ज्ञानस्वरूप हैं, आप वसुओं में अष्टम वसु तथा रुद्रों में शङ्कर हैं ॥ ४ ॥ आप सभी लोकों के कर्त्ता चतुर्मुख ब्रह्मा हैं । अश्विनो कुमार आप की घ्राणेन्द्रिय तथा चन्द्रमा एवं सूर्य आप के दो नेत्र हैं ॥ ५ ॥ आप सभी लोकों के आदि ( उत्पत्ति-स्थान ) तथा अन्त ( प्रलयस्थान ) हैं, आप नित्य हैं, आप आविर्भाव, तिरोभाव से रहित एवं प्रकाश स्वरूप होने के कारण सदोदित हैं । आप नित्य शुद्ध, नित्य बुद्ध, नित्य मुक्त, गुण रहित एवं अद्वय हैं ॥ ६ ॥ आप अपनी माया से आच्छादित लोगों के लिए मनुष्य स्वरूप हैं किन्तु जो लोग आप के नाम का स्मरण करते हैं उनके लिए आप चैतन्य स्वरूप भासते हैं ॥ ७ ॥ हे नाथ ! रावण ने हम लोगों के तेज के साथ स्थान भी छीन लिया था । सो यह दुष्ट आज आप के हाथ से मारा गया ।

रावणेन हतं स्थानमस्माकं तेजसा सह ।
त्वयाऽद्य निहतो दुष्टः पुनः प्राप्तं पदं स्वकम् ॥८॥
एवं स्तुवत्सु देवेषु ब्रह्मा साक्षात् पितामहः ।
अब्रवीत प्रणतो भूत्वा रामं सत्यपथे स्थितम् ॥९॥

ब्रह्मोवाच

वन्दे देवं विष्णुमशेषस्थितिहेतुं
त्वामध्यात्मज्ञानिभिरन्तर्हृदि भाव्यम् ।
हेया-ऽहेय-द्वन्द्वविहीनं परमेकं
सत्तामात्रं सर्वहृदिस्थं दृशिरूपम् ॥१०॥
प्राणाऽपानौ निश्चय-बुद्ध्या हृदि रुद्ध्वा
छित्त्वा सर्वं संशयबन्धं विषयौघान् ।
पश्यन्तीशं यं गतमोहा यतयस्तं
वन्दे रामं रत्नकिरीटं रविभासम् ॥११॥

---

और हमें अपना स्थान पुनः प्राप्त हो गया ॥ ८ ॥ देवताओं के द्वारा इस प्रकार स्तुति कर लिये जाने पर साक्षात् पितामह ब्रह्मा ने अत्यन्त विनम्र होकर सत्यपथ में स्थित भगवान् श्रीराम से इस प्रकार कहने लगे ॥ ९ ॥

ब्रह्मा ने कहा—हे राम ! समस्त प्राणियों के पालन करने वाले, अध्यात्म ज्ञानियों के द्वारा हृदय-स्थल में ध्यान करने योग्य, त्याज्य एवं ग्राह्य रूप द्वन्द्व से विहीन, सबसे परे, अद्वितीय, सत्तामात्र एवं साक्षी स्वरूप से सबके अन्तःकरण में विराजमान आप विष्णु को, मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १० ॥ विगत मोह संन्यासी गण निश्चय बुद्धि से प्राण और अपान को हृदय में रोक कर समस्त संशय रूप बन्धन एवं विषय-समूहों का छेदन कर जिन परमात्मा का ध्यान करते हैं। रत्न-किरीट धारण करने वाले उन देदीप्यमान सूर्य के समान भगवान् राम की मैं वन्दना करता हूँ ॥ ११ ॥

मायातीतं माधवमाद्यं जगदादिं
मानातीतं मोहविनाशं मुनिवन्द्यम् ।
योगिध्येयं योगविधानं परिपूर्णं
वन्दे रामं रञ्जितलोकं रमणीयम् ॥१२॥

भावा-ऽभाव-प्रत्ययहीनं भवमुख्यै-
र्योगासक्तैरर्चित-पादाम्बुजयुग्मम् ।
नित्यं शुद्धं बुद्धमनन्तं प्रणवाख्यं
वन्दे रामं वीरमशेषासुरदावम् ॥१३॥

त्वं मे नाथो नाथितकार्याखिलकारी
मानातीतो माधवरूपोऽखिलधारी ।
भक्त्या गम्यो भावितरूपो भवहारी
योगाभ्यासैर्भावितचेतः सहचारी ॥१४॥

---

जो मायातीत, लक्ष्मीपति, सबके आदि कारण, जगत्पिता, प्रत्यक्षादि सभी प्रमाणों से परे, मोह का नाश करने वाले, मुनिजनों से वन्दनीय, योगियों के ध्येय एवं योगशास्त्र के प्रवर्त्तक, सर्वत्र परिपूर्ण एवं संसार को आनन्द देने वाले, परम रमणीय राम को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १२ ॥

जो सत् और असत् रूप प्रतीति से रहित होने के कारण अनिर्वनीय एवं योग-परायण, सदाशिव आदि योगियों से जिनके चरण-कमल पूजित हैं एवं जो नित्य शुद्ध, नित्य बुद्ध, अनन्त हैं। जो सम्पूर्ण राक्षसों को दहन करने के लिए दावानल के समान हैं, प्रणव स्वरूप उन वीर राम को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १३ ॥

आप हमारे सम्पूर्ण प्रार्थित कार्यों को पूर्ण करने के कारण नाथ, देश-कालादि रूप अवधि से अपरिच्छिन्न नारायण स्वरूप, सम्पूर्ण विश्व को धारण करने वाले, भक्ति से प्राप्य, मनोहर रूप वाले, संसार से मुक्त करने वाले एवं योगाभ्यास से विशद्ध चित्त में विहार करने

त्वामाद्यन्तं लोकततीनां परमीशं
लोकानां नो लौकिकमानैरधिगम्यम् ।
भक्ति-श्रद्धाभाव-समेतैर्भजनीयं
वन्दे रामं सुन्दरमिन्दीवरनीलम् ॥१५॥

को वा ज्ञातुं त्वामतिमानं गतमानं
मायासक्तो माधवशक्तो मुनिमान्यम् ।
वृन्दारण्ये वन्दितवृन्दारकवृन्दं
वन्दे रामं भवमुखवन्द्यं सुखकन्दम् ॥१६॥

नानाशास्त्रैर्वेदकदम्बैः प्रतिपाद्यं
नित्यानन्दं निर्विषयज्ञानमनादिम् ।
मत्सेवार्थं मानुषभावं प्रतिपन्नं
वन्दे रामं मरकतवर्णं मथुरेशम् ॥१७॥

---

वाले हैं ॥ १४ ॥ इस समस्त लोक-परम्परा के आप आदि और अन्त हैं, लोकों के महेश्वर हैं, आप किसी लौकिक प्रमाणों के आधार पर अविज्ञेय हैं। तथा भक्ति एवं श्रद्धाभाव से सम्पन्न पुरुषों द्वारा जो भजनीय हैं, उन नीले कमल के समान परममनोहर रामचन्द्र जी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १५ ॥ हे लक्ष्मीनाथ ! स्थूल रूप से अतिमानव तथा सूक्ष्म रूप से मान रहित, महर्षियों से पूज्य, आपको माया में आसक्त कौन प्राणी जानने में समर्थ हो सकता है। आप गोलोक के वृन्दावन में देवताओं द्वारा वन्दित हैं। अतः शिवादि देवताओं से वन्दनीय सुख के कन्दस्वरूप, आप राम की मैं वन्दना करता हूँ ॥ १६ ॥

अनेक शास्त्र एवं वेद जिनका प्रतिपादन करते हैं, जो नित्यानन्द स्वरूप, निर्विकल्प समाधि से जानने योग्य एवं अनादि हैं तथा जो मेरी सेवा के लिए मनुष्य रूप से अवतरित हुए हैं ऐसे मरकतमणि के सदृश कान्ति वाले, मथुरानाथ ( शत्रुघ्न द्वारा लवणासुर का वध करा वहाँ का राज्य शत्रुघ्न को दे दिया था, वाराह पुराण ) श्रीराम को मैं प्रणाम

श्रद्धायुक्तो यः पठतीमं स्तवमाद्यं
ब्राह्मं ब्रह्मज्ञानविधानं भुवि मर्त्यः।
रामं श्यामं कामितकामप्रदमीशं
ध्यात्वा ध्याता पातकजालैर्विगतः स्यात् ॥१८॥

श्रुत्वा स्तुतिं लोकगुरोर्विभावसुः
स्वाङ्के समादाय विदेहपुत्रिकाम्।
विभ्राजमानां विमलारुणद्युतिं
रक्ताम्बरां दिव्यविभूषणान्विताम् ॥१९॥

प्रोवाच साक्षी जगतां रघूत्तमं
प्रपन्नसर्वार्तिहरं हुताशनः।
गृहाण देवीं रघुनाथ! जानकीं
पुरा त्वया मय्यवरोपितां वने ॥२०॥

विधाय मायाजनकात्मजां हरे
दशानन-प्राण-विनाशनाय च।
हतो दशास्यः सह पुत्रबान्धवै-
र्निराकृतोऽनेन भरो भुवः प्रभो! ॥२१॥

---

करता हूँ ॥ १७ ॥ जो मनुष्य इच्छित कामनाओं को पूर्ण करने वाले, श्याममूर्त्ति परमेश्वर का ध्यान करते हुए ब्रह्मा जी के द्वारा किये गये आद्य ब्रह्मज्ञान विषयक इस स्तोत्र का पाठ करेगा। वह ध्यानशील पुरुष समस्त पापजालों से मुक्त हो जायेगा ॥ १८ ॥

लोकपितामह ब्रह्मदेव की स्तुति सुनकर लोकसाक्षी अग्निदेव विशुद्ध अरुणवर्ण की कान्ति से सुशोभित, रक्त वस्त्र एवं दिव्य विभूषणों से युक्त, विदेहपुत्री जानकी को अपनी गोद में रख कर शरणागत-भयहारी श्रीरामचन्द्र जी से कहा—हे रघुवीर! प्रथम तपोवन में मुझे सौंपी हुई इन देवी जानकी को आप ग्रहण कीजिए ॥ १९-२० ॥ हे हरे! आपने रावण का वध करने के लिए मायामयी सीता का निर्माण कर पुत्र एवं बन्धु-बान्धवों सहित रावण को मार डाला। अतः आपने ऐसा

तिरोहिता सा प्रतिबिम्बरूपिणी
कृता यदर्थं कृतकृत्यतां गता ।
ततोऽतिहृष्टां परिगृह्य जानकीं
रामः प्रहृष्टः प्रतिपूज्य पावकम् ॥२२॥
स्वाङ्के समावेश्य सदाऽनपायिनीं
श्रियं त्रिलोकीजननीं श्रियः पतिः ।
दृष्ट्वाऽथ रामं जनकात्मजायुतं
श्रिया स्फुरन्तं सुरनायको मुदा ।
भक्त्या गिरा गद्गदया समेत्य
कृताञ्जलिः स्तोतुमथोपचक्रमे ॥२३॥

इन्द्र उवाच

भजेऽहं सदा राममिन्दीवराभं
भवारण्य-दावानलाभाभिधानम् ।
भवानीहृदा भावितानन्दरूपं
भवाभावहेतुं भवादिप्रपन्नम् ॥२४॥

---

कार्य कर पृथ्वी का भार उतार दिया ॥ २१ ॥ इस सीता की प्रतिबिम्ब-स्वरूपा वह माया सीता जिस कार्य के लिए रची गई थी, उस कार्य को पूरा कर अब अदृश्य हो गयी। अग्निदेव द्वारा कहे गये इस वचन को सुनकर राम अत्यन्त प्रसन्न हुए। पुनः उन्होंने अग्नि का पूजन कर प्रसन्नमुखी जानकी को स्वीकार कर लिया ॥ २२ ॥ और लक्ष्मीपति राम ने अपने से कभी पृथक् न होने वाली त्रिलोकजननी महालक्ष्मी जानकी को गोद में बैठा लिया। उस समय जनकनन्दिनी जानकी के सहित भगवान् राम का महा श्री से देदीप्यमान देख देवराज इन्द्र अति प्रसन्नता पूर्वक हाथ जोड़ कर भक्ति से गद्गद वाणी से स्तुति करने लगे—॥ २३ ॥

देवराज इन्द्र ने कहा—जो नीले कमल के समान आभा वाले हैं एवं जिनका नाम संसार रूप बनके उच्छेद के लिए दावानल के समान है,

सुरानीक-दुःखौघ-नाशैकहेतुं
नराकारदेहं निराकारमीड्यम् ।
परेशं परानन्दरूपं वरेण्यं
हरिं राममीशं भजे भारनाशम् ॥२५॥
प्रपन्नाऽखिलानन्ददोहं प्रपन्नं
प्रपन्नार्ति-निःशेष-नाशाभिधानम् ।
तपोयोगयोगीश-भावाभिभाव्यं
कपीशादिमित्रं भजे राममित्रम् ॥२६॥
सदा भोगभाजां सुदूरे विभान्तं
सदा योगभाजामदूरे विभान्तम् ।
चिदानन्दकन्दं सदा राघवेशं
विदेहात्मजानन्दरूपं प्रपद्ये ॥२७॥
महायोगमाया-विशेषानुयुक्तो
विभासीश लीलानराकारवृत्तिः ।
त्वदानन्द-लीला-कथापूर्णकर्णाः
सदानन्दरूपा भवन्तीह लोके ॥२८॥

---

भवानी जिनके आनन्दस्वरूप का हृदय में ध्यान करती हैं, जो संसार से मुक्त करने वाले हैं एवं शङ्करादि देवगण जिनके शरणागत हैं। उन भगवान् राम का मैं भजन करता हूँ ॥ २४ ॥ जो देवगणों के दुःख-समूह का नाश करने में कारण हैं, जो नराकार एवं निराकार हैं एवं स्तुति के योग्य हैं। पृथ्वी का भार उतारने वाले, उन परमेश्वर परानन्द स्वरूप, परम पूजनीय भगवान् राम को मैं भजता हूँ ॥ २५ ॥

जो शरणागतों की रक्षा करने वाले, एवं भक्तजनों के आश्रय हैं तथा जिनका नाम शरणागतों के दुःख को दूर करने वाला है और जो तपोयोग एवं योगीश्वरों की भावना के अनुसार प्रगट होते हैं, उन सुग्रीव के मित्र, रामरूपी सूर्य का मैं भजन करता हूँ ॥ २६ ॥ जो भोग में आसक्त प्राणियो से सदैव दूर रहते हैं। किन्तु योगासक्त योगियों के अत्यन्त सन्निकट विराजते हैं, ऐसे विदेहात्मजा के आनन्दस्वरूप, चिदानन्दघन रघुनाथजी को मैं सर्वदा भजता हूँ ॥ २७ ॥

हे ईश ! आप महायोगमाया की विशेषताओं से युक्त होकर अपनी

अहं मानपानाभिमत्तप्रमत्तो
न वेदाखिलेशाभिमानाभिमानः ।
इदानीं भवत्पाद-पद्म-प्रसादात्
त्रिलोकाधिपत्याभिमानो विनष्टः ॥२९॥

स्फुरद्-रत्न-केयूर-हाराभिरामं
धराभार-भूतासुरानीक-दावम् ।
शरच्चन्द्रवक्त्रं लसत्पद्मनेत्रं
दुरावारपारं भजे राघवेशम् ॥३०॥

सुराधीशनीलाभ्र-नीलाङ्गकान्तिं
विराधादि-रक्षोवधाल्लोकशान्तिम् ।
किरीटादिशोभं पुरारातिलाभं
भजे रामचन्द्रं रघूणामधीशम् ॥३१॥

---

लीला से मनुष्य का रूप धारण कर चरित्र करते हैं। जिनके कान आपकी आनन्दमयी लीलाओं से पूर्ण होते हैं, वे इस संसार में नित्यानन्द स्वरूप हो जाते हैं ॥ २८ ॥ मैं अहंकार पान के उन्माद से उन्मत्त हो गया था। और अपने त्रिलोकाधिपतित्व के अभिमान से इतना अभिमानी हो गया था कि अपने सामने किसी को कुछ भी नहीं समझता था। अब आपके चरण-कमलों की कृपा से मेरा त्रिलोकाधिपतित्व का वह अभिमान नष्ट हो गया ॥ २९ ॥

देदीप्यमान रत्नजटित भुजबन्ध एवं हारों से जो सुशोभित हैं, पृथ्वी के भारस्वरूप राक्षसों का बध करने के लिए जो दावानल स्वरूप हैं। शरत्कालीन चन्द्रमा के समान जिनका मुख मनोहर तथा कमल के समान जिनके नेत्र सुशोभित हो रहे हैं। जिनका आदि, अन्त जानना अत्यन्त कठिन है, उन रघुनाथ जी को मैं भजता हूँ ॥ ३० ॥ जिनके शरीर की कान्ति इन्द्रनीलमणि के समान एवं नीलवर्ण के मेघ के समान श्यामवर्ण है, जो विराध-जैसे लोककण्टक राक्षसों का बध कर लोक में शान्ति स्थापित करते हैं। जो किरीट एवं केयूर तथा हारादि आभूषणों से विभूषित हैं। और श्रीमहादेव जी के जो परम धन हैं, उन रघुकुलाधीश तथा सुराधीश श्रीरामचन्द्र जी का मैं भजन करता हूँ ॥ ३१ ॥

लसच्चन्द्रकोटि-प्रकाशादिपीठे
समासीनमङ्के समाधाय सीताम् ।
स्फुरद्धेमवर्णां तडित्पुञ्जभासां
भजे रामचन्द्रं निवृत्तार्तितन्द्रम् ॥३२॥
ततः प्रोवाच भगवान् भवान्या सहितो भवः ।
रामं कमलपत्राक्षं विमानस्थो नभः स्थले ॥३३॥
आगमिष्याम्ययोध्यायां द्रष्टुं त्वां राज्यसत्कृतम् ।
इदानीं पश्य पितरमस्य देहस्य राघव ! ॥३४॥
ततोऽपश्यद् विमानस्थं रामो दशरथं पुरः ।
ननाम शिरसा पादौ मुदा भक्त्या सहाऽनुजः ॥३५॥
आलिङ्ग्य मूर्ध्न्यवघ्राय रामं दशरथोऽब्रवीत् ।
तारितोऽस्मि त्वया वत्स ! संसाराद् दुःखसागरात् ॥३६॥
इत्युक्त्वा पुनरालिङ्ग्य ययौ रामेण पूजितः ।
रामोऽपि देवराजं तं दृष्ट्वा प्राह कृताञ्जलिम् ॥३७॥

---

करोड़ों शरत्कालीन चन्द्रमा के समान देदीप्यमान सिंहासन पर, तेजोमयी सुवर्णवर्णा और विद्युत्-समान कान्तिमती जानकी को गोद में लिये जो विराज रहे हैं। जो दुःख और आलस्य से सर्वथा रहित हैं, उन रामचन्द्र को मैं भजता हूँ ॥ ३२ ॥

तब आकाश में विमान पर संस्थित भवानी सहित भगवान् शंकर ने कमलपत्र के समान विशाल नेत्रवाले श्रीराम से कहा—॥ ३३ ॥ हे राघव ! मैं राज्यगद्दी पर अभिषेक के समय आपका दर्शन करने के लिए अयोध्या आऊँगा। इस समय आप इस शरीर के जन्मदाता पिता दशरथ को देखिए ॥ ३४ ॥ इसके अनन्तर राम ने विमान पर बैठे हुए पिता दशरथ को अपने सामने देखा। उन्हें देखते ही श्रीराम ने लक्ष्मण सहित भक्ति-भाव से युक्त हो प्रसन्नता के साथ उनके चरणों में सिर रख कर प्रणाम किया ॥ ३५ ॥ पुनः दशरथ ने उन्हें हृदय से लगा कर उनका सिर सूँघ कर कहा—हे वत्स ! मैं इस संसाररूपी दुःख-समुद्र से तुम्हारे द्वारा पार हो गया हूँ ॥ ३६ ॥ ऐसा कहकर उन्होंने श्रीराम को पुनः हृदय से

मत्कृते निहतान् सङ्ख्ये वानरान् पतितान् भुवि ।
जीवयाशु सुधावृष्ट्या सहस्राक्ष ! ममाज्ञया ॥३८॥
तथेत्यमृतवृष्ट्या तान् जीवयामास वानरान् ।
ये ये मृता मृधे पूर्वं ते ते सुप्तोत्थिता इव ।
पूर्ववद् बलिनो हृष्टा रामपार्श्वमुपाययुः ॥३९॥
नोत्थिता राक्षसास्तत्र पीयूषस्पर्शनादपि ।
विभीषणस्तु साष्टाङ्गं प्रणिपत्याऽब्रवीद् वचः ॥४०॥
देव ! मामनुगृह्णीष्व मयि भक्तिर्यदा तव ।
मङ्गलस्नानमद्य त्वं कुरु सीतासमन्वितः ॥४१॥
अलङ्कृत्य सह भ्रात्रा श्वो गमिष्यामहे वयम् ।
विभीषणवचः श्रुत्वा प्रत्युवाच रघूत्तमः ॥४२॥
सुकुमारोऽतिभक्तो मे भरतो मामवेक्षते ।
जटावल्कलधारी स शब्दब्रह्मसमाहितः ॥४३॥

---

लगाया और उन राम से पूजित हो चले गये । रामचन्द्र जी ने देवराज इन्द्र को हाथ जोड़ खड़ा देख कर कहा–॥३७॥ हे सहस्राक्ष ! तुम मेरी आज्ञा से युद्ध में मेरे लिए मारे गये इन वानरों को, जो पृथ्वी पर गिरे हुए हैं, अमृत की वर्षा कर तुरन्त जीवित कर दो ॥ ३८ ॥ इन्द्र ने भी 'तथास्तु' कह कर अमृत की वर्षा से युद्ध में मरे हुए उन वानरों को जीवित कर दिया । वे वानर सोकर उठे हुए के समान पहले की भाँति ही बलवान् और प्रसन्न होकर श्रीराम के पास चले आये ॥ ३९ ॥ किन्तु वहाँ युद्ध में मरे हुए राक्षस अमृत के स्पर्श होने पर भी नहीं उठे । तब विभीषण ने साष्टाङ्ग प्रणाम करके कहा–॥ ४० ॥ हे देव ! यदि आप का मुझ पर अत्यन्त स्नेह है, तो मेरे ऊपर कृपा कीजिए । और सीता सहित आज मङ्गल-स्नान कीजिए ॥ ४१ ॥ फिर भाई लक्ष्मण सहित वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हो हम लोग कल प्रस्थान करेंगे । विभीषण के वचन सुनकर श्रीराम ने कहा–॥४२॥

विभीषण ! जटावल्कल धारण किये हुए सुकुमार मेरा भक्त भरत निरन्तर शब्दब्रह्म की उपासना करता हुआ इस समय मेरी प्रतीक्षा

कथं तेन विना स्नानमलङ्कारादिकं मम।
अतः सुग्रीवमुख्यांस्त्वं पूजयाशु विशेषतः ॥४४॥
पूजितेषु कपीन्द्रेषु पूजितोऽहं न संशयः।
इत्युक्तो राघवेणाशु स्वर्णरत्नाम्बराणि च ॥४५॥
ववर्ष राक्षसश्रेष्ठो यथकामं यथारुचि।
ततस्तान् पूजितान् दृष्ट्वा रामो रत्नैश्च यूथपान् ॥४६॥
अभिनन्द्य यथान्यायं विससर्ज हरीश्वरान्।
विभीषणसमानीतं पुष्पकं सूर्यवर्चसम् ॥४७॥
आरुरोह ततो रामस्तद्विमानमनुत्तमम्।
अङ्के निधाय वैदेहीं लज्जमानां यशस्विनीम् ॥४८॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा विक्रान्तेन धनुष्मता।
अब्रवीच्च विमानस्थः श्रीरामः सर्ववानरान् ॥४९॥
सुग्रीवं हरिराजं च अङ्गदं च विभीषणम्।
मित्रकार्यं कृतं सर्वं भवद्भिः सह वानरैः ॥५०॥

---

करता होगा ॥४३॥ भला मैं उनके बिना किस प्रकार वस्त्र और अलङ्कार धारण कर सकता हूँ। इसलिए तुम अभी सुग्रीव आदि सभी प्रमुख वानरों को विशेष रूप से पूजा करो ॥ ४४ ॥ कपीन्द्र सुग्रीव आदि वानरों के पूजित हो जाने पर मैं पूजित हो जाऊँगा। इसमें सन्देह मत करो। रामचन्द्र जी के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर विभीषण ने वानरों की इच्छा और रुचि के अनुसार सुवर्ण, रत्न एवं वस्त्रों की मुक्तहस्त से वर्षा कर दी। इस प्रकार सभी वानरों को रत्नादि से सत्कृत देख श्रीरामचन्द्र जी ने सबकी यथायोग्य प्रशंसा कर उन्हें विदा कर दिया। फिर वे लज्जित हुई सीता को गोद में बैठा, महापराक्रमी भाई लक्ष्मण के साथ विभीषण द्वारा लाये गये सूर्य के समान तेजस्वी अति उत्तम पुष्पक विमान पर बैठ गये। फिर विमान में बैठने के उपरान्त श्रीराम ने वानरराज सुग्रीव, अङ्गद, विभीषण तथा समस्त वानरों से कहा—आप सभी लोगों ने इन वानरों के साथ मित्रता का जैसा आदर्श कर्त्तव्य होता है, उसे भलीभाँति

अनुज्ञाता मया सर्वे यथेष्टं गन्तुमर्हथ ।
सुग्रीव ! प्रतियाह्याशु किष्किन्धां सर्वसैनिकैः ॥५१॥
स्वराज्ये वस लङ्कायां मम भक्तो विभीषण ! ।
न त्वां धर्षयितुं शक्ताः सेन्द्रा अपि दिवौकसः ॥५२॥
अयोध्यां गन्तुमिच्छामि राजधानीं पितुर्मम ।
एवमुक्तास्तु रामेण वानरास्ते महाबलाः ॥५३॥
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे राक्षसश्च विभीषणः ।
अयोध्यां गन्तुमिच्छामस्त्वया सह रघूत्तम ! ॥५४॥
दृष्ट्वा त्वामभिषिक्तं तु कौसल्यामभिवाद्य च ।
पश्चाद् वृणीमहे राज्यमनुज्ञां देहि नः प्रभो ! ॥५५॥
रामस्तथेति सुग्रीव ! वानरैः स-विभीषणः ।
पुष्पकं स-हनूमांश्च शीघ्रमारोह साम्प्रतम् ॥५६॥

---

पूरा किया ॥ ४५-५० ॥ आप लोग मेरी आज्ञानुसार अपने-अपने गन्तव्य स्थानों को चले जाइए। और हे सुग्रीव ! तुम अपने समस्त सैनिकों के सहित शीघ्र ही किष्किन्धा जाओ ॥ ५१ ॥

हे विभीषण ! तुम मेरी भक्ति करते हुए लङ्का में अपने राज्य पर निवास करो। देवगण सहित इन्द्र भी तुम्हारा बाल बाँका नहीं कर सकते ॥ ५२ ॥ मैं इस समय अपने पिता की राजधानी अयोध्यापुरी को जाना चाहता हूँ। श्रीराम के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर वे समस्त महाबली वानरगण ॥५३॥ एवं राक्षसराज विभीषण हाथ जोड़कर बोले—हे रघुश्रेष्ठ ! हम सब आपके साथ अयोध्या चलना चाहते हैं ॥ ५४ ॥ आप का राज्याभिषेक देखकर माता कौशल्या की वन्दना कर पुनः अपना राज्य ग्रहण करेंगे। हे प्रभो ! आप हमको साथ चलने की आज्ञा दीजिए ॥ ५५ ॥

तब रामचन्द्र जी ने 'बहुत अच्छा' कह कर कहा—सुग्रीव ! तुम सभी वानरों के सहित विभीषण और हनुमान् को साथ लेकर इस विमान पर

ततस्तु पुष्पकं दिव्यं सुग्रीवः सह सेनया ।
विभीषणश्च सामात्यः सर्वे चारुरुहुर्द्रुतम् ॥५७॥
तेष्वारूढेषु सर्वेषु कौबेरं परमासनम् ।
राघवेणाऽभ्यनुज्ञातमुत्पपात विहायसा ॥५८॥
बभौ तेन विमानेन हंसयुक्तेन भास्वता ।
प्रहृष्टश्च तदा रामश्चतुर्मुख इवाऽपरः ॥५९॥
ततो बभौ भास्करबिम्बतुल्यं
कुबेरयानं तपसाऽनुलब्धम् ।
रामेण शोभां नितरां प्रपेदे
सीतासमेतेन सहानुजेन ॥६०॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
युद्धकाण्डे त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

□

---

चढ़ो ॥ ५६ ॥ तब सेना समेत सुग्रीव एवं मन्त्रियों सहित विभीषण ये सभी शीघ्रता से उस पुष्पक विमान पर चढ़ गये ॥ ५७ ॥ उन सभी के इस प्रकार आरूढ़ हो जाने पर कुबेर का वह पुष्पक विमान राम की आज्ञा पा आकाश-मार्ग में उड़ चला ॥ ५८ ॥

हंस पर सवार हुए दूसरे ब्रह्मा के समान पुष्पक विमान पर चढ़े हुए परम प्रसन्न श्रीरामचन्द्र जी मालूम पड़ रहे थे ॥ ५९ ॥ उस समय तपस्या से प्राप्त हुआ वह कुबेर का पुष्पक विमान सूर्यबिम्ब के समान सुशोभित हो रहा था। सीता एवं लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्र जी के बैठने से उसकी शोभा और अधिक बढ़ गई थी ॥ ६० ॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या विभूषित अध्यात्म-रामायण के
उमा-महेश्वर संवाद में युद्धकाण्ड का तेरहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १ ॥

□

## चतुर्दशः सर्गः

( अयोध्या-यात्रा, भरद्वाज मुनिका आतिथ्यसत्कार तथा भरत-मिलाप )

श्रीमहादेव उवाच

पातयित्वा ततश्चक्षुः सर्वतो रघुनन्दनः ।
अब्रवीन् मैथिलीं सीतां रामः शशिनिभाननाम् ॥ १ ॥
त्रिकूटशिखराग्रस्थां पश्य लङ्कां महाप्रभाम् ।
एतां रणभुवं पश्य मांसकर्दमपङ्किलाम् ॥ २ ॥
असुराणां प्लवङ्गानामत्र वैशसनं महत् ।
अत्र मे निहतः शेते रावणो राक्षसेश्वरः ॥ ३ ॥
कुम्भकर्णेन्द्रजिन्मुख्याः सर्वे चाऽत्र निपातिताः ।
एष सेतुर्मया बद्धः सागरे सलिलाशये ॥ ४ ॥
एतच्च दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः ।
सेतुबन्धमिति ख्यातं त्रैलोक्येन च पूजितम् ॥ ५ ॥
एतत् पवित्रं परमं दर्शनात् पातकापहम् ।
अत्र रामेश्वरो देवो मया शम्भुः प्रतिष्ठितः ॥ ६ ॥

---

श्रीमहादेव जी ने कहा—हे पार्वती, पुष्पक विमान पर चढ़े हुए श्रीराम, चारों ओर देखते हुए चन्द्रमुखी विदेहपुत्री सीता से बोले—॥ १ ॥

हे सीत ! त्रिकूट की चोटी पर बसी हुई परम प्रकाशमयी इस लङ्कापुरी को देखो, और मांस के कीचड़ से सनी हुई इस रणभूमि को भी देखो ॥ २ ॥ यहाँ पर वानरों और राक्षसों में भयंकर युद्ध होने से भयानक संहार हुआ है। यहाँ पर मेरे हाथ से मारा गया राक्षसराज रावण गिरा था ॥ ३ ॥ यहीं पर कुम्भकर्ण एवं इन्द्रजित् मेघनाद और समस्त राक्षस वीर मारे गये हैं। और यह मैंने जलपूर्ण समुद्र पर पुल बाधा है ॥ ४ ॥ देखो, इस विशाल समुद्र पर सेतुबन्ध नामक तीर्थ दिखाई दे रहा है, जो तीनों लोकों में पूजनीय है ॥ ५ ॥

यह सेतुबन्ध तीर्थ परम पवित्र है और यह दर्शन मात्र से तीनों लोकों

अत्र मां शरणं प्राप्तो मन्त्रिभिश्च विभीषणः ।
एषा सुग्रीवनगरी किष्किन्धा चित्रकानना ॥ ७ ॥
तत्र रामाज्ञया ताराप्रमुखा हरियोषितः ।
आनयामास सुग्रीवः सीतायाः प्रियकाम्यया ॥ ८ ॥
ताभिः सहोत्थितं शीघ्रं विमानं प्रेक्ष्य राघवः ।
प्राह चाद्रिमृष्यमूकं पश्य वाल्यत्र मे हतः ॥ ९ ॥
एषा पञ्चवटी नाम राक्षसा यत्र मे हताः ।
अगस्त्यस्य सुतीक्ष्णस्य पश्याऽऽश्रमपदे शुभे ! ॥१०॥
एते ते तापसाः सर्वे दृश्यन्ते वरवर्णिनि ! ।
असौ शैलवरो देवि ! चित्रकूटः प्रकाशते ॥११॥
अत्र मां कैकेयीपुत्रः प्रसादयितुमागतः ।
भरद्वाजाश्रमं पश्य दृश्यते यमुनातटे ॥१२॥

---

के पापों को नष्ट करनेवाला है। इस स्थान पर मैंने श्रीरामेश्वर महादेव की स्थापना की है ॥ ६ ॥ यहीं मन्त्रियों सहित विभीषण मेरी शरण आया था। यह विचित्र उपवनों से सुशोभित सुग्रीव की नगरी किष्किन्धा है ॥ ७ ॥ किष्किन्धा पहुँचने पर राम की आज्ञा से सीता को प्रसन्न करने के लिए सुग्रीव अपनी तारा आदि पत्नियों को ले आये ॥ ८ ॥ पुनः उन सभी को लेकर चलते हुए विमान को श्रीरामचन्द्र जी ने देखा। और सीता जी से पुनः कहने लगे—हे प्रिये ! इस ऋष्यमूक पर्वत को देखो, यहाँ पर मैंने बालि का वध किया है ॥ ९ ॥ और यह पञ्चवटी नामक स्थान है, जहाँ पर हमने अनेक राक्षसों का वध किया था। और हे शुभे ! देखो, यह अगस्त्य तथा सुतीक्ष्ण का परम-पवित्र आश्रम है। हे वरवर्णिनि ! ये तपस्वी गण दिखाई दे रहे हैं, इन्हें भी देखो, हे देवि ! यह पर्वत-श्रेष्ठ चित्रकूट दिखाई द रहा है ॥ १०-११ ॥

यह वही स्थान है, जहाँ मुझे मनाने के लिए कैकेयीपुत्र भरत आये थे। और यह यमुना तट पर भरद्वाज मुनि का आश्रम है, इसे भी

एषा भागीरथी गङ्गा दृश्यते लोकपावनी ।
एषा सा दृश्यते सीते ! सरयू-र्यूपमालिनी ॥१३॥
एषा सा दृश्यतेऽयोध्या प्रणामं कुरु भामिनि ! ।
एवं क्रमेण सम्प्राप्तो भरद्वाजाश्रमं हरिः ॥१४॥
पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चम्यां रघुनन्दनः ।
भरद्वाजं मुनिं दृष्ट्वा ववन्दे सानुजः प्रभुः ॥१५॥
पप्रच्छ मुनिमासीनं विनयेन रघूत्तमः ।
शृणोषि कच्चिद् भरतः कुशल्यास्ते सहानुजः ॥१६॥
सुभिक्षा वर्ततेऽयोध्या जीवन्ति च हि मातरः ।
श्रुत्वा रामस्य वचनं भरद्वाजः प्रहृष्टधीः ॥१७॥
प्राह सर्वं कुशलिनो भरतस्तु महामनाः ।
फल-मूलकृताहारो जटावल्कलधारकः ॥१८॥

---

देखो ॥ १२ ॥ यह लोकपावनी भागीरथी गङ्गा दिखाई पड़ रही है । और यह यज्ञ के अनेक खम्भों से युक्त सरयू नदी दिखाई पड़ रही है ॥ १३ ॥ हे सुन्दरि, यह अयोध्या दिखाई दे रही है, इसे प्रणाम करो । इस प्रकार क्रम से पुष्पक विमान द्वारा श्रीराम भरद्वाज के आश्रम पर पहुँचे ॥ १४ ॥

श्रीरामचन्द्र जी चौदह वर्ष पूर्ण होने पर पञ्चमी तिथि को मुनिवर भरद्वाज का दर्शन किया और लक्ष्मण सहित उन्हें प्रणाम किया ॥ १५ ॥ फिर आश्रम में बैठे हुए भरद्वाज मुनि से श्रीरामचन्द्र जी ने विनय से पूछा—आपने कुछ सुना है, शत्रुघ्न सहित भरत कुशल से तो हैं ? ॥ १६ ॥ अयोध्या में सुभिक्ष तो है ? और हमारी माताएँ अभी तक जीवित हैं न ? राम के वचन सुन कर भरद्वाज मुनि ने प्रसन्न होकर कहा—॥ १७ ॥

अयोध्या में सभी कुशल पूर्वक हैं । महामना भरत जटा-वल्कल धारण किये, शाक-मूल-फलादि के आहार से अपना निर्वाह करते हुए आपके

पादुके सकलं न्यस्य राज्यं त्वां सुप्रतीक्षते ।
यद्यत्कृतं त्वया कर्म दण्डके रघुनन्दन ! ॥१६॥
राक्षसानां विनाशं च सीताहरणपूर्वकम् ।
सर्वं ज्ञातं मया राम ! तपसा ते प्रसादतः ॥२०॥
त्वं ब्रह्म परमं साक्षादादि-मध्यान्त-वर्जितः ।
त्वमग्रे सलिलं सृष्ट्वा तत्र सुप्तोऽसि भूतकृत ॥२१॥
नारायणोऽसि विश्वात्मन् ! नराणामन्तरात्मकः ।
त्वन्नाभिकमलोत्पन्नो ब्रह्मा लोकपितामहः ॥२२॥
अतस्त्वं जगतामीशः सर्वलोकनमस्कृतः ।
त्वं विष्णुर्जानकी लक्ष्मीः शेषोऽयं लक्ष्मणाभिधः ॥२३॥
आत्मना सृजसीदं त्वमात्मन्येवात्म-मायया ।
न सज्जसे नभोवत्त्वं चिच्छक्त्या सर्वसाक्षिकः ॥२४॥

---

पादुकाओं को अपना सारा राज्य सौंपकर आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। हे रघुनन्दन ! आपने दण्डकवन में जो-जो कार्य किये हैं, एवं सीता का हरण हो जाने पर आपने जिस प्रकार से राक्षसों का वध किया है। वह सब आपकी कृपा एवं मैंने अपने तपोबल से जान लिया है॥ १८–२०॥ आप आदि, मध्य और अन्त से रहित साक्षात् परब्रह्म हैं। आप समस्त भूतों की रचना करते हैं। सर्व-प्रथम जल की सृष्टि कर आप उसमें शयन करते हैं ॥ २१ ॥

हे विश्वात्मन् ! आप सभी प्राणियों के अन्तरात्मा हैं, नारायण हैं। आपकी नाभि-कमल से उत्पन्न ब्रह्मा लोक के पितामह हैं ॥ २२ ॥ इसलिए आप समस्त लोकों से वन्दित और सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं। आप विष्णु हैं, जानकी लक्ष्मी हैं और ये लक्ष्मण शेष नाग हैं ॥ २३ ॥ आप अधिष्ठान रूप से अपने भीतर ही अपने आप इस जगत् की माया द्वारा सृष्टि करते हैं। किन्तु आकाश के समान किसी से लिप्त नहीं होते। आप अपनी चित्-शक्ति से सबके साक्षी हैं ॥ २४ ॥

बहिरन्तश्च भूतानां त्वमेव रघुनन्दन ! ।
पूर्णोऽपि मूढदृष्टीनां विच्छिन्न इव लक्ष्यसे ॥२५॥
जगत्त्वं जगदाधारस्त्वमेव परिपालकः ।
त्वमेव सर्वभूतानां भोक्ता भोज्यं जगत्पते ! ॥२६॥
दृश्यते श्रूयते यद्यत् स्मर्यते वा रघूत्तम ! ।
त्वमेव सर्वमखिलं त्वद् विनाऽन्यन्न किञ्चन ॥२७॥
माया सृजति लोकांश्च स्वगुणैरहमादिभिः ।
त्वच्छक्तिप्रेरिता राम ! तस्मात् त्वय्युपचर्यते ॥२८॥
यथा चुम्बकसान्निध्याच्चलन्त्येवाय आदयः ।
जडास्तथा त्वया दृष्टा माया सृजति वै जगत् ॥२९॥
देहद्वयमदेहस्य तव विश्वं रिरक्षिषोः ।
विराट् स्थूलं शरीरं ते सूत्रं सूक्ष्ममुदाहृतम् ॥३०॥

---

हे रघुनन्दन ! आप सभी प्राणियों के भीतर और बाहर व्याप्त हैं। इस प्रकार पूर्ण होकर भी मूढ बुद्धियों के लिए परिच्छिन्न ( देश-काल की अवधि में बँधे हुए ) जैसे दिखाई पड़ते हैं ॥ २५ ॥ आप ही जगत् हैं, आप ही इस जगत् के अधिष्ठान तथा अधिष्ठाता हैं। और उसके पालक हैं। हे जगत्पते, आप ही समस्त प्राणियों के भोक्ता तथा भोज्य हैं ॥२६॥ हे रघूत्तम ! इस जगत् में जो कुछ भी देखा जाता है एवं सुना जाता है और स्मरण किया जाता है वह सब आप ही हैं। आपके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है ॥ २७ ॥

हे राम ! आप की शक्ति से प्रेरित यह माया अपने अहङ्कारादि गुणों से सभी लोकों की रचना करती है, इसलिए इस रचना का कर्त्तृत्व, भोक्तृत्व आप में ही आरोप किया जाता है ॥ २८ ॥ जिस प्रकार चुम्बक की सन्निधि से लोहा-जैसा जड़ पदार्थ चलायमान हो जाता है, उसी प्रकार आप की दृष्टि पड़ते ही यह जड़ माया भी जगत् की सृष्टि करती है ॥२९॥ विश्व की रक्षा करने हेतु देहरहित भी आप दो देह धारण करते हैं। प्रथम स्थूल शरीर है, जिसे विराट् भी कहते हैं। दूसरा सूक्ष्म शरीर है,

विराजः सम्भवन्त्येते अवतारा: सहस्रशः ।
कार्यान्ते प्रविशन्त्येव विराजं रघुनन्दन ! ॥३१॥
अवतारकथां लोके ये गायन्ति गृणन्ति च ।
अनन्यमनसो मुक्तिस्तेषामेव रघूत्तम ! ॥३२॥
त्वं ब्रह्मणा पुरा भूमेर्भारहाराय राघव ! ।
प्रार्थितस्तपसा तुष्टस्त्वं जातोऽसि रघोः कुले ॥३३॥
देवकार्यमशेषेण कृतं ते राम ! दुष्करम् ।
बहुवर्षसहस्राणि मानुषं देहमाश्रितः ॥३४॥
कुर्वन् दुष्करकर्माणि लोकद्वयहिताय च ।
पापहारीणि भुवनं यशसा पूरयिष्यसि ॥३५॥
प्रार्थयामि जगन्नाथ ! पवित्रं कुरु मे गृहम् ।
स्थित्वाऽद्य भुक्त्वा सबलः श्वो गमिष्यसि पत्तनम् ॥३६॥
तथेति राघवोऽतिष्ठत् तस्मिन्नाश्रम उत्तमे ।
ससैन्यः पूजितस्तेन सीतया लक्ष्मणेन च ॥३७॥

---

जिसे सूत्रात्मा भी कहते हैं ॥ ३० ॥ हे रघुनन्दन ! आप के इस विराट् शरीर से ही इस प्रकार के सहस्रों अवतार होते रहते हैं। और अपना काम पूरा कर उस विराट् शरीर में लीन हो जाते हैं ॥ ३१ ॥ आपकी अवतार-कथा का जो लोग अनन्यचित्त से गान करते हैं अथवा श्रवण करते हैं। उनकी मुक्ति अवश्य हो जाती है, इसमें संशय नहीं है। हे राघव ! आप ने ब्रह्मा की तपस्या से सन्तुष्ट हो कर उनके द्वारा प्रार्थना किये जाने पर ही रघुकुल में अवतार धारण किया है ॥३२-३३॥ आप ने देवताओं का यह दुष्कर कार्य पूरा कर दिया। अब बहुत हजार वर्षों तक आप इस मनुष्य शरीर में निवास करें ॥ ३४ ॥ इस लोक और परलोक के हित के लिए पापहारी अनेक दुष्कर कार्यों को करते हुए आप सम्पूर्ण लोकों को अपने सुयश से परिपूर्ण करेंगे ॥ ३५ ॥

हे जगन्नाथ, मैं आप से प्रार्थना करता हूँ कि आज सैन्य-सहित मेरे इस आश्रम में ठहर कर भोजन-विश्राम कीजिए और मेरा घर पवित्र कीजिए। फिर कल अयोध्यापुरी को जाइएगा ॥ ३६ ॥ रामचन्द्र जी

ततो रामश्चिन्तयित्वा मुहूर्तं प्राह मारुतिम् ।
इतो गच्छ हनूमंस्त्वमयोध्यां प्रति सत्वरः ॥३८॥
जानीहि कुशली कश्चिज्जनो नृपतिमन्दिरे ।
शृङ्गवेरपुरं गत्वा ब्रूहि मित्रं गुहं मम ॥३९॥
जानकीलक्ष्मणोपेतमागतं मां निवेदय ।
नन्दिग्रामं ततो गत्वा भ्रातरं भरतं मम ॥४०॥
दृष्ट्वा ब्रूहि सभार्यस्य सभ्रातुः कुशलं मम ।
सीतापहरणादीनि रावणस्य वधादिकम् ॥४१॥
ब्रूहि क्रमेण मे भ्रातुः सर्वं तत्र विचेष्टितम् ।
हत्वा शत्रुगणान् सर्वान् सभार्यः सहलक्ष्मणः ॥४२॥
उपयाति समृद्धार्थः सह ऋक्षहरीश्वरैः ।
इत्युक्त्वा तत्र वृत्तान्तं भरतस्य विचेष्टितम् ॥४३॥
सर्वं ज्ञात्वा पुनः शीघ्रमागच्छ मम सन्निधिम् ।
तथेति हनुमांस्तत्र मानुषं वपुरास्थितः ॥४४॥

---

'तथास्तु' कह कर भरद्वाज से सत्कृत हो सेना, लक्ष्मण एवं सीता के सहित उस अत्युत्तम आश्रम में ठहर गये ॥ ३७ ॥

इसके अनन्तर मुहूर्त पर्यन्त विचार कर श्रीरामचन्द्रजी ने हनुमान् से कहा—हनुमान् ! तुम शीघ्र ही यहाँ से अयोध्या को जाओ ॥ ३८ ॥ और वहाँ जाकर पता लगाओ कि राजमन्दिर में सब कुशल तो है ? शृङ्गवेरपुर मेंजाकर मेरे मित्र निषादराज से बात-चीत करना ॥३९॥ तथा उसे जानकी एवं लक्ष्मण सहित मेरे आने की सूचना भी देना । नन्दिग्राम में जाकर मेरे भाई भरत का ॥ ४० ॥ दर्शन कर जानकी एवं लक्ष्मण सहित मेरा कुशल कहना । सीता के हरण से लेकर रावणवध पर्यन्त मेरा सभी वृत्तान्त क्रम से उन्हें सुनाना । और कहना कि रामचन्द्र जी समस्त शत्रुओं को मार कर सफल मनोरथ हो, अपनी भार्या जानकी एवं भाई लक्ष्मण सहित ऋक्ष, वानरों के साथ आ रहे हैं । मेरा वृत्तान्त इस प्रकार भरत को सुनाकर उनकी सभी चेष्टाओं का पता लेकर शीघ्र ही मेरे पास चले

नन्दिग्रामं ययौ तूर्णं वायुवेगेन मारुतिः ।
गरुत्मानिव वेगेन जिघृक्षन् भुजगोत्तमम् ॥४५॥
शृङ्गवेरपुरं प्राप्य गुहमासाद्य मारुतिः ।
उवाच मधुरं वाक्यं प्रहृष्टेनाऽन्तरात्मना ॥४६॥
रामो दाशरथिः श्रीमान् सखा ते सह सीतया ।
सलक्ष्मणस्त्वां धर्मात्मा क्षेमी कुशलमब्रवीत् ॥४७॥
अनुज्ञातोऽद्य मुनिना भरद्वाजेन राघवः ।
आगमिष्यति तं देवं द्रक्ष्यसि त्वं रघूत्तमम् ॥४८॥
एवमुक्त्वा महातेजाः सम्प्रहृष्टतनूरुहम् ।
उत्पपात महावेगो वायुवेगेन मारुतिः ॥४९॥
सोऽपश्यद् रामतीर्थं च सरयूं च महानदीम् ।
तामतिक्रम्य हनुमान् नन्दिग्रामं ययौ मुदा ॥५०॥
क्रोशमात्रे त्वयोध्यायाश्चीरकृष्णाजिनाम्बरम् ।
ददर्श भरतं दीनं कृशमाश्रमवासिनम् ॥५१॥

---

आना। तब हनुमान् जी 'बहुत अच्छा' कहकर मनुष्य शरीर धारण कर तुरन्त ही वायुवेग से नन्दिग्राम में इस प्रकार से चले मानो किसी श्रेष्ठ साँप को पकड़ने के लिए वायुवेग से गरुड़ जा रहे हों ॥ ४१-४५ ॥

हनुमान्‌जी ने शृङ्गवेरपुर में जाकर गुह के समीप अति प्रसन्न हो मधुर वाणी में कहा—॥४६॥ तुम्हारे परम मित्र, परम धार्मिक, क्षेम युक्त दशरथ कुमार श्रीरामचन्द्रजी ने सीता एवं लक्ष्मण सहित अपना कुशल तुमसे कहा है ॥ ४७ ॥ मुनिवर भरद्वाज की आज्ञा लेकर वे आज ही आवेंगे। पुनः तुम उन रघुश्रेष्ठ राम का दर्शन करोगे ॥ ४८ ॥ और रोमाञ्चित हुए गुह से इस प्रकार का समाचार कहकर वेगवान् महा तेजस्वी हनुमान् बड़े वेग से उड़े ॥ ४९ ॥ उन्होंने राम की तीर्थभूता अयोध्या नगरी और सरयू नदी के दर्शन किये। उसे भी पार कर बड़ी प्रसन्नता से नन्दिग्राम की ओर चले ॥ ५० ॥

तदनन्तर अयोध्या से एक कोस चलने के पश्चात् नन्दिग्राम में वल्कल, कृष्ण मृगचर्म धारण किये दीन और दुर्बल स्थिति में आश्रम

मलपङ्कविदिग्धाङ्गं जटिलं वल्कलाम्बरम् ।
फलमूलकृताहारं रामचिन्तापरायणम् ॥५२॥
पादुके ते पुरस्कृत्य शासयन्तं वसुन्धराम् ।
मन्त्रिभिः पौरमुख्यैश्च काषायाम्बरधारिभिः ॥५३॥
धृतदेहं मूर्तिमन्तं साक्षाद्धर्ममिव स्थितम् ।
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं हनूमान् मरुतात्मजः ॥५४॥
यं त्वं चिन्तयसे रामं तापसं दण्डके स्थितम् ।
अनुशोचसि काकुत्स्थः स त्वां कुशलमब्रवीत् ॥५५॥
प्रियमाख्यामि ते देव ! शोकं त्यज सुदारुणम् ।
अस्मिन् मुहूर्ते भ्रात्रा त्वं रामेण सह सङ्गतः ॥५६॥
समरे रावणं हत्वा रामः सीतामवाप्य च ।
उपयाति समृद्धार्थः स-सीतः सहलक्ष्मणः ॥५७॥
एवमुक्तो महातेजा भरतो हर्षमूर्च्छितः ।
पपात भुवि चास्वस्थः कैकेयीप्रियनन्दनः ॥५८॥

---

में निवास करते, संस्कार रहित होने से मैले-कुचैले, फल-मूलादि भोजन कर भगवान् राम में ध्यान लगाये, राम की दी हुई पादुकाओं को आगे रख कर शासन करते हुए और काषाय वस्त्र धारण किये मन्त्रियों एवं मुख्य-मुख्य पुरवासियों से घिरे हुए, साक्षात् मूर्तिमान् धर्म के समान भरत को देखकर पवनकुमार हनुमान् जी हाथ जोड़कर उनसे बोले—॥ ५१—५४ ॥

हे महात्मन् ! दण्डक वन में निवास करने वाले जिस तपस्वी राम का आप चिन्तन करते हैं। और जिसके लिए आप इतने अनुतप्त हैं, उन ककुत्स्थ वंशीय राम ने आपसे अपना कुशल कहा है ॥ ५५ ॥ हे देव ! अब आप अपना दारुण शोक त्यागिए। मैं आपको परम प्रिय समाचार सुनाता हूँ। आप इसी मुहूर्त में अपने भाई राम से मिलेंगे ॥ ५६ ॥ श्रीराम रावण को युद्ध में मारकर श्री सीता को प्राप्त कर और अपना मनोरथ पूरा कर सीता और लक्ष्मण सहित आ रहे हैं ॥ ५७ ॥

हनुमान् जी के इस प्रकार कहने पर कैकेयी के प्रिय पुत्र महातेजस्वी भरत जी हर्ष से मूर्च्छित हो अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ ५८ ॥

आलिङ्गय भरतः शीघ्रं मारुतिं प्रियवादिनम् ।
आनन्दजैरश्रुजलैः सिषेच भरतः कपिम् ॥५९॥
देवो वा मानुषो वा त्वमनुक्रोशादिहागतः ।
प्रियाख्यानस्य ते सौम्य ! ददामि ब्रुवतः प्रियम् ॥६०॥
गवां शतसहस्रं च ग्रामाणां च शतं वरम् ।
सर्वाभरण-सम्पन्ना मुग्धाः कन्यास्तु षोडश ॥६१॥
एवमुक्त्वा पुनः प्राह भरतो मारुतात्मजम् ।
बहूनीमानि वर्षाणि गतस्य सुमहद्वनम् ॥६२॥
शृणोम्यहं प्रीतिकरं मम नाथस्य कीर्तनम् ।
कल्याणी बत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति मे ॥६३॥
एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि ।
राघवस्य हरीणां च कथमासीत् समागमः ॥६४॥
तत्त्वमाख्याहि भद्रं ते विश्वसेयं वचस्तव ।
एवमुक्तोऽथ हनुमान् भरतेन महात्मना ॥६५॥

---

जब उन्हें चेत हुआ तो शीघ्र ही प्रिय भाषण करने वाले हनुमान् जी को हृदय से लगा लिया। और आनन्द के कारण उमड़े अश्रु-जल से हनुमान् जी को सींचने लगे ॥ ५९ ॥ पुनः बोले–भाई ! तुम कोई देवता हो या मनुष्य ही हो जो मुझ पर दया करके यहाँ आये हो ? इस प्रिय समाचार के सुनाने के बदले ॥ ६० ॥ मैं तुम्हें सौ गाय, सौ ग्राम और सर्वाभरण विभूषित परम सुन्दरी सोलह कन्यायें देता हूँ ॥ ६१ ॥

ऐसा कहकर भरत जी ने हनुमान् जी से फिर कहा––भयंकर वन में जाने के बाद बहुत वर्ष बीत जाने पर मैं अपने प्रभु राम का यह प्रिय समाचार आज सुन रहा हूँ। आज मुझे यह कल्याणमयी लौकिक कहावत बहुत ठीक मालूम पड़ती है कि यदि मनुष्य जीवित रहे, तो उसे सौ वर्ष के बाद भी कभी-न-कभी आनन्द की प्राप्ति हो जाती है। तुम्हारा कल्याण हो, तुम सच-सच बताओ कि श्रीरामचन्द्र जी का वानरों के साथ समागम किस प्रकार हुआ। जिससे मैं तुम्हारे वचनों पर विश्वास करूँ।

आचचक्षेऽथ रामस्य चरितं कृत्स्नशः क्रमात् ।
श्रुत्वा तु परमानन्दं भरतो मारुतात्मजात् ॥६६॥
आज्ञापयच्छत्रुहणं मुदा युक्तं मुदान्वितः ।
दैवतानि च यावन्ति नगरे रघुनन्दन ! ॥६७॥
नानोपहारबलिभिः पूजयन्तु महाधियः ।
सूता वैतालिकाश्चैव वन्दिनः स्तुति-पाठकाः ॥६८॥
वारमुख्याश्च शतशो निर्यान्त्वद्यैव सङ्घशः ।
राजदारास्तथाऽमात्याः सेना हस्त्यश्वपत्तयः ॥६९॥
ब्राह्मणाश्च तथा पौरा राजानो ये समागताः ।
निर्यान्तु राघवस्याऽद्य द्रष्टुं शशिनिभाननम् ॥७०॥
भरतस्य वचः श्रुत्वा शत्रुघ्न-परिचोदिताः ।
अलञ्चक्रुश्च नगरीं मुक्तारत्नमयोज्ज्वलैः ॥७१॥
तोरणैश्च पताकाभिर्विचित्राभिरनेकधा ।
अलङ्कुर्वन्ति वेश्मानि नानाबलिविचक्षणाः ॥७२॥

---

महात्मा भरत के द्वारा इस प्रकार कहने पर हनुमान् जी ने श्रीराम का सारा चरित्र सुना दिया। जिसे सुनकर भरत जी अत्यन्त आनन्दित हुए ॥ ६२-६६ ॥ उन्होंने प्रसन्न होकर आनन्दमग्न शत्रुघ्न जी को आज्ञा दी कि हे रघुनन्दन ! नगर में जितने भी देवता हैं, बुद्धिमान् पण्डित जन उन सभी देवताओं को नाना प्रकार से भेंट और बलि देकर उनका पूजन करें। सूत, वैतालिक, वन्दी एवं स्तुतिपाठक गण तथा मुख्य-मुख्य वाराङ्गनाएँ आज ही सैकड़ों की संख्या में टोली बनाकर नगर के बाहर निकलें। इसके अतिरिक्त रानियाँ, अमात्यगण, हाथी, घोड़े एवं पैदल सेना, ब्राह्मण लोग, पुरवासी और यहाँ आये हुए समस्त राजा-गण भी चन्द्रमुख श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन करने के लिए चलें ॥६७-७०॥

भरत की बात सुनकर शत्रुघ्न की प्रेरणा से अनेक रचनाओं में कुशल चित्रकारों ने अनेक प्रकार के उज्ज्वल मोतियों तथा नाना प्रकार के रत्नों, वन्दनवारों एव चित्र-विचित्र पताकाओं से अयोध्यापुरी को

निर्यान्ति वृन्दशः सर्वे रामदर्शनलालसाः ।
हयानां शतसाहस्रं गजानामयुतं तथा ॥७३॥
रथानां दशसाहस्रं स्वर्णसूत्रविभूषितम् ।
पारमेष्ठीन्युपादाय द्रव्याण्युच्चावचानि च ॥७४॥
ततस्तु शिबिकारूढा निर्ययू राजयोषितः ।
भरतः पादुके न्यस्य शिरस्येव कृताञ्जलिः ॥७५॥
शत्रुघ्नसहितो रामं पादचारेण निर्ययौ ।
तदैव दृश्यते दूराद् विमानं चन्द्रसन्निभम् ॥७६॥
पुष्पकं सूर्यसङ्काशं मनसा ब्रह्मनिर्मितम् ।
एतस्मिन् भ्रातरौ वीरौ वैदेह्या राम-लक्ष्मणौ ॥७७॥
सुग्रीवश्च कपिश्रेष्ठो मन्त्रिभिश्च विभीषणः ।
दृश्यते पश्यत जना इत्याह पवनात्मजः ॥७८॥
ततो हर्षसमुद्भूतो निःस्वनो दिवमस्पृशत् ।
स्त्री-बाल-युव-वृद्धानां रामोऽयमिति कीर्तनात् ॥७९॥

---

सजा दिया ॥ ७१–७२ ॥ सभी लोग श्रीराम के दर्शन की लालसा से टोली बना कर नगर के बाहर आने लगे। और उनके भेंट के लिए एक लाख घोड़े, दस हजार हाथी, सुनहरी बागडोर से विभूषित दस हजार रथ आदि ऐश्वर्य सूचक छोटी-बड़ी वस्तुएँ लिये हुए थे ॥ ७३–७४ ॥ उनके पिछे रानियाँ पालकी में सवार होकर चल रही थीं। तदनन्तर भरत जी शत्रुघ्न के साथ राम की पादुका अपने शिर पर रख कर हाथ जोड़े हुए पैदल चले। उसी समय दूर ही से ब्रह्माजी का मनोनिर्मित सूर्य के समान तेजस्वी और चन्द्रमा के समान कान्तिमान् पुष्पक विमान आता हुआ दिखाई पड़ा।

तब पवनात्मज हनूमान् ने कहा—अरे देखो, इस विमान से सीता समेत राम-लक्ष्मण, कपिश्रेष्ठ सुग्रीव एवं मन्त्रियों सहित विभीषण आते हुए दिखाई पड़ रहे हैं ॥ ७५–७८ ॥ फिर स्त्री, बालक, युवा और वृद्धों के हर्ष के कारण 'राम आ गये, राम आ गये' इस प्रकार कहने से इतना

रथ-कुञ्जर-वाजिस्था अवतीर्य महीं गताः ।
ददृशुस्ते विमानस्थं जनाः सोममिवाम्बरे ॥८०॥
प्राञ्जलिर्भरतो भूत्वा प्रहृष्टो राघवोन्मुखः ।
ततो विमानाग्रगतं भरतो राघवं मुदा ॥८१॥
ववन्दे प्रणतो रामं मेरुस्थमिव भास्करम् ।
ततो रामाभ्यनुज्ञातं विमानमपतद् भुवि ॥८२॥
आरोपितो विमानं तद् भरतः सानुजस्तदा ।
राममासाद्य मुदितः पुनरेवाभ्यवादयत् ॥८३॥
समुत्थाप्य चिराद् दृष्टं भरतं रघुनन्दनः ।
भ्रातरं स्वाङ्कमारोप्य मुदा तं परिषस्वजे ॥८४॥
ततो लक्ष्मणमासाद्य वैदेहीं नाम कीर्तयन् ।
अभ्यवादयत प्रीतो भरतः प्रेमविह्वलः ॥८५॥

---

कोलाहलपूर्ण शब्द हुआ कि उससे आसमान गूँज उठा ॥ ७९ ॥ रथ, हाथी एवं घोड़ों पर सवार हुए लोग उतरकर पृथ्वी में खड़े हो गये । उस समय सभी लोग पुष्पक विमान से आते हुए श्रीरामचन्द्र जी को आकाश में चन्द्रमा के समान देखने लगे ॥ ८० ॥

पुनः प्रसन्न चित्त भरत जी ने विमान पर बैठे हुए श्रीरामचन्द्र जी के सामने खड़े होकर सुमेरु पर्वत पर प्रकट हुए सूर्य के समान अत्यन्त विनीत हो हर्षपूर्वक प्रणाम किया । तत्पश्चाद् राम की आज्ञा से विमान पृथ्वी पर उतरा ॥ ८१-८२ ॥ पुनः भगवान् रामने भाई शत्रुघ्न सहित भरतजी को भी विमान पर चढ़ा लिया । भरत ने राम को प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्न हो उन्हें पुनः प्रणाम किया ॥ ८३ ॥ श्रीराम ने बहुत दिनों पर देखे हुए भाई भरत को तुरन्त ही उठा कर प्रसन्नता से अपनी गोद में लेकर आलिङ्गन किया ॥ ८४ ॥ तथा प्रेम में विह्वल हुए भरत जी ने लक्ष्मण जी से मिल कर श्री सीता जी को अपना नाम उच्चारण करते हुए प्रीतिपूर्वक प्रणाम किया ॥ ८५ ॥

सुग्रीवं जाम्बवन्तं च युवराजं तथाऽङ्गदम् ।
मैन्द-द्विविद-नीलांश्च ऋषभं चैव सस्वजे ॥८६॥
सुषेणं च नलं चैव गवाक्षं गन्धमादनम् ।
शरभं पनसं चैव भरतः परिषस्वजे ॥८७॥
सर्वे ते मानुषं रूपं कृत्वा भरतमादृताः ।
पप्रच्छुः कुशलं सौम्याः प्रहृष्टाश्च प्लवङ्गमाः ॥८८॥
ततः सुग्रीवमालिङ्ग्य भरतः प्राह भक्तितः ।
त्वत्सहायेन रामस्य जयोऽभूद् रावणो हतः ॥८९॥
त्वमस्माकं चतुर्णां तु भ्राता सुग्रीव पञ्चमः ।
शत्रुघ्नश्च तदा राममभिवाद्य सलक्ष्मणम् ॥९०॥
सीतायाश्चरणौ पश्चाद् ववन्दे विनयान्वितः ।
रामो मातरमासाद्य विवर्णां शोक-विह्वलाम् ॥९१॥
जग्राह प्रणतः पादौ मनो मातुः प्रसादयन् ।
कैकेयीं च सुमित्रां च ननामेतरमातरौ ॥९२॥

---

तदनन्तर भरत जी ने सुग्रीव, जाम्बवान् , युवराज अङ्गद, मैन्द, द्विविद, नील, ऋषभ, सुषेण, नल, गवाक्ष, गन्धमादन, शरभ और पनस को भी हृदय से लगाया। इस प्रकार भरत जी से सत्कृत हुए उन सौम्य वानरों ने भी मनुष्य रूप धारण कर उनका कुशल-मङ्गल पूछा ॥८६-८८॥

सुग्रीव का आलिङ्गन कर भरत जी ने अत्यन्त प्रेम पूर्वक कहा—सुग्रीव ! तुम्हारी सहायता से ही राम की विजय हुई और रावण मारा गया ॥८९॥ अतः हम चारों के तुम पाँचवें भाई हो। फिर शत्रुघ्न ने लक्ष्मण सहित श्रीराम को प्रणाम कर अत्यन्त विनम्रता से सीता जी के चरणों में वन्दना की। श्रीरामचन्द्र जी ने शोक के कारण विह्वल और कृश हुई अपनी माता कौशल्या के पास जाकर विनीत भाव से चरण छुए। और उनके चित्त को प्रसन्न किया। इसी प्रकार उन्होंने विमाता कैकेयी को तथा सुमित्रा को भी प्रणाम किया ॥ ९०-९२ ॥

भरतः पादुके ते तु राघवस्य सुपूजिते ।
योजयामास रामस्य पादयोर्भक्तिसंयुतः ॥६३॥
राज्यमेतन् न्यासभूतं मया निर्यातितं तव ।
अद्य मे सफलं जन्म फलितो मे मनोरथः ॥६४॥
यत् पश्यामि समायातमयोध्यां त्वामहं प्रभो ! ।
कोष्ठागारं बलं कोशं कृतं दशगुणं मया ॥६५॥
त्वत्तेजसा जगन्नाथ ! पालयस्व पुरं स्वकम् ।
इति ब्रुवाणं भरतं दृष्ट्वा सर्वे कपीश्वराः ॥६६॥
मुमुचुर्नेत्रजं तोयं प्रशशंसुर्मुदान्विताः ।
ततो रामः प्रहृष्टात्मा भरतं स्वाङ्कगं मुदा ॥६७॥
ययौ तेन विमानेन भरतस्याश्रमं तदा ।
अवरुह्य तदा रामो विमानाग्र्यान् महीतलम् ॥६८॥
अब्रवीत् पुष्पकं देवो गच्छ वैश्रवणं वह ।
अनुगच्छाऽनुजानामि कुबेरं धनपालकम् ॥६९॥

---

तदनन्तर भरत जी ने बहुत दिनों से पूजित पादुका को भक्ति के साथ श्रीराम के चरणों में पहनाया ॥ ६३॥ और कहा—हे प्रभो ! धरोहर रूप से मुझे सौंपे गये आप के इस राज्य को अब मैं पुनः आप को सौंपता हूँ। आज मेरा जन्म सफल हो गया और आज मेरा मनोरथ भी सफल हो गया ॥ ६४ ॥ हे प्रभो ! जो आज मैं अयोध्या में आये हुए आप का दर्शन कर रहा हूँ। मैंने आप की कृपा से अन्न-भण्डार, सेना और कोश आदि राज्याङ्गों को पहले से दश गुना बढ़ा दिया है। हे जगन्नाथ ! अब आप अपने नगर का स्वयं पालन कीजिए। भरत जी को इस प्रकार कहते देख मुख्य-मुख्य वानर हर्ष से आँसू बहा कर उनकी प्रशंसा करने लगे। फिर रामचन्द्र जी प्रसन्नतापूर्वक भरत जी को गोद में लिये उसी विमान से भरत जी के आश्रम गये। वहाँ विमान-श्रेष्ठ उस पुष्पक से नीचे पृथ्वी पर उतर कर श्रीराम ने उससे कहा—अब तुम धनाधिपति कुबेर का अनुसरण करते हुए उन्हीं को वहन करो ॥ ६५–६९ ॥

रामो वसिष्ठस्य गुरोः पदाम्बुजं
नत्वा यथा देवगुरोः शतक्रतुः ।
दत्त्वा महार्हासनमुत्तमं गुरो-
रुपाविवेशाथ गुरोः समीपतः ॥१००॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे
चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥



## पञ्चदशः सर्गः

( श्रीरामका राज्याभिषेक )

श्रीमहादेव उवाच

ततस्तु कैकयीपुत्रो भरतो भक्तिसंयुतः ।
शिरस्यञ्जलिमाधाय ज्येष्ठं भ्रातरमब्रवीत् ॥ १ ॥
माता मे सत्कृता राम दत्त्वं राज्यं त्वया मम ।
ददामि तत्ते च पुनर्यथा त्वमददा मम ॥ २ ॥
इत्युक्त्वा पादयोर्भक्त्या साष्टाङ्गं प्रणिपत्य च ।
बहुधा प्रार्थयामास कैकेय्या गुरुणा सह ॥ ३ ॥

---

फिर जैसे इन्द्र देवगुरु बृहस्पति की वन्दना करते हैं, उसी प्रकार श्रीरामचन्द्र जी ने भी अपने कुलगुरु वसिष्ठ के चरणों की वन्दना की। और उन्हें बहुमूल्य आसन देकर स्वयं भी उनके पास बैठ गये ॥ १०० ॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या सहित अध्यात्म-रामायण के उमा-महेश्वर-संवाद में युद्धकाण्ड का चौदहवाँ सर्ग समाप्त ॥१४॥



तदनन्तर कैकेयीपुत्र भरत शिर में अञ्जलि बाँधे हुए बड़ी भक्ति से अपने जेठे भाई राम से बोले—॥ १ ॥ हे राम! आपने मुझे राज्य देकर मेरी माता का सत्कार किया। जैसे आप ने मुझे राज्य दिया था, अब फिर वही राज्य मैं आपको वैसे ही सौंपता हूँ ॥ २ ॥ ऐसा कह

तथेति प्रतिजग्राह भरताद् राज्यमीश्वरः ।
मायामाश्रित्य सकलां नरचेष्टामुपागतः ॥ ४ ॥

स्वाराज्यानुभवो यस्य सुखज्ञानैकरूपिणः ।
निरस्तातिशयानन्दरूपिणः परमात्मनः ॥ ५ ॥

मानुषेण तु राज्येन किं तस्य जगदीशितुः ।
यस्य भ्रूभङ्गमात्रेण त्रिलोकी नश्यति क्षणात् ॥ ६ ॥

यस्याऽनुग्रहमात्रेण भवन्त्याखण्डलश्रियः ।
लीलासृष्टमहासृष्टेः कियदेतद् रमापतेः ॥ ७ ॥

तथापि भजतां नित्यं कामपूर-विधित्सया ।
लीलामानुषदेहेन सर्वमप्यनुवर्तते ॥ ८ ॥

ततः शत्रुघ्नवचनान् निपुणः श्मश्रुकृन्तकः ।
सम्भाराश्चाऽभिषेकार्थमानीता राघवस्य हि ॥ ९ ॥

---

कर उन्होंने श्रीराम के चरणों में साष्टाङ्ग प्रणाम किया। और उस राज्य को स्वीकार करने के लिए माता कैकेयी और गुरु वसिष्ठ के साथ राम की प्रार्थना करने लगे ॥ ३ ॥

तब अपनी माया का आश्रय कर मनुष्य-लीला में प्रवृत्त हुए श्रीरामचन्द्रजीने 'तथास्तु' कहकर उस राज्यको भरतजी से ले लिया ॥४॥ जिन्हें निरन्तर स्वाराज्य ( स्वर्गीय-राज्य ) का अनुभव होता रहता है एवं जो चिदानन्द स्वरूप हैं, जिनका अतिशय आनन्द स्वरूप कभी भी अस्त नहीं होता, उस परमात्मा को इस तुच्छ मानवी राज्य से क्या लेना-देना है। जिनके भ्रूभङ्ग मात्र से सारी त्रिलोकी क्षणभर में नष्ट हो जाती है ॥५-६॥ और जिनके अनुग्रह मात्र से इन्द्र की राज्य-लक्ष्मी भी प्राप्त हो जाती है। जिन्होंने लीलामात्र से इस महान् सृष्टि की रचना की है, उन लक्ष्मीपति के लिए यह राज्य कितना है? ॥ ७ ॥ फिर भी अपने भजन करने वाले भक्तों की कामना को पूर्ण करने की इच्छा से इस मायामानव देह से वे सब कुछ अभिनय करते रहते हैं ॥ ८ ॥

पश्चात् शत्रुघ्न की आज्ञा से निपुण नाई बुलाया गया। और राम के

पूर्वं तु भरते स्नाते लक्ष्मणे च महात्मनि।
सुग्रीवे वानरेन्द्रे च राक्षसेन्द्रे विभीषणे ॥१०॥
विशोधितजटः स्नातश्चित्रमाल्यानुलेपनः।
महार्हवसनोपेतस्तस्थौ तत्र श्रिया ज्वलन् ॥११॥
प्रतिकर्म च रामस्य लक्ष्मणश्च महामतिः।
कारयामास भरतः सीताया राजयोषितः ॥१२॥
महार्हवस्त्राभरणैरलङ्कृत्य सुमध्यमाम्।
ततो वानरपत्नीनां सर्वासामेव शोभना ॥१३॥
अकारयत कौसल्या प्रहृष्टा पुत्रवत्सला।
ततः स्यन्दनमादाय शत्रुघ्नवचनात् सुधीः ॥१४॥
सुमन्त्रः सूर्यसङ्काशं योजयित्वाऽग्रतः स्थितः।
आरुरोह रथं रामः सत्यधर्मपरायणः ॥१५॥
सुग्रीवो युवराजश्च हनूमांश्च विभीषणः।
स्नात्वा दिव्याम्बरधरा दिव्याभरणभूषिताः ॥१६॥

---

अभिषेक के लिए सारी सामग्री भी एकत्रित की गयी ॥ ९ ॥ सर्व-प्रथम भरत ने स्नान किया। तदनन्तर महात्मा लक्ष्मण ने फिर वानरराज सुग्रीव ने तदनन्तर विभीषण ने स्नान किया ॥ १० ॥ जटाजूट कट जाने के बाद श्रीराम ने स्नान किया। और रङ्ग-बिरङ्गी मालाओं, विविध अङ्गरागों तथा बहुमूल्य वस्त्रों से सुसज्जित हो अपनी कान्ति से देदीप्यमान हो, वे विराजमान हो गये ॥ ११ ॥ फिर महामति लक्ष्मण एवं भरत ने राम को सभी प्रकार से अलंकृत करवाया। इधर रानियों ने भी सुन्दरी सीता को बहुमूल्य वस्त्रों एवं आभूषणों से शृङ्गार कर सुसज्जित किया। तदनन्तर कल्याणमयी पुत्र-वत्सला कौशल्या ने भी प्रसन्नता से वानर-पत्नियों का शृङ्गार कराया। इसी समय शत्रुघ्न की आज्ञा से बुद्धिमान् सुमन्त्र ने भी सूर्य के समान देदीप्यमान रथ जोत कर सामने ला कर खड़ा कर दिया। तदनन्तर सत्यधर्म परायण राम उस रथ पर सवार हुए ॥ १२-१५ ॥

सुग्रीव, युवराज अङ्गद, हनुमान् और विभीषण भी स्नान कर दिव्य

रामममन्वीयुरग्रे च रथा-ऽश्व-गजवाहनाः ।
सुग्रीवपत्न्यः सीता च ययुर्यानैः पुरं महत् ॥१७॥
वज्रपाणिर्यथा देवैर्हरिताश्वरथे स्थितः ।
प्रययौ रथमास्थाय तथा रामो महत्पुरम् ॥१८॥
सारथ्यं भरतश्चक्रे रत्नदण्डं महाद्युतिः ।
श्वेतातपत्रं शत्रुघ्नो लक्ष्मणो व्यजनं दधे ॥१९॥
चामरं च समीपस्थो न्यवीजयदरिन्दमः ।
शशिप्रकाशं त्वपरं जग्राहाऽसुरनायकः ॥२०॥
दिविजैः सिद्धसङ्घैश्च ऋषिभिर्दिव्यदर्शनैः ।
स्तूयमानस्य रामस्य शुश्रुवे मधुरध्वनिः ॥२१॥
मानुषं रूपमास्थाय वानरा गजवाहनाः ।
भेरी-शङ्ख-निनादैश्च मृदङ्ग-पणवानकैः ॥२२॥
प्रययौ राघवश्रेष्ठस्तां पुरीं समलङ्कृताम् ।
ददृशुस्ते समायान्तं राघवं पुरवासिनः ॥२३॥

---

वस्त्र और दिव्य आभूषणों से सुसज्जित हो हाथी, घोड़े एवं रथ पर सवार हो राम के आगे-पीछे चले। सुग्रीव की पत्नियाँ एवं सीताजी भी सुन्दर पालकियों में बैठ कर विशाल अयोध्या नगर में चलीं॥ १६-१७॥

जिस प्रकार वज्रपाणि देवराज इन्द्र देवताओं के साथ हरित वर्ण के घोड़ों से जुटे हुए रथ में चलते हैं, उसी प्रकार भगवान् राम भी रथ में बैठ कर अयोध्यापुरी को चले॥ १८॥ उस समय भरत ने सारथी का काम लेकर रथ चलाया। शत्रुघ्न ने रत्नजटित दण्ड वाले श्वेत छत्र को लगाया। लक्ष्मण जी पङ्खा डुलाने लगे॥ १९॥ शत्रुदमन सुग्रीव ने एक ओर से तथा दूसरी ओर से राक्षसराज विभीषण ने चन्द्रमा के समान कान्तियुक्त चँवर डुलाया॥२०॥ उस समय देवताओं, सिद्धसंघों, ऋषियों तथा मुनियों के द्वारा किये जा रहे राम की स्तुति के शब्दों की मधुर-ध्वनि सुनाई देने लगी॥ २१॥ उस समय बानरगण मनुष्य का रूप धारण कर हाथियों पर सवार होकर चले। इस प्रकार रघुश्रेष्ठ भगवान् राम शहनाई, शङ्ख, मृदङ्ग, तासे एवं नगाड़े आदि बाजों के घोष के

दूर्वादलश्यामतनुं महार्ह-
किरीटरत्नाभरणाञ्चिताङ्गम् ।
आरक्त-कञ्जायत-लोचनान्तं
दृष्ट्वा ययुर्मोदमतीव पुण्याः ॥२४॥
विचित्र-रत्नाञ्चित-सूत्रनद्ध-
पीताम्बरं पीनभुजान्तरालम् ।
अनर्घ्यमुक्ताफलदिव्यहारै-
र्विरोचमानं रघुनन्दनं प्रजाः ॥२५॥
सुग्रीवमुख्यैर्हरिभिः प्रशान्तै-
र्निषेव्यमाणं रवितुल्यभासम् ।
कस्तूरिकाचन्दनलिप्तगात्रं
निवीत-कल्पद्रुम-पुष्पमालम् ॥२६॥
श्रुत्वा स्त्रियो राममुपागतं मुदा
प्रहर्षवेगोत्कलिताननश्रियः ।
अपास्य सर्वं गृहकार्यमाहितं
हर्म्याणि चैवारुरुहुः स्वलङ्कृताः ॥२७॥

---

साथ भली प्रकार से सजायी हुई अयोध्यापुरी में चले। नगर में प्रवेश करते समय रामचन्द्रजी को आते हुए पुरवासी गण भी देखने लगे॥ २२-२३ ॥

वे पुण्यशील पुरजन एवं प्रजागण दूर्वादल के समान श्याम शरीर, बहुमूल्य मुकुट, अरुणवर्ण एवं कमल के समान विशाल नेत्रों वाले, विचित्र रत्नों से युक्त, सुनहले वर्ण के तार की कारीगरी से युक्त कामदार पीताम्बर धारण किये, विशाल वक्षस्थल वाले, बहुमूल्य मोतियों की माला से सुशोभित सुग्रीवादि शान्त स्वभाव के बानरों से सेवित, सूर्य के समान तेजस्वी, कस्तूरी एवं चन्दन का लेप धारण किये हुए, कल्प-वृक्ष के पुष्पों की माला पहने हुए श्रीरघुनाथजी को देख कर परम प्रसन्न हुए॥ २४-२६ ॥

राम को अयोध्यापुरी में आते हुए सुनकर स्त्रियों के मुख की कान्ति

दृष्ट्वा हरिं सर्वदृगुत्सवाकृतिं
पुष्पैः किरन्त्यः स्मितशोभिताननाः ।
दृग्भिः पुनर्नेत्रमनोरसायनं
स्वानन्दमूर्तिं मनसाभिरेभिरे ॥२८॥

रामः स्मितस्निग्धदृशा प्रजास्तथा
पश्यन् प्रजानाथ इवाऽपरः प्रभुः ।
शनैर्जगामाथ पितुः स्वलङ्कृतं
गृहं महेन्द्रालयसन्निभं हरिः ॥२९॥

प्रविश्य वेश्मान्तर-संस्थितो मुदा
रामो ववन्दे चरणौ स्वमातुः ।
क्रमेण सर्वाः पितृयोषितः प्रभु-
र्ननाम भक्त्या रघुवंशकेतुः ॥३०॥

---

हर्षातिरेक से खिल उठीं। और वे अपने घर के सभी कामों को छोड़कर भली प्रकार से सजधज कर घर की अँटारियों पर चढ़ गयीं। फिर मन्द मुसकान से मनोहर मुखवाली वे स्त्रियाँ नयनाभिराम श्रीराम को देख कर फूलों की वर्षा करने लगीं। तथा नेत्र और मन को मनोहर लगने वाली उस आनन्दमयी मूर्ति को नेत्रों द्वारा हृदय में ले जाकर मन से आलिङ्गन करने लगीं ॥ २७-२८ ॥

इस प्रकार दूसरे प्रजापति के समान प्रभु श्रीराम मन्द-मन्द मुसकराते हुए और अपनी करुणामयी आर्द्र दृष्टि से अपनी प्रजाओं को देखते हुए सभी प्रकार से सुसज्जित इन्द्र-भवन के समान मनोहर अपने पिता के महल में गये ॥ २९ ॥ उस राजमहल के भीतर जाकर श्रीरामचन्द्र जी ने अति प्रसन्न चित्त से अपनी माता कौशल्या के चरणों की वन्दना की। फिर उन रघुवंशशिरोमणि प्रभु श्रीराम ने सभी विमाताओं को भी भक्तिपूर्वक प्रणाम किया ॥ ३० ॥

ततो भरतमाहेदं रामः सत्यपराक्रमः ।
सर्वसम्पत्समायुक्तं मम मन्दिरमुत्तमम् ॥३१॥
मित्राय वानरेन्द्राय सुग्रीवाय प्रदीयताम् ।
सर्वेभ्यः सुखवासार्थं मन्दिराणि प्रकल्पय ॥३२॥
रामेणैवं समाविष्टो भरतश्च तथाऽकरोत् ।
उवाच च महातेजाः सुग्रीवं राघवाऽनुजः ॥३३॥
राघवस्याऽभिषेकार्थं चतुःसिन्धुजलं शुभम् ।
आनेतुं प्रेषयस्वाशु दूतांस्त्वरित-विक्रमान् ॥३४॥
प्रेषयामास सुग्रीवो जाम्बवन्तं मरुत्सुतम् ।
अङ्गदं च सुषेणं च ते गत्वा वायुवेगतः ॥३५॥
जलपूर्णान् शातकुम्भ-कलशांश्च समानयन् ।
आनीतं तीर्थसलिलं शत्रुघ्नो मन्त्रिभिः सह ॥३६॥
राघवस्याऽभिषेकार्थं वसिष्ठाय न्यवेदयत् ।
ततस्तु प्रयतो वृद्धो वसिष्ठो ब्राह्मणैः सह ॥३७॥

---

तब सत्यपराक्रम भगवान् राम ने भरत से कहा--मेरा सर्व-सम्पत्ति युक्त श्रेष्ठ महल मेरे मित्र वानर-राज सुग्रीव को दीजिए। और सभी को सुखपूर्वक रहने योग्य उत्तम महल का प्रबन्ध कीजिए ॥ ३१-३२ ॥ राम के द्वारा इस प्रकार की आज्ञा पाकर भरत ने वैसा ही किया।

तदनन्तर महातेजस्वी भरतजी ने सुग्रीव से कहा-॥ ३३ ॥ श्रीराम-चन्द्रजी का अभिषेक करने के लिए चारों समुद्रों का मङ्गलमय जल लाने के लिए आप शीघ्र ही शीघ्रगामी दूतों को भेजिए ॥ ३४ ॥ तब सुग्रीव ने जाम्बवान्, हनुमान्, अङ्गद और सुषेण को भेजा। वे तुरन्त ही वायु-वेग से जाकर सुवर्ण-कलशों में जल भरकर ले आये। उनके द्वारा लाये गये तीर्थ-जलको मन्त्रियों सहित शत्रुघ्न ने राम के अभिषेक के लिए वसिष्ठजी को निवेदन कर दिया। तदनन्तर ब्राह्मणों के सहित

रामं रत्नमये पीठे ससीतं संन्यवेशयत् ।
वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिर्गौतमस्तथा ॥३८॥
वाल्मीकिश्च तथा चक्रुः सर्वे रामाभिषेचनम् ।
कुशाग्र-तुलसीयुक्त-पुण्यगन्धजलैर्मुदा ॥३९॥
अभ्यषिञ्चन् रघुश्रेष्ठं वासवं वसवो यथा ।
ऋत्विग्भिर्ब्राह्मणैः श्रेष्ठैः कन्याभिः सह मन्त्रिभिः ॥४०॥
सर्वौषधीरसैश्चैव दैवतैर्नभसि स्थितैः ।
चतुर्भिर्लोकपालैश्च स्तुवद्भिः सगणैस्तथा ॥४१॥
छत्रं च तस्य जग्राह शत्रुघ्नः पाण्डुरं शुभम् ।
सुग्रीव-राक्षसेन्द्रौ तौ दधतुः श्वेतचामरे ॥४२॥
मालां च काञ्चनीं वायुर्ददौ वासवचोदितः ।
सर्वरत्नसमायुक्तं मणिकाञ्चनभूषितम् ॥४३॥
ददौ हारं नरेन्द्राय स्वयं शक्रस्तु भक्तितः ।
प्रजगुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाऽप्सरोगणाः ॥४४॥

---

जितेन्द्रिय वसिष्ठजी ने सीता सहित श्रीरामचन्द्र जी को रत्न-सिंहासन पर बैठाया। और वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, गौतम और वाल्मीकि प्रभृति समस्त महर्षियों ने अत्यन्त प्रसन्नता से कुश, तुलसी सहित पवित्र गन्धयुक्त जल से श्रीरामचन्द्रजी का अभिषेक किया ॥ ३५-३९ ॥

पुनः ऋत्विजों, श्रेष्ठ ब्राह्मणों, कन्याओं एवं मन्त्रियों के सहित उन महर्षियों ने आकाश में स्थित श्रीराम की स्तुति करने वाले देवताओं एवं गण-सहित लोकपालों के साथ सर्वौषधि के रसों से श्रीराम का अभिषेक इस प्रकार सम्पन्न किया, जैसे वसु लोग इन्द्र का अभिषेक करते हैं ।४०-४१ ॥ शत्रुघ्न ने उनका श्वेत-छत्र धारण किया। और सुग्रीव तथा विभीषण ने श्वेत चमर धारण किया ॥ ४२ ॥ इन्द्र के कहने पर वायु ने सुवर्णमयी माला दी, स्वयं इन्द्र ने भी बड़ी भक्ति से महाराज राम को सम्पूर्ण रत्नों एवं मणियों तथा सुवर्ण से विभूषित हार दिया। तदनन्तर देवता, गन्धर्व गाने लगे तथा अप्सराएँ नाचने लगीं ॥ ४३-४४ ॥

देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात खात् ।
नवदूर्वादलश्यामं पद्मपत्रायतेक्षणम् ॥४५॥
रविकोटि-प्रभायुक्त-किरीटेन विराजितम् ।
कोटिकन्दर्पलावण्यं पीताम्बरसमावृतम् ॥४६॥
दिव्याभरणसम्पन्नं दिव्यचन्दनलेपनम् ।
अयुतादित्यसङ्काशं द्विभुजं रघुनन्दनम् ॥४७॥
वामभागे समासीनां सीतां काञ्चनसन्निभाम् ।
सर्वाभरणसम्पन्नां वामाङ्के समुपस्थिताम् ॥४८॥
रक्तोत्पलकराम्भोजां वामेनालिङ्ग्य संस्थिताम् ।
सर्वातिशयशोभाढ्यं दृष्ट्वा भक्तिसमन्वितः ॥४९॥
उमया सहितो देवः शङ्करो रघुनन्दनम् ।
सर्वदेवगणैर्युक्तः स्तोतुं समुपचक्रमे ॥५०॥

श्रीमहादेव उवाच

नमोऽस्तु रामाय सशक्तिकाय
नीलोत्पल-श्यामल-कोमलाय ।
किरीट-हाराङ्गद-भूषणाय
सिंहासनस्थाय महाप्रभाय ॥५१॥

---

देवताओं ने आकाश में दुन्दुभि बजायी और पुष्पों की वृष्टि करने लगे । फिर नवीन दूर्वादल के समान श्याम वर्ण, कमल के समान विशाल नयन, करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान मुकुट से सुशोभित, करोड़ों कन्दर्प के समान कमनीय, पीताम्बर परिवेष्टित, दिव्याभरण विभूषित, दिव्य चन्दन-चर्चित, सहस्रों सूर्य के समान तेजस्वी, सर्वाधिकशोभा-सम्पन्न द्विभुज रघुनाथ जी के बायीं ओर कर-कमल में रक्त कमल धारण किये बैठी हुई, सर्वाभरण-भूषिता, सुवर्णवर्णा और वामाङ्कगा सीता को बायीं भुजा से आलिङ्गन किये हुए देखकर पार्वती सहित भगवान् शंकर भक्तिभाव से भरे हुए देवताओं के साथ इस प्रकार की स्तुति करने लगे—॥ ४५–५० ॥

श्रीमहादेव जी ने कहा—नीले कमल के समान श्याम और कमल शरीर वाले, किरीट, हार और अङ्गदादि भूषणों से विभूषित, अपनी

त्वमादि-मध्यान्त-विहीन एकः
सृजस्यवस्यत्सि च लोकजातम् ।
स्वमायया तेन न लिप्यसे त्वं
यत्स्वे सुखेऽजस्त्ररतोऽनवद्यः ॥५२॥
लीलां विधत्से गुणसंवृतस्त्वं
प्रपन्न-भक्तानुविधान-हेतोः ।
नानावतारैः सुरमानुषाद्यैः
प्रतीयसे ज्ञानिभिरेव नित्यम् ॥५३॥
स्वांशेन लोकं सकलं विधाय तं
बिभर्षि च त्वं तदधः फणीश्वरः ।
उपर्यधो भान्वनिलोडुपौषधि-
प्रवर्षरूपोऽवसि नैकधा जगत् ॥५४॥
त्वमिह देहभृतां शिखिरूपः
पचसि भुक्तमशेषमजस्त्रम् ।
पवनपञ्चकरूपसहायो
जगदखण्डमनेन बिभर्षि ॥५५॥

---

शक्ति सीता सहित सिंहासन पर संस्थित, महा तेजस्वी राम को नमस्कार है ॥ ५१ ॥ हे प्रभो ! आप आदि, मध्य और अन्त से रहित हैं, अद्वितीय हैं, आप समस्त लोकों को अपनी माया से उत्पन्न करते, पालते तथा संहार करते हैं। किन्तु आप उससे लिप्त नहीं होते। क्योंकि आप विकाररहित और निरन्तर आनन्द में मग्न रहते हैं ॥ ५२ ॥ आप माया के गुणों से आवृत होकर अपने शरणागत भक्तों के मार्ग-दर्शन के लिए देवता, मनुष्य आदि योनियों में नाना प्रकार का अवतार लेकर विचित्र लीलाएँ किया करते हैं। उस समय ज्ञानी लोग ही आपको जान पाते हैं ॥ ५३ ॥ आप अपने अंश से सम्पूर्ण लोकों की रचना कर शेष रूप होकर उसे नीचे से धारण करते हैं। और ऊपर से सूर्य, वायु, चन्द्र, औषधि एवं वृष्टि रूप धारण कर उसे नाना रूपों से पालन करते हैं ॥ ५४ ॥

हे प्रभो ! आप प्राणियों में जठराग्नि रूप होकर पाँच प्राणों की

चन्द्र-सूर्य-शिखिमध्यगतं यत्
तेज ईश चिदशेषतनूनाम् ।
प्राभवत्तनुभृतामिव धैर्यं
शौर्यमायुरखिलं तव सत्त्वम् ॥५६॥

त्वं विरिञ्चि-शिव-विष्णुविभेदात्
काल-कर्म-शशि-सूर्यविभागात ।
वादिनां पृथगिवेश विभासि
ब्रह्म निश्चितमनन्यदिहैकम् ॥५७॥

मत्स्यादिरूपेण यथा त्वमेकः
श्रुतौ पुराणेषु च लोकसिद्धः ।
तथैव सर्वं सदसद्विभाग-
स्त्वमेव नाऽन्यद् भवतो विभाति ॥५८॥

यद्यत्समुत्पन्नमनन्तसृष्टा-
वुत्पत्स्यते यच्च भवच्च यच्च ।
न दृश्यते स्थावरजङ्गमादौ
त्वया विनाऽतः परतः परस्त्वम् ॥५९॥

---

सहायता से खाये हुए अन्न को पचाकर उसके द्वारा सारे जगत् का पालन करते हैं ॥ ५५ ॥ हे ईश ! चन्द्र, सूर्य एवं अग्नि में तेज स्वरूप एवं प्राणियों में चेतनांश तथा देहधारियों में दिखाई देने वाला धैर्य, शौर्य और आयुर्बल सब आप की ही सत्ता है ॥ ५६ ॥ हे राम ! भिन्न-भिन्न ईश्वरवादियों को आप एक ही ब्रह्म, हिरण्यगर्भ, महादेव, विष्णु तथा काल, कर्म, चन्द्रमा और सूर्य के भेद से पृथक्-पृथक् रूप से भासते हैं ॥ ५७ ॥

हे प्रभो ! जिस प्रकार आप एक होते हुए भी वेदों और पुराणों में मत्स्य आदि नाना अवतारों से प्रसिद्ध हैं, उसी प्रकार इस संसार में जो-जो सत् एवं असत् रूप विभाग हैं, वह आप ही हैं, आप से पृथक् और कुछ भी नहीं है ॥ ५८ ॥ हे प्रभो ! इस अनन्त सृष्टि में जो कुछ उत्पन्न हुआ, जो उत्पन्न होगा और जो कुछ उत्पन्न हो रहा है, उस

तत्त्वं न जानन्ति परात्मनस्ते
जनाः समस्तास्तव माययातः ।
त्वद्भक्तसेवामलमानसानां
विभाति तत्त्वं परमेकमैशम् ॥६०॥
ब्रह्मादयस्ते न विदुः स्वरूपं
चिदात्मतत्त्वं बहिरर्थभावाः ।
ततो बुधस्त्वामिदमेव रूपं
भक्त्या भजन् मुक्तिमुपैत्य दुःखः ॥६१॥
अहं भवन्नाम गृणन् कृतार्थो
वसामि काश्यामनिशं भवान्या ।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं
दिशामि मन्त्रं तव राम नाम ॥६२॥
इमं स्तवं नित्यमनन्यभक्त्या
शृण्वन्ति गायन्ति लिखन्ति ये वै ।

---

स्थावर-जङ्गमादि समस्त प्रपञ्च रूप में आप के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं देता, अतः आप पर से भी पर हैं ॥ ५९ ॥ हे राम ! आप की माया से मोहित होने के कारण सब लोग आपके परमात्म स्वरूप का तत्त्व नहीं जानते। अतः जिनका अन्तःकरण आप के भक्तों की सेवा के प्रभाव से निर्मल हो गया है, उन्हीं को आप का अद्वितीय ईश्वर तत्त्व भासता है ॥ ६० ॥

हे प्रभो ! वाह्य प्रपञ्चों में लगे हुए ब्रह्मादिदेव भी आप के चित्स्वरूप को नहीं जानते। इसलिए बुद्धिमान् पुरुष आप के इस श्याम सुन्दर रूप का भक्तिपूर्वक भजन करते हुए दुःखों से पार होकर मुक्ति को प्राप्त करते हैं ॥ ६१ ॥ हे नाथ ! मैं तो आपका नाम जप कर कृतार्थ हो अहर्निश काशी में निवास करता हूँ। और मरणासन्न पुरुषों को मोक्ष देने के लिए आपके 'राम नाम' रूप तारक मन्त्र का उपदेश करता हूँ ॥ ६२ ॥ हे नाथ ! मेरे द्वारा किये गये इस स्तोत्र को अनन्य

ते सर्वसौख्यं परमं च लब्ध्वा
भवत्पदं यान्तु भवत्प्रसादात् ॥६३॥

इन्द्र उवाच

रक्षोऽधिपेना-ऽखिलदेव-सौख्यं
हृतं च मे ब्रह्मवरेण देव ! ।
पुनश्च सर्वं भवतः प्रसादात्
प्राप्तं हतो राक्षसदुष्टशत्रुः ॥६४॥

देवा ऊचुः

हता यज्ञभागा धरादेवदत्ता
मुरारे ! खलेनादिदैत्येन विष्णो ! ।
हतोऽद्य त्वया नो वितानेष भागाः
पुरावद् भविष्यन्ति युष्मत् प्रसादात् ॥६५॥

पितर ऊचुः

हतोऽद्य त्वया दुष्टदैत्यो महात्मन् !
गयादौ नरैर्दत्तपिण्डादिकान्नः ।

---

भक्ति से जो लोग नित्य स्तुति सुनें, कहें अथवा लिखें वे आप की कृपा से सम्पूर्ण परमानन्द लाभ कर आपके पद को प्राप्त करें ॥ ६३ ॥

तदनन्तर इन्द्र बोले—हे देव ! इस राक्षसराज रावण ने ब्रह्मा के वरदान के प्रभाव से मेरे समस्त सुख का अपहरण कर लिया था। अब इस दुष्ट शत्रु राक्षसराज के मारे जाने से आप की कृपा से मुझे वह सुख पुनः प्राप्त हो गया ॥ ६४ ॥

तत्पश्चात् देवताओं ने कहा—हे मुरारे ! हे विष्णो ! इस दुष्ट आदि दैत्य ने ब्राह्मणों द्वारा दिये गये हमारे समस्त यज्ञभागों को हर लिया था। आज आप ने उसे मार डाला। अतः आप की कृपा से हम लोगों को पहले की ही भाँति यज्ञांश प्राप्त होने लगेंगे ॥ ६५ ॥

पितरों ने कहा—हे महात्मन् ! यह दुष्ट दैत्य गया आदि पुण्य क्षेत्रों में मनुष्यों के द्वारा दिये हुए पिण्डोदकादि को बलात्कार से छीन

बलादत्ति हत्वा गृहीत्वा समस्ता-
निदानीं पुनर्लब्धसत्त्वा भवामः ॥६६॥

यक्षा ऊचुः

सदा विष्टिकर्मण्यनेनाभियुक्ता
वहामो दशास्यं बलाद् दुःखयुक्ताः ।
दुरात्मा हतो रावणो राघवेश !
त्वया ते वयं दुःखजाताद् विमुक्ताः ॥६७॥

गन्धर्वा ऊचुः

वयं सङ्गीतनिपुणा गायन्तस्ते कथामृतम् ।
आनन्दामृत-सन्दोह-युक्ताः पूर्णाः स्थिताः पुरा ॥६८॥
पश्चाद् दुरात्मना राम ! रावणेनाऽभिविद्रुताः ।
तमेव गायमानाश्च तदाराधनतत्पराः ॥६९॥
स्थितास्त्वया परित्राता हतोऽयं दुष्टराक्षसः ।
एवं महोरगाः सिद्धाः किन्नरा मरुतस्तथा ॥७०॥
वसवो मुनयो गावो गुह्यकाश्च पतत्रिणः ।
सप्रजापतयश्चैते तथा चाऽप्सरसां गणाः ॥७१॥

---

कर खा लेता था। आज आप ने इसे मार डाला। अतः अपना भाग प्राप्त कर अब हम लोग शक्तिमान् हो जायेंगे ॥ ६६

यक्षों ने कहा—हे रघुनाथ जी ! यह रावण हमें बलात्कार से बेगार के काम में लगा देता था, और हम लोग विवश होकर बड़े दुःख से इसकी पालकी आदि में जुतकर इसको ढोते थे, अतः आज इस दुरात्मा को मार कर आप ने हमें अनेकों दुःखों से छुड़ा दिया ॥ ६७ ॥

गन्धर्वों ने कहा—हे नाथ ! सङ्गीत विद्या में निपुण हम लोग पहले आप के कथामृत का गान किया करते थे, और आनन्दामृत-समूहों से युक्त होकर अपने को कृतकृत्य मानते थे ॥ ६८ ॥ किन्तु फिर इस दुरात्मा रावण द्वारा आक्रान्त होकर हम उसी के गुणगान एवं सेवा में तत्पर हो गये। अब आप ने उस दुष्ट राक्षस को मार कर हम लोगों की रक्षा की। इसी प्रकार महानाग, सिद्ध, किन्नर, मरुत्, वसु, मुनि,

सर्वे रामं समासाद्य दृष्ट्वा नेत्रमहोत्सवम् ।
स्तुत्वा पृथक् पृथक् सर्वे राघवेणाऽभिवन्दिताः ॥७२॥
ययुः स्वं स्वं पदं सर्वे ब्रह्मरुद्रादयस्तथा ।
प्रशंसन्तो मुदा रामं गायन्तस्तस्य चेष्टितम् ॥७३॥
ध्यायन्तस्त्वभिषेकार्द्रं सीतालक्ष्मणसंयुतम् ।
सिंहासनस्थं राजेन्द्रं ययुः सर्वे हृदि स्थितम् ॥७४॥
खे वाद्येषु ध्वनत्सु प्रमुदितहृदयैर्देववृन्दैः स्तुवद्भि-
र्वर्षद्भिः पुष्पवृष्टिं दिवि मुनिनिकरैरीड्यमानः समन्तात् ।
रामः श्यामः प्रसन्नस्मितरुचिरमुखः सूर्यकोटिप्रकाशः
सीतासौमित्रि-वातात्मज-मुनि-हरिभिः सेव्यमानो विभाति ॥७५॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
युद्धकाण्डे पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥



गौ, गुह्यक, पक्षी, प्रजापति और अप्सराओं के समूह सभी भगवान् राम के पास इस पृथ्वीतल पर आये। तथा नेत्र-महोत्सव स्वरूप प्रभु का दर्शन कर उनकी पृथक्-पृथक् स्तुति की। पुनः उनसे प्रशंसित हो अपने-अपने लोकों को चले गये। तदनन्तर ब्रह्मा एवं महादेव आदि भी आनन्द पूर्वक भगवान् राम की प्रशंसा और उनकी लीलाओं का गुणगान करते हुए सिंहासन पर विराजमान एवं अभिषेक से आर्द्र राजराजेश्वर श्रीरामचन्द्र जी का सीता जी एवं लक्ष्मण के सहित हृदय में ध्यान करते वहाँ से चले गये ॥ ६९–७४ ॥ उस समय आकाश में बाजे बज रहे थे, देवगण प्रसन्न मन से स्तुति करते हुए फूलों की वर्षा कर रहे थे, और महर्षि-मण्डल चारों ओर स्थित होकर स्तुति-गान करते थे। करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान्, प्रसन्नता युक्त मुसकान से मनोहर मुख वाले श्यामसुन्दर भगवान् राम, सीता, लक्ष्मण, हनुमान्, मुनिजन तथा वानरों से सेवित होकर अत्यन्त सुशोभित हुए ॥ ७५ ॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या-विभूषित अध्यात्म-रामायण के उमा-महेश्वर संवाद में युद्धकाण्ड का पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १५ ॥

## षोडशः सर्गः

( वानरोंकी विदाई एवं ग्रन्थप्रशंसा )

श्रीमहादेव उवाच

रामेऽभिषिक्ते राजेन्द्रे सर्वलोकसुखावहे ।
वसुधा सस्यसम्पन्ना फलवन्तो महीरुहाः ॥ १ ॥
गन्धहीनानि पुष्पाणि गन्धवन्ति चकाशिरे ।
सहस्रशतमश्वानां धेनूनां च गवां तथा ॥ २ ॥
ददौ शतवृषान् पूर्वं द्विजेभ्यो रघुनन्दनः ।
त्रिंशत्कोटि सुवर्णस्य ब्राह्मणेभ्यो ददौ पुनः ॥ ३ ॥
वस्त्राभरणरत्नानि ब्राह्मणेभ्यो मुदा तथा ।
सूर्यकान्तिसमप्रख्यां सर्वरत्नमयीं स्रजम् ॥ ४ ॥
सुग्रीवाय ददौ प्रीत्या राघवो भक्तवत्सलः ।
अङ्गदाय ददौ दिव्ये ह्यङ्गदे रघुनन्दनः ॥ ५ ॥

---

श्रीमहादेव जी बोले—हे पार्वति ! समस्त लोगों को सुख देने वाले राजराजेश्वर भगवान् राम का राज्याभिषेक हो जाने पर पृथ्वी धन-धान्य से पूर्ण हो गयी। और सभी वृक्ष फलसमन्वित हो गये ॥ १ ॥ जो पुष्प गन्ध हीन थे, वे भी गन्धयुक्त होकर शोभा पाने लगे। राज्याभिषेक काल में श्रीराम ने एक लाख घोड़े, एक लाख दूध देने वाली गायें तथा सैकड़ों बैल ब्राह्मणों को दिया। और सुवर्ण की तीस करोड़ मुद्रा भी उन्हें दी ॥ २–३ ॥ इसके अतिरिक्त उन्होंने ब्राह्मणों को बड़ी प्रसन्नता से अनेक प्रकार के वस्त्र, आभूषण एवं रत्नादि भी ब्राह्मणों को दान स्वरूप में दिये। फिर भक्तवत्सल श्रीराम ने सूर्य के समान देदीप्यमान सभी प्रकार के रत्नों से जटित माला प्रेमपूर्वक सुग्रीव को दी। और अङ्गद को दो दिव्य अङ्गद प्रदान किये ॥ ४–५ ॥

चन्द्रकोटिप्रतीकाशं मणिरत्नविभूषितम् ।
सीतायै प्रददौ हारं प्रीत्या रघुकुलोत्तमः ॥ ६ ॥
अवमुच्यात्मनः कण्ठाद्धारं जनकनन्दिनी ।
अवैक्षत हरीन् सर्वान् भर्तारं च मुहुर्मुहुः ॥ ७ ॥
रामस्तामाह वैदेहीमिङ्गितज्ञो विलोकयन् ।
वैदेहि ! यस्य तुष्टाऽसि देहि तस्मै वरानने ! ॥ ८ ॥
हनूमते ददौ हारं पश्यतो राघवस्य च ।
तेन हारेण शुशुभे मारुतिर्गौरवेण च ॥ ६ ॥
रामोऽपि मारुतिं दृष्ट्वा कृताञ्जलिमुपस्थितम् ।
भक्त्या परमया तुष्ट इदं वचनमब्रवीत् ॥१०॥
हनूमंस्ते प्रसन्नोऽस्मि वरं वरय काङ्क्षितम् ।
दास्यामि देवैरपि यद् दुर्लभं भुवनत्रये ॥११॥
हनूमानपि तं प्राह नत्वा रामं प्रहृष्टधीः ।
त्वन्नाम स्मरतो राम ! न तृप्यति मनो मम ॥१२॥

---

पुनः श्रीरामचन्द्र जी ने करोड़ों चन्द्रमा के समान कान्तिवाले अमूल्य रत्नों एवं मणियों से विभूषित एक हार प्रेम से सीता जी को दिया ॥ ६ ॥ तब जनकनन्दिनी जानकी अपने गले से उस हार को उतार कर हाथ में ले बारम्बार अपने पति एवं वानरों की ओर देखने लगीं ॥ ७ ॥ श्रीरामचन्द्र जी ने उनका संकेत समझ कर उनकी ओर देखते हुए कहा—हे सुमुखि, हे वरवर्णिनि ! तुम जिस पर प्रसन्न हो उसे यह हार दे दो ॥ ८ ॥ तब सीता जी ने श्रीरामचन्द्र जी के देखते-देखते वह हार हनुमान् जी को दे दिया। उस हार को पहन कर हनुमान् जी गौरवान्वित हो अत्यन्त शोभा को प्राप्त हुए ॥ ६ ॥

श्रीरघुनाथ जी भी सामने हाथ जोड़े हुए हनुमान् जी की भक्ति के कारण परम प्रसन्न होकर कहने लगे—॥ १० ॥ हे हनुमान् ! मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम जो वर चाहते हो उसे माँग लो। जो वर इस त्रिलोकी में देवताओं के लिए भी अत्यन्त कठिन है वह भी मैं तुम्हें दूँगा ॥ ११ ॥ तब तो हनुमान् जी ने उन्हें प्रणाम कर परम प्रसन्न हो

अतस्त्वन्नाम सततं स्मरन् स्थास्यामि भूतले ।
यावत् स्थास्यति ते नाम लोके तावत् कलेवरम् ॥१३॥
मम तिष्ठतु राजेन्द्र ! वरोऽयं मेऽभिकाङ्क्षितः ।
रामस्तथेति तं प्राह मुक्तस्तिष्ठ यथासुखम् ॥१४॥
कल्पान्ते मम सायुज्यं प्राप्स्यसे नाऽत्र संशयः ।
तमाह जानकी प्रीता यत्र कुत्रापि मारुते ! ॥१५॥
स्थितं त्वामनुयास्यन्ति भोगाः सर्वे ममाज्ञया ।
इत्युक्तो मारुतिस्ताभ्यामीश्वराभ्यां प्रहृष्टधीः ॥१६॥
आनन्दाश्रुपरीताक्षो भूयो भूयः प्रणम्य तौ ।
कृच्छ्राद्ययौ तपस्तप्तुं हिमवन्तं महामतिः ॥१७॥
ततो गुहं समासाद्य रामः प्राञ्जलिमब्रवीत् ।
सखे ! गच्छ पुरं रम्यं शृङ्गवेरमनुत्तमम् ॥१८॥

---

श्रीराम जी से कहा—'हे राम ! आपके नाम का स्मरण करते हुए मेरा मन कभी तृप्त नहीं होता ॥ १२ ॥ अतः मैं आपके नाम का स्मरण करते हुए पृथ्वी पर रहूँ। और इस पृथ्वी पर जब तक आप का नाम रहे तभी तक मैं अपना शरीर धारण करूँ' ॥ १३ ॥ हे राजेन्द्र ! मेरे मन में इसी वर की आकाङ्क्षा है। तब राम ने 'तथास्तु ( वैसा ही हो )' कह कर कहा कि, तुम जीवन्मुक्त होकर इस संसार में सुखपूर्वक रहो ॥ १४ ॥ कल्पान्त होने पर मेरा सायुज्य प्राप्त करोगे, इसमें संशय नहीं है।

तत्पश्चात् जानकी जी ने कहा—'हे मारुते ! तुम जहाँ-कहीं भी रहोगे मेरी आज्ञा से सभी भोग तुम्हें वहाँ उपस्थित रहेंगे।' अपने प्रभु श्रीराम एवं माता जानकी जी के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर हनुमान् जी अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ १५-१६ ॥ पुनः महामति हनुमान् जी हर्ष से नेत्रों में आँसू भर कर उन्हें बारम्बार प्रणाम कर बड़ी कठिनाई से तपस्या करने के लिए हिमालय पहाड़ पर चले गये ॥ १७ ॥

हाथ जोड़कर खड़े हुए निषादराज गुह के पास जाकर श्रीरामचन्द्र जी ने कहा—मित्र ! तुम अपने परम रमणीय ग्राम शृङ्गवेरपुर में

मामेव चिन्तयन्नित्यं भुङ्क्ष्व भोगान्निजार्जितान् ।
अन्ते ममैव सारूप्यं प्राप्स्यसे त्वं न संशयः ॥१६॥
इत्युक्त्वा प्रददौ तस्मै दिव्यान्याभरणानि च ।
राज्यं च विपुलं दत्त्वा विज्ञानं च ददौ विभुः ॥२०॥
रामेणालिङ्गितो हृष्टो ययौ स्वभवनं गुहः ।
ये चाऽन्ये वानराः श्रेष्ठा अयोध्यां समुपागताः ॥२१॥
अमूल्याभरणैर्वस्त्रैः पूजयामास राघवः ।
सुग्रीवप्रमुखाः सर्वे वानराः स-विभीषणाः ॥२२॥
यथार्हं पूजितास्तेन रामेण परमात्मना ।
प्रहृष्टमनसः सर्वे जग्मुरेव यथागतम् ॥२३॥
सुग्रीवप्रमुखाः सर्वे किष्किन्धां प्रययुर्मुदा ।
विभीषणस्तु सम्प्राप्य राज्यं निहतकण्टकम् ॥२४॥
रामेण पूजितः प्रीत्या ययौ लङ्कामनिन्दितः ।
राघवो राज्यमखिलं शशासाऽखिलवत्सलः ॥२५॥

---

जाओ ॥ १८ ॥ और निरन्तर मेरा स्मरण करते हुए अपने शुभ कर्मों से अर्जित सर्वोत्तम भोगों का भोग करो। फिर तुम मुझमें लीन होकर मेरा सारूप्य प्राप्त करोगे, इसमें सन्देह नहीं ॥ १६ ॥ ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजी ने उसे दिव्य आभूषण, बहुत-सा राज्य तथा तत्त्वज्ञान का उपदेश दिया ॥ २० ॥

इस प्रकार श्रीराम के द्वारा आलिङ्गित होकर गुह अपने घर चला गया। और भी जो-जो श्रेष्ठ वानर अयोध्या में आये थे श्रीरामचन्द्र जी ने बहुमूल्य वस्त्र एवं आभूषणों से उन्हें सत्कृत किया। इस प्रकार विभीषण के सहित सुग्रीव आदि समस्त वानरगण परमात्मा राम से यथोचित सत्कार पाकर अपने-अपने स्थानों पर चले गये ॥ २१-२३ ॥

सुग्रीवादि समस्त वानरगण प्रसन्नचित्त से किष्किन्धा चले गये। और भगवान् राम से पूजित होकर आनन्द में निमग्न हो विभीषण निष्कण्टक अपना राज्य पाकर लङ्का को गये। तथा समस्त प्रजावत्सल

अनिच्छन्नपि रामेण यौवराज्येऽभिषेचितः ।
लक्ष्मणः परया भक्त्या रामसेवापरोऽभवत् ॥२६॥
रामस्तु परमात्माऽपि कर्माध्यक्षोऽपि निर्मलः ।
कर्तृत्वादि-विहीनोऽपि निर्विकारोऽपि सर्वदा ॥२७॥
स्वानन्देनापि तुष्टः सन् लोकानामुपदेशकृत् ।
अश्वमेधादियज्ञैश्च सर्वैर्विपुलदक्षिणैः ॥२८॥
अयजत्परमानन्दो मानुषं वपुराश्रितः ।
न पर्यदेवन्विधवा न च व्यालकृतं भयम् ॥२९॥
न व्याधिजं भयं चासीद्रामे राज्यं प्रशासति ।
लोके दस्युभयं नासीदनर्थो नास्ति कश्चन ॥३०॥
वृद्धेषु सत्सु बालानां नासीन् मृत्युभयं तथा ।
रामपूजापराः सर्वे सर्वे राघवचिन्तकाः ॥३१॥
ववर्षुर्जलदास्तोयं यथाकालं यथारुचि ।
प्रजाः स्वधर्मनिरता वर्णाश्रमगुणान्विताः ॥३२॥

---

भगवान् राम अपने राज्य का शासन करने लगे ॥ २४-२५ ॥ श्रीरामचन्द्रजी ने लक्ष्मण जी को उनकी इच्छा न रहते हुए भी युवराज पद पर अभिषिक्त किया। लक्ष्मण भी अत्यन्त भक्ति से श्रीरामचन्द्रजी की सेवा करने लगे ॥ २६ ॥

समस्त कर्मों के साक्षी, नित्य निर्मल स्वरूप, कर्तृत्वादि रहित, सर्वदा निर्विकार और स्वानन्दस्वरूप होकर भी परमात्मा रामने लोगों को उपदेश देने के लिए मनुष्य रूप धारण कर विपुल दक्षिणा वाले अनेक अश्वमेधादि समस्त यज्ञों का अनुष्ठान किया। राम के शासनकला में कभी विधवाओं का क्रन्दन नहीं हुआ। सर्पों, व्याधियों और लुटेरों का भी भय नहीं था। और कोई अनर्थ भी नहीं होता था ॥ २७-३० ॥

वृद्धों के जीवित रहते कभी बालकों की मृत्यु नहीं होती थी, सभी लोग राम के उपासक तथा उनका स्मरण करने वाले थे ॥ ३१ ॥ मेघ ठीक समय से लोगों की रुचि के अनुसार ही वर्षा करते थे। प्रजा वर्णाश्रम धर्म का पालन करती हुई अपने-अपने कर्म-धर्म में निरत थी ॥ ३२ ॥

औरसानिव रामोऽपि जुगोप पितृवत्प्रजाः ।
सर्वलक्षणसंयुक्तः सर्वधर्मपरायणः ॥३३॥
दशवर्षसहस्राणि रामो राज्यमुपास्त सः ॥३४॥

इदं रहस्यं धन-धान्य-ऋद्धिमद्
दीर्घायुरारोग्यकरं सुपुण्यदम् ।
पवित्रमाध्यात्मिकसंज्ञितं पुरा
रामायणं भाषितमादिशम्भुना ॥३५॥

श‍ृणोति भक्त्या मनुजः समाहितो
भक्त्या पठेद् वा परितुष्टमानसः ।
सर्वाः समाप्नोति मनोगताशिषो
विमुच्यते पातककोटिभिः क्षणात् ॥३६॥

रामाभिषेकं प्रयतः श‍ृणोति यो
धनाभिलाषी लभते महद्धनम् ।
पुत्राभिलाषी सुतमार्यसम्मतं
प्राप्नोति रामायणमादितः पठन् ॥३७॥

---

श्रीरामचन्द्रजी भी पिता की तरह अपने औरसपुत्रों की भाँति प्रजा का पालन करते थे। इस प्रकार सर्वलक्षण-सम्पन्न सर्वधर्म-परायण भगवान् श्रीराम ने दश सहस्र वर्ष पर्यन्त राज्य शासन किया ॥ ३३–३४ ॥

धन-धान्य आदि समस्त वैभव प्रदान करने वाले, दीर्घायु, आरोग्य और पुण्य की वृद्धि करने वाले इस आध्यात्मिक रामायण संज्ञक परम पवित्र और गोपनीय रहस्य को पूर्वकाल में श्री आदि महादेव ने पार्वती को सुनाया था ॥ ३५ ॥ जो मनुष्य भक्तिपूर्वक समाहित चित्त से इसे सुनता है अथवा प्रसन्नता से भक्तिपूर्वक पढ़ता है, वह अपने मनोरथ और कल्याण को प्राप्त करता है और क्षणमात्र में करोड़ों पापों से मुक्त हो जाता है ॥ ३६ ॥ धन की इच्छा रखने वाला धनाभिलाषी, जो पुरुष नियम पूर्वक एकाग्रचित्त से श्रवण करता है, वह महान् सम्पत्ति प्राप्त करता है। पुत्र की इच्छा रखने वाला, जो पुरुष इस अध्यात्मरामायण

शृणोति योऽध्यात्मिकरामसंहितां
प्राप्नोति राजा भुवमृद्धसम्पदम् ।
शत्रून् विजित्यारिभिरप्रधर्षितो
व्यपेतदुःखो विजयी भवेन्नृपः ॥३८॥
स्त्रियोऽपि शृण्वन्त्यधिरामसंहितां
भवन्ति ता जीविसुताश्च पूजिताः ।
वन्ध्याऽपि पुत्रं लभते सुरूपिणं
कथामिमां भक्तियुता शृणोति या ॥३९॥
श्रद्धान्वितो यः शृणुयात् पठेन्नरो
विजित्य कोपं च तथा विमत्सरः ।
दुर्गाणि सर्वाणि विजित्य निर्भयो
भवेत् सुखी राघवभक्तिसंयुतः ॥४०॥
सुराः समस्ता अपि यान्ति तुष्टतां
विघ्नाः समस्ता अपयान्ति शृण्वताम् ।

---

का आदि से पाठ करता है, वह सत्पुरुषों द्वारा सम्मान प्राप्त करने योग्य उत्तम पुत्र प्राप्त करता है ॥ ३७ ॥

जो राजा इस आध्यात्मिक रामसंहिता का श्रवण करता है, वह धन-धान्य सम्पन्न पृथ्वी पाता है और शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है, तथा उसका पराभव शत्रुगण कभी भी नहीं कर पाते एवं वह सब प्रकार के दुःखों से छूटकर सदैव विजयी रहता है ॥ ३८ ॥ जो कोई स्त्री इस आध्यात्मिक रामसंहिता को सुनती है, वह दीर्घायु पुत्र प्राप्त करती है, तथा स्त्रियों में पूजित होती है। यदि वन्ध्या स्त्री इस कथा का भक्तिसंयुत हो श्रवण करती है, तो वह सुन्दर सुरूपवान् पुत्र प्राप्त करती है ॥ ३९ ॥

जो मनुष्य क्रोध को जीत कर ईर्ष्यारहित हो श्रद्धापूर्वक इसे पढ़ता है या सुनता है वह समस्त अवगुणों को जीत कर निर्भय, सुखी और राम-भक्ति से सम्पन्न हो जाता है ॥ ४० ॥ इस अध्यातम-रामायण का आदि से

अध्यात्मरामायणमादितो नृणां
भवन्ति सर्वा अपि सम्पदः पराः ॥४१॥
रजस्वला वा यदि रामतत्परा
शृणोति रामायणमेतदादितः ।
पुत्रं प्रसूते ऋषभं चिरायुषं
पतिव्रता लोकसुपूजिता भवेत् ॥४२॥

पूजयित्वा तु ये भक्त्या नमस्कुर्वन्ति नित्यशः ।
सर्वैः पापैर्विनिर्मुक्ता विष्णोर्यान्ति परं पदम् ॥४३॥
अध्यात्मरामचरितं कृत्स्नं शृण्वन्ति भक्तितः ।
पठन्ति वा स्वयं वक्त्रात् तेषां रामः प्रसीदति ॥४४॥
राम एव परं ब्रह्म तस्मिंस्तुष्टेऽखिलात्मनि ।
धर्मार्थ-काम-मोक्षाणां यद्यदिच्छति तद् भवेत् ॥४५॥

---

पाठ श्रवण करने वाले मनुष्यों के ऊपर सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं। तथा उसे सुनने वाले मनुष्य के सारे विघ्न दूर हो जाते हैं। और उन्हें सभी प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त होती है ॥ ४१ ॥ गर्भिणी स्त्री यदि राम में मन लगा कर इस रामायण को प्रारम्भ से सुनती है, तो वह दीर्घायु एवं सर्वश्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न करती है। और वह लोकों में सर्वश्रेष्ठ पतिव्रता होती है ॥ ४२ ॥

जो लोग इस अध्यात्मरामायण ग्रन्थ का भक्तिपूर्वक पूजन करते हैं अथवा नमस्कार करते हैं, वे सभी पापों से छुटकारा पाकर विष्णुपद को प्राप्त करते हैं ॥ ४३ ॥ जो भक्तिपूर्वक इस अध्यात्मरामायण का सम्पूर्ण पाठ अपने मुख से करते हैं अथवा उसे सुनते हैं, उनके ऊपर भगवान् राम स्वयं प्रसन्न हो जाते हैं ॥ ४४ ॥ राम ही परब्रह्म हैं, उन

श्रोतव्यं नियमेनैतद् रामायणमखण्डितम् ।
आयुष्यमारोग्यकरं कल्पकोटयघनाशनम् ॥४६॥
देवाश्च सर्वे तुष्यन्ति ग्रहाः सर्वे महर्षयः ।
रामायणस्य श्रवणे तृप्यन्ति पितरस्तथा ॥४७॥
अध्यात्मरामायणमेतदद्भुतं
वैराग्यविज्ञानयुतं पुरातनम् ।
पठन्ति शृण्वन्ति लिखन्ति ये नरा-
स्तेषां भवेऽस्मिन्न पुनर्भवो भवेत् ॥४८॥
आलोड्याखिलवेदराशिमसकृद्यत्तारकं ब्रह्मतद्-
रामो विष्णुरहस्यमूर्तिरिति यो विज्ञाय भूतेश्वरः ।

---

सर्वात्मा राम के प्रसन्न हो जाने पर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इनमें मनुष्य जिसकी भी इच्छा करे उसे वही मिल सकता है ॥ ४५ ॥

इस अध्यात्मरामायण का नित्य नियमपूर्वक अखण्डरूप से श्रवण करना चाहिए। क्योंकि, यह आयु तथा आरोग्य प्रदान करता है तथा करोड़ों कल्पों के पाप को नष्ट करने वाला है ॥ ४६ ॥ इस रामायण का श्रवण करने से समस्त देवगण, सम्पूर्ण ग्रह एवं महर्षिगण प्रसन्न हो जाते हैं। तथा समस्त पितृगण भी तृप्त हो जाते हैं ॥ ४७ ॥

जो लोग ज्ञान, वैराग्य से युक्त अति अद्भुत और प्राचीन इस अध्यात्म रामायण को पढ़ते, लिखते तथा श्रवण करते हैं, उनका इस संसार में पुनः जन्म नहीं होता ॥ ४८ ॥

भूतनाथ भगवान् शंकर ने सम्पूर्ण वेदराशि का बारम्बार मन्थन करके यह निश्चय किया कि यह तारकमन्त्र 'राम' विष्णु भगवान् की गुप्त

उद्धृत्या-ऽखिल-सारसङ्ग्रहमिदं संक्षेपतः प्रस्फुटं
श्रीरामस्य निगूढतत्त्वमखिलं प्राह प्रियायै भवः ॥४६॥

इति आचार्य-पण्डित-श्रीशिवदत्तमिश्र-शास्त्रि-सम्पादिते
श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे
षोडशः सर्गः समाप्तः ॥ १६ ॥

समाप्तमिदं युद्धकाण्डम् ।



मूर्ति है, अतः उन्होंने समस्त वेदों के सार का संग्रहस्वरूप इस राम के सम्पूर्ण तत्त्व का वेदों से उद्धार कर अपनी प्रिया पार्वती जी को संक्षेप में सुनाया ॥ ४६ ॥

इस प्रकार पण्डित श्री सन्तशरण मिश्रात्मज आचार्य पण्डित शिवदत्तमिश्र शास्त्रीकृत 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या सहित अध्यात्म-रामायण के उमा-महेश्वर-संवाद में युद्धकाण्ड का षोडश सर्ग समाप्त ॥ १६ ॥



# अध्यात्मरामायणम्

## 'रामप्रिया'-हिन्दीव्याख्या-सहितम्

## उत्तरकाण्डम्



### प्रथमः सर्गः

( भगवान् श्रीराम के यहाँ अगस्त्यादि मुनीश्वरों का आगमन तथा रावणादि राक्षसों का पूर्व चरित्र वर्णन )

जयति रघुवंशतिलकः कौसल्याहृदयनन्दनो रामः ।
दशवदन-निधनकारी दाशरथिः पुण्डरीकाक्षः ॥ १ ॥

पार्वत्युवाच

अथ रामः किमकरोत् कौसल्यानन्दवर्धनः ।
हत्वा मृधे रावणादीन् राक्षसान् भीमविक्रमः ॥ २ ॥
अभिषिक्तस्त्वयोध्यायां सीतया सह राघवः ।
मायामानुषतां प्राप्य कति वर्षाणि भूतले ॥ ३ ॥
स्थितवान् लीलया देवः परमात्मा सनातनः ।
अत्यजन् मानुषं लोकं कथमन्ते रघूद्वहः ॥ ४ ॥

---

कौसल्या के हृदय को आनन्दित करने वाले, दशवदन रावण का वध करने वाले, रघुकुलतिलक, कमलनेत्र, दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम की जय हो ॥ १ ॥

पार्वती ने कहा---कौसल्या के आनन्द को बढ़ाने वाले, महापराक्रमी श्रीरामचन्द्रजी ने युद्ध में रावणादि राक्षसों को मारकर अयोध्यापुरी में सीता जी के साथ अभिषिक्त हो जाने पर कौन-कौन सा कार्य किया और अपनी लीला से ही मायामय मनुष्य रूप धारण किये हुए वे सनातन परमात्मा इस पृथ्वीतल पर कितने वर्षों तक निवास किये। और अन्त में उन रघुनन्दन श्रीराम ने किस प्रकार इस मर्त्य-लोक का परित्याग किया ॥ २-४ ॥

एतदाख्याहि भगवन् ! श्रद्दधत्या मम प्रभो ! ।
कथापीयूषमास्वाद्य तृष्णा मेऽतीव वर्धते ।
रामचन्द्रस्य भगवन् ! ब्रूहि विस्तरशः कथाम् ॥ ५ ॥

श्रीमहादेव उवाच

राक्षसानां वधं कृत्वा राज्ये राम उपस्थिते ।
आययुर्मुनयः सर्वे श्रीराममभिवन्दितुम् ॥ ६ ॥
विश्वामित्रोऽसितः कण्वो दुर्वासा भृगुरङ्गिराः ।
कश्यपो वामदेवोऽत्रिस्तथा सप्तर्षयोऽमलाः ॥ ७ ॥
अगस्त्यः सह शिष्यैश्च मुनिभिः सहितोऽभ्यगात् ।
द्वारमासाद्य रामस्य द्वारपालमथाऽब्रवीत् ॥ ८ ॥
ब्रूहि रामाय मुनयः समागत्य बहिः स्थिताः ।
अगस्त्यप्रमुखाः सर्वे आशीर्भिरभिनन्दितुम् ॥ ९ ॥
प्रतीहारस्ततो राममगस्त्यवचनाद् द्रुतम् ।
नमस्कृत्याऽब्रवीद् वाक्यं विनयावनतः प्रभुम् ॥१०॥

---

हे प्रभो ! राम-कथा में श्रद्धा रखने वाली मुझको यह सब वृत्तान्त सुनाइए। हे भगवन् ! श्रीरामकथामृत का आस्वादन करने से मेरी तृष्णा बहुत ही बढ़ती जाती है, इसलिए आप श्रीरामचन्द्र जी की कथा विस्तार पूर्वक मुझे श्रवण करायें ॥ ५ ॥

श्रीमहादेवजी ने कहा––राक्षसों का वधकर लेने के अनन्तर जब श्रीरामचन्द्र जी राज्य पर विराजमान हुए तब उनका अभिनन्दन करने हेतु समस्त मुनिजन अयोध्यापुरी में आये ॥ ६ ॥ उस समय विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भृगु, अङ्गिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि, परम पवित्र सप्तर्षिगण तथा शिष्यों एवं अन्य मुनियों के साथ महर्षि अगस्त्य जी वहाँ आये। तत्पश्चात् अगस्त्य जी ने भगवान् राम के द्वार पर पहुँचकर द्वारपाल से कहा––॥ ७-८ ॥

हे द्वारपाल ! जाकर राम से कहो कि, अगस्त्यादि अनेक मुनिगण अपने आशीर्वादों द्वारा आपका अभिनन्दन करने के लिए आये हैं तथा बाहर खड़े हैं ॥९॥ द्वारपाल अगस्त्य को आज्ञा पाते ही शीघ्रता से श्रीराम को

कृताञ्जलिरुवाचेदमगस्त्यो मुनिभिः सह ।
देव ! त्वद्दर्शनार्थाय प्राप्तो बहिरुपस्थितः ॥११॥
तमुवाच द्वारपालं प्रवेशय यथासुखम् ।
पूजिता विविशुर्वेश्म नानारत्नविभूषितम् ॥१२॥
दृष्ट्वा रामो मुनीन् शीघ्रं प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः ।
पाद्याऽर्घ्यादिभिरापूज्य गां निवेद्य यथाविधि ॥१३॥
नत्वा तेभ्यो ददौ दिव्यान्यासनानि यथार्हतः ।
उपविष्टाः प्रहृष्टाश्च मुनयो रामपूजिताः ॥१४॥
सम्पृष्टकुशलाः सर्वे रामं कुशलमब्रुवन् ।
कुशलं ते महाबाहो ! सर्वत्र रघुनन्दन ! ॥१५॥
दिष्ट्येदानीं प्रपश्यामो हतशत्रुमरिन्दम ! ।
न हि भारः स ते राम ! रावणो राक्षसेश्वरः ॥१६॥

---

नमस्कार कर विनम्र हो कहने लगा ॥ १० ॥ वह हाथ जोड़कर बोला—हे देव ! महर्षि अगस्त्य मुनियों के साथ आप के दर्शन के लिए आये हुए हैं और वे दरवाजे पर बाहर खड़े हैं ॥ ११ ॥

श्रीराम ने द्वारपाल से कहा—उन्हें सानन्द भीतर ले आओ । फिर पूजित हुए समस्त मुनिजन अनेक प्रकार के रत्नों से विभूषित श्रीराम के महल में गये ॥ १२ ॥ श्रीरामचन्द्र जी भी उन मुनियों को देख हाथ जोड़कर शीघ्रता से खड़े हो गये, और पाद्य, अर्घ्य आदि उपचारों से उनका पूजन कर विधिपूर्वक उनको गोदान दिया ॥ १३ ॥ उन्हें नमस्कार कर यथायोग्य दिव्य आसन प्रदान किया । तदनन्तर राम की पूजा से प्रसन्न हुए वे सभी मुनिगण अपने-अपने आसनों पर बैठ गये ॥ १४ ॥

पुनः श्रीरामचन्द्रजी द्वारा कुशल पूछे जाने पर सब लोगों ने अपना कुशल कहा । और उनसे बोले—हे रघुनन्दन ! हे महाबाहो ! आप के राज्य में सर्वत्र कुशल तो है ? ॥ १५ ॥ हे अरिन्दम ! बड़े भाग्य से आपको हम आज शत्रुहीन देख रहे हैं । हे राम ! आपके लिए राक्षसेश्वर

सधनुस्त्वं हि लोकांस्त्रीन् विजेतुं शक्त एव हि ।
दिष्ट्या त्वया हताः सर्वे राक्षसा रावणादयः ॥१७॥
सह्यमेतन् महाबाहो ! रावणस्य निबर्हणम् ।
असह्यमेतत् सम्प्राप्तं रावणेर्यन्निषूदनम् ॥१८॥
अन्तकप्रतिमाः सर्वे कुम्भकर्णादयो मृधे ।
अन्तकप्रतिमैर्बाणैर्हतास्ते रघुसत्तम ! ॥१९॥
दत्ता चेयं त्वयाऽस्माकं पुरा ह्यभयदक्षिणा ।
हत्वा रक्षोगणान् सङ्ख्ये कृतकृत्योऽद्य जीवसि ॥२०॥
श्रुत्वा तु भाषितं तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् ।
विस्मयं परमं गत्वा रामः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥२१॥
रावणादीनतिक्रम्य कुम्भकर्णादिराक्षसान् ।
त्रिलोकजयिनो हित्वा किं प्रशंसथ रावणिम् ॥२२॥
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा राघवस्य महात्मनः ।
कुम्भयोनिर्महातेजा रामं प्रीत्या वचोऽब्रवीत् ॥२३॥

---

रावण का वध करना कोई कठिन नहीं था ॥ १६ ॥ क्योंकि आप धनुष धारण कर लेने पर तीनों लोकों को जीतने में सर्वथा समर्थ हैं। और यह भाग्य की वात है कि आपने रावणादि राक्षसों को मार डाला ॥ १७ ॥ हे महाबाहो ! रावण-जैसे दुर्दान्त राक्षस का वध करना तो आपके लिए बड़ा सरल था, किन्तु रावण के पुत्र मेघनाद का वध करना तो बड़ा ही दुष्कर था ॥ १८ ॥

हे रघुसत्तम ! कुम्भकर्णादि सभी राक्षस युद्ध में काल के समान थे, और वे आपके काल के समान विकराल बाणों से मारे गये ॥ १९ ॥ हे राम ! आपने हम लोगों को पहले ही अभयदान दे दिया था। अब समस्त राक्षसों को युद्ध में मारकर आप स्वयं भी कृतकृत्य हुए जीवित हैं ॥ २० ॥ आत्मनिष्ठ मुनियों के द्वारा कहे गये इस बातको सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने आश्चर्य-चकित हो हाथ जोड़कर उनसे पूछा—॥ २१ ॥ हे मुनिगणो ! आप त्रिलोक-विजयी रावण और कुम्भकर्णादि राक्षसों को छोड़कर रावणपुत्र मेघनाद की प्रशंसा क्यों करते हैं ॥ २२ ॥ महात्मा

शृणु राम ! यथा वृत्तं रावणे रावणस्य च ।
जन्म कर्म वरादानं संक्षेपाद् वदतो मम ॥२४॥
पुरा कृतयुगे राम पुलस्त्यो ब्रह्मणः सुतः ।
तपस्तप्तुं गतो विद्वान् मेरोः पार्श्वं महामतिः ॥२५॥
तृणविन्दोराश्रमेऽसौ न्यवसन्मुनिपुङ्गवः ।
तपस्तेपे महातेजाः स्वाध्यायनिरतः सदा ॥२६॥
तत्राश्रमे महारम्ये देव-गन्धर्व-कन्यकाः ।
गायन्त्यो ननृतुस्तत्र हसन्त्यो वादयन्ति च ॥२७॥
पुलस्त्यस्य तपोविघ्नं चक्रुः सर्वा अनिन्दिताः ।
ततः क्रुद्धो महातेजा व्याजहार वचो महत् ॥२८॥
या मे दृष्टिपथं गच्छेत् सा गर्भं धारयिष्यति ।
ताः सर्वाः शापसंविग्ना न तं देशं प्रचक्रमुः ॥२९॥

---

श्रीरामचन्द्रजी द्वारा कहे गये इन वचनों को सुनकर महातेजस्वी अगस्त्य जी ने प्रीतिपूर्वक उनसे कहा—॥ २३ ॥

हे राम ! तुम रावण तथा रावणपुत्र मेघनाद का जन्म-कर्म तथा वर-प्राप्ति आदि का वृत्तान्त सुनो, मैं संक्षेप में उसका वर्णन करता हूँ ॥ २४ ॥ पूर्वकाल में, सत्ययुग में ब्रह्मा के पुत्र महामति पुलस्त्य तपस्या करने के लिए सुमेरु पर्वत पर गये ॥ २५ ॥ वे महर्षि-पुंगव ! तृण विन्दु के आश्रम में निवास करने लगे और स्वाध्याय करते हुए निरन्तर तपस्या करने लगे ॥ २६ ॥ उस परमरमणीय आश्रम में देवता तथा गन्धर्व की सुन्दर कन्याएँ गाती-बजाती तथा नृत्य करती एवं हँसती हुई पुलस्त्य जी के तप में विघ्न करने लगीं तब क्रुद्ध होकर महातेजस्वी पुलस्त्य जी बोले—॥ २७-२८ ॥

आज से जो देव अथवा गन्धर्व-कन्या मुझे दिखाई पड़ जायेगी वह निश्चय ही गर्भवती हो जायेगी। तब से महर्षि के शाप के भय से भयभीत हुई कोई भी कन्या उस आश्रम में नहीं जाती थी ॥ २९ ॥

तृणबिन्दोस्तु राजर्षेः कन्या तन्नाऽशृणोद् वचः ।
विचचार मुनेरग्रे निर्भया तं प्रपश्यती ॥३०॥
बभूव पाण्डुरतनुर्व्यञ्जितान्तःशरीरजा ।
दृष्ट्वा सा देहवैवर्ण्यं भीता पितरमन्वगात् ॥३१॥
तृणबिन्दुश्च तां दृष्ट्वा राजर्षिरमितद्युतिः ।
ध्यात्वा मुनिकृतं सर्वमवैद् विज्ञानचक्षुषा ॥३२॥
तां कन्यां मुनिवर्याय पुलस्त्याय ददौ पिता ।
तां प्रगृह्याऽब्रवीत् कन्यां बाढमित्येव स द्विजः ॥३३॥
शुश्रूषणपरां दृष्ट्वा मुनिः प्रीतोऽब्रवीद् वचः ।
दास्यामि पुत्रमेकं ते उभयोर्वंशवर्धनम् ॥३४॥
ततः प्रासूत सा पुत्रं पुलस्त्याल्लोकविश्रुतम् ।
विश्रवा इति विख्यातः पौलस्त्यो ब्रह्मविन्मुनिः ॥३५॥
तस्य शीलादिकं दृष्ट्वा भरद्वाजो महामुनिः ।
भार्यार्थं स्वां दुहितरं ददौ विश्रवसे मुदा ॥३६॥

---

किन्तु तृणबिन्दु की कन्या, जिसने पुलस्त्य जी के शाप को नहीं सुना था। महर्षि के सामने निर्भयता पूर्वक उन्हें देखती हुई घूमने लगी ॥ ३० ॥ और वह गर्भवती होकर पीली पड़ गयी एवं उसके शरीर में गर्भ के सभी लक्षण स्पष्टरूप से दिखाई पड़ने लगे। इस प्रकार अपने शरीर में गर्भ के समस्त लक्षण देख वह कन्या भयभीत हो अपने पिता के पास आयी ॥ ३१ ॥ महातेजस्वी तृणबिन्दु ने उस कन्या को देख कर अपने ध्यानस्थ हो विज्ञानबल से पुलस्त्य ऋषि का सारा कृत्य जान लिया ॥ ३२ ॥ फिर तो महर्षि तृणबिन्दु ने अपनी वह कन्या महर्षि पुलस्त्य को दे दी और महर्षि ने भी 'बहुत अच्छा' कहकर उस कन्या को ले लिया ॥ ३३ ॥ उसे निरन्तर अपनी सेवा में तत्पर हुआ देख महर्षि ने प्रसन्नता से कहा—'मैं तुम्हें एक पुत्र दूँगा, जो माता तथा पिता दोनों वंशों को बढ़ाने वाला होगा ॥ ३४ ॥

तदनन्तर उस कन्या ने पुलस्त्य के द्वारा त्रिलोक-विख्यात पुत्र को जन्म दिया, जो पुलस्त्यपुत्र ब्रह्मवेत्ता होकर विश्रवा के नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ ३५ ॥ उस विश्रवा के शील तथा सदाचार को देख कर महर्षि

तस्यां तु पुत्रः सञ्जज्ञे पौलस्त्याल्लोकसम्मतः ।
पितृतुल्यो वैश्रवणो ब्रह्मणा चाऽनुमोदितः ॥३७॥
ददौ तत्तपसा तुष्टो ब्रह्मा तस्मै वरं शुभम् ।
मनोऽभिलषितं तस्य धनेशत्वमखण्डितम् ॥३८॥
ततो लब्धवरः सोऽपि पितरं द्रष्टुमागतः ।
पुष्पकेण धनाध्यक्षो ब्रह्मदत्तेन भास्वता ॥३९॥
नमस्कृत्याथ पितरं निवेद्य तपसः फलम् ।
प्राह मे भगवान् ब्रह्मा दत्त्वा वरमनिन्दितम् ॥४०॥
निवासाय न मे स्थानं दत्तवान् परमेश्वरः ।
ब्रूहि मे नियतं स्थानं हिंसा यत्र न कस्यचित् ॥४१॥
विश्रवा अपि तं प्राह लङ्का नाम पुरी शुभा ।
राक्षसानां निवासाय निर्मिता विश्वकर्मणा ॥४२॥
त्यक्त्वा विष्णुभयाद् दैत्या विविशुस्ते रसातलम् ।
सा पुरी दुष्प्रधर्षाऽन्यैर्मध्ये सागरमास्थिता ॥४३॥

---

भरद्वाज ने प्रसन्न होकर अपनी कन्या उसे विवाह दी ॥ ३६ ॥ उन विश्रवा के द्वारा उस कन्या में त्रिलोक में प्रसिद्ध एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह विश्रवा का पुत्र अपने पिता के समान था तथा ब्रह्मा जी ने उसकी प्रशंसा की थी ॥ ३७ ॥ ब्रह्मा ने उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर उसे मनोऽभिलषित वर तथा अखण्डित धनेश्वरता प्रदान की ॥३८॥ ब्रह्मा के द्वारा इस प्रकार वरदान प्राप्त कर वह धनाध्यक्ष होकर उन्हीं के द्वारा दिये गये पुष्पक-विमान पर चढ़ कर अपने पिता से मिलने के लिये आया ॥ ३९ ॥ उसने अपने पिता को नमस्कार कर उनसे अपने तपस्या से प्राप्त हुए वरदान का समाचार सुनाया और कहा कि यद्यपि ब्रह्मा ने मुझे अत्युत्तम वरदान दिया है ॥ ४० ॥ किन्तु उन परमेश्वर ने मुझे रहने के लिए कोई स्थान नहीं दिया। अतः आप मुझे कोई ऐसा स्थान बतावें जहाँ किसी की हिंसा न करनी पड़े ॥ ४१ ॥

तब विश्रवा ने उससे कहा---विश्वकर्मा ने राक्षसों के रहने के लिए लङ्का नाम की एक सुन्दर पुरी का निर्माण किया है ॥ ४२॥ किन्तु विष्णु

तत्र वासाय गच्छ त्वं नाऽन्यैः साऽधिष्ठिता पुरा ।
पित्रादिष्टस्त्वसौ गत्वा तां पुरीं धनदोऽविशत् ॥४४॥
स तत्र सुचिरं कालमुवास पितृसम्मतः ।
कस्यचित्त्वथ कालस्य सुमाली नाम राक्षसः ॥४५॥
रसातलान् मर्त्यलोकं चचार पिशिताशनः ।
गृहीत्वा तनयां कन्यां साक्षाद् देवीमिव श्रियम् ॥४६॥
अपश्यद् धनदं देवं चरन्तं पुष्पकेण सः ।
हिताय चिन्तयामास राक्षसानां महामनाः ॥४७॥
उवाच तनयां तत्र कैकसीं नाम नामतः ।
वत्से ! विवाहकालस्ते यौवनं चातिवर्तते ॥४८॥
प्रत्याख्यानाच्च भीतैस्त्वं न वरैर्गृह्यसे शुभे ! ।
सा त्वं वरय भद्रं ते मुनिं ब्रह्मकुलोद्भवम् ॥४९॥
स्वयमेव ततः पुत्रा भविष्यन्ति महाबलाः ।
ईदृशाः सर्वशोभाढ्या धनदेन समाः शुभे ! ॥५०॥

---

के भय से अब दैत्य लोग उसे छोड़ कर पाताल चले गये हैं। उस पुरी पर अन्य शत्रुओं द्वारा आक्रमण करना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि वह समुद्र के मध्य भाग में बसी हुई है ॥४३॥ इस लिए तुम वहाँ रहने के लिए चले जाओ। इससे पहले अभी वहाँ किसी का अधिकार नहीं हुआ है। इस प्रकार पिता की आज्ञा पाकर उस पुरी में कुबेर जा कर रहने लगे ॥४४॥ पिता की सम्मति से वहाँ उन्होंने बहुत काल पर्यन्त निवास किया। एक समय सुमाली नामक मांसभोजी राक्षस साक्षात् लक्ष्मी के समान परम सुन्दरी अपनी कन्याओं को लेकर रसातल से आकर मृत्युलोक में घूम रहा था ॥४५-४६॥ उसने पुष्पक विमान पर चढ़ कर घूमते हुए कुबेर को देखा तथा उस महामनस्वी ने राक्षसों के हित का उपाय सोचा ॥४७॥

विचार करने के पश्चात् उसने अपनी कैकसी नाम वाली कन्या से कहा—बेटी ! तेरे विवाह का समय तथा जवानी की अवस्था बीतती जा रही है ॥४८॥ किन्तु हे सुन्दरि ! तुम 'अस्वीकार कर दोगी' इसलिए कोई भी वर तुम्हें वरण नहीं करना चाहता, तुम्हारा कल्याण हो, तुम स्वयं ही जा कर ब्रह्मवंश में उत्पन्न हुए महर्षि विश्रवा को वरण कर,

तथेति साऽऽश्रमं गत्वा मुनेरग्रे व्यवस्थिता ।
लिखन्ती भुवमग्रेण पादेनाऽधोमुखी स्थिता ॥५१॥
तामपृच्छन् मुनिः का त्वं कन्याऽसि वरवर्णिनि ! ।
साऽब्रवीत् प्राञ्जलिर्ब्रह्मन् ! ध्यानेन ज्ञातुमर्हसि ॥५२॥
ततो ध्यात्वा मुनिः सर्वं ज्ञात्वा तां प्रत्यभाषत ।
ज्ञातं तवाऽभिलषितं मत्तः पुत्रानभीप्स्यसि ॥५३॥
दारुणायां तु वेलायामागतासि सुमध्यमे ! ।
अतस्ते दारुणौ पुत्रौ राक्षसौ सम्भविष्यतः ॥५४॥
साऽब्रवीन् मुनिशार्दूल ! त्वत्तोऽप्येवंविधो सुतौ ।
तामाह पश्चिमो यस्ते भविष्यति महामतिः ॥५५॥
महाभागवतः श्रीमान् रामभक्त्येकतत्परः ।
इत्युक्ता सा तथा काले सुषुवे दशकन्धरम् ॥५६॥

---

हे शुभे ! उनसे इस कुबेर के समान सर्व-शोभासम्पन्न और महाबलवान् अनेक पुत्र स्वयं उत्पन्न होंगे ॥४९-५०॥ तदनन्तर वह 'तथास्तु' कह कर उन विश्रवा मुनि के आश्रम पर पहुँच गयी और अपने पैर के अग्रभाग से पृथ्वी को कुरेदती हुई महर्षि के सामने नीचे मुख किये खड़ी हो गयी ॥५१॥

तदनन्तर मुनीश्वर ने उससे पूछा––हे सुन्दर वर्ण वाली ! तुम किसकी कन्या हो ? मुनि से इस प्रकार पूछे जाने पर उसने हाथ जोड़कर कहा––आप ध्यान से सब कुछ जान सकते हैं ॥५२॥ मुनीश्वर ने ध्यान द्वारा सारी बातें जान कर उससे कहा––मैंने तुम्हारा मनोरथ जान लिया। तुम मुझसे पुत्र की इच्छा कर यहाँ आयी हो ॥५३॥ किन्तु हे सुमध्यमे ! तुम मेरे पास इस घोर वेला में आई हुई हो, अतः तुम दो महाभयंकर राक्षस पुत्रों को उत्पन्न करोगी ॥५४॥ केकसी ने कहा––महाराज ! क्या आप के द्वारा इस प्रकार के पुत्र उत्पन्न होने चाहिए। मुनीश्वर ने कहा––उनके पश्चात् जो तुम्हारा छोटा पुत्र उत्पन्न होगा ॥५५॥

वह महाबुद्धिमान्, महाभागवत, श्रीसम्पन्न तथा एकमात्र राम की भक्ति में तत्पर रहेगा। मुनीश्वर के इस प्रकार कहने पर उस केकसी

रावणं विंशतिभुजं दशशीर्षं सुदारुणम् ।
तद्रक्षोजातमात्रेण चचाल च वसुन्धरा ॥५७॥
बभूवुर्नाशहेतूनि निमित्तान्यखिलान्यपि ।
कुम्भकर्णस्ततो जातो महापर्वतसन्निभः ॥५८॥
ततः शूर्पणखा नाम जाता रावणसोदरी ।
ततो विभीषणो जातः शान्तात्मा सौम्यदर्शनः ॥५९॥
स्वाध्यायी नियताहारो नित्यकर्मपरायणः ।
कुम्भकर्णस्तु दुष्टात्मा द्विजान् सन्तुष्टचेतसः ॥६०॥
भक्षयन्नृषिसङ्घांश्च विचचारातिदारुणः ।
रावणोऽपि महासत्त्वो लोकानां भयदायकः ।
ववृधे लोकनाशाय ह्यामयो देहिनामिव ॥६१॥
राम ! त्वं सकलान्तरस्थमभितो जानासि विज्ञानदृक्
साक्षी सर्वहृदि स्थितो हि परमो नित्योदितो निर्मलः ।
त्वं लीलामनुजाकृतिः स्वमहिमन् ! मायागुणैर्नाज्यसे
लीलार्थं प्रतिचोदितोऽद्य भवता वक्ष्यामि रक्षोद्भवम् ॥६२॥

---

राक्षसी ने यथासमय दश शिर, बीसभुजा वाले महाभयानक रावण को उत्पन्न किया। उस राक्षस के उत्पन्न होते ही पृथ्वी कम्पित हो गयी ॥५६-५७॥ उस समय संसार के विनाश के अनेक अपशकुन होने लगे। फिर रावण के पश्चात् महान् पर्वत के समान डील-डौल वाला कुम्भकर्ण उत्पन्न हुआ ॥५८॥ तत्पश्चात् रावण की सहोदर बहन शूर्पणखा का जन्म हुआ। फिर शान्तचित्त और सौम्यमूर्ति विभीषण का जन्म हुआ। वह स्वाध्यायशील और नियमित भोजन करने वाला तथा नित्य कर्मपरायण था। किन्तु दुष्टबुद्धि वाला भयानक कुम्भकर्ण सन्तोषी ब्राह्मणों तथा ऋषिसमूहों को भक्षण करता हुआ पृथ्वी पर विचरण करने लगा। इसी प्रकार महापराक्रमी रावण भी प्राणियों का नाश करने वाले भयानक रोग के समान संसार के विनाश करने हेतु दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा ॥५९-६१॥

तदनन्तर महर्षि अगस्त्य ने पुनः कहा—हे राम ! आप सभी प्राणियों

जानामि केवलमनन्तमचिन्त्यशक्तिं
चिन्मात्रमक्षरमजं विदितात्मतत्त्वम् ।
त्वां राम ! गूढनिजरूपमनुप्रवृत्तो
मूढोऽप्यहं भवदनुग्रहतश्चरामि ॥६३॥

एवं वदन्तमिनवंशपवित्रकीर्तिः
कुम्भोद्भवं रघुपतिः प्रहसन् बभाषे ।
मायाश्रितं सकलमेतदनन्यकत्वान्
मत्कीर्तनं जगति पापहरं निबोध ॥६४॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
उत्तरकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥



---

के अन्तःकरण में विराजमान हैं, अतः साक्षी होने के कारण आप विज्ञान-दृष्टि से सब कुछ जानने वाले हैं। आप श्रेष्ठ, नित्य प्रबुद्ध तथा निर्मल हैं। हे अपनी महिमा में स्थित रहने वाले परमात्मन् ! आप लीला से ही मनुष्य रूप धारण किये हुए हैं किन्तु माया के गुणों से आप लिप्त नहीं होते। आप ने मुझसे यह प्रसंग लीलापूर्वक ही पूछा है, अतः आप की प्रेरणा से मैं यह सब राक्षसों का जन्म-वृत्तान्त सुना रहा हूँ ॥६२॥

हे राम ! मैं आपको एकमात्र, अनन्त, अचिन्त्यशक्ति, चिन्मात्र, अक्षर, अजन्मा तथा आत्मतत्त्वज्ञ जानता हूँ, तथा अपने स्वरूप को गुप्त रखने वाले आप के भजन में प्रवृत्त रहने वाला मैं आप के अनुग्रह से स्वच्छन्द पृथ्वी में विचरण करता हूँ ॥६३॥

अगस्त्य जी के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर सूर्यवंश के परम पुण्य यशःस्वरूप श्रीरघुनाथ जी ने हँस कर उनसे कहा—हे महामुने ! यह सारा संसार ही माया के अश्रित है किन्तु इतना होते हुए भी वह मुझसे भिन्न नहीं है। और मेरा गुण-कीर्त्तन ही इस संसार के मनुष्यों के पाप को दूर करने वाला है, ऐसा तुम जानो ॥६४॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या विभूषित अध्यात्म-रामायण के
उमा-महेश्वर संवाद में उत्तरकाण्ड का प्रथम सर्ग समाप्त ॥ १ ॥



## द्वितीयः सर्गः

( राक्षसोंके राज्य स्थापनका विवरण )

श्रीमहादेव उवाच

श्रीरामवचनं श्रुत्वा परमानन्दनिर्भरः ।
मुनिः प्रोवाच सदसि सर्वेषां तत्र शृण्वताम् ॥ १ ॥

अथ वित्तेश्वरो देवस्तत्र कालेन केनचित् ।
आययौ पुष्पकारूढः पितरं द्रष्टुमञ्जसा ॥ २ ॥

दृष्ट्वा तं कैकसी तत्र भ्राजमानं महौजसम् ।
राक्षसी पुत्रसामीप्यं गत्वा रावणमब्रवीत् ॥ ३ ॥

पुत्र ! पश्य धनाध्यक्षं ज्वलन्तं स्वेन तेजसा ।
त्वमप्येवं यथा भूयास्तथा यत्नं कुरु प्रभो ! ॥ ४ ॥

तच्छ्रुत्वा रावणो रोषात् प्रतिज्ञामकरोद् द्रुतम् ।
धनदेन समो वाऽपि ह्यधिको वाऽचिरेण तु ॥ ५ ॥

---

श्रीमहादेव जी ने कहा––हे पार्वति ! श्रीराम के वचनों को सुन कर महर्षि अगस्त्य आनन्द से विभोर हो गये। और सभा में सबके सुनते हुए इस प्रकार करने लगे ॥१॥ हे राम ! लङ्का में निवास करने के बाद कुछ काल के अनन्तर धनपति कुबेर पुष्पक विमान पर चढ़कर अपने पिता को देखने के लिए अकस्मात् उनके आश्रम पर पहुँचे ॥२॥ कैकसी, महावीर्यवान्, परमतेजस्वी कुबेर को पिता के पास आया देखकर अपने पुत्र रावण के पास जा कर कहने लगी–॥३॥

हे पुत्र ! अपने तेज से देदीप्यमान इन धनाध्यक्ष कुबेर को देखो। हे सर्वसमर्थ ! तुम जिस प्रकार इतने तेजस्वी बन सको, वह उपाय करो ॥४॥ अपनी माता की बात सुनते ही रावण ने तुरन्त ही रोष में भर कर प्रतिज्ञा की। हे सुव्रते ! 'तुम दुःखी मत हो, हे अम्ब ! मैं शीघ्र ही कुबेर के समान अथवा इनसे भी अधिक ऐश्वर्यशाली हो जाऊँगा,

भविष्याम्यम्ब ! मां पश्य सन्तापं त्यज सुव्रते ! ।
इत्युक्त्वा दुष्करं कर्तुं तपः स दशकन्धरः ॥ ६ ॥
अगमत् फलसिद्ध्यर्थं गोकर्णं तु सहानुजः ।
स्वं स्वं नियममास्थाय भ्रातरस्ते तपो महत् ॥ ७ ॥
आस्थिता दुष्करं घोरं सर्वलोकैकतापनम् ।
दशवर्षसहस्राणि कुम्भकर्णोऽकरोत्तपः ॥ ८ ॥
विभीषणोऽपि धर्मात्मा सत्यधर्मपरायणः ।
पञ्चवर्षसहस्राणि पादेनैकेन तस्थिवान् ॥ ९ ॥
दिव्यवर्षसहस्रं तु निराहारो दशाननः ।
पूर्णे वर्षसहस्रे तु शीर्षमग्नौ जुहाव सः ।
एवं वर्षसहस्राणि नव तस्यातिचक्रमुः ॥१०॥
अथ वर्षसहस्रं तु दशमे दशमं शिरः ।
छेत्तुकामस्य धर्मात्मा प्राप्तश्चाऽथ प्रजापतिः ।
वत्स वत्स दशग्रीव ! प्रीतोऽस्मीत्यभ्यभाषत ॥११॥

---

तब तुम मुझे देखना' । ऐसा कह कर वह रावण अपने भाइयों सहित अपनी अभीष्ट-सिद्धि के लिए गोकर्ण क्षेत्र में दुष्कर तपस्या करने के लिए चला गया । वहाँ वे तीनों भाई नियम में दृढ़ होकर सारे संसार को तपाने वाला महान्, दुष्कर घोर तप करने लगे । उनमें कुम्भकर्ण ने दश हजार वर्ष पर्यन्त घोर तप किया ॥५-८॥

इधर धर्मात्मा विभीषण भी सत्य और धर्म में परायण रह कर पाँच हजार वर्ष पर्यन्त खड़े रह कर तपस्या करते रहे ॥ ९ ॥ और रावण एक हजार दिव्य वर्ष तक निराहार रह कर तपस्या करता रहा । सहस्र वर्ष पूर्ण हो जाने पर उसने अपना एक सिर अग्नि में हवन कर दिया । इस प्रकार प्रति एक हजार वर्ष पर एक सिर की आहुति देकर तप करते हुए उस रावण को नव हजार वर्ष बीत गये ॥ १० ॥ जब दस हजार वर्ष पूर्ण होने पर रावण अपना दसवाँ सिर काटने को उद्यत हुआ तब धर्मात्मा ब्रह्मदेव प्रकट हो कर रावण से कहने लगे—'पुत्र रावण ! मैं तुम्हारे ऊपर

वरं वरय दास्यामि यत्ते मनसि काङ्क्षितम् ।
दशग्रीवोऽपि तच्छ्रुत्वा प्रहृष्टेनाऽन्तरात्मना ॥१२॥
अमरत्वं वृणोमीश ! वरदो यदि मे भवान् ।
सुपर्ण-नाग-यक्षाणां देवतानां तथाऽसुरैः ।
अवध्यत्वं तु मे देहि तृणभूता हि मानुषाः ॥१३॥
तथाऽस्त्विति प्रजाध्यक्षः पुनराह दशाननम् ।
अग्नौ हुतानि शीर्षाणि यानि तेऽसुरपुङ्गव ! ॥१४॥
भविष्यन्ति यथापूर्वमक्षयाणि च सत्तम ! ॥१५॥
एवमुक्त्वा ततो राम ! दशग्रीवं प्रजापतिः ।
विभीषणमुवाचेदं प्रणतं भक्तवत्सलः ॥१६॥
विभीषण ! त्वया वत्स ! कृतं धर्मार्थमुत्तमम् ।
तपस्ततो वरं वत्स ! वृणीष्वाऽभिमतं हितम् ॥१७॥

---

अत्यन्त प्रसन्न हूँ ॥ ११ ॥ तू मुझसे वर माँग, मैं तेरी जैसी इच्छा होगी वही वरदान दूँगा।' इस बात को सुनते ही रावण अत्यन्त प्रसन्न होकर बोला—॥ १२ ॥

हे ईश्वर ! मैं आप से अमर रहने का वरदान माँगता हूँ, यदि आप मुझे वर देना ही चाहते हैं तो यही वरदान दीजिए। 'मैं गरुड़, नाग, यक्ष, देवता तथा दानव आदि किसी के द्वारा न मारा जा सकूँ। बेचारे मनुष्य तो तिनके के समान हैं, उनसे मुझे कोई भय नहीं है ॥ १३ ॥ ब्रह्माजी ने 'तथास्तु' ( ऐसा ही हो ) कह कर रावण से पुनः कहा—'हे असुरपुङ्गव' ! तुमने अग्नि में जितने सिर का हवन किया है, वे सिर पहले के समान तुम्हें पुनः प्राप्त हो जायेंगे और हे सत्तम ! उन सिरों का कभी विनाश न होगा ॥१४-१५॥

हे राम ! भक्तवत्सल प्रजापति ब्रह्मा ने रावण से इस प्रकार कहने के उपरान्त विनम्र हुए विभीषण से कहा—॥ १६ ॥ हे वत्स विभीषण ! तुमने धर्मप्राप्ति के लिए यह उत्तम तप किया है, अतः हे वत्स ! तुम्हें

विभीषणोऽपि तं नत्वा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ।
देव ! मे सर्वदा बुद्धिर्धर्मे तिष्ठतु शाश्वती ।
मा रोचयत्वधर्मं मे बुद्धिः सर्वत्र सर्वदा ॥१८॥
ततः प्रजापतिः प्रीतो विभीषणमथाऽब्रवीत् ।
वत्स ! त्वं धर्मशीलोऽसि तथैव च भविष्यसि ॥१९॥
अयाचितोऽपि ते दास्ये ह्यमरत्वं विभीषण ! ।
कुम्भकर्णमथोवाच वरं वरय सुव्रत ! ॥२०॥
वाण्या व्याप्तोऽथ तं प्राह कुम्भकर्णः पितामहम् ।
स्वप्स्यामि देव ! षण्मासान् दिनमेकं तु भोजनम् ॥२१॥
एवमस्तित्वति तं प्राह ब्रह्मा दृष्ट्वा दिवौकसः ।
सरस्वती च तद्वक्त्रान् निर्गता प्रययौ दिवम् ॥२२॥
कुम्भकर्णस्तु दुष्टात्मा चिन्तयामास दुःखितः ।
अनभिप्रेतमेवास्तात् किं निर्गतमहो विधिः ॥२३॥

---

जो अभीष्ट तथा हितकारी वर हो मुझसे माँग लो ॥ १७ ॥ तब विभीषण भी उन्हें प्रणाम कर हाथ जोड़कर कहा—हे देव ! हमारी बुद्धि सर्वदा निश्चलरूप से धर्म में, लगी रहे और सुख-दुःखादि सभी अवस्थाओं में सर्वदा मेरा अधर्म में रुचि न हो ॥ १८ ॥

तदनन्तर ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर विभीषण से कहा—पुत्र ! तुम अत्यन्त धर्मनिष्ठ हो, अतः जैसा चाहते हो वैसा ही होगा ॥ १९ ॥ पुनः प्रजापति ने प्रसन्न होकर विभीषण से कहा—हे विभीषण ! यद्यपि तुम मुझसे नहीं माँगते तथापि मैं अपनी ओर से तुम्हें अमरता का वरदान देता हूँ। पुनः ब्रह्मदेव कुम्भकर्ण के पास जाकर बोले—हे सुव्रत ! तुम मुझसे वर माँगो ॥ २० ॥ कुम्भकर्ण ने देवी सरस्वती की प्रेरणा से मोहित हो कर ब्रह्मदेव से कहा—हे देव ! मैं छह मास तक सोता रहूँ और एक दिन भोजन करूँ ॥ २१ ॥ ब्रह्मा ने देवताओं की ओर देखते हुए कहा—'ऐसा ही हो'। उनके ऐसा कहते ही सरस्वती कुम्भकर्ण के मुख से निकलकर

सुमाली वरलब्धांस्तान् ज्ञात्वा पौत्रान् निशाचरान् ।
पातालान्निर्भयः प्रायात् प्रहस्तादिभिरन्वितः ॥२४॥
दशग्रीवं परिष्वज्य वचनं चेदमब्रवीत् ।
दिष्ट्या ते पुत्र ! संवृत्तो वाञ्छितो मे मनोरथः ॥२५॥
यद्भयाच्च वयं लङ्कां त्यक्त्वा याता रसातलम् ।
तद्गतं नो महाबाहो ! महद्विष्णुकृतं भयम् ॥२६॥
अस्माभिः पूर्वमुषिता लङ्केयं धनदेन ते ।
भ्रात्राक्रान्तामिदानीं त्वं प्रत्यानेतुमिहार्हसि ॥२७॥
साम्ना वाऽथ बलेनापि राज्ञां बन्धुः कुतः सुहृत् ।
इत्युक्तो रावणः प्राह नार्हस्येवं प्रभाषितुम् ॥२८॥
वित्तेशो गुरुरस्माकमेवं श्रुत्वा तमब्रवीत् ।
प्रहस्तः प्रश्रितं वाक्यं रावणं दशकन्धरम् ॥२९॥

---

स्वर्गलोक चली गयीं ॥२२॥ फिर, दुष्टात्मा कुम्भकर्ण मन ही मन दुःखी हो विचार करने लगा—ओह ! दैव बड़ा बलवान् है, मेरे मुख से इस प्रकार की बात, जिसकी मुझे इच्छा नहीं थी किस प्रकार निकल आयी ॥२३ ॥

अपने तीनों नातियों के वर प्राप्त करने का समाचार सुनकर राक्षस सुमाली भी प्रहस्त आदि राक्षसों को लेकर निर्भय हो पाताल से चला आया ॥ २४ ॥ फिर रावण को हृदय से लगाकर बोला—हे पुत्र ! यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि मैं जैसा चाहता था उस मनोरथ को तुमने पूर्ण किया ॥ २५ ॥ हे महाबाहो ! जिस विष्णु के भय से हमलोग लङ्का छोड़ कर पाताल लोक चले गये थे, अब उन विष्णु का भय हमें नहीं रहा ॥२६॥ लङ्का में पहले हम लोग ही रहा करते थे, किन्तु अब वह तुम्हारे भाई कुबेर के अधिकार में है, अच्छा हो कि तुम सामनीति से अथवा बल-प्रयोग से उसे अपने अधिकार में कर लो। बन्धुत्व का नाता त्याग करो, क्योंकि राजाओं के बन्धु कभी भी सुहृद् नहीं हुआ करते। सुमाली के इस प्रकार कहने पर रावण ने उससे कहा——आपको ऐसा नहीं कहना चाहिए, धनेश्वर कुबेर हमारे बड़े भाई हैं। रावण की बात को सुनकर प्रहस्त ने नम्रता पूर्वक कहा—॥ २७-२९ ॥

शृणु रावण ! यत्नेन नैवं त्वं वक्तुमर्हसि ।
नाधीता राजधर्मास्ते नीतिशास्त्रं तथैव च ॥३०॥
शूराणां न हि सौभ्रात्रं शृणु मे वदतः प्रभो ! ।
कश्यपस्य सुता देवा राक्षसाश्च महाबलाः ॥३१॥
परस्परमयुध्यन्त त्यक्त्वा सौहृदमायुधैः ।
नैवेदानीन्तनं राजन् ! वैरं देवैरनुष्ठितम् ॥३२॥
प्रहस्तस्य वचः श्रुत्वा दशग्रीवो दुरात्मनः ।
तथेति क्रोधताम्राक्षस्त्रिकूटाचलमन्वगात् ॥३३॥
दूतं प्रहस्तं सम्प्रेष्य निष्कास्य धनदेश्वरम् ।
लङ्कामाक्रम्य सचिवै राक्षसैः सुखमास्थितः ॥३४॥
धनदः पितृवाक्येन त्यक्त्वा लङ्कां महायशाः ।
गत्वा कैलासशिखरं तपसाऽतोषयच्छिवम् ॥३५॥

---

हे रावण ! तुम मेरी बात ध्यान से सुनो, तुम्हें ऐसी बात कदापि नहीं कहनी चाहिए। अभी तुमने राजधर्म तथा नीतिशास्त्र का अध्ययन नहीं किया है ॥३०॥ शूरवीरों में भ्रातृत्व का नाता नहीं हुआ करता, इस विषय में मैं आप से जो निवेदन कर रहा हूँ उसे सुनिए। कश्यप के महाबलवान् देवता और राक्षस दोनों ही पुत्र थे, जिनमें राक्षस बहुत अधिक बलवान् थे ॥३१॥ किन्तु वे दोनों बन्धुत्व का भाव त्याग कर आपस में अस्त्र-शस्त्रों से लड़ने लगे, अतः हम लोगों का देवताओं के साथ वैर आज का नहीं किन्तु बहुत पुराना है। दुरात्मा प्रहस्त की बात सुन कर रावण ने कहा, 'तो ठीक है', उस समय ऐसा कहते उसका नेत्र लाल हो गये। फिर वह त्रिकूट पर्वत पर जा पहुँचा ॥३२-३३॥ उसने प्रहस्त को अपना दूत बना कर भेजा। फिर कुबेर को लङ्का से निकाल कर उस पर अपना अधिकार कर लिया। और अपने राक्षस-मन्त्रियों के साथ स्वयं वहाँ निवास करने लगा ॥३४॥

महा यशस्वी कुवेर भी पिता की आज्ञा से लङ्कापुरी छोड़ कर कैलास पर चले गये और वहाँ उन्होंने तपस्या से सदाशिव को प्रसन्न कर

तेन सख्यमनुप्राप्य तेनैव परिपालितः ।
अलकां नगरीं तत्र निर्ममे विश्वकर्मणा ॥३६॥
दिक्पालत्वं चकारात्र शिवेन परिपालितः ।
रावणो राक्षसैः सार्धमभिषिक्तः सहानुजैः ॥३७॥
राज्यं चकाराऽसुराणां त्रिलोकीं बाधयन् खलः ।
भगिनीं कालखञ्जाय ददौ विकटरूपिणीम् ॥३८॥
विद्युज्जिह्वाय नाम्नाऽसौ महामायी निशाचरः ।
ततो मयो विश्वकर्मा राक्षसानां दितेः सुतः ॥३९॥
सुतां मन्दोदरीं नाम्ना ददौ लोकैकसुन्दरीम् ।
रावणाय पुनः शक्तिममोघां प्रीतिमानसः ॥४०॥
वैरोचनस्य दौहित्रीं वृत्रज्वालेति विश्रुताम् ।
स्वयं दत्तामुदवहत् कुम्भकर्णाय रावणः ॥४१॥
गन्धर्वराजस्य सुतां शैलूषस्य महात्मनः ।
विभीषणस्य भार्यार्थे धर्मज्ञां समुदावहत् ॥४२॥

---

लिया ॥३५॥ फिर सदाशिव से मैत्री स्थापित कर उन्हीं की रक्षा में रहते हुए वे वहीं अलकापुरी में निवास करने लगे, जिसे विश्वकर्मा ने बनवाई थी ॥३६॥ शङ्कर जी ने उन्हें सुरक्षित कर दिक्पाल बना दिया। इधर भाइयों के सहित रावण को भी राक्षसों ने राज्य-सिंहासन पर अभिषिक्त किया। वह दुष्ट तीनों लोकों को कष्ट देता हुआ राक्षसों पर राज्य करने लगा। उस महामायी राक्षस ने अपनी विकरालवदना बहन शूर्पणखा को कालखञ्ज के वंश में उत्पन्न हुए विद्युज्जिह्व नामक राक्षस को दी। इसी समय राक्षसों के शिल्पी दितिपुत्र मय ने अपनी त्रिलोकसुन्दरी कन्या मन्दोदरी को रावण से व्याह दी। तदनन्तर प्रसन्न हुए मयदानव ने उसे एक अमोघ शक्ति भी प्रदान की ॥३७-४०॥

रावण ने स्वयं लाकर दी हुई वैरोचन की दौहित्री, जिसका नाम वृत्रज्वाला था, उससे कुम्भकर्ण का विवाह कर दिया ॥४१॥ तथा गन्धर्व-राज महात्मा शैलूष की पुत्री सरमा को, जो अत्यन्त सुन्दरी, सर्वशुभ-

सरमां नाम सुभगां सर्वलक्षणसंयुताम् ।
ततो मन्दोदरी पुत्रं मेघनादमजीजनत् ॥४३॥
जातमात्रस्तु यो नादं मेघवत् प्रमुमोच ह ।
ततः सर्वेऽब्रुवन् मेघनादोऽयमिति चासकृत् ॥४४॥
कुम्भकर्णस्ततः प्राह निद्रा मां बाधते प्रभो ! ।
ततश्च कारयामास गुहां दीर्घां सुविस्तराम् ॥४५॥
तत्र सुष्वाप मूढात्मा कुम्भकर्णो विघूर्णितः ।
निद्रिते कुम्भकर्णे तु रावणो लोकरावणः ॥४६॥
ब्राह्मणान् ऋषिमुख्यांश्च देव-दानव-किन्नरान् ।
देवश्रियो मनुष्यांश्च निजघ्ने समहोरगान् ॥४७॥
धनदोऽपि ततः श्रुत्वा रावणस्याक्रमं प्रभुः ।
अधर्मं मा कुरुष्वेति दूतवाक्यैर्न्यवारयत् ॥४८॥
ततः क्रुद्धो दशग्रीवो जगाम धनदालयम् ।
विनिर्जित्य धनाध्यक्षं जहारोत्तमपुष्पकम् ॥४९॥

---

लक्षण-सम्पन्ना और समस्त धर्मों की ज्ञात्री थी, उसका विवाह विभीषण के साथ कर दिया । तत्पश्चात् मन्दोदरी ने मेघनाद नामक पुत्र उत्पन्न किया ॥४२-४३॥ उस मेघनाद ने उत्पन्न होते ही मेघ के समान गर्जना की। इसलिए सभी लोगों ने उसे बारम्बार यही कहा कि यह मेघनाद है ॥४४॥ कुम्भकर्ण ने रावण से कहा—हे प्रभो ! मुझे निद्रा सता रही है । तब रावण ने उसके सोने के लिए एक बहुत बड़ी लम्बी-चौड़ी गुफा बनवा दी ॥४५॥ उस गुफा के भीतर मन्दमति कुम्भकर्ण खुर्राटे भरता हुआ सो गया । तदनन्तर कुम्भकर्ण के सो जाने पर समस्त लोक को रुलाने वाले उस रावण ने, ब्राह्मण, मुख्य-मुख्य ऋषि, देवता, दानव, किन्नर, सर्प और मनुष्यादि को मारा तथा देवताओं की समस्त सम्पत्ति नष्ट कर दी ॥४६-४७॥

भगवान् कुबेर ने जब रावण के द्वारा किये गये इस अत्याचार को सुना तो उन्होंने अपना दूत भेज कर यह समाचार कहलवाया कि 'अधर्म मत करो' ॥४८॥ जब इसप्रकार का सन्देश देकर कुबेर ने उसे अत्याचार

ततो यमं च वरुणं निर्जित्य समरेऽसुरः ।
स्वर्गलोकमगात्तूर्णं देवराजजिघांसया ॥५०॥
ततोऽभवन् महद्युद्धमिन्द्रेण सह दैवतैः ।
ततो रावणमभ्येत्य बबन्ध त्रिदशेश्वरः ॥५१॥
तच्छ्रुत्वा सहसाऽऽगत्य मेघनादः प्रतापवान् ।
कृत्वा घोरं महद्युद्धं जित्वा त्रिदशपुङ्गवान् ॥५२॥
इन्द्रं गृहीत्वा बद्ध्वाऽसौ मेघनादो महाबलः ।
मोचयित्वा तु पितरं गृहीत्वेन्द्रं ययौ पुरम् ॥५३॥
ब्रह्मा तु मोचयामास देवेन्द्रं मेघनादतः ।
दत्त्वा वरान् बहूँस्तस्मै ब्रह्मा स्वभवनं ययौ ॥५४॥
रावणो विजयी लोकान् सर्वान् जित्वा क्रमेण तु ।
कैलासं तोलयामास बाहुभिः परिघोपमैः ॥५५॥

---

से रोकना चाहा तो रावण ने क्रुद्ध होकर उन पर चढ़ाई कर दी। और युद्ध में उन्हें परास्त कर उनका अति उत्तम पुष्पक विमान छीन लिया ॥४९॥ फिर वह राक्षस युद्ध में यम और वरुण को भी जीत कर देवराज इन्द्र का वध करने की इच्छा से स्वर्गलोक पर चढ़ आया ॥५०॥ तब देवताओं एवं इन्द्र के साथ रावण का बड़ा घमसान युद्ध हुआ। उस युद्ध में इन्द्र ने आगे बढ़ कर रावण को बाँध लिया ॥५१॥ इस समाचार को सुनते ही महाप्रतापी मेघनाद ने सहसा देवताओं के साथ घनघोर युद्ध कर देवताओं को परास्त कर दिया ॥५२॥ पुनः उसने इन्द्र को पकड़ कर बाँध लिया। इस प्रकार महाबली वह मेघनाद अपने पिता रावण को छुड़ाकर अपने साथ इन्द्र को बाँध कर लङ्का पुरी ले आया ॥५३॥ तदनन्तर ब्रह्मा जी ने जा कर इन्द्र को मेघनाद से छुड़ाया तथा उसे बहुत-सा वर दे कर अपने लोक को चले गये ॥५४॥

इस प्रकार समस्त लोकों को जीत कर वह विजयी रावण अपने परिघ के समान मोटी-मोटी भुजाओं से कैलास पर्वत को उठा लिया ॥५५॥

तत्र नन्दीश्वरेणैव शप्तोऽयं राक्षसेश्वरः ।
वानरैर्मानुषैश्चैव नाशं गच्छेति कोपिना ॥५६॥
सप्तोऽप्यगणयन् वाक्यं ययौ हैहयपत्तनम् ।
तेन बद्धो दशग्रीवः पुलस्त्येन विमोचितः ॥५७॥
ततोऽतिबलमासाद्य जिघांसुर्हरिपुङ्गवम् ।
धृतस्तेनैव कक्षेण वालिना दशकन्धरः ॥५८॥
भ्रामयित्वा तु चतुरः समुद्रान् रावणं हरिः ।
विसर्जयामास ततस्तेन सख्यं चकार सः ॥५९॥
रावणः परमप्रीत एवं लोकान् महाबलः ।
चकार स्ववशे राम ! बुभुजे स्वयमेव तान् ॥६०॥
एवम्प्रभावो राजेन्द्र ! दशग्रीवः सहेन्द्रजित् ।
त्वया विनिहतः सङ्ख्ये रावणो लोकरावणः ॥६१॥

---

नन्दीश्वर ने क्रोधित हो कर उसे शाप दिया कि तू मनुष्य और वानरों के द्वारा मारा जायेगा ।।५६।। किन्तु रावण नन्दीश्वर के दिये गये शाप की परवाह न कर बड़ी शीघ्रता से हैहयराज की राजधानी की ओर चल पड़ा। वहाँ जाने पर सहस्रार्जुन ने उसे बाँध लिया। तब पुलस्त्य जी ने जा कर उसे छुड़ाया ।।५७।। पुनः वह महाबली वानरराज बालि को मारने की इच्छा से उसके पास गया किन्तु उलटे वह रावण बालि के द्वारा काँख में दबा लिया गया ।।५८।। फिर उस बालि ने रावण को चार समुद्र पर्यन्त घुमाकर उसे छोड़ दिया। तब रामण ने उससे मित्रता कर ली ।।५९।।

अगस्त्य जी ने पुनः श्रीराम से कहा—हे राम !. इस प्रकार महाबली वह रावण समस्त लोकों को जीत कर अपने अधीन कर लिया। और परम प्रसन्न हो स्वयं उन पर अपना शासन करने लगा ।। ६० ।। हे राजेन्द्र ! रावण तथा इन्द्रजीत इस प्रकार के प्रभावशाली थे, जिनमें आपने तो लोकों को रुलाने वाले रावण को मारा और मेघनाद का

मेघनादश्च निहतो लक्ष्मणेन महात्मना ।
कुम्भकर्णश्च निहतस्त्वया पर्वतसन्निभः ॥६२॥
भवान्नारायणः साक्षाज्जगतामादिकृद् विभुः ।
त्वत्स्वरूपमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥६३॥
त्वन्नाभिकमलोत्पन्नो ब्रह्मा लोकपितामहः ।
अग्निस्ते मुखतो जातो वाचा सह रघूत्तम ! ॥६४॥
बाहुभ्यां लोकपालौघाश्चक्षुर्भ्यां चन्द्रभास्करौ ।
दिशश्च विदिशश्चैव कर्णाभ्यां ते समुत्थिताः ॥६५॥
घ्राणात् प्राणः समुत्पन्नश्चाऽश्विनौ देवसत्तमौ ।
जङ्घाजानूरुजघनाद् भुवर्लोकादयोऽभवन् ॥६६॥
कुक्षिदेशात् समुत्पन्नाश्चत्वारः सागरा हरे ! ।
स्तनाभ्यामिन्द्रवरुणौ बालखिल्याश्च रेतसः ॥६७॥
मेढ्राद्यमो गुदान् मृत्युर्मन्यो रुद्रस्त्रिलोचनः ।
अस्थिभ्यः पर्वता जाताः केशेभ्यो मेघसंहतिः ॥६८॥

---

वध महात्मा लक्ष्मण जी ने किया । तथा पर्वत के समान विशालकाय कुम्भकर्ण को भी आपने ही मारा ॥ ६१-६२ ॥

सर्व-प्रथम जगत् की रचना करने वाले सर्वव्यापक आप ही नारायण देव हैं । यह स्थावर जङ्गमात्मक सारा विश्व आप ही का स्वरूप है ॥६३॥

हे प्रभो ! आप के नाभिकमल से उत्पन्न हुए ब्रह्मा लोकपितामह कहे जाते हैं । हे रघूत्तम ! वाणी के सहित ये अग्निदेव आप के मुख से उत्पन्न हुए हैं ॥ ६४ ॥ समस्त लोकपालों के समूह आपकी भुजाओं से, चन्द्रमा और सूर्य नेत्रों से तथा दिशा-विदिशाएँ आप के कानों से उत्पन्न हुई हैं ॥ ६५ ॥ प्राण तथा देवताओं में श्रेष्ठ अश्विनीकुमार आप के घ्राणेन्द्रिय से प्रगट हुए हैं तथा भुवर्लोक आदि आपके जङ्घा, जानु, ऊरु और जघनादि अङ्गों से उत्पन्न हुए हैं ॥ ६६ ॥ हे हरे ! चारों समुद्र आप की कुक्षि से, इन्द्र तथा वरुण आप के स्तनों से और बालखिल्यादि मुनीश्वर आपके वीर्य से उत्पन्न हुए हैं ॥ ६७ ॥ यम आप की उपस्थेन्द्रिय

ओषध्यस्तव रोमेभ्यो नखेभ्यश्च खरादयः ।
त्वं विश्वरूपः पुरुषो मायाशक्तिसमन्वितः ॥६९॥

नानारूप इवाभासि गुणव्यतिकरे सति ।
त्वामाश्रित्यैव विबुधाः पिबन्त्यमृतमध्वरे ॥७०॥

त्वया सृष्टमिदं सर्वं विश्वं स्थावरजङ्गमम् ।
त्वामाश्रित्यैव जीवन्ति सर्वं स्थावरजङ्गमाः ॥७१॥

त्वद्युक्तमखिलं वस्तु व्यवहारेऽपि राघव ! ।
क्षीरमध्यगतं सर्पिर्यथा व्याप्याऽखिलं पयः ॥७२॥

त्वद्भासा भासतेऽर्कादि न त्वं तेनाऽवभाससे ।
सर्वगं नित्यमेकं त्वां ज्ञानचक्षुर्विलोकयेत् ॥७३॥

नाऽज्ञानचक्षुस्त्वां पश्येदन्धदृग् भास्करं यथा ।
योगिनस्त्वां विचिन्वन्ति स्वदेहे परमेश्वरम् ॥७४॥

---

से, मृत्यु गुदा से, त्रिनेत्र महादेव जी आप के क्रोध से, पर्वत-समूह अस्थियों से, मेघ केशों से तथा औषधियाँ रोमों से एवं गधे आदि आप के नखों से उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार अपनी माया शक्ति से युक्त आप ही विश्वरूप परमपुरुष हैं ॥ ६८-६९ ॥ प्रकृति के गुणों के सम्मिश्रण होने पर आप ही अनेकों रूपों में दिखाई पड़ते हैं। देवगण आप का ही आश्रय पाकर यज्ञों में अमृत पान करते हैं ॥ ७० ॥ यह स्थावर-जङ्गमात्मक सारा जगत् आप ने ही निर्माण किया है। तथा ये सभी स्थावर-जङ्गमात्मक प्राणी आप के ही आश्रय से जीवित रहते हैं ॥ ७१ ॥

हे राघव ! जिस प्रकार दूध में मिला हुआ घी उसमें व्याप्त होकर स्थित रहता है, उसी प्रकार व्यवहारकाल में भी समस्त वस्तुएँ आप से व्याप्त रहती हैं ॥ ७२ ॥ हे प्रभो ! यह समस्त चन्द्रादि आप के ही प्रकाश से प्रकाशित रहते हैं किन्तु आप उनसे प्रकाशित नहीं होते। आप सर्वगत नित्य तथा एकरस हैं, आप ज्ञान-दृष्टि से दिखाई पड़ते हैं ॥ ७३ ॥ जिस प्रकार अन्धा पुरुष सूर्य को नहीं देख सकता, उसी प्रकार ज्ञानचक्षु से रहित पुरुष भी आप का दर्शन करने में सर्वथा असमर्थ है। योगी

अतन्निरसनमुखैर्वेदशीर्षैरहर्निशम् ।
त्वत्पादभक्तिलेशेन गृहीता यदि योगिनः ॥७५॥
विचिन्वन्तो हि पश्यन्ति चिन्मात्रं त्वां न चाऽन्यथा ।
मया प्रलपितं किञ्चित् सर्वज्ञस्य तवाऽग्रतः ।
क्षन्तुमर्हसि देवेश ! तवाऽनुग्रहभागहम् ॥७६॥
दिग्देश-काल-परिहीनमनन्यमेकं
चिन्मात्रमक्षरमजं चलनादिहीनम् ।
सर्वज्ञमीश्वरमनन्तगुणं व्युदस्त-
मायं भजे रघुपतिं भजतामभिन्नम् ॥७७॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
उत्तरकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

□

---

लोग निषेध मुख से 'नेति नेति' वाक्यों से बोध कराने वाले उपनिषदों द्वारा आप परमात्मा को अहर्निश अपने शरीर में ही खोजते-फिरते हैं। यदि वे योगिजन आप के चरणों में लेशमात्र भी भक्ति रखते हैं तब वे खोजते-खोजते अन्त में चिन्मात्रस्वरूप आप को देख पाते हैं। इसके अतिरिक्त आप को प्राप्त करने का कोई और उपाय नहीं है। आप सर्वज्ञ के सामने हमने कुछ प्रलाप किया है किन्तु हे देवेश ! आप मुझे क्षमा करें। मैं तो आप के कृपा का पात्र हूँ॥ ७४-७६॥

जो दिशा, देश एवं काल से रहित हैं, अद्वितीय, एक, चिन्मात्र, अविनाशी, अजन्मा तथा चलनादि क्रिया से रहित हैं, उन सर्वज्ञ, एवं अनन्त गुण सम्पन्न सर्वेश्वर श्रीरघुनाथ जी को मैं भजता हूँ, जो अपने भक्तजनों से सर्वदा अभिन्न और माया से रहित हैं॥७७॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी व्यख्या विभूषित अध्यात्म-रामायण के उमा-महेश्वर संवाद में उत्तरकाण्ड का द्वितीय सर्ग समाप्त॥२॥

□

## तृतीयः सर्गः

(वाली एवं सुग्रीवका पूर्वचरित्र तथा रावण-सनत्कुमार का संवाद वर्णन)

श्रीराम उवाच

वालिसुग्रीवयोर्जन्म श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।
रवीन्द्रौ वानराकारौ जज्ञात इति नः श्रुतम् ॥ १ ॥

श्रीअगस्त्य उवाच

मेरोः स्वर्णमयस्याद्रेर्मध्यशृङ्गे मणिप्रभे ।
तस्मिन् सभास्ते विस्तीर्णा ब्रह्मणः शतयोजना ॥ २ ॥
तस्यां चतुर्मुखः साक्षात कदाचिद्योगमास्थितः ।
नेत्राभ्यां पतितं दिव्यमानन्दसलिलं बहु ॥ ३ ॥
तद् गृहीत्वा करे ब्रह्मा ध्यात्वा किञ्चित् तदत्यजत् ।
भूमौ पतितमात्रेण तस्माज्जातो महाकपिः ॥ ४ ॥
तमाह द्रुहिणो वत्स ! किञ्चित् कालं वासऽत्र मे ।
समीपे सर्वशोभाढ्ये ततः श्रेयो भविष्यति ॥ ५ ॥

---

श्रीरामचन्द्र जी ने कहा—हे मुने ! मैं बाली और सुग्रीव का जन्म यथार्थ रूप से सुनना चाहता हूँ । मैंने सुना है कि इन्द्र और सूर्य ही वानर रूप से उत्पन्न हुए थे ॥१॥

अगस्त्य जी बोले—हे राम ! सुवर्णमय मेरु पर्वत के मणि के समान प्रकाशमान मध्यशिखर पर ब्रह्मा जी की सौ योजन विस्तार वाली एक सभा है ॥२॥

उस सभा में साक्षात् चतुर्मुख ब्रह्मा जी किसी समय समाधि लगाये बैठे थे, उस समय उनके नेत्रों से बहुत से दिव्य आनन्द्राश्रु गिरे ॥३॥ ब्रह्मा जी ने उन आनन्द्राश्रुओं को अपने हाथ में लेकर कुछ विचार करते हुए पृथ्वी पर छोड़ दिया । पृथ्वी पर गिरते ही उनसे एक बहुत बड़ा वानर उत्पन्न हो गया ॥४॥

उससे ब्रह्मदेव ने कहा—वत्स ! तू कुछ काल तक इस सर्व-शोभा-सम्पन्न

इत्युक्ते न्यवसत्तत्र ब्रह्मणा वानरोत्तमः।
एवं बहुतिथे काले गते ऋक्षाधिपः सुधीः ॥ ६ ॥
कदाचित् पर्यटन्नद्रौ फलमूलार्थमुद्यतः।
अपश्यद् दिव्यसलिलां वापीं मणिशीलान्विताम् ॥ ७ ॥
पानीयं पातुमागच्छत्तत्र छायामयं कपिम्।
दृष्ट्वा प्रतिकपिं मत्वा निपपात जलान्तरे ॥ ८ ॥
तत्राऽदृष्ट्वा हरिं शीघ्रं पुनरुत्प्लुत्य वानरः।
अपश्यत् सुन्दरीं रामामात्मानं विस्मयं गतः ॥ ९ ॥
ततः सुरेशो देवेशं पूजयित्वा चतुर्मुखम्।
गच्छन् मध्याह्नसमये दृष्ट्वा नारीं मनोरमाम् ॥१०॥
कन्दर्पशरविद्धाङ्गस्त्यक्तवान् वीर्यमुत्तमम्।
तामप्राप्यैव तद्बीजं बालदेशेऽपतद् भुवि ॥११॥

---

स्थान में मेरे साथ रह। ऐसा करने से तेरा कल्याण होगा।।५।।ब्रह्मा के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर वह वानरश्रेष्ठ वहीं पर निवास करने लगा। इस प्रकार निवास करते हुए एक दिन उस ऋक्षराज नामक वानर ने फल-मूलादि ले आने के उद्देश्य से घूमते-घूमते एक दिव्य जलपूर्ण और रत्नजटित शिलाओं से सुशोभित बावड़ी देखी ।। ६-७ ।। जब वह वहाँ पानी पीने के लिए उतरा तो उसने जल में एक छायामय वानर देखा। उसे अपना प्रतिद्वन्द्वी वानर जानकर वह उस जल में कूद गया ।। ८ ।। किन्तु वहाँ कोई भी वानर न देखकर वह शीघ्रता से उछल कर बावड़ी के बाहर आ गया और अपने को एक परम सुन्दरी रमणी के रूप में देखकर आश्चर्य-चकित हो गया ।। ९ ।।

उस समय देवराज इन्द्र मध्याह्नकाल में देवेश चतुर्मुख ब्रह्मा की पूजा कर लौट रहे थे। जब उन्होंने उस परम सुन्दरी स्त्री को देखा तो वे काम के बाणों से बहुत व्यथित हो गये और उनका उत्तम वीर्य स्खलित हो गया। उनका वह वीर्य उस स्त्री को प्राप्त न होकर उसके बालों को

वाली समभवत्तत्र शक्रतुल्यपराक्रमः ।
तस्य दत्त्वा सुरेशानः स्वर्णमालां दिवं गतः ॥१२॥
भानुरप्यागतस्तत्र तदानीमेव भामिनीम् ।
दृष्ट्वा कामवशो भूत्वा ग्रीवादेशेऽसृजन् महत् ॥१३॥
बीजं तस्यास्ततः सद्यो महाकायोऽभवद्धरिः ।
तस्य दत्त्वा हनूमन्तं सहायार्थं गतो रविः ॥१४॥
पुत्रद्वयं समादाय गत्वा सा निद्रिता क्वचित् ।
प्रभातेऽपश्यदात्मानं पूर्ववद्वानराकृतिम् ॥१५॥
फल-मूलादिभिः सार्धं पुत्राभ्यां सहितः कपिः ।
नत्वा चतुर्मुखस्याऽग्रे ऋक्षराजः स्थितः सुधीः ॥१६॥
ततोऽब्रवीत् समाश्वास्य बहुशः कपिकुञ्जरम् ।
तत्रैकं देवतादूतमाहूयाऽमरसन्निभम् ॥१७॥

---

छूता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ १०-११ ॥ उसी से इन्द्र के समान पराक्रमी बालि का जन्म हुआ। देवराज इन्द्र उस बालि को एक सुवर्णमयी माला देकर स्वर्ग चले गये ॥ १२ ॥ उसी समय सूर्यदेव भी वहाँ आ पहुँचे, वे भी उस परम सुन्दरी को देखकर काम के वशीभूत हो गये। उन्होंने अपना वीर्य उस सुन्दरी के कण्ठ प्रदेश पर छोड़ दिया। उसी समय एक बहुत बड़े शरीर वाला वानर उत्पन्न हो गया। और सूर्यदेव उसकी सहायता के लिए हनुमान् जी को नियुक्त कर वहाँ से चले गये ॥ १३-१४ ॥

वह स्त्री अपने उन दोनों पुत्रों को लेकर कहीं जाकर सो गयी। दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही उसने अपने को पूर्ववत् वानर के रूप में देखा ॥ १५ ॥ परम बुद्धिमान् वह ऋक्षराज फल-मूलादि लेकर अपने पुत्रों के सहित ब्रह्मदेव की सभा में आया और उन्हें नमस्कार कर उनके आगे खड़ा हो गया ॥ १६ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा जी ने उस वानरराज को अनेक प्रकार से समझाया फिर देवतुल्य एक देवदूत को बुलाकर उससे कहा—॥ १७ ॥

गच्छ दूत ! मयादिष्टो गृहीत्वा वानरोत्तमम् ।
किष्किन्धां दिव्यनगरीं निर्मितां विश्वकर्मणा ॥१८॥
सर्वसौभाग्यवलितां देवैरपि दुरासदाम् ।
तस्यां सिंहासने वीरं राजानमभिषेचय ॥१९॥
सप्तद्वीपगता ये ये वानराः सन्ति दुर्जयाः ।
सर्वे ते ऋक्षराजस्य भविष्यन्ति वशेऽनुगाः ॥२०॥
यदा नारायणः साक्षाद् रामो भूत्वा सनातनः ।
भूभाराऽसुरनाशाय सम्भविष्यति भूतले ॥२१॥
तदा सर्वे सहायार्थे तस्य गच्छन्तु वानराः ।
इत्युक्तो ब्रह्मणा दूतो देवानां स महामतिः ॥२२॥
यथाज्ञप्तस्तथा चक्रे ब्रह्मणा तं हरीश्वरम् ।
देवदूतस्ततो गत्वा ब्रह्मणे तन्न्यवेदयत् ॥२३॥
तदादि वानराणां सा किष्किन्धाऽभून्नृपाश्रयः ॥२४॥

---

हे दूत ! तू मेरी आज्ञा से इस श्रेष्ठ वानर को लेकर किष्किन्धा नाम की नगरी को जाओ, जो विश्वकर्मा की बनाई हुई है ॥ १८ ॥ वह पुरी सभी प्रकार के ऐश्वर्य से सम्पन्न तथा देवताओं के लिए भी अजेय है । वहाँ जाकर सिंहासन पर इस शूरवीर राजा का अभिषेक कर दो ॥ १९ ॥ सातों द्वीपों में निवास करने वाले, जितने भी दुर्जय वानर वीर हैं वे सभी इस ऋक्षराज के अधीन रहेंगे ॥ २० ॥

जिस समय सनातन पुरुष साक्षात् नारायण देव पृथ्वी का भार उतारने के लिए इस भूलोक में रामरूप से अवतार लेंगे, उस समय समस्त वानरगण उनकी सहायता करेंगे । ब्रह्मा जी के इस प्रकार कहने पर उस परम बुद्धिमान् देवदूत ने जिस प्रकार उनकी आज्ञा हुई थी, उसी प्रकार उस वानरराज की सारी व्यवस्था कर दी । तदनन्तर ब्रह्मा के पास जाकर सारा समाचार कह सुनाया । तभी से यह किष्किन्धा पुरी वानरों की राजधानी हो गयी ॥ २१-२४ ॥

सर्वेश्वरस्त्वमेवासीरिदानीं ब्रह्मणार्थितः ।
भूमेर्भारो हतः कृत्स्नस्त्वया लीलानृदेहिना ।
सर्वभूतान्तरस्थस्य नित्यमुक्तचिदात्मनः ॥२५॥
अखण्डानन्दरूपस्य कियानेष पराक्रमः ।
तथापि वर्ण्यते सद्भिर्लीलामानुषरूपिणः ॥२६॥
यशस्ते सर्वलोकानां पापहत्यै सुखाय च ।
य इदं कीर्तयेन् मर्त्यो वालिसुग्रीवयोर्महत् ॥२७॥
जन्म त्वदाश्रयत्वात् स मुच्यते सर्वपातकैः ॥२८॥
अथाऽन्यां सम्प्रवक्ष्यामि कथां राम ! त्वदाश्रयाम् ।
सीता हृता यदर्थं सा रावणेन दुरात्मना ॥२९॥
पुरा कृतयुगे राम ! प्रजापतिसुतं विभुम् ।
सनत्कुमारमेकान्ते समासीनं दशाननः ।
विनयावनतो भूत्वा ह्यभिवाद्येदमब्रवीत् ॥३०॥

---

अगस्त्य जी ने कहा—हे राम ! आप सभी के स्वामी हैं। आपने ब्रह्मा द्वारा प्रार्थना किये जाने पर माया मानवरूप धारण कर इस समय पृथ्वी का समस्त भार उतार दिया। सभी प्राणियों के भीतर विराजमान रहने वाले, नित्य मुक्त, चेतन तथा अखण्ड एवं अनन्त स्वरूप वाले आप के लिए यह पृथ्वी का भार उतारना कौन बड़ा पराक्रम है ? तथापि सम्पूर्ण लोकों के पाप के विनाश करने हेतु तथा उन्हें सुख देने के लिए साधु जन आप माया-मानुष रूप श्रीभगवान् का सुयश वर्णन करते ही हैं। जो मनुष्य बालि और सुग्रीव के इस महान् जन्म का कीर्तन करेगा वह आप का आश्रय प्राप्त कर सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जायेगा ॥ २५-२८ ॥

हे राम ! आप से सम्बन्ध रखने वाली एक और कथा सुनाता हूँ। जिस कारण से दुरात्मा रावण ने सीताजी का हरण किया था ॥ २९ ॥ पूर्वकाल में जब सतयुग का समय था, रावण ने एकान्त में बैठे हुए ब्रह्मा

को न्वस्मिन् प्रवरो लोके देवानां बलवत्तरः ।
देवाश्च यं समाश्रित्य युद्धे शत्रुं जयन्ति हि ॥३१॥
कं यजन्ति द्विजा नित्यं कं ध्यायन्ति च योगिनः ।
एतन्मे शंस भगवन् ! प्रश्नं प्रश्नविदांवर ॥३२॥
ज्ञात्वा तस्य हृदिस्थं यत्तदशेषेण योगदृक् ।
दशाननमुवाचेदं शृणु वक्ष्यामि पुत्रक ! ॥३३॥
भर्ता यो जगतां नित्यं यस्य जन्मादिकं न हि ।
सुराऽसुरैर्नुतो नित्यं हरिर्नारायणोऽव्ययः ॥३४॥
यन्नाभिपङ्कजाज्जातो ब्रह्मा विश्वसृजां पतिः ।
सृष्टं येनैव सकलं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥३५॥
तं समाश्रित्य विबुधा जयन्ति समरे रिपून् ।
योगिनो ध्यानयोगेन तमेवाऽनुजपन्ति हि ॥३६॥

---

के पुत्र सनत्कुमार जी से विनयपूर्वक प्रणाम करके कहा–॥ ३० ॥ हे देव ! इस संसार में सभी देवताओं में श्रेष्ठ तथा सबसे अधिक बलवान् वह कौन देव है, जिसका आश्रय लेकर देवगण युद्ध में अपने शत्रुओं को जीत लेते हैं ॥ ३१ ॥ ये ब्राह्मणगण किसका पूजन करते हैं तथा योगीगण किसका ध्यान करते हैं । हे भगवन् ! आप सभी प्रश्नों का उत्तर देने वालों में सर्वश्रेष्ठ हैं, अतः मेरे इस प्रश्न का उत्तर दीजिए ॥ ३२ ॥

भगवान् सनत्कुमार ने अपनी योग-दृष्टि से रावण के अन्तःकरण की सभी बातें जानकर उससे कहा–हे पुत्र ! मैं तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देता हूँ, तुम उसे सुनो ॥ ३३ ॥ जो समस्त लोक के पोषण करने वाले हैं, तथा जिनका जन्म-मरण आदि कुछ भी नहीं होता, जो देवताओं तथा असुरों से सदैव वन्दना किये जाते हैं और जो अविनाशी तथा नारायण श्रीहरि नाम से कहे जाते हैं ॥ ३४ ॥ समस्त विश्व की रचना करने वाले प्रजापतियों के स्वामी स्वयं ब्रह्मदेव भी जिनकी नाभि कमल से उत्पन्न हुए हैं । तथा जिन्होंने यह सारा स्थावर-जङ्गमात्मक जगत् रचा है, उन्हीं का आश्रय लेकर देवगण संग्राम में अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं, तथा योगीजन भी ध्यान योग द्वारा उन्हीं का जय करते हैं ॥३५-३६॥

महर्षेर्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच दशाननः ।
दैत्य-दानव-रक्षांसि विष्णुना निहतानि च ॥३७॥
कां वा गतिं प्रपद्यन्ते प्रेत्य ते मुनिपुङ्गव ! ।
तमुवाच मुनिश्रेष्ठो रावणं राक्षसाधिपम् ॥३८॥
दैवतैर्निहता नित्यं गत्वा स्वर्गमनुत्तमम् ।
भोगक्षये पुनस्तस्माद् भ्रष्टा भूमौ भवन्ति ते ॥३९॥
पूर्वार्जितैः पुण्य-पापैर्म्रियन्ते चोद्भवन्ति च ।
विष्णुना ये हतास्ते तु प्राप्नुवन्ति हरेर्गतिम् ॥४०॥
श्रुत्वा मुनिमुखात् सर्वं रावणो हृष्टमानसः ।
योत्स्येऽहं हरिणा सार्धमिति चिन्तापरोऽभवत् ॥४१॥
मनःस्थितं परिज्ञाय रावणस्य महामुनिः ।
उवाच वत्स ! तेऽभीष्टं भविष्यति न संशयः ॥४२॥

---

महर्षि सनत्कुमार के वचनों को सुनकर रावण ने पुनः प्रश्न किया, विष्णु के द्वारा मारे गये ये दैत्य, दानव तथा राक्षस मरकर किस प्रकार की गति प्राप्त करते हैं ? तब मुनिवर सनत्कुमार ने राक्षसराज रावण से कहा–॥ ३७–३८ ॥ हे रावण ! अन्य साधारण देवताओं के द्वारा मारे जाने पर तो ये राक्षसादिक अति उत्तम स्वर्गलोक को जाते हैं तथा वहाँ अपना भोग क्षीण होने पर वे वहाँ से गिरकर पुनः भूलोक में उत्पन्न होते हैं ॥ ३९ ॥ इस प्रकार वे अपने पूर्व जन्म में किये गये पुण्य और पापों के फलस्वरूप इस जन्म-मरण के चक्र में भटकते फिरते हैं, किन्तु जो भगवान् विष्णु के द्वारा मारे जाते हैं वे तो विष्णुलोक को प्राप्त हो जाते हैं ॥४०॥

सनत्कुमार महर्षि के मुख से इस प्रकार की बात सुनकर रावण मन ही मन बड़ा प्रसन्न हुआ और वह विचार करने लगा कि मैं विष्णु के साथ अवश्य युद्ध करुँगा ॥ ४१ ॥ पश्चात् महामुनि ने रावण के अन्तःकरण की सारी बात जान ली और उससे बोले–वत्स ! तुम्हारी इच्छा

कञ्चित्कालं प्रतीक्षस्व सुखी भव दशानन ! ।
एवमुक्त्वा महाबाहो ! मुनिः पुनरुवाच तम् ॥४३॥
तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि ह्यरूपस्यापि मायिनः ।
स्थावरेषु च सर्वेषु नदेषु च नदीषु च ॥४४॥
ओङ्कारश्चैव सत्यं च सावित्री पृथिवी च सः ।
समस्तजगदाधारः शेषरूपधरो हि सः ॥४५॥
सर्वे देवाः समुद्राश्च कालः सूर्यश्च चन्द्रमाः ।
सूर्योदयो दिवारात्री यमश्चैव तथाऽनिलः ॥४६॥
अग्निरिन्द्रस्तथा मृत्युः पर्जन्यो वसवस्तथा ।
ब्रह्मा रुद्रादयश्चैव ये चाऽन्ये देव-दानवाः ॥४७॥
विद्योतते ज्वलत्येष पाति चाऽत्तीति विश्वकृत् ।
क्रीडां करोत्यव्ययात्मा सोऽयं विष्णुः सनातनः ॥४८॥
तेन सर्वमिदं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
नीलोत्पलदलश्यामो विद्युद्वर्णाम्बरावृतः ॥४९॥

---

अवश्य पूर्ण होगी, तुम इसमें सन्देह मत करो ।। ४२ ।। हे रावण ! अभी सुख से रहो और कुछ काल पर्यन्त प्रतीक्षा करो । हे महाबाहो ! श्री रघुनाथ जी ! रावण से ऐसा कहकर वे मुनि पुनः उससे बोले-।। ४३ ।। हे रावण ! यद्यपि वे रूप रहित हैं, तथापि वे मायावी भी हैं इसलिए उन मायावी के द्वारा धारण किये गये रूप को मैं तुमसे बतलाता हूँ, वे नदों में, नदियों में तथा समस्त स्थावरों में व्याप्त हैं ।। ४४ ।। वे ही ॐकार, सत्य, सावित्री तथा पृथ्वी स्वरूप हैं, इस जगत् के आधारभूत शेषनाग भी वे ही हैं ।। ४५ ।।

समस्त देव, समुद्र, काल, सूर्य, चन्द्रमा, दिन-रात्रि, यम, वायु, अग्नि, इन्द्र, मृत्यु, मेघ, वसुगण, ब्रह्मा तथा रुद्र आदि एवं और भी जितने देव-दानव हैं वे सभी उन्हीं के स्वरूप हैं ।। ४६-४७ ।। वे सनातन विष्ण निर्विकार होकर भी विश्व की रचना करते हैं, और नाना प्रकार की लीलाएँ करते हैं, वे विद्युत् बनकर चमकते हैं, अग्नि बनकर प्रज्वलित होते हैं तथा रुद्र रूप से सबका भक्षण करते हैं ।। ४८ ।। यह स्थावर-

शुद्धजाम्बूनदप्रख्यां श्रियं वामाङ्कसंस्थिताम् ।
सदानपायिनीं देवीं पश्यन्नालिङ्ग्य तिष्ठति ॥५०॥
द्रष्टुं न शक्यते कैश्चिद् देव-दानव-पन्नगैः ।
यस्य प्रसादं कुरुते स चैनं द्रष्टुमर्हति ॥५१॥
न च यज्ञतपोभिर्वा न दानाध्ययनादिभिः ।
शक्यते भगवान् द्रष्टुमुपायैरितरैरपि ॥५२॥
तद्भक्तैस्तद्गतप्राणैस्तच्चित्तैर्धूतकल्मषैः ।
शक्यते भगवान् विष्णुर्वेदान्तामलदृष्टिभिः ॥५३॥
अथवा द्रष्टुमिच्छा ते शृणु त्वं परमेश्वरम् ।
त्रेतायुगे स देवेशो भविता नृपविग्रहः ॥५४॥
हितार्थं देवमर्त्यानामिक्ष्वाकूणां कुले हरिः ।
रामो दाशरथिर्भूत्वा महासत्त्वपराक्रमः ॥५५॥

---

जङ्गमात्मक सारा विश्व एकमात्र उन्हीं से व्याप्त है, उनके शरीर का वर्ण नीले कमल के समान श्याम है तथा वे बिजली की-सी आभावाले पीताम्बर को धारण करते हैं ॥ ४९ ॥ वे अपने वामभाग में बैठी हुई शुद्ध सुवर्ण की कान्ति से युक्त, नित्य विराजमान, महालक्ष्मी की ओर देखते हुए, उनका आलिङ्गन करते हुए सुशोभित हो रहे हैं ॥ ५० ॥ वे किसी भी देव-दानव तथा नाग से देखे नहीं जा सकते। उनका दर्शन वही कर सकता है जिसके ऊपर वे प्रसन्न होते हैं ॥ ५१ ॥

यज्ञ, दान, तप, अध्ययन अथवा अन्य किसी भी उपाय से वे भगवान् देखे नहीं जा सकते ॥५२॥ भगवान् के वे भक्त, जिनका प्राण और मन उन्हीं में लगा रहता है तथा वेदान्त विचार से जिनकी दृष्टि मलहीन हो गयी है, उन निष्पाप महात्माओं को ही भगवद्-दर्शन हो सकते हैं ॥ ५३ ॥

हे रावण ! यदि तुम्हें भी उन भगवान् विष्णु के दर्शन की इच्छा हो तो सुनो, वे देवदेवेश्वर त्रेतायुग में देवताओं तथा मनुष्यों का उपकार करने हेतु राजवेश से दशरथ जी के पुत्र महावीर और पराक्रमी राम

पितुर्नियोगात् स भ्रात्रा भार्यया दण्डके वने।
विचरिष्यति धर्मात्मा जगन्मात्रा स्वमायया ॥५६॥
एवं ते सर्वमाख्यातं मया रावण! विस्तरात्।
भजस्व भक्तिभावेन सदा रामं श्रिया युतम् ॥५७॥

अगस्त्य उवाच

एवं श्रुत्वाऽसुराध्यक्षो ध्यात्वा किञ्चिद् विचार्य च।
त्वया सह विरोधेप्सुर्मुमुदे रावणो महान् ॥५८॥
युद्धार्थी सर्वतो लोकान् पर्यटन् समवस्थितः।
एतदर्थं महाराज! रावणोऽतीव बुद्धिमान्।
हृतवान् जानकीं देवीं त्वयाऽऽत्मवधकाङ्क्षया ॥५९॥
इमां कथां यः शृणुयात् पठेद्वा
संश्रावयेद् वा श्रवणार्थिनां सदा।

---

नाम धारण कर इक्ष्वाकु के वंश में अवतार लेंगे ॥ ५४-५५ ॥ वे धर्मात्मा पिता की आज्ञा से अपने भाई और जगज्जननी अपनी भार्या माया के सहित दण्डक वन में आवेंगे ॥ ५६ ॥ हे रावण! इस प्रकार यह सारा आख्यान मैंने विस्तार पूर्वक सुना दिया। अब तू लक्ष्मी सहित भगवान् राम का भक्ति पूर्वक भजन करो ॥ ५७ ॥

तदनन्तर अगस्त्य जी ने पुनः कहा—हे राम! यह सुनकर राक्षसराज वह रावण कुछ देर ध्यान पूर्वक विचार कर आप के साथ विरोध का निश्चय कर मन ही मन परम प्रसन्न हुआ ॥ ५८ ॥ तथा वह रावण युद्ध की इच्छा से समस्त लोकों में घूमने लगा। हे महाराज! आप के हाथ से मारे जाने की इच्छा से ही उस बुद्धिमान् रावण ने जानकी जी को चराया था ॥ ५९ ॥

जो पुरुष इस कथा को सुनेगा अथवा पढ़ेगा। या सुनने की इच्छा

आयुष्यमारोग्यमनन्तसौख्यं
प्राप्नोति लाभं धनमक्षयं च ॥६०॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे
तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥



## चतुर्थः सर्गः

( राम-राज्य का वर्णन और सीता-वनवास )

श्रीमहादेव उवाच

एकदा ब्रह्मणो लोकादायान्तं नारदं मुनिम् ।
पर्यटन् रावणो लोकान् दृष्ट्वा नत्वाऽब्रवीद् वचः ॥ १ ॥
भगवन् ! ब्रूहि मे योद्धुं कुत्र सन्ति महाबलाः ।
योद्धुमिच्छामि बलिभिस्त्वं ज्ञाताऽसि जगत्त्रयम् ॥ २ ॥
मुनिर्ध्यात्वाऽऽह सुचिरं श्वेतद्वीपनिवासिनः ।
महाबला महाकायास्तत्र याहि महामते ! ॥ ३ ॥

---

वालों को सदा सुनावेगा वह दीर्घ आरोग्य, अनन्तसुख, इच्छित लाभ एवं अक्षय धन प्राप्त करेगा ॥ ६० ॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या-विभूषित अध्यात्म-रामायण के उमा-महेश्वर संवाद में उत्तरकाण्ड का तृतीय सर्ग समाप्त ॥ ३ ॥



श्रीमहादेव जी ने कहा—हे पार्वति ! लोक-लोकान्तरों में घूमते हुए रावण ने एक दिन ब्रह्मलोक से आते हुए श्रीनारद जी को देखकर उन्हें नमस्कार कर पूछा—॥ १ ॥ हे भगवन् ! बलवानों से युद्ध करने की मेरी इच्छा है, आप तीनों लोकों से अच्छी तरह परिचित हैं। अतः कृपा कर बताइए कि मुझसे लड़ने योग्य महाबली पुरुष कहाँ है ? ॥ २ ॥ तत्पश्चात् देवर्षि नारद ने थोड़ी देर सोचने के बाद कहा—हे महामते ! श्वेत द्वीप के रहने वाले बड़े बलवान् तथा विशाल शरीर वाले हैं।

विष्णुपूजारता ये वै विष्णुना निहताश्च ये ।
त एव तत्र सञ्जाता अजेयाश्च सुराऽसुरैः ॥ ४ ॥

श्रुत्वा तद्रावणो वेगान् मन्त्रिभिः पुष्पकेण तान् ।
योद्धुकामः समागत्य श्वेतद्वीपसमीपतः ॥ ५ ॥

तत्प्रभाहत-तेजस्कं पुष्पकं नाचलत्ततः ।
त्यक्त्वा विमानं प्रययौ मन्त्रिणश्च दशाननः ॥ ६ ॥

प्रविशन्नेव तद् द्वीपं तो हस्तेन योषिता ।
पृष्टश्च त्वं कुतः कोऽसि प्रेषितः केन वा वद ? ॥ ७ ॥

इत्युक्तो लीलया स्त्रीभिर्हसन्तीभिः पुनः पुनः ।
कृच्छ्राद्धस्ताद् विनिर्मुक्तस्तासां स्त्रीणां दशाननः ॥ ८ ॥

आश्चर्यमतुलं लब्ध्वा चिन्तयामास दुर्मतिः ।
विष्णुना निहतो यामि वैकुण्ठमिति निश्चितः ॥ ९ ॥

---

तुम वहीं जाओ ॥ ३ ॥ जो लोग नित्य विष्णुपूजा में निरत रहते हैं, अथवा जो विष्णु के द्वारा मारे गये हैं, वही लोग वहाँ उत्पन्न होते हैं, वे देवता या दानव आदि किसी से जीते नहीं जा सकते ॥ ४ ॥

देवर्षि नारद की बात सुनते ही रावण अपने मन्त्रियों के साथ पुष्पक विमान पर चढ़ कर उन लोगों के साथ युद्ध करने की इच्छा से श्वेतद्वीप के निकट गया ॥ ५ ॥ उस श्वेतद्वीप के प्रभा से तेजोहीन हो जाने के कारण जब पुष्पक विमान आगे न बढ़ सका तो रावण पुष्पक-विमान तथा मन्त्रियों को छोड़कर स्वयं ही चला ॥ ६ ॥ उस द्वीप में प्रवेश करते ही एक स्त्री ने उसे हाथ से पकड़ कर पूछा—बता तू कौन है ? और यहाँ पर किसने तुझे भेजा है ? ॥ ७ ॥ इसी प्रकार बहुत-सी स्त्रियों ने हँसते हुए लीलापूर्वक बारम्बार यही बात पूछी, और रावण भी बड़ी कठिनाई से अपने को उन स्त्रियों के हाथ से छुड़ा पाया ॥ ८ ॥

वह दुरात्मा रावण यह देख कर असीम आश्चर्य से युक्त हो विचार करने लगा, अब मैं निश्चय ही भगवान् विष्णु के द्वारा मारा जाकर

मयि विष्णुर्यथा कुप्येत् तथा कार्यं करोम्यहम् ।
इति निश्चित्य वैदेहीं जहार विपिनेऽसुरः ॥१०॥

जानन्नेव परात्मानं स जहाराऽवनीसुताम् ।
मातृवत् पालयामास त्वत्तः काङ्क्षन् वधं स्वकम् ॥११॥

राम ! त्वं परमेश्वरोऽसि सकलं
जानासि विज्ञानदृग्
भूतं भव्यमिदं त्रिकालकलना-
साक्षी विकल्पोज्झितः ।
भक्तानामनुवर्तनाय सकलं
कुर्वन् क्रियासंहतिं
त्वं शृण्वन् मनुजाकृतिर्मुनिवचो
भासीश लोकार्चितः ॥१२॥

स्तुत्वैवं राघवं तेन पूजितः कुम्भसम्भवः ।
स्वाश्रमं मुनिभिः सार्धं प्रययौ हृष्टमानसः ॥१३॥

---

वैकुण्ठ को जाऊँगा ॥९॥ अतः मुझे कोई ऐसा कार्य करना चाहिए जिससे विष्णु भगवान् मेरे ऊपर कुपित हों, ऐसा सोच कर ही उस असुर ने श्रीजानकी जी का हरण किया था ॥१०॥

हे राम ! आप के द्वारा अपने वध की इच्छा से ही उस रावण ने आप को परमात्मा जानते हुए भी श्रीसीता जी को चुरा लिया। तथा माता के समान उनका पालन किया ॥११॥ हे राम ! आप परमेश्वर हैं, आप त्रिकालदर्शी हैं, तथा सबके साक्षी हैं। आप विकल्प से रहित हो कर अपनी ज्ञान-दृष्टि से भूत, भविष्य तथा वर्त्तमान की सारी बातें जानते हैं। आप अपनी समस्त लीलाएँ अपने भक्तों को मार्ग दिखाने के लिए ही किया करते हैं। आप लोक-पूजित होते हुए भी मनुष्य-रूपसे हम जैसे मुनियों के वचन सुनते हुए दिखाई दे रहे हैं ॥१२॥ इस प्रकार श्रीराम-चन्द्र जी की स्तुति कर और उनसे पूजा-सत्कार पाकर अगस्त्य जी अन्य मुनीश्वरों के साथ प्रसन्न-चित्त हो अपने आश्रम को चले गये ॥१३॥

रामस्तु सीतया सार्धं भ्रातृभिः सह मन्त्रिभिः ।
संसारीव रमानाथो रममाणोऽवसद् गृहे ॥१४॥
अनासक्तोऽपि विषयान् बुभुजे प्रियया सह ।
हनुमत्-प्रमुखैः सद्भिर्वानरैः परिवेष्टितः ॥१५॥
पुष्पकं चागमद्राममेकदा पूर्ववत् प्रभुम् ।
प्राह देव ! कुबेरेण प्रेषितं त्वामहं ततः ॥१६॥
जितं त्वं रावणेनादौ पश्चाद् रामेण निर्जितम् ।
अतस्त्वं राघवं नित्यं वह यावद् वसेद् भुवि ॥१७॥
यदा गच्छेद् रघुश्रेष्ठो वैकुण्ठं याहि मां तदा ।
तच्छ्रुत्वा राघवः प्राह पुष्पकं सूर्यसन्निभम् ॥१८॥
यदा स्मरामि भद्रं ते तदागच्छ ममाऽन्तिकम् ।
तिष्ठान्तर्धाय सर्वत्र गच्छेदानीं ममाज्ञया ॥१९॥

---

इधर लक्ष्मीपति श्रीराम, सीताजी भाइयों तथा मन्त्रियों के सहित संसारी पुरुषों के समान रमण करते हुए घर में रहने लगे ॥१४॥ उन्होंने असङ्ग रह कर भी अपनी प्रिया जानकी के साथ अनेक प्रकार के भोगों का भोग किया। वे सदैव ही हनुमान् आदि प्रमुख वानरों से घिरे रहते थे ॥ १५ ॥

एक बार पहले की ही तरह पुष्पक-विमान श्रीरामचन्द्र जी के पास आया और कहने लगा—हे देव ! मुझे महाराज कुवेरे ने अपने यहाँ से आप के पास भेजा है ॥१६॥ उन्होंने कहा है कि पहले तुमको रावण ने जीता था, और फिर उससे श्रीराम जी ने तुमको जीत लिया है, अतः जबतक वे पृथ्वीतल पर निवास करें तबतक तुम उन्हीं को धारण करो ॥१७॥ जिस समय भगवान् राम पृथ्वीतल को छोड़ कर वैकुण्ठ चले जायें, उस समय तू मेरे पास आ जाना। इस बात को सुनकर श्रीरघुनाथ जी ने सूर्य के समान देदीप्यमान उस पुष्पक से कहा—॥१८॥ पुष्पक ! तुम्हारा कल्याण हो। मैं जिस समय तुम्हारा स्मरण करूँ उसी समय तू मेरे पास आ जाना, इस समय तुम जाओ और मेरी आज्ञा से गुप्तरूप से सर्वत्र

इत्युक्त्वा रामचन्द्रोऽपि पौरकार्याणि सर्वशः ।
भ्रातृभिर्मन्त्रिभिः सार्धं यथान्यायं चकार सः ॥२०॥
राघवे शासति भुवं लोकनाथे रमापतौ ।
वसुधा सस्यसम्पन्ना फलवन्तश्च भूरुहाः ॥२१॥
जना धर्मपराः सर्वे पतिभक्तिपराः स्त्रियः ।
नाऽपश्यत् पुत्रमरणं कश्चिद्राजनि राघवे ॥२२॥
समारुह्य विमानाग्र्यं राघवः सीतया सह ।
वानरैर्भ्रातृभिः सार्धं सञ्चचारावनिं प्रभुः ॥२३॥
अमानुषाणि कार्याणि चकार बहुशो भुवि ।
ब्राह्मणस्य सुतं दृष्ट्वा बालं मृतमकालतः ॥२४॥
शोचन्तं ब्राह्मणं चाऽपि ज्ञात्वा रामो महामतिः ।
तपस्यन्तं वने शूद्रं हत्वा ब्राह्मणबालकम् ॥२५॥
जीवयामास शूद्रस्य ददौ स्वर्गमनुत्तमम् ।
लोकानामुपदेशार्थं परमात्मा रघूत्तमः ॥२६॥

---

निवास करो ॥१९॥ पुष्पक को इस प्रकार आज्ञा देकर श्रीरामचन्द्र जी अपने भाइयों तथा मन्त्रियों के साथ पुरवासियों का समस्त कार्य समुचित रीति से करने लगे ॥२०॥

त्रिलोकीपति, लक्ष्मीनाथ भगवान् श्रीराम के शासनकाल में पृथ्वी धन-धान्य से पूर्ण थी तथा वृक्ष फलादि से सम्पन्न थे ॥२१॥ श्रीरामचन्द्र जी के शासनकाल में सभी लोग धर्म-परायण थे तथा स्त्रियाँ पतिसेवा में निरन्तर तत्पर रहा करती थीं । और कोई भी पिता अपने सामने अपने पुत्र का मरण नहीं देखता था ॥२२॥ भगवान् श्रीरामचन्द्र जी सीता, भाइयों तथा वानरों के साथ निरन्तर विमान पर चढ़ कर पृथ्वी पर घूमा करते थे ॥२३॥ उन्होंने इस पृथ्वीपर बहुत सी अमानवीय लीलाएँ कीं । एक बार किसी ब्राह्मण बालक को अकाल में ही मरजाने से उसके पिता को अत्यन्त शोकाकुल देख रघुश्रेष्ठ, महामति परमात्मा रामने तपस्या करते हुए किसी शूद्र को उसका कारण जान कर उसे मारा और उस ब्राह्मण कुमार को पुनः जीवित किया । पुनः उस शूद्र को उत्तम लोक प्रदान

कोटिशः स्थापयामास शिवलिङ्गानि सर्वशः ।
सीतां च रमयामास सर्वभोगैरमानुषैः ॥२७॥
शशास रामो धर्मेण राज्यं परमधर्मवित् ।
कथां संस्थापयामास सर्वलोकमलापहाम् ॥२८॥
दशवर्षसहस्राणि मायामानुषविग्रहः ।
चकार राज्यं विधिवल्लोकवन्द्यपदाम्बुजः ॥२९॥
एकपत्नीव्रतो रामो राजर्षिः सर्वदा शुचिः ।
गृहमेधीयमखिलमाचरन् शिक्षयन् जनान् ॥३०॥
सीता प्रेम्णानुवृत्त्या च प्रश्रयेण दमेन च ।
भर्तुर्मनोहरा साध्वी भावज्ञा सा ह्रिया भिया ॥३१॥
एकदा क्रीडाविपिने सर्वभोगसमन्विते ।
एकान्ते दिव्यभवने सुखासीनं रघूत्तमम् ॥३२॥

---

किया, उन परमात्मा राम ने लोगों को उपदेश देने के लिए जगह-जगह करोड़ों शिव-लिङ्ग स्थापित किये, तथा सीता जी को सब प्रकार के अलौकिक भोगों से सम्पन्न तथा सुखी बनाया ॥२४-२७॥

इस प्रकार परम धर्मात्मा राम धर्मपूर्वक राज्य का शासन करते रहे, और सम्पूर्ण लोकों के पापों को दूर करने वाली अपनी कीर्ति स्थापित की ॥२८॥ तीनों लोक, जिनके चरण-कमलों को वन्दना करता है, ऐसे मायामानव शरीरधारी श्रीरामचन्द्र जीने दशहजार वर्ष पर्यन्त विधिवत् राज्य किया ॥२९॥ राजर्षि श्रीरामचन्द्र जी ने सदैव एकपत्नी व्रत का पालन किया तथा पवित्र चरित्र वे श्रीराम जी लोगों को शिक्षा देने के लिए गृहस्थाश्रम के सभी धर्मों का पालन कत हुए गृहस्थोचित आचरण करते थे ॥३०॥ अत्यन्त सुन्दरी साध्वी सीता पति के हृदय का अभिप्राय जानने वाली थीं। उन्होंने प्रेम, आज्ञापालन, विनय, इन्द्रिय-संयम तथा लज्जा और भीरुता आदि गुणों से पति का मन जीत लिया था ॥३१॥

एक दिन क्रीडावन के सम्पूर्ण भोग-समन्वित भवन में श्रीरामचन्द्र जी एकान्त में सुखपूर्वक बैठे हुए थे। उनके शरीर की आभा नीलमणि के समान थी, वे दिव्य आभरण से विभूषित थे, उनका मुख-मण्डल अत्यन्त

नीलमाणिक्यसङ्काशं दिव्याभरणभूषितम् ।
प्रसन्नवदनं शान्तं विद्युत्पुञ्जनिभाम्बरम् ॥३३॥
सीता कमलपत्राक्षी सर्वाभरणभूषिता ।
राममाह कराभ्यां सा लालयन्ती पदाम्बुजे ॥३४॥
देवदेव ! जगन्नाथ ! परमात्मन् सनातन ! ।
चिदानन्दादि-मध्यान्त-रहिताशेषकारण ! ॥३५॥
देव ! देवाः समासाद्य मामेकान्तेऽब्रुवन् वचः ।
बहुशोऽर्थयमानास्ते वैकुण्ठागमनं प्रति ॥३६॥
त्वया समेतश्चिच्छक्त्या रामस्तिष्ठति भूतले ।
विसृज्याऽस्मान् स्वकं धाम वैकुण्ठं च सनातनम् ॥३७॥
आस्ते त्वया जगद्धात्रि ! रामः कमललोचनः ।
अग्रतो याहि वैकुण्ठं त्वं तथा चेद् रघूत्तमः ॥३८॥
आगमिष्यति वैकुण्ठं सनाथान्नः करिष्यति ।
इति विज्ञापितोऽहं तैर्मया विज्ञापितो भवान् ॥३९॥

---

प्रसन्न था, वे शान्त मुद्रा में थे और विद्युत्-पुञ्ज के समान दिव्य आभा सम्पन्न पीताम्बर धारण किये हुए थे। उस समय सर्वालङ्कार-भूषिता, कमलदल-लोचना श्रीजानकी अपने कोमल कर-कमलों से उनके चरण-कमल का लालन करती हुई बोलीं—॥ ३२-३४ ॥

सीता जी ने कहा—हे देवाधिदेव ! हे जगन्नाथ ! हे सनातन ! हे परमात्मन् ! हे चिदानन्दस्वरूप, हे आदि, मध्य एवं अन्त रहित ! हे सबके कारण ! हे देव ! देवताओं ने आकर एकान्त में मुझसे अनेक प्रार्थना करने के अनन्तर आप के वैकुण्ठ पधारने के लिए प्रार्थना की है ॥ ३५-३६ ॥ उन देवताओं ने कहा है कि, राम हम लोगों को तथा अपने धाम वैकुण्ठ को छोड़कर तुझ चिच्छक्ति के साथ पृथ्वीतल में ठहरे हुए हैं ॥ ३७ ॥ हे जगद्धात्रि ! कमलनयन राम सर्वदा तेरे ही साथ रहते हैं, यदि तू वैकुण्ठ पहले चली जाय तो वे रघूत्तम राम भी वहाँ आकर हमें सनाथ करेंगे। उन देवताओं ने मुझसे यही निवेदन किया है, जिसे मैंने आपको सुना दिया ॥ ३८-३९ ॥

यद्युक्तं तत्कुरुष्वाऽद्य नाहमाज्ञापये प्रभो ! ।
सीतायास्तद्वचः श्रुत्वा रामो ध्यात्वाऽब्रवीत् क्षणम् ॥४०॥
देवि ! जानामि सकलं तत्रोपायं वदामि ते ।
कल्पयित्वा मिषं देवि ! लोकवादं त्वदाश्रयम् ॥४१॥
त्यजामि त्वां वने लोकवादाद्भीत इवापरः ।
भविष्यतः कुमारौ द्वौ वाल्मीकेराश्रमान्तिके ॥४२॥
इदानीं दृश्यते गर्भः पुनरागत्य मेऽन्तिकम् ।
लोकानां प्रत्ययार्थं त्वं कृत्वा शपथमादरात् ॥४३॥
भूमेर्विवरमात्रेण वैकुण्ठं यास्यसि द्रुतम् ।
पश्चादहं गमिष्यामि एष एव सुनिश्चयः ॥४४॥
इत्युक्त्वा तां विसृज्याऽथ रामो ज्ञानैकलक्षणः ।
मन्त्रिभिर्मन्त्रतत्त्वज्ञैर्बलमुख्यैश्च संवृतः ॥४५॥

---

हे प्रभो ! अब आप को जैसा उचित प्रतीत हो वैसा कीजिए । हे प्रभो ! मैं आपको कोई आज्ञा नहीं देती । सीताजी की बात सुनकर श्रीराम ने कुछ देर सोचने के बाद उनसे कहा—॥ ४० ॥ हे देवी ! मैं यह सब जानता हूँ, इस कार्य के लिए मैं तुम्हें एक उपाय बताता हूँ । मैं तुम से सम्बन्ध रखने वाले एक लोकापवाद का बहाना रचकर लोकनिन्दा से डरने वाले साधारण मनुष्य के समान वन में तुम्हें त्यग दूँगा । वहाँ पर वाल्मीकि के आश्रम में तुम्हें दो बालक उत्पन्न होंगे ॥४१-४२॥ क्योंकि, इस समय तुम्हारे शरीर में गर्भावस्था के लक्षण दिखाई पड़ रहे हैं, फिर प्रसव के उपरान्त तुम जब मेरे पास आओगी तो लोक की प्रतीति के लिए आदरपूर्वक शपथ देने पर पृथ्वी के फटने से उसके छिद्र-द्वारा तुम वैकुण्ठ चली जाओगी । पश्चात् मैं भी वहाँ आ जाऊँगा । बस यही निश्चय रहा ॥ ४३-४४ ॥

एकमात्र ज्ञानस्वरूप भगवान् श्रीरामचन्द्र जी ने सीता जी से ऐसा कह उन्हें अन्तःपुर भेज दिया । और मन्त्र-विशारद मन्त्रियों तथा मुख्य-मुख्य सेनापतियों से घिरे हुए वे वहीं बैठे रहे । वहाँ बैठे हुए

तत्रोपविष्टं श्रीरामं सुहृदः पर्युपासत ।
हास्यप्रौढकथासुज्ञा हासयन्तः स्थिता हरिम् ॥४६॥
कथाप्रसङ्गात् पप्रच्छ रामो विजयनामकम् ।
पौरा जानपदा मे किं वदन्तीह शुभाऽशुभम् ॥४७॥
सीतां वा मातरं वा मे भ्रातॄन् वा कैकयीमथ ।
न भेतव्यं त्वया ब्रूहि शापितोऽसि ममोपरि ॥४८॥
इत्युक्तः प्राह विजयो देव ! सर्वे वदन्ति ते ।
कृतं सुदुष्करं सर्वं रामेण विदितात्मना ॥४९॥
किन्तु हत्वा दशग्रीवं सीतामाहृत्य राघवः ।
अमर्षं पृष्ठतः कृत्वा स्वं वेश्म प्रत्यपादयत् ॥५०॥
कीदृशं हृदये तस्य सीतासम्भोगजं सुखम् ।
या हृता विजनेऽरण्ये रावणेन दुरात्मना ॥५१॥
अस्माकमपि दुष्कर्म योषितां मर्षणं भवेत् ।
यादृग् भवति वै राजा तादृश्यो नियतं प्रजाः ॥५२॥

---

श्रीराम की परिचर्या में सुहृद्गण संलग्न थे, और हास्योक्ति में प्रौढ़ कुशल विदूषक गण उन्हें हँसा रहे थे ॥ ४५-४६ ॥

तब भगवान श्रीराम ने प्रसङ्ग-वश विजय नामक अपने गुप्तचर से पूछा–हे दूत ! मेरी सीता, मेरी माता एवं मेरे भाइयों तथा कैकेयी के विषय में मेरे पुरवासी लोग क्या कहते हैं ? तुम्हें मेरी सौगन्ध है, सच-सच कहना, किसी प्रकार का भय मत करना ॥ ४७-४८ ॥ राम के द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर विजय ने कहा—महाराज ! सभी पुरवासी कहते हैं कि आत्मतत्त्वज्ञ श्रीराम ने जितने भी कार्य किये वे सभी अन्य के लिए दुष्कर थे ॥ ४९ ॥ किन्तु राघव ने एक ही कार्य अच्छा नहीं किया, जो उन्होंने रावण को मारकर सीता को विना किसी प्रकार का सन्देह किये ही अपने साथ लाकर घर रख लिया। भला जो सीता दुरात्मा रावण के द्वारा निर्जन वन में अकेले हर ली गई थीं, उन सीता के साथ सम्भोग करने से उनके हृदय में किस प्रकार की सुखानुभूति होती होगी ? ॥५०-५१॥ अब हमें भी अपने

श्रुत्वा तद्वचनं रामः स्वजनान् पर्यपृच्छत ।
तेऽपि नत्वाऽब्रुवन् राममेवमेतन्न संशयः ॥५३॥
ततो विसृज्य सचिवान् विजयं सुहृदस्तथा ।
आहूय लक्ष्मणं रामो वचनं चेदमब्रवीत् ॥५४॥
लोकापवादस्तु महान् सीतामाश्रित्य मेऽभवत् ।
सीतां प्रातः समानीय वाल्मीकेराश्रमान्तिके ॥५५॥
त्यक्त्वा शीघ्रं रथेन त्वं पुनरायाहि लक्ष्मण ! ।
वक्ष्यसे यदि वा किञ्चित्तदा मां हतवानसि ॥५६॥
इत्युक्तो लक्ष्मणो भीत्या प्रातरुत्थाय जानकीम् ।
सुमन्त्रेण रथे कृत्वा जगाम सहसा वनम् ॥५७॥
वाल्मीकेराश्रमस्यान्ते त्यक्त्वा सीतामुवाच सः ।
लोकापवादभीतया त्वां त्यक्तवान् राघवो वने ॥५८॥

---

स्त्रियों के इस दुश्चरित्र को सहन करना पड़ेगा। क्योंकि जैसा राजा होता है, निःसन्देह प्रजा भी उसी प्रकार होती है ॥ ५२ ॥ विजय की बात सुनकर श्रीरामचन्द्र जी ने अपने स्वजनों से यही बात पूछी। उन लोगों ने भी नमस्कार कर यही कहा कि निःसन्देह बात ऐसी ही है ॥५३॥

तदनन्तर श्रीरामचन्द्र जी ने अपने मन्त्रियों–विजय तथा समस्त सुहृदों को विदा कर लक्ष्मण जी को बुलाया तथा उनसे इस प्रकार कहने लगे–॥ ५४ ॥ भाई लक्ष्मण ! देखो, सीता के कारण मेरी बड़ी लोकनिन्दा हो रही है, अतः कल प्रातःकाल तुम उन्हें रथ पर चढ़ा कर वाल्मीकि के आश्रम के समीप छोड़ आओ। यदि तुमने इस विषय में कुछ भी कहा तो निश्चय जानो तुम मेरी हत्या करोगे ॥ ५५-५६ ॥ श्रीरामचन्द्र जी की इस प्रकार आज्ञा पाकर लक्ष्मण जी भयभीत हो प्रातःकाल उठते ही सुमन्त्र के द्वारा रथ जुड़वा कर उस पर जानकी जी को चढ़ाकर बड़ी शीघ्रता से सहसा वन की ओर चल दिये ॥ ५७ ॥ वाल्मीकि के आश्रम के पास पहुँचते ही उन्होंने सीता को उतार दिया

दोषो न कश्चिन् मे मातर्गच्छाश्रमपदं मुनेः ।
इत्युक्त्वा लक्ष्मणः शीघ्रं गतवान् रामसन्निधिम् ॥५९॥
सीताऽपि दुःखसन्तप्ता विललापातिमुग्धवत् ।
शिष्यैः श्रुत्वा च वाल्मीकिः सीतां ज्ञात्वा स दिव्यदृक् ॥६०॥
अर्घ्यादिभिः पूजयित्वा समाश्वास्य च जानकीम् ।
ज्ञात्वा भविष्ययं सकलमार्पयन् मुनियोषिताम् ॥६१॥
तास्तां सम्पूजयन्ति स्म सीतां भक्त्या दिने दिने ।
ज्ञात्वा परात्मनो लक्ष्मीं मुनिवाक्येन योषितः ।
सेवां चक्रुः सदा तस्या विनयादिभिरादरात् ॥६२॥
रामोऽपि सीतारहितः परात्मा
विज्ञानदृक्केवल आदिदेवः ।

---

और उनसे कहा—भगवति ! श्रीराम जी ने लोकापवाद के भय से तुम्हारा त्याग कर दिया है ॥ ५८ ॥ हे माता ! इसमें मेरा कोई भी दोष नहीं है। अब तुम मुनीश्वर वाल्मीकि के आश्रम पर चली जाओ। सीताजी से ऐसा कह कर लक्ष्मण जी तुरन्त ही श्रीरामचन्द्र जी के पास चले आये ॥ ५९ ॥ इधर सीताजी दुःख से सन्तप्त होकर मूर्ख स्त्रियों के समान विलाप करने लगीं। वाल्मीकि ने जब शिष्यों के द्वारा यह समाचार सुना तो दिव्य दृष्टि से जान लिया कि यह सीता जी ही हैं ॥ ६० ॥

त्रिकालदर्शी महर्षि भविष्य की सब बात जानते थे, इस लिए उन्होंने सीता का अर्घ्यादि से पूजन किया और उन्हें अनेक प्रकार से समझा कर मुनिपत्नियों को सौंप दिया ॥६१॥ वे मुनिपत्नियाँ महर्षि के कहने से उन्हें परमात्मा की भार्या लक्ष्मी समझकर नित्यप्रति भक्ति से उनकी पूजा करती थीं, और विनयपूर्वक अत्यन्त आदर से उनकी सेवा किया करती थीं ॥६२॥ इधर सीता से रहित होने पर, जिनके चरण-कमलों की सेवा मुनिजन करते हैं, वे, विज्ञानचक्षु, अद्वितीय, परमात्मा आदिदेव

सन्त्यज्य भोगानखिलान् विरक्तो
मुनिव्रतोऽभून् मुनिसेविताङ्घ्रिः ॥६३॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
उत्तरकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ५ ॥

□

## पञ्चमः सर्गः

( राम-गीता )

श्रीमहादेव उवाच

ततो जगन्मङ्गलमङ्गलात्मना
विधाय रामायणकीर्तिमुत्तमाम् ।
चचार पूर्वाचरितं रघूत्तमो
राजर्षिवर्यैरभिसेवितं यथा ॥ १ ॥

सौमित्रिणा पृष्ट उदारबुद्धिना
रामः कथाः प्राह पुरातनीः शुभाः ।
राज्ञः प्रमत्तस्य नृगस्य शापतो
द्विजस्य तिर्यक्त्वमथाह राघवः ॥ २ ॥

---

श्रीराम भी समस्त भोगों को त्याग कर वैराग्य से युक्त हो मुनियों के समान रहने लगे ॥६३॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी व्याख्या विभूषित अध्यात्मरामायण स्थित
उमा-महेश्वर संवाद रूप उत्तरकाण्ड का चतुर्थ सर्ग समाप्त ॥४॥

□

श्रीमहादेव जी ने कहा--हे पार्वति ! तदनन्तर जगत् के कल्याण के लिए धारण किये गये अपने दिव्य विग्रह से भगवान् श्रीराम रामायण रूप अत्यन्त उत्तम कीर्त्ति की स्थापना कर पूर्वकाल में राजर्षिवर्यों ने जैसा आचरण किया था वैसा आचरण वे स्वयं भी करने लगे ॥ १ ॥

परम उदार सुमित्रानन्दन लक्ष्मण जी से पूछे जाने पर वे प्राचीन

कदाचिदेकान्त उपस्थितं प्रभुं
रामं रमालालित-पादपङ्कजम् ।
सौमित्रिरासादित-शुद्धभावनः
प्रणम्य भक्त्या विनयान्वितोऽब्रवीत् ॥ ३ ॥
त्वं शुद्धबोधोऽसि हि सर्वदेहिना-
मात्मास्यधीशोऽसि निराकृतिः स्वयम् ।
प्रतीयसे ज्ञानदृशां महामते !
पादाब्ज-भृङ्गाहित-सङ्गसङ्गिनाम् ॥ ४ ॥
अहं प्रपन्नोऽस्मि पदाम्बुजं प्रभो !
भवापवर्गं तव योगिभावितम् ।
यथाञ्जसाज्ञानमपारवारिधिं
सुखं तरिष्यामि तथानुशाधि माम् ॥ ५ ॥

---

उत्तम कथाएँ, सुनाया करते थे, इसी प्रसङ्ग में श्रीरघुनाथ जी ने प्रमादवश महाराज नृग को ब्राह्मण के शाप से तिर्यग्योनि प्राप्त करने का वृत्तान्त भी सुनाया ॥ २ ॥ किसी दिन जब भगवान् राम एकान्त में बैठे हुए थे, और महालक्ष्मी जब उनके चरण-कमलों की सेवा कर रही थीं। उस समय शुद्ध विचार वाले लक्ष्मण जी उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम कर विनीत भाव से बोले—॥ ३ ॥

हे महामते ! आप शुद्धज्ञानस्वरूप हैं, सभी प्राणियों के आत्मा हैं, सबके स्वामी तथा निराकार रूप से विराजमान हैं। तथा अपने चरण-कमल के भ्रमर रूप महाभागवतों का साथ करने वाले भक्त सज्जन तथा ज्ञानियों को ही आप सुगमता से दिखाई पड़ते हैं ॥ ४ ॥ हे नाथ ! योगि-जन आप के जिस चरण-कमल का निरन्तर चिन्तन करते हैं एवं संसार-चक्र से छुटकारा कर देने वाले आप के उन चरण-कमलों की मैं शरण हूँ। अब आप मुझे ऐसा उपदेश दीजिए जिससे मैं अनायास ही अज्ञानरूपी

श्रुत्वाऽथ सौमित्रिवचोऽखिलं तदा
प्राह प्रपन्नार्तिहरः प्रसन्नधीः ।
विज्ञानमज्ञानतमःप्रशान्तये
श्रुतिप्रपन्नं क्षितिपालभूषणः ॥ ६ ॥

आदौ स्ववर्णाश्रमवर्णिताः क्रियाः
कृत्वा समासादित-शुद्धमानसः ।
समाप्य तत्पूर्वमुपात्तसाधनः
समाश्रयेत् सद्गुरुमात्मलब्धये ॥ ७ ॥

क्रिया शरीरोद्भवहेतुरादृता
प्रियाऽप्रियौ तौ भवतः सुरागिणः ।
धर्मेतरौ तत्र पुनः शरीरकं
पुनः क्रिया चक्रवदीर्यते भवः ॥ ८ ॥

---

महासमुद्र से पार हो जाऊँ ॥ ५ ॥ सुमित्रानन्दनलक्ष्मण की बात सुन कर भूपाल-शिरोमणि भक्तवत्सल भगवान् राम प्रसन्न मन से अज्ञानरूपी अन्धकार को नाश करने वाले श्रुति में प्रतिपादित ज्ञान का उपदेश करने लगे ॥ ६ ॥

श्रीरामचन्द्र जी ने कहा—मनुष्य को चाहिए कि वह सर्व-प्रथम वर्ण और आश्रम धर्म के लिए बतलाई हुई क्रियाओं का यथावत् पालन करे । पुनः चित्त के शुद्ध हो जाने पर उन कर्मों को छोड़ कर शम, दम एवं तितिक्षा आदि साधनों से सम्पन्न हो कर सद्गुरु की शरण ग्रहण करे ॥७॥ कर्म का आदर देहान्तर की प्राप्ति के लिए ही स्वीकार किया गया है । कर्म में राग रखने वाले पुरुषों से इष्ट एवं अनिष्ट दोनों प्रकार के कर्म होते रहते हैं, फिर उन उन कर्मों से धर्माधर्म दोनों प्राप्त होने के कारण तदनुरूप देह की प्राप्ति होती है और उस शरीर से भी इसी प्रकार कर्म होते रहते हैं, जिससे यह संसारचक्र निरन्तर चलता रहता है ॥ ८ ॥

अज्ञानमेवास्य हि मूलकारणं
तद्धानमेवात्र विधौ विधीयते ।
विद्यैव तन्नाशविधौ पटीयसी
न कर्म तज्जं सविरोधमीरितम् ॥ ९ ॥
नाज्ञानहानिर्न च रागसंक्षयो
भवेत्ततः कर्म सदोषमुद्भवेत् ।
ततः पुनः संसृतिरप्यवारिता
तस्माद् बुधो ज्ञानविचारवान् भवेत् ॥१०॥
ननु क्रिया वेदमुखेन चोदिता
तथैव विद्या पुरुषार्थसाधनम् ।
कर्तव्यता प्राणभृतः प्रचोदिता
विद्यासहायत्वमुपैति सा पुनः ॥११॥
कर्माकृतौ दोषमपि श्रुतिर्जगौ
तस्मात् सदा कार्यमिदं मुमुक्षुणा ।

---

इस संसार का मुख्य कारण अज्ञान ही है, विधि से वाक्यों द्वारा उस अज्ञान को दूर करने हेतु उपाय बताये गये हैं। अतः अज्ञान का नाश करने के लिए ज्ञान ही समर्थ है कर्म नहीं। क्योंकि अज्ञानजन्य कर्म अपने आश्रय भत कर्म का विरोधी नहीं हो सकता ॥ ९ ॥ मनुष्य के द्वारा किये गये सकाम कर्मों से न तो अज्ञान को हानि होती है और न तो उसके संसार-विषयक राग का क्षय ही होता है, वलिक उससे अनेक सदोष कर्म के उत्पन्न होने की सम्भावना भी बढ़ती है, जिससे संसार की पुनः-पुनः उत्पत्ति होना अनिवार्य है। एतदर्थ बुद्धिमान् को चाहिए कि वह ज्ञान-विचार में निरन्तर लगा रहे ॥ १० ॥

यहाँ ऐसा सन्देह किया जाता है कि, कर्म भी वेद-प्रतिपादित ही है इसके अतिरिक्त जिस प्रकार ज्ञान, वेद के कथनानुसार मोक्ष का साधक है। प्राणधारियों के लिए वेद में अवश्यकर्त्तव्यता का विधान होने से कर्म, ज्ञान का सहायक ही मानना चाहिए ॥ ११ ॥ साथ ही श्रुति में कर्म न

ननु स्वतन्त्रा ध्रुवकार्यकारिणी
विद्या न किञ्चिन् मनसाऽप्यपेक्षते ॥१२॥
न सत्यकार्योऽपि हि यद्वदध्वरः
प्रकाङ्क्षतेऽन्यानपि कारकादिकान् ।
तथैव विद्या विधितः प्रकाशितै-
र्विशिष्यते कर्मभिरेव मुक्तये ॥१३॥
केचिद् वदन्तीति वितर्कवादिन-
स्तदप्यसद् दृष्टिविरोधकारणात् ।
देहाभिमानादभिवर्धते क्रिया
विद्या गताहङ्कृतितः प्रसिद्ध्यति ॥१४॥
विशुद्ध-विज्ञान-विरोचनाञ्चिता
विद्यात्मवृत्तिश्चरमेति भण्यते ।
उदेति कर्माखिलकारकादिभि-
र्निहन्ति विद्याखिलकारकादिकम् ॥१५॥

---

करने में दोष भी बतालाया गया है, इसलिए मुमुक्षु को भी सर्वदा कर्म करते रहना चाहिए। यदि कोई कहे कि ज्ञान स्वतन्त्र है और निश्चितरूप से फल देनेवाला होता है, उसे मन से भी किसी और की आवश्यकता नहीं होती, तो उसका यह कहना उचित नहीं, क्योंकि जिस प्रकार यज्ञ सत्य कर्म होने पर भी वह अन्य कारकादि की अपेक्षा करता है, उसी प्रकार विधि से प्रकाशित कर्मों द्वारा ही ज्ञान मुक्ति का साधक हो सकता है। अतः उस कर्म का त्याग उचित नहीं है॥ १२-१३॥

इस प्रकार के कुतर्क का उत्तर ज्ञानवादो इस प्रकार देते हैं कि, प्रत्यक्ष विरोध होने के कारण कर्मवादी का कहना ठीक नहीं है, क्योंकि कर्म देहाभिमान से होता है और ज्ञान अहङ्कार के नाश होने पर प्राप्त होता है॥ १४॥ वेदान्त का विचार करते-करते विशुद्ध विज्ञान के प्रकाश से उद्भासित होने वाली चरमावस्था में उत्पन्न होने वाली आत्मवृत्ति को ज्ञान कहते हैं, इसके अतिरिक्त कर्म सम्पूर्ण कारकादि की सहायता से होता है किन्तु ज्ञान या विद्या समस्त कारकादि को अनित्यत्व भावना

तस्मात् त्यजेत् कार्यमशेषतः सुधी-
विंद्याविरोधान्न समुच्चयो भवेत् ।
आत्मानुसन्धानपरायणः सदा
निवृत्त-सर्वेन्द्रिय-वृत्तिगोचरः ॥१६॥

यावच्छरीरादिषु माययात्मधी-
स्तावद् विधेयो विधिवादकर्मणाम् ।
नेतीति वाक्यैरखिलं निषिध्य तज्-
ज्ञात्वा परात्मानमथ त्यजेत् क्रियाः ॥१७॥

यदा परात्मात्म-विभेदभेदकं
विज्ञानमात्मन्यवभाति भास्वरम् ।
तदैव माया प्रविलीयतेऽञ्जसा
सकारका कारणमात्मसंसृतेः ॥१८॥

---

द्वारा नाश कर देती है ॥ १५ ॥ इस लिए इन्द्रियों के सम्पूर्ण विषयों से निवृत्त होकर बुद्धिमान् पुरुष निरन्तर आत्मानुसन्धान में लगा रहे। और सभी प्रकार के कर्मों का त्याग कर देवे, क्योंकि विद्या का विरोधी होने के कारण कर्म का ज्ञान के साथ मेल नहीं खाता ॥ १६ ॥

जब तक माया से मोहित होने के कारण मनुष्य का शरीर में आत्म-भाव है तभी तक उसे वैदिक कर्मानुष्ठान करते रहना चाहिए। 'नेति नेति' इत्यादि श्रुति-वाक्यों से सम्पूर्ण अनात्म वस्तुओं का निषेध कर अपने आत्मस्वरूप को जान लेने पर पुनः उसे कर्मों का त्याग कर देना चाहिए ॥ १७ ॥ जिस समय जीवात्मा तथा परमात्मा के भेद को दूर करने वाला प्रकाशमय विज्ञान अन्तःकरण में स्पष्ट रूप से उद्भासित होने लगता है उसी समय आत्मा को संसार की प्राप्ति की कारणभूता यह माया भी अनायास ही कारकादि के सहित लीन हो जाती है ॥ १८ ॥

श्रुतिप्रमाणाभिविनाशिता च सा
कथं भविष्यत्यपि कार्यकारिणी ।
विज्ञानमात्रादमलाद्वितीयत-
स्तस्मादविद्या न पुनर्भविष्यति ॥१९॥
यदि स्म नष्टा न पुनः प्रसूयते
कर्ताहमस्येति मतिः कथं भवेत् ।
तस्मात् स्वतन्त्रा न किमप्यपेक्षते
विद्या विमोक्षाय विभाति केवला ॥२०॥
सा तैत्तिरीयश्रुतिराह सादरं
न्यासं प्रशस्ताखिलकर्मणां स्फुटम् ।
एतावदित्याह च वाजिनां श्रुति-
र्ज्ञानं विमोक्षाय न कर्म साधनम् ॥२१॥
विद्यासमत्वेन तु दर्शितस्त्वया
क्रतुर्न दृष्टान्त उदाहृतः समः ।

---

श्रुति के प्रमाण से माया के नष्ट हो जाने पर फिर वह अपना कार्य करने में किस प्रकार समर्थ हो सकेगी। क्योंकि परमार्थ तत्त्व एक मात्र ज्ञान स्वरूप निर्मल तथा अद्वितीय है। अतः ज्ञान हो जाने पर फिर अविद्या उत्पन्न नहीं हो सकती ॥ १९ ॥ अविद्या के एक बार नष्ट हो जाने पर पुनः उसका जन्म नहीं होता, तब ज्ञानी को 'मैं इस कर्म का कर्त्ता हूँ' इस प्रकार की बुद्धि कैसे हो सकती है। इस लिए ज्ञान स्वतन्त्र है जीव को मुक्त करने के लिए, उस ज्ञान को किसी और की अपेक्षा नहीं होती। वह स्वयं अकेला ही इस कार्य के लिये समर्थ है ॥ २० ॥ इसके अतिरिक्त तैत्तिरीय शाखा की प्रसिद्ध श्रुति भी 'न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैकेन अमृतत्वमानशुः' इस वाक्य से स्पष्ट रूप से आग्रह पूर्वक उपदेश करती है कि कर्म का त्याग करना उचित है। तथा वाजसनेय शाखा की श्रुति भी 'एतावदरे खल्वमृतम्' इन शब्दों से कहती है कि मोक्ष का साधन ज्ञान ही है कर्म नहीं ॥ २१ ॥

प्रतिपक्षी ने जो ज्ञान की समानता में यज्ञ का दृष्टान्त दिया सो ठीक

फलैः पृथक्त्वाद् बहुकारकैः क्रतुः
संसाध्यते ज्ञानमतो विपर्ययम् ॥२२॥
सप्रत्यवायो ह्यहमित्यनात्मधी-
रज्ञप्रसिद्धा न तु तत्त्वदर्शिनः।
तस्माद् बुधैस्त्याज्यमविक्रियात्मभि-
र्विधानतः कर्म विधिप्रकाशितम् ॥२३॥
श्रद्धान्वितस्तत्त्वमसीति वाक्यतो
गुरोः प्रसादादपि शुद्धमानसः।
विज्ञाय चैकात्म्यमथात्मजीवयोः
सुखी भवेन् मेरुरिवाप्रकम्पनः ॥२४॥
आदौ पदार्थावगतिर्हि कारणं
वाक्यार्थविज्ञानविधौ विधानतः।
तत्त्वम्पदार्थौ परमात्मजीवका-
वसीति चैकात्म्यमथानयोर्भवेत् ॥२५॥

---

नहीं है, क्योंकि उन दोनों के फल भी अलग-अलग हैं। इसके अतिरिक्त यज्ञ तो होता, ऋत्विग्, यजमान आदि अनेक कारकों की अपेक्षा रखता है और ज्ञान इसके विपरीत है, वह किसी कारकादि से साध्य नहीं है॥ २२॥ 'कर्म का त्याग कर देने पर मैं प्रत्यवाय युक्त हो जाऊँगा' इस प्रकार की अनात्म बुद्धि अज्ञानियों को ही हुआ करती है, तत्त्वज्ञानियों को नहीं, इस लिए विकार रहित चित्त वाले बोधवान् पुरुष को विहित कर्मों का विधिवत् त्याग कर देना चाहिए॥ २३॥ पुनः शुद्धचित्त होकर श्रद्धापूर्वक गुरु की कृपा से 'तत्त्वमसि' इस महा वाक्य के द्वारा परमात्मा तथा जीवात्मा की एकता का ज्ञान कर सुमेरु के समान निश्चल तथा सुखी हो जाना चाहिए॥ २४॥ नियमानुसार प्रत्येक वाक्यार्थ ज्ञान में पदों के अर्थ का ज्ञान आवश्यक है। 'तत्त्वमसि' इस महावाक्य में 'तत्' पद परमात्मा का वाचक है और 'त्वं' पद जीवात्मा का बोधक है, 'असि' पद इन दोनों की एकता करता है॥ २५॥

प्रत्यक्-परोक्षादि विरोधमात्मनो-
विहाय सङ्गृह्य तयोश्चिदात्मताम् ।
संशोधितां लक्षणया च लक्षितां
ज्ञात्वा स्वमात्मानमथाद्वयो भवेत् ॥२६॥

एकात्मकत्वाज्जहती न सम्भवेत्
तथाऽजहल्लक्षणता विरोधतः ।
सोऽयम्पदार्थाविव भागलक्षणा
युज्येत तत्त्वम्पदयोरदोषतः ॥२७॥

रसादिपञ्चीकृतभूतसम्भवं
भोगालयं दुःख-सुखादि-कर्मणाम् ।
शरीरमाद्यन्तवदादिकर्मजं
मायामयं स्थूलमुपाधिमात्मनः ॥२८॥

सूक्ष्मं मनोबुद्धिदशेन्द्रियैर्युतं
प्राणैरपञ्चीकृतभूतसम्भवम् ।

---

इन दोनों जीवात्मा तथा परमात्मा में जीव अन्तःकरण का साक्षी है तथा परमात्मा सर्वथा परोक्ष है, अतः इस विरोध को हटाकर लक्षणा-वृत्ति से लक्षित दोनों में रहने वाले चेतनरूप धर्म का सादृश्य ग्रहण कर उस परमात्मा से अभिन्न अपनी आत्मा को जाने और इस प्रकार से एकीभाव का आश्रय कर अद्वैत होना चाहिए ॥ २६ ॥ इन 'तत्' और 'त्वं' पदों में एकरूप होने के कारण जहती लक्षणा नहीं हो सकती, परस्पर विरुद्ध होने के कारण अजहल्लक्षणा का होना भी सम्भव नहीं है। इस लिए 'सोऽयम्' इन दोनों पदों के अर्थ की भाँति 'तत्' और 'त्वं' पदों में भाग त्याग लक्षणा ही निर्दोषता से सिद्ध हो सकती है ॥ २७ ॥

पृथ्वी आदि पञ्चीकृत भूतों से उत्पन्न हुए, सुख-दुःखादि कर्म का आश्रय तथा पूर्वोपार्जित कर्मफल से प्राप्त होने वाला यह शरीर मायामय तथा आदि अन्तवान् है, जिसे विज्ञजन आत्मा की स्थूल उपाधि मानते है और मन, बुद्धि, दस इन्द्रियाँ तथा पञ्च प्राण इन सत्रह तत्त्वों से युक्त

भोक्तुः सुखादेरनुसाधनं भवे-
च्छरीरमन्यद् विदुरात्मनो बुधाः ॥२९॥
अनाद्य-निर्वाच्यमपीह कारणं
मायाप्रधानं तु परं शरीरकम् ।
उपाधिभेदात्तु यतः पृथक् स्थितं
स्वात्मानमात्मन्यवधारयेत् क्रमात् ॥३०॥
कोशेष्वयं तेषु तु तत्तदाकृति-
र्विभाति सङ्गात् स्फटिकोपलो यथा ।
असङ्गरूपोऽयमजो यतोऽद्वयो
विज्ञायतेऽस्मिन् परितो विचारिते ॥३१॥
बुद्धेस्त्रिधा वृत्तिरपीह दृश्यते
स्वप्नादिभेदेन गुणत्रयात्मनः ।
अन्योन्यतोऽस्मिन् व्यभिचारतो मृषा
नित्ये परे ब्रह्मणि केवले शिवे ॥३२॥

---

अपञ्चीकृत भूतों से उत्पन्न हुए सूक्ष्म शरीर को, जो भोक्ता के सुख-दुःखादि अनुभव का साधन है, वह आत्मा का दूसरा शरीर है ॥२८-२९॥ इसके अतिरिक्त अनादि, अनिर्वाच्य, मायामय कारण, शरीर जीव का तीसरा देह है, इस प्रकार स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण रूप इन उपाधियों से पृथक् स्थित अपने आत्मस्वरूप को क्रमशः उपाधियों का बाध करते हुए अपने हृदय में निश्चित करे ॥ ३० ॥

स्फटिकमणि के समान निर्लेप तथा स्वच्छ होते हुए भी यह आत्मा, अन्नमयादि भिन्न-भिन्न कोशों में उनके सङ्ग से उसी-उसी आकार का भासने लगता है किन्तु भली प्रकार विचार करने पर यह वस्तुतः अद्वय, असङ्ग एवं अजन्मा निश्चित होता है ॥ ३१ ॥ त्रिगुणात्मिका की ही जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति भेद से तीन प्रकार की वृत्तियाँ देती हैं, किन्तु इन तीनों वृत्तियों में से प्रत्येक का एक-दूसरे में व्यभिचार होने के कारण ये तीनों ही एकमात्र कल्याणस्वरूप नित्य परब्रह्म में मिथ्या हैं । अतः आत्मा में इन तीनों वृत्तियों का सर्वथा अभाव है ॥ ३२ ॥

देहेन्द्रिय-प्राण-मनश्चिदात्मनां
सङ्घादजस्रं परिवर्तते धियः ।
वृत्तिस्तमोमूलतयाऽज्ञलक्षणा
यावद् भवेत्तावदसौ भवोद्भवः ॥३३॥

नेतिप्रमाणेन निराकृताखिलो
हृदा समास्वादित-चिद्घनामृतः ।
त्यजेदशेषं जगदात्तसद्रसं
पीत्वा यथाऽम्भः प्रजहाति तत्फलम् ॥३४॥

कदाचिदात्मा न मृतो न जायते
न क्षीयते नाऽपि विवर्धतेऽनवः ।
निरस्त-सर्वातिशयः सुखात्मकः
स्वयम्प्रभः सर्वगतोऽयमद्वयः ॥३५॥

एवंविधे ज्ञानमये सुखात्मके
कथं भवो दुःखमयः प्रतीयते ।

---

बुद्धि की वृत्ति ही देह, इन्द्रिय, प्राण, मन और चेतन आत्मा के संघात रूप से निरन्तर परिवर्तित होती रहती है। यह वृत्ति तमोगुण से उत्पन्न होने के कारण अज्ञानस्वरूपा है, अतः जब तक यह विद्यमान रहती है तब तक ही इस संसार में जन्म होता रहता है ॥ ३३ ॥ 'नेति नेति' श्रुति प्रमाण से निखिल संसार का बाध कर और हृदय में चिद्घनामृत का आस्वादन कर सम्पूर्ण जगत् को उसका साररूप 'तद्बोधित ब्रह्म को ग्रहण कर त्याग दे। जिस प्रकार मनुष्य नारिकेल के जल को पीकर पुनः उसे त्याग देते हैं ॥ ३४ ॥

यह आत्मा न कभी मरता है, न यह कभी जन्म लेता है, न यह कभी क्षीण होता है और न यह कभी बढ़ता ही है, यह पुरातन है, सभी उपाधियों से रहित है, सुखस्वरूप, स्वयं प्रकाश, सर्वगत एवं अद्वितीय है ॥ ३५ ॥ जो आत्मा इस प्रकार का ज्ञानमय तथा सुखस्वरूप है, उसमें इस दुःखमय संसार की प्रतीति किस प्रकार हो सकती है, अतः

अज्ञानतोऽध्यासवशात् प्रकाशते
ज्ञाने विलीयेत विरोधतः क्षणात् ॥३६॥
यदन्यदन्यत्र विभाव्यते भ्रमा-
दध्यासमित्याहुरमुं विपश्चितः ।
असर्पभूतेऽहिविभावनं यथा
रज्ज्वादिके तद्वदपीश्वरे जगत् ॥३७॥
विकल्पमायारहिते चिदात्मके-
ऽहङ्कार एष प्रथमः प्रकल्पितः ।
अध्यास एवात्मनि सर्वकारणे
निरामये ब्रह्मणि केवले परे ॥३८॥
इच्छादि-रागादि-सुखादि-धर्मिकाः
सदा धियः संसृतिहेतवः परे ।
यस्मात् प्रसुप्तौ तदभावतः परः
सुखस्वरूपेण विभाव्यते हि नः ॥३९॥

---

आत्मा में यह संसार अध्यास के कारण अज्ञानवश दिखाई दे रहा है। ज्ञान अज्ञान का विरोधी है इस लिए ज्ञान होने पर अज्ञान एक क्षण में नष्ट हो जाता है ॥३६॥ भ्रम के कारण जो अन्य में अन्य की प्रतीति होती है, उसी को बुद्धिमानों ने अध्यास कहा है, जिस प्रकार सर्प भिन्न रज्जु में सर्प की प्रतीति होती है, उसी प्रकार ईश्वर में भी संसार की प्रतीति भ्रम से होती है ॥ ३७ ॥ जो विकल्प तथा माया से रहित है, सबका कारण निरामय तथा अद्वितीय चित्स्वरूप तथा परब्रह्म है, उसमें सर्वप्रथम अहङ्कार रूप अध्यास की कल्पना होती है ॥ ३८ ॥ उस परब्रह्म स्वरूप आत्मा में इच्छा-अनिच्छा, राग-द्वेष और सुख-दुःखादि रूप बुद्धि की वृत्ति ही जन्म-मरण रूप संसार का कारण है। क्योंकि सुषुप्ति में इसका अभाव हो जाने पर हमें आत्मा में सुख का भान होता रहता है ॥ ३९ ॥

अनाद्य-विद्योद्भव-बुद्धिबिम्बितो
जीवः प्रकाशोऽयमितीर्यते चितः।
आत्मा धियः साक्षितया पृथक् स्थितो
बुद्ध्यापरिच्छिन्नपरः स एव हि ॥४०॥

चिद्बिम्बसाक्ष्यात्मधियां प्रसङ्गत-
स्त्वेकत्र वासादनलाक्तलोहवत्।
अन्योन्यमध्यासवशात् प्रतीयते
जडाऽजडत्वं च चिदात्मचेतसोः ॥४१॥

गुरोः सकाशादपि वेदवाक्यतः
सञ्जातविद्यानुभवो निरीक्ष्य तम्।
स्वात्मानमात्मस्थमुपाधिवर्जितं
त्यजेदशेषं जडमात्मगोचरम् ॥४२॥

---

अनादि अविद्या से उत्पन्न हुई बुद्धि में प्रतिबिम्बित होने वाला यह चेतना प्रकाश ही जीव कहलाता है, बुद्धि का साक्षी रूप आत्मा उससे पृथक् है, वह परमात्मा तो बुद्धि से अपरिच्छिन्न है ॥ ४० ॥ अग्नि से तपे हुए लोहे के समान चिदाभास साक्षी आत्मा तथा बुद्धि के एकत्र रहने पर परस्पर अन्योन्याध्यास होने के कारण क्रमशः उनकी चेतनता तथा जड़ता की प्रतीति होती रहती है, जिस प्रकार अग्नि-तप्त लौह-पिण्ड में अग्नि तथा लोहे का तादात्म्य हो जाने से लोहे का आकार अग्नि में एवं अग्नि की उष्णता लोहे में दिखाई पड़ती है, उसी प्रकार बुद्धि तथा आत्मा का तादात्म्य हो जाने से आत्मा की चेतना बुद्धि में और बुद्धि की जड़ता आत्मा में प्रतीत होने लगती है। इसलिए अध्यास वश बुद्धि से लेकर शरीर पर्यन्त अनात्म वस्तु भी आत्मा जैसी दिखाई पड़ती है ॥ ४१ ॥

गुरु के सन्निधान से तथा वेद-वाक्यों से आत्मज्ञान का अनुभव होने पर अपने हृदयस्थ उपाधिरहित आत्मा का साक्षात्कार कर के आत्मरूप प्रतीत होनेवाले देहादि सम्पूर्ण जड़ पदार्थों का त्याग कर देना

प्रकाशरूपोऽहमजोऽहमद्वयो-

ऽसकृद्विभातोऽहमतीव निर्मलः ।

विशुद्धविज्ञानघनो निरामयः

सम्पूर्ण आनन्दमयोऽहमक्रियः ॥४३॥

सदैव मुक्तोऽहमचिन्त्यशक्तिमा-

नतीन्द्रियज्ञानमविक्रियात्मकः ।

अनन्तपारोऽहमहर्निशं बुधै-

र्विभावितोऽहं हृदि वेदवादिभिः ॥४४॥

एवं सदात्मानमखण्डितात्मना

विचारमाणस्य विशुद्धभावना ।

हन्यादविद्यामचिरेण कारकै

रसायनं यद्वदुपासितं रुजः ॥४५॥

विविक्त आसीन उपारतेन्द्रियो

विनिर्जितात्मा विमलान्तराशयः ।

विभावयेदेकमनन्यसाधनो

विज्ञानदृक्केवल आत्मसंस्थितः ॥४६॥

---

चाहिए ॥ ४२ ॥ मैं प्रकाश रूप अजन्मा, अद्वितीय, निरन्तर भासमान, अत्यन्त निर्मल, विशुद्धविज्ञानघन, निरामय, क्रिया-रहित और एकमात्र आनन्द स्वरूप हूँ ॥ ४३ ॥ मैं सदा ही मुक्त अचिन्त्यशक्ति, अतीन्द्रिय, ज्ञानस्वरूप, अव्यय और अनन्तपार हूँ, वेदवादी पण्डितजन अहर्निश मेरा हृदय में चिन्तन किया करते हैं ॥ ४४ ॥

इस प्रकार सदा आत्मा का अखण्डवृत्ति से चिन्तन करने वाले पुरुष के अन्तःकरण में उत्पन्न हुई विशुद्धभावना शीघ्र ही कारकादि के सहित अविद्या का नाश कर देती है। जिस प्रकार नियम पूर्वक सेवन की जाने-वाली औषधि रोगों का नाशकर देती है ॥ ४५ ॥ आत्मचिन्तन करनेवाला पुरुष एकान्त देश में इन्द्रियों को उनके विषयों से हटा कर और अन्तः-करण को अपने आधीन कर आत्मसंस्थित हो और किसी साधन का

विश्वं यदेतत्परमात्मदर्शनं
विलापयेदात्मनि सर्वकारणे ।
पूर्णश्चिदानन्दमयोऽवतिष्ठते
न वेद बाह्यं न च किञ्चिदान्तरम् ॥४७॥
पूर्वं समाधेरखिलं विचिन्तये-
दोङ्कारमात्रं सचराचरं जगत् ।
तदेव वाच्यं प्रणवो हि वाचको
विभाव्यतेऽज्ञानवशान्न बोधतः ॥४८॥
अकारसंज्ञः पुरुषो हि विश्वको
ह्युकारकस्तैजस ईर्यते क्रमात् ।
प्राज्ञो मकारः परिपठ्यतेऽखिलैः
समाधिपूर्वं न तु तत्त्वतो भवेत् ॥४९॥

---

आश्रय न लेकर शुद्ध अन्तःकरण से ज्ञान-दृष्टि द्वारा एक आत्मा का ही चिन्तन करे ॥ ४६ ॥

यह विश्व परमात्मा का स्वरूप है, ऐसा समझकर इसे सबके कारण-भूत आत्मा में लीन करे, इसप्रकार जो पूर्ण चिदानन्दस्वरूप में स्थित हो जाता है, उसे बाह्य अथवा आन्तरिक किसी भी वस्तु का ज्ञान नहीं रहता ॥ ४७ ॥ समाधि प्राप्त करने के पूर्व ऐसा चिन्तन करे कि सम्पूर्ण चराचर जगत् केवल ॐकार मात्र है, संसार वाच्य है और ॐकार वाचक है, अज्ञान के कारण ही इसकी प्रतीति हो रही है, ज्ञान होने पर यह सब कुछ नहीं रहता ॥ ४८ ॥

इस ॐकार में अ, उ और म् ये तीन वर्ण हैं, इनमें अकार विश्व का वाचक है, जो विश्व जागृति के अभिमानी का देवता है, उकार तैजस् ( स्वप्न का अभिमानी ) कहलाता है, और मकार प्राज्ञ सुषुप्ति का अभिमानी कहा जाता है, यह व्यवस्था समाधि लाभ से पहले रहती है,

विश्वं त्वकारं पुरुषं विलापये-
दुकारमध्ये बहुधा व्यवस्थितम् ।
ततो मकारे प्रविलाप्य तैजसं
द्वितीयवर्णं प्रणवस्य चाऽन्तिमे ॥५०॥
मकारमप्यात्मनि चिद्घने परे
विलापयेत् प्राज्ञमपीह कारणम् ।
सोऽहं परं ब्रह्म सदा विमुक्तिमद्-
विज्ञानदृङ्मुक्त उपाधितोऽमलः ॥५१॥
एवं सदा जातपरात्मभावनः
स्वानन्दतुष्टः परविस्मृताखिलः ।
आस्ते स नित्यात्मसुखप्रकाशकः
साक्षाद् विमुक्तोऽचलवारिसिन्धुवत् ॥५२॥
एवं सदाभ्यस्त-समाधियोगिनो
निवृत्त-सर्वेन्द्रिय-गोचरस्य हि ।
विनिर्जिताशेषरिपोरहं सदा
दृश्यो भवेयं जितषड्गुणात्मनः ॥५३॥

---

तत्त्वदृष्टि से इसमें कोई भेद नहीं रहता ॥ ४९ ॥ नाना प्रकार से स्थित अकार रूप विश्व पुरुष को उकार में लीन करे, ॐकार के द्वितीय वर्ण उकार को, जो तैजस् रूप है, अन्तिम वर्ण मकार में लीन करे ॥ ५० ॥ पुनः करणात्मा प्राज्ञरूप मकार को चिद्घनरूप परमात्मा में लीन करे और भावना करे कि वह नित्यमुक्त विज्ञानस्वरूप उपाधिहीन निर्मल परब्रह्म मैं ही हूँ ॥ ५१ ॥ इस प्रकार परमात्मा को भावना करते-करते जो आत्मा के आनन्द में मग्न हो जाता है तथा जिसे सब कुछ दृश्य प्रपञ्च विस्मृत हो गया है इस प्रकार नित्य आत्मानन्द का अनुभव करनेवाला योगी जीवन्मुक्त होकर निस्तरङ्ग समुद्र के समान साक्षात् मुक्तस्वरूप हो जाता है ॥ ५२ ॥ इस प्रकार निरन्तर समाधि योग का अभ्यास करनेवाला योगी अपने समस्त इन्द्रिय गोचर विषयों से निवृत्त हो जाता है फिर काम, क्रोध आदि सम्पूर्ण शत्रुओं को परास्तकर मन तथा इन्द्रियों को जो जीत लेता है ऐसा महात्मा मेरा साक्षात्कार करता है ॥ ५३ ॥

ध्यात्वैवमात्मानमहर्निशं मुनि-
स्तिष्ठेत् सदा मुक्तसमस्तबन्धनः ।
प्रारब्धमश्नन्नभिमानवर्जितो
मय्येव साक्षात् प्रविलीयते ततः ॥५४॥

आदौ च मध्ये च तथैव चान्ततो
भवं विदित्वा भयशोककारणम् ।
हित्वा समस्तं विधिवादचोदितं
भजेत् स्वमात्मानमथाखिलात्मनाम् ॥५५॥

आत्मन्यभेदेन विभावयन्निदं
भवत्यभेदेन मयात्मना तदा ।
यथा जलं वारिनिधौ यथा पयः
क्षीरे वियद् व्योम्न्यनिले यथाऽनिलः ॥५६॥

इत्थं यदीक्षेत हि लोकसंस्थितो
जगन्मृषैवेति विभावयन् मुनिः ।
निराकृतत्वाच्छ्रुतियुक्तिमानतो
यथेन्दुभेदो दिशि दिग्भ्रमादयः ॥५७॥

---

इस प्रकार परमात्मा का ध्यान करता हुआ योगी समस्त बन्धनों से मुक्त रहे तथा अभिमान रहित होकर प्रारब्ध कर्म का फल भोगता रहे। इससे वह अन्त में साक्षात् मुझमें ही लीन हो जाता है ॥ ५४ ॥ पुरुष को चाहिए कि वह इस संसार को आदि, मध्य तथा अन्त में भय तथा शोक का कारण जान कर समस्त वेद-विहित कर्मों का त्याग कर दे तथा सम्पूर्ण प्राणियों के अन्तरामा रूप अपने आत्मा का भजन करे ॥ ५५ ॥ जिस प्रकार समुद्र में जल, दूध में दूध, महाकाश में घटादि तथा वायु में वायु मिलकर एक हो जाते हैं, उसी प्रकार इस दृश्य प्रपच्च को अपने आत्मा के साथ अभिन्न रूप से चिन्तन करते रहने से जीव भी मुक्त परमात्मा के साथ अभिन्न रूप से स्थित हो जाता है ॥ ५६ ॥

यह सारा दृश्य जगत् श्रुति, युक्ति और प्रमाण से बाधित होने के

यावन्न पश्येदखिलं मदात्मकं
तावन्मदाराधनतत्परो भवेत् ।
श्रद्धालुरत्यूर्जित-भक्तिलक्षणो
यस्तस्य दृश्योऽहमहर्निशं हृदि ॥५८॥
रहस्यमेतच्छ्रुतिसारसङ्ग्रहं
मया विनिश्चित्य तवोदितं प्रिय ! ।
यस्त्वेतदालोचयतीह बुद्धिमान्
स मुच्यते पातकराशिभिः क्षणात् ॥५९॥
भ्रातर्यदीदं परिदृश्यते जगन्
मायैव सर्वं परिहृत्य चेतसा ।
मद्भावना-भावित-शुद्धमानसः
सुखी भवानन्दमयो निरामयः ॥६०॥
यः सेवते मामगुणं गुणात् परं
हृदा कदा वा यदि वा गुणात्मकम् ।

कारण चन्द्रभेद एवं दिशाओं में होने वाले दिग्भ्रम के समान मिथ्या ही है, इस प्रकार की भावना करता हुआ लोक-व्यवहार में स्थित हुआ योगी संसार को असत्य समझे ॥ ५७ ॥ जब तक योगी इस सारे जगत् को मुझसे अभिन्न न समझे जब तब वह मेरी निरन्तर आराधना करता रहे। इस प्रकार आराधन में श्रद्धालु तथा अत्यन्त उत्कटभक्ति में लगे हुए पुरुष को अपने हृदय में निरन्तर मेरा साक्षात्कार होता रहता है ॥ ५८ ॥ हे प्रियलक्ष्मण ! श्रुतियों के साररूप इस गुप्त रहस्य को मैंने निश्चय करके तुम से कहा है, जो बुद्धिमान् इस रहस्य का निरन्तर मनन करेगा वह तत्काल समस्त पापराशियों से मुक्त हो जायेगा ॥५९ ॥ हे भाई ! यह सारा दृश्य जगत् माया ही है, अतः इसे अपने चित्त से हटा कर मेरी भावना से विशुद्ध चित्त होकर सुखी आनन्दपूर्ण तथा क्लेशशून्य हो जाओ ॥ ६० ॥

जो पुरुष अपने चित्त से मुझ गुणातीत निर्गुण का अथवा कदाचित् सगुणरूप का सेवन करता है, वह मेरा ही रूप है, वह सूर्य के समान अपने

सोऽहं स्वपादाञ्चितरेणुभिः स्पृशन्
पुनाति लोकत्रितयं यथा रविः ॥६१॥
विज्ञानमेतदखिलं श्रुतिसारमेकं
वेदान्तवेद्यचरणेन मयैव गीतम् ।
यः श्रद्धया परिपठेद् गुरुभक्तियुक्तो
मद्रूपमेति यदि मद्वचनेषु भक्तिः ॥६२॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
उत्तरकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

□

## षष्ठः सर्गः

( लवण-वध, भगवान् रामके यज्ञमें कुश-लवके सहित महर्षि वाल्मीकिका पधारना एवं कुशको परमार्थोपदेश करना )

श्रीमहादेव उवाच

एकदा मुनयः सर्वे यमुनातीरवासिनः ।
आजग्मू राघवं द्रष्टुं भयाल्लवणरक्षसः ॥ १ ॥

---

चरण-रज से सारे त्रिलोकी को पवित्र कर देता है ॥ ६१ ॥ यह ऊपर कहा गया, अद्वितीय ज्ञान समस्त श्रुतियों का सार है, इसे वेदान्तवेद्य भगवत्पाद मैंने ही कहा है, जो गुरुभक्ति युक्त पुरुष श्रद्धापूर्वक इसका पाठ करेगा तो उसकी यदि मेरे वचनों में प्रीति होगी तो वह मेरा ही रूप हो जायेगा ॥ ६२ ॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दीव्याख्या विभूषित अध्यात्म-रामायण के उमा-महेश्वर संवाद में उत्तरकाण्ड का पाँचवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५ ॥

□

श्रीमहादेव जी ने कहा—हे पार्वति ! एक दिन यमुना तट पर रहनेवाले समस्त मुनिजन लवण राक्षस से भयभीत होकर श्रीरामचन्द्र जी का

कृत्वाऽग्रे तु मुनिश्रेष्ठं भार्गवं च्यवनं द्विजाः ।
असङ्ख्याताः समायाता रामादभयकाङ्क्षिणः ॥ २ ॥
तान् पूजयित्वा परया भक्त्या रघुकुलोत्तमः ।
उवाच मधुरं वाक्यं हर्षयन् मुनिमण्डलम् ॥ ३ ॥
करवाणि मुनिश्रेष्ठाः किमागमनकारणम् ।
धन्योऽस्मि यदि यूयं मां प्रीत्या द्रष्टुमिहागताः ॥ ४ ॥
दुष्करं चापि यत्कार्यं भवतां तत्करोम्यहम् ।
आज्ञापयन्तु मां भृत्यं ब्राह्मणा दैवतं हि मे ॥ ५ ॥
तच्छ्रुत्वा सहसा हृष्टश्च्यवनो वाक्यमब्रवीत् ।
मधुनामा महादैत्यः पुरा कृतयुगे प्रभो ! ॥ ६ ॥
आसीदतीव धर्मात्मा देवब्राह्मणपूजकः ।
तस्य तुष्टो महादेवो ददौ शूलमनुत्तमम् ॥ ७ ॥

---

दर्शन करने के लिए आये ॥ १ ॥ वहाँ वे असंख्य मुनिगण भृगुपुत्र मुनिश्रेष्ठ महर्षि च्यवन को आगे कर भगवान् राम से अभय प्राप्त करने की इच्छा से आये हुए थे ॥ २ ॥ रघुकुलश्रेष्ठ भगवान् श्रीराम ने उन मुनियों का अत्यन्त भक्तिभाव से पूजन कर उन्हें प्रसन्न करते हुए मधुरवाणी से कहा ॥ ३ ॥

हे महामुनिगण ! आप सभी के यहाँ पधारने का क्या कारण है ? आप लोग जिस कार्य के लिए यहाँ आये हुए हैं उसे मैं पूर्ण करूँगा । किन्तु यदि आप लोग मुझे देखने लिए ही यहाँ आये हैं, तो मैं धन्य हूँ ॥ ४ ॥ आपका जो भी दुष्कर से भी दुष्कर कार्य होगा उसे मैं अवश्य करूँगा । मुझ सेवक को आप सब आज्ञा दीजिए क्योंकि ब्राह्मण ही मेरे इष्टदेव हैं ॥ ५ ॥

भगवान् राम के ये वचन सुन कर सहसा प्रसन्न हुए महर्षि च्यवन ने कहा—प्रभो ! सत्ययुग में मधुनामक एक महादैत्य था, जो बड़ा ही धर्मात्मा तथा देवता और ब्राह्मणों का भक्त था, उससे प्रसन्न हो कर महादेव जी ने उसे एक अत्युत्तम त्रिशूल दिया ॥ ६-७ ॥

प्राह चाऽनेन यं हंसि स तु भस्मीभविष्यति ।
रावणस्याऽनुजा भार्या तस्य कुम्भीनसी श्रुता ॥ ८ ॥
तस्यां तु लवणो नाम राक्षसो भीमविक्रमः ।
आसीद् दुरात्मा दुर्धर्षो देवब्राह्मणहिंसकः ॥ ९ ॥
पीडितास्तेन राजेन्द्र ! वयं त्वां शरणं गताः ।
तच्छ्रुत्वा राघवोऽप्याह मा भीर्वो मुनिपुङ्गवाः ॥१०॥
लवणं नाशयिष्यामि गच्छन्तु विगतज्वराः ।
इत्युक्त्वा प्राह रामोऽपि भ्रातॄन् को वा हनिष्यति ॥११॥
लवणं राक्षसं दद्याद् ब्राह्मणेभ्योऽभयं महत् ।
तच्छ्रुत्वा प्राञ्जलिः प्राह भरतो राघवाय वै ॥१२॥
अहमेव हनिष्यामि देवाज्ञापय मां प्रभो ! ।
ततो रामं नमस्कृत्य शत्रुघ्नो वाक्यमब्रवीत् ॥१३॥

---

और कहा कि तू इस त्रिशूल से जिस पर प्रहार करेगा वह भस्मीभूत हो जायेगा । सुना जाता है कि, रावण की छोटी बहन कुम्भीनसी उसकी भार्या थी ॥ ८ ॥ उस भार्या में उसे लवण नामक राक्षस उत्पन्न हुआ, जो महापराक्रमी, दुष्टचित्त, दुर्जय तथा देवता और ब्राह्मणों को दुःख देनेवाला था ॥ ९ ॥ हे राजेन्द्र ! उससे अत्यन्त पीडित होकर हम सभी आपकी शरण आये हुए हैं, यह सुनकर श्रीरघुनाथ जी ने कहा—हे श्रेष्ठ मुनिगणो ! आप लोग किसी प्रकार का भय न करें ॥ १० ॥ आप लोग निश्चित होकर जाइए, मैं उस लवण राक्षस का वध अवश्य करूँगा । ऐसा कह भगवान् श्रीराम ने भाइयों को बुलाकर पूछा-'तुमलोगों में से कौन लवण राक्षस को मारेगा तथा ब्राह्मणों को महान् अभय प्रदान करेगा' यह सुनते ही भरत जी ने हाथ जोड़ कर श्रीरामचन्द्र जी से कहा—॥ ११-१२ ॥

हे प्रभो ! मैं ही लवण को मारूँगा । हे देव ! आप मुझे आज्ञा प्रदान करें । तदनन्तर शत्रुघ्न जी ने श्रीरामचन्द्र जी को प्रणाम कर कहा ॥१३॥

लक्ष्मणेन महत्कार्यं कृतं राघव ! संयुगे ।
नन्दिग्रामे महाबुद्धिर्भरतो दुःखमन्वभूत् ॥१४॥
अहमेव गमिष्यामि लवणस्य वधाय च ।
त्वत्प्रसादाद् रघुश्रेष्ठ ! हन्यां तं राक्षसं युधि ॥१५॥
तच्छ्रुत्वा स्वाङ्कमारोप्य शत्रुघ्नं शत्रुसूदनः ।
प्राहाऽद्यैवाऽभिषेक्ष्यामि मथुराराज्यकारणात् ॥१६॥
अनाय्य च सुसम्भाराँल्लक्ष्मणेनाभिषेचने ।
अनिच्छन्तमपि स्नेहादभिषेकमकारयत् ॥१७॥
दत्त्वा तस्मै शरं दिव्यं रामः शत्रुघ्नमब्रवीत् ।
अनेन जहि बाणेन लवणं लोककण्टकम् ॥१८॥
स तु सम्पूज्य तच्छूलं गेहे गच्छति काननम् ।
भक्षणार्थं तु जन्तूनां नानाप्राणिवधाय च ॥१९॥
स तु नायाति सदनं यावद्वनचरो भवेत् ।
तावदेव पुरद्वारि तिष्ठ त्वं धृतकार्मुकः ॥२०॥

---

हे राघव ! लक्ष्मण जी ने युद्ध में बहुत बड़ा काम किया है। महामति भरत जी ने भी नन्दिग्राम में रह कर तपस्या करते हुए बहुत कष्ट सहा है ॥ १४ ॥ अतः लवण का वध करने के लिए तो मैं ही जाऊँगा। हे रघुश्रेष्ठ ! आप की कृपा से मैं उस राक्षस को अवश्य युद्ध में मार डालूँगा ॥ १५ ॥ शत्रुसूदन श्रीराम जी ने शत्रुघ्न की बात सुनते ही उन्हें गोद में बैठा लिया और कहा, मैं आज ही तुम्हें मथुरा पर राज्य करने हेतु अभिषेक करूँगा ॥ १६ ॥ फिर लक्ष्मण जी के द्वारा समस्त अभिषेक की सामग्री मँगा कर शत्रुघ्न की इच्छा न होने पर भी श्रीरामचन्द्र जी ने प्रीतिपूर्वक उनका अभिषेक कर दिया ॥ १७ ॥ फिर उन्होंने शत्रुघ्न को दिव्य बाण देकर कहा—तुम संसार के कण्टकस्वरूप लवण दैत्य को इसी बाण से मारना ॥ १८ ॥ वह दुष्ट राक्षस प्रतिदिन उस त्रिशूल को पूजा कर अनेक प्रकार के जीवों को खाने एवं और मारने के लिए वन जाया करता है ॥ १९ ॥ वह जबतक लौट कर घर में प्रवेश न करे तथा वन में ही रहे, उसी समय तुम नगर के द्वार पर धनुष बाण धारण कर खड़े

योऽस्यते स त्वया क्रुद्धस्तदा वध्यो भविष्यति ।
तं हत्वा लवणं क्रूरं तद्वनं मधुसंज्ञितम् ॥२१॥
निवेश्य नगरं तत्र तिष्ठ त्वं मेऽनुशासनात् ।
अश्वानां पञ्चसाहस्रं रथानां च तदर्धकम् ॥२२॥
गजानां षट् शतानीह पत्तीनामयुतत्रयम् ।
आगमिष्यति पश्चात्त्वमग्रे साधय राक्षसम् ॥२३॥
इत्युक्त्वा मूर्ध्न्यवघ्राय प्रेषयामास राघवः ।
शत्रुघ्नं मुनिभिः सार्धमाशीर्भिरभिनन्द्य च ॥२४॥
शत्रुघ्नोऽपि तथा चक्रे यथा रामेण चोदितः ।
हत्वा मधुसुतं युद्धे मथुरामकरोत् पुरीम् ॥२५॥
स्फीतां जनपदां चक्रे मथुरां दानमानतः ।
सीताऽपि सुषुवे पुत्रौ द्वौ वाल्मीकेरथाश्रमे ॥२६॥
मुनिस्तयोर्नाम चक्रे कुशो ज्येष्ठोऽनुजो लवः ।
क्रमेण विद्यासम्पन्नौ सीतापुत्रौ बभूवतुः ॥२७॥

---

हो जाना ॥ २० ॥ वह वन से लौटते समय क्रोधपूर्वक तुम से युद्ध करेगा, और उसी समय मारा जायेगा । इस प्रकार उस महाक्रूर लवण राक्षस को मार कर उसके मधुवन में नगर बसा कर मेरी आज्ञा से वहाँ निवास करो । सर्वप्रथम तुम उस राक्षस को ठीक करो फिर तुहारे पीछे वहाँ पाँचहजार घोड़े, अढाई हजार रथ, छहसौ हाथी और तीस हजार पैदल सेना पहुँचेगी ॥ २१-२३ ॥

ऐसा कहकर श्रीरघुनाथ जी ने शत्रुघ्न का सिर सूँघ कर तथा मुनियों के आशीर्वाद से उन्हें अभिनन्दित कर युद्ध के लिए विदा कर दिया ॥२४॥ तदनन्तर शत्रुघ्न जी ने भगवान् राम की जैसी आज्ञा थी वैसा ही किया उन्होंने मधु-पुत्र लवणासुर को मार कर वहाँ मथुरापुरी बसायी ॥ २५ ॥ और दान-मान द्वारा उन्होंने मथुरापुरी को एक समृद्धिशाली नगर बना दिया । इसी बीच वाल्मीकि के आश्रम में श्रीसीता जी को दो पुत्र हुए ॥ २६ ॥ मुनिने उन दोनों में सबसे बड़े का नाम कुश तथा छोटे

उपनीतौ च मुनिना वेदाध्ययनतत्परौ ।
कृत्स्नं रामायणं प्राह काव्यं बालकयोर्मुनिः ॥२८॥
शङ्करेण पुरा प्रोक्तं पार्वत्यै पुरहारिणा ।
वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः ॥२९॥
कुमारौ स्वरसम्पन्नौ सुन्दरावश्विनाविव ।
तन्त्रीताल - समायुक्तौ गायन्तौ चेरतुर्वने ॥३०॥
तत्र तत्र मुनीनां तौ समाजे सुररूपिणौ ।
गायन्तावभितो दृष्ट्वा विस्मिता मुनयोऽब्रुवन् ॥३१॥
गन्धर्वेष्विव किन्नरेषु भुवि वा देवेषु देवालये
पातालेष्वथवा चतुर्मुखगृहे लोकेषु सर्वेषु च ।
अस्माभिश्चिरजीविभिश्चिरतरं दृष्ट्वा दिशः सर्वतो
नाज्ञायीदृश-गीत-वाद्यगरिमा नादर्शि नाश्रावि च ॥३२॥

---

का लव रखा। धीरे-धीरे सीता के वे दोनों पुत्र विद्या-सम्पन्न हो गये ॥ २७ ॥ मुनि ने उनका उपनयन संस्कार भी किया। फिर वे वेदाध्ययन करने लगे। श्रीवाल्मीकि जी ने उन्हें सम्पूर्ण रामायण काव्य भी पढ़ा दिया ॥ २८ ॥ इस रामायण रूप काव्य को पूर्वकाल में त्रिपुर-नाशक भगवान् शंकर ने पार्वती जी को सुनाया था, उसी आख्यान को समर्थ मुनि वाल्मीकि ने वेदों का विस्तृत ज्ञान कराने के लिए उन बालकों को पढ़ाया ॥ २९ ॥ वे दोनों बालक अश्विनीकुमार के समान अत्यन्त सुन्दर थे और उसे वीणा पर बजा कर स्वर सहित गाते हुए वन में विचरा करते थे ॥ ३० ॥

देवता के समान मनोहर वे दोनों बालक जहाँ-जहाँ मुनियों का समाज था, वहाँ उन्हें गाते हुए देखकर मुनि लोग विस्मित हो आपस में कहने लगे ॥ ३१ ॥ हमलोग चिरजीवी हैं, बहुत दिनों से सभी दिशाएँ देखीं भी किन्तु गन्धर्वों, किन्नरों, भूर्लोक, देवलोक, देवालय, पाताल एवं ब्रह्मलोक में भी कहीं इस प्रकार की गाने की कुशलता न कभी जानी, न

एवं स्तुवद्भिरखिलैर्मुनिभिः प्रतिवासरम् ।
आसाते सुखमेकान्ते वाल्मीकेराश्रमे चिरम् ॥३३॥
अथ रामोऽश्वमेधादींश्चकार बहुदक्षिणान् ।
यज्ञान् स्वर्णमयीं सीतां विधाय विपुलद्युतिः ॥३४॥
तस्मिन् विताने ऋषयः सर्वे राजर्षयस्तथा ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः समाजग्मुर्दिदृक्षवः ॥३५॥
वाल्मीकिरपि सङ्गृह्य गायन्तौ तौ कुशीलवौ ।
जगाम ऋषिवाटस्य समीपं मुनिपुङ्गवः ॥३६॥
तत्रैकान्ते स्थितं शान्तं समाधिविरमे मुनिम् ।
कुशः पप्रच्छ वाल्मीकिं ज्ञानशास्त्रं कथान्तरे ॥३७॥
भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि संक्षेपाद् भवतोऽखिलम् ।
देहिनः संसृतिर्बन्धः कथमुत्पद्यते दृढः ? ॥३८॥
कथं विमुच्यते देही दृढबन्धाद् भवाभिधात् ।
वक्तुमर्हसि सर्वज्ञ मह्यं शिष्यायते मुने ! ॥३९॥

---

देखी और न तो कभी सुनी ही थी ॥ ३२ ॥ इस प्रकार प्रतिदिन मुनियों के द्वारा प्रशंसित हुए वे दोनों बालक बहुत समय तक वाल्मीकि के एकान्त आश्रम में सुखपूर्वक निवास करने लगे ॥ ३३ ॥

इधर परमतेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी ने सुवर्ण की सीता की प्रतिकृति बनाकर बहुत-सी दक्षिणावाले अश्वमेधादियज्ञ किये ॥ ३४ ॥ उस यज्ञ को देखने के लिए सभी ऋषि, राजर्षि, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि आये थे ॥ ३५ ॥ मुनिश्रेष्ठ महर्षि वाल्मीकि भी गान करते हुए कुश तथा लव को साथ लेकर उस यज्ञ को देखने आये और जहाँ महर्षियों के लिए ठहरने का स्थान था, वहाँ उतरे ॥ ३६ ॥ वहाँ पर अकेले शान्त भाव से बैठे हुए महर्षि वाल्मीकि की समाधि खुलने पर कुश ने कथा के प्रसङ्ग में ज्ञानशास्त्र की बात पूछी ॥ ३७ ॥

कुश ने पूछा—हे भगवन् ! मैं आप के द्वारा संक्षेप में यह बात सुनना चाहता हूँ कि जीव को यह संसार का दृढबन्धन कैसे प्राप्त होता है ॥३८॥ तथा संसार के इस दृढबन्धन से जीवको किस प्रकार छुटकारा मिलता

वाल्मीकिरुवाच

शृणु वक्ष्यामि ते सर्वं संक्षेपाद् बन्ध-मोक्षयोः ।
स्वरूपं साधनं चापि मत्तः श्रुत्वा यथोदितम् ॥४०॥
तथैवाचर भद्रं ते जीवन्मुक्तो भविष्यसि ।
देह एव महागेहमदेहस्य चिदात्मनः ॥४१॥
तस्याऽहङ्कार एवाऽस्मिन् मन्त्री तेनैव कल्पितः ।
देहगेहाभिमानं स्वं समारोप्य चिदात्मनि ॥४२॥
तेन तादात्म्यमापन्नः स्वचेष्टितमशेषतः ।
विदधाति चिदानन्दे तद्वासितवपुः स्वयम् ॥४३॥
तेन सङ्कल्पितो देही सङ्कल्पनिगडावृतः ।
पुत्र-दार-गृहादीनि सङ्कल्पयति चाऽनिशम् ॥४४॥
सङ्कल्पयन् स्वयं देही परिशोचति सर्वदा ।
त्रयस्तस्याहमो देहा अधमोत्तम-मध्यमाः ॥४५॥

---

है। हे मुने! आप सर्वज्ञ हैं, मुझ प्रणत शिष्य से यह सारा रहस्य कहिए ? ॥ ३९ ॥

वाल्मीकि जी ने कहा—हे कुश! मुझसे संक्षेप में साधन के सहित बन्ध और मोक्ष का सम्पूर्ण रहस्य सुनो, और जिस प्रकार मैं कहता हूँ, उसी प्रकार का आचरण करो, ऐसा करने से तुम्हारा कल्याण होगा तथा तुम जीवन्मुक्त हो जाओगे। इस देह रहित चेतन आत्मा का यह देह ही महान् घर है॥ ४०-४१ ॥ उस चेतन आत्मा ने स्वयं ही इस अहङ्कार को अपना मन्त्री बना रखा है। यह अहङ्कार रूप मन्त्री देह गेहाभिमान रूप अपने आपको उस चेतन आत्मा में आरोपित कर और उससे एकरूप होकर अपनी सारी चेष्टाओं का आरोप उस चिदानन्द स्वरूप आत्मा में ही करता है। तदनन्तर उस अहङ्कार से व्याप्त हुआ यह देही उसी के संकल्प से प्रेरित होकर स्वयं संकलपरूपी बेड़ियों में बँध जाता है, और रात-दिन पुत्र-स्त्री और गृह आदि का संकल्प किया करता है ॥४२-४४॥

इस प्रकार का संकल्प करने के कारण ही जीव सदा शोक किया करता है। इस अहङ्कार के सत्त्व, रज और तम नामक उत्तम, मध्यम

तमः-सत्त्व-रजःसंज्ञा जगतः कारणं स्थितेः ।
तमोरूपाद्धि सङ्कल्पान्नित्यं तामसचेष्टया ॥४६॥
अत्यन्तं तामसो भूत्वा कृमिकीटत्वमाप्नुयात् ।
सत्त्वरूपो हि सङ्कल्पो धर्मज्ञानपरायणः ॥४७॥
अदूरमोक्षसाम्राज्यः सुखरूपो हि तिष्ठति ।
रजोरूपो हि सङ्कल्पो लोके स व्यवहारवान् ॥४८॥
परितिष्ठति संसारे पुत्रदारानुरञ्जितः ।
त्रिविधं तु परित्यज्य रूपमेतन् महामते ! ॥४९॥
सङ्कल्पं परमाप्नोति पदमात्मपरिक्षये ।
दृष्टीः सर्वा परित्यज्य नियम्य मनसा मनः ॥५०॥
सबाह्याभ्यन्तरार्थस्य सङ्कल्पस्य क्षयं कुरु ।
यदि वर्षसहस्राणि तपश्चरसि वारुणम् ॥५१॥
पातालस्थस्य भूस्थस्य स्वर्गस्थस्यापि तेऽनघ ! ।
नाऽन्यः कश्चिदुपायोऽस्ति सङ्कल्पोपशमादृते ॥५२॥

---

तथा अधम ये तीन प्रकार के देह हैं, यही तीनों जगत् की स्थिति के कारण हैं ! इसमें तमोगुण के संकल्प करने के कारण यह जीव नित्यप्रति तामसिक चेष्टाओं से तमोगुणी होकर कीड़े-मकोड़े आदि योनियों को प्राप्त करता है । सात्त्विक संकल्प करने से जीव धर्म और ज्ञान में परायण होकर मोक्ष-साम्राज्य के समीप सुखपूर्वक निवास करता है। राजस संकल्प होने से लोक में व्यवहार युक्त होकर इस संसार में पुत्र, स्त्री आदि में अनुरक्त रहता है ।

हे महामते ! जो इस प्रकार के तीनों संकल्पों को छोड़ देता है वह चित्त को लीन कर परम पद को प्राप्त कर लेता है, इस लिए तुम भी सबप्रकार के विचारों को छोड़कर और मन से ही मन का संयम कर अपनी बाहरी तथा भीतर के सभी संकल्पों का क्षय कर दे। हे अनघ ! यदि तू पाताल, पृथ्वी अथवा स्वर्ग आदि में कहीं भी रह कर निरन्तर हजारों वर्ष कठोर तप करे तो भी तेरे लिए मुक्त होने को संकल्प के

अनाबाधेऽविकारे स्वे सुखे परमपावने ।
सङ्कल्पोपशमे यत्नं पौरुषेण परं कुरु ॥५३॥
सङ्कल्पतन्तौ निखिला भावाः प्रोताः किलाऽनघ ! ।
छिन्ने तन्तौ न जानीमः क्व यान्ति विभवाः पराः ॥५४॥
निःसङ्कल्पो यथाप्राप्त-व्यवहारपरो भव ।
क्षये सङ्कल्पजालस्य जीवो ब्रह्मत्वमाप्नुयात् ॥५५॥
अधिगतपरमार्थतामुपेत्य प्रसभमपास्य विकल्पजालमुच्चैः ।
अधिगमय पदं तदद्वितीयं विततसुखाय सुषुप्तचित्तवृत्तिः ॥५६॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
उत्तरकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ५ ॥



---

नाश के अतिरिक्त और कोई भी उपाय नहीं है ॥ ४५-५२ ॥ इसलिए त्रिकाल सत्य, अव्यय, परम पवित्र तथा स्वानन्दस्वरूप परमात्मा में लीन होने के लिए पुरुषार्थ पूर्वक अपने संकल्प के नाश का प्रयत्न करो ॥५३॥

हे अनघ ! समस्त जगत् के दृश्य पदार्थ संकल्प के धागे में पिरोये हुए हैं, जिस समय यह संकल्प का धागा टूट जाता है, उस समय पता भी नहीं चलता कि ये संसार के वैभव कहाँ चले गये ॥५४॥ अतः संकल्प का त्याग करो और प्रारब्ध से प्राप्त हुए सांसारिक व्यवहार को करते रहो। संकल्प-जाल के क्षीण हो जाने पर जीव स्वयं ब्रह्मत्व को प्राप्त कर लेगा ॥ ५५ ॥

तू हठपूर्वक अपने पुरुषार्थ से इस सारे संसार के विकल्प जाल को त्याग दे। पुनः परमार्थ ज्ञान से सम्पन्न होकर पूर्ण आनन्द की प्राप्ति हेतु चित्तवृत्ति को लीन क दे। जिससे अद्वितीय पद को प्राप्त हो जा ॥ ५६ ।

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दी-व्याख्या सहित अध्यत्मरामायण के उमा-महेश्वर संवाद में उत्तरकाण्ड का षष्ठ सर्ग समाप्त ॥ ६ ॥



## सप्तमः सर्गः

( भगवान् रामके यज्ञमें कुश और लवका गायन, सीताजी का पृथ्वी-प्रवेश, रामचन्द्रजीका माताको उपदेश )

श्रीमहादेव उवाच

वाल्मीकिना बोधितोऽसौ कुशः सद्योगतभ्रमः ।
अन्तर्मुक्तो बहिः सर्वमनुकुर्वंश्चचार सः ॥ १ ॥
वाल्मीकिरपि तौ प्राह सीतापुत्रौ महाधियौ ।
तत्र तत्र च गायन्तौ पुरे वीथिषु सर्वतः ॥ २ ॥
रामस्याऽग्रे प्रगायेतां शुश्रूषुर्यदि राघवः ।
न ग्राह्यं वै युवाभ्यां तद्यदि किञ्चित् प्रदास्यति ॥ ३ ॥
इति तौ चोदितौ तत्र गायमानौ विचेरतुः ।
यथोक्तमृषिणा पूर्वं तत्र तत्राभ्यगायताम् ॥ ४ ॥
तां स शुश्राव काकुत्स्थः पूर्वचर्यां ततस्ततः ।
अपूर्वपाठजातिं च गेयेन समभिप्लुताम् ॥ ५ ॥

---

श्री महादेव जी ने कहा—हे पार्वति ! महर्षि वाल्मीकि के द्वारा इस प्रकार किये गये ज्ञानोपदेश से कुश का सारा भ्रम शीघ्रता से दूर हो गया। और वह अपने अन्तःकरण से मुक्त होकर बाहर से समस्त क्रियाएँ करता हुआ विचरने लगा ॥ १ ॥

वाल्मीकि ने महाबुद्धिमान् सीता-पुत्रों से कहा—'तुम लोग नगर की गलियों में जहाँ-तहाँ गाते हुए विचरण करते रहो। यदि श्रीरामचन्द्र जी को भी सुनने की इच्छा हो, तो उनके सामने भी गाना, किन्तु यदि वे कुछ देने लगें तो उनसे लेना मत' ॥ २-३ ॥ इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि की आज्ञा से वे गाते हुए विचरण करने लगे। महर्षि ने प्रथम जहाँ-जहाँ गाने को कहा था, उन्हीं-उन्हीं स्थानों पर उन्होंने गान किया। जब ककुत्स्थ-नन्दन श्रीरामचन्द्र जी ने जहाँ-तहाँ अपने पूर्व चरित्र के गाने का समाचार

बालयो राघवः श्रुत्वा कौतूहलमुपेयिवान् ।
अथ कर्मान्तरे राजा समाहूय महामुनीन् ॥ ६ ॥

राज्ञश्चैव नरव्याघ्रः पण्डितांश्चैव नैगमान् ।
पौराणिकान् शब्दविदो ये च वृद्धा द्विजातयः ॥ ७ ॥

एतान् सर्वान् समाहूय गायकौ समवेशयत् ।
ते सर्वे हृष्टमनसो राजानो ब्राह्मणादयः ॥ ८ ॥
रामं तौ दारकौ दृष्ट्वा विस्मिता ह्यनिमेषणाः ।
अवोचन् सर्व एवैते परस्परमथागताः ॥ ९ ॥
इमौ रामस्य सदृशौ बिम्बाद् बिम्बमिवोदितौ ।
जटिलौ यदि न स्यातां न च वल्कलधारिणौ ॥१०॥
विशेषं नाभिगच्छामो राघवस्यानयोस्तदा ।
एवं संवदतां तेषां विस्मितानां परस्परम् ॥११॥
उपचक्रमतुर्गातुं तावुभौ मुनिदारकौ ।
ततः प्रवृत्तं मधुरं गान्धर्वमतिमानुषम् ॥१२॥

---

सुना और यह भी सुना कि उन बालकों के गान की विधि भी निराली है, तो उन्हें बड़ा कुतूहल हुआ। पुनः नरशार्दूल महाराज राम ने यज्ञ कर्मके विश्राम के समय सम्पूर्ण मुनीश्वरों, राजाओं, पण्डितों, शास्त्रज्ञों, पौराणिकों, शब्दशास्त्रियों, बड़े-बूढ़ों और द्विजातियों को बुलाया ॥ ४-७ ॥

इन लोगों को बुला लेने के अनन्तर उन्होंने गाने वाले उन बालकों को भी बुलाया। वे सभी राजा, ब्राह्मण आदि प्रसन्न चित्त से महाराज राम तथा उन बालकों को देखकर आश्चर्य-चकित हो गये। उनकी टकटकी बँध गयी। फिर, वहाँ एकत्रित सभी लोग आपस में इस प्रकार कहने लगे-॥ ८-९ ॥ 'ये दोनों बालक विम्ब से उत्पन्न हुए प्रतिविम्ब के समान श्रीरामचन्द्र जी के समान ही दिखाई पड़ते हैं। यदि ये जटाजूट तथा वल्कल धारण न किये होते तो इनमें और श्रीरामचन्द्र जी में कोई अन्तर ही दिखाई न पड़ता। इस प्रकार जब लोग आश्चर्य-चकित होकर आपस में विवाद कर रहे थे, तभी उन दोनों मुनि-कुमारों ने अपने गाने की

श्रुत्वा तन्मधुरं गीतमपराह्णे रघूत्तमः ।
उवाच भरतं चाभ्यां दीयतामयुतं वसु ॥१३॥
दीयमानं सुवर्णं तु न तज्जगृहतुस्तदा ।
किमनेन सुवर्णेन राजन्नौ वन्यभोजनौ ॥१४॥
इति सन्त्यज्य सन्दत्तं जग्मतुर्मुनिसन्निधिम् ।
एवं श्रुत्वा तु चरितं रामः स्वस्यैव विस्मितः ॥१५॥
ज्ञात्वा सीताकुमारौ तौ शत्रुघ्नं चेदमब्रवीत् ।
हनूमन्तं सुषेणं च विभीषणमथाङ्गदम् ॥१६॥
भगवन्तं महात्मानं वाल्मीकिं मुनिसत्तमम् ।
आनध्यवं मुनिवरं स-सीतं देवसम्मितम् ॥१७॥
अस्यास्तु पार्षदो मध्ये प्रत्ययं जनकात्मजा ।
करोतु शपथं सर्वे जानन्तु गतकल्मषाम् ॥१८॥

---

सारी तैयारी पूरी कर ली । फिर क्या था, थोड़ी ही देर में वहाँ अत्यन्त मधुर एवं अलौकिक गान होने लगा ।। १०-१२ ।।

तदनन्तर उस मधुर गाने को सुन कर मध्याह्न के अनन्तर श्रीरामचन्द्र जी ने भरत से कहा—'भरत ! इन्हें दशसहस्र स्वर्ण-मुद्रा प्रदान करो ।। १३ ।। उन दोनों बालकों ने भरत जी द्वारा दिये गये उन स्वर्ण-मुद्राओं को स्वीकार नहीं किया । उन्होंने कहा कि हम लोग तो वन में होने वाले कन्दमूल को खाने वाले हैं, हम यह सुवर्ण लेकर क्या करेंगे, वे भरत जी द्वारा दिये गये उस सुवर्णराशि को वहीं छोड़कर मुनि के निकट चले आये । इधर श्रीरामचन्द्र जी भी अपना चरित्र सुन कर विस्मित हो उठे ।। १४-१५ ।।

उन्होंने उन दोनों बालकों को सीता जी का पुत्र जान कर शत्रुघ्न, हनुमान्, सुषेण, विभीषण तथा अङ्गदादि से कहा ।। १६ ।। 'आप लोग मुनिश्रेष्ठ महानुभाव देवतुल्य भगवान् वाल्मीकि को सीता सहित यहाँ ले आइए ।। १७ ।। जानकी जी सब को विश्वास दिलाने हेतु इस सभा में शपथ ग्रहण करें, जिससे लोगों को विश्वास हो जाये कि सीता निष्कलङ्क हैं ।। १८ ।।

सीतां तद्वचनं श्रुत्वा गताः सर्वेऽतिविस्मिताः ।
ऊचुर्यथोक्तं रामेण वाल्मीकिं रामपार्षदाः ॥१९॥
रामस्य हृद्गतं सर्वं ज्ञात्वा वाल्मीकिरब्रवीत् ।
श्वः करिष्यति वै सीता शपथं जनसंसदि ॥२०॥
योषितां परमं दैवं पतिरेव न संशयः ।
तच्छ्रुत्वा सहसा गत्वा सर्वे प्रोचुर्मुनेर्वचः ॥२१॥
राघवस्यापि रामोऽपि श्रुत्वा मुनिवचस्तथा ।
राजानो मुनयः सर्वे श्रृणुध्वमिति चाऽब्रवीत् ॥२२॥
सीतायाः शपथं लोका विजानन्तु शुभाऽशुभम् ।
इत्युक्ता राघवेणाथ लोकाः सर्वे दिदृक्षवः ॥२३॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव महर्षयः ।
वानराश्च समाजग्मुः कौतूहलसमन्विताः ॥२४॥

---

श्रीरामचन्द्र जी के ये वचन सुन कर उनके वे सब दूत अत्यन्त आश्चर्यचकित हो वाल्मीकि के पास गये और उनसे श्रीरामचन्द्र जी ने जैसा कहा था, वह सब कह दिया ॥ १९ ॥ इससे राम के चित्त की सारी बात जान कर महर्षि वाल्मीकि ने कहा—'कल जन-साधारण के बीच जानकी जी शपथ ग्रहण करेंगी ॥ २० ॥ इसमें सन्देह नहीं कि स्त्रियों का सबसे बड़ा देवता पति ही है।' महर्षि की बात सुन कर उन लोगों ने शीघ्रता से राम के पास जा कर सभी बातें कह दीं।

तदनन्तर श्रीराम ने मुनिका सन्देश सुन कर कहा—हे नृपतिगण ! तथा मुनिजन ! अब आप लोग सीता के शपथ को सुनें और उससे उनके शुभाशुभ को जान लें। इस प्रकार भगवान् राम के कहने पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र महर्षि तथा वानर आदि सभी लोग कुतूहल वश सीता जी का शपथ देखने के लिए उस सभा में उपस्थित हुए ॥२१-२४॥

ततो मुनिवरस्तूर्णं ससीतः समुपागमत् ।
अग्रतस्तमृषिं कृत्वाऽऽयान्ती किञ्चिदवाङ्मुखी ॥२५॥
कृताञ्जलिर्बाष्पकण्ठा सीता यज्ञं विवेश तम् ।
दृष्ट्वा लक्ष्मीमिवायान्तीं ब्रह्माणमनुयायिनीम् ॥२६॥
वाल्मीकेः पृष्ठतः सीतां साधुवादो महानभूत् ।
तदा मध्ये जनौघस्य प्रविश्य मुनिपुङ्गवः ॥२७॥
सीतासहायो वाल्मीकिरिति प्राह च राघवम् ।
इयं दाशरथे सीता सुव्रता धर्मचारिणी ॥२८॥
अपापा ते पुरा त्यक्ता ममाश्रमसमीपतः ।
लोकापवादभीतेन त्वया राम ! महावने ॥२९॥
प्रत्ययं दास्यते सीता तदनुज्ञातुमर्हसि ।
इमौ तु सीतातनयाविमौ यमलजातकौ ॥३०॥

---

इसी समय महर्षि वाल्मीकि भी सीता को लेकर आ गये । उस समय सीता जी मुनि को आगे कर लज्जा से अपना मुख नीचे किये हुए हाथ जोड़े गद्गद कण्ठ हो उस यज्ञशाला में प्रविष्ट हुईं । ब्रह्मा जी के पीछे आती हुई लक्ष्मी के समान महर्षि के पीछे आती हुई सीता जी को देखकर जन-समाज में साधुवाद के साथ 'सीता जी धन्य हैं, सीता जी धन्य हैं' की ध्वनि होने लगी । तत्पश्चात् सीता जी सहित वाल्मीकि ने उस जन-समूह में घुस कर श्रीरामचन्द्रजी से कहा—हे दशरथनन्दन श्रीराम ! यह सीता पतिव्रता, धर्मचारिणी तथा सर्वथा निष्कलङ्क हैं, इन्हें कुछ दिन हुआ आपने मेरे आश्रम के समीप लोकापवाद के भय से त्याग दिया था ॥२५-२९॥ अब यह आप को अपना विश्वास देना चाहती हैं, कृपया आप इन्हें आज्ञा प्रदान कीजिए । ये दोनों बालक सीता से उत्पन्न हुए यमल ( जुड़वाँ ) पुत्र हैं ॥ ३० ॥

सुतौ तु तव दुर्धर्षौ तथ्यमेतद् ब्रवीमि ते ।
प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो रघुकुलोद्वह ! ॥३१॥
अनृतं न स्मराम्युक्तं तथेमौ तव पुत्रकौ ।
बहून् वर्षगणान् सम्यक् तपश्चर्या मया कृता ॥३२॥
नोपाश्नीयां फलं तस्या दुष्टेयं यदि मैथिली ।
वाल्मीकिनैवमुक्तस्तु राघवः प्रत्यभाषत ॥३३॥
एवमेतन् महाप्राज्ञ ! यथा वदसि सुव्रत ! ।
प्रत्ययो जनितो मह्यं तव वाक्यैरकिल्बिषः ॥३४॥
लङ्कायामपि दत्तो मे वैदेह्या प्रत्ययो महान् ।
देवानां पुरतस्तेन मन्दिरे सम्प्रवेशिता ॥३५॥
सेयं लोकभयाद् ब्रह्मन्नपापाऽपि सती पुरा ।
सीता मया परित्यक्ता भवांस्तत्क्षन्तुमर्हति ॥३६॥

---

हे राम ! मैं यह सत्य-सत्य कहता हूँ कि ये दोनों दुर्जय राजकुमार आपके ही पुत्र हैं । हे राघव ! मैं प्रजापति प्रचेता का दसवाँ पुत्र हूँ ॥३१॥ मुझे ऐसा स्मरण नहीं है कि मैंने कभी भी मिथ्या भाषण किया हो, अतः फिर भी सत्य की शपथ देकर कहता हूँ कि ये आपके ही बालक हैं। इतना ही नहीं, मैंने अनेकों वर्षों तक नियम पूर्वक खूब तपस्या की है ॥ ३२ ॥ यदि इस मिथिलेश कुमारी में कोई दोष हो तो मुझे इस तपस्या का कोई फल न प्राप्त हो । वाल्मीकि के इस प्रकार कहने पर श्रीरामचन्द्र जी बोले-॥ ३३ ॥

हे महाव्रत ! आप जैसा कहते हैं, बात ऐसी ही है, हे सुव्रत ! मुझे आपके वाक्यों से ही निःसन्देह विश्वास हो गया ॥ ३४ ॥ इन जानकी जी ने लङ्का में देवताओं के सामने बहुत विकट परीक्षा दी थीं, जिससे विश्वस्त हो मैंने इन्हें अपने घर में रख लिया ॥ ३५ ॥ किन्तु हे ब्रह्मन् ! मैं क्या करूँ, इन सती सीता के सर्वथा निर्दोष होने पर भी मैंने लोक-निन्दा के भय से इनका परित्याग कर दिया, सो आप मेरा अपराध क्षमा

ममैव जातौ जानामि पुत्रावेतौ कुशीलवौ ।
शुद्धायां जगतीमध्ये सीतायां प्रीतिरस्तु मे ॥३७॥
देवाः सर्वे परिज्ञाय रामाभिप्रायमुत्सुकाः ।
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा समाजग्मुः सहस्रशः ॥३८॥
प्रजाः समागमन् हृष्टाः सीता कौशेयवासिनी ।
उदङ्मुखी ह्यधोदृष्टिः प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥३९॥
रामादन्यं यथाऽहं वै मनसाऽपि न चिन्तये ।
तथा मे धरणी देवी विवरं दातुमर्हति ॥४०॥
तथा शपन्त्याः सीतायाः प्रादुरासीन् महाद्भुतम् ।
भूतलाद् दिव्यमत्यर्थं सिंहासनमनुत्तमम् ॥४१॥
नागेन्द्रैर्ध्रियमाणं च दिव्यदेहै रविप्रभम् ।
भूदेवी जानकीं दोर्भ्यां गृहीत्वा स्नेहसंयुता ॥४२॥

---

करें ॥ ३६ ॥ ये दोनों पुत्र कुश और लव मुझसे ही उत्पन्न हुए हैं। यह भी मैं जानता हूँ। इस संसार में परम साध्वी सीता के शुद्ध हो जाने पर मेरी इनमें प्रीति अधिक है ॥ ३७ ॥ उस समय समस्त देवगण श्रीरामचन्द्र जी का अभिप्राय जानकर ब्रह्मदेव को आगे कर उत्सुकता पूर्वक सहस्रों की संख्या में वहाँ आये ॥ ३८ ॥ और भी बहुत से प्रजाजन भी प्रसन्न चित्त से वहाँ एकत्रित हो गये। उस समय रेशमी वस्त्र धारण किये श्री सीता जी अपने मुख को उत्तर की ओर तथा नेत्रको नीचे की ओर कर खड़ी हो गयीं। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा-॥ ३९ ॥

'यदि मैंने राम के अतिरिक्त अन्य पुरुष का मन से भी चिन्तन न किया हो तो देवि पृथ्वि ! तुम मुझे आश्रय दो' ॥ ४० ॥ श्री सीता के इस प्रकार शपथ करते ही पृथ्वीतल से एक अत्यन्त अद्भुत परम दिव्य श्रेष्ठ सिंहासन प्रगट हो गया ॥४१॥ वह सूर्य के समान अत्यन्त तेजस्वी सिंहासन दिव्य शरीर धारी नागराजों द्वारा धारण किया गया था, फिर पृथ्वी

स्वागतं ताम्रुवाचैनामासने संन्यवेशयत् ।
सिंहासनस्थां वैदेहीं प्रविशन्तीं रसातलम् ॥४३॥
निरन्तरा पुष्पवृष्टिर्दिव्या सीतामवाकिरत् ।
साधुवादश्च सुमहान् देवानां परमाद्भुतः ॥४४॥
ऊचुश्च बहुधा वाचो ह्यन्तरिक्षगताः सुराः ।
अन्तरिक्षे च भूमौ च सर्वे स्थावरजङ्गमाः ॥४५॥
वानराश्च महाकायाः सीताशपथकारणात् ।
केचिच्चिन्तापरास्तस्य केचिद्ध्यानपरायणाः ॥४६॥
केचिद्रामं निरीक्षन्तः केचित् सीतामचेतसः ।
मुहूर्तमात्रं तत्सर्वं तूष्णीं भूतमचेतनम् ॥४७॥
सीताप्रवेशनं दृष्ट्वा सर्वं सम्मोहितं जगत् ।
रामस्तु सर्वं ज्ञात्वैव भविष्यत्कार्यगौरवम् ॥४८॥

---

देवी ने स्नेह में भरकर जानकी जी को अपने दोनों भुजाओं से पकड़कर उनका स्वागत करते हुए उन्हें उस आसन पर बिठा लिया। इस प्रकार सिंहासन पर बैठकर रसातल में प्रवेश करते समय उन पर दिव्य पुष्पों की निरन्तर वर्षा होने लगी। तथा देवताओं के मुख से साधुवाद का अत्यन्त अद्भुत तथा महान् घोष होने लगा ॥ ४२-४४ ॥

सीता को पाताल-प्रवेश करते देख आकाश में स्थित हुए देवगण नाना प्रकार की बातें करने लगे। उस समय आकाश तथा पृथ्वी तल के समस्त स्थावर, जङ्गम प्राणियों तथा विशाल काय वाले बड़े-बड़े वानरों में-से कोई चिन्तित हो उठे, और कोई ध्यानमग्न हो गये ॥ ४५-४६ ॥ कुछ लोग राम की ओर और कुछ लोग सीता की ओर देखते हुए मूर्च्छित हो गये। इस प्रकार एक मुहूर्त्त तक वह सारा का सारा समाज निःस्तब्ध तथा चेतनाशून्य हो उठा ॥ ४७ ॥

सारा संसार सीता का पृथ्वी-प्रवेश देखकर मोहित हो गया। यद्यपि रामचन्द्र जी भविष्य में होने वाले कार्य का महत्त्व जानते थे, पुनः

अजानन्निव दुःखेन शुशोच जनकात्मजाम् ।
ब्रह्मणा ऋषिभिः सार्द्धं बोधितो रघुनन्दनः ॥४९॥
प्रतिबुद्ध इव स्वप्नाच्चकारानन्तराः क्रियाः ।
विससर्ज ऋषीन् सर्वानृत्विजो ये समागताः ॥५०॥
तान् सर्वान् धनरत्नाद्यैस्तोषयामास भूरिशः ।
उपादाय कुमारौ तावयोध्यामगमत् प्रभुः ॥५१॥
तदादि-निःस्पृहो रामः सर्वभोगेषु सर्वदा ।
आत्मचिन्तापरो नित्यमेकान्ते समुपस्थितः ॥५२॥
एकान्ते ध्याननिरते एकदा राघवे सति ।
ज्ञात्वा नारायणं साक्षात् कौसल्या प्रियवादिनी ॥५३॥
भक्त्याऽऽगत्य प्रसन्नं तं प्रणता प्राह हृष्टधीः ।
राम ! त्वं जगतामादिरादिमध्यान्तवर्जितः ॥५४॥
परमात्मा परानन्दः पूर्णः पुरुष ईश्वरः ।
जातोऽसि मे गर्भगृहे मम पुण्यातिरेकतः ॥५५॥

---

अनजान के समान सीता जी के लिए दुःखी हो शोक करने लगे। तब ऋषियों के सहित ब्रह्माजी ने उन्हें समझाया ॥ ४८-४९ ॥

तदनन्तर सोकर उठे हुए की भाँति उन्होंने यज्ञ का शेष कर्म समाप्त किया और यज्ञ में आये हुए सभी ऋत्विजों तथा ऋषिजनों को रत्न तथा धनादि से भली प्रकार सन्तुष्ट कर उन्हें विदा कर दिया फिर प्रभु श्रीराम उन कुमारों को लेकर अयोध्या पुरी आये ॥ ५०-५१ ॥ पुनः उसी समय से वे भोगों से विरक्त होकर एकान्त में रहकर आत्मचिन्तन करते हुए दिन बिताने लगे ॥ ५२ ॥

एक दिन जब रघुनाथ जी एकान्त में ध्यानमग्न थे, तब मधुरभाषिणी कौसल्या उन्हें नारायण समझकर भक्तिपूर्वक उनके पास आकर उन्हें प्रसन्न जान हर्ष से विनय पूर्वक बोलीं--हे राम ! तुम संसार के आदि कारण हो। और स्वयं आदि, मध्य तथा अन्त से रहित हो ॥ ५३-५४ ॥ आप परमात्मा, परमानन्द, पूर्ण जीवरूप से इस शरीर में निवास करने वाले और सबके स्वामी हो, मेरे अत्यन्त उत्कट पुण्य के उदय होने के

अवसाने ममाप्यद्य समयोऽभूद्रघूत्तम ! ।
नाद्याप्यवबोधजः कृत्स्नो भवबन्धो निवर्तते ॥५६॥
इदानीमपि मे ज्ञानं भवबन्धनिवर्तकम् ।
यथा संक्षेपतो भूयात्तथा बोधय मां विभो ! ॥५७॥
निर्वेदवादिनीमेवं मातरं मातृवत्सलः ।
दयालुः प्राह धर्मात्मा जराजर्जरितां शुभाम् ॥५८॥
मार्गास्त्रयो मया प्रोक्ताः पुरा मोक्षाप्तिसाधकाः ।
कर्मयोगो ज्ञानयोगो भक्तियोगश्च शाश्वतः ॥५९॥
भक्तिर्विभिद्यते मातस्त्रिविधा गुणभेदतः ।
स्वभावो यस्य यस्तेन तस्य भक्तिर्विभिद्यते ॥६०॥
यस्तु हिंसां समुद्दिश्य दम्भं मात्सर्यमेव वा ।
अभेददृष्टिश्च संरम्भी भक्तो मे तामसः स्मृतः ॥६१॥

---

कारण तुमने मेरे गर्भ से जन्म लिया है ॥ ५५ ॥ हे रघूत्तम ! आज इस अन्त समय में मुझे पूछने का अवसर मिला है, अभी तक अज्ञानजन्य मेरा यह संसार का बन्धन पूर्णरूप से नहीं टूटा ॥ ५६ ॥ अतः हे विभो ! संक्षेप में मुझे संसाररूप बन्धन से छुड़ाने वाले ऐसे ज्ञान का उपदेश दीजिए जिससे मुझे भी ज्ञान हो जाय ॥ ५७ ॥

तदनन्तर मातृभक्त, दयामय धर्मपरायण श्री राम ने वैराग्य से पूर्ण वचन बोलने वाली जरा से जर्जर शुभलक्षण युक्त अपनी माता से कहा ॥ ५८ ॥ श्रीरामचन्द्र जी ने कहा—हे माता ! मैंने पूर्वकाल में मोक्ष प्राप्ति के साधनभूत तीन प्रकार के मार्ग को बतलाया है । कर्मयोग, ज्ञानयोग और सनातन भक्ति योग ॥ ५९ ॥

हे मातः ! जिसमें साधक के गुणानुसार भक्ति के भी तीन भेद हैं, जिसका जैसा स्वभाव होता है, उसके अनुसार उसे भक्ति भी उसी के अनुसार प्राप्त होती है ॥ ६० ॥ जो पुरुष दम्भ, हिंसा अथवा मात्सर्य का उद्देश्य लेकर भक्ति करता है तथा प्राणियों में भेद दृष्टि वाला एवं क्रोधी है, उसे तामस भक्त माना गया है ॥ ६१ ॥

फलाभिसन्धिर्भोगार्थी　　धनकामो　　यशस्तथा ।
अर्चादौ भेदबुद्धया मां पूजयेत् स तु राजसः ॥६२॥
परस्मिन्नर्पितं　यस्तु　कर्म　निर्हरणाय　वा ।
कर्तव्यमिति वा कुर्याद् भेदबुद्धया स सात्त्विकः ॥६३॥
मद्गुणाश्रयणादेव　　　　मय्यनन्तगुणालये ।
अविच्छिन्ना-मनोवृत्तिर्यथा-गङ्गाम्बुनोऽम्बुधौ　　॥६४॥
तदेव　भक्तियोगस्य　लक्षणं निर्गुणस्य हि ।
अहैतुक्यव्यवहिता　　या　　भक्तिर्मयि　जायते ॥६५॥
सा मे　सालोक्य-सामीप्य-सार्ष्टि-सायुज्यमेव　वा ।
ददात्यपि न　गृह्णन्ति　भक्ता　मत्सेवनं　विना ॥६६॥
स एवात्यन्तिको योगो भक्तिमार्गस्य भामिनि ! ।
मद्भावं　प्राप्नुयात्तेन　अतिक्रम्य　गुणत्रयम् ॥६७॥

---

जो फल की इच्छा करता हुआ भोग, धन तथा यश की कामना से अर्चा आदि में भेद-दृष्टि रखता हुआ मेरी पूजा करता है वह मेरा राजस भक्त है ॥ ६२ ॥

जो कर्म-सम्पादन के लिए अपने समस्त कार्यों को परमात्मा में अर्पण करता है अथवा कर्म करना चाहिए इस भेद-बुद्धि से जो कर्म करता हुआ मेरी अर्चा में प्रवृत्त होता है वह मेरा सात्त्विक भक्त है ॥ ६३ ॥ जिस प्रकार गङ्गा का प्रवाह अविच्छिन्न रूप से निरन्तर बहता हुआ समुद्र में लीन हो जाता है, उसी प्रकार जब मेरे गुणों के आश्रय से पुरुष की मनोवृत्ति निरन्तर अविच्छिन्न रूप से मुझ गुणधाम में लगी रहे तो वह मेरे निर्गुण भक्ति योग का लक्षण है। मुझमें निष्काम तथा अखण्ड रूप से जो भक्ति उत्पन्न होती है वह यद्यपि साधक को सालोक्य, सामीप्य, सार्ष्टि और सायुज्य इन चारों प्रकार की मुक्ति प्रदान करती है किन्तु मेरे वे भक्तजन उन मुक्तियों को मेरे द्वारा दिये जाने पर भी मेरी सेवा के अतिरिक्त और कुछ ग्रहण नहीं करते ॥ ६४-६६ ॥

हे मातः ! भक्ति-मार्ग का यही आत्यन्तिक योग है, इसके द्वारा मेरा भक्त तीनों गुणों से अतीत होकर मेरा स्वरूप बन जाता है ॥ ६७ ॥

महता कामहीनेन स्वधर्माचरणेन च ।
कर्मयोगेन शस्तेन वर्जितेन विहिंसनात् ॥६८॥
मद्दर्शन-स्तुति-महापूजाभिः स्मृतिवन्दनैः ।
भूतेषु मद्भावनया सङ्गेनासत्यवर्जनः ॥६९॥
बहुमानेन महतां दुःखिनामनुकम्पया ।
स्वसमानेषु मैत्र्या च यमादीनां निषेवया ॥७०॥
वेदान्तवाक्यश्रवणान्मम नामानुकीर्तनात् ।
सत्सङ्गेनार्जवेनैव ह्यहमः परिवर्जनात् ॥७१॥
काङ्क्षया मम धर्मस्य परिशुद्धान्तरो जनः ।
मद्गुणश्रवणादेव याति मामञ्जसा जनः ॥७२॥
यथा वायुवशाद् गन्धः स्वाश्रयाद् घ्राणमाविशेत् ।
योगाभ्यासरतं चित्तमेवमात्मानमाविशेत् ॥७३॥
सर्वेषु प्राणिजातेषु ह्यहमात्मा व्यवस्थितः ।
तमज्ञात्वा विमूढात्मा कुरुते केवलं बहिः ॥७४॥

---

हे मातः ! यह मेरी निर्गुण भक्ति जिस साधन से उत्पन्न होती है तू उसे सुन, अपने धर्म का निष्काम भाव से आचरण करने से हिंसाहीन अत्युत्तम कर्मयोग से ॥ ६८ ॥ मेरे दर्शन, स्तुति, पूजा स्मरण और वन्दना से, प्राणियों में मेरी भावना करने से, असत्य के त्याग से, सत्सङ्ग से ॥ ६९ ॥ महापुरुषों का अत्यन्त सम्मान करने से, दुःखियों पर दया करने से, अपने समान के पुरुषों से मैत्री करने से तथा यम, नियम आदि का सेवन करने से, ॥ ७० ॥ वेदान्त-वाक्यों का श्रवण करने से, मेरा नाम संकीर्त्तन करने से, सत्सङ्ग से, विनम्र व्यवहार से, अहङ्कार का त्याग करने से, ॥ ७१ ॥ और मेरे भागवत धर्मों को चाहते रहने से जिसका चित्त शुद्ध हो गया है ऐसा पुरुष मेरे गुणों का श्रवण मात्र करते ही बड़ी सुगमता से मुझे प्राप्त कर लेता है ॥ ७२ ॥

जिस प्रकार वायु के द्वारा गन्ध अपना आश्रय छोड़कर घ्राणेन्द्रिय में प्रविष्ट हो जाता है, उसी प्रकार योगाभ्यास में लगा हुआ चित्त भी आत्मा में लीन हो जाता है ॥ ७३ ॥ हे माता ! मैं समस्त प्राणियों में

क्रियोत्पन्नैर्नैकभेदैर्द्रव्यैर्मे नाऽम्ब ! तोषणम् ।
भूतावमानिनार्चायामर्चितोऽहं न पूजितः ॥७५॥
तावन्मामर्चयेद् देवं प्रतिमादौ स्वकर्मभिः ।
यावत् सर्वेषु भूतेषु स्थितं चात्मनि न स्मरेत् ॥७६॥
यस्तु भेदं प्रकुरुते स्वात्मनश्च परस्य च ।
भिन्नदृष्टेर्भयं मृत्युस्तस्य कुर्यान्न संशयः ॥७७॥
मामतः सर्वभूतेषु परिच्छिन्नेषु संस्थितम् ।
एकं ज्ञानेन मानेन मैत्र्या चाऽर्चेदभिन्नधीः ॥७८॥
चेतसैवानिशं सर्वभूतानि प्रणमेत् सुधीः ।
ज्ञात्वा मां चेतनं शुद्धं जीवरूपेण संस्थितम् ॥७९॥
तस्मात् कदाचिन्नेक्षेत भेदमीश्वरजीवयोः ।
भक्तियोगो ज्ञानयोगो मया मातरुदीरितः ॥८०॥

---

आत्मरूप से संस्थित हूँ, मूर्ख पुरुष उसे न जानकर केवल बाह्य भावना किया करता है ॥ ७४ ॥ जीवों का तिरस्कार करनेवाले प्राणियों के द्वारा मैं प्रतिमा में पूजित होकर भी वास्तव में उससे मैं पूजित नहीं होता और न तो उसके द्वारा उत्पन्न किये गये अनेक प्रकार के द्रव्यों से मेरा सन्तोष ही होता है ॥ ७५ ॥

मुझ परमात्मदेव का प्रतिमा आदि में पूजन तभी तक करना चाहिए जबतक समस्त प्राणियों में और अपने-आपमें मुझ परमात्मा को स्थित न जाने ॥ ७६ ॥ जो अपने आत्मा तथा परमात्मा में भेद-बुद्धि करता है, उस भेददर्शी को मृत्यु अवश्य भय उत्पन्न करती है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ७७ ॥ इसलिए अभेददर्शी भक्त समस्त परिच्छिन्न प्राणियों में स्थित मुझ परमात्मा का ज्ञान, मान और मैत्री आदि से पूजन करे ॥७८॥ इस प्रकार मुझ शुद्ध चेतन को ही समस्त प्राणियों को जीव रूप से स्थित जान कर बुद्धिमान् पुरुष अहर्निश सभी प्राणियों को चित्त से ही प्रणाम करे ॥ ७९ ॥ इसलिए कभी भी मेरा भक्त ईश्वर और जीव के भेद को न देखे। हे मात ! मैंने इस प्रकार भक्तियोग तथा ज्ञानयोग का तुम से वर्णन किया ॥ ८० ॥

आलम्ब्यैकतरं वाऽपि पुरुषः शुभमृच्छति ।
ततो मां भक्तियोगेन मातः ! सर्वहृदि स्थितम् ॥८१॥
पुत्ररूपेण वा नित्यं स्मृत्वा शान्तिमवाप्स्यसि ।
श्रुत्वा रामस्य वचनं कौसल्यानन्दसंयुता ॥८२॥
रामं सदा हृदि ध्यात्वा छित्त्वा संसारबन्धनम् ।
अतिक्रम्य गतीस्तिस्रोऽप्यवाप परमां गतिम् ॥८३॥
कैकेयी चापि योगं रघुपतिगदितं पूर्वमेवाऽधिगम्य
श्रद्धाभक्तिप्रशान्ता हृदि रघुतिलकं भावयन्ती गतासुः ।
गत्वा स्वर्गं स्फुरन्ती दशरथसहिता मोदमानात्रतस्थे
माता श्रीलक्ष्मणस्याप्यतिविमलमतिः प्राप भर्तुः समीपम् ॥८४॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
उत्तरकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

□

---

इन दोनों मार्गों में पुरुष एक का भी अवलम्बन कर आत्यन्तिक शुभ प्राप्त कर लेता है। इसलिए हे मातः ! भक्तियोग से मुझे सम्पूर्ण प्राणियों के अन्तःकरण में स्थित जानते हुए अथवा पुत्ररूप से नित्यप्रति मेरा स्मरण करते हुए तुम शान्ति प्राप्त करोगी। भगवान् राम के ये वचन सुनकर कौसल्या आनन्द से विभोर हो गयीं ॥ ८१-८२ ॥ वे निरन्तर भगवान् श्रीराम का हृदय में ध्यान करती हुई संसार के बन्धन को काट कर तीनों प्रकार की गतियों को पार कर परमगति को प्राप्त हो गयीं ॥ ८३ ॥

कैकेयी भी पूर्वकाल में चित्रकूट पर्वत पर रामद्वारा कहे गये योग को श्रद्धा और भक्तिभाव से हृदयङ्गमकर शान्तिपूर्वक रघुकुल-तिलक भगवान् राम का ध्यान करते हुए प्राणत्याग किया और स्वर्गलोक में जाकर दशरथ जी के साथ सुशोभित हो आनन्दपूर्वक रहने लगी। इसीप्रकार श्रीलक्ष्मणजी की माता, अत्यन्त निर्मल बुद्धिवाली सुमित्रा ने भी अपने पति का सामीप्य प्राप्त किया ॥ ८४ ॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दीव्याख्या विभूषित अध्यात्म-रामायण के
उमा-महेश्वर संवाद में उत्तरकाण्ड का सातवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७ ॥

## अष्टमः सर्गः

( कालका आगमन, लक्ष्मणजी का परित्याग और उनका स्वर्गगमन )

श्रीमहादेव उवाच

अथ काले गते कस्मिन् भरतो भीमविक्रमः ।
युधाजिता मातुलेन ह्याहूतोऽगात् ससैनिकः ॥ १ ॥
रामाज्ञया गतस्तत्र हत्वा गन्धर्वनायकान् ।
तिस्रः कोटीः पुरे द्वे तु निवेश्य रघुनन्दनः ॥ २ ॥
पुष्करं पुष्करावत्यां तक्षं तक्षशिलाह्वये ।
अभिषिच्य सुतौ तत्र धनधान्यसुहृद्वृतौ ॥ ३ ॥
पुनरागत्य भरतो रामसेवापरोऽभवत् ।
ततः प्रीतो रघुश्रेष्ठो लक्ष्मणं प्राह सादरम् ॥ ४ ॥
उभौ कुमारौ सौमित्रे गृहीत्वा पश्चिमां दिशम् ।
तत्र भिल्लान् विनिर्जित्य दुष्टान् सर्वापकारिणः ॥ ५ ॥

---

श्रीमहादेव जी ने कहा—हे पार्वति ! कुछ काल बीतने पर महापराक्रमी भरत जी अपने मामा युधाजित् द्वारा बुलाये जाने पर श्रीराम की आज्ञा से सेना-सहित वहाँ गये । वहाँ पहुँच कर रघुकुलनन्दन भरत जी ने तीन करोड़ प्रमुख गन्धर्वों को मार कर दो नगर बसाये ॥ १-२ ॥ उन्होंने पुष्करावती में अपने पुष्कर नामक पुत्र का तथा तक्षशिला में तक्ष नामक पुत्र का इस प्रकार दोनों पुत्रों को अभिषिक्त कर उन्हें धन-धान्य और मित्रमण्डल से सम्पन्न किया । फिर वहाँ से लौटकर वे राम की सेवा में लग गये । इसके बाद श्रीराम ने प्रसन्नतापूर्वक श्रीलक्ष्मण जी से कहा-॥ ३-४ ॥

'हे सुमित्रानन्दन लक्ष्मण ! तुम अपने इन दोनों कुमारों को लेकर पश्चिम दिशा में जाओ । वहाँ सभी लोगों का अपकार करने वाले उन

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सौमित्रिस्त्वरयान्वितः।
आचचक्षेऽथ रामाय स सम्प्राप्तं तपोधनम् ॥११॥
एवं ब्रुवन्तं प्रोवाच लक्ष्मणं राघवो वचः।
शीघ्रं प्रवेश्यतां तात! मुनिः सत्कारपूर्वकम् ॥१२॥
लक्ष्मणस्तु तथेत्युक्त्वा प्रावेशयत तापसम्।
स्वतेजसा ज्वलन्तं तं घृतसिक्तं यथाऽनलम् ॥१३॥
सोऽभिगम्य रघुश्रेष्ठं दीप्यमानः स्वतेजसा।
मुनिर्मधुरवाक्येन वर्धस्वेत्याह राघवम् ॥१४॥
तस्मै स मुनये रामः पूजां कृत्वा यथाविधि।
पृष्ट्वानामयमव्यग्रो रामः पृष्टोऽथ तेन सः ॥१५॥
दिव्यासने समासीनो रामः प्रोवाच तापसम्।
यदर्थमागतोऽसि त्वमिह तत्प्रापयस्व मे ॥१६॥

---

बहुत देर तक उन महर्षि अतिबल का सन्देश उन्हें सुनाना है ॥ १० ॥ उसकी इस बात को सुन कर लक्ष्मण जी बड़ी शीघ्रता से रामचन्द्र जी को उन तपोधन के आने की सूचना दी ॥ ११ ॥

लक्ष्मण जी के द्वारा इस प्रकार कहने पर श्रीराम ने उनसे कहा—'भाई! मुनिराज को सत्कार पूर्वक भीतर ले आओ' ॥ १२ ॥ लक्ष्मण जी 'जो आज्ञा' कह कर घृताहुति से प्रज्वलित हुए अग्नि के समान अपने तेज से देदीप्यमान उस तपस्वी को भीतर ले आये ॥ १३ ॥ अपनी कान्ति से देदीप्यामन उस महामुनि ने श्रीरघुनाथ जी के पास जाकर अत्यन्त मधुरवाणी से ( वर्धस्व ) आपका अभ्युदय हो ऐसा आशीर्वाद प्रदान किया ॥ १४ ॥

श्रीरामचन्द्र जी ने उन महामुनि की विधिवत् पूजा कर उनसे शान्त भाव से कुशल-साचार पूछा, मुनि ने भी श्रीरामचन्द्र जी को कुशल पूछी ॥१५॥ तदनन्तर दिव्यासन पर विराजमान श्रीराम ने मुनि से कहा—आप जो सन्देश मुझसे कहने के लिए यहाँ पधारे हैं वह मुझसे कहिए ॥१६॥

वाक्येन चोदितस्तेन रामेणाह मुनिर्वचः ।
द्वन्द्वमेव प्रयोक्तव्यमनालक्ष्यं तु तद्वचः ॥१७॥
नाऽन्येन च तच्छ्रोतव्यं नाख्यातव्यं च कस्यचित् ।
शृणुयाद् वा निरीक्षेद् वा यः स वध्यस्त्वया प्रभो ! ॥१८॥
तथेति च प्रतिज्ञाय रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।
तिष्ठ त्वं द्वारि सौमित्रे ! नायात्वत्र जनो रहः ॥१९॥
यद्यागच्छति का वाऽपि स वध्यो मे न संशयः ।
ततः प्राह मुनिं रामो येन वा त्वं विसर्जितः ॥२०॥
यत्ते मनीषितं वाक्यं तद् वदस्व ममाऽग्रतः ।
ततः प्राह मुनिर्वाक्यं शृणु राम ! यथातथम् ॥२१॥
ब्रह्मणा प्रेषितोऽस्मीश ! कार्यार्थे तेऽन्तिकं प्रभो ! ।
अहं हि पूर्वजो देव ! तव पुत्रः परन्तप ! ॥२२॥

---

भगवान् राम के वाक्यों से इस प्रकार प्रेरित होने पर मुनि ने कहा—बात किसी अन्य के सामने न प्रकट करते हुए केवल हम दोनों के बीच ही कही जा सकती है ।।१७।। यदि उसे और कोई न सुने अथवा वह हम दोनों में से किसी अन्य के प्रति न कही जाये तभी वह बात कही जा सकती है। यदि वह सन्देश कोई सुन ले, अथवा सन्देश कहते हुए मुझे या आप को देख ले तो हे प्रभो ! आप को उसे मारना हो गया ।। १८ ।।

श्रीरामचन्द्र जी ने 'बहुत अच्छा' कह कर लक्ष्मण जी से कहा—लक्ष्मण ! तुम द्वार पर खड़ हो जाओ, जिससे इस एकान्त स्थान में मेरे पास कोई न आवे ।। १९ ।। यदि यहाँ कोई भी आया तो इसमें सन्देह नहीं कि वह अवश्य मेरे हाथ से मारा जायेगा। ऐसा कह कर उन्होंने मुनि से कहा—तुम्हें जिसने भेजा है और जो तुम्हें मुझसे कहना है, उसे मेरे सामने कहो, तब मुनि ने श्रीराम से कहा—हे राम ! जो वास्तविक बात है उसे सुनिए। हे प्रभो ! मुझे ब्रह्मा जी ने अपने कार्य से आप के पास भेजा है, हे देव ! हे शत्रुदमन ! मैं आप का ज्येष्ठ पुत्र हूँ ।।२०-२२।।

मायासङ्गमजो वीर ! कालः सर्वहरः स्मृतः ।
ब्रह्मा त्वामाह भगवान् सर्वदेवर्षिपूजितः ॥२३॥
रक्षितुं स्वर्गलोकस्य समयस्ते महामते ! ।
पुरा त्वमेक एवासीर्लोकान् संहृत्य मायया ॥२४॥
भार्यया सहितस्त्वं मामादौ पुत्रमजीजनः ।
तथा भोगवतं नागमनन्तमुदकेशयम् ॥२५॥
मायया जनयित्वा त्वं द्वौ ससत्त्वौ महाबलौ ।
मधु-कैटभकौ दैत्यौ हत्वा मेदोऽस्थिसञ्चयम् ॥२६॥
इमां पर्वतसम्बद्धां मेदिनीं पुरुषर्षभ ! ।
पद्मे दिव्यार्कसङ्काशेनाभ्यामुत्पाद्य मामपि ॥२७॥
मां विधाय प्रजाध्यक्षं मयि सर्वं न्यवेदयत् ।
सोऽहं संयुक्तसम्भारस्त्वामवोचं जगत्पते ! ॥२८॥

---

हे वीर ! मैं आप के द्वारा माया से सङ्गम करने पर उत्पन्न हुआ पुत्र हूँ। में सब का नाश करने वाला हूँ तथा काल नाम से प्रसिद्ध हूँ। समस्त देवर्षियों से पूजित भगवान् ब्रह्मा ने आप के लिए कहा है कि ॥ २३ ॥ हे महामते ! अब आप का समय पूर्ण हो चुका है, आप स्वर्गलोक की रक्षा करें। पूर्वकाल में आप समस्त लोकों का संहार कर एक मात्र स्वयं ही वर्त्तमान थे ॥ २४ ॥ पुनः आप ने अपनी भार्या माया के संयोग से सब से पहले पुत्ररूप में मुझे उत्पन्न किया, तदनन्तर उदक में शयन करने वाले फणधारी शेषनाग को रचा ॥ २५ ॥

इस प्रकार माया से मुझे उत्पन्न कर आपने महाबली और शूरवीर मधु और कैटभ नामक दो दैत्यों का वध किया। फिर उनके मेद और अस्थियों के समूहरूप इस पर्वतादि से युक्त पृथ्वी की रचना की। ब्रह्मा ने कहा—हे पुरुषश्रेष्ठ ! फिर अपनी नाभि से प्रकट हुए दिव्य सूर्य के समान तेजस्वी कमल से मुझ ब्रह्मा को उत्पन्न कर और प्रजापति बनाकर इस सृष्टि-रचना का सारा भार मुझ पर ही छोड़ दिया। तदनन्तर हे जगत्पते ! उस भार को ग्रहण करने पर मैंने आप से कहा ॥ २६-२८ ॥

रक्षां विधत्स्व भूतेभ्यो ये मे वीर्यापहारिणः ।
ततस्त्वं कश्यपाज्जातो विष्णुर्वामनरूपधृक् ॥२९॥
हतवानसि भूभारं वधाद्रक्षोगणस्य च ।
सर्वास्वुत्सार्यमाणासु प्रजासु धरणीधर ! ॥३०॥
रावणस्य वधाकाङ्क्षी मर्त्यलोकमुपागतः ।
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥३१॥
कृत्वा वासस्य समयं त्रिदशेष्वात्मनः पुरा ।
स ते मनोरथः पूर्णः पूर्णे चायुषि ते नृप ॥३२॥
कालस्तापसरूपेण त्वत्समीपमुपागमत् ।
ततो भूयश्च ते बुद्धिर्यदि राज्यमुपासितुम् ॥३३॥
तत्तथा भव भद्रं ते एवमाह पितामहः ।
यदि ते गमने बुद्धिर्देवलोकं जितेन्द्रिय ! ॥३४॥
सनाथा विष्णुना देवा भजन्तु विगतज्वराः ।
चतुर्मुखस्य तद्वाक्यं श्रुत्वा कालेन भाषितम् ॥३५॥

---

हे प्रभो ! मेरे पराक्रम से उत्पन्न हुई इस सृष्टि को, जो प्राणी नष्ट करे, उससे इसकी रक्षा कीजिए। तब आप विष्णु, महर्षि कश्यप के यहाँ वामन रूप धारण कर प्रगट हो गये ॥२९॥ उस समय राक्षसों का नाशकर आप ने इस पृथ्वी का भार उतारा। हे धरणीधर ! इस समय भी आप सारी प्रजा को उच्छिन्न होते देख रावण का वध करने के लिए इस मृत्युलोक में पधारे थे। इस मृत्युलोक में रहने के लिए आपने देवताओं से इग्यारह सहस्र वर्ष का काल निश्चय किया था। आपके मानव शरीर की आयु पूर्ण होने के साथ ही आप का वह मनोरथ भी पूर्ण हो चुका है ॥ ३०-३२ ॥

अब तापस रूप से काल आप के पास जा रहा है, यदि आपका विचार और कुछ दिन राज्य करने का हो तो, आपका कल्याण हो, आप वैसा ही कीजिए, ऐसा पितामह ब्रह्मा जी ने कहा है। हे जितेन्द्रिय ! यदि आप का भी विचार देवलोक को चलने का हो, तो आप विष्णु भगवान् से सनाथ होकर देवगण निश्चिन्त हो जायें। काल के मुख से

हसन् रामस्तदा वाक्यं कृत्स्नस्यान्तकमब्रवीत् ।
श्रुतं तव वचो मेऽद्य ममाऽपीष्टतरं तु तत् ॥३६॥
सन्तोषः परमो ज्ञेयस्त्वदागमनकारणात् ।
त्रयाणामपि लोकानां कार्यार्थं मम सम्भवः ॥३७॥
भद्रं तेऽस्त्वागमिष्यामि यत एवाहमागतः ।
मनोरथस्तु सम्प्राप्तो न मेऽत्रास्ति विचारणा ॥३८॥
मत्सेवकानां देवानां सर्वकार्येषु वै मया ।
स्थातव्यं मायया पुत्र ! यथा चाह प्रजापतिः ॥३९॥
एवं तयोः कथयतोर्दुर्वासा मुनिरभ्यगात् ।
राजद्वारं राघवस्य दर्शनापेक्षया द्रुतम् ॥४०॥
मुनिर्लक्ष्मणमासाद्य दुर्वासा वाक्यमब्रवीत् ।
शीघ्रं दर्शय रामं मे कार्यं मेऽत्यन्तमाहितम् ॥४१॥

---

ब्रह्मा जी की बातें सुनकर श्रीरामजी हँसे और सबका अन्त करनेवाले उस काल से बोले—अब मैंने तुम्हारी सभी बातें सुन लीं, मुझे भी वे बातें अभीष्ट हैं ॥ ३३-३६ ॥

तुम्हारे इस आगमन से मुझे बड़ा सन्तोष हुआ है, मेरा अवतार तीनों लोकों के कल्याण के लिए हुआ करता है ॥ ३७ ॥ तुम्हारा कल्याण हो, अब मैं जहाँ से आया था, वहाँ पुनः चला जाऊँगा । मेरा सारा मनोरथ पूर्ण हो गया, इसमें मुझे अब कोई विचार नहीं करना है ॥ ३८ ॥

हे पुत्र ! देवगण मेरे सेवक हैं, उनके सभी कार्यों में मुझे माया द्वारा अवश्य तत्पर रहना चाहिए, जैसा कि ब्रह्मदेव ने कहा है ॥ ३९ ॥ इस प्रकार जब काल तथा श्रीरामचन्द्र जी में बातें हो रही थीं उसी समय मुनिवर दुर्वासा जी श्रीरामजी के दर्शन करने की इच्छा से बड़ी शीघ्रता से पहुँचे ॥ ४० ॥

दुर्वासा मुनि ने वहाँ खड़े लक्ष्मण जी के पास जाकर कहा—मेरा अत्यन्त आवश्यक कार्य आ पड़ा है। हे लक्ष्मण ! तुम मुझे महाराज

तच्छ्रुत्वा प्राह सौमित्रिर्मुनिं ज्वलनतेजसम् ।
रामेण कार्यं किं तेऽद्य किं तेऽभीष्टं करोम्यहम् ॥४२॥
राजा कार्यान्तरे व्यग्रो मुहूर्तं सम्प्रतीक्ष्यताम् ।
तच्छ्रुत्वा क्रोधसन्तप्तो मुनिः सौमित्रिमब्रवीत् ॥४३॥
अस्मिन् क्षणे तु सौमित्रे ! न दर्शयसि चेद् विभुम् ।
रामं सविषयं वंशं भस्मीकुर्यां न संशयः ॥४४॥
श्रुत्वा तद्वचनं घोरमृषेर्दुर्वाससो भृशम् ।
स्वरूपं तस्य वाक्यस्य चिन्तयित्वा स लक्ष्मणः ॥४५॥
सर्वनाशाद् वरं मेऽद्य नाशो ह्येकस्य कारणात् ।
निश्चित्यैवं ततो गत्वा रामाय प्राह लक्ष्मणः ॥४६॥
सौमित्रेर्वचनं श्रुत्वा रामः कालं व्यसर्जयत् ॥
शीघ्रं निर्गम्य रामोऽपि ददर्शात्रेः सुतं मुनिम् ॥४७॥

---

रामचन्द्र से शीघ्रता पूर्वक मिलाओ ॥ ४१ ॥ महर्षि दुर्वासा के इन वचनों को सुनकर श्रीलक्ष्मण जी ने अग्नि के समान जलते हुए महर्षि से पूछा—इस समय महाराज रामचन्द्र से आप का क्या काम है, आप की क्या इच्छा है, मैं स्वयं ही उसे पूरा करूँगा ॥ ४२ ॥

हे महर्षे ! इस समय महाराज ! किसी दूसरे काम में व्यस्त हैं, अभी कुछ देर प्रतीक्षा कीजिए। यह सुनते ही क्रोध से सन्तप्त होकर मुनि ने लक्ष्मण जी से कहा—॥ ४३ ॥ लक्ष्मण ! यदि तुमने इसी समय मुझे श्री रामचन्द्र जी से नहीं मिलाया तो इसमें सन्देह नहीं कि मैं राज्य के सहित तुम्हारे वंश मात्र को अभी भस्म कर डालूँगा ॥ ४४ ॥ महर्षि दुर्वासा के इस भयङ्कर वचन को सुनकर लक्ष्मण जी ने उनके क्रोध भरे वाक्य के परिणाम का भली-भाँति विचार किया और निश्चय किया कि एक के कारण वंश के नाश की अपेक्षा मेरा नष्ट हो जाना ही अच्छा है, पुनः उन्होंने श्रीरामचन्द्र जी के पास जाकर सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ४५-४६ ॥

रामोऽभिवाद्य सम्प्रीतो मुनिं पप्रच्छ सादरम् ।
किं कार्यं ते करोमीति मुनिमाह रघूत्तमः ॥४८॥
तच्छ्रुत्वा रामवचनं दुर्वासा राममब्रवीत् ।
अद्य वर्षसहस्राणामुपवाससमापनम् ॥४९॥
अतो भोजनमिच्छामि सिद्धं तत्ते रघूत्तम ! ।
रामो मुनिवचः श्रुत्वा सन्तोषेण समन्वितः ॥५०॥
स सिद्धमन्नं मुनये यथावत् समुपाहरत् ।
मुनिर्भुक्त्वाऽन्नममृतं सन्तुष्टः पुनरभ्यगात् ॥५१॥
स्वमाश्रमं गते तस्मिन् रामः सस्मार भाषितम् ।
कालेन शोकदुःखार्तो विमनाश्चाऽतिविह्वलः ॥५२॥
अवाङ्मुखो दीनमना न शशाकाभिभाषितुम् ।
मनसा लक्ष्मणं ज्ञात्वा हतप्रायं रघूद्वहः ॥५३॥

---

लक्ष्मण जी की बात सुनकर श्रीराम ने काल को बिदा किया । और शीघ्रता से बाहर निकल कर अत्रिनन्दन दुर्वासा को द्वार पर देखा ॥ ४७ ॥ फिर उन्होंने मुनि दुर्वासा को प्रणामकर प्रसन्न चित्त हो आदर के साथ उनसे पूछा——महर्षे ! आप का कौन सा कार्य है जिसे मैं पूर्ण करूँ ॥ ४८ ॥ श्रीरामचन्द्रजी की बात सुनकर महर्षि दुर्वासा ने उनसे कहा–आज ही मेरा एक वर्ष का उपवास समाप्त हुआ है ॥४९॥ इसलिए हे रघुश्रेष्ठ ! आप के यहाँ जो भी सिद्ध भोजन हो, मैं उसी को चाहता हूँ । मुनि के वचन सुनकर श्रीरामचन्द्र जी ने सन्तुष्ट हो उन्हें विधि पूर्वक सिद्ध भोजन दिया । तदनन्तर महर्षि उस अमृत तुल्य अन्न को खाकर परम सन्तुष्ट हो चले गये ॥ ५०-५१ ॥

जब महर्षि दुर्वासा तृप्त होकर अपने आश्रम को चले गये तब श्रीरामचन्द्रजी को काल के द्वारा कहे गये वचनों का स्मरण हो आया । फिर वे शोक और दुःख से आर्त्त, उदास तथा अत्यन्त व्याकुल हो गये ॥ ५२ ॥ तत्पश्चात् उन भगवान् श्रीराम ने अपने मन में लक्ष्मण को मरा हुआ मान लिया, वे अत्यन्त खिन्न हो नीचे की ओर मुख किये बैठे रहे, और

अवाङ्मुखो बभूवाऽथ तूष्णीमेवाऽखिलेश्वरः ।
ततो रामं विलोक्याह सौमित्रिर्दुःखसम्प्लुतम् ॥५४॥
तूष्णीम्भूतं चिन्तयन्तं गर्हन्तं स्नेहबन्धनम् ।
मत्कृते त्यज सन्तापं जहि मां रघुनन्दन ! ॥५५॥
गतिः कालस्य कलिता पूर्वमेवेदृशी प्रभो ! ।
त्वयि हीनप्रतिज्ञे तु नरको मे ध्रुवं भवेत् ॥५६॥
मयि प्रीतिर्यदि भवेद्यद्यनुग्राह्यता तव ।
त्यक्त्वा शङ्कां जहि प्राज्ञ ! मा मा धर्मं त्यज प्रभो ! ॥५७॥
सौमित्रिणोक्तं तच्छ्रुत्वा रामश्चलितमानसः ।
आहूय मन्त्रिणः सर्वान् वसिष्ठं चेदमब्रवीत् ॥५८॥
मुनेरागमनं यत्तु कालस्यापि हि भाषितम् ।
प्रतिज्ञामात्मनश्चैव सर्वमावेदयत् प्रभुः ॥५९॥

---

लक्ष्मण से कुछ कह न सके ॥ ५३ ॥ सर्वेश्वर भगवान् श्रीराम जिस समय चिन्ता से विषण्ण हो नीचे की ओर मुख किये चुपचाप बैठे हुए थे, उस समय उन्हें दुःखी, मौन, चिन्तित तथा स्नेह-बन्धन की निन्दा करते देख श्रीलक्ष्मणजी ने कहा—हे रघुनन्दन ! आप मेरे लिए सन्ताप करना छोड़ दें और शीघ्रता से मुझे मार डालिए ॥ ५४-५५ ॥

हे प्रभो ! काल की ऐसी ही गति है, यह मैंने पूर्व में ही विचार कर लिया था, आप के प्रतिज्ञा भङ्ग करने से मुझे नरक जाना पड़ेगा ॥ ५६ ॥ हे प्रभो ! यदि आप की मुझ पर प्रीति हो एवं यदि मेरे ऊपर आप का अनुग्रह हो तो हे प्राज्ञ ! आप शङ्का का त्याग कर मेरा वध कीजिए, किन्तु हे नाथ ! आप धर्म का त्याग न कीजिए ॥ ५७ ॥

लक्ष्मणजी की बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजी अधीर हो उठे। फिर उन्होंने सभी मन्त्रियों को बुलाकर वशिष्ठ जी के सामने यह सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ५८ ॥ प्रभु श्रीराम ने दुर्वासा मुनि का आगमन, काल का भाषण तथा अपनी प्रतिज्ञा आदि सभी बातें उनके समक्ष कह दी ॥ ५९ ॥

श्रुत्वा रामस्य वचनं मन्त्रिणः सु-पुरोहिताः ।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे राममक्लिष्टकारिणम् ॥६०॥

पूर्वमेव हि निर्दिष्टं तव भूभारहारिणः ।
लक्ष्मणेन वियोगस्ते ज्ञातो विज्ञानचक्षुषा ॥६१॥

त्यजाशु लक्ष्मणं राम ! मा प्रतिज्ञां त्यज प्रभो ! ।
प्रतिज्ञाते परित्यक्ते धर्मो भवति निष्फलः ॥६२॥

धर्मे नष्टेऽखिले राम ! त्रैलोक्यं नश्यति ध्रुवम् ।
त्वं तु सर्वस्य लोकस्य पालकोऽसि रघूत्तम ! ॥६३॥

त्यक्त्वा लक्ष्मणमेवैकं त्रैलोक्यं त्रातुमर्हसि ।
रामो धर्मार्थसहितं वाक्यं तेषामनिन्दितम् ॥६४॥

सभामध्ये समाश्रुत्य प्राह सौमित्रिमञ्जसा ।
यथेष्टं गच्छ सौमित्रे ! मा भूद्धर्मस्य संशयः ॥६५॥

---

राम की इन बातों को सुनकर पुरोहित वशिष्ठ जी के सहित समस्त मन्त्रिगणों ने अनायास ही समस्त कार्य सम्पन्न करने वाले भगवान् श्रीराम से हाथ जोड़कर कहा ॥ ६० ॥

पृथ्वी का भार उतारने वाले आप का लक्ष्मण जी से वियोग का होना यह तो पूर्व में ही निश्चित हो चुका है, यह बात हमने अपनी ज्ञानदृष्टि से भी जान ली है ॥ ६१ ॥ अतः हे राम ! आप शीघ्र ही लक्ष्मण जी को त्याग दीजिए। हे प्रभो ! आप अपनी प्रतिज्ञा कदापि भङ्ग न कीजिए। क्योंकि, प्रतिज्ञा भङ्ग करने से सारा धर्म निष्फल हो जाता है ॥ ६२ ॥

हे राम ! सम्पूर्ण धर्म के नाश होने पर निश्चय ही त्रिलोकी का नाश हो जाता है। हे रघूत्तम ! आप तो सारे त्रिलोकी के रक्षक हैं ॥ ६३ ॥ अतः अकेले लक्ष्मण जी को त्याग कर आप इस त्रिलोकी की रक्षा करें। श्रीरामचन्द्रजी ने सभा में उनके धर्मार्थयुक्त और निर्दोष वचन सुनकर लक्ष्मण जी से तुरन्त ही कहा—'हे लक्ष्मण ! तुम्हारी जहाँ इच्छा हो वहाँ

परित्यागो वधो वाऽपि सतामेवोभयं समम् ।
एवमुक्ते रघुश्रेष्ठे दुःखव्याकुलितेक्षणः ॥६६॥
रामं प्रणम्य सौमित्रिः शीघ्रं गृहमगात् स्वकम् ।
ततोऽगात् सरयूतीरमाचम्य स कृताञ्जलिः ॥६७॥
नव द्वाराणि संयम्य मूर्ध्नि प्राणमधारयत् ।
यदक्षरं परं ब्रह्म वासुदेवाख्यमव्ययम् ॥६८॥
पदं तत्परमं धाम चेतसा सोऽभ्यचिन्तयत् ।
वायुरोधेन संयुक्तं सर्वे देवाः सहर्षयः ॥६९॥
साग्नयो लक्ष्मणं पुष्पैस्तुष्टुवुश्च समाकिरन् ।
अदृश्यं विबुधैः कैश्चित् सशरीरं च वासवः ॥७०॥
गृहीत्वा लक्ष्मणं शक्रः स्वर्गलोकमथागमत् ।
ततो विष्णोश्चतुर्भागं तं देवं सुरसत्तमाः ।
सर्वे देवर्षयो दृष्ट्वा लक्ष्मणं समपूजयन् ॥७१॥

---

चले जाओ, जिससे धर्म में संशय उपस्थित न हो ॥ ६४-६५ ॥ सत्पुरुषों के लिए त्याग और वध दोनों समान ही है। श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा इस प्रकार कहने पर लक्ष्मण जी की आँखें दुःख से कातर हो गयीं और वे शीघ्रता से उन्हें प्रणाम कर घर आये। फिर वहाँ से वे सरयू तट पर पहुँचे, और आचमन कर हाथ जोड़ शरीर के नवों छिद्रों को बन्द कर अपने प्राणों को ब्रह्मरन्ध्र में स्थिर किया। पुनः वासुदेव नामक अव्यय, अविनाशी, परमधाम ब्रह्मपद का चित्त में ध्यान किया। इस प्रकार जब वे अपने प्राणों का निरोध कर चुके तो ऋषियों तथा अग्नि के सहित समस्त देवताओं ने फूलों की वृष्टि की। और उनकी स्तुति करने लगे। उसी समय इन्द्र देवताओं से अलक्षित होकर उन्हें सशरीर ले कर स्वर्ग चले आये। तदनन्तर भगवान् विष्णु के चतुर्थांश स्वरूप उन लक्ष्मण को देख कर समस्त देवताओं तथा ऋषियों ने उनका पूजन किया ॥ ६६-७१ ॥

लक्ष्मणे हि दिवमागते हरौ सिद्धलोकगतयोगिनस्तदा ।
ब्रह्मणा सह समागमन्मुदा द्रष्टुमाहितमहाहिरूपकम् ॥७२॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे
उत्तरकाण्डेऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥



# नवमः सर्गः

( श्रीराम का महाप्रयाण )

श्रीमहादेव उवाच

लक्ष्मणं तु परित्यज्य रामो दुःखसमन्वितः ।
मन्त्रिणो नैगमांश्चैव वसिष्ठं चेदमब्रवीत् ॥ १ ॥
अभिषेक्ष्यामि भरतमधिराज्ये महामतिम् ।
अद्य चाऽहं गमिष्यामि लक्ष्मणस्य पदानुगः ॥ २ ॥
एवमुक्ते रघुश्रेष्ठे पौरजानपदास्तदा ।
द्रुमा इवच्छिन्नमूला दुःखार्ताः पतिता भुवि ॥ ३ ॥

---

भगवान् लक्ष्मण जी के स्वर्ग पधारने पर समस्त सिद्धलोक के योगी जन ब्रह्माजी को साथ लेकर बड़ी प्रसन्नता से महासर्प ( शेष ) रूपधारी श्रीलक्ष्मणजी का दर्शन करने के लिए वहाँ गये ॥ ७२ ॥

इस प्रकार 'रामप्रिया' हिन्दीव्याख्या विभूषित अध्यात्म-रामायण के उमा-महेश्वर-संवाद में उत्तरकाण्ड का आठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८ ॥



श्रीमहादेव जी ने कहा—हे पार्वति ! श्रीलक्ष्मण को परित्याग कर देने पर श्रीरामचन्द्र जी ने दुःखी हो कर मन्त्रियों, वेदवक्ताओं तथा वशिष्ठ जी से इस प्रकार कहा—॥ १ ॥ आज मैं इस राज्य पर भरत का अभिषेक करूँगा। और मैं स्वयं भी लक्ष्मणजी के मार्ग का अनुसरण करूँगा ॥ २ ॥ श्रीराम जी के इस प्रकार कहने पर पुरवासी तथा देशवासी लोग जड़ से कटे हुए वृक्ष की भाँति पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ ३ ॥

मूर्च्छितो भरतो वाऽपि श्रुत्वा रामाभिभाषितम् ।
गर्हयामास राज्यं स प्राहेदं रामसन्निधौ ॥ ४ ॥
सत्येन च शपे नाऽहं त्वां विना दिवि वा भुवि ।
काङ्क्षे राज्यं रघुश्रेष्ठ ! शपे त्वत्पादयोः प्रभो ! ॥ ५ ॥
इमौ कुश-लवौ राजन्नभिषिञ्चस्व राघव ! ।
कोशलेषु कुशं वीरमुत्तरेषु लवं तथा ॥ ६ ॥
गच्छन्तु दूतास्त्वरितं शत्रुघ्नानयनाय हि ।
अस्माकमेतद् गमनं स्वर्धामाय शृणोतु सः ॥ ७ ॥
भरतेनोदितं श्रुत्वा पतितास्ताः समीक्ष्य तम् ।
प्रजाश्च भयसंविग्ना रामविश्लेषकातराः ॥ ८ ॥
वसिष्ठो भगवान् राममुवाच सदयं वचः ।
पश्य तातादरात् सर्वाः पतिता भूतले प्रजाः ॥ ९ ॥

---

राम जी की बात सुन कर तो भरत जी मूर्च्छित हो गये। उन्होंने राम के समीप में राज्य की निन्दा करते हुए इस प्रकार कहा—॥ ४ ॥ हे प्रभो ! मैं सत्य की शपथ देता हूँ। हे रघुश्रेष्ठ ! मैं आपके चरणों की सौगन्ध देता हूँ कि मैं आप के बिना स्वर्गलोक अथवा भूलोक का कहीं का भी राज्य नहीं चाहता ॥ ५ ॥ हे राघव ! आप इन कुश तथा लव को ही राजतिलक कीजिए। हे महाराज राम ! आप अवध में वीरवर कुश को तथा उत्तर में लव को राजा बनाइए ॥ ६ ॥ शत्रुघ्न को ले आने के लिए भी दूत जाने चाहिए। जिससे हम लोगों के स्वर्ग जाने का वृत्तान्त वे भी सुन लें ॥ ७ ॥

भरत जी का वचन सुन कर और उनकी ओर देखकर सारी प्रजा भयभीत तथा राम के वियोग से कातर हो कर पृथ्वी पर गिर पड़ी ॥८॥ तदनन्तर भगवान् वशिष्ठ जी ने श्रीरघुनाथ जी से इस प्रकार कल्याण युक्त वचन कहा—हे तात ! यह सारी प्रजा दुःख से कातर हो कर पृथ्वी पर गिर पड़ी है, इन्हें कृपा पूर्वक देखो ॥ ९ ॥

तासां भावानुगं राम! प्रसादं कर्तुमर्हसि।
श्रुत्वा वसिष्ठवचनं ताः समुत्थाप्य पूज्य च ॥१०॥
सस्नेहो रघुनाथस्ताः किं करोमीति चाऽब्रवीत्।
ततः प्राञ्जलयः प्रोचुः प्रजा भक्त्या रघूद्वहम् ॥११॥
गन्तुमिच्छसि यत्र त्वमनुगच्छामहे वयम्।
अस्माकमेषा परमा प्रीतिर्धर्मोऽयमक्षयः ॥१२॥
तवानुगमने राम! हृद्गता नो दृढा मतिः।
पुत्रदारादिभिः सार्धमनुयामोऽद्य सर्वथा ॥१३॥
तपोवनं वा स्वर्गं वा पुरं वा रघुनन्दन!।
ज्ञात्वा तेषां मनोदार्ढ्यं कालस्य वचनं तथा ॥१४॥
भक्तं पौरजनं चैव बाढमित्याह राघवः।
कृत्वैवं निश्चयं रामस्तस्मिन्नेवाहनि प्रभुः ॥१५॥
प्रस्थापयामास च तौ रामभद्रः कुशीलवौ।
अष्टौ रथसहस्राणि सहस्रं चैव दन्तिनाम् ॥१६॥

---

हे राम! तुम्हें इनके प्रेमभावानुसार इन पर कृपा करनी चाहिए। वशिष्ठ जी के वचन सुन कर श्रीराम जी ने उन्हें उठाया और प्रेमपूर्वक आदर करते हुए उनसे पूछा—'कहो, मैं तुम्हारे लिए क्या करूँ?'। तब प्रजाओं ने हाथ जोड़कर भक्ति से पूर्ण हो उनसे कहा—॥ १०-११ ॥ हे नाथ! आप जहाँ भी जाना चाहते हैं हम भी आप के साथ ही चलना चाहते हैं, यही हमारे लिए सबसे बड़ी प्रसन्नता की बात होगी तथा इस अनुगमन से हमें अक्षय धर्म का लाभ भी होगा ॥ १२ ॥

हे राम! हमलोगों के हृदय में आप के अनुगमन करने का दृढ़ विचार है, अतः हे रघुनन्दन! आप तपोवन, नगर, स्वर्ग आदि जहाँ-कहीं भी जायें, अब हम लोग भी अपने स्त्री-पुत्रादि सहित सर्वथा आप का अनुगमन करेंगे। श्रीरघुनाथ जी ने उनके मन की दृढ़ता तथा काल का कहा हुआ वचन, समझ कर उन अपने भक्त नागरिकों से 'बहुत अच्छा' कहा। इस प्रकार निश्चय करने के उपरान्त उन प्रभु राम ने उसी दिन कुश और लव को अपने-अपने राज्य पर भेज दिया। उन्होंने अपने प्रत्येक पुत्र को

षष्टिं चाऽश्वसहस्त्राणामेकैकस्मै ददौ बलम् ।
बहुरत्नौ बहुधनौ हृष्ट-पुष्टजनावृतौ ॥१७॥
अभिवाद्य गतौ रामं कृच्छ्रेण तु कुशीलवौ ।
शत्रुघ्नानयने दूतान् प्रेषयामास राघवः ॥१८॥
ते दूतास्त्वरितं गत्वा शत्रुघ्नाय न्यवेदयन् ।
कालस्यागमनं पश्चादत्रिपुत्रस्य चेष्टितम् ॥१९॥
लक्ष्मणस्य च निर्याणं प्रतिज्ञां राघवस्य च ।
पुत्राभिषेचनं चैव सर्वं रामचिकीर्षितम् ॥२०॥
श्रुत्वा तद् दूतवचनं शत्रुघ्नः कुलनाशनम् ।
व्यथितोऽपि धृतिं लब्ध्वा पुत्रावाहूय सत्वरः ।
अभिषिच्य सुबाहुं वै मथुरायां महाबलः ॥२१॥
यूपकेतुं च विदिशानगरे शत्रुसूदनः ।
अयोध्यां त्वरितं प्रागात् स्वयं रामदिदृक्षया ॥२२॥

---

आठ हजार रथ, एक हजार हाथी तथा साठ हजार घोड़े दिये। तथा उनके साथ बहुत-सा रत्न तथा हृष्ट-पुष्ट मनुष्यों को भेज दिया ॥१३-१७॥

कुश और लव राम को प्रणाम कर बड़े दुःख से चले गये। इधर राम ने शत्रुघ्न को लाने के लिए दूत भेजे ॥ १८ ॥ उन दूतों ने शीघ्रतापूर्वक जाकर काल का आगमन, तत्पश्चात् दुर्वासा की करतूत, लक्ष्मण जी का महाप्रयाण, श्रीराम की प्रतिज्ञा, पुत्रों का अभिषेक तथा अब श्रीरामचन्द्र जी क्या करना चाहते हैं आदि सभी बातें शत्रुघ्न से निवेदन कर दिये ॥ १९-२० ॥

इस प्रकार दूतों के मुख से अपने कुल के विनाश का समाचार सुन कर शत्रुघ्न जी अत्यन्त व्याकुल हो उठे। पुनः धैर्य धारण कर उन्होंने अपने दोनों पुत्रों को बुलाया, उनमें महाबली सुबाहु को मथुरा के और यूपकेतु को विदिशा नगरी के राज्य पर अभिषिक्त कर स्वयं बड़ी शीघ्रता से

दद॑र्श च महात्मानं तेजसा ज्वलनप्रभम् ।
दुकूलयुगसंवीतं ऋषिभिश्चाक्षयैर्वृतम् ॥२३॥
अभिवाद्य रमानाथं शत्रुघ्नो रघुपुङ्गवम् ।
प्राञ्जलिर्धर्मसहितं वाक्यं प्राह महामतिः ॥२४॥
अभिषिच्य सुतौ तत्र राज्ये राजीवलोचन ! ।
तवानुगमने राजन् ! विद्धि मां कृतनिश्चयम् ॥२५॥
त्यक्तुं नाऽर्हसि मां वीर ! भक्तं तव विशेषतः ।
शत्रुघ्नस्य दृढां बुद्धिं विज्ञाय रघुनन्दनः ॥२६॥
सज्जीभवतु मध्याह्ने भवानित्यब्रवीद् वचः ।
अथ क्षणात् समुत्पेतुर्वानराः कामरूपिणः ॥२७॥
ऋक्षाश्च राक्षसाश्चैव गोपुच्छाश्च सहस्रशः ।
ऋषीणां देवतानां च पुत्रा रामस्य निर्गमम् ॥२८॥
श्रुत्वा प्रोचू रघुश्रेष्ठं सर्वे वानरराक्षसाः ।
तवाऽनुगमने विद्धि निश्चितार्थान् हि नः प्रभो ! ॥२९॥

---

श्रीराम के दर्शन के लिए अयोध्या चल पड़े ॥ २१-२२ ॥ वहाँ पहुँचने पर उन्होंने अपने तेज से अग्नि के समान देदीप्यमान महात्मा राम को दो वस्त्र धारण किये, और चिरजीवी ऋषियों से घिरे देखा ॥ २३ ॥

महामति शत्रुघ्न ने लक्ष्मीपति श्रीरामचन्द्र जी को प्रणाम किया और हाथ जोड़कर धर्मयुक्त ये वाक्य कहे ॥ २४ ॥ हे राजीवलोचन ! मैं अपने यहाँ के राज्य पर अपने दोनों पुत्रों का अभिषेक कर आया हूँ। हे राजन् ! मैंने भी आपके अनुगमन का निश्चय किया है, ऐसा आप जानें ॥ २५ ॥ हे वीर ! मैं आपका भक्त हूँ, अतः आपको मुझ भक्त का परित्याग नहीं करना चाहिए । इस प्रकार शत्रुघ्न का दृढ़ निश्चय जान कर श्रीराम जी ने कहा—'तुम आज दोपहर के समय तैयार रहो' । इसी समय इच्छानुसार रूप धारण करने वाले सभी वानर, रीछ, राक्षस और गोपुच्छ, जो ऋषियों तथा देवताओं के पुत्र थे, सहस्रों की संख्या में आ गये और रघुनाथजी का निर्याण सुन कर उनसे कहने लगे—प्रभो ! हम लोग भी आप के अनुगमन के लिए कटिबद्ध हैं ऐसा आप समझें ॥ २८-२९ ॥

एतस्मिन्नन्तरे रामं सुग्रीवोऽपि महाबलः ।
यथावदभिवाद्याह राघवं भक्तवत्सलम् ॥३०॥

अभिषिच्याङ्गदं राज्ये आगतोऽस्मि महाबलम् ।
तवानुगमने राम! विद्धि मां कृतनिश्चयम् ॥३१॥

श्रुत्वा तेषां दृढं वाक्यं ऋक्ष-वानर-रक्षसाम् ।
विभीषणमुवाचेदं वचनं मृदु सादरम् ॥३२॥

धरिष्यति धरा यावत् प्रजास्तावत् प्रशाधि मे ।
वचनाद्राक्षसं राज्यं शापितोऽसि ममोपरि ॥३३॥

न किञ्चिदुत्तरं वाच्यं त्वया मत्कृतकारणात् ।
एवं विभीषणं तूक्त्वा हनूमन्तमथाऽब्रवीत् ॥३४॥

मारुते! त्वं चिरञ्जीव ममाज्ञां मा मृषा कृथाः ।
जाम्बवन्तमथ प्राह तिष्ठ त्वं द्वापरान्तरे ॥३५॥

---

इसी समय महाबलवान् सुग्रीव भी यथावत् प्रणाम कर भक्तवत्सल श्रीरामजी से कहा—॥ ३० ॥

हे राम! मैं महाबली अङ्गद को राज्य पर अभिषिक्त कर आप के साथ चलने का निश्चय कर यहाँ आया हूँ, ऐसा आप जानें ॥ ३१ ॥ तदनन्तर उन रीछ, वानर तथा राक्षसों के इस प्रकार दृढ़ वाक्य को सुनकर श्रीरघुनाथजी ने विभीषण को आदर देते हुए इस प्रकार की मधुर वाणी कहा—॥ ३२ ॥

विभीषण! मैं तुम्हें अपनी शपथ देकर कहता हूँ कि तुम मेरी आज्ञा से जब तक पृथ्वी प्रजा को धारण करती है, तब तक इस राक्षसराज्य का शासन करो ॥ ३३ ॥ तुम मेरी दी हुई इस व्यवस्था के विषय में कुछ उत्तर न देना। विभीषण से इस प्रकार कह कर वे फिर हनुमान्जी से कहने लगे-॥ ३४ ॥

हे मारुते! तुम चिरकाल तक जीवित रहो, मेरी आज्ञा कभी भी व्यर्थ न जाने देना। फिर उन्होंने जाम्बवन्त से कहा—'तुम द्वापर के अन्त

मया सार्धं मरेद्युद्धं यत् किञ्चित् कारणान्तरे ।
ततस्तान् राघवः प्राह ऋक्ष-राक्षस-वानरान् ।
सर्वानेव मया सार्धं प्रयातेति दयान्वितः ॥३६॥

ततः प्रभाते रघुवंशनाथो
विशालवक्षाः सितकञ्जनेत्रः ।
पुरोधसं प्राह वसिष्ठमार्यं
यान्त्वग्निहोत्राणि पुरो गुरो ! मे ॥३७॥

ततो वसिष्ठोऽपि चकार सर्वं
प्रास्थानिकं कर्म महद्विधानात् ।
क्षौमाम्बरो दर्भपवित्रपाणि-
र्महाप्रयाणाय गृहीतबुद्धिः ॥३८॥

निष्क्रम्य रामो नगरात् सिताभ्रा-
च्चन्द्रशीव यातः शशिकोटिकान्तिः ।
रामस्य सव्ये सितपद्महस्ता
पद्मा गता पद्मविशालनेत्रा ॥३९॥

---

तक जीवन धारण करो ॥ ३५ ॥ फिर किसी कारण से हमारा और तुम्हारा युद्ध होगा। तदनन्तर श्रीरामजीने समस्त वानर, रीछ तथा राक्षसों पर दया करते हुए कहा—तुम सभी मेरे साथ चलो ॥ ३६ ॥ पुनः प्रातःकाल होने पर विशाल हृदय कमलनयन श्रीरामचन्द्रजी ने अपने पुरोधा महर्षि वशिष्ठजी से कहा—हे गुरो ! मेरे आगे-आगे अग्निहोत्र की आहवनीयादि अग्नियाँ चलें ॥ ३७ ॥ तब वशिष्ठजी ने बड़े विधान के साथ श्रीराम के समस्त प्रास्थानिक कर्म किये। उस समय करोड़ों चन्द्रमाओं के समान कान्तिमान् भगवान् राम रेशमी वस्त्र धारण किये हुए थे, कुशा की पवित्री हाथ में पहने हुए थे, वे महाप्रयाण में चित्त लगाये हुए नगर से इस प्रकार बाहर निकले, जैसे श्वेत बादलों से चन्द्रमा निकलता हो, उनके बायीं ओर हाथ में श्वेत कमल लिये महालक्ष्मीजी

पार्श्वेऽस्थ दक्षेऽरुणकञ्जहस्ता
श्यामा ययौ भूरपि दीप्यमाना ।
शास्त्राणि शस्त्राणि धनुश्च बाणा
जग्मुः पुरस्ताद् धृतविग्रहास्ते ॥४०॥

वेदाश्च सर्वे धृतविग्रहाश्च
ययुश्च सर्वे मुनयश्च दिव्याः ।
माता श्रुतीनां प्रणवेन साध्वी
ययौ हरिं व्याहृतिभिः समेता ॥४१॥

गच्छन्तमेवानुगता जनास्ते
सपुत्रदाराः सह बन्धुवर्गैः ।
अनावृतद्वारमिवापवर्गं
रामं व्रजन्तं ययुराप्तकामाः ।
शान्तः पुरः सानुचरः सभार्यः
शत्रुघ्नयुक्तो भरतोऽनुयातः ॥४२॥

---

चल रही थीं ॥ ३८-३९ ॥ और उनके दायीं ओर हाथ में लाल कमल धारण किये अत्यन्त दीप्यमान श्यामवर्ण वाली पृथ्वी चल रही थी, उस समय भगवान् के आगे समस्त शास्त्र, शस्त्र और उनके धनुष तथा बाण भी मूर्त्तिमान् शरीर धारण कर साथ चल रहे थे ॥ ४० ॥

इसी भाँति समस्त वेद, समस्त दिव्य मुनिजन तथा ॐकार एवं व्याहृतियों के सहित वेदमाता गायत्री आदि ये सब भी शरीर धारण कर श्रीहरि के साथ चल रहे थे ॥ ४१ ॥ उस समय रघुनाथजी के चलने पर बन्धु-बान्धव, स्त्री-पुत्रादि सहित समस्त पुरजन इस प्रकार चले मानो वे सफल मनोरथ होने के अनन्तर मोक्ष के खुले द्वार की ओर जा रहे हों। फिर रनिवास, सेवकगण तथा स्त्री एवं शत्रुघ्न के सहित श्री भरत जी भी चले ॥ ४२ ॥

गच्छन्तमालोक्य रमासमेतं
श्रीराघवं पौरजनाः समस्ताः ।
सबालवृद्धाश्च ययुर्द्विजाग्र्याः
सामात्यवर्गाश्च समन्त्रिणो ययुः ॥४३॥

सर्वे गताः क्षत्रमुखाः प्रहृष्टा
वैश्याश्च शूद्राश्च तथा परे च ।
सुग्रीवमुख्या हरिपुङ्गवाश्च
स्नाता विशुद्धाः शुभशब्दयुक्ताः ॥४४॥

न कश्चिदासीद् भवदुःखयुक्तो
दीनोऽथवा बाह्यसुखेषु सक्तः ।
आनन्दरूपानुगता विरक्ता
ययुश्च रामं पशुभृत्यवर्गैः ॥४५॥

भूतान्यदृश्यानि च यानि तत्र
ये प्राणिनः स्थावर-जङ्गमाश्च ।
साक्षात् परात्मानमनन्तशक्तिं
जग्मुर्विरक्ताः परमेकमीशम् ॥४६॥

---

रघुनाथजी को लक्ष्मी सहित जाते देख बालक और वृद्धों के सहित समस्त पुरजन, अमात्य तथा मन्त्रियों के सहित समस्त ब्राह्मणगण भी चले ।४३॥ उनके पश्चात् श्रेष्ठ-श्रेष्ठ क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्त्यजादि सभी लोग बड़े हर्ष के साथ चले, फिर सुग्रीवादि श्रेष्ठ वानरगण स्नानादि से शुद्ध हो 'श्रीरामचन्द्रजी की जय' आदि मङ्गलमय शब्द करते हुए चले ॥ ४४ ॥ उनमें से कोई भी संसार के दुःख से दुःखी दीन तथा बाह्य विषयों में आसक्त नहीं था, वे सभी सानन्द एवं विरक्त थे, जो अन्त में अपने पशु तथा नौकरों के सहित रघुनाथजी के साथ साकेत लोक को चले गये ॥ ४५ ॥

जो प्राणी कभी अयोध्या में दिखलाई नहीं पड़ते थे वे तथा जितने स्थावर तथा जङ्गम वहाँ के जीव थे सभी संसार से विरक्त होकर साक्षात् परमेश्वर, अनन्त शक्ति एकमात्र परमात्मा राम के साथ चले ॥ ४६ ॥

नासीदयोध्यानगरे तु जन्तुः
कश्चित्तदा राममना न यातः।
शून्यं बभूवाऽखिलमेव तत्र
पुरं गते राजनि रामचन्द्रे ॥४७॥
ततोऽतिदूरं नगरात् स गत्वा
दृष्ट्वा नदीं तां हरिनेत्रजाताम्।
ननन्द रामः स्मृतपावनोऽतो
ददर्श चाऽशेषमिदं हृदिस्थम् ॥४८॥
अथागतस्तत्र पितामहो महान्
देवाश्च सर्वे ऋषयश्च सिद्धाः।
विमानकोटीभिरपारपारं
समावृतं खं सुरसेविताभिः ॥४९॥
रविप्रकाशाभिरभिस्फुरत्स्वं
ज्योतिर्मयं तत्र नभो बभूव।
स्वयंप्रकाशैर्महतां महद्भिः
समावृतं पुण्यकृतां वरिष्ठैः ॥५०॥

---

उस समय अयोध्या में ऐसा कोई भी जीव नहीं था, जो भगवान् राम में चित्त लगा कर उनका अनुगामी न बना हो। इस प्रकार राम के साकेत जाने के समय सारी अयोध्या सूनी हो गयी ॥ ४७ ॥ तदनन्तर नगर से बहुत दूर निकल जाने पर श्रीरघुनाथजी ने विष्णु के नेत्र से उत्पन्न हुई सरयू नदी को देखा, अपने स्मरण मात्र से पवित्र करने वाले भगवान् राम उसे देख कर बहुत प्रसन्न हुए। फिर उन्होंने इस सारे संसार को अपने हृदय में स्थित हुआ देखा ॥ ४८ ॥

इसी समय वहाँ पितामह ब्रह्मा, सभी देवता, ऋषि और सिद्धगण आये। उस समय देवगणों से अधिष्ठित एवं सूर्य के समान तेजस्वी करोड़ों विमानों से अनन्तपार आकाश ठसाठस भर गया और उन विमानों के प्रकाश से प्रज्वलित होकर आकाश भी देदीप्यमान हो उठा। इसके अतिरिक्त पुण्य लोकों से आये हुए पुण्यवानों में श्रेष्ठ तथा महात्माओं में

ववुश्च वाताश्च सुगन्धवन्तो
वव्रर्ष वृष्टिः कुसुमावलीनाम् ।
उपस्थिते देवमृदङ्गनादे
गायत्सु विद्याधरकिन्नरेषु ॥५१॥
रामस्तु पद्भ्यां सरयजलं सकृत्
स्पृष्ट्वा परिक्रामदनन्तशक्तिः ।
ब्रह्मा तदा प्राह कृताञ्जलिस्तं
रामं परात्मन् ! परमेश्वरस्त्वम् ॥५२॥
विष्णुः सदानन्दमयोऽसि पूर्णो
जानासि तत्त्वं निजमैशमेकम् ।
तथाऽपि दासस्य ममाऽखिलेश !
कृतं वचो भक्तपरोऽसि विद्वन् ! ॥५३॥
त्वं भ्रातृभिर्वैष्णवमेवमाद्यं
प्रविश्य देहं परिपाहि देवान् ।
यद्वा परो वा यदि रोचते तं
प्रविश्य देहं परिपाहि नस्त्वम् ॥५४॥

---

महान् स्वयं प्रकाशमय दिव्य पुरुषों से भी सारा का सारा आकाश ढक गया ॥ ४९-५० ॥

उस समय सुगन्धमय वायु चलने लगी, निरन्तर पुष्प-समूहों की वृष्टि होने लगी, देवताओं के द्वारा मृदङ्ग बजाया जाने लगा तथा विद्याधर एवं किन्नरों का गान होने लगा। तब अनन्तशक्ति भगवान् राम ने सरयू जल का एक बार आचमन कर अपने चरणों से उस सरयू नदी की परिक्रमा की। उस समय ब्रह्मा जी हाथ जोड़कर भगवान् राम से कहने लगे–हे परमात्मन् ! आप सब के स्वामी, नित्यानन्दमय, सर्वत्र परिपूर्ण साक्षात् विष्णु हैं। आप अपने ईश्वरीय तत्त्व को स्वयं अकेले जानते हैं तथापि हे अखिलेश्वर ! आप ने मुझ दास का निवेदन पूर्ण किया सो उचित ही था, क्योंकि हे विद्वन् ! आप भक्तवत्सल कहे जाते हैं ॥५१-५३॥

हे प्रभो ! अब आप अपने भाइयों के सहित अपने आदि विग्रह विष्णु-

त्वमेव देवाधिपतिश्च विष्णु-
जानन्ति न त्वां पुरुषा विना माम् ।
सहस्रकृत्वस्तु नमो नमस्ते
प्रसीद देवेश ! पुनर्नमस्ते ॥५५॥
पितामह-प्रार्थनया स रामः
पश्यत्सु देवेषु महाप्रकाशः ।
मुष्णंश्च चक्षूंषि दिवौकसां तदा
बभूव चक्रादियुतश्चतुर्भुजः ॥५६॥
शेषो बभूवेश्वरतल्पभूतः
सौमित्रिरत्यद्भुतभोगधारी ।
बभूवतुश्चक्रदरौ च दिव्यौ
कैकेयिसूनुर्लवणान्तकश्च ॥५७॥
सीता च लक्ष्मीरभवत् पुरैव
रामो हि विष्णुः पुरुषः पुराणः ।
सहानुजः पूर्वशरीरकेण
बभूव तेजोमयदिव्यमूर्तिः ॥५८॥

---

देह में प्रविष्ट होकर इन देवताओं की रक्षा कीजिए अथवा यदि आप को कोई अन्य देह भी प्रिय हो तो उसी में प्रविष्ट होकर हम सबका पालन कीजिए ॥ ५४ ॥ आप देवाधिपति विष्णु हैं, इस बात को मेरे सिवा और कोई भी पुरुष नहीं जानता। हे देवेश ! आपको हजारों बार नमस्कार करते हैं, आप प्रसन्न हो जाइए, आप को पुनः-पुनः नमस्कार है ॥ ५५ ॥

इस प्रकार पितामह ब्रह्मा जी की प्रार्थना कर लेने पर परम तेजोमय भगवान् राम अपने दिव्य तेज से देवताओं की दृष्टि को तिरोहित करते हुए शङ्ख-चक्रादि आयुधों से युक्त चतुर्भुज स्वरूप हो गये ॥ ५६ ॥ लक्ष्मण जी अद्भुत फण धारण कर भगवान् के शय्यारूप शषनाग हो गये। कैकयी-पुत्र भरत तथा लवणान्तक शत्रुघ्न चक्र और शंख के रूप में परिणत हो गये ॥ ५७ ॥ सीता जी तो पहले से ही लक्ष्मी जी हो गयी थीं। इस प्रकार पुराणपुरुष विष्णुस्वरूप भगवान् राम अपने भाइयों के सहित अपने पूर्व शरीर से दिव्य तेजोमय स्वरूप हो गये ॥ ५८ ॥

विष्णुं समासाद्य सुरेन्द्रमुख्या
देवाश्च सिद्धा मुनयश्च यक्षाः ।
पितामहाद्याः परितः परेशं
स्तवैर्गृणन्तः परिपूजयन्तः ॥५९॥

आनन्द-सम्प्लावित-पूर्णचित्ता
बभूविरे प्राप्तमनोरथास्ते ।
तदाह विष्णुर्द्रुहिणं महात्मा
एते हि भक्ता मयि चानुरक्ताः ॥६०॥

यान्तं दिवं मामनुयान्ति सर्वे
तिर्यक्शरीरा अपि पुण्ययुक्ताः ।
वैकुण्ठसाम्यं परमं प्रयान्तु
समाविशस्वाशु ममाज्ञया त्वम् ॥६१॥

श्रुत्वा हरेर्वाक्यमथाऽब्रवीत् कः
सान्तानिकान्यान्तु विचित्रभोगान् ।
लोकान्मदीयोपरि दीप्यमानां-
स्त्वद्भावयुक्ताः कृतपुण्यपुञ्जाः ॥६२॥

---

तदनन्तर इन्द्रादि देवता, सिद्ध, मुनि यक्ष एवं ब्रह्मा आदि प्रजापति गण उन भगवान् विष्णु को चारों ओर से स्तोत्रों द्वारा स्तुति करते हुए उनकी पूजा करने लगे। वे अपने मनोरथ के परिपूर्ण हो जाने से मन-ही-मन आनन्दमग्न हो गये। तब भगवान् विष्णु ने ब्रह्मा से कहा—ब्रह्मन्! ये सभी मेरे भक्त तथा मुझ में प्रीति रखने वाले हैं ॥ ५९-६० ॥ मेरे साथ ये लोग भी स्वर्गलोक जाना चाहते हैं। यद्यपि ये तिर्यक् शरीरधारी हैं फिर भी ये सभी पुण्यात्मा हैं। अतः ये सभी वैकुण्ठ के समान उत्तम लोक को प्राप्त हों। आप मेरी आज्ञा से शीघ्र ही इनका प्रवेश उन-उन लोकों में करा देवें ॥ ६१ ॥

भगवान् के वचन को सुनकर ब्रह्मा ने उनसे कहा—भगवन्! आपकी भक्ति से युक्त ये पुण्यशाली लोग मेरे लोक से भी ऊपर अत्यन्त दीप्ति-

ये चापि ते राम ! पवित्रनाम
गृणन्ति मर्त्या लयकाल एव ।
अज्ञानतो वाऽपि भजन्तु लोकां-
स्तानेव योगैरपि चाधिगम्यान् ॥६३॥
ततोऽतिहृष्टा हरिराक्षसाद्याः
स्पृष्ट्वा जलं त्यक्तकलेवरास्ते ।
प्रपेदिरे प्राक्तनमेव रूपं
यदंशजा ऋक्षहरीश्वरास्ते ॥६४॥
प्रभाकरं प्राप हरिप्रवीरः
सुग्रीव आदित्यज-वीर्यवत्त्वात् ।
ततो निमग्नाः सरयूजलेषु
नराः परित्यज्य मनुष्यदेहम् ॥६५॥
आरुह्य दिव्याभरणा विमानं
प्रापुश्च ते सान्तनिकाख्यलोकान् ।
तिर्यक्प्रजाता अपि रामदृष्ट्वा
जलं प्रविष्टा दिवमेव याताः ॥६६॥

---

शाली एवं विचित्र भोगों से सम्पन्न सान्तानिक लोकों को प्राप्त करें ॥ ६२ ॥ और हे राम ! जो लोग मरने के समय आपका पवित्र नाम लेंगे अथवा जो अज्ञान से भी आपका भजन करेंगे, वे योगियों के प्राप्त करने योग्य लोकों को जायेंगे ॥६३॥ यह सुनकर वानर और राक्षसादि परम प्रसन्न हो गये। और सरयू के जल का आचमन कर शरीर त्याग करने लगे। फिर वे रीछ एवं वानर आदि जिस-जिस देवता के अंश से उत्पन्न हुए थे, उन-उन देवताओं के रूप में मिल गये ॥ ६४ ॥

वानरराज सुग्रीव सूर्य के वीर्य से उत्पन्न हुए थे, अतः वे सूर्य में लीन हो गये। तदनन्तर अयोध्यानिवासी लोग सरयू के जल में डूब-डूबकर मनुष्य शरीर त्यागकर दिव्य आभूषणों से विभूषित हो विमानों पर चढ़-कर सान्तानिक नामक लोक में पहुँच गये। जो तिर्यक्योनियों में कूकर, सूकर आदि रूप से उत्पन्न हुए थे, वे भगवान् राम की दृष्टि पड़ते ही जल में डूबकर स्वर्गलोक चले गये ॥ ६५-६६ ॥

दिदृक्षवो जानपदाश्च लोका रामं समालोक्य विमुक्तसङ्गाः ।
स्मृत्वा हरिं लोकगुरुं परेशं स्पृष्ट्वा जलं स्वर्गमवापुरञ्जः ॥६७॥
एतावदेवोत्तरमाह शम्भुः श्रीरामचन्द्रस्य कथावशेषम् ।
यः पादमप्यत्र पठेत् स पापाद् विमुच्यते जन्मसहस्रजातात् ॥६८॥
दिने दिने पापचयं प्रकुर्वन् पठेन्नरः श्लोकमपीह भक्त्या ।
विमुक्तसर्वाघचयः प्रयाति रामस्य सालोक्यमनन्यलभ्यम् ॥६९॥
आख्यानमेतद् रघुनायकस्य कृतं पुरा राघवचोदितेन ।
महेश्वरेणास्य भविष्यदर्थं श्रुत्वा तु रामः परितोषमेति ॥७०॥
रामायणं काव्यमनन्तपुण्यं श्रीशङ्करेणाभिहितं भवान्यै ।
भक्त्या पठेद् यः शृणुयात् स पापैर्विमुच्यते जन्मशतोद्भवैश्च ॥७१॥
अध्यात्मरामं पठतश्च नित्यं श्रोतुश्च भक्त्या लिखितुश्च रामः ।
अतिप्रसन्नश्च सदा समीपे सीतासमेतः श्रियमातनोति ॥७२॥

---

जो अयोध्या देशवासी इस कौतुक को देखने के लिए आये थे, वे भी श्रीरामचन्द्र जी का दर्शन कर संसार की आसक्ति छोड़ लोकगुरु परमेश्वर भगवान् विष्णु का स्मरण करते हुए जलस्पर्श कर स्वर्ग को चले गये ॥६७॥

श्रीमहादेवजी ने श्रीराम-कथा का परिशिष्ट भाग इतना ही उत्तर काण्ड कहा है। जो पुरुष इसका एक पाद भी पढ़ता है वह अपने जन्म सहस्रों के किये गये पापों से मुक्त हो जाता है ॥ ६८ ॥ नित्यप्रति अनेकों पापों को करने वाला पुरुष यदि भक्तिपूर्वक इसका एक भी श्लोक पढ़े तो वह अपने सम्पूर्ण पापराशि से छूटकर श्रीराम के सालोक्य पद को प्राप्त करता है, जो दूसरों के लिए सर्वथा दुर्लभ है ॥ ६९ ॥

श्रीराम की प्रेरणा से उनके इस आख्यान को, जिनमें उनके भविष्य चरितों का ही वर्णन है, श्रीमहादेव जी ने सर्वप्रथम बनाया है, इस रामायण को सुनकर श्रीराचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हो जाते हैं ॥ ७० ॥ अनन्त पुण्यों को प्रदान करने वाला यह रामायण नामक काव्य श्रीशङ्कर जी ने पार्वती को सुनाया था। जो लोग भक्तिपूर्वक इसका पाठ करते हैं अथवा भक्तिपूर्वक इसको सुनते हैं, वे अपने सैकड़ों जन्मों के पापों से मुक्त हो जाते हैं ॥ ७१ ॥

इस अध्यात्म-रामायण के भक्तिपूर्वक प्रतिदिन पाठ करने से, सुनने से तथा लिखने से भगवान् राम अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। तथा सीता सहित

रामायणं जनमनोहरमादिकाव्यं
ब्रह्मादिभिः सुरवरैरपि संस्तुतं च ।
श्रद्धान्वितः पठति यः शृणुयात्तु नित्यं
विष्णोः प्रयाति सदनं स विशुद्धदेहः ॥७३॥

इति आचार्य-पण्डित-श्रीशिवदत्तमिश्रशास्त्रि-सम्पादिते श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे नवमः सर्गः समाप्तः ॥ ९ ॥

समाप्तमिदमुत्तरकाण्डम् ।

---

उसके पास में रहकर उसकी श्रीवृद्धि करते हैं ॥ ७२ ॥ ब्रह्मा आदि सर्वश्रेष्ठ देवताओं से प्रशंसित एवं मनुष्यों के मन को हरण करने वाले अत्यन्त मनोहर इस आदि-काव्य रामायण को जो पुरुष नित्यप्रति श्रद्धा पूर्वक पढ़ता है अथवा सुनता है वह विशुद्ध दिव्य शरीर धारण कर भगवान् विष्णु के धाम को प्राप्त करता है ॥ ७३ ॥

इस प्रकार देवरिया-मण्डलान्तर्गत-'मझौली राज्य' ( सम्प्रति वाराणसी ) निवासी पण्डित श्रीसन्तशरण मिश्रात्मज-आचार्य-पण्डित श्रीशिवदत्त मिश्र शास्त्री कृत 'शिवदत्ती' हिन्दी व्याख्या सहित अध्यात्मरामायण में उमा-महेश्वर संवाद रूप उत्तरकाण्ड का नवम सर्ग समाप्त ॥ ९ ॥

□

ग्रन्थ-परिमाणम्

पार्वत्यै परमेश्वरेण गदिते ह्यध्यात्मरामायणे
काण्डैः सप्तभिरन्वितेऽतिशुभदे सर्गाश्चतुःषष्टिकाः ।
श्लोकानां तु शतद्वयेन सहितान्युक्तानि चत्वारि वै
साहस्राणि समाप्तितः श्रुतिशतान्युक्तानि तत्त्वार्थतः ॥

साक्षात् परमेश्वर ( भगवान् महेश्वर ) द्वारा पार्वती जी के लिए कहे हुए, सात काण्डों से युक्त इस शुभफल प्रदायक अध्यात्मरामायण में चौंसठ सर्ग हैं। समाप्तिपर्यन्त इसमें कुल चार हजार दो सौ श्लोक कहे गये हैं और तत्त्वार्थ का विवेचन करने वाली सैकड़ों श्रुतियाँ भी कही गयी हैं ।

□

# श्लोकानुक्रमणिका

[ प ]

[भ]

[य]

इति श्लोकानुक्रमणिका समाप्ता ।



पुस्तक-प्राप्ति-स्थानम्

**ठाकुर प्रसाद पुस्तक भण्डार–**

कचौड़ीगली, वाराणसी-२२१००१

